'कल्याण'के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण'के ६७वें वर्ष सन् १९९३ का यह विशेषाङ्क 'शिवोपासनाङ्क' आप पाठकोकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४०८ पृष्ठोंमें पाठ्यसामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे तथा सादे चित्र भी यथास्थान दिये गये है।

२-जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्हें विशेषाङ्क फरवरी-अङ्कके सहित रजिस्ट्रीद्वारा भेजा जा रहा है तथा जिनसे शुल्क-राशि प्राप्त नहीं हुई है, उन्हें ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार वी०पी०पी० द्वारा भेजा जा सकेगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी०पी०पी० द्वारा विशेषाङ्क भेजनेमें डाकखर्च ५.०० (पाँच रुपये) अधिक लगता है, अतः ग्राहक महानुभावोंसे विनम्र अनुरोध है कि वे वी०पी०पी० की प्रतीक्षा न करके वार्षिक शुल्क-राशि मनीआर्डरद्वारा भेजें। 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क डाकखर्चसहित ५५.०० (पचपन रुपये) मात्र है, जो मात्र विशेषाङ्कका ही मूल्य है।

३-'कल्याण'के पंद्रहवर्षीय ग्राहक भी बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क रु० ५००.०० (सजिल्द विशेषाङ्कका रु० ६००.००) है। इस योजनाके अन्तर्गत फर्म, प्रतिष्ठान आदि संस्थागत ग्राहक भी बन सकते हैं।

४-ग्राहक सज्जन कृपया मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है, जिससे आपकी सेवामें 'शिवोपासनाङ्क' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी०पी०पी० भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप शुल्क-राशि मनीआर्डरसे भेज दें और उसके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी०पी०पी० भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपया वी०पी०पी० लौटायें नहीं, अपितु प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर वी०पी०पी०से भेजे गये 'कल्याण'-अङ्क उन्हें दे दें और उनका नाम तथा पूरा पता सुस्पष्ट, सुवाच्य लिपिमें लिखकर हमारे कार्यालयको भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका अपना 'कल्याण' डाक-व्ययकी व्यर्थ हानिसे तो बचेगा ही, इस प्रकार आप भी 'कल्याण'के पावन प्रचारमें सहायक एवं सहयोगी बनकर पुण्यके भागी होंगे।

५-विशेषाङ्क 'शिवोपासनाङ्क'के साथमें फरवरी सन् १९९३का (दूसरा) अङ्क भी ग्राहकोंकी सेवामें (शीघ्र और सुरक्षित पहुँचानेकी दृष्टिसे) रजिस्टर्ड-पोस्टसे भेजा जा रहा है। यद्यपि यथाशक्य तत्परतापूर्वक शीघ्रता करनेपर भी सभी ग्राहकोंको अङ्क भेजनेमे अनुमानतः ६-७ सप्ताह तो लग ही सकते हैं; तथापि विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार ही भेजनेकी प्रक्रिया होनेसे किन्हीं महानुभावोंको अङ्क कुछ विलम्बसे मिलें तो वे अपरिहार्य कारण समझकर कृपया हमें क्षमा करेंगे।

६-विशेषाङ्कके लिफाफे (कवर) पर आपकी जो ग्राहक-संख्या लिखी गयी है, उसे आप कृपया पूर्ण सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी०का नंबर भी नोट कर लेना चाहिये, जिससे आवश्यकतानुसार पत्राचारके समय उल्लेख किया जा सके। इससे कार्यकी सम्पन्नतामें शीघ्रता एवं सुविधा होगी तथा कार्यालयकी शक्ति और समय व्यर्थ नष्ट होनेसे बचेंगे।

७-'कल्याण'-व्यवस्था-विभाग एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभाग'को अलग-अलग समझकर सम्बन्धित पत्र, पार्सल, पैकेट, मनीआर्डर, बीमा आदि पृथक्-पृथक् पतोंपर भेजने चाहिये। पतेके स्थानपर केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर 'पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर'के साथ पिन-२७३००५ भी अवश्य लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर, पिन-२७३००५

═══ ★ ═══

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इनके पठन-पाठन एवं मननसे ानुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण-आश्रम, जाति, अवस्था आदि गेई भी बाधक नहीं है।आजके इस कुसमयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अतः र्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे ीगीता-रामायण-प्रचार-संघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग बावन हजार है। इसमें ीगीताके छः प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके न्तर्गत नित्यप्रति इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी ।। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। दस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा रें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, पत्रालय—स्वर्गाश्रम—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), *जनपद*—पौड़ी-गढ़वाल (उ॰ प्र॰)।

═ ★ ═

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका ग्रहण और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। *मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन* उद्देश्यसे लगभग ४५ वर्ष पूर्व 'साधक-संघ' की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। *सभी कल्याणकामी* स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको साधक-दैनन्दिनीका वर्तमान मूल्य (१.५० तथा डाकखर्च ०.५० पैसे) कुल रु॰ २.०० मात्र, डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। संघके सदस्य इस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन साधन-सम्बन्धी अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली निःशुल्क मँगवाइये।

पता—संयोजक, 'साधक-संघ' *पत्रालय*—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ॰ प्र॰)

═ ★ ═

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग बीस हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४०० परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, *पत्रालय—स्वर्गाश्रम, पिन*—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), *जनपद*—पौड़ी गढ़वाल (उ॰ प्र॰)

═ ★ ═

'शिवोपासनाङ्क'की विषय-सूची

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

(सादे चित्र)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

वर्ष ६७ | गोरखपुर, सौर माघ, वि॰सं॰ २०४९, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१८, जनवरी १९९३ ई॰ | संख्या १ | पूर्ण संख्या ७९

ब्रह्मा-विष्णुकृत शिव-स्तवन

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे । नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ॥
नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च । वेदकर्मविदातानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः । नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः ॥
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः । कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः ॥
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥

(ब्रह्मा और विष्णु स्तुति करते हुए बोले—) भगवन् ! आप सुव्रत और अनन्त तेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप क्षेत्राधिपति तथा विश्वके बीज-स्वरूप और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम सभी भूतोंके उत्पत्ति-स्थान और वेदोक्त सभी श्रेष्ठ यज्ञ आदि कर्मोंको सम्पन्न करानेवाले, समस्त द्रव्योंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप विद्याके आदि कारण और स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतों एवं मन्त्रोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय तत्त्व हैं। अपनी शक्तिसे जैसा हमने आपको समझा, वैसा ही आपके अपार माहात्म्यका यशोगान किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारक हों। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् अज्ञेय और अगम्य हैं, आपको नमस्कार है।

(वायुपुराण,पूर्वा॰)

भगवान् शिवको नमस्कार

(ॐ) नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

कल्याण एवं सुखके मूल स्रोत भगवान् शिवको नमस्कार है। कल्याणके विस्तार करनेवाले तथा सुखके विस्तार करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। मङ्गलस्वरूप और मङ्गलमयताकी सीमा भगवान् शिवको नमस्कार है।

(ॐ) ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥

जो सम्पूर्ण विद्याओंके ईश्वर, समस्त भूतोंके अधीश्वर, ब्रह्म-वेदके अधिपति, ब्रह्म-बल-वीर्यके प्रतिपालक तथा साक्षात् ब्रह्मा एवं परमात्मा हैं, वे सच्चिदानन्दमय नित्य कल्याणस्वरूप शिव मेरे बने रहें।

(ॐ) तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

तत्पदार्थ—परमेश्वररूप अन्तर्यामी पुरुषको हम जानें, उन महादेवका चिन्तन करें, वे भगवान् रुद्र हमें सद्धर्मके लिये प्रेरित करते रहें।

(ॐ) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

जो अघोर हैं, घोर हैं, घोरसे भी घोरतर हैं, और जो सर्वसंहारी रुद्ररूप हैं, आपके उन सभी स्वरूपोंको मेरा नमस्कार हो।

(ॐ) वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥

प्रभो! आप ही वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, काल, कलविकरण, बलविकरण, बल, बलप्रमथन, सर्वभूतदमन तथा मनोन्मन आदि नामोंसे प्रतिपादित होते हैं, इन सभी नाम-रूपोंमें आपके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है।

(ॐ) सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥

मैं सद्योजात शिवकी शरण लेता हूँ। सद्योजातको मेरा नमस्कार है। किसी जन्म या जगत्में मेरा अतिभव—पराभव न करें। आप भवोद्भवको मेरा नमस्कार है।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥

हे रुद्र! आपको सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रि और दिनमें भी नमस्कार है। मैं भवदेव तथा रुद्रदेव दोनोंको नमस्कार करता हूँ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

वेद जिनके निःश्वास हैं, जिन्होंने वेदोंसे सारी सृष्टिकी रचना की और जो विद्याओंके तीर्थ हैं ऐसे शिवकी मैं वन्दना करता हूँ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

तीन नेत्रोंवाले, सुगन्धयुक्त एवं पुष्टिके वर्द्धक शंकरका हम पूजन करते हैं, वे शंकर हमको दुःखोंसे ऐसे छुड़ायें जैसे खरबूजा पककर बेलसे अपने-आप टूट जाता है, किंतु वे शंकर हमें मोक्षसे न छुड़ावें।

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु। पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः। विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्। सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।

जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट है, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्मारूपसे, प्रजापतिलोकमें प्रजापतिरूपसे, सूर्यमण्डलमें वैराटरूपसे तथा देहमें जीवरूपसे स्थित हुआ है—उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्रको बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा, वह सब प्रपञ्च रुद्रकी सत्तासे भिन्न नहीं हो सकता, यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्रके प्रति प्रणाम हो।

परम उपास्य भगवान् सदाशिवकी महिमा एवं स्तुति-प्रार्थना

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासन-शक्तियोंद्वारा इन सब लोकोपर शासन करता है, वह रुद्र एक ही है, (इसीलिये विद्वान् पुरुषोंने जगत्के कारणका निश्चय करते समय) दूसरेका आश्रय नहीं लिया, (वह परमात्मा) समस्त जीवोंके भीतर स्थित हो रहा है। सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करके उनकी रक्षा करनेवाला परमेश्वर प्रलयकालमें इन सबको समेट लेता है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥

सब जगह आँखवाला तथा सब जगह मुखवाला, सब जगह हाथवाला और सब जगह पैरवाला, आकाश और पृथिवीकी सृष्टि करनेवाला (वह) एकमात्र देव (परमात्मा) मनुष्य आदि जीवोंको दो-दो बाँहोंसे युक्त करता है (तथा) (पक्षी-पतंग आदिको) पाँखोंसे युक्त करता है।

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

वह भगवान् सब ओर मुख, सिर और ग्रीवावाला है। समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करता है (और) सर्वव्यापी है, इसलिये वह कल्याणस्वरूप परमेश्वर सब जगह पहुँचा हुआ है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

माया तो प्रकृतिको समझना चाहिये और मायापति महेश्वरको समझना चाहिये, उसीके अङ्गभूत कारण-कार्य-समुदायसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ता-
द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

उस ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, सम्पूर्ण देवताओंके भी परम देवता, पतियोंके भी परम पति (तथा) समस्त ब्रह्माण्डके स्वामी (एवं) स्तुति करनेयोग्य उस प्रकाशस्वरूप परमात्माको (हमलोग) सबसे परे जानते हैं।

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओंकी उत्पत्तिका और वृद्धिका हेतु है, तथा (जो) सबका अधिपति (और) महान् ज्ञानी (सर्वज्ञ) है, (जिसने) पहले हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया था, वह परमदेव परमेश्वर हमलोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करे।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्-
वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

जो रंग, रूप आदिसे रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजनवाला होनेके कारण, विविध शक्तियोंके सम्बन्धसे सृष्टिके आदिमें अनेक रूप-रंग धारण कर लेता है तथा अन्तमें यह सम्पूर्ण विश्व (जिसमें) विलीन भी हो जाता है, वह परमदेव (परमात्मा) एक (अद्वितीय) है, वह हमलोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करे।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥

हे रुद्रदेव! तेरी जो भयानकतासे शून्य (सौम्य) पुण्यसे प्रकाशित होनेवाली (तथा) कल्याणमयी मूर्ति है, हे पर्वतपर रहकर सुखका विस्तार करनेवाले शिव! उस परम शान्त मूर्तिसे (तू कृपा करके) हमलोगोंको देख।

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं स च वि चैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति॥

जो अकेला ही प्रत्येक योनिका अधिष्ठाता हो रहा है,

जिसमें यह समस्त जगत् प्रलयकालमें विलीन हो जाता है और सृष्टिकालमें विविध रूपोंमें प्रकट भी हो जाता है, उस सर्वनियन्ता, वरदायक, स्तुति करनेयोग्य, परमदेव परमेश्वरको तत्त्वसे जानकर (मनुष्य) निरन्तर बनी रहनेवाली इस (मुक्तिरूप) परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥

(जो) सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, हृदय-गुहारूप गुह्य-स्थानके भीतर स्थित, अखिल विश्वकी रचना करनेवाला, अनेक रूप धारण करनेवाला (तथा समस्त जगत्को सब ओरसे घेरे रखनेवाला है (उस) एक (अद्वितीय) कल्याण-स्वरूप महेश्वरको जानकर (मनुष्य) सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है।

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥

वही समयपर समस्त ब्रह्माण्डोंकी रक्षा करनेवाला, समस्त जगत्का अधिपति (और) समस्त प्राणियोंमें छिपा हुआ है, जिसमें वेदज्ञ महर्षिगण और देवतालोग भी ध्यानद्वारा संलग्न हैं, उस (परमदेव परमेश्वर) को इस प्रकार जानकर (मनुष्य) मृत्युके बन्धनोंको काट डालता है।

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥

कल्याणस्वरूप एक (अद्वितीय) परमदेवको मक्खनके ऊपर रहनेवाले सारभागकी भाँति अत्यन्त सूक्ष्म (और) समस्त प्राणियोंमें छिपा हुआ जानकर (तथा) समस्त जगत्को सब ओरसे घेरकर स्थित हुआ जानकर, (मनुष्य) समस्त बन्धनोंसे छूट जाता है।

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥

कलिल (दुर्गम संसार)-के भीतर व्याप्त आदि-अन्तसे रहित समस्त जगत्की रचना करनेवाले अनेक रूपधारी (तथा) समस्त जगत्को सब ओरसे घेरे हुए एक (अद्वितीय) परमदेव परमेश्वरको जानकर (मनुष्य) समस्त बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है।

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

यह जगत्कर्ता महात्मा परमदेव परमेश्वर सर्वदा सब मनुष्योंके हृदयमें सम्यक् प्रकारसे स्थित है (तथा) हृदयसे, बुद्धिसे (और) मनसे ध्यानमें लाया हुआ, (प्रत्यक्ष होता है) जो साधक इस रहस्यको जान लेते हैं, वे अमृतस्वरूप हो जाते हैं।

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥

श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होनेयोग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले (तथा) जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याणस्वरूप (तथा) सोलह कलाओंकी रचना करनेवाले परमदेव परमेश्वरको जो साधक जान लेते हैं, वे शरीरको (सदाके लिये) त्याग देते हैं—जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥

(जो परम पुरुष परमात्मा) समस्त इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी समस्त इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है (तथा) सबका स्वामी, सबका शासक (और) सबसे बड़ा आश्रय है, (उसकी शरणमें जाना चाहिये)।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

अविद्यारूप अन्धकारसे अतीत (तथा) सूर्यकी भाँति

स्वयंप्रकाशस्वरूप, इस महान् पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूँ, उसको जानकर ही (मनुष्य) मृत्युको उल्लङ्घन कर जाता है, (परमपदकी) प्राप्तिके लिये दूसरा मार्ग नहीं है।

(श्वेताश्वतर-उपनिषद्)

श्रीशिवप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥

जो सांसारिक भयको हरनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जो गङ्गाजीको धारण करते हैं, जिनका वृषभ वाहन है, जो अम्बिकाके ईश हैं तथा जिनके हाथमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल और वरद तथा अभयमुद्रा है, उन संसार-रोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषधरूप 'ईश' (महादेवजी) का मैं प्रातःसमयमें स्मरण करता हूँ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥

भगवती पार्वती जिनका आधा अङ्ग हैं, जो संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, आदिदेव हैं, विश्वनाथ हैं, विश्व-विजयी और मनोहर हैं, सांसारिक रोगको नष्ट करनेके लिये अद्वितीय औषधरूप उन गिरीश (शिव) को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥ ३ ॥

जो अन्तसे रहित आदिदेव हैं, वेदान्तसे जानने योग्य, पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदोंसे रहित, छः अभावोंसे शून्य, संसाररोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषध हैं, उन एक शिवजीको मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३ ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य
श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति।
ते दुःखजातं बहुजन्मसंचितं
हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शिवका ध्यान कर प्रतिदिन इन तीनों श्लोकोंका पाठ करते हैं, वे लोग अनेक जन्मोंके संचित दुःखसमूहसे मुक्त होकर शिवजीके उसी कल्याणमय पदको पाते हैं॥ ४ ॥

तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखहेतुः।
संहारहेतुरपि यः पुनरन्तकाले
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो चराचर प्राणियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले हैं, उत्पन्न हुए जगत्‌के सुख-दुःखमें एकमात्र कारण हैं तथा अन्तकालमें जो पुनः इस विश्वके संहारमें भी कारण बनते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का
भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमितदिव्यभावं
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिनके हृदयसे मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, भक्तिके प्रभावसे जिनका चित्त भगवान्‌के ध्यानमें लीन हो रहा है, जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं और जिनकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, ऐसे योगी पुरुष अपरिमेय दिव्यभावसे सम्पन्न जिन भगवान् शिवका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्मयूखं
बद्ध्वा सदा प्रियतमां शिरसा बिभर्ति।
यश्चार्धदेहमददाद् गिरिराजपुत्र्यै
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिसमें यह समस्त जगत् प्रलयकालमें विलीन हो जाता है और सृष्टिकालमें विविध रूपोंमें प्रकट भी हो जाता है, उस सर्वनियन्ता, वरदायक, स्तुति करनेयोग्य, परमदेव परमेश्वरको तत्त्वसे जानकर (मनुष्य) निरन्तर बनी रहनेवाली इस (मुक्तिरूप) परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति॥

(जो) सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, हृदय-गुहारूप गुह्य-स्थानके भीतर स्थित, अखिल विश्वकी रचना करनेवाला, अनेक रूप धारण करनेवाला (तथा समस्त जगत्को सब ओरसे घेरे रखनेवाला है (उस) एक (अद्वितीय) कल्याण-स्वरूप महेश्वरको जानकर (मनुष्य) सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है।

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति॥

वही समयपर समस्त ब्रह्माण्डोंकी रक्षा करनेवाला, समस्त जगत्का अधिपति (और) समस्त प्राणियोंमें छिपा हुआ है, जिसमें वेदज्ञ महर्षिगण और देवतालोग भी ध्यानद्वारा संलग्न हैं, उस (परमदेव परमेश्वर) को इस प्रकार जानकर (मनुष्य) मृत्युके बन्धनोंको काट डालता है।

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

कल्याणस्वरूप एक (अद्वितीय) परमदेवको मक्खनके ऊपर रहनेवाले सारभागकी भाँति अत्यन्त सूक्ष्म (और) समस्त प्राणियोंमें छिपा हुआ जानकर (तथा) समस्त जगत्को सब ओरसे घेरकर स्थित हुआ जानकर, (मनुष्य) समस्त बन्धनोंसे छूट जाता है।

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

कलिल (दुर्गम संसार) के भीतर व्याप्त आदि-अन्तसे रहित समस्त जगत्की रचना करनेवाले अनेक रूपधारी (तथा) समस्त जगत्को सब ओरसे घेरे हुए एक (अद्वितीय) परमदेव परमेश्वरको जानकर (मनुष्य) समस्त बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है।

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

यह जगत्कर्ता महात्मा परमदेव परमेश्वर सर्वदा सब मनुष्योंके हृदयमें सम्यक् प्रकारसे स्थित है (तथा) हृदयसे, बुद्धिसे (और) मनसे ध्यानमें लाया हुआ, (प्रत्यक्ष होता है) जो साधक इस रहस्यको जान लेते हैं, वे अमृतस्वरूप हो जाते हैं।

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्॥

श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होनेयोग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले (तथा) जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याणस्वरूप (तथा) सोलह कलाओंकी रचना करनेवाले परमदेव परमेश्वरको जो साधक जान लेते हैं, वे शरीरको (सदाके लिये) त्याग देते हैं—जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्॥

(जो परम पुरुष परमात्मा) समस्त इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी समस्त इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है (तथा) सबका स्वामी, सबका शासक (और) सबसे बड़ा आश्रय है, (उसकी शरणमें जाना चाहिये)।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

अविद्यारूप अन्धकारसे अतीत (तथा) सूर्यकी भाँति

स्वयंप्रकाशस्वरूप, इस महान् पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूँ, उसको जानकर ही (मनुष्य) मृत्युको उल्लङ्घन कर जाता है, (परमपदकी) प्राप्तिके लिये दूसरा मार्ग नहीं है।

(श्वेताश्वतर-उपनिषद्)

श्रीशिवप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥

जो सांसारिक भयको हरनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जो गङ्गाजीको धारण करते हैं, जिनका वृषभ वाहन है, जो अम्बिकाके ईश हैं तथा जिनके हाथमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल और वरद तथा अभयमुद्रा है, उन संसार-रोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषधरूप 'ईश' (महादेवजी) का मैं प्रातःसमयमें स्मरण करता हूँ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥

भगवती पार्वती जिनका आधा अङ्ग हैं, जो संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, आदिदेव हैं, विश्वनाथ हैं, विश्व-विजयी और मनोहर हैं, सांसारिक रोगको नष्ट करनेके लिये अद्वितीय औषधरूप उन गिरीश (शिव) को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥ ३ ॥

जो अन्तसे रहित आदिदेव हैं, वेदान्तसे जानने योग्य, पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदोंसे रहित, छः अभावोंसे शून्य, संसाररोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषध हैं, उन एक शिवजीको मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३ ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य
श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति।
ते दुःखजातं बहुजन्मसंचितं
हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शिवका ध्यान कर प्रतिदिन इन तीनों श्लोकोंका पाठ करते हैं, वे लोग अनेक जन्मोंके संचित दुःखसमूहसे मुक्त होकर शिवजीके उसी कल्याणमय पदको पाते हैं॥ ४ ॥

तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखहेतुः।
संहारहेतुरपि यः पुनरन्तकाले
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जो चराचर प्राणियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले हैं, उत्पन्न हुए जगत्के सुख-दुःखमे एकमात्र कारण हैं तथा अन्तकालमें जो पुनः इस विश्वके संहारमें भी कारण बनते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का
भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमितदिव्यभावं
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिनके हृदयसे मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, भक्तिके प्रभावसे जिनका चित्त भगवान्के ध्यानमें लीन हो रहा है, जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं और जिनकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, ऐसे योगी पुरुष अपरिमेय दिव्यभावसे सम्पन्न जिन भगवान् शिवका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्मयूखं
बद्ध्वा सदा प्रियतमां शिरसा बिभर्ति।
यश्चार्धदेहमददाद् गिरिराजपुत्र्यै
तं शंकरं शरणदं शरणं

जो सुन्दर किरणोंसे युक्त निर्मल चन्द्रमाकी कलाको जटाजूटमें बाँधकर अपनी प्रियतमा गङ्गाजीको मस्तकपर धारण करते हैं, जिन्होंने गिरिराजकुमारी उमाको अपना आधा शरीर दे दिया है, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

योऽयं सकृद्विमलचारुविलोलतोयां
गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात् पतन्तीम्।
मूर्ध्नाऽऽददे स्रजमिव प्रतिलोलपुष्पां
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको, जो स्वच्छ, सुन्दर एवं चञ्चल जलराशिसे युक्त तथा ऊँची-ऊँची लहरोंसे उल्लसित होनेके कारण भयंकर जान पड़ती थीं, जिन्होंने हिलते हुए फूलोंसे सुशोभित मालाकी भाँति सहसा अपने मस्तकपर धारण कर लिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

कैलासशैलशिखरं प्रतिकम्प्यमानं
कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन।
यः पादपद्मपरिवादनमादधान-
स्तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

कैलास पर्वतके शिखरके समान ऊँचे शरीरवाले दशमुख रावणके द्वारा हिलायी जाती हुई कैलास गिरिकी चोटीको जिन्होंने अपने चरणकमलोंसे ताल देकर स्थिर कर दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

येनासकृद् दितिसुताः समरे निरस्ता
विद्याधरोरगगणाश्च वरैः समग्राः।
संयोजिता मुनिवराः फलमूलभक्षा-
स्तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन्होंने अनेकों बार दैत्योंको युद्धमें परास्त किया है और विद्याधर, नागगण तथा फल-मूलका आहार करनेवाले सम्पूर्ण मुनिवरोंको उत्तम वर दिये हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

दग्ध्वाध्वरं च नयने च तथा भगस्य
पूष्णस्तथा दशनपङ्क्तिमपातयच्च।
तस्तम्भ यः कुलिशयुक्तमहेन्द्रहस्तं
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन्होंने दक्षका यज्ञ भस्म करके भग देवताकी आँखें फोड़ डालीं और पूषाके सारे दाँत गिरा दिये तथा वज्र-सहित देवराज इन्द्रके हाथको भी स्तम्भित कर दिया—जड़वत् निश्चेष्ट बना दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

एनस्कृतोऽपि विषयेष्वपि सक्तभावा
ज्ञानान्वयश्रुतगुणैरपि नैव युक्ताः।
यं संश्रिताः सुखभुजः पुरुषा भवन्ति
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो पापकर्ममें निरत और विषयासक्त हैं, जिनमें उत्तम ज्ञान, उत्तम कुल, उत्तम शास्त्र-ज्ञान और उत्तम गुणोंका भी अभाव है—ऐसे पुरुष भी जिनकी शरणमें जानेसे सुखी हो जाते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

अत्रिप्रसूतिरविकोटिसमानतेजाः
संत्रासनं विबुधदानवसत्तमानाम्।
यः कालकूटमपिबत् समुदीर्णवेगं
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो तेजमें करोड़ों चन्द्रमाओं और सूर्योंके समान हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े देवताओं तथा दानवोंका भी दिल दहला देनेवाले कालकूट नामक भयंकर विषका पान कर लिया था, उन प्रचण्ड वेगशाली शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुतां च सषण्मुखानां
योऽदाद् वरांश्च बहुशो भगवान् महेशः।
नन्दिं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जिन भगवान् महेश्वरने कार्तिकेयके सहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र तथा मरुद्गणोंको अनेकों बार वर दिये हैं तथा नन्दीका मृत्युके मुखसे उद्धार किया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

आराधितः सुतपसा हिमवन्निकुञ्जे
धूम्रव्रतेन मनसापि परैरगम्यः।
सञ्जीवनीं समददाद् भृगवे महात्मा
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो दूसरोंके लिये मनसे भी अगम्य हैं, महर्षि भृगुने

हिमालय पर्वतके निकुंजमें होमका धुआँ पीकर कठोर तपस्याके द्वारा जिनकी आराधना की थी तथा जिन महात्माने भृगुको (उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर) संजीवनी विद्या प्रदान की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

नानाविधैर्गजबिडालसमानवक्त्रै-
दक्षाध्वरप्रमथनैर्बलिभिर्गणौघैः ।
योऽभ्यर्च्यतेऽमरगणैश्च सलोकपालै-
स्तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

हाथी और बिल्ली आदिकी-सी मुखाकृतिवाले तथा दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले नाना प्रकारके महाबली गणोंद्वारा जिनकी निरन्तर पूजा होती रहती है तथा लोकपालोंसहित देवगण भी जिनकी आराधना किया करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

क्रीडार्थमेव भगवान् भुवनानि सप्त
नानानदीविहगपादपमण्डितानि ।
सब्रह्मकानि व्यसृजत् सुकृताहितानि
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन भगवान्ने अपनी क्रीडाके लिये ही अनेकों नदियों, पक्षियों और वृक्षोंसे सुशोभित एवं ब्रह्माजीसे अधिष्ठित सातों भुवनोंकी रचना की है तथा जिन्होंने सम्पूर्ण लोकोंको अपने पुण्यपर ही प्रतिष्ठित किया है, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्याखिलं जगदिदं वशवर्ति नित्यं
योऽष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनानि भुङ्क्ते ।
यः कारणं सुमहतामपि कारणानां
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

यह सम्पूर्ण विश्व सदा ही जिनकी आज्ञाके अधीन है, जो (जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु और प्रकृति—इन) आठ विग्रहोंसे समस्त लोकोंका उपभोग करते हैं तथा जो बड़े-से-बड़े कारण-तत्त्वोंके भी महाकारण हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं वृषभप्रवीर-
मारुह्य यः क्षितिधरेन्द्रसुतानुयातः ।
यात्यम्बरे हिमविभूतिविभूषिताङ्ग-
स्तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जो अपने श्रीविग्रहको हिम और भस्मसे विभूषित करके शङ्ख, चन्द्रमा और कुन्दके समान श्वेत वर्णवाले वृषभश्रेष्ठ नन्दीपर सवार होकर गिरिराजकिशोरी उमाके साथ आकाशमें विचरते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

शान्तं मुनिं यमनियोगपरायणं तै-
र्भीमैर्यमस्य पुरुषैः प्रतिनीयमानम् ।
भक्त्या नतं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

यमराजकी आज्ञाके पालनमें लगे रहनेपर भी जिन्हें वे भयंकर यमदूत पकड़कर लिये जा रहे थे तथा जो भक्तिसे नम्र होकर स्तुति कर रहे थे, उन शान्त मुनिकी जिन्होंने बलपूर्वक यमदूतोंसे रक्षा की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यः सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देव-
स्तत् पञ्चमं प्रसभमेव पुरः सुराणाम् ।
ब्राह्मं शिरस्तरुणपद्मनिभं चकर्त
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन्होंने समस्त देवताओंके सामने ही ब्रह्माजीके उस पाँचवें मस्तकको, जो नवीन कमलके समान शोभा पा रहा था, अपने बायें हाथके नखसे बलपूर्वक काट डाला था, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या
स्तुत्वा च वाग्भिरमलाभिरतन्द्रिताभिः ।
दीप्तैस्तमांसि नुदते स्वकरैर्विवस्वां-
स्तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन वरदायक भगवान्के चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तथा आलस्यरहित निर्मल वाणीके द्वारा जिनकी स्तुति करके सूर्यदेव अपनी उद्दीप्त किरणोंसे जगत्का अन्धकार दूर करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

शिव-शरणागति

त्वं वेदान्तैर्विविधमहिमा गीयसे विश्वनेत-
स्त्वं विप्राद्यैर्वरद निखिलैरिज्यसे कर्मभिः स्वैः ।
त्वं दृष्टानुश्रविकविषयानन्दमात्रावितृष्णै-
रन्तर्ग्रन्थिप्रविलयकृते चिन्त्यसे योगिवृन्दैः ॥

'हे विश्वनायक ! उपनिषदोंमें आपकी ही अनन्त महिमाका बखान है, हे वरदायक ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने वर्णानुकूल आचरणके द्वारा आपका ही पूजन करते हैं, ऐहलौकिक एवं पारलौकिक—दोनों प्रकारके सुखोंसे जिन्हें वैराग्य हो गया है, ऐसे योगिजन भी अविद्यारूपी हृदयग्रन्थिके भेदनके लिये सदा आपका ही चिन्तन करते हैं।'

ध्यायन्तस्त्वां कतिचन भवं दुस्तरं निस्तरन्ति
त्वत्पादाब्जं विधिवदितरे नित्यमाराधयन्तः ।
अन्ये वर्णाश्रमविधिरताः पालयन्तस्त्वदाज्ञां
सर्वं हित्वा भवजलनिधावेष मज्जामि घोरे ॥

'कुछ लोग आपके विज्ञानानन्दघन परब्रह्मस्वरूपका ध्यान करके इस दुस्तर भवार्णवको पार करते हैं, कुछ लोग आपके सुरदुर्लभ चरणारविन्दका पूजन कर अपने मनोरथको सिद्ध करते हैं और कुछ लोग वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करते हुए शास्त्ररूप आपकी आज्ञाका पालन करते हैं, किंतु मैं सब कुछ छोड़कर इस घोर संसार-सागरमें गोते खा रहा हूँ—मुझसे न तो आपका ध्यान होता है, न आपका पूजन बन पड़ता है और न शास्त्र-मर्यादानुकूल आचरण ही करते बनता है। मुझसे अधिक अभागा संसारमे कौन होगा ?'

उत्पद्यापि स्मरहर महत्युत्तमानां कुलेऽस्मि-
न्नास्वाद्य त्वन्महिमजलधेरप्यहं शीकराणून् ।
त्वत्पादार्चाविमुखहृदयश्चापलादिन्द्रियाणां
व्यग्रस्तुच्छेष्वहह जननं व्यर्थयाम्येष पापः ॥

'हे स्मररिपो ! मैंने उत्तम ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया और आपकी महिमारूपी अपार सागरके कतिपय बिन्दुओंका आस्वादन भी किया, किंतु फिर भी मैं पापात्मा आपकी पादसेवासे मुँह मोड़कर इन्द्रियोंकी चपलताके कारण क्षुद्र सांसारिक विषयोंके पीछे पागल हुआ घूमता हूँ और इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको व्यर्थ गवाँ रहा हूँ, हीरेको काँचके मोल बेच रहा हूँ। मुझसे अधिक अज्ञानी और कौन होगा ?'

अर्कद्रोणप्रभृतिकुसुमैरर्चनं ते विधेयं
प्राप्यं तेन स्मरहर फलं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ।
एतज्जानन्नपि शिव शिव व्यर्थयन् कालमात्म-
न्नात्मद्रोही करणविवशो भूयसाधः पतामि ॥

'हे स्मरारे ! आपके पूजनके लिये न तो पैसा चाहिये और न विशेष सामग्रीकी ही अपेक्षा है। आकको डोंडियों और धतूरेके पुष्पोंसे ही आप प्रसन्न हो जाते हैं, कौड़ियोंमें काम होता है, किंतु आपका पूजन इतना सस्ता होनेपर भी आप उसके बदलेमें क्या देते है ? आक और धतूरेके एवजमें आप देते हैं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मी, जो देवताओंको भी दुर्लभ है। कितना सस्ता सौदा है ? इसीलिये तो आप 'आशुतोष' एवं 'औढरदानी' की उपाधिसे विभूषित हैं। किंतु शिव ! शिव ! मैं ऐसा आत्मद्रोही हूँ कि यह सब कुछ जानता हुआ भी अपना जीवन व्यर्थ ही नहीं खो रहा हूँ, अपितु इन्द्रियोंके वशीभूत होकर बार-बार पापोंके गड्ढेमें गिरता हूँ।'

नाहं रोद्धुं करणनिचयं दुर्नयं पारयामि
स्मारं स्मारं जनिपथरुजं नाथ सीदामि भीत्या ।
किं वा कुर्वे किमुचितमिह क्वाद्य गच्छामि हन्त
त्वत्पादाब्जप्रपतनमृते नैव पश्याम्युपायम् ॥

'हे नाथ ! मेरी इन्द्रियाँ बड़ी दुर्दमनीय हो गयी हैं, ये मेरे काबूसे बाहर हो चली हैं। इन्हें नियन्त्रणमें रखना मेरे बसका नहीं है। इधर इनको स्वतन्त्र छोड़ देनेसे मेरी जो दुर्दशा होगी, उसे सोचकर एकबारगी रूह काँप उठती है। क्योंकि इनकी लगाम ढीली कर देनेसे संसारमें बार-बार जन्म लेना तो निश्चित ही है और गर्भवासमें जो नरक-यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं, उनका ध्यान आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसी दशामें मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कुछ समझमें नहीं आता। इस दुविधामें पड़कर मैं किंकर्तव्यविमूढ-सा हो गया हूँ। अब तो आपके भक्त-भयहारी चरणारविन्दोंका आश्रय लेनेके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं सूझता। अतः कृपया आप मुझे उन्हीं चरणोंकी शरणमें ले लीजिये।'

उल्लङ्घ्याज्ञामुडुपतिकलाचूड ते विश्ववन्द्य

त्यक्ताचारः पशुवदधुना त्यक्तलज्जश्चरामि।
एवं नानाविधभवततिप्राप्तदीर्घापराधः
क्लेशाम्भोधिं कथमहमृते त्वत्प्रसादात्तरेयम्॥

'हे शशिशेखर! हे जगद्वन्द्य प्रभो! मैं आपकी आज्ञाकी अवहेलना करता हुआ सदाचारके मार्गका परित्याग कर पशुकी भाँति निर्लज्ज हुआ घूमता हूँ। जन्म-जन्मान्तरोंमें मैंने इतने बड़े पाप किये हैं कि करोड़ जन्मोंमें भी उनसे छुटकारा सम्भव नहीं है। अब तो इस दुःखार्णवके पार जानेका यदि कोई उपाय है तो आपकी कृपाका अवलम्बन ही है। अतः इस दीनकी ओर भी तनिक कृपाकी कोर हो जाय।'

क्षाम्यस्येव त्वमिह करुणासागरः कृत्स्नमागः
संसारोत्थं गिरिश सभयप्रार्थनादैन्यमात्रात्।
यद्यप्येवं प्रतिकलमहं व्यक्तमागः सहस्रं
कुर्वन्मूकः कथमिव तथा निस्त्रपः प्रार्थयेयम्॥

'हे गिरिश! आप ऐसे दयासागर हैं कि जो मनुष्य संसाररूपी घोर दावानलसे भयभीत होकर दीनतापूर्वक आपसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगता है, उसके जन्म-जन्मान्तरके पापोंको आप अपनी कृपासे नष्ट कर देते हैं और उसको कल्मषहीन एवं मोक्षपदका अधिकारी बना देते हैं, किंतु मैं तो ऐसा निर्लज्ज हूँ कि अपने पूर्वकृत अपराधोंके लिये क्षमा माँगना तो दूर रहा, उलटा प्रतिपल नये-नये पाप बटोर रहा हूँ और इस प्रकार मेरे पापोंका बोझ क्रमशः वृद्धिंगत हो रहा है, उसका क्षय होनेकी तो बात ही क्या है? ऐसी हालतमें मैं अपने पापोंके लिये आपसे क्षमा ही किस मुँहसे माँगूँ? अब तो आप स्वयं ही अपनी स्वाभाविक दयालुतासे मेरे पापोंको क्षमा कर दें तभी निस्तार हो सकता है, अन्यथा नहीं।'

ध्यातो यत्नाद्विजितकरणैर्योगिभिर्यो विमृग्य-
स्तेभ्यः प्राणोत्क्रमणसमये संनिधायात्मनैव।
तद्व्याचष्टे भवभयहरं तारकं ब्रह्म देव-
स्तं सेवेऽहं गिरिश सततं ब्रह्मविद्यागुरुं त्वाम्॥

'जितेन्द्रिय योगिगण ध्यानमार्गसे आपको प्राप्त करनेका यत्न करते हैं, किंतु फिर भी वे आपको नहीं देख पाते। अन्त समयमें जब उनके प्राण-पखेरू उड़नेको होते हैं, तब आप बिना बुलाये अपने-आप ही उनके निकट उपस्थित हो जाते हैं और उनके कानमें मोक्षदायक तारक-मन्त्र फूँककर उन्हें भवबन्धनसे सदाके लिये मुक्त कर देते हैं। ऐसे ब्रह्मविद्याके उपदेशक आपकी मैं शरण लेता हूँ।'

भक्ताग्र्याणां कथमपि परैर्योऽचिकित्स्याममर्त्यैः
संसाराख्यां शमयति रुजं स्वात्मबोधौषधेन।
तं सर्वाधीश्वर भवमहादीर्घतीव्रामयेन
क्लिष्टोऽहं त्वां वरद शरणं यामि संसारवैद्यम्॥

'हे सर्वेश्वर! वरदायक शम्भो! आप आत्मबोधरूपी औषधके द्वारा अपने भक्तवरोंके भवरोगको हर लेते हैं। अन्य देवताओंकी सामर्थ्य नहीं कि वे इस दुःसाध्य रोगकी चिकित्सा कर सकें। इस भवरूपी महाभयंकर एवं जन्म-जन्मान्तरसे पीछे लगे हुए रोगसे पीड़ित होकर मैं आप संसार-वैद्यकी शरण आया हूँ। कृपया ऐसा कीजिये कि जिससे फिर इस संसार-रोगका मुँह न देखना पड़े।'

दासोऽस्मीति त्वयि शिव मया नित्यसिद्धं निवेद्यं
जानास्येतत् त्वमपि यदहं निर्गतिः सम्भ्रमामि।
नास्त्येवान्यन्मम किमपि ते नाथ विज्ञापनीयं
कारुण्यान्मे शरणवरणं दीनवृत्तेर्गृहाण॥

'हे शिव! मैं आपका दास हूँ, यही मुझे आपके चरणोंमें नित्य निवेदन करना है। आप भी इस बातको जानते ही हैं कि मैं असहाय होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। बस, आपसे और कुछ नहीं माँगता, केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप मुझ दीनको अपनी अकारण करुणाका कणमात्र प्रदान कर सदाके लिये अपनी शरणमें ले लें।'

ब्रह्मोपेन्द्रप्रभृतिरपि चेत् स्वेप्सितप्रार्थनाय
स्वामिन्नग्रे चिरमवसरस्तोषयद्भिः प्रतीक्ष्यः।
द्रागेव त्वां यदिह शरणं प्रार्थये कीटकल्प-
स्तद्विश्वाधीश्वर तव कृपामेव विश्वस्य दीने॥

'हे स्वामिन्! हे विश्वेश्वर! ब्रह्मा और विष्णु-प्रभृति देवतातक जब अपनी किसी प्रार्थनाको लेकर आपके समीप उपस्थित होते हैं, तब उन्हें चिरकालतक आपके दर्शनके लिये अवसर ढूँढ़ना पड़ता है। किंतु मैं एक अधम कीड़ेके समान होते हुए भी आपसे अपनी शरणमें ले लेनेके लिये इस तरह तकाजा कर रहा हूँ जैसे कोई ऋणदाता अपने ऋणीसे कर्ज दिया हुआ रुपया लौटानेका तकाजा करता हो। आपकी मुझ-जैसे असहाय दीनोंपर

ऐसी अनुचित धृष्टता हो रही है। आशा है, आप मेरी दीन अवस्थाको ध्यानमें रखते हुए मेरे इस अपराधको अवश्य क्षमा करेंगे और मुझे अविलम्ब अपनी शरणमें ले लेंगे ताकि मुझे आपको बारम्बार तंग न करना पड़े। जबतक आप मुझे अपना न लेंगे, तबतक मैं आपको हैरान करता ही रहूँगा। आप कहाँतक मौन साधन किये बैठे रहेंगे? एक-न-एक दिन मेरी बाँह अवश्य पकड़नी होगी। इसलिये अच्छा है कि तुरंत ही यह काम कर डालें, जिससे दोनोंको ही तंग न होना पड़े।'

क्षन्तव्यं वा निखिलमपि मे भूतभाविव्यलीकं
दुर्व्यापारप्रवणमथवा शिक्षणीयं मनो मे।
न त्वेवार्त्या निरतिशयया त्वत्पदाब्जे प्रपन्नं
त्वद्विन्यस्ताखिलभरममुं युक्तमीश प्रहातुम्॥

'हे स्वामिन्! या तो आप मेरे भूत एवं भविष्यके सभी अपराधोंको क्षमा कर दीजिये या इस कुमार्गगामी दुष्ट मनको ठीक रास्तेपर लाइये। दोनोंमेंसे एक काम तो करना ही होगा, नहीं तो काम कैसे चलेगा? यह तो हो नहीं सकता कि आप इस घोर दुःखमें मेरा हाथ छोड़ दें, क्योंकि यह कार्य आप-जैसे दयालु स्वामीके लिये उचित नहीं होगा। जिसे आपके चरणोंका ही एकमात्र अवलम्ब है और जिसने अपना सारा भार आपके ऊपर डाल दिया है, उसे आप कभी धोखा नहीं देंगे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।'

सर्वज्ञस्त्वं निरवधिकृपासागरः पूर्णशक्तिः
कस्मादेनं न गणयसि मामापदब्धौ निमग्नम्।
एकं पापात्मकमपि रुजा सर्वतोऽत्यन्तदीनं
जन्तुं यद्युद्धरसि शिव कस्तावतातिप्रसङ्गः॥

'हे शंकर! आप सर्वज्ञ हैं, दयाके अपार समुद्र हैं तथा पूर्ण सामर्थ्यवान् हैं, फिर भी न जाने क्यों मुझे आप इस दुःखसागरसे नहीं उबारते? माना कि मैं पापात्मा हूँ, किंतु साथ ही दुःखसे अत्यन्त कातर भी हूँ। ऐसी दशामें यदि आप मुझे उबार लें तो इससे आपकी न्यायपरायणतामें कौन-सी बाधा आती है? सभी नियमोंमें अपवाद भी होते हैं। इसलिये यदि मुझे आप अपवादरूप मानकर भी अपनी दयाकी भिक्षा दे दें तो इसमें क्या आपत्ति है? जैसे भी हो, इस बार तो दया करनी ही होगी।'

कीटा नागास्तरव इति वा किं न सन्ति स्थलेषु
त्वत्पादाम्भोरुहपरिमलोद्वाहिमन्दानिलेषु।
तेष्वेकं वा सृज पुनरिमं नाथ दीनार्तिहारि-
न्नातोपं ते मृड भवमहाङ्गारनद्यां लुठन्तम्॥

'हे नाथ! जिन-जिन स्थलोंमें आपके चरण-कमल जाते हैं, उन-उन स्थलोंमें कीड़े-मकोड़े, साँप-बिच्छू अथवा झाड़-झंखाड़ भी तो अवश्य होंगे। यदि और कुछ नहीं, तो उन्हींमेंसे कोई शरीर मुझे दे दें, जिससे उन चरण-कमलोंके सुमधुर गन्धसे सम्पृक्त सुशीतल वायुका सुखकर स्पर्श पाकर मैं अपने शरीर और आत्मा—दोनोंकी तपनको बुझा सकूँ और इस सुतप्त अङ्गारोंसे पूर्ण भवनदीसे छुटकारा पाऊँ। उस योनिमें मुझे आप जबतक आपकी तबीयत चाहे, रख सकते हैं। उसमें मुझे कोई आपत्ति न होगी, बल्कि जितने अधिक समयतक आप मुझे उस शरीरमें रखेंगे, उतना ही अधिक आनन्द मुझे होगा और मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा। क्या मेरी इस प्रार्थनाको भी आप स्वीकार नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे!'

अन्तर्बाष्पाकुलितनयनानन्तरङ्गानपश्य-
न्नग्रे घोषं रुदितबहुलं कातराणामशृण्वन्।
अप्युत्क्रान्तिश्रममगणयन्नन्तकाले कपर्दि-
न्नङ्घ्रिद्वन्द्वे तव निविशतामन्तरात्मन् ममात्मा॥

'हे कपर्दिन्! हे मेरे अन्तरात्मा! अपने अन्तकालका चित्र इस समय मेरी इन आँखोंके सामने आ रहा है। मैं देख रहा हूँ कि मेरे आत्मीय जन डबडबाये हुए कातर नेत्रोंसे मानो मेरी ओर निहार रहे हैं, चारों ओर स्त्रियाँ और बच्चे बिलला रहे हैं और कोई-कोई उनमेंसे डाढ़ मारकर रो रहे हैं। उस हृदयविदारक दृश्यकी कल्पना करनेपर शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सोचता हूँ, उस समय मेरी खुदकी क्या दशा होगी। बस, उस समय तो ऐसी कृपा हो कि कुटुम्बियोंके बाष्पाकुलित नेत्र तो दिखायी न पड़ें, स्त्रियों और बच्चोंकी क्रन्दन-ध्वनि सुनायी न दे, प्राणोत्सर्गकी व्यथासे विचलित न होऊँ और चित्त आपके चरणयुगलके चिन्तनमें लीन हो जाय! आप यदि चाहें तो ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं, आपके लिये कुछ भी दुःसाध्य नहीं है।'

स्वप्ने वापि स्वरसविकसद्दिव्यपङ्केरुहाभं
पश्येयं तत्तव पशुपते पादयुग्मं कदाचित्।

क्वाहं पापः क्व तव चरणालोकभाग्यं तथापि
प्रत्याशां मे घटयति पुनर्विश्रुता तेऽनुकम्पा ॥

'हे पशुपते ! क्या आपके खिले हुए पङ्कजके समान चरणयुगलको स्वप्नमें भी देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा ? जब अपने आचरणोंकी ओर देखता हूँ, तब तो मैं निराशासे घिर जाता हूँ, किंतु आपकी अपार दयाका स्मरण कर मनमें फिरसे आशाका संचार होने लगता है। उस समय मैं अपने मनको आश्वासन देता हूँ और कहता हूँ, तू नीच है तो क्या हुआ ? तेरा स्वामी तो परम कृपालु है। वह तुझपर अवश्य कृपा करेगा, निश्चिन्त रह।'

भिक्षावृत्तिं चर पितृवने भूतसंघैर्भ्रमेदं
विज्ञातं ते चरितमखिलं विप्रलिप्सोः कपालिन्।
आवैकुण्ठद्रुहिणमखिलप्राणिनामीश्वरस्त्वं
नाथ स्वप्नेऽप्यहमिह न ते पादपद्मं त्यजामि ॥

'हे कपालिन्! हे नाथ ! आप चाहे भीख माँगनेका नाट्य करें अथवा भूतोंके दलके साथ श्मशानोंमें गश्त लगावें, कुछ भी करें, आपका ऐश्वर्य मुझसे छिपा नहीं रह सकता। मैं जान गया हूँ कि आप ब्रह्मा, विष्णुपर्यन्त समस्त चराचर जगत्के स्वामी हैं, इसलिये आप मेरी कितनी ही प्रवञ्चना करें, मैं स्वप्नमें भी आपके सुरमुनिदुर्लभ चरणकमलका परित्याग नहीं कर सकता, अब तो आपका ही होकर रहूँगा।'

न किंचिन्मे नेतः समभिलषणीयं त्रिभुवने
सुखं वा दुःखं वा मम भवतु यद्भावि भगवन्।
समुन्मीलत्पाथोरुहकुहरसौभाग्यमुषि ते
पदद्वन्द्वे चेतः परिचयमुपेयान्मम सदा ॥

'हे नाथ ! हे भगवन्! मुझे त्रिभुवनकी किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं है और न मुझे सुख-दुःखकी ही परवा है, जो कुछ प्रारब्धमें बदा है सो होता रहेगा। बस, मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि आपके खिले हुए पङ्कजके समान चरणयुगलमें मेरा चित्तरूपी चंचरीक सदा चिहुँटा रहे, कभी उससे पृथक् न हो।'

कर्मज्ञानप्रचयमखिलं दुष्करं नाथ पश्यन्
पापासक्तं हृदयमपि चापारयन् संनिरोद्धुम्।
संसाराख्ये पुरहर महत्यन्धकूपे विषीदन्
हस्तालम्बप्रपतनमिदं प्राप्य ते निर्भयोऽस्मि ॥

'धन्य प्रभो ! धन्य भक्तवत्सल ! आखिर आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ही ली और मुझे अपने वरद हस्तका अवलम्ब दे ही दिया। अब क्या है ? अब तो बाजी मार ली ! अब मुझे किस बातका डर है ? अबतक मुझे यह डर था कि न तो मैं ज्ञानमार्गका ही अधिकारी हूँ और न कर्ममार्गका ही अनुसरण कर सकता हूँ, मुझे दोनो ही पहाड़-से मालूम होते हैं। इधर मेरा मन पापोंमें गर्क हो रहा है, उसे पापकी ओर जानेसे मैं किसी प्रकार रोक ही नहीं सकता। वह इतना बेकाबू हो गया है। ऐसी दशामें इस संसाररूपी घोर अन्धकूपसे मेरा निस्तार कैसे होगा, यही चिन्ता मुझे बारंबार सताती थी। किंतु अब आपका सहारा पाकर मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। अब मेरा कोई कुछ भी नहीं कर सकता।'

(प्रसिद्ध शिवभक्त श्रीअप्पय्य दीक्षित)

उपमन्युकृत शिव-स्तुति

पशुपतिवचनाद् भवामि सद्यः कृमिरथवा तरुरप्यनेकशाखः।
अपशुपतिवरप्रसादजा मे त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥

'मैं भगवान् पशुपतिके कहनेसे तत्काल प्रसन्नतापूर्वक कीट अथवा अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्ष भी हो सकता हूँ, परंतु भगवान् शिवसे भिन्न दूसरे किसीके वर-प्रसादसे मुझे त्रिभुवनका राज्यवैभव प्राप्त हो रहा हो तो वह भी अभीष्ट नहीं है।'

जन्म श्वपाकमध्येऽपि मेऽस्तु हरचरणवन्दनरतस्य।
मा वानीश्वरभक्तो भवानि भवनेऽपि शक्रस्य ॥

'यदि मुझे भगवान् शंकरके चरणारविन्दोंकी वन्दनामें तत्पर रहनेका अवसर मिले तो मेरा जन्म चाण्डालोंमें भी हो जाय तो वह मुझे सहर्ष स्वीकार है। परंतु भगवान् शिवकी अनन्यभक्तिसे रहित होकर मैं इन्द्रके भवनमें भी स्थान पाना नहीं चाहता।'

वाय्वम्बुभुजोऽपि सतो नरस्य दुःखक्षयः कुतस्तस्य।
भवति हि सुरासुरगुरौ यस्य न विश्वेश्वरे भक्तिः ॥

'कोई जल या हवा पीकर ही रहनेवाला क्यों न हो, जिसकी सुरासुरगुरु भगवान् विश्वनाथमें भक्ति न हो, उसके दुःखोंका नाश कैसे हो सकता है ?'

अलमन्याभिस्तेषां

येषां न क्षणमपि रुचितो हरचरणस्मरणविच्छेदः ॥

'जिन्हें क्षणभरके लिये भी भगवान् शिवके चरणारविन्दोंके स्मरणका वियोग अच्छा नहीं लगता, उन पुरुषोंके लिये अन्यान्य धर्मोंसे युक्त दूसरी-दूसरी सारी कथाएँ व्यर्थ हैं।'

हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य।
संसारभयं न भवति हरभक्तिरसायनं पीत्वा ॥

'कुटिल कलिकालको पाकर सभी पुरुषोंको अपना मन भगवान् शंकरके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें लगा देना चाहिये। शिव-भक्तिरूपी रसायनके पी लेनेपर संसाररूपी रोगका भय नहीं रह जाता है।'

दिवसं दिवसार्धं वा मुहूर्तं वा क्षणं लवम्।
न ह्यलब्धप्रसादस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥

'जिसपर भगवान् शिवकी कृपा नहीं है, उस मनुष्यकी एक दिन, आधे दिन, एक मुहूर्त, एक क्षण या एक लवके लिये भी भगवान् शंकरमें भक्ति नहीं होती।'

अपि कीटः पतङ्गो वा भवेयं शंकराज्ञया।
न तु शक्र त्वया दत्तं त्रैलोक्यमपि कामये ॥
श्वापि महेश्वरवचनाद् भवामि स हि नः परः कामः।
त्रिदशगणराज्यमपि खलु नेच्छाम्यमहेश्वराज्ञप्तम् ॥

'शक्र! मैं भगवान् शंकरकी आज्ञासे कीट या पतंग भी हो सकता हूँ, परंतु तुम्हारा दिया हुआ त्रिलोकोंका राज्य भी नहीं लेना चाहता। महेश्वरके कहनेसे यदि मैं कुत्ता भी हो जाऊँ तो उसे मैं सर्वोत्तम मनोरथकी पूर्ति समझूँगा, परंतु महादेवजीके सिवा दूसरे किसीसे प्राप्त हुए देवताओंके राज्यको लेनेकी भी मुझे इच्छा नहीं है।'

न नाकपृष्ठं न च देवराज्यं न ब्रह्मलोकं न च निष्कलत्वम्।
न सर्वकामानखिलान् वृणोमि हरस्य दासत्वमहं वृणोमि ॥

'न तो मैं स्वर्गलोक चाहता हूँ, न देवताओंका राज्य पानेकी अभिलाषा रखता हूँ। न ब्रह्मलोककी इच्छा करता हूँ और न निर्गुण ब्रह्मका सायुज्य ही प्राप्त करना चाहता हूँ। भूमण्डलकी समस्त कामनाओंको भी पानेकी मेरी इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भगवान् शिवकी दासताका ही वरण करता हूँ।'

यावच्छशाङ्कधवलामलबद्धमौलि-
र्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान् ममेशः।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातै-
र्दुःखानि देहविहितानि समुद्वहामि ॥

'जिनके मस्तकपर अर्धचन्द्रमय उज्ज्वल एवं निर्मल मुकुट बँधा हुआ है, वे मेरे स्वामी भगवान् पशुपति जबतक प्रसन्न नहीं होते है, तबतक मैं जरा-मृत्यु और जन्मके सैकड़ों आघातोंसे प्राप्त होनेवाले दैहिक दुःखोंका भार ढोता रहूँगा।'

दिवसकरशशाङ्कवह्निदीप्तं
त्रिभुवनसारमसारमाद्यमेकम्।
अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं
जगति पुमानिह को लभते शान्तिम् ॥

'जो अपने नेत्रभूत सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी प्रभासे उद्भासित होते हैं, त्रिभुवनके साररूप हैं, जिनसे बढ़कर सार-तत्त्व दूसरा नहीं है, जो जगत्के आदिकारण, अद्वितीय तथा अजर-अमर हैं,उन भगवान् रुद्रको भक्तिभावसे प्रसन्न किये बिना कौन पुरुष इस संसारमें शान्ति पा सकता है।'

यदि नाम जन्म भूयो भवति मदीयैः पुनर्दोषैः।
तस्मिंस्तस्मिञ्जन्मनि भवे भवेन्मेऽक्षया भक्तिः ॥

'यदि मेरे दोषोंसे मुझे बारंबार इस जगत्में जन्म लेना पड़े तो मेरी यही इच्छा है कि उस-उस प्रत्येक जन्ममें भगवान् शिवमें मेरी अक्षय भक्ति हो।'

—(महाभारत, अनुशासनपर्व १४। १८०—१९१)

भगवान् सदाशिव सदा रक्षा करें

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ॥

जिनकी गोदमें हिमाचलसुता पार्वतीजी, मस्तकपर गङ्गाजी, ललाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा, कण्ठमें हलाहल विष और वक्षःस्थलपर सर्पराज शेषजी सुशोभित हैं, वे भस्मसे विभूषित, देवताओंमें श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता (या भक्तोंके पापनाशक), सर्वव्यापक, कल्याणरूप, चन्द्रमाके समान शुभ्रवर्ण श्रीशंकरजी सदा मेरी रक्षा करें।

शंकरकी शंकर-स्तुति

गलन्ती शम्भो त्वच्चरितसरितः किल्बिषरजो
दलन्ती धीकुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम्।
दिशन्ती संसारभ्रमणपरितापोपशमनं
वसन्ती मच्चेतोहृद्भुवि शिवानन्दलहरी ॥ १ ॥

'हे शम्भो! यह 'शिवानन्दलहरी' (शिवस्तुतिरूप आनन्दकी लहर) आपके अगाध चरितरूपी सरितासे निकलकर (अपने भावरूप निर्मल जलसे अवगाहन करनेवालोंके) पापपङ्कका प्रक्षालन करती हुई तथा भवाटवीभ्रमजनित क्लान्तिको शान्त करती हुई मेरी बुद्धिरूपीकुल्या (नहर) मेंसे होती हुई, मेरे हृदयरूपी ह्रदमे प्रवेशकर सदाके लिये उसीमें स्थिर हो जाय।'

प्रभुस्त्वं दीनानां खलु परमबन्धुः पशुपते
प्रमुख्योऽहं तेषामपि किमुत बन्धुत्वमनयोः।
त्वयैव क्षन्तव्याः शिव मदपराधाश्च सकलाः
प्रयत्नात् कर्तव्यं मदवनमियं बन्धुसरणिः ॥ २ ॥

'हे पशुपते! आप दीनानाथ एवं दीनबन्धु हैं और मैं दीनोंका सरदार हूँ। क्या ही अच्छा जोड़ बैठा है। बन्धुका कर्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धीको सर्वनाशसे बचावे। फिर क्या आप मेरे सारे अपराधोंको क्षमाकर मुझे इस घोर भवसागरसे नहीं उबारेंगे? अवश्य उबारेंगे, अन्यथा आप अपने कर्तव्यसे च्युत होंगे और आपके 'दीनबन्धु' नामपर बट्टा लगेगा।'

उपेक्षा नो चेत् किं न हरसि भवद्ध्यानविमुखां
दुराशाभूयिष्ठां विधिलिपिमशक्तो यदि भवान्।
शिरस्तद्वैधात्रं ननु खलु सुवृत्तं पशुपते
कथं वा निर्यत्नं करनखमुखेनैव लुलितम् ॥ ३ ॥

'आप मेरा शीघ्र उद्धार नहीं करते, इससे तो यही जाहिर होता है कि आप मेरी उपेक्षा करते हैं, मेरी फरियादको सुनकर आपके कानपर जूँ भी नहीं रेंगती, नहीं तो भला अबतक मेरी यह हालत रहती? यदि आप कहें कि-भाई! हम क्या करें, विधाताने तुम्हारे करममें यही लिखा है कि तुम हमारे ध्यानसे विमुख रहकर दुराशाओंसे पूर्ण जीवन व्यतीत करो, तो मैं आपसे यह पूछता हूँ कि क्या आप विधाताके लेखको नहीं मेट सकते, उनके लिखे हुएपर कलम नहीं चला सकते? आप तो, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं, ब्रह्मा-विष्णु सब कठपुतलीकी भाँति आपके इशारेपर नाचते हैं। फिर क्या आप मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकते? यदि आप कहें कि ब्रह्माजीके सामने मेरी पेश नहीं आती, तो मैं आपसे पूछता हूँ, क्या आप उस दिनको भूल गये, जब आपने उनका गोल-गोल पाँचवाँ मुख जो बहुत बढ़-बढ़कर बातें कर रहा था, बात-की-बातमें अपने नखके अग्रभागसे ही कलम कर दिया था और इस प्रकार बेचारे ब्रह्माजी, जो आपकी बराबरी करने चले थे, चतुरानन ही रह गये? बस, यह सब बहानेबाजी रहने दीजिये, मैं इस प्रकार भुलावेमें नहीं आनेका। अब तो जिस तरहसे भी हो आपको मेरा उद्धार करना ही होगा। इस बार तो मैं आपसे बाजी लेकर ही मानूँगा, यों सहजहीमें नहीं छोड़नेका।'

करोमि त्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो
विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति।
पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि वहन् पक्षिमृगता-
मदृष्ट्वा तत्खेदं कथमिह सहे शंकर विभो ॥ ४ ॥

'हे प्रभो! मैं अपनी पूजाका फल आपसे यही चाहता हूँ कि आप मुझे अपने चरणोंसे कभी अलग न करें। आपके चरणोंसे दूर रहकर मैं और तो क्या, ब्रह्मा और विष्णुका पद भी नहीं चाहता। क्योंकि ब्रह्मा और विष्णुको भी आपको ढूँढ़नेके लिये क्रमशः हंस और वराहका रूप धारण करना पड़ा, किंतु फिर भी वे आपका पता न पा सके। वह ब्रह्मा और विष्णुका पद किस कामका जिसमें रहकर आपसे विछोह हो। बाज आया ऐसे बड़प्पनसे, मुझे वह नहीं चाहिये। मैं तो छोटे-से-छोटा होकर आपके चरणोंमें पड़ा रहना चाहता हूँ, कृपया मुझे वहीं स्थान दीजिये।'

करस्थे हेमाद्रौ गिरिश निकटस्थे धनपतौ
गृहस्थे स्वर्भूजाममरसुरभिचिन्तामणिगणे।
शिरःस्थे शीतांशौ चरणयुगलस्थेऽखिलशुभे
कमर्थं दास्येऽहं भवतु भवदर्थं मम मनः ॥ ५ ॥

'हे गिरिश! स्वर्णगिरि (सुमेरु) आपके समीप ही है, करतलगत ही है। मनमें आयी कि सोना-ही-सोना! ऐसी दशामें आपको सोनेकी दरकार तो हो ही नहीं सकती और फिर

यदि कोई सोना आपकी नजर करना ही चाहे तो बेचारा कहाँतक देगा ? जगत्‌भरका सोना यदि इकट्ठा कर लिया जाय तो भी वह सुमेरुगिरिके एक पासंगमें भी नहीं आ सकता। इधर देवताओंके खजांची कुबेरजी, जो साक्षात् धनपति हैं, आपके बगलमें ही—अलकापुरीमें रहते हैं, जब चाहा उनसे मँगवा लिया। जब धनपति आपके पड़ोसी हैं तब आपको धनकी भी क्या कमी रह सकती है ?कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणियोंका ढेर आपके घरमें ही मौजूद है, क्योंकि ऋद्धि-सिद्धि आपकी पुत्र-वधू हैं। वे जब चाहें एक क्षणमें दुनियाभरका सामान लाकर जुटा सकती हैं, आपके इशारेभरकी देरी है। ऐसी दशामें आपको किसी भी वस्तुका अभाव नहीं हो सकता जिसकी मैं पूर्ति कर सकूँ। चन्द्रमा जो सुधाकर (अमृतका खजाना) है सदा आपके मस्तकपर ही रहता है और आपके चरणयुगल समस्त कल्याणोंके धाम हैं। फिर ऐसी कौन-सी वस्तु हो सकती है जो मैं आपकी भेंट करूँ ? और फिर मेरे पास तो मनके सिवा और कोई वस्तु है भी नहीं। अतः आप कृपाकर इसीको स्वीकार कीजिये। मैं अपनेको इसीसे कृतार्थ समझूँगा।'

सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति संकीर्तने
सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासाङ्गत्यसम्भाषणे।
सालोक्यञ्च चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन् कृतार्थोऽस्म्यहम्॥

'हे भवानीपते ! हे स्वामिन् ! मुझे सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सायुज्य—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंमेंसे एक भी नहीं चाहिये, क्योंकि मुझे ये चारों ही आपकी कृपासे प्राप्त हैं, जब प्रेमपूर्वक मैं आपकी षोडशोपचारसे पूजा करता हूँ, उस समय मेरी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही तदाकार हो जाती हैं और मुझे अनायास ही सारूप्य-सुखका अनुभव होने लग जाता है। शास्त्रोंमें भी कहा है—'देवो भूत्वा यजेद्देवम्।' इसी प्रकार जब मैं मस्त होकर आपका नामसंकीर्तन करने लगता हूँ, उस समय मुझे सहजहीमें आपके सामीप्यका सुख मिल जाता है, क्योंकि नाम भी तो आपका ही स्वरूप है। शास्त्रोंने आपमें और आपके नाममें कोई भेद नहीं माना है। भगवान् विष्णुने तो यहाँतक कह दिया—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

शिव-भक्तोंकी मण्डलीमें बैठकर आपकी चर्चा और आपका गुणानुवाद करनेमें मुझे सालोक्यमुक्तिका आनन्द मिलता है,क्योंकि उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं शिवलोकमें ही बैठा हूँ। और जिस समय मैं आपके विराट् रूपका ध्यान करता हूँ,उस समय मैं अपनेको आपसे अलग नहीं पाता, आपके ही शरीरमें समाया हुआ देखता हूँ। उस समय मैं साक्षात् सायुज्यसुखका अनुभव करने लगता हूँ। इस तरह जब मैं चारों प्रकारकी मुक्तियोंका सुख एक ही शरीरसे लूट रहा हूँ तब मैं उनमेंसे किसी एक प्रकारकी मुक्तिको लेकर क्या करूँ ? तात्पर्य यह कि आपकी पूजा-अर्चा, जप-ध्यान, कीर्तन एवं गुणानुवादमें मुझे जो अलौकिक सुख मिलता है, उसकी तुलना मुक्ति-सुखसे भी नहीं हो सकती, सांसारिक सुखोंकी तो बात ही क्या है ? आपके सच्चे भक्त आपकी भक्तिको छोड़कर मुक्ति भी नहीं चाहते— *'मुक्ति निरादर भगति लुभाने।'* भक्तिकी ऐसी ही महिमा है। बस, ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे आपकी भक्तिको छोड़कर मुक्तिका कभी ध्यान ही न हो।

नालं वा परमोपकारकमिदं त्वेकं पशूनां पते
पश्यन् कुक्षिगतांश्चराचरगणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम्।
सर्वामर्त्यपलायनौषधमतिज्वालाकरं भीकरं
निक्षिप्तं गरलं गले न गिलितं नोद्गीर्णमेव त्वया॥ ६॥

हे पशुपते ! आपकी दयालुताका क्या कहना। समुद्रसे निकले हुए कालकूट महाविषकी प्रलयकरी ज्वालाओंसे भयभीत हो देवतालोग जब आपकी शरण आये तो आप दयापरवश हो उस उग्र विषको अपनी हथेलीपर रखकर आचमन कर गये। इस प्रकार उसे आचमन तो कर गये, किंतु उसे मुँहमें लेते ही आपको अपने उदरस्थ चराचर विश्वका ध्यान आया और आप सोचने लगे कि जिस विषकी भयंकर ज्वालाओंको देवतालोग भी नहीं सह सके, उसे मेरे उदरस्थ जीव कैसे सह सकेंगे ?
अपने गलेमें ही रोक
आपने उस भयंकर
चराचर जगत्‌की
कातर

स्वाभाविक दयासे प्रेरित हो आप इस विषय-विषसे जर्जरित संतप्त हृदयकी भी सुध लीजिये और इसे अपने अभय चरणोंकी सुखद सुशीतल छायामें रखकर शाश्वत सुख एवं शान्तिका अधिकारी बनाइये।

जडता पशुता कलङ्किता कुटिलचरत्वं च नास्ति मयि देव।
अस्ति यदि राजमौले भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम्॥ ७॥

हे राजशिरोमणे! (राजाओंके सिरमौर तथा चन्द्र-शेखर—राजा=चन्द्र) मै न तो जड (मूर्ख) हूँ, न पशु हूँ न कलङ्की हूँ और न वक्रगति हूँ। इन सारे दुर्गुणोसे मुक्त होनेपर भी आप मुझपर कृपा नहीं करते, इसमें क्या कारण है? यदि आप कहे कि नहीं, तुम्हारे अंदर ये सभी दुर्गुण मौजूद हैं, तो मैं कहूँगा कि तब तो मैं आपके अङ्गका भूषण बननेका विशेष अधिकारी हूँ, फिर आप मुझे इस प्रकार क्यों दुतकारते हैं? आपने गङ्गाजीको सिर चढ़ा रखा है, क्या वे जड (शीतल) नहीं हैं, मृगको हाथमें ले रखा है, वह भी तो आखिर पशु ही है। चन्द्रमा भी तो कलङ्की है, उसे तो आपने अपने मस्तकका मुकुट बना रखा है और साँपको गलेका हार बना रखा है, वह भी तो वक्रगति है। फिर मैंने ही कौन-सा अपराध किया है जिसके कारण आप मुझे अङ्गीकार नहीं करते? इस प्रकारकी विषमता आपको कदापि शोभा नहीं देती। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप इस दीनको अपनाकर इसे सदाके लिये कृतार्थ कर दीजिये। इसे अपने उत्तम अङ्गोमें नहीं, तो चरणोंमें ही लिपटाये रहिये। इसीमें यह अपना अहोभाग्य समझेगा।

अरहसि रहसि स्वतन्त्रबुद्ध्या
वरिवसितुं सुलभः प्रसन्नमूर्तिः।
अगणितफलदायकः प्रभुर्मे
जगदधिको हृदि राजशेखरोऽस्ति॥

हमारे स्वामी राजशेखर (राजराजेश्वर चन्द्रमौलि) की अन्य लौकिक नरेशोंके साथ तुलना नहीं हो सकती। उनकी हम अकेले-दुकेले अथवा सब लोगोंके सामने, चाहे जहाँ, बिना किसी रुकावटके पूजा कर सकते हैं। उन्होंने अपनेको हमारे लिये सर्वदा सुलभ बना दिया है। सुबह-शाम, दिनमें, रातमें, दोपहरको, आधी रात—जब हमें फुरसत हो, तभी हम उनकी पूजा बिना किसी संकोचके कर सकते हैं। उनकी पूजाके लिये हमें मौसर लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। उनकी पूजाके लिये देश-कालका कोई नियम नहीं है। चाहे जहाँ और चाहे जिस समय हम उनकी पूजा कर सकते हैं।

अन्य राजाओंके साथ हम इस प्रकारका व्यवहार नहीं कर सकते। उनकी सेवा-शुश्रूषा पहले तो हर एक व्यक्ति कर नहीं सकता, विशेष योग्यता एवं विशेष कुलके लोगोंको यह अवसर प्राप्त होता है। फिर उनके सेवकको उनके नियमोंमें बँधना पड़ता है और निर्दिष्ट स्थान एवं निर्दिष्ट समयमें ही निर्दिष्ट प्रणालीके अनुसार उनकी सेवा हो सकती है। निर्दिष्ट प्रणाली एवं निर्दिष्ट समयमें जरा भी चूक पड़नेपर उनके कुपित होनेका डर रहता है। फिर उसे उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता तथा उनके मिजाजका, जो समय-समयपर बदल सकता है, बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। राजाओंकी अव्यवस्थितचित्तता तो प्रसिद्ध ही है। भगवान् शंकरके लिये यह बात नहीं है। वे कभी प्रतिकूल तो होते ही नहीं। भक्तपर सदा अनुकूल, सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। अन्य राजाओंकी भाँति उनका रुख देखनेकी आवश्यकता नहीं होती। वे तो उलटी हमारी रुचि रखते है। *'राम सदा सेवक रुचि राखी'* प्रसिद्ध ही है। फिर एक बात और है। किसी राजाको प्रसन्नकर हम परिमित फल ही पा सकते हैं, क्योंकि उसके पास जो कुछ है सब परिमित ही तो है। उससे अधिक वह कहाँसे देगा? इसके विपरीत भगवान् शंकर अमित फलके देनेवाले हैं। वे और तो और, भक्तको अपना स्वरूपतक दे डालते हैं। ऐसे भक्तभावन भगवान्‌को छोड़कर जो दूसरोंका मुँह ताकते हैं, वे निश्चय ही मन्दमति हैं, अतिशय दयाके पात्र हैं। अतः सब कुछ छोड़कर आशुतोष भगवान् शंकरकी ही शरण ग्रहण करनी चाहिये। इसीमें जीवका सब प्रकारसे मङ्गल है।

नित्यं योगिमनःसरोजदलसञ्चारक्षमस्त्वत्क्रमः
शम्भो तेन कथं कठोरयमराड्वक्षःकवाटक्षतिः।
अत्यन्तं मृदुलं त्वदङ्घ्रियुगलं हा मे मनश्चिन्तय-
त्येतल्लोचनगोचरं कुरु विभो हस्तेन संवाहये॥ ९॥

हे भगवन्! कहाँ तो आपके सुकोमल चरणयुगल, जो सदा योगियोंके हृत्पङ्कजोंमें रमण करते रहते हैं और कहाँ यमराजका कठोर वज्रोपम वक्षःस्थल, जिसे आपने अपने उन चरणोंके प्रहारसे भेदन किया। उस कर्कश आघातसे आपके

चरणोंको जरूर गहरी चोट आयी होगी। लाइये, उन्हें मुझे सौंपिये। मैं उन्हें सुहलाकर ठीक कर दूँ। (इसी बहाने आपके पैर पलोटनेको तो मिलें।)

एष्यत्येष जनिं मनोऽस्य कठिनं तस्मिन्नटानीति मद्-
रक्षायै गिरिसीम्नि कोमलपदन्यासः पुराऽभ्यासितः।
नो चेद्दिव्यगृहान्तरेषु सुमनस्तल्पेषु वेद्यादिषु
प्रायः सत्सु शिलातलेषु नटनं शम्भो किमर्थं तव ॥ १० ॥

नहीं, नहीं, मैं भूलता हूँ। मालूम होता है, आपको कठोर भूमिपर पाद-प्रहार करनेका अभ्यास-सा हो गया है। यमराजके वक्षःस्थलको विदीर्ण करके ही आपने संतोष कर लिया हो; सो बात नहीं है। आपने तो जान-बूझकर कैलास-शृङ्गकी कर्कश भूमिपर कोमल पदन्यासका अभ्यास किया है। वह इसलिये कि आपने अपनी सर्वज्ञताके बलसे इस बातका पता लगा लिया था कि आपका एक भक्त अमुक समयमे जन्म लेगा और उसकी वज्रतुल्य कठोर हृदय-भूमिमें आपको विहार एवं पदसञ्चार करना होगा। कहीं उसके कठोर हृदयसे आपके कोमल चरणोंको चोट न पहुँचे, इस भयसे आपने पथरीली भूमिपर हलके-हलके कदम रखकर नृत्य करनेका युगों पहले अभ्यास कर लिया था। नहीं तो भला, दिव्य-मणि-भवनके सुकोमल फर्श, मखमली गद्दों तथा फूलोंकी सेजको छोड़कर पथरीली जमीनपर घूमनेका किसको शौक होगा? धन्य है आपकी भक्त-वत्सलता एवं दूरदर्शिता! ऐसे दयालु स्वामीको छोड़कर हे पापी मन! तू कहाँ भटकता फिरता है?

अशनं गरलं फणी कलापो
वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो
तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि ॥

(परंतु) हे शम्भो! मैं आपसे क्या माँगूँ? आपके पास देनेलायक है ही क्या, जिसे आप मुझे देंगे? खाते तो हैं आप जहर, अधिक हुआ तो मुट्ठीभर भाँग भकोस ली अथवा आक-धतूरा चबा लिया, जिसके खानेसे मनुष्य अव्वल तो बचे ही नहीं और यदि किसी तरह बच जाय तो पागल हुए बिना कदापि न रहे। फिर भला आपसे कोई खानेकी चीज तो क्या माँगे? मनुष्यको ही क्या, प्रत्येक प्राणीको प्रथम आवश्यकता होती है भोजनकी, पेट भर जानेपर और बातोंकी सूझती है। सो वह आवश्यकता तो आपसे किसीकी पूरी होनेकी नहीं।

भोजनके बाद दूसरा नंबर आता है वस्त्रका। उसके लिये तो आप दिगम्बर प्रसिद्ध ही हैं, कुछ कहने-सुननेकी आवश्यकता ही नहीं है। कभी कोई भूला-भटका, आफतका मारा आपसे मिलने आ गया तो भले ही शर्मके मारे चमड़ेका टुकड़ा लँगोटीकी जगह लपेट लिया, नहीं तो वही नंग-धड़ंग घूमते रहते हैं। इस तरह कपड़ेकी मुराद पूरी हुई।

बदन ढँका हुआ होनेपर गहने आदिसे उसे सजानेकी फिक्र होती है। सो गहने आपने साँपोंके धारण कर रखे हैं, जिन्हें धारण करनेकी तो बात ही कौन कहे, दर्शन होते ही होश-हवास कूच कर जाते हैं और किसी तरह उनसे प्राण बचानेकी चिन्ता होती है। ऐसी दशामें कोई अभागा ही होगा जो आपसे गहनोंका सवाल करेगा। घरमें खाने-पहननेको भरपूर होता है और पासमे दो पैसेकी इज्जत हो जाती है तब मनुष्यको पाँव-पियादे चलनेमें शर्म आने लगती है और यह खयाल होने लगता है कि चार आदमी हमें पैदल चलते देखकर क्या कहेंगे। उस समय मनुष्यको सवारीकी जरूरत होती है। सो सवारी आपकी साँड़ है, जिसके पास जानेमें ही भय मालूम होता है कि कहीं वह सींग न भोंक दे। सारांश यह कि आपके पास सांसारिक वस्तु कोई भी ऐसी नहीं है जो आप किसीको दे सकें। इसलिये आपसे मैं केवल एक वस्तु माँगता हूँ, जिसे देनेमें आपको कभी आनाकानी हो ही नहीं सकती और जिसका आपके पास अटूट भण्डार है। वह है आपके चरणारविन्दकी अनन्य एवं अनपायिनी भक्ति। आशा है, मेरे इस छोटे-से सवालको आप अवश्य पूरा करेंगे और अपनी देनसे मुझे वञ्चित नहीं रखेंगे।

(श्रीमदाद्यशंकराचार्यरचित शिवानन्दलहरीसे)

श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥ १ ॥

'जिनके कण्ठमें साँपोंका हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अङ्गराग (अनुलेपन) है, दिशाएँ ही जिनका वस्त्र हैं (अर्थात् जो नग्न हैं), उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।'

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥ २ ॥

'गङ्गाजल और चन्दनसे जिनकी अर्चा हुई है, मन्दार-पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमोंसे जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दीके अधिपति प्रमथगणोंके स्वामी महेश्वर 'म' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।'

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥ ३ ॥

'जो कल्याणस्वरूप हैं, पार्वतीजीके मुखकमलको विकसित (प्रसन्न) करनेके लिये जो सूर्यस्वरूप हैं, जो दक्षके यज्ञका नाश करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजामें बैलका चिह्न है, उन शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।'

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥ ४ ॥

'वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंने तथा इन्द्र आदि देवताओंने जिनके मस्तककी पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन 'व' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।'

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥ ५ ॥

'जिन्होंने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथमें पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं, उन दिगम्बर देव 'य'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।'

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसंनिधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ६ ॥

'जो शिवके समीप इस पवित्र पञ्चाक्षरका पाठ करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है और वहाँ शिवजीके साथ आनन्दित होता है।'

सदाशिवके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान

भगवान् सदाशिव

यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजःसंश्रयः
संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं
नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि ॥

जो रजोगुणका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं, तमोगुणसे युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्दस्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्णब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विकभावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

परमात्मप्रभु शिव

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः ॥

वेदान्तग्रन्थोमें जिन्हें एकमात्र परम पुरुष परमात्मा कहा गया है, जिन्होंने समस्त द्यावा-पृथिवीको अन्तर्बाह्य —सर्वत्र व्याप्त कर रखा है, जिन एकमात्र महादेवके लिये 'ईश्वर' शब्द अक्षरशः यथार्थरूपमें प्रयुक्त होता है और जो दूसरेके विशेषणका विषय नहीं बनता, अपने अन्तर्हृदयमें समस्त प्राणोंको निरुद्धकर मोक्षकी इच्छावाले योगीजन जिनका निरन्तर चिन्तन और अन्वेषण करते रहते हैं, वे नित्य एक समान सुस्थिर रहनेवाले, महाप्रलयमें भी विक्रियाको नहीं प्राप्त होनेवाले और भक्तियोगसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले भगवान् शिव आप सभीका परम कल्याण करें।

मङ्गलस्वरूप भगवान् शिव

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं
शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु-
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम् ॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह शिवनामक कोई अनिर्वचनीय तेजःपुञ्ज सबका मङ्गल करे।

भगवान् अर्धनारीश्वर

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम् ।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥

श्रीशंकरजीका शरीर नीलमणि और प्रवालके समान सुन्दर (नीललोहित) है, तीन नेत्र है, चारों हाथोंमें पाश, लाल कमल, कपाल और शूल हैं, आधे अङ्गमें अम्बिकाजी और आधेमें महादेवजी हैं। दोनों अलग-अलग शृङ्गारोंसे सज्जित हैं, ललाटपर अर्धचन्द्र है और मस्तकपर मुकुट सुशोभित है, ऐसे स्वरूपको नमस्कार है।

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिन-
स्तस्मै शैलसुताञ्चितार्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे ॥

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे ही विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) जिनके कृपाकटाक्षके ही वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर अद्वितीय आत्मज्ञानानन्द-स्वरूपमें ही देखते है, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है।

भगवान् शंकर

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम् ॥

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्यारा है, जो प्रेम प्रदान करनेवाले, पूर्णानन्दमय, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके एकमात्र आवासस्थान और कल्याणस्वरूप हैं, सत्य जिनका श्रीविग्रह है, जो सत्यमय है, जिनका ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सत्य-प्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले उन भगवान् शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

गौरीपति भगवान् शिव

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं
गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम्।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि ॥

जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, गौरी गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं तथा जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, उन विमल बोधस्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ।

महामहेश्वर

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं

रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

चाँदीके पर्वतके समान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, रत्नमय अलंकारोंसे जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथोंमें परशु तथा मृग, वर और अभय मुद्राएँ हैं, जो प्रसन्न हैं, पद्मके आसनपर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते है, जो विश्वके आदि, जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र है, उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करे।

पञ्चमुख सदाशिव

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभिः
त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

जिन भगवान् शंकरके पाँच मुखोंमें क्रमशः ऊर्ध्वमुख गजमुक्ताके समान हलके लाल रंगका, पूर्व मुख पीतवर्णका, दक्षिण मुख सजल मेघके समान नील वर्णका, पश्चिम मुख मुक्ताके समान कुछ भूरे रंगका और उत्तर मुख जवापुष्पके समान प्रगाढ़ रक्त वर्णका है, जिनकी तीन आँखें हैं और सभी मुख-मण्डलोंमें नील वर्णके मुकुटके साथ चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हैं, जिनके मुखमण्डलकी आभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य आह्लादित करनेवाली है, जो अपने हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टङ्क (परशु), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अङ्कुश, पाश तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं एवं जो अनन्त कल्पवृक्षके समान कल्याणकारी हैं, उन सर्वेश्वर भगवान् शंकरका ध्यान करना चाहिये।

अम्बिकेश्वर

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-
मार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम्।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं
सम्भावये मनसि शंकरमम्बिकेशम्॥

जो आदि और अन्तमें (तथा मध्यमें भी) नित्य मङ्गलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले देवता (परमात्मा) हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-ही-खेलमें—अनायास जगत्की रचना, पालन और संहार तथा अनुग्रह एवं तिरोभावरूप पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।

पार्वतीनाथ भगवान् पञ्चानन

शूलाही टङ्कघण्टासिशृणिकुलिशपाशाग्न्यभीतीर्दधानं
दोर्भिः शीतांशुखण्डप्रतिघटितजटाभारमौलिं त्रिनेत्रम्।
नानाकल्पाभिरामापघनमभिमतार्थप्रदं सुप्रसन्नं
पद्मस्थं पञ्चवक्त्रं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥

जो अपने करकमलोंमें क्रमशः त्रिशूल, सर्प, टङ्क (परशु), घण्टा, तलवार, अंकुश, वज्र, पाश, अग्नि तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं, जिनका प्रत्येक मुखमण्डल द्वितीयाके चन्द्रमासे युक्त जटाओंसे सुशोभित हो रहा है, जिनके चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि—ये तीन नेत्र हैं, जो अनेक कल्पवृक्षोंके समान अपने भक्तोंको स्थिर रहनेवाले मनोरथोंसे परिपूर्ण कर देते हैं और जो सदा अत्यन्त प्रसन्न ही रहते हैं, जो कमलके ऊपर विराजित हैं, जिनके पाँच मुख हैं तथा जिनका वर्ण स्फटिकके समान दिव्य प्रभासे आभासित हो रहा है, उन पार्वतीनाथ भगवान् शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान् महाकाल

स्रष्टारोऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद् यं नमस्यन्ति देवा
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानमुक्तात्मनां च।
लोकानामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा
बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम्॥

प्रजाकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति देव भी प्रबल संसारभयसे मुक्त होनेके लिये जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो सावधान-चित्तवाले ध्यानपरायण महात्माओंके हृदयमन्दिरमें सुखपूर्वक विराजमान होते हैं और चन्द्रमाकी कला, सर्पोंके कङ्कण तथा व्यक्त चिह्नवाले कपालको धारण करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंके आदिदेव उन भगवान् महाकालकी जय हो।

श्रीनीलकण्ठ

बालार्कायुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतभूषणं जपवटीं शूलं कपालं करैः।

खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत्पञ्चाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे ॥

भगवान् श्रीनीलकण्ठ दस हजार बालसूर्योंके समान तेजस्वी हैं, सिरपर जटाजूट, ललाटपर अर्धचन्द्र और मस्तकपर साँपोंका मुकुट धारण किये हैं, चारों हाथोंमें जपमाला, शूल, नरकपाल और खट्वाङ्ग-मुद्रा है। तीन नेत्र हैं, पाँच मुख हैं, अति सुन्दर विग्रह है, बाघम्बर पहने हुए हैं और सुन्दर पद्मपर विराजित हैं। इन श्रीनीलकण्ठदेवका भजन करना चाहिये।

पशुपति

मध्याह्नार्कसमप्रभं शशिधरं भीमाट्टहासोज्ज्वलं
त्र्यक्षं पन्नगभूषणं शिखिशिखाश्मश्रुस्फुरन्मूर्धजम्।
हस्ताब्जैस्त्रिशिखं समुद्गरमसिं शक्तिं दधानं विभुं
दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यास्त्ररूपं स्मरेत्॥

जिनकी प्रभा मध्याह्नकालीन सूर्यके समान दिव्य रूपमें भासित हो रही है, जिनके मस्तकपर चन्द्रमा विराजित है, जिनका मुखमण्डल प्रचण्ड अट्टहाससे उद्भासित हो रहा है, सर्प ही जिनके आभूषण हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि—ये तीन जिनके तीन नेत्रोंके रूपमें अवस्थित हैं, जिनकी दाढ़ी और सिरकी जटाएँ चित्र-विचित्र रंगके मोरपंखके समान स्फुरित हो रही हैं, जिन्होंने अपने करकमलोंमें त्रिशूल, मुद्गर, तलवार तथा शक्तिको धारण कर रखा है और जिनके चार मुख तथा दाढ़ें भयावह हैं, ऐसे सर्वसमर्थ, दिव्य रूप एवं अस्त्रोंको धारण करनेवाले पशुपतिनाथका ध्यान करना चाहिये।

भगवान् दक्षिणामूर्ति

मुद्रां भद्रार्थदात्रीं सपरशुहरिणां बाहुभिर्बाहुमेकं
जान्वासक्तं दधानो भुजगवरसमाबद्धकक्षो वटाधः।
आसीनश्चन्द्रखण्डप्रतिघटितजटः क्षीरगौरस्त्रिनेत्रो
दद्यादाद्यः शुकाद्यैर्मुनिभिरभिवृतो भावशुद्धिं भवो वः॥

जो भगवान् दक्षिणामूर्ति अपने करकमलोंमें अर्थ प्रदान करनेवाली भद्रामुद्रा, मृगीमुद्रा और परशु धारण किये हुए हैं और एक हाथ घुटनेपर टेके हुए हैं, कटिप्रदेशमें नागराजको लपेटे हुए हैं तथा वटवृक्षके नीचे अवस्थित हैं, जिनके प्रत्येक सिरके ऊपर जटाओंमें द्वितीयाका चन्द्रमा जटित है और वर्ण धवल दुग्धके समान उज्ज्वल वर्णका है, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये तीनों जिनके तीन नेत्रके रूपमें स्थित हैं, जो सनकादि एवं शुकदेव (नारद) आदि मुनियोंसे आवृत हैं, वे भगवान् भव—शंकर आपके हृदयमें विशुद्ध भावना (विरक्ति) प्रदान करें।

महामृत्युञ्जय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें मृगमुद्रा है, दो हाथोंसे दो कलशोंमें अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तकको आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंसे उन्हीं कलशोंको थामे हुए हैं। शेष दो हाथ उन्होंने अपने अङ्कपर रख छोड़े हैं और उनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान हैं, मुकुटपर बालचन्द्र सुशोभित है, मुखमण्डलपर तीन नेत्र शोभायमान हैं। ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशंकरकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रव-
त्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्॥

जो अपने दो करकमलोंमें रखे हुए दो कलशोंसे जल निकालकर उनसे ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा अपने मस्तकको सींचते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो घड़े लिये उन्हें अपनी गोदमें रखे हुए हैं तथा शेष दो हाथोंमें रुद्राक्ष एवं मृगमुद्रा धारण करते हैं, कमलके आसनपर बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर झरते हुए अमृतसे जिनका सारा शरीर भींगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युंजयका, जिनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी विराजमान हैं, मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ।

परम शैव भगवान् विष्णुकी शिवोपासना

समयके परिवर्तनसे कभी तो देवता बलवान् हो जाते हैं और कभी दानव। एक बार दानवोंकी शक्ति बहुत अधिक हो गयी और वे देवोंको बहुत अधिक कष्ट पहुँचाने लगे। देवता बहुत संत्रस्त और संतप्त हुए। इसलिये अपने दुःखोंकी निवृत्तिके लिये भगवान् विष्णुके समीप गये और उनकी स्तुति करने लगे। स्तुतिसे प्रसन्न होकर विष्णुभगवान्ने उन लोगोंके आनेका कारण पूछा। तब देवोंने हाथ जोड़कर विनती की कि 'हे महाराज! हमलोगोंको दुष्ट दानव अपरिमित कष्ट पहुँचा रहे हैं और हमलोगोंका एक स्थानपर रहना भी कठिन प्रतीत हो रहा है। अतः हे भगवन्! आप इसका कुछ उपाय बताइये, आपके अतिरिक्त अन्य कोई हमें शरण देनेवाला नहीं है।' देवोंका ऐसा हृदयविदारक करुण-क्रन्दन सुनकर विष्णु-भगवान्ने उनसे कहा कि 'मैं परम कारुणिक श्रीमहादेवजीकी आराधना कर इस कार्यको करूँगा।' उनके ऐसे वचन सुनकर सभी देवता अपने-अपने धामको चले गये।

इधर श्रीविष्णुदेव क्षीरसागरका सुखद शयन छोड़ कैलास पर्वतके समीप पहुँचे और वहाँ अग्निका कुण्ड बनाकर तथा हरीश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना कर देवदेव भगवान् महादेवकी आराधना मानसरोवरसे समुत्पन्न कमलोंसे विधिपूर्वक करने लगे। इनका नियम था कि श्रीशिवसहस्र-नामका पाठ करते जाते और प्रत्येक नामपर एक-एक कमल शिवजीको चढ़ाते जाते। इस प्रकार प्रतिदिन सहस्र कमलोंसे महादेवकी पूजा करते। ऐसी आराधना करते-करते जब बहुत समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन महादेवजीने उनकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये उन हजार पुष्पोंमेंसे एक पुष्प अपनी लीलासे कम कर दिया। सहस्रनाम समाप्त करते-करते जब अन्तिम नाम आया तो एक कमल कम देख, विष्णु बहुत चिन्तित हुए और कमल-पुष्पकी प्राप्तिके लिये सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण कर आये, किंतु भगवान् शिवकी लीलासे उन्हें कहीं भी कमल-पुष्प न मिल सका। तब उन्होंने एक सहस्र संख्याकी पूर्तिके लिये अपना कमलरूपी नेत्र शिवजीके चरणोंमें भक्तिपूर्वक समर्पित कर दिया[१]।

इस अटल भक्तिको देखकर आशुतोष भगवान् शंकर परम प्रसन्न हुए और उसी समय प्रकट होकर प्रसन्न-वदनसे

बोले—'विष्णो! मैं आपकी भक्ति और प्रेमसे परम संतुष्ट हूँ। आप मनोवाञ्छित वर माँगिये, आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं।' भगवान्का ऐसा वचन सुनकर भगवान् विष्णुने हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—'प्रभो! इस समय दैत्य बहुत प्रबल हो गये हैं और इतना उपद्रव कर रहे हैं कि देवताओंका रहना कठिन हो रहा है। सम्पूर्ण त्रैलोक्य इस समय उनसे पीड़ित है। आप देवताओं तथा समस्त जगत्की रक्षाका कोई उपाय कीजिये। स्वामिन्! इस समय मेरे अस्त्र-शस्त्र भी निष्फल-से हो गये हैं, इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ।' विष्णुके ऐसे करुणाजनक वचन सुनकर भगवान् शिवजीने तेजोमय सुदर्शन-चक्र उन्हें प्रदान किया और कहा—'इससे सभी दैत्योंका विनाश हो जायगा।' यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

१-पुष्पदन्ताचार्यने शिवमहिम्न-स्तोत्रमें इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोर्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्॥

विष्णु भगवान्ने उसी चक्रकी सहायतासे असुरोंका बिना परिश्रम बहुत शीघ्र ही विनाश कर डाला और तीनों लोकोंमें आनन्दकी भेरी बजने लगी। उस चक्रको विष्णु भगवान् बहुत आदरपूर्वक धारण किये रहते हैं और जब-जब शत्रुओंका संहार करना होता है, तब-तब उसे काममें लाते हैं।

तत् प्राप्य भगवान् विष्णुर्दैत्यांस्तान् बलवत्तरान्।
जघान तेन चक्रेण द्रुतं सर्वान् बिना श्रमम्॥
जगत् स्वास्थ्यं परं लेभे बभूवुः सुखिनः सुराः।
सुप्रीतः स्वायुधं प्राप्य हरिरासीन्महासुखी॥
(शि०पु०, को०रु०सं०, अ० ३४)

जगन्माता लक्ष्मीकी शिव-निष्ठा

एक बार लीलामय भगवान् विष्णुने लक्ष्मीजीको भूलोकमें अश्वयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। भगवान्की प्रत्येक लीलामें जो रहस्य होता है, उसको तो वे ही जानते हैं। श्रीलक्ष्मीजीको इससे बहुत क्लेश हुआ, पर उनकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णुने कहा—'देवि! यद्यपि मेरा वचन अन्यथा तो हो नहीं सकता, तथापि कुछ कालतक तुम अश्वयोनिमें रहोगी, पश्चात् मेरे समान ही तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा। उस समय इस शापसे तुम्हारी मुक्ति होगी और फिर तुम मेरे पास आ जाओगी।'

भगवान्के शापसे लक्ष्मीजीने भूलोकमें आकर अश्वयोनिमें जन्म लिया और वे कालिन्दी तथा तमसाके संगमपर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगीं। वे भगवान् सदाशिव त्रिलोचनका अनन्य-मनसे दिव्य एक हजार वर्षोंतक ध्यान करती रहीं।

उनकी तपस्यासे महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए और लक्ष्मीके सामने वृषभपर आरूढ़ हो, पार्वतीसमेत दर्शन देकर कहने लगे—'देवि! आप तो जगत्की माता हैं और भगवान् विष्णुकी परम प्रिया हैं। आप भुक्ति-मुक्ति देनेवाले, सम्पूर्ण सचराचर जगत्के स्वामी विष्णुभगवान्की आराधना छोड़कर मेरा भजन क्यों कर रही हैं? वेदोंका कथन है कि 'स्त्रियोंको सर्वदा अपने पतिकी ही उपासना करनी चाहिये। उनके लिये पतिके अतिरिक्त और कोई देवता ही नहीं है। पति कैसा भी हो, वह स्त्रीका आराध्य देव होता है'[1]। भगवान् नारायण तो पुरुषोत्तम हैं, ऐसे देवेश्वर पतिकी उपासना छोड़कर आप मेरी उपासना क्यों करती हैं?'

लक्ष्मीजीने कहा—'हे आशुतोष! मेरे पतिदेवने मुझे अश्वयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया है। इस शापका अन्त पुत्र होनेपर बताया है, परंतु इस समय मैं पतिदेवके सांनिध्यसे वञ्चित हूँ। वे वैकुण्ठमें निवास कर रहे हैं। हे देवदेव! आपकी उपासना मैंने इसलिये की है कि आपमें और श्रीहरिमें किंचिन्मात्र भी भेद-भाव नहीं है। आप और वे एक ही हैं, केवल रूपका भेद है, यह बात श्रीहरिने ही मुझे बतायी थी। आपका और उनका एकत्व जानकर ही मैंने आपकी आराधना की है। हे भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरा यह दुःख दूर कीजिये।'

आशुतोष भगवान् शिव लक्ष्मीके इन वचनोंको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और विष्णुदेवसे इस विषयमें प्रार्थना करनेका वचन दिया और श्रीहरिको प्राप्त करने तथा एक महान् पराक्रमशाली पुत्र प्राप्त करनेका वर भी उन्हें प्रदान किया। तदनन्तर वे पार्वतीके साथ कैलास चले आये और उन्होंने बुद्धिमान् चित्ररूपको दूत बनाकर वैकुण्ठ भेजा। चित्ररूपसे भगवान् शिवका संदेश पाकर तथा देवी लक्ष्मीकी स्थिति जानकर भगवान् विष्णु अश्वका रूप धारणकर लक्ष्मीजीके पास गये और कालान्तरमें देवी लक्ष्मीको 'एकवीर' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसीसे 'हैहय-वंश' की उत्पत्ति हुई। अनन्तर लक्ष्मीजीके शापकी निवृत्ति हो गयी और वे दिव्य शरीर धारणकर भगवान्के साथ वैकुण्ठ पधार गयीं। उनकी शिव-साधना सफल हो गयी।

१-वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः। नान्यस्मिन् सर्वथा भावः कर्तव्यः कर्हिचित् क्वचित्॥
पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः। यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया॥
(देवीभा० ६।१८।२२-२३)

भगवान् नृसिंहकी शिवाराधना

हिरण्यकशिपुका पुत्र प्रह्लाद बड़ा तपस्वी, सत्यवादी, धर्मज्ञ और महात्मा था तथा बाल्यावस्थासे ही पुराणपुरुष भगवान् श्रीविष्णुकी पूजामें तत्पर रहता था। प्रह्लादकी यह चेष्टा देखकर क्रुद्ध हो देवद्रोही हिरण्यकशिपु कहने लगा—'रे कुपुत्र प्रह्लाद ! मेरे प्रतापके आगे कौन नारायण है ? इन्द्र, वरुण, कुबेर, वायु, सोम, ईशान, अग्नि, यम और ब्रह्मा आदि सभी देवता मुझसे डरते हैं। तू जीनेकी इच्छा रखता हो तो मेरी आज्ञाका पालन कर।' पिताके इस कठोर वचनको सुनकर भी प्रह्लादने विष्णुभक्तिका त्याग न किया। **'ॐ नमो नारायणाय'** यह मन्त्र उच्चारण करता रहा और सब दैत्योंके बालकोंको भी ब्रह्मविद्याका उपदेश देता रहा। तब तो हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको अनेक यातनाएँ दीं, परंतु भगवान्‌के प्रभावसे उसका बाल भी बाँका न हो सका। भक्तका कष्ट न सहकर प्रह्लादकी रक्षा तथा हिरण्यकशिपुका संहार करनेके लिये भगवान् विष्णु नृसिंहरूप धारणकर प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुका उदर विदीर्ण कर भयंकर गर्जना करने लगे। उनके घोर गर्जनसे ब्रह्मलोकपर्यन्त काँप उठे। यम, कुबेर, इन्द्र और ब्रह्मादि सभी देवता भयभीत हो नृसिंहदेवकी स्तुति करने लगे।

अनेक स्तुति करनेपर भी जब भगवान् नृसिंह शान्त न हुए, तब अन्य कोई शरण न जानकर देवता अपनी रक्षाके लिये मन्दराचलमें भगवान् शंकरकी शरण गये। वहाँ उन्होंने पार्वतीजीके साथमें विराजमान, शिव-गणों, गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों तथा ऋषि-मुनियों आदिसे सेवित भगवान् शंकरसे नृसिंहदेवके उग्र, विनाशकारी भयंकर गर्जनका और उनकी चेष्टाओंका वर्णन किया तथा दण्डवत् प्रणाम करके सब देवताओंके साथ ब्रह्माजी हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे। देवताओंके अति दीन वचन तथा प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकरने उनको अभय दिया और हँसकर कहा कि 'आप सब प्रसन्न रहें, मैं आपलोगोंका कार्य करूँगा।'

तदनन्तर भगवान् शिवने तेजोरूप पक्षीका रूप धारण किया, जिनके सहस्र भुजाएँ थीं, मस्तकपर चन्द्रमा शोभित था। आधा शरीर मृगका और आधा पक्षीका था। बड़े-बड़े पंख, तीखी चोंच, वज्रके तुल्य नख, अति तीक्ष्ण दाढ़, प्रबल अग्निके समान देदीप्यमान देहकान्ति और तीन नेत्र थे। भगवान् शंकरके प्रलयकालीन मेघके समान गम्भीर शब्दको सुनकर तथा उनके वैसे उग्र एवं घोर रूपको देखकर नृसिंहदेव शान्त हो गये और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने बार-बार भगवान् शंकरको प्रणाम किया और अपना चर्म (बाघम्बर) भगवान् शिवके निमित्त अर्पण कर नृसिंहदेव भगवान् शंकरकी महिमाको स्मरण करते हुए अन्तर्धान हो गये तथा देवता भी अपने-अपने स्थानको चले गये।

(लिङ्गपु०, अ० ९५-९६)
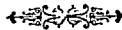
लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी शिव-भक्ति

वेदादि अनादि शास्त्रोंमें परमेश्वरके ध्यान, पूजन, आराधन, स्तवन आदिका जो विधान उपलब्ध होता है वह सब जगत्‌के अन्तर्यामी, शिव-विष्णु आदि अनेक नामोंसे निर्दिष्ट एक ही ईश्वरतत्त्वका स्पष्ट उल्लेख कर रहा है।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्॥

यह वैदिक मन्त्र समस्त विद्याओंके ईशान (स्वामी) और सर्वभूत अर्थात् प्राणिमात्रके नियन्ता, ईश्वरशब्दवाच्य महादेवका निरूपण करता है। इसी मन्त्रका प्रतीक लेकर श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनको परम हितका उपदेश देते हुए कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

—इस श्लोकमें 'ईश्वर' शब्द—

ईश्वरः शर्व ईशानः शंकरश्चन्द्रशेखरः॥

—इत्यादि अमरकोष-वाक्यके अनुसार साक्षात् महादेवका वाचक है। उन्हींकी शरण जानेका स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुनको उपदेश करते हैं। यही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शिव-भक्तिका प्रकृष्ट प्रमाण है, क्योंकि शरण-प्रपन्न अपने प्रिय सखा अर्जुनको परम श्रेयस्कर उपाय पूछनेपर वे शि॰

शरणागतिका उपदेश देते हैं।

इसीसे उसके संकटकी निवृत्ति हुई है। 'जयद्रथको यदि सूर्यास्तके पहले न मार सकूँ तो मैं चिता-प्रवेश करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा जब अर्जुनने की, तब सारी रात भगवान्‌ने अर्जुनको शिव-पूजनमें लगाकर उसे पाशुपतास्त्र पुनः प्राप्त कराया और 'मेरे रथके आगे यह त्रिशूलधर कौन है ?' इस प्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर 'जिसका तू आराधन करता है, वही तेरी रक्षाके लिये यहाँ उपस्थित है और उसीके अनुग्रहसे सर्वत्र तेरी विजय होती है' ऐसा उत्तर श्रीकृष्णभगवान् देते हैं। महाभारत, द्रोणपर्व, अध्याय २०१ में लिखा है कि द्रोणाचार्यकी मृत्युके बाद जब अश्वत्थामाने क्रोधाक्रान्त होकर नारायणास्त्रका प्रयोग किया, तब सारी पाण्डव-सेना जलने लगी, चारों ओरसे अग्निकी ज्वालाएँ भभकने लगीं और श्रीकृष्णने अर्जुन आदि पाण्डवोंको तथा सात्यकि प्रभृति अपने इष्टजनोंको बचानेके लिये अपने-अपने वाहनोंसे उतारकर उनसे शस्त्रास्त्र छुड़ा दिया। क्योंकि नारायणास्त्रसे बचनेका एकमात्र उपाय अशस्त्र होकर भूमिपर खड़ा हो जाना ही है, इस रहस्यको श्रीकृष्ण जानते थे, इस उपायका अनुष्ठान कराकर पाण्डवादि इष्टजनोंको भगवान्‌ने बचा लिया।

जब नारायणास्त्र बहुत-सी सेनाको दग्ध करके अदृश्य हो गया, तब अश्वत्थामा पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण आदिको अक्षत देखकर हृदयमें सोचने लगा कि ये लोग कैसे बेदाग निकल गये। इतनेमें उसने व्यासभगवान्‌को रणभूमिमेंसे होकर गङ्गाजीकी ओर जाते देखा।

देखते ही अश्वत्थामा रथसे कूदकर व्यासजीके पास पहुँचा और प्रणाम करके बोला—'भगवन्! कृपया मेरे मनोगत इस संशयका आप निवारण कीजिये। मेरे पिताजीने मुझे अस्त्र-विद्या सिखानेमें कुछ भेद रख लिया अथवा कलिकालके आ जानेसे मन्त्रोंका सामर्थ्य ही नष्ट हो गया या मेरे अंदर कोई आचारवैगुण्य हो गया, जिसके कारण मेरे द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग किये जानेपर भी कृष्ण एवं पाण्डव आदि बच गये ?'

तब व्यासभगवान् मुसकराते हुए अश्वत्थामासे बोले—'तेरे पिताने तुझे विद्या देनेमें किसी प्रकारका भेद नहीं रखा। यदि कहो कि कलिकालसे क्या मन्त्रोंका सामर्थ्य नष्ट हो गया तो श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके सिवा और सब क्यों और तेरे अंदर आचारवैगुण्यकी भी कोई सम्भाव किंतु बात यह है कि श्रीकृष्ण और अर्जुनके स्व तुझे नहीं है, इसीसे तेरे मनमें अनेक प्रकारकी श हैं।' इतना कहकर व्यासमुनि श्रीकृष्ण और अर्जु देते हुए कहने लगे—

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्व
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्व
स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमाश्रि
षष्टिं वर्षसहस्राणि वायुभक्षोऽम्बुजेक्ष
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः प
रुद्रमीशानमृषभं हरं शम्भुं कपर्दि
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्ति
तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाक
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्त

भगवान् श्रीशिव उवाच

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयो
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्य
स एष देवश्चरति मायया मोहयन् ज
तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनि
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं स
जन्मकर्मतपोयोगात्तयोस्तव च पुष्क
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां द्विजो

'ये पूर्वजोंके भी पूर्वज, कमललोचन नाराय विश्वका कार्य करनेके लिये धर्मपुत्रके रूपमें प्रक इन्होंने हिमालय-पर्वतपर केवल वायु भक्षणकर वर्षपर्यन्त तीव्र तप करते हुए भक्तिपूर्वक (त्रिलोचन), कपर्दी (जटाधर), रुद्र, ईशान, ऋष इत्यादि संज्ञाओंवाले, विश्वेश्वर एवं विश्वके कारण भगवान् शम्भुकी स्तुति की। उन देवताओंमें मुख्य नारायणकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर पिनाकधारी, अचि भगवान् नीलकण्ठने उन्हें कई वर दिये।

श्रीशिवने कहा—हे नारायण! मेरे प्रसादसे दे एवं मनुष्यादिकोंमें तुम अप्रमेय बलवाले होगे। नारायणदेव अपनी मायासे जगत्‌को मोहित करते हु

हैं। इन्हींके तपःप्रभावसे इनकी समानताको प्राप्त हुए महामुनि नरको तू अर्जुनरूपमे जान। जन्म, कर्म और तपोयोग, इन दोनोंका और तेरा भी पुष्कल है तथापि तुम शिव-मूर्तिका पूजन करते हो और ये दोनों शिवलिङ्गमें हरार्चन करते है, इतनी बात इनके अंदर विशेष है।'

इस प्रकार यद्यपि अश्वत्थामा भी शिव-भक्त है तथापि लिङ्गमें शिवार्चन करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन उसके द्वारा अजेय हैं, यह दिखलाकर भगवान् व्यासमुनिने श्रीकृष्णका परम शिवभक्तत्व स्पष्टरूपसे प्रतिपादन किया है।

लिङ्गपुराण (पूर्वार्ध) के अध्याय १०८ में लिखा है—

पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम ह।
आश्रमं चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र तं मुनिम्॥
नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः।
बहुमानेन वै कृष्णस्त्रिःकृत्वैव प्रदक्षिणम्॥
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः।
नष्टमेवं मलं सर्वं कायजं कर्मजं तथा॥
भस्मनोद्धूलनं दत्त्वा उपमन्युर्महामुनिः।
तमग्निरिति विप्रेन्द्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात्॥
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः॥
तपसा त्वेकवर्षेण दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
साम्बं सगणमव्यग्रं लब्धवान् पुत्रमात्मनः॥
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः शंसितव्रताः।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संवृत्य सर्वतः॥

'भगवान् श्रीकृष्ण पुत्रप्राप्तिके लिये तप करनेको तपोवनमें जाते हैं। वहाँ महामुनि उपमन्युके आश्रममें जब आते हैं तो धौम्यके ज्येष्ठ बन्धु उपमन्युका दर्शन होता है। तब मुनिको प्रणाम करके श्रीकृष्ण तीन प्रदक्षिणा करते हैं। उन मुनिवर्यके दर्शनसे ही श्रीकृष्णके कायज और कर्मज मल नष्ट हो जानेपर मुनि उन्हें भस्मोद्धूलन कराते हैं, फिर उपमन्यु मुनिसे श्रीकृष्ण शिवमन्त्रोपदेश ग्रहणकर एक वर्ष तपश्चर्या करते हैं। इस तपोऽनुष्ठानसे प्रसन्न होकर महेश्वर श्रीकृष्णको वर प्रदान करते हैं—इत्यादि।'

इसी लिङ्गपुराणके उत्तरार्धके पञ्चमाध्यायमें भगवान् विष्णु जब अम्बरीषको वर प्रदान करते हैं, तब अम्बरीष श्रीविष्णुभगवान्‌से कहते हैं—

लोकनाथ परानन्द नित्यं मे वर्तते मतिः।
वासुदेवपरा देव वाङ्मनःकायकर्मभिः॥
यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः।
तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन॥

'हे लोकनाथ परमानन्दस्वरूप! मेरी वृत्ति वाणी, मन और शरीरके कर्मोंसहित वासुदेवपरायण है। जैसे आप देवाधिदेव परमात्मा शिवके भक्त हैं, वैसे ही हे जनार्दन! हे विष्णो! मैं आपका भक्त होऊँ, ऐसा अनुग्रह कीजिये।'

लिङ्गपुराणके उक्त दोनों प्रसंग श्रीविष्णुके शिवभक्त होनेका स्पष्ट समर्थन करते है।

श्रीमहाभारत, आनुशासनिक पर्वके चतुर्दशाध्यायमें भीष्मपितामहकी प्रेरणासे स्वयं वासुदेव कहते है—

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः।
हिरण्यगर्भप्रमुखाः सेन्द्रा देवा महर्षयः॥
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः।
स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः॥
तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चिद् भगवतो गुणान्।
भवतां कीर्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम्॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान् गुणांस्तस्य महात्मनः।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः॥

वासुदेव उवाच

यदवाप्तं च मे सर्वं साम्बहेतोः सुदुष्करम्।
इत्याद्युपक्रम्य—
पुत्रार्थिनी मामुपेत्य जाम्बवत्याह दुःखिता॥
त्वया द्वादशवर्षाणि व्रतीभूतेन शुष्यता।
आराध्य पशुभर्तारं रुक्मिण्यां जनिताः सुताः॥
तथा ममापि तनयं प्रयच्छ मधुसूदन॥
ततः कृतस्वस्त्ययनोऽहमगच्छं हिमालयम्।
क्षेत्रं च तपसां तत्र पश्याम्यद्भुतमुत्तमम्॥
दिव्यं वैयाघ्रपद्यस्य उपमन्योर्महात्मनः।
शिरसा वन्द्यमानं मामुपमन्युरभाषत॥
लप्स्यसे तनयं कृष्ण आत्मतुल्यं न संशयः।
तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमव्ययम्॥

द्रक्ष्यसे पुण्डरीकाक्ष महादेवं न संशयः।
अचिरेणैव कालेन यथा दृष्टो मयाऽनघ॥
षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात्।
सपत्नीकाद्यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥

'जिन ईशके कर्मोंकी गतिको तत्त्वसे हिरण्यगर्भादि देव और महर्षि भी नहीं जान सकते और जिनके स्थानको सूक्ष्मदर्शी आदित्यादि भी नहीं पा सकते, वह सत्पुरुषोंद्वारा प्राप्य भगवान् शिव नरमात्रसे कैसे जाने जा सकते हैं ? उन असुरहन्ता भगवान् महेशके कुछ गुणोंको मैं व्रतनिष्ठावाले आपको यथार्थरूपसे कहकर सुनाऊँगा।' इतना कहकर श्रीकृष्ण स्वयं आचमन-प्राणायामादिद्वारा पवित्र होकर महात्मा शिवके गुणोंका वर्णन करने लगे। स्वयं वासुदेव कहते हैं—

'पहले मैंने अपने पुत्र साम्बके लिये जो तप किया था' इस प्रकार प्रारम्भ करके आगे कहने लगे—'पुत्रार्थिनी जाम्बवती मेरे पास आकर दुःखित होकर कहने लगी कि आपने जैसे द्वादशवार्षिकी तपश्चर्यासे शरीर-शोषणके द्वारा पशुपतिका आराधन करके देवी रुक्मिणीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न किया, वैसे ही हे मधुसूदन! मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये।'

फिर मैं ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर तपश्चरणार्थ हिमालयपर गया। वहाँ मैंने एक अद्भुत तपःक्षेत्र देखा और व्याघ्रपादमुनिके पुत्र उपमन्युके दिव्य आश्रममें जाकर मस्तक नवाकर मुनिका वन्दन किया। तब मुनिने कहा—'हे कृष्ण! अपने ही समान पुत्रकी प्राप्ति आपको अवश्य होगी' महान् तपोऽनुष्ठानसे महादेवको प्रसन्न करो। हे पुण्डरीकाक्ष! थोड़े ही समयमें जैसे मैंने शिवको प्राप्त किया, वैसे ही तुमको भी शिवका साक्षात्कार होगा। अन्तमें महादेवसे सोलह और पार्वतीसे आठ ऐसे चौबीस (पुत्ररूपी) वरदान, हे यदुश्रेष्ठ! आपको मिलेंगे, मैं सत्य कहता हूँ।' यह मुनि-वचन सुनते ही मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास हो गया कि मुझे दैत्योंका मर्दन करनेवाले, देवोंके ईश्वर महादेवका अवश्य साक्षात्कार होगा। महादेव-सम्बन्धिनी कथाएँ सुनते हुए मुझे आठ दिन एक मुहूर्त-जैसे बीत गये। आठवें दिन उपमन्यु मुनिने मुझे दिव्य-दीक्षा देकर तपोऽनुष्ठान आरम्भ कराया, जिसका साम्बादि पुत्रकी प्राप्तिरूप फल हुआ।

नारायणावतार श्रीकृष्ण-जैसे पतिको योग रुक्मिणीको भी शिवाराधन ही निमित्त हुआ—यह श्रीमद्भागवत (१०।५२।४०) में लिखा है—

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये॥

'वापी (बावली), कूप (कुआँ), तडाग (तालाव), आराम (बगीचा) आदि निर्माणरूप पूर्त, यज्ञ, देवार्चनादि इष्ट, अहिंसादि नियम, शिवरात्रि आदि व्रत और देव, ब्राह्मण, गुरु प्रभृतिका पूजन-सत्कार—इन सब सत्कर्मानुष्ठानद्वारा यदि मैंने भगवान् परेश महादेवका कुछ भी आराधन किया हो तो गदाग्रज श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें, शिशुपालादि अन्य कोई न करें। आगे भी—

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती॥
तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः।
भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०।५३।२५, ४५)

'मैं दुर्भगा (अभागी) हूँ। न तो धाता (ब्रह्मा) और न महेश्वर ही मेरे अनुकूल होकर मुझपर कृपा करते हैं, और देवी रुद्राणी गिरिजा सती भी मुझसे विमुख हैं।' इस प्रकार जब रुक्मिणी उद्विग्न होती हैं, तब विधि जाननेवाली वृद्ध ब्राह्मण-स्त्रियाँ उस बाला (रुक्मिणी) से शिवयुक्त भवानीका वन्दन कराती हैं और रुक्मिणी स्वयं प्रार्थना करती हैं—

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम्।
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम्॥

कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्विष्णुरेव न संशयः ॥
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम्।
नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्तो भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥

'कृष्णद्वैपायन (व्यासमुनि) साक्षात् विष्णुरूप ही हैं, इसमें संशय नहीं। व्यासमुनिको छोड़कर परमेश्वर रुद्रको और कौन तत्त्वसे जान सकता है? सत्यवतीसुत व्यास और देवकीसुत श्रीकृष्ण—इन दोनोंके सिवा अर्जुनके समान कोई शिवभक्त भूतकालमें हुआ नहीं और भविष्यमें होगा भी नहीं।'

इन वाक्योंसे श्रीकृष्णका परम शिवभक्तत्व स्पष्ट सिद्ध होता है।

श्रीमहाभारतके खिलपर्व हरिवंशमें भविष्यान्तर्गत कैलासयात्राके अध्याय ७३में श्रीरुक्मिणीकी प्रार्थनापर श्रीकृष्ण कहते हैं—

एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥
तत्रोपास्य महादेवं शंकरं नीललोहितम्।
ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद् भूतहिते रतात् ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शंकरमव्ययम्।
तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम् ॥
गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शंकरमव्ययम्।
स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया ॥

'यह लो, मैं पुत्र-प्राप्तिके लिये पर्वतोत्तम कैलासकी ओर जाता हूँ और वहाँ महादेवकी उपासना करके (उनको प्रसन्न करूँगा), नीललोहित अव्यय भगवान् शंकरसे, जो प्राणि-मात्रके हितपरायण हैं, तुझे पुत्रलाभ होगा। ब्रह्मचर्यव्रतपालन-पूर्वक तपश्चर्यासे मैं उन विरूपाक्ष, आदिदेव, अज, विभु परमात्माको संतुष्ट करूँगा! मैं आज ही अव्यय शंकरका दर्शन करने जाऊँगा और मुझको दृढ़ विश्वास है कि मेरे तपसे प्रसन्न होकर वे मुझे पुत्र अवश्य देंगे।' इत्यादि श्रीकृष्णकृत शिवोपासनाका यहाँ बहुत विस्तारसे वर्णन किया गया है।

महाभारत, सौप्तिकपर्वमें स्वयं शिवने भी कहा है—

अहं यथावदाराध्यः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते ॥

'अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्ण मेरा यथावत् आराधन करते हैं इसलिये कृष्णसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय नहीं है।'

यह शिवजीका वचन श्रीकृष्णकी शिव-भक्तिके परमोत्कर्षको दिखलाता है।

महाशिवपुराण-ज्ञानसंहिता (अध्याय ६१ से ७१) में इस बातका वर्णन मिलता है कि बटुकाचल (सुदामापुरीके पास बरडा पर्वत) पर सात मासतक श्रीकृष्णने तप किया और वे महादेवको नित्य सहस्रनामसे बिल्वपत्र चढ़ाते थे। उनके तपसे तुष्ट होकर महादेवने उन्हें कई वर दिये, जिनमें पुत्र-प्राप्तिका वर मुख्य था। श्रीकृष्ण जिस शिवलिङ्गमें शिवार्चन करते थे, वह लिङ्ग बिल्वेश्वर नामसे अद्यापि प्रसिद्ध है और जिस नदीके तीरपर उनका मन्दिर है उस नदीका नाम 'बिल्वगङ्गा' है। वराभ्यर्थनाके समय श्रीकृष्ण महाभारतके आनुशासनिक पर्व (अध्याय १५) में कहते हैं—

धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं
यशस्तथाऽग्र्यं परमं बलं च।
योगप्रियत्वं तव संनिकर्षं
वृणे सुतानां च शतं शतानि ॥
द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं
शतं सुतानां परमं च भोगम्।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं
शमप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम् ॥

'धर्ममें मेरी दृढ़ता रहे, युद्धमें शत्रुघात, जगत्में उत्तम यश, परम बल, योग-बल, सर्वप्रियता, आपका (शिवका) सांनिध्य, दस हजार पुत्र, ब्राह्मणोंमें कोपाभाव, पिताकी प्रसन्नता, सैकड़ों पुत्र, उत्कृष्ट वैभव-भोग, कुलमें प्रीति, माताका प्रसाद (अनुग्रह), शम-प्राप्ति (शान्ति-लाभ) और दक्षता (कार्यकुशलता)—ये सोलह वर श्रीकृष्णने माँगे और महादेव तथा पार्वतीने प्रसन्न होकर ये सभी वर उन्हें दिये।'

श्रीकृष्णसे सुदामा कैवल्यमुक्तिकी प्रार्थना करते हैं, तब श्रीकृष्ण स्कन्दपुराणान्तर्गत सूतसंहिता यज्ञवैभवखण्डके २५ वें अध्यायमें सत्यसन्धके प्रति स्वयं विष्णुभगवान्ने जो वचन कहे हैं, वही कहते हैं—

नाहं संसारमग्नानां साक्षात् संसारमोचकः।
ब्रह्मादिदेवाश्चान्येऽपि नैव संसारमोचकाः ॥
अहं ब्रह्मादिदेवाश्च प्रसादात् तस्य शूलिनः।
प्रणाड्यैव हि संसारमोचका नात्र संशयः ॥

नामतश्चार्थतश्चापि महादेवो महेश्वरः।
तदन्ये केवलं देवा महादेवा न तेऽनघ॥
महादेवं विना यो मां भजते श्रद्धया सह।
नास्ति तस्य विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥

'संसारमग्न जनोंको मैं संसारसे साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता। इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी साक्षात् संसारमोचक नहीं हैं। मैं और ब्रह्मादि अन्य देव त्रिशूलधारी महादेवके प्रसादसे प्रणाडी (शिवाज्ञा-सम्पादन) के द्वारा संसारमोचक हो सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। हे अनघ—निष्पाप! नामसे और अर्थसे महेश्वर ही महादेव हैं, और सब देव कहाते हैं, महादेव नहीं। जो पुरुष महादेवको छोड़कर मेरा भजन श्रद्धासे करता है उसका कोटि जन्म होनेपर भी संसारसे कदापि मोक्ष नहीं होगा, क्योंकि कैवल्यमुक्ति देनेवाले केवल महादेव ही हैं।'

इस प्रकार श्रीमुखसे स्पष्ट निर्देश करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामाको कैवल्यमुक्तिकी प्राप्तिके लिये शिवभक्तिरूप उपायका उपदेश दिया और सुदामाने श्रीकेदारेश्वरके आराधनके द्वारा स्वात्मसाक्षात्काररूप कैवल्यमुक्ति प्राप्त की और श्रीकृष्णने शिवमहिमाका स्वमुखसे वर्णन किया। इस विस्तृत निरूपणसे श्रीकृष्णचन्द्र परम शिवभक्त थे—यह सिद्ध होता है। अब सूक्ष्म विचारसे देखा जाय तो 'यो यद्भक्तः स एव सः' इस वाक्यसमन्वयसे श्रीकृष्ण स्वयं भी शिवरूप ठहरते हैं, वस्तुतः दोनोका अभेदभाव परिणत होता है। श्रीमद्भागवत (४।७।५०—५२,५४) में भी कहा है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

'मैं (विष्णु), ब्रह्मा और शर्व, तीनो जगत्‌के (अभिन्न) कारण हैं, स्वरूपमें सर्वविशेषवर्जित दृग्रूप होकर भी हम आत्मा, ईश्वर और उपद्रष्टा सभी कुछ हैं। मैं अपनी गुणमयी (त्रिगुणात्मिका) मायामें समाविष्ट (उपहित) होकर सर्जन, रक्षण और संहार करता हुआ कर्मानुसार संज्ञा (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इत्यादि) धारण करता हूँ, उस अद्वितीय केवल परमात्मब्रह्ममें ब्रह्मा, रुद्र और भूतग्रामको अज्ञजन भेदसे देखते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीनों एकभावापन्न एवं सर्वभूतोंके आत्मभूत हैं। इनके अंदर जो पुरुष भेदभाव नहीं देखता वही शान्ति-सम्पादन कर सकता है। इस वाक्यमें अभेद-भावका परम रहस्य बताया गया है। परममाहेश्वर भट्ट माहेश्वरने कहा है—

ये ये भक्तजना निजेष्टशरणाः श्रेष्ठं सदोपासते
ते जल्पन्ति मृषान्यदैवतमिदं मन्यामहे नो वयम्।
अस्माकं तु शशाङ्कशेखरपदद्वन्द्वैकनिष्ठात्मनां
सर्वं खल्विदमम्बिकेश्वरमयं चित्ते जगत् भासते॥

'जो-जो भक्तजन अपने-अपने इष्टको श्रेष्ठ मानकर उपासना करते हैं इसमें तो कोई बुराई नहीं है, किंतु अपने इष्टसे अन्य देवको जो मृषा कहते हैं यह हमें मान्य नहीं है। क्योंकि हमें तो सर्वदा श्रीचन्द्रशेखरपादयुग्ममें निष्ठा जम जानेसे सारा जगत् अम्बिकेश्वरमय ही भासता है, सर्वत्र साम्बशिवका ही दर्शन होनेसे इनसे भिन्न कोई पदार्थ ही प्रतीत नहीं होता। शिवसे अन्य वस्तु ही प्रतीत न हो, तब हम मृषा किसको कहें?'

इस प्रकार सर्वत्र स्वेष्ट-भावना हो जानेपर ही शान्ति-लाभ हो सकता है। (महामहोपाध्याय पं० श्रीहाथीभाईजी शास्त्री)

कल्याणकारी शिव

कासीके बसैया परकासीके दियैया नाथ,
भंगके छनैया अरु गंगके धरैया तुम।
ध्वंसके अमंगल औ जंगलके बासी प्रभु,
तौहू महामंगल ह्वै मंगल करैया तुम॥
केतिक उधारे केते तारे भवसागरतें,
केतिक सम्हारे ऐसे बिपद-हरैया तुम।
एहो त्रिपुरारी अघहारी सुखकारी शिव!
'प्रेम' परयौ द्वारे आज लाजके रखैया तुम॥

नर-नारायणकी शिवोपासना

प्राचीन कालमें भगवान्के अंश नर और नारायणने तपस्या करनेकी अभिलाषासे बदरिकावनमें आश्रम बनाया। उन्होंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की कि 'आप इस पार्थिव लिङ्गमें विराजमान हों।' यह प्रार्थना भगवान् शिवजीने स्वीकार कर ली और नर-नारायणद्वारा निर्मित लिङ्गमें प्रविष्ट होकर उसमें निवास करने लगे।

नर-नारायण परम श्रद्धाके साथ उस लिङ्गकी षोडशोपचारसे आराधना करते हुए कठिन तपस्या करने लगे। वे निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर रात-दिन भगवच्चरणका चिन्तन करते थे, इसके अतिरिक्त और कुछ उनका व्यापार ही नहीं था।

इस प्रकार तप करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया। तब श्रीआशुतोष भगवान् प्रकट होकर बोले कि 'हे नर-नारायण ! मैं आपलोगोंकी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ। आपकी जो इच्छा हो, वह वर माँग लें।'

शंकरभगवान्के ऐसे वचन सुनकर नर और नारायणने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'हे देवेश ! हे जगन्निवास ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये कि आपका इस तीर्थमें सदा निवास हो और आप अपने रूपसे इस क्षेत्रमें रहते हुए भक्तोंकी पूजा स्वीकार कर उन्हें संसारबन्धनसे मुक्त करें।' भगवान् सदाशिवने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और ज्योतिःस्वरूप हो स्वयं उस तीर्थमें निवास करने लगे।

यह ज्योतिर्लिङ्ग केदारेश्वरके नामसे विख्यात हुआ। उस स्थानपर जाकर अनेक देवता तथा असंख्य मुनियोंने भगवान्की आराधना की और अभिलषित फल पाया।

एक बार पाण्डवलोग इस पवित्र बदरिकाश्रममें गये। भगवान् शिवने उन्हें वहाँ देखा तो मायासे महिषका रूप धारण कर लिया और वहाँसे चलने लगे, परंतु पाण्डवोंने भगवान्को पहचान लिया और उन्हें पकड़कर परम भक्तिपूर्वक स्तुति की। उनकी भावमयी स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हो गये और अपना रूप धारण कर प्रकट हुए। भगवान्ने कहा कि 'मैं तुमलोगोंसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हें जो वर माँगना हो माँगो।' पाण्डवोंने भगवान्की स्तुति करके उनसे अनेक वर प्राप्त किये और संसारमें अनेक प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें परमपदको प्राप्त किया।

इन केदारेश्वरके दर्शनोंके लिये अब भी असंख्य स्त्री-पुरुष जाते हैं। योगियोंकी सिद्धिका तो यह प्रधान स्थान है। यहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंका उद्धार होता है। इनके पूजनका माहात्म्य स्कन्दपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

यः पूजयति केदारं स गच्छेच्छिवमन्दिरम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पितॄनुद्दिश्य भारत।
ददाति श्राद्धं विधिवत् तस्य प्रीताः पितामहाः॥

(रेवाखण्ड)

भगवती सतीका शिव-प्रेम

एक समय लीलाधारी परमेश्वर शिव एकान्तमें बैठे हुए थे। वहीं सती भी विराजमान थीं। आपसमें वार्तालाप हो रहा था। उसी वार्तालापके प्रसंगमें भगवान् शिवके मुखसे सतीके श्यामवर्णको देखकर 'काली' ऐसा शब्द निकल गया। 'काली' यह शब्द सुनकर सतीको महान् दुःख हुआ और वे शिवसे बोलीं—'महाराज ! आपने मेरे कृष्ण वर्णको देखकर मार्मिक वचन कहा है। इसलिये मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ मेरा नाम गौरी पड़े।' ऐसा कहकर परम ऐश्वर्यवती सती अपनी सखियोंके साथ प्रभास-तीर्थमें तपस्या करने चली गयीं। वहाँ 'गौरीश्वर' नामक लिङ्गको संस्थापित कर विधिवत् साङ्गोपाङ्ग पूजा और दिन-रात एक पैरपर खड़ी होकर कठिन तपस्या करने लगीं। ज्यों-ज्यो तप बढ़ता जाता, त्यों-त्यों उनका वर्ण गौर होता जाता। इस प्रकार धीरे-धीरे उनके अङ्ग पूर्णरूपसे गौर हो गये।

तदनन्तर भगवान् चन्द्रमौलि वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने सतीको बड़े आदरसे 'गौरी' इस नामसे सम्बोधित करके कहा—'प्रिये ! अब तुम उठो और अपने मन्दिरको चलो। हे कल्याणि ! अभीष्ट वर माँगो, तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, तुम्हारी तपस्यासे मैं परम प्रसन्न हूँ।'

तब सतीने हाथ जोड़कर प्रार्थनापूर्वक कहा—

नामतश्चार्थतश्चापि महादेवो महेश्वरः ।
तदन्ये केवलं देवा महादेवा न तेऽनघ ॥
महादेवं विना यो मां भजते श्रद्धया सह ।
नास्ति तस्य विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥

'संसारमग्न जनोंको मैं संसारसे साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता। इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी साक्षात् संसारमोचक नहीं हैं। मैं और ब्रह्मादि अन्य देव त्रिशूलधारी महादेवके प्रसादसे प्रणाडी (शिवाज्ञा-सम्पादन) के द्वारा संसारमोचक हो सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। हे अनघ—निष्पाप ! नामसे और अर्थसे महेश्वर ही महादेव हैं, और सब देव कहाते हैं, महादेव नहीं। जो पुरुष महादेवको छोड़कर मेरा भजन श्रद्धासे करता है उसका कोटि जन्म होनेपर भी संसारसे कदापि मोक्ष नहीं होगा, क्योंकि कैवल्यमुक्ति देनेवाले केवल महादेव ही हैं।'

इस प्रकार श्रीमुखसे स्पष्ट निर्देश करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामाको कैवल्यमुक्तिकी प्राप्तिके लिये शिवभक्तिरूप उपायका उपदेश दिया और सुदामाने श्रीकेदारेश्वरके आराधनके द्वारा स्वात्मसाक्षात्काररूप कैवल्यमुक्ति प्राप्त की और श्रीकृष्णने शिवमहिमाका स्वमुखसे वर्णन किया। इस विस्तृत निरूपणसे श्रीकृष्णचन्द्र परम शिवभक्त थे—यह सिद्ध होता है। अब सूक्ष्म विचारसे देखा जाय तो 'यो यद्भक्तः स एव सः' इस वाक्यसमन्वयसे श्रीकृष्ण स्वयं भी शिवरूप ठहरते हैं, वस्तुतः दोनोंका अभेदभाव परिणत होता है। श्रीमद्भागवत (४।७।५०—५२,५४) में भी कहा है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥

'मैं (विष्णु), ब्रह्मा और शर्व, तीनों जगत्के (अभिन्न) कारण हैं, स्वरूपमें सर्वविशेषवर्जित दृग्रूप होकर भी हम आत्मा, ईश्वर और उपद्रष्टा सभी कुछ हैं। मैं अपनी गुणमयी (त्रिगुणात्मिका) मायामें समाविष्ट (उपहित) होकर सर्जन, रक्षण और संहार करता हुआ कर्मानुसार संज्ञा (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इत्यादि) धारण करता हूँ, उस अद्वितीय केवल परमात्म-ब्रह्ममें ब्रह्मा, रुद्र और भूतग्रामको अज्ञजन भेदसे देखते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीनों एकभावापन्न एवं सर्वभूतोंके आत्मभूत हैं। इनके अंदर जो पुरुष भेदभाव नहीं देखता वही शान्ति-सम्पादन कर सकता है। इस वाक्यमें अभेद-भावका परम रहस्य बताया गया है। परममाहेश्वर भट्ट माहेश्वरने कहा है—

ये ये भक्तजना निजेष्टशरणाः श्रेष्ठं सदोपासते
ते जल्पन्ति मृषान्यदैवतमिदं मन्यामहे नो वयम् ।
अस्माकं तु शशाङ्कशेखरपदद्वन्द्वैकनिष्ठात्मनां
सर्वं खल्विदमम्बिकेश्वरमयं चित्ते जगत् भासते ॥

'जो-जो भक्तजन अपने-अपने इष्टको श्रेष्ठ मानकर उपासना करते हैं इसमें तो कोई बुराई नहीं है, किंतु अपने इष्टसे अन्य देवको जो मृषा कहते हैं यह हमें मान्य नहीं है। क्योंकि हमें तो सर्वदा श्रीचन्द्रशेखरपादयुग्ममें निष्ठा जम जानेसे सारा जगत् अम्बिकेश्वरमय ही भासता है, सर्वत्र साम्बशिवका ही दर्शन होनेसे इनसे भिन्न कोई पदार्थ ही प्रतीत नहीं होता। शिवसे अन्य वस्तु ही प्रतीत न हो, तब हम मृषा किसको कहें ?'

इस प्रकार सर्वत्र स्वेष्ट-भावना हो जानेपर ही शान्ति-लाभ हो सकता है। (महामहोपाध्याय पं॰ श्रीहाथीभाईजी शास्त्री)

कल्याणकारी शिव

कासीके बसैया परकासीके दिवैया नाथ,
भंगके छकैया अरु गंगके धरैया तुम।
बेसके अमंगल औ जंगलके बासी प्रभु,
तौहू महामंगल हौ मंगल करैया तुम ॥
केतिक उधारे केते तारे भवसागरतें,
केतिक सम्हारे ऐसे बिपद-हरैया तुम।
एहो त्रिपुरारी अघहारी सुखकारी शिव !
'प्रेम' पर्यौ द्वारे आज लाजके रखैया तुम ॥

मिलती, उनकी गति वाराणसीपुरीमें होती है। देवगण भी यहाँ मृत्यु प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं तो औरोंकी बात ही क्या है। भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी यह काशी भगवान् शंकरको सर्वदा प्रिय है[१]। ब्रह्मा, विष्णु, सिद्ध योगी तथा मुनि सभी इस काशीकी प्रशंसा करते हैं।

अविमुक्तपुरी काशीने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की थी कि 'हे कालरूप रोगकी ओषधि ! तीनों लोकोंके पति ! आप ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके साथ यहाँ निरन्तर निवास करें।' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर साम्बसदाशिव भगवान् विश्वनाथने समस्त लोकोंके उपकारके लिये काशीपुरीमें निवास किया।

(शिवपुराण, कोटि० सं०)

देवगुरु बृहस्पतिकी शिवाराधना

संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छासे ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा आदि मानस-पुत्र उत्पन्न किये। उनमें अङ्गिराके एक आङ्गिरस नामक पुत्र हुए। वे शैशवावस्थामें ही बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् थे। वे सब शास्त्रतत्त्व जाननेवाले, वेदोंके पारंगत, बड़े रूपवान्, गुणवान् एवं शील-सम्पन्न थे। उन्होंने भगवान् शंकरकी आराधना प्रारम्भ की। परमपावनी काशी नगरीमें शिवलिङ्गकी स्थापना कर वे घोर तपस्या करने लगे।

तपस्या करते हुए उनके जब दस हजार वर्ष बीत गये, तब जगदीश्वर महादेव उस लिङ्गसे प्रकट होकर कहने लगे कि 'मैं तुम्हारी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ, अपना अभीष्ट वर माँगो।' अपने सामने उत्कृष्ट तेजोमय जटाजूटधारी, परम कल्याणकारी भगवान् शंकरकी मूर्ति देखकर वे प्रसन्न-वदनसे स्तुति करने लगे—'हे देवदेव जगन्नाथ ! आप त्रिगुणातीत, जरा-मरणसे रहित, त्रिजगन्मय, भक्तोंके उद्धार करनेवाले और शरणागतवत्सल हैं। आपके दर्शनोंहीसे मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। मेरी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गयीं।' आङ्गिरसकी ऐसी स्तुति सुनकर भगवान् आशुतोषने और भी प्रसन्न होकर उन्हें अनेक वर दिये। उन्होंने कहा—'हे आङ्गिरस ! तुमने बृहत् (बड़ा) तप किया है, इसलिये तुम इन्द्रादि देवोंके पति तथा ग्रहोंमें पूज्य होओगे और तुम्हारा नाम 'बृहस्पति' होगा। तुम बड़े वक्ता और विद्वान् हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'वाचस्पति' भी होगा। जो प्राणी तुम्हारे द्वारा स्थापित इस लिङ्गकी आराधना करेगा और तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुतिका पाठ करेगा उसे मनोवाञ्छित फल मिलेगा तथा ग्रहजन्य कोई बाधा भी उसे पीड़ित नहीं करेगी।'

इस प्रकार अनेक वर देकर भगवान् शंकरने ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवताओंको बुलाया और ब्रह्माजीसे कहा कि 'बृहस्पतिजीको सभी देवोंका आचार्य बना दो।' ब्रह्माजीने उसी समय बृहस्पतिका देवाचार्यपदपर अभिषेक कर दिया। उस समय देवताओंकी दुंदुभियाँ बजने लगीं। इस प्रकार भगवान् शंकरके अनुग्रहसे आङ्गिरसने वह पद पाया[२], जिससे बढ़कर स्वर्गलोकमें कोई दूसरा पद हो ही नहीं सकता।

उनके द्वारा स्थापित बृहस्पतीश्वरके[३] पूजनसे प्राणी प्रतिभासम्पन्न हो जाता है तथा उसे अभीष्ट-सिद्धिकी प्राप्ति होती है और गुरुलोकमें वह प्रतिष्ठित होता है।[४]

(स्कन्दपु० काशीखण्ड)

१- येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीपुरी।
अमरा मरणं सर्वे वाञ्छन्तीह परे च के। भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सर्वदा शंकरप्रिया॥
(शि०पु०, कोटिरुद्रसंहिता २२। २७—२८)

२-ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः।
(तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली ८)

३-पावन पुरी काशीमें बृहस्पतीश्वर संकटा घाटपर विराजमान हैं।

४-गुरुपुष्यसमायोगे लिङ्गमेतत् समर्च्य च। यत् करिष्यति मनुजस्तत् सिद्धिमधियास्यति॥
अस्य संदर्शनादेव प्रतिभा प्रतिलभ्यते॥
आराध्य धिषणेशं वै गुरुलोके महीयते॥ (स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अ० १७। ६०—६२)

'हे महाराज ! आपके चरणोंकी दयासे मुझे किसी बातकी कमी नहीं है। मुझे अपने लिये कुछ नहीं चाहिये। परंतु यह प्रार्थना अवश्य करूँगी कि जो नर या नारी इन गौरीश्वर शिवका दर्शन करें, वे सात जन्मतक सौभाग्य-समृद्धिसे पूर्ण हो जायँ और उनके वंशमें किसीको भी दारिद्र्य तथा दौर्भाग्यका भोग न करना पड़े। मेरे संस्थापित इस लिङ्गकी पूजा करनेसे परमपदकी प्राप्ति हो। गौरीकी इस प्रार्थनाको श्रीमहादेवजीने परम हर्षके साथ स्वीकार कर लिया और उन्हें लेकर वे कैलासको पधारे।

(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड अ० ६८)

भगवती सावित्रीकी शिव-पूजा

पितामह ब्रह्माकी पत्नी देवी सावित्रीने लोकोपकारके लिये प्रभासक्षेत्रमें भगवान् शंकरके लिङ्गकी स्थापना कर उनकी विधिवत् पूजा की। इसके बाद इन्द्रियोंको वशमें करके अन्न-जलतक त्यागकर केवल वायुका आश्रय ले वे भगवान् आशुतोषके ध्यानमें तल्लीन हो गयीं।

सावित्रीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर हाथमें त्रिशूल लिये दयासागर भगवान् शिव प्रकट हुए। अपने अभीष्ट देवका दर्शनकर सावित्रीने पुलकित होकर उन्हें प्रणाम किया और स्तुति करने लगीं। वे बोलीं—'हे देव ! यह जगत् आपसे उत्पन्न होता है और अन्तमें आपहीके द्वारा नष्ट भी हो जाता है। आप सनातनरूप हैं। सत्य कामनावाले सज्जन पुरुषोंके लिये आप ही उत्तम लोक हैं। आप ही मुक्त पुरुषोंके लिये अपवर्ग-रूप और आप ही आत्मज्ञानियोंके लिये कैवल्यरूप हैं। जो प्राणी श्रद्धासे भक्तिपूर्वक आपकी शरणमें जाता है, उसे आप अपना दर्शन देते हैं। आपका दर्शन करनेके अनन्तर प्राणीको पुनर्जन्म एवं मरणका भय नहीं रहता और फिर उसको कुछ जानना भी शेष नहीं रह जाता।'

इस प्रकार सावित्रीकी स्तुति सुनकर और उनके अन्तःकरणका अभिप्राय जानकर ब्रह्मेश्वर भगवान् शिव बोले—'जो मनुष्य पूर्णिमा तिथिको चन्दन, पुष्प आदि उपकरणोंसे तुम्हारे द्वारा स्थापित इस शिवलिङ्गका विधिवत् पूजन करेगा। उसको मैं उसके मनचाहे वरदान दूँगा। अबसे मैं अपने अंशसे इस लिङ्गमें निवास करूँगा। इसका पूजन करनेवाला महापातकी होता हुआ भी सब पातकोंसे छूट जायगा और अपनी सारी कामनाएँ पूर्ण कर साक्षात् शिव हो जायगा।' यह वरदान देकर शिवजी अन्तर्धान हो गये और सावित्रीजी ब्रह्मलोकको चली गयीं।

(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, अ० १५१)

अविमुक्तपुरी काशीकी अनन्य भक्ति

जीवमात्रमें जैसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्योंमें जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, वैसे ही पृथिवीमें तीर्थ श्रेष्ठ हैं, तीर्थोंमें काशी श्रेष्ठ है। क्योंकि काशी साक्षात् करुणामयी अलौकिक मूर्ति है। जहाँ प्राणिमात्र सुखपूर्वक देह त्यागकर उसी समय विश्वेश्वरके ज्ञानरूप ज्योतिमें प्रवेश कर तद्रूप कैवल्यपदको प्राप्त करते हैं। यह पञ्चक्रोशात्मिका काशी नामक भूमि यथार्थमें तेजोमय (मूर्तिमान्) शिवलिङ्ग है। जिस तेजोमय लिङ्गका भगवान् नारायण (विष्णु) और ब्रह्माने (पहले) दर्शन किया था, वही लिङ्ग लोक और वेदमें काशीके नामसे विख्यात है।

ब्रह्माजीने भगवान्‌की आज्ञासे ब्रह्माण्डकी रचना की। तदनन्तर अपने-अपने कर्मोंसे बँधे हुए प्राणी मुझे किस प्रकार प्राप्त करेंगे ऐसा विचारकर दयालु शिवजीने पञ्चक्रोशी (काशी) उस ब्रह्माण्डसे पृथक् रखी। यह लोकोंमें कल्याण देनेवाली, कर्मोंका नाश करनेवाली तथा मोक्षप्रकाशिका है। इस नगरीमें मुक्तिप्रदायक ज्योतिर्लिङ्गको स्वयं भगवान् शिवजीने स्थापित किया है।

ब्रह्माका दिन पूरा होनेपर भी यह काशी नष्ट नहीं होती, प्रलयकालमें भी शिवजी इसे अपने त्रिशूलपर धारण किये रहते हैं।

काशीसे अतिरिक्त अन्य तीर्थोंमें जीवोंको सारूप्यादि मुक्तिकी प्राप्ति तो होती है, परंतु यहाँ प्राणियोंको केवल उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है। जिन प्राणियोंकी कहीं भी गति नहीं

इस तरह देवता लोग आपसमें विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें भक्तोंके उद्धारक, शरणागतवत्सल, आशुतोष भगवान् शंकर पातालका भेदनकर 'ॐ'कारपूर्वक 'भूर्भुवः स्वः'—इन तीनों व्याहृतियोंका उच्चारण करते हुए महाप्रलयकी अग्निके समान पर्वतसे लिङ्गरूपमें निकल पड़े।

करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशित आदि-अन्तरहित ऐसे श्रेष्ठ लिङ्गका अबतक किसीने कभी दर्शन नहीं किया था। ऐसे लिङ्गरूप भगवान् शिव ब्रह्माजीसे बोले—

'हे ब्रह्मदेव! तुम लोकोंमें शान्ति फैलानेवाले सौम्य यज्ञको सानन्द करो। मैं तुम्हें वेदोंको देता हूँ।' तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवान्‌की आज्ञा पाकर लोकोंको शान्ति प्रदान करनेवाला सौम्य यज्ञ किया। ऐसा करनेसे देवताओंका बल बढ़ा देखकर, दैत्यगण उनके भयसे दसों दिशाओंकी ओर भाग निकले। 'ॐ'कारके प्रभावसे सभी देवता निर्भय हो गये। फिर महादेवजीका पूजनकर वे आनन्दपूर्वक स्वर्गको चले गये। कल्पान्ततक रहनेवाले देवता और दैत्योंसे नमस्कृत यह 'ॐकारेश्वर' महालिङ्ग शिव सबको मोक्ष देनेवाले हैं। समस्त देवता कल्पके अन्तमें इसी लिङ्गमें लीन हो जाते हैं। इसीसे इस लिङ्गको लोग अमर, ब्रह्मा, हरि और सिद्धेश्वर कहते हैं। नर्मदा-तटपर विद्यमान—(१) मार्कण्डेयलिङ्ग, (२) अविमुक्त लिङ्ग, (३) केदारलिङ्ग, (४) अमरेश्वर—ॐकारलिङ्ग और (५) महाकाललिङ्ग—इन पवित्र पाँचों लिङ्गोंका जो प्राणी प्रातःकाल उठकर स्मरण करता है, वह सभी तीर्थोंका फल पाकर शिवलोकमें पूजित होता है। यथा—

सर्वतीर्थफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥

(रे॰खं॰ ४७।४६)

अग्निदेवपर भगवान् शिवका अनुग्रह

एक समय श्रीमहादेवजी अनेकों देवोंके साथ तीर्थयात्रा करते-करते 'भृगुकच्छ' नामक तीर्थमें पहुँचे। वहाँ अग्निदेव कठिन तपस्या कर रहे थे। वे अनेकों रोगोंके कारण बहुत दुःखी थे। रोगसे उनकी आँखें पीली पड़ गयी थीं। रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये वे सैकड़ों वर्षोंसे महेश्वर शिवकी आराधना कर रहे थे। देवोंने प्रार्थना की कि 'हे देवदेव! ये अग्निदेव हमलोगोंके मुख हैं, इन्हींके द्वारा हमलोगोंको हविषके रूपमें भोजन मिलता है। इन्हें इस समय अनेक रोगोंसे कष्ट हो रहा है। हे प्रभो! इनका रोग दूरकर आप हम सबकी रक्षा कीजिये।' उस समय व्याघ्राम्बर पहने, सारे शरीरमें विभूति रमाये, अनेक सर्पोंको देह भरमें लपेटे, जटाजूटधारी, परम कल्याणकारी शिवजीके दर्शन अग्निदेवने भी किये और वे उनके दर्शनसे कृतार्थ होकर स्तुति करने लगे।

उनकी भावमयी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने कहा कि 'हे अग्ने! मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। जो वर माँगना हो, माँग लो।' ऐसे आनन्दप्रद वचन सुनकर अग्निदेवने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि 'हे विरूपाक्ष! मैं अनेक रोगोंसे पीड़ित हूँ और अनेक कष्टोंका अनुभव कर रहा हूँ, अतः यही प्रार्थना है कि आप मुझे इन कष्टों और रोगोंसे मुक्त करें।'

अग्निके ऐसे दीन वचन सुनकर शंकरभगवान्‌ने आदित्यका रूप धारण कर उनके सभी रोगोंको हर लिया और कहने लगे कि 'इस तीर्थमें सदा मेरा अंश वर्तमान रहेगा। यहाँ स्नान करनेसे कुष्ठ, कामला तथा क्षय आदि सभी प्रकारके रोग उसी तरह भाग जायँगे, जैसे गरुडको देखते ही सर्प भाग जाते हैं। पिङ्गलाक्ष अग्निके संस्थापित इन 'पिङ्गलेश्वर' के दर्शनमात्रसे कायिक, वाचिक और मानसिक सभी तरहके पाप नष्ट हो जायँगे। इस पावन देवखात नामक तीर्थमें स्नान, दान आदि जो कुछ भी पुण्य कार्य किया जायगा, वह अक्षय होगा और उसके अनन्त फल मिलेंगे। भगवान् शंकरका कथन है—

वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यत् पुरा कृतम्।
पिङ्गलेश्वरमासाद्य तत्सर्वं विलयं व्रजेत्॥
तत्र स्नानं च दानं च देवखाते कृतं नृप।
अक्षयं तद्भवेत् सर्वमित्येवं शंकरोऽब्रवीत्॥

(रे॰खं॰ १७६।२-३)

देवराज इन्द्रकी शिवभक्ति

इन्द्रके द्वारा अपने पुत्र विश्वरूपका वध सुनकर महर्षि त्वष्टा अत्यन्त दुःखित और कुपित हुए। उन्होंने परम दारुण तप करके ब्रह्माको प्रसन्न किया और देवोंको भयभीत करनेवाला पुत्र माँगा। उनके वरदानसे वृत्र नामका परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताकी आज्ञाके अनुसार वृत्र इन्द्रसे बदला लेनेके लिये घोर तपस्या करने लगा। उसकी घोर तपस्या देखकर इन्द्रको बहुत भय हुआ और उन्होंने दधीचि ऋषिकी अस्थियोंसे बने हुए वज्रसे उसे मार डाला।

वृत्र ब्राह्मणको मारकर ज्यों ही इन्द्र चलने लगे, त्यों ही ब्रह्महत्याने उनका पीछा किया। जहाँ-जहाँ इन्द्र जाते, वहाँ-वहाँ उनके पीछे यह हत्या भी जाती। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-पत्नी-गमन एवं विश्वासघात—ये महापातक हैं, इनसे बचना कठिन है।

परम दुःखित देवराज इन्द्रासन और इन्द्राणीका परित्याग-कर तप करनेके लिये चले। वे अनेक तीर्थ, मन्दिर, समुद्र, नदी, तडाग आदिमें गये, पर उस हत्यासे उन्हें मुक्ति नहीं मिली। अन्तमें रेवा-क्षेत्रमें पहुँचे और वहाँ परम कारुणिक भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे। उन्होंने कृच्छ्रचान्द्रायण आदि अनेक दुष्कर व्रत किये। वे ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्नि तापते थे, वर्षामें खुले मैदानमें बैठ भीगते रहते और शीतकालमें भीगे कपड़े पहने हुए भगवान्‌की आराधना किया करते। इस प्रकार उग्र तप करते-करते जब दस हजार वर्ष बीत गये, तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उसी समय समस्त देवता और ऋषि भी वहाँ आ पहुँचे। तत्पश्चात् बृहस्पतिने देवताओं और ऋषियोंसे कहा—'आप लोगोंकी ही आज्ञासे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था। उसीके कारण ब्रह्महत्या इनका पीछा नहीं छोड़ती। ये सम्पूर्ण जगत्में घूम चुके, पर कहीं भी शान्ति न मिल सकी। हे देवदेव उमापते! इनको ऐसा वर दीजिये जिससे ये इस महापातकसे छुटकारा पा जायँ।' तब भगवान् शंकरकी आज्ञासे ब्रह्माजीने उस ब्रह्महत्याको चार भागोंमें बाँट दिया। एक भाग नदीमें, दूसरा पृथिवीमें, तीसरा रजस्वला स्त्रीमें और चौथा शूद्र-सेवक ब्राह्मणमें। इस प्रकार उस हत्यासे मुक्त करके भगवान् शंकर इन्द्रसे बोले—'मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' इन्द्रने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे 'परमेश्वर! मैं इस तीर्थमे शिवलिङ्ग स्थापित करता हूँ, आप उसमें सदा विराजमान रहें और अपनी आराधना करनेवाले भक्तोंको महापातकोंसे मुक्त किया करें।' इस प्रार्थनाको स्वीकारकर भगवान् सदाशिव अन्तर्हित हो गये और देवराजने विधिविहित रीतिसे नर्मदाके दक्षिणी तटपर शिवलिङ्गका संस्थापन किया। इस इन्द्रतीर्थमें स्नान करने तथा इन्द्रके द्वारा संस्थापित 'इन्द्रेश्वर' नामक शिवलिङ्गकी पूजा करनेसे महापातकी भी समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है और महान् अश्वमेध यज्ञके सम्पूर्ण फलको प्राप्त कर लेता है। इसका माहात्म्य स्कन्दपुराणमें इस प्रकार दिया गया है—

इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा तर्पयेत् पितृदेवताः।
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः॥
इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत् परमेश्वरम्।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य पुष्कलं फलमश्नुते॥

(रेवाखण्ड, अ० ११८।३९-४०)

देवताओंकी शिवभक्ति

प्राचीन कालमें नर्मदाके पावन तटपर देव और दानव दोनों ही आनन्दसे निवास करते थे। समयके परिवर्तनसे दानवोंकी शक्ति अधिक हो गयी, जिससे दोनोंमें परस्पर घोर संग्राम हुआ। अन्तमें देवगण हारकर दानवोंसे भयभीत हो, शरणागत-वत्सल भगवान् शिवजीकी शरणमें गये। देवताओंको यह दृढ़ निश्चय था कि शिवजी शरणागतरक्षक हैं। वे शरणागतको कभी नहीं त्यागते। अतः शिवजीको किसी तरह शीघ्र संतुष्ट करना चाहिये। इसी बीच देवगुरु बृहस्पति बोल उठे—'देवगणो! तुम्हें दानवोंको परास्त करनेवाला यज्ञ करना चाहिये। क्योंकि यज्ञसे ही प्रभु संतुष्ट होते हैं।' बृहस्पतिकी बात सुनकर ब्रह्माजी बोले—'दानवोंके भयसे हम सबको तो मन्त्र ही नहीं याद आते।'

इस तरह देवता लोग आपसमें विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें भक्तोंके उद्धारक, शरणागतवत्सल, आशुतोष भगवान् शंकर पातालका भेदनकर 'ॐ'कारपूर्वक 'भूर्भुवः स्वः'—इन तीनों व्याहृतियोंका उच्चारण करते हुए महाप्रलयकी अग्निके समान पर्वतसे लिङ्गरूपमें निकल पड़े।

करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशित आदि-अन्तरहित ऐसे श्रेष्ठ लिङ्गका अबतक किसीने कभी दर्शन नहीं किया था। ऐसे लिङ्गरूप भगवान् शिव ब्रह्माजीसे बोले—

'हे ब्रह्मदेव! तुम लोकोंमें शान्ति फैलानेवाले सौम्य यज्ञको सानन्द करो। मैं तुम्हें वेदोंको देता हूँ।' तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवान्‌की आज्ञा पाकर लोकोंको शान्ति प्रदान करनेवाला सौम्य यज्ञ किया। ऐसा करनेसे देवताओंका बल बढ़ा देखकर, दैत्यगण उनके भयसे दसों दिशाओंकी ओर भाग निकले। 'ॐ'कारके प्रभावसे सभी देवता निर्भय हो गये। फिर महादेवजीका पूजनकर वे आनन्दपूर्वक स्वर्गको चले गये। कल्पान्ततक रहनेवाले देवता और दैत्योंसे नमस्कृत यह 'ॐकारेश्वर' महालिङ्ग शिव सबको मोक्ष देनेवाले हैं। समस्त देवता कल्पके अन्तमें इसी लिङ्गमें लीन हो जाते हैं। इसीसे इस लिङ्गको लोग अमर, ब्रह्मा, हरि और सिद्धेश्वर कहते हैं। नर्मदा-तटपर विद्यमान—(१) मार्कण्डेयलिङ्ग, (२) अविमुक्त लिङ्ग, (३) केदारलिङ्ग, (४) अमरेश्वर—ॐकारलिङ्ग और (५) महाकाललिङ्ग—इन पवित्र पाँचों लिङ्गोंका जो प्राणी प्रातःकाल उठकर स्मरण करता है, वह सभी तीर्थोंका फल पाकर शिवलोकमें पूजित होता है। यथा—

सर्वतीर्थफलं प्राप्य शिवलोके महीयते॥

(रे॰खं॰ ४७।४६)

अग्निदेवपर भगवान् शिवका अनुग्रह

एक समय श्रीमहादेवजी अनेको देवोंके साथ तीर्थयात्रा करते-करते 'भृगुकच्छ' नामक तीर्थमे पहुँचे। वहाँ अग्निदेव कठिन तपस्या कर रहे थे। वे अनेकों रोगोंके कारण बहुत दुःखी थे। रोगसे उनकी आँखें पीली पड़ गयी थीं। रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये वे सैकड़ों वर्षोंसे महेश्वर शिवकी आराधना कर रहे थे। देवोने प्रार्थना की कि 'हे देवदेव! ये अग्निदेव हमलोगोके मुख हैं, इन्हींके द्वारा हमलोगोंको हविष्के रूपमें भोजन मिलता है। इन्हे इस समय अनेक रोगोसे कष्ट हो रहा है। हे प्रभो! इनका रोग दूरकर आप हम सबकी रक्षा कीजिये।' उस समय व्याघ्राम्बर पहने, सारे शरीरमें विभूति रमाये, अनेक सर्पोंको देह भरमें लपेटे, जटाजूटधारी, परम कल्याणकारी शिवजीके दर्शन अग्निदेवने भी किये और वे उनके दर्शनसे कृतार्थ होकर स्तुति करने लगे।

उनकी भावमयी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने कहा कि 'हे अग्ने! मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। जो वर माँगना हो, माँग लो।' ऐसे आनन्दप्रद वचन सुनकर अग्निदेवने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि 'हे विरूपाक्ष! मैं अनेक रोगोंसे पीड़ित हूँ और अनेक कष्टोंका अनुभव कर रहा हूँ, अतः यही प्रार्थना है कि आप मुझे इन कष्टों और रोगोसे मुक्त करें।'

अग्निके ऐसे दीन वचन सुनकर शंकरभगवान्‌ने आदित्यका रूप धारण कर उनके सभी रोगोको हर लिया और कहने लगे कि 'इस तीर्थमें सदा मेरा अंश वर्तमान रहेगा। यहाँ स्नान करनेसे कुष्ठ, कामला तथा क्षय आदि सभी प्रकारके रोग उसी तरह भाग जायँगे, जैसे गरुडको देखते ही सर्प भाग जाते हैं। पिङ्गलाक्ष अग्निके संस्थापित इन 'पिङ्गलेश्वर' के दर्शनमात्रसे कायिक, वाचिक और मानसिक सभी तरहके पाप नष्ट हो जायँगे। इस पावन देवखात नामक तीर्थमें स्नान, दान आदि जो कुछ भी पुण्य कार्य किया जायगा, वह अक्षय होगा और उसके अनन्त फल मिलेंगे। भगवान् शंकरका कथन है—

वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यत् पुरा कृतम्।
पिङ्गलेश्वरमासाद्य तत्सर्वं विलयं व्रजेत्॥
तत्र स्नानं च दानं च देवखाते कृतं नृप।
अक्षयं तद्भवेत् सर्वमित्येवं शंकरोऽब्रवीत्॥

(रेवाखण्ड १७६।२-३)

महर्षि वसिष्ठकी शिवोपासना

महर्षि वसिष्ठ एक महान् महर्षि हो गये हैं। उन्हें ब्रह्मवर्चस और अलौकिक शक्ति भगवान् शंकरके अनुग्रहसे ही मिली थी। वे भगवान् महेश्वरकी आराधनामें कठोर तप किया करते थे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँचों यमों तथा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—इन पाँचों नियमोंका वे यथाविधि पालन करते थे। प्रातःकाल और सायंकालके समय अग्निहोत्र करनेका उनका नियम था। यही अग्निहोत्र-विधि पूरी करनेके लिये वे नन्दिनी नामकी गौको अपने आश्रममें रखते थे। उन्हें यह गौ प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी और इसकी रक्षा तथा सेवाके लिये वे सब कुछ कष्ट उठा सकते थे। इसी गौके लिये उनका विश्वामित्रसे चिरकालतक युद्ध होता रहा।

सुरधेनु नन्दिनी कभी बाँधी नहीं जाती थी। उसे जब भ्रमण करनेकी इच्छा होती तो वनमें जाकर घूम-घाम आती। एक दिन वह आश्रमसे भ्रमण करनेके लिये कुछ दूर निकल गयी। वहाँ एक बड़ा गड्ढा था। उस गड्ढेकी गहराईका पता नहीं लगता था। नन्दिनी उस जलाशयके तटपर चर रही थी। उसी समय पैर फिसलनेसे वह गड्ढेके जलमें गिर पड़ी।

सायंकालका समय था। प्रतिदिन नन्दिनी सूर्यास्त होनेके पहले ही आश्रममें पहुँच जाया करती थी। उस दिन वह रात हो जानेपर भी नहीं आयी तो महर्षि वसिष्ठ चिन्तित हो गये और वे उसे ढूँढ़नेके लिये निकल पड़े। ऊबड़-खाबड़ भूमिमें खोजते हुए वे उसी गड्ढेके समीप पहुँचे। उसमेंसे उसकी करुण आवाज सुनकर मुनिको नन्दिनीके गिर जानेका पता लग गया।

महर्षि वसिष्ठने उसी समय सरस्वती नदीका स्मरण किया और उनकी प्रार्थनासे सरस्वतीने अपने निर्मल जलसे उस गर्तको पूरा भर दिया। नन्दिनी झट बाहर आ गयी और महर्षिके साथ आश्रमको चली आयी। परोपकारी वसिष्ठने सोचा कि इस महागर्तका रहना जीवोंके लिये बहुत हानिकर है और अनेक जीव-जन्तुओंके इस विवरमें गिरकर मर जानेका भय है, इसलिये इसको भर देना परम आवश्यक है।

इस विचारसे वे पर्वत[illegible] वहाँ गये। हिमालयको महर्षिके आगमन[illegible] उन्होंने पाद्य, अर्घ्य आदि सत्कार[illegible] और कहने लगे कि 'हे मुनिश्रेष्ठ ! आज इन पवित्र चरणोंकी रजके स्पर्शसे यह देश पवित्र हो गया और मेरा जीवन सफल हो गया। देवोंके भी परम पूज्य आप-जैसे महर्षियोंका आगमन साधारण भाग्यसे नहीं होता। मेरे योग्य सेवाका आदेश कीजिये। आप-जैसे महर्षियों एवं पुण्यात्माओंकी सेवामें मेरा सभी कुछ समर्पित है।'

महर्षि वसिष्ठने उनके नम्र वचन सुनकर प्रसन्न होते हुए उस गर्तकी बातें उन्हें बतलायीं और किसी पर्वतद्वारा उस गर्तको भर देनेके लिये कहा। इसपर हिमालयने कहा कि 'मैं तो पर्वत भेजनेके लिये तैयार हूँ, पर उसके वहाँतक जानेका उपाय क्या है ? पहले तो पर्वतोंके पक्ष थे और वे जहाँ चाहते थे, उड़कर चले जाते थे, पर अब तो इन्द्रने उनके पक्षोंको काटकर उन्हें अचल कर दिया है, जिससे वे कहीं नहीं आ-जा सकते। ऐसी अवस्थामें यहाँसे पर्वतका पहुँचना असम्भव है।'

वसिष्ठने कहा—'हे पर्वतोत्तम ! आपका कहना तो ठीक है, पर एक उपायसे काम चल सकता है। वह यह कि आपके नन्दिवर्धन नामक पुत्रका अर्बुद नामवाला एक मित्र है, उसमें उड़नेकी शक्ति है। वह यदि चाहे तो नन्दिवर्धनको क्षणभरमें मेरे आश्रमके समीप पहुँचा देगा। यदि मुझपर आपकी श्रद्धा हो तो बिना किसी प्रकारके दुःख माने उसे वहाँ भेज दीजिये।'

हिमालय बड़े संकटमें पड़ गये। उनका एक पुत्र मैनाक पक्षच्छेदके भयसे सागरमें छिपा बैठा था। दूसरेको वसिष्ठ लेने आये। पुत्रोंके वियोगमें जीवन किस प्रकार सुखसे बीतेगा, उन्हें इसी बातकी चिन्ता थी। परंतु इसीके साथ-साथ उन्हें इनका भी भय था कि कहीं वसिष्ठजी प्रतिशापभङ्गसे कुपित होकर शाप न दे दें। उन्होंने पुत्रवियोगको ब्राह्मण-शापसे अच्छा समझकर नन्दिवर्धनको वसिष्ठ महर्षिके आश्रममें जानेका आदेश दे दिया।

नन्दिवर्धनने विनयपूर्वक अपने पितासे कहा—पिताजी ! यह देश तो बहुत ही बुरा है। वहाँ पलाश, खैर, धव, सेमर आदि जितने वृक्ष हैं, उनमें न सुगन्धित पुष्प हैं और न मधुर फल ही होते हैं। भयंकर कोल, भील आदि दुष्ट जातियाँ ही उस प्रान्तमें निवास करती हैं। वहाँ कोई नदी भी नहीं बहती, जिससे उस देशमें रमणीयता आ सके। सबमें

प्रधान बात यह है कि आपके चरणोंकी सेवा छोड़कर मुझे कहीं दूसरी जगह जानेमें बड़ा कष्ट होगा। अतएव आप हमें अपनी ही शरणमें रखिये।

वसिष्ठजीने कहा—'नन्दिवर्धन ! तुम वहाँकी कुछ भी चिन्ता मत करो। तुम्हारे शिखरपर मैं नित्य स्वयं निवास करूँगा। विमल सलिलसे लहराती हुई नदियाँ बुलाऊँगा। जिससे मनोहर पत्र, पुष्प और फलोंसे परिपूर्ण वृक्षोंसे उस देशकी अलौकिक शोभा हो जायगी। मनोहर कलरव करनेवाले असंख्य पक्षियोंसे उसकी रमणीयता देखते ही बनेगी। उस समय नाना प्रकारके जन्तु आकर उस देशमें निवास करने लगेंगे। इन सबके अतिरिक्त मैं अपनी तपस्याके बलसे भगवान् शंकरको प्रतिष्ठित कर उस प्रदेशका इतना महत्त्व बढ़ा दूँगा कि पृथिवीके सभी प्रान्तोंसे सहस्रोंकी संख्यामें लोग वहाँ आकर अपना जन्म सफल करेंगे। वहाँ सभी देवताओंका वास होगा।'

मुनिके वचन सुनकर नन्दिवर्धनको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अर्बुदकी सहायतासे वसिष्ठजीके साथ उनके आश्रममें जा पहुँचा। अर्बुदाचलने नन्दिवर्धनको उस गर्तमें छोड़ दिया और स्वयं भी वहाँ ही रह गया। उन दोनों पर्वतोंपर वसिष्ठजी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगोंको जो वर माँगना हो माँग लो, मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

अर्बुदाचलने कहा कि 'महर्षे ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे इस निर्मल सलिलसे परिपूर्ण झरनेकी ख्याति संसारभरमें नागतीर्थके नामसे हो जाय। इसमे स्नान करनेसे मनुष्यको परम धाम मिले। यदि वन्ध्या स्त्री भी इसमें स्नान कर ले तो उसे पुत्र प्राप्त हो जाय।'

वसिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक 'ऐसा ही होगा' यह कहा। तदनन्तर नन्दिवर्धनने वर माँगा कि आप सर्वदा यहाँ निवास करें और इस स्थानका 'अर्बुद' यह नाम प्रसिद्ध हो। वसिष्ठजीने इन दोनों वरोंको देकर उसी पर्वतपर अपना स्थायी आश्रम बनाया और देवी अरुन्धतीके साथ उसमें निवास करने लगे। अपनी तपस्याके प्रभावसे वे गोमती नदीको वहाँ ले आये, जिसमें स्नान करनेसे घोर पाप करनेवाला भी मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। माघके महीनेमें मनुष्य इसमे स्नानकर जितने तिलोंका दान करता है, उतने वर्षतक स्वर्गमें अलौकिक सुख भोगता है।

उस स्थानका इतना सौन्दर्य और माहात्म्य बढ़ानेपर भी वसिष्ठजीको संतोष नहीं हुआ और दयासागर भगवान् शिवके निवासके बिना वह प्रान्त सूना-सा प्रतीत होता था। जिस देशमें भगवान्का मन्दिर न हो, वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो, कुदेश ही है। इसीलिये वसिष्ठजीने महादेवजीकी आराधनामें दुष्कर तप करना प्रारम्भ कर दिया। सौ वर्षोंतक उन्होंने केवल फलोंका आहार किया। दो सौ वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर रहे। पाँच सौ वर्षतक केवल जल पीकर विताये और एक हजार वर्षतक केवल हवा पीकर भगवान्की आराधना करते रहे। तब भगवान् शंकर उनके ऊपर प्रसन्न हुए। उस समय पर्वतको भेदकर उनके सामने एक सुन्दर परम सुन्दर शिवलिङ्ग[1] प्रकट हुआ। उसे देखकर वसिष्ठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। अनन्तर उसी लिङ्गमेंसे यह वाणी निकली कि 'हे मुने ! तुम्हारे मनकी सब बातें मुझे ज्ञात हैं। तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये आजसे मैं सदा इस लिङ्गमें निवास करूँगा। इसके पूजनसे मनुष्योंको सब प्रकारके सुख प्राप्त होंगे। मेरी प्रसन्नताके लिये इन्द्रके द्वारा भेजी गयी इन त्रैलोक्य-पावनी मन्दाकिनीमें स्नान कर जो इस अचलेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करेगा, वह जरा और मरणसे रहित परमपदको प्राप्त होगा।'

इतना वरदान देकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और वसिष्ठजी भगवान् शंकरके अनुग्रहसे अत्यन्त प्रसन्न होकर अनेक तीर्थों और देवोंको वहाँ ले आये।

(प्रभासखण्ड, अर्बुद०, अ० १—४)

शिवेति द्व्यक्षरं नाम व्याहरिष्यन्ति ये जनाः। तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति न चान्यथा॥

जो लोग 'शिव' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करेंगे, उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

१-अर्बुदगिरिपर अचलेश्वर महादेव हैं। पावन पुरी काशीमें संकटाघाटपर भी वसिष्ठेश्वर शिव प्रतिष्ठित हैं।

महर्षि वसिष्ठकी शिवोपासना

महर्षि वसिष्ठ एक महान् महर्षि हो गये हैं। उन्हें ब्रह्मवर्चस और अलौकिक शक्ति भगवान् शंकरके अनुग्रहसे ही मिली थी। वे भगवान् महेश्वरकी आराधनामें कठोर तप किया करते थे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँचों यमों तथा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—इन पाँचों नियमोंका वे यथाविधि पालन करते थे। प्रातःकाल और सायंकालके समय अग्निहोत्र करनेका उनका नियम था। यही अग्निहोत्र-विधि पूरी करनेके लिये वे नन्दिनी नामकी गौको अपने आश्रममें रखते थे। उन्हें यह गौ प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी और इसकी रक्षा तथा सेवाके लिये वे सब कुछ कष्ट उठा सकते थे। इसी गौके लिये उनका विश्वामित्रसे चिरकालतक युद्ध होता रहा।

सुरधेनु नन्दिनी कभी बाँधी नहीं जाती थी। उसे जब भ्रमण करनेकी इच्छा होती तो वनमें जाकर घूम-घाम आती। एक दिन वह आश्रमसे भ्रमण करनेके लिये कुछ दूर निकल गयी। वहाँ एक बड़ा गड्ढा था। उस गड्ढेकी गहराईका पता नहीं लगता था। नन्दिनी उस जलाशयके तटपर चर रही थी। उसी समय पैर फिसलनेसे वह गड्ढेके जलमें गिर पड़ी।

सायंकालका समय था। प्रतिदिन नन्दिनी सूर्यास्त होनेके पहले ही आश्रममें पहुँच जाया करती थी। उस दिन वह रात हो जानेपर भी नहीं आयी तो महर्षि वसिष्ठ चिन्तित हो गये और वे उसे ढूँढ़नेके लिये निकल पड़े। ऊबड़-खाबड़ भूमिमें खोजते हुए वे उसी गड्ढेके समीप पहुँचे। उसमेंसे उसकी करुण आवाज सुनकर मुनिको नन्दिनीके गिर जानेका पता लग गया।

महर्षि वसिष्ठने उसी समय सरस्वती नदीका स्मरण किया और उनकी प्रार्थनासे सरस्वतीने अपने निर्मल जलसे उस गर्तको पूरा भर दिया। नन्दिनी झट बाहर आ गयी और महर्षिके साथ आश्रमको चली आयी। परोपकारी वसिष्ठने सोचा कि इस महागर्तका रहना जीवोंके लिये बहुत हानिकर है और अनेक जीव-जन्तुओंके इस विवरमें गिरकर मर जानेका भय है, इसलिये इसको भर देना परम आवश्यक है।

इस विचारसे वे पर्वतराज हिमालयके यहाँ गये। हिमालयको महर्षिके आगमनसे बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने पाद्य, अर्घ्य आदि सत्कारसे उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और कहने लगे कि 'हे मुनिश्रेष्ठ! आज इन पवित्र चरणोंकी रजके स्पर्शसे यह देश पवित्र हो गया और मेरा जीवन सफल हो गया। देवोंके भी परम पूज्य आप-जैसे महर्षियोंका आगमन साधारण भाग्यसे नहीं होता। मेरे योग्य सेवाका आदेश कीजिये। आप-जैसे महर्षियों एवं पुण्यात्माओंकी सेवामें मेरा सभी कुछ समर्पित है।'

महर्षि वसिष्ठने उनके नम्र वचन सुनकर प्रसन्न होते हुए उस गर्तकी बातें उन्हे बतलायीं और किसी पर्वतद्वारा उस गर्तको भर देनेके लिये कहा। इसपर हिमालयने कहा कि 'मैं तो पर्वत भेजनेके लिये तैयार हूँ, पर उसके वहाँतक जानेका उपाय क्या है? पहले तो पर्वतोंके पक्ष थे और वे जहाँ चाहते थे, उड़कर चले जाते थे, पर अब तो इन्द्रने उनके पक्षोंको काटकर उन्हें अचल कर दिया है, जिससे वे कहीं नहीं आ-जा सकते। ऐसी अवस्थामें यहाँसे पर्वतका पहुँचना असम्भव है।'

वसिष्ठने कहा—'हे पर्वतोत्तम! आपका कहना तो ठीक है, पर एक उपायसे काम चल सकता है। वह यह कि आपके नन्दिवर्धन नामक पुत्रका अर्बुद नामवाला एक मित्र है, उसमें उड़नेकी शक्ति है। वह यदि चाहे तो नन्दिवर्धनको क्षणभरमें मेरे आश्रमके समीप पहुँचा देगा। यदि मुझपर आपकी श्रद्धा हो तो बिना किसी प्रकारके दुःख माने उसे वहाँ भेज दीजिये।'

हिमालय बड़े संकटमें पड़ गये। उनका एक पुत्र मैनाक पक्षच्छेदके भयसे सागरमें छिपा बैठा था। दूसरेको वसिष्ठ लेने आये। पुत्रोंके वियोगमें जीवन किस प्रकार सुखसे बीतेगा, उन्हें इसी बातकी चिन्ता थी। परंतु इसीके साथ-साथ उन्हें इसका भी भय था कि कहीं वसिष्ठजी प्रतिज्ञाभङ्गसे कुपित होकर शाप न दे दें। उन्होंने पुत्रवियोगको ब्राह्मण-शापसे अच्छा समझकर नन्दिवर्धनको वसिष्ठ ऋषिके आश्रममें जानेका आदेश दे दिया।

नन्दिवर्धनने विनयपूर्वक अपने पितासे कहा—पिताजी! वह देश तो बहुत ही बुरा है। वहाँ पलाश, खैर, धव, सेमर आदि जितने वृक्ष हैं, उनमें न सुगन्धित पुष्प हैं और न मधुर फल ही होते है। भयंकर कोल, भील आदि दुष्ट जातियाँ ही उस प्रान्तमें निवास करती हैं। वहाँ कोई नदी भी नहीं बहती, जिससे उस देशमें रमणीयता आ सके। सबसे

प्रधान बात यह है कि आपके चरणोंकी सेवा छोड़कर मुझे कहीं दूसरी जगह जानेमे बड़ा कष्ट होगा। अतएव आप हमें अपनी ही शरणमें रखिये।

वसिष्ठजीने कहा—'नन्दिवर्धन ! तुम वहाँकी कुछ भी चिन्ता मत करो। तुम्हारे शिखरपर मैं नित्य स्वयं निवास करूँगा। विमल सलिलसे लहराती हुई नदियाँ बुलाऊँगा। जिससे मनोहर पत्र, पुष्प और फलोंसे परिपूर्ण वृक्षोसे उस देशकी अलौकिक शोभा हो जायगी। मनोहर कलरव करनेवाले असंख्य पक्षियोंसे उसकी रमणीयता देखते ही बनेगी। उस समय नाना प्रकारके जन्तु आकर उस देशमें निवास करने लगेंगे। इन सबके अतिरिक्त मैं अपनी तपस्याके बलसे भगवान् शंकरको प्रतिष्ठित कर उस प्रदेशका इतना महत्त्व बढ़ा दूँगा कि पृथिवीके सभी प्रान्तोंसे सहस्रोंकी संख्यामें लोग वहाँ आकर अपना जन्म सफल करेंगे। वहाँ सभी देवताओंका वास होगा।'

मुनिके वचन सुनकर नन्दिवर्धनको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अर्बुदकी सहायतासे वसिष्ठजीके साथ उनके आश्रममें जा पहुँचा। अर्बुदाचलने नन्दिवर्धनको उस गर्तमें छोड़ दिया और स्वयं भी वहाँ ही रह गया। उन दोनों पर्वतोंपर वसिष्ठजी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगोंको जो वर माँगना हो माँग लो, मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

अर्बुदाचलने कहा कि 'महर्षे ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे इस निर्मल सलिलसे परिपूर्ण झरनेकी ख्याति संसारभरमें नागतीर्थके नामसे हो जाय। इसमें स्नान करनेसे मनुष्यको परम धाम मिले। यदि वन्ध्या स्त्री भी इसमें स्नान कर ले तो उसे पुत्र प्राप्त हो जाय।'

वसिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक 'ऐसा ही होगा' यह कहा। तदनन्तर नन्दिवर्धनने वर माँगा कि आप सर्वदा यहाँ निवास करें और इस स्थानका 'अर्बुद' यह नाम प्रसिद्ध हो। वसिष्ठजीने इन दोनों वरोंको देकर उसी पर्वतपर अपना स्थायी आश्रम बनाया और देवी अरुन्धतीके साथ उसमें निवास करने लगे। अपनी तपस्याके प्रभावसे वे गोमती नदीको वहाँ ले आये, जिसमें स्नान करनेसे घोर पाप करनेवाला भी मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। माघके महीनेमें मनुष्य इसमे स्नानकर जितने तिलोंका दान करता है, उतने वर्षतक स्वर्गमें अलौकिक सुख भोगता है।

उस स्थानका इतना सौन्दर्य और माहात्म्य बढ़ानेपर भी वसिष्ठजीको संतोष नहीं हुआ और दयासागर भगवान् शिवके निवासके बिना वह प्रान्त सूना-सा प्रतीत होता था। जिस देशमें भगवान्का मन्दिर न हो, वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो, कुदेश ही है। इसीलिये वसिष्ठजीने महादेवजीकी आराधनामें दुष्कर तप करना प्रारम्भ कर दिया। सौ वर्षोंतक उन्होंने केवल फलोंका आहार किया। दो सौ वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर रहे। पाँच सौ वर्षतक केवल जल पीकर बिताये और एक हजार वर्षतक केवल हवा पीकर भगवान्की आराधना करते रहे। तब भगवान् शंकर उनके ऊपर प्रसन्न हुए। उस समय पर्वतको भेदकर उनके सामने एक सुन्दर परम सुन्दर शिवलिङ्ग[1] प्रकट हुआ। उसे देखकर वसिष्ठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। अनन्तर उसी लिङ्गमेंसे यह वाणी निकली कि 'हे मुने ! तुम्हारे मनकी सब बातें मुझे ज्ञात हैं। तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये आजसे मैं सदा इस लिङ्गमें निवास करूँगा। इसके पूजनसे मनुष्योंको सब प्रकारके सुख प्राप्त होंगे। मेरी प्रसन्नताके लिये इन्द्रके द्वारा भेजी गयी इन त्रैलोक्य-पावनी मन्दाकिनीमें स्नान कर जो इस अचलेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करेगा, वह जरा और मरणसे रहित परमपदको प्राप्त होगा।'

इतना वरदान देकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और वसिष्ठजी भगवान् शंकरके अनुग्रहसे अत्यन्त प्रसन्न होकर अनेक तीर्थों और देवोंको वहाँ ले आये।

(प्रभासखण्ड, अर्बुद०, अ० १—४)

शिवेति द्व्यक्षरं नाम व्याहरिष्यन्ति ये जनाः। तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति न चान्यथा॥

जो लोग 'शिव' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करेंगे, उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

१-अर्बुदगिरिपर अचलेश्वर महादेव हैं। पावन पुरी काशीमें संकटाघाटपर भी वसिष्ठेश्वर शिव प्रतिष्ठित हैं।

कल्पान्तजीवी महामुनि मार्कण्डेयकी शिवोपासना

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने
विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै।
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय
हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय॥
(श्रीमद्भा० १२।८।४७)

'उन ऐश्वर्याधीश, परमपुरुष, सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वके परम गुरु एवं परम देवता, हंसस्वरूप, वाणीको वशमें रखनेवाले (मुनिरूपधारी), श्रुतियोंके भी आराध्य भगवान् नारायण तथा ऋषिश्रेष्ठ नरको नमस्कार है।'

भगवान्ने तपका आदर्श स्थापित करनेके लिये ही नर-नारायणस्वरूप धारण किया है। वे सर्वेश्वर तपस्वी ऋषियोंके रक्षक एवं आराध्य हैं। मृकण्डु ऋषिके पुत्र मार्कण्डेयजी नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत लेकर हिमालयकी गोदमें पुष्पभद्रा नदीके किनारे उन्हीं ऋषिरूपधारी भगवान् नर-नारायणकी आराधना कर रहे थे। उनका चित्त सब ओरसे हटकर भगवान्में ही लगा रहता था। मार्कण्डेय मुनिको जब इस प्रकार भगवान्की आराधना करते बहुत वर्ष व्यतीत हो गये, तब इन्द्रको उनके तपसे भय होने लगा। देवराजने वसन्त, कामदेव तथा पुञ्जिकस्थला अप्सराको मुनिकी साधनामें विघ्न करनेके लिये वहाँ भेजा। वसन्तके प्रभावसे सभी वृक्ष पुष्पित हो गये, कोकिला कूजने लगी, शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु चलने लगा। अलक्ष्य रहकर वहाँ गन्धर्व गाने लगे और अप्सरा पुञ्जिकस्थला मुनिके सम्मुख गेंद खेलती हुई अपने सौन्दर्यका प्रदर्शन करने लगी। इसी समय कामदेवने अपने फूलोंके धनुषपर सम्मोहन बाण चढ़ाकर उसे मुनिपर छोड़ा। परंतु कामदेव तथा अप्सराके सब प्रयत्न व्यर्थ हो गये। मार्कण्डेयजीका चित्त भगवान् नर-नारायणमें लगा हुआ था, अतः भगवान्की कृपासे उनके हृदयमें कोई विकार नहीं उठा। मुनिकी ऐसी दृढ़ अवस्था देखकर काम आदि डरकर भाग गये। मार्कण्डेयजीमें कामको जीत लेनेका गर्व भी नहीं आया। वे उसे भगवान्की कृपा समझकर और भी भावनिमग्न हो गये।

भगवान्के चरणोंमें मार्कण्डेयजीका चित्त तो पहलेसे लगा था, अब भगवान्की अपनेपर इतनी बड़ी कृपाका अनुभव करके वे व्याकुल हो गये। भगवान्के दर्शनके लिये उनका हृदय आतुर हो उठा। भक्तवत्सल भगवान् उनकी व्याकुलतासे द्रवित होकर उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान् नारायण सुन्दर जलभरे मेघके समान श्याम-वर्णके और नर गौर-वर्णके थे। दोनोंके ही कमलके समान नेत्र करुणासे पूर्ण थे। इस ऋषिवेशमें भगवान्ने जटाएँ बढ़ा रखी थीं और शरीरपर मृगचर्म धारण कर रखा था। भगवान्के मङ्गलमय भव्य स्वरूपको देखकर मार्कण्डेयजी हाथ जोड़कर भूमिपर गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें स्नेहपूर्वक उठाया। मार्कण्डेयजीने किसी प्रकार कुछ देरमें अपनेको स्थिर किया। उन्होंने भगवान्की भलीभाँति पूजा की। भगवान्ने उनसे वरदान माँगनेको कहा।

मार्कण्डेयजीने स्तुति करते हुए भगवान्से कहा—'प्रभो! आपके श्रीचरणोंका दर्शन हो जाय, इतना ही प्राणीका परम पुरुषार्थ है। आपको पा लेनेपर फिर तो कुछ पाना शेष रह ही नहीं जाता, किंतु आपने वरदान माँगनेकी आज्ञा दी है, अतः मैं आपकी माया देखना चाहता हूँ।'

भगवान् तो 'एवमस्तु' कहकर अपने आश्रम बदरीवनको चले गये और मार्कण्डेयजी भगवान्की आराधना, ध्यान तथा पूजनमें लग गये। सहसा एक दिन ऋषिने देखा कि दिशाओं-को काले-काले मेघोंने ढक दिया है। बड़ी भयंकर गर्जना तथा बिजलीकी कड़कके साथ मूसलके समान मोटी-मोटी धाराओंसे पानी बरसने लगा। इतनेमें चारों ओरसे उमड़ते हुए समुद्र बढ़ आये और समस्त पृथ्वी प्रलयके जलमें डूब गयी। मुनि उस महासागरमें विक्षिप्तकी भाँति तैरने लगे। भूमि, वृक्ष, पर्वत आदि सब डूब गये थे। सूर्य, चन्द्र तथा तारोंका भी कहीं पता नहीं था। सब ओर घोर अन्धकार था। भीषण प्रलय-समुद्रकी गर्जना ही सुनायी पड़ती थी। उस समुद्रमें बड़ी-बड़ी भयंकर तरंगें कभी मुनिको यहाँसे वहाँ फेंक देती थीं, कभी कोई जलजन्तु उन्हें काटने लगता था और कभी वे जलमें डूबने लगते थे। जटाएँ खुल गयी थीं, बुद्धि विक्षिप्त हो गयी थी, शरीर शिथिल होता जाता था। अन्तमें व्याकुल होकर उन्होंने भगवान्का स्मरण किया।

भगवान्का स्मरण करते ही मार्कण्डेयजीने देखा कि

सामने ही एक बहुत बड़ा वटका वृक्ष उस प्रलयसमुद्रमें खड़ा है। पूरे वृक्षपर कोमल पत्ते भरे हुए हैं। आश्चर्यसे मुनि और समीप आ गये। उन्होंने देखा कि वटवृक्षकी ईशान कोणकी शाखापर पत्तोंके सट जानेसे बड़ा-सा सुन्दर दोना बन गया है। उस दोनेमें एक अद्भुत बालक लेटा हुआ है। वह नव-जलधर-सुन्दर श्याम है। उसके कर एवं चरण लाल-लाल अत्यन्त सुकुमार हैं। उसके त्रिभुवनसुन्दर मुखपर मन्द-मन्द हास्य है। उसके बड़े-बड़े नेत्र प्रसन्नतासे खिले हुए हैं। श्वास लेनेसे उसका सुन्दर त्रिवलीभूषित पल्लवके समान उदर तनिक-तनिक ऊपर-नीचे हो रहा है। उस शिशुके शरीरका तेज इस घोर अन्धकारको दूर कर रहा है। शिशु अपने हाथोंकी सुन्दर अँगुलियोंसे दाहिने चरणको पकड़कर उसके अँगूठेको मुखमें लिये चूस रहा है। मुनिको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रणाम किया—

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि ॥

उनकी सब थकावट उस बालकको देखते ही दूर हो गयी। वे उसको गोदमें लेनेके लिये लालायित हो उठे और उसके पास जा पहुँचे। पास पहुँचते ही उस शिशुके श्वाससे खिंचे हुए मुनि विवश होकर उसकी नासिकाके छिद्रसे उसीके उदरमें चले गये।

मार्कण्डेयजीने शिशुके उदरमें पहुँचकर जो कुछ देखा उसका वर्णन नहीं हो सकता। वहाँ उन्होंने अनन्त ब्रह्माण्ड देखे। वहाँकी विचित्र सृष्टि देखी। सूर्य, चन्द्र, तारागण प्रभृति सब उन्हें दिखायी पड़े। उनको वहाँ समुद्र, नदी, सरोवर, वृक्ष, पर्वत आदिसहित पृथ्वी भी सभी प्राणियोंसे पूर्ण दिखायी पड़ी। पृथ्वीपर घूमते हुए वे शिशुके उदरमें ही हिमालय पर्वतपर पहुँचे। वहाँ पुष्पभद्रा नदी और उसके तटपर अपना आश्रम भी उन्होंने देखा। यह सब देखनेमें उन्हें अनेक युग बीत गये। वे विस्मयसे चकित हो गये। उन्होंने नेत्र बंद कर लिये। इसी समय उस शिशुके श्वास छोड़नेसे श्वासके साथ वे फिर बाहर उसी प्रलयसमुद्रमें गिर पड़े। उन्हें वही गर्जन करता समुद्र, वही वट-वृक्ष और उसपर वही अद्भुत सौन्दर्यघन शिशु दिखलायी पड़ा। अब मुनिने उस बालकसे ही इस सब दृश्यका रहस्य पूछना चाहा। जैसे ही वे कुछ पूछनेको हुए, सहसा सब अदृश्य हो गया। मुनिने देखा कि वे तो अपने आश्रमके पास पुष्पभद्रा नदीके तटपर संध्या करने वैसे ही बैठे हैं। वह शिशु, वह वटवृक्ष, वह प्रलयसमुद्र आदि कुछ भी वहाँ नहीं है। भगवान्‌की कृपा समझकर मुनिको बड़ा ही आनन्द हुआ।

भगवान्‌ने कृपा करके अपनी मायाका स्वरूप दिखलाया कि किस प्रकार उन सर्वेश्वरके भीतर ही समस्त ब्रह्माण्ड हैं, उन्हींसे सृष्टिका विस्तार होता है और फिर सृष्टि उनमें ही लय हो जाती है। इस कृपाका अनुभव करके मुनि मार्कण्डेय ध्यानस्थ हो गये। उनका चित्त दयामय भगवान्‌में निश्चल हो गया। इसी समय उधरसे नन्दीपर बैठे पार्वतीजीके साथ भगवान् शंकर निकले। मार्कण्डेयजीको ध्यानमें एकाग्र देख भगवती उमाने शंकरजीसे कहा—'नाथ! ये मुनि कितने तपस्वी हैं। ये कैसे ध्यानस्थ हैं। आप इनपर कृपा कीजिये, क्योंकि तपस्वियोंकी तपस्याका फल देनेमें आप समर्थ हैं।'

भगवान् शंकरने कहा—'पार्वती! ये मार्कण्डेयजी भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं। ऐसे भगवान्‌के भक्त कामनाहीन होते हैं। उन्हें भगवान्‌की प्रसन्नताके अतिरिक्त और कोई इच्छा नहीं होती, किंतु ऐसे भगवद्भक्तका दर्शन तथा उनसे वार्तालापका अवसर बड़े भाग्यसे मिलता है, अतः मैं इनसे अवश्य बातचीत करूँगा।' इतना कहकर भगवान् शंकर मुनिके समीप गये। किंतु ध्यानस्थ मुनिको कुछ पता न लगा। वे तो भगवान्‌के ध्यानमें शरीर और संसारको भूल गये थे। शंकरजीने योगबलसे उनके हृदयमें प्रवेश किया। हृदयमें त्रिनयन, कर्पूरगौर शंकरजीका अकस्मात् दर्शन होनेसे मुनिका ध्यान भंग हो गया। नेत्र खोलनेपर भगवान् शंकरको आया देख वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पार्वतीजीके साथ शिवजीका पूजन किया। भक्तवत्सल भगवान् शंकरने उनसे वरदान माँगनेको कहा। मुनिने प्रार्थना की—'दयामय! आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान दें कि भगवान्‌में मेरी अविचल भक्ति हो। आपमें मेरी स्थिर श्रद्धा रहे। भगवद्भक्तोंके प्रति मेरे मनमें अनुराग रहे।'

शंकरजीने 'एवमस्तु' कहकर मुनिको कल्पान्ततक अमर रहने और पुराणाचार्य होनेका वरदान दिया। मार्कण्डेयपुराणके उपदेशक मार्कण्डेय मुनि ही हैं।

मार्कण्डेयजीपर श्रीभगवान् शंकरकी कृपा पहलेसे ही थी। पद्मपुराण उत्तरखण्डमें आया है कि इनके पिता मुनि मृकण्डुने अपनी पत्नीके साथ घोर तपस्या करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया था और उन्हींके वरदानसे मार्कण्डेयको पुत्ररूपमें पाया था। भगवान् शंकरने उसे सोलह वर्षकी ही आयु उस समय दी थी। अतः मार्कण्डेयकी आयुका सोलहवाँ वर्ष आरम्भ होनेपर मृकण्डु मुनिका हृदय शोकसे भर गया। पिताजीको उदास देखकर जब मार्कण्डेयने उदासीका कारण पूछा, तब मृकण्डुने कहा—'बेटा! भगवान् शंकरने तुम्हें सोलह वर्षकी ही आयु दी है, उसकी समाप्तिका समय समीप आ पहुँचा है, इसीसे मुझे शोक हो रहा है।' इसपर मार्कण्डेयने कहा—'पिताजी! आप शोक न करें। मैं भगवान् शंकरको प्रसन्न करके ऐसा यत्न करूँगा कि मेरी मृत्यु हो ही नहीं।' तदनन्तर माता-पिताकी आज्ञा लेकर मार्कण्डेयजी दक्षिण समुद्रके तटपर चले गये और वहाँ विधिपूर्वक शिवलिङ्गकी स्थापना करके आराधना करने लगे। समयपर 'काल' आ पहुँचा। मार्कण्डेयजीने कालसे कहा—'मैं शिवजीका मृत्युञ्जय-स्तोत्रसे स्तवन कर रहा हूँ, इसे पूरा कर लूँ, तबतक तुम ठहर जाओ।' कालने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता।' तब मार्कण्डेयजीने भगवान् शंकरके बलपर कालको फटकारा। कालने क्रोधमें भरकर ज्यों ही मार्कण्डेयको हठपूर्वक ग्रसना चाहा, त्यों ही स्वयं महादेवजी उसी लिङ्गसे प्रकट हो गये। हुँकार भरकर मेघके समान गर्जना करते हुए उन्होंने कालकी छातीमें लात मारी। मृत्यु देवता उनके चरण-प्रहारसे पीड़ित होकर दूर जा पड़े। भयानक आकृतिवाले कालको दूर पड़े देख मार्कण्डेयजीने पुनः इसी स्तोत्रसे भगवान् शंकरजीका स्तवन किया—

स्तोत्र

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम् ।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम् ।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
देवसिद्धतरङ्गिणीकरसिक्तशीतजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
कुण्डलीकृतकुण्डलीश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्गविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम् ।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् ।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसङ्घनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
भक्तवत्सलमर्चतां निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम् ।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम् ।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमावृतं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
कालकण्ठं कलामूर्तिं कालाग्निं कालनाशनम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरुपद्रवम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
देवदेवं जगन्नाथं देवेशमृषभध्वजम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥

अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
(पद्म०, उत्तर० २३७। ७५—९०)

कैलासके शिखरपर जिनका निवासगृह है, जिन्होंने मेरु गिरिका धनुष, नागराज वासुकिकी प्रत्यञ्चा और भगवान् विष्णुको अग्निमय बाण बनाकर तत्काल ही दैत्योंके तीनों पुरोंको दग्ध कर डाला था, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन—इन पाँच दिव्य वृक्षोंके पुष्पोंसे सुगन्धित युगल चरण-कमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जिन्होंने अपने ललाटवर्ती नेत्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालामें कामदेवके शरीरको भस्म कर डाला था, जिनका श्रीविग्रह सदा भस्मसे विभूषित रहता है, जो भव—सबकी उत्पत्तिके कारण होते हुए भी भव—संसारके नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो मतवाले गजराजके मुख्य चर्मकी चादर ओढ़े परम मनोहर जान पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरण-कमलोंकी पूजा करते हैं तथा जो देवताओं और सिद्धोंकी नदी गङ्गाकी तरंगोंसे भीगी हुई शीतल जटा धारण करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

गेंडुली मारे हुए सर्पराज जिनके कानोंमें कुण्डलका काम देते हैं, जो वृषभपर सवारी करते हैं, नारद आदि मुनीश्वर जिनके वैभवकी स्तुति करते हैं, जो समस्त भुवनोंके स्वामी, अन्धकासुरका नाश करनेवाले, आश्रितजनोंके लिये कल्प-वृक्षके समान और यमराजको भी शान्त करनेवाले हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो यक्षराज कुबेरके सखा, भग देवताकी आँख फोड़नेवाले और सर्पोंके आभूषण धारण करनेवाले हैं, जिनके श्रीविग्रहके सुन्दर वामभागको गिरिराजकिशोरी उमाने सुशोभित कर रखा है, कालकूट विष पीनेके कारण जिनका कण्ठभाग नीले रंगका दिखायी देता है, जो एक हाथमें फरसा और दूसरेमें मृगमुद्रा धारण किये रहते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो जन्म-मरणके रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये औषधरूप हैं, समस्त आपत्तियोंका निवारण और दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले हैं, सत्त्व आदि तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते, भोग और मोक्षरूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशिका संहार करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो भक्तोंपर दया करनेवाले हैं, अपनी पूजा करनेवाले मनुष्योंके लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं, जो सब भूतोंके स्वामी, परात्पर, अप्रमेय और उपमारहित हैं, पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमाके द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते, फिर विष्णुरूपसे सबके पालनमें संलग्न रहते और अन्तमें सारे प्रपञ्चका संहार करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंमें जिनका निवास है तथा जो गणेशजीके पार्षदोंसे घिरकर दिन-रात भाँति-भाँतिके खेल किया करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो दुःखको दूर करनेके कारण रुद्र कहलाते हैं, जीवरूपी पशुओंका पालन करनेसे पशुपति, स्थिर होनेसे स्थाणु, गलेमें नीला चिह्न धारण करनेसे नीलकण्ठ और भगवती उमाके स्वामी होनेसे उमापति नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जिनके गलेमें काला दाग है, जो कलामूर्ति, कालाग्नि-स्वरूप और कालके नाशक हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जिनका कण्ठ नील और नेत्र विकराल होते हुए भी जो अत्यन्त निर्मल और उपद्रवरहित हैं, उन भगवान्

मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो वामदेव, महादेव, विश्वनाथ और जगद्गुरु नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो देवताओंके भी आराध्यदेव, जगत्के स्वामी और देवताओंपर भी शासन करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न बना हुआ है, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दुःखोंका हरण करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो परमानन्दस्वरूप, नित्य एवं कैवल्यपद—मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो स्वर्ग और मोक्षके दाता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

इस प्रकार शंकरजीकी कृपासे मार्कण्डेयजीने मृत्युपर विजय लाभ किया था।

रुद्रावतार महर्षि श्रीदुर्वासाकी शिव-भक्ति

महर्षि दुर्वासा अत्रिमुनिके पुत्ररूपमें भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न हुए थे। अतः ये रुद्रावतार नामसे भी प्रसिद्ध हैं। अपने परमाराध्य भगवान् शंकरमें इनकी विशेष भक्ति थी। ये भस्म एवं रुद्राक्ष धारण किया करते थे। इनका स्वभाव अत्यन्त उग्र था। यद्यपि उग्र स्वभावके कारण इनके शापसे सभी भयभीत रहते थे तथापि इनका क्रोध भी प्राणियोंके परम कल्याणके लिये ही होता रहा है।

एक समय महर्षि दुर्वासा समस्त भूमण्डलका भ्रमण करते हुए पितृलोकमे जा पहुँचे। वे सर्वाङ्गमें भस्म रमाये एवं रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। हृदयमें पराम्बा भगवती पार्वतीका ध्यान और मुखसे—'जय पार्वती हर' का उच्चारण करते हुए कमण्डलु तथा त्रिशूल लिये दुर्वासामुनिने वहाँ अपने पितरोंका दर्शन किया। इसी समय उनके कानोंमें करुण-क्रन्दन सुनायी पड़ा। वे पापियोंके हाहाकारमय भीषण रुदनको सुनकर कुम्भीपाक, रौरव नरक आदि स्थानोंको देखनेके लिये दौड़ पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने वहाँके अधिकारियोंसे पूछा—'रक्षको! यह करुण-क्रन्दन किनका है ? ये इतनी यातना क्यों सह रहे हैं ?' उन्होने उत्तर दिया—'मुने! यह संयमनीपुरीका कुम्भीपाक नामक नरक है। यहाँ वे ही लोग आकर कष्ट भोगते हैं, जो शिव, विष्णु, देवी, सूर्य तथा गणेशके निन्दक है और जो वेद-पुराणकी निन्दा करते हैं, ब्राह्मणोंके द्रोही हैं और माता, पिता, गुरु तथा श्रेष्ठ जनोंका अनादर करते हैं, जो धर्मके दूषक हैं वे पतितजन यहाँ घोर कष्ट पाते हैं। उन्हीं पतितोंका यह महाघोर दारुण शब्द आपको सुनायी दे रहा है।'

यह सुनकर दुर्वासा ऋषि बहुत दुखी हुए और दुखियोंको देखनेके लिये वे उस कुण्डके पास गये। कुण्डके समीप जाकर ज्यों ही वे सिर नीचा करके देखने लगे त्यों ही वह कुण्ड स्वर्गके समान सुन्दर हो गया। वहाँके पापी जीव एकाएक प्रसन्न हो उठे और दुःखोसे मुक्त होकर गद्गदस्वरसे मधुर भाषण करने लगे। उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और त्रिविध समीर चलने लगे। वसन्त ऋतुके समान उस सुखदायी समयने यमदूतोंको भी विस्मयमें डाल दिया। स्वयं मुनि भी यह आश्चर्य देखकर बड़े सोचमें पड़ गये। चकित होकर यमदूतोंने धर्मराजके निकट जाकर इस आश्चर्यमय स्थिति-परिवर्तनकी सूचना दी और कहा—'महाभाग! बड़े आश्चर्यकी बात है कि सभी पापियोंको इस समय अपार आनन्द हो गया है, किसीको किसी प्रकारकी यम-यातना रह ही नहीं गयी। विभो! यह क्या बात है ?' दूतोंकी यह बात सुनते ही धर्मराज स्वयं वहाँ गये और वहाँका दृश्य देखकर वे भी बहुत चकित हुए। उन्होंने सभी देवताओंको बुलाकर इसका कारण पूछा, परंतु किसीको इसका मूल कारण नहीं मालूम हो सका। जब किसी प्रकार इसका पता न चला, तब ब्रह्मा और विष्णुकी सहायतासे धर्मराज स्वयम्भू भगवान् शंकरके पास गये। पार्वतीके साथ विराजमान भगवान्

शंकरका दर्शनकर वे स्तुति-प्रार्थना करते हुए कहने लगे—

'हे देवदेव ! कुम्भीपाकका कुण्ड एकाएक स्वर्गके समान हो गया, इसका क्या कारण है ? प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, अतः आपकी सेवामें हम आये हैं। हमलोगोंके संदेहको आप दूर करनेकी कृपा करें।' सर्वान्तर्यामी भगवान्‌ने गम्भीर स्वरसे हँसते हुए कहा—'देवगणो ! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है, यह विभूति (भस्म) का ही माहात्म्य है। जिस समय मेरे परम भक्त दुर्वासा कुम्भीपाक नरकको देखने गये थे, उस समय वायुके वेगसे उनके ललाटसे भस्मके कुछ कण उस कुण्डमें गिर पड़े थे। इसी कारण वह नरक स्वर्गके समान हो गया है और अब वह स्वर्गीय 'पितृतीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध होगा[1]।'

भगवान् शंकरकी बात सुनकर धर्मराजसहित सभी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने उस कुण्डके समीप शिवलिङ्ग तथा देवी पार्वतीकी स्थापना की और वहाँके पापियोंको मुक्त कर दिया। तभीसे पितृलोकमें उस मूर्तिके दर्शन-पूजन करके पितृलोग शिवधाम (मोक्ष) प्राप्त करने लगे। यह चमत्कार परम शैव रुद्रावतार महर्षि दुर्वासाकी शिवभक्ति तथा उनके भालपर विराजमान शिवविभूतिका ही था।

(देवीभागवत)

कल्पकल्पान्तजीवी परम शैव महर्षि लोमशकी शिवाराधना

प्राचीन कालमें एक बड़ा दरिद्र शूद्र था। भूख और प्यासके मारे वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। कहीं भी उसे पेट भर अन्न नहीं मिलता था। एक समय वह घूमता हुआ एक तीर्थ (जलाशय) के संनिकट पहुँचा। उसीके समीप एक शिवमन्दिर था। प्यासके मारे उसके प्राण सूखे जा रहे थे। इसलिये वह झटपट उस जलाशयमें प्रविष्ट हो गया और जल पीकर स्नान करने लगा। वहाँ स्नानसे पवित्र हो, उसीमेंसे कमलके मनोहर पुष्प लेकर तथा कमलपत्रमें शीतल सुगन्धित जल भर करके उसने मन्दिरमें प्रवेश किया और महादेवजीको स्नान कराकर बड़ी भक्तिसे कमलके पुष्प चढ़ाये। संसारमें अनेक योनियोंमें करोड़ों बार जन्म ले-लेकर पापरहित होनेपर प्राणी शंकरकी भक्ति कर सकता है। यदि उसका प्रारब्ध अच्छा होता है तो उसको सब साधन मिल जाते हैं और पूर्णभावसे जगत्‌के कारणभूत शंकरमें उसकी अनन्य भक्ति हो जाती है। प्रारब्धवश उस दरिद्रकी भी शिवभक्ति जाग्रत् हो उठी थी और पूजा-सम्भारकी सामग्री भी उसे अनायास प्राप्त हो गयी थी। उसी अदृष्ट प्रेरणावश फिर उसने भगवान् श्रीकण्ठको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और शुद्ध हृदयसे उनकी स्तुति करके उस दुःखसे मुक्ति पानेकी प्रार्थना की।

उसी एक बारकी पूजाके प्रभावसे उस शूद्र शरीरका परित्याग करनेके अनन्तर उसने परम कुलीन ब्राह्मणके घरमें जन्म प्राप्त किया। पूर्वजन्मके शिवार्चनके पुण्यसे उसको पिछले जन्मकी सब बातोंका यथावत् ज्ञान था। अतएव इस संसारको सर्वथा मिथ्या समझकर उन्होंने प्रारम्भसे ही मौनव्रत धारण कर लिया। उनके पिताने भगवान् शंकरकी बड़ी कठिन आराधना करके वृद्धावस्थामें वही एक पुत्र पाया था। अतः उनका नाम ईशान रखा गया, परंतु जब उस वृद्ध ब्राह्मणने अपने पुत्रको गूँगा समझा तो उन्हें दारुण दुःख हुआ। उनके गूँगेपनको दूर करनेका निश्चय कर उन्होंने अच्छे-अच्छे वैद्योंसे अनेक ओषधियाँ करायीं, अनेक प्रकारके मन्त्र-यन्त्रोंका आश्रय लिया, पर किसीसे कुछ लाभ नहीं हुआ। अपने माता-पिताको इस प्रकार उपाय करते देखकर ईशानको मन-ही-मन बड़ी हँसी आती थी और दुःख भी होता था, पर उनका वैराग्य दृढ़ था, अतः वे अपने निश्चयसे तनिक भी विचलित

१- कुम्भीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसम्मतः ॥
अवाङ्मुखो ददर्शाथ लदा वायुवशाद्धरे। भाले भस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगत ॥
तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम्। इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम्॥
भविष्यति न संदेहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत्।
(देवीभा० ११।१५।६४—६७)

नहीं हुए।

ईशान युवावस्थामें रातके समय घरसे निकलकर चुपचाप कमलके फूलोंसे शिवजीकी पूजा कर आते और घरमें आकर सो जाया करते थे। वे अन्न न खाकर केवल फलाहार करते और मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् सदाशिवकी आराधना किया करते।

इस प्रकार आराधना करते-करते सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। उनके दर्शन पाकर वे मुक्तकण्ठसे उनकी स्तुति करते हुए कहने लगे कि 'हे सदाशिव! हे करुणावरुणालय! आप भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेमें बहुत प्रसन्न होते हैं। थोड़ी-सी भी आराधना करनेसे आप उसे अनन्त फल देते हैं। हे भगवन्! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे जरा और मरणसे रहित कर दीजिये। आपके कृपाकटाक्षमात्रसे मेरी कामना पूरी हो सकती है।'

यह सुनकर भगवान् शम्भुने अपनी प्रेममयी वाणीमें कहा—'वत्स! नाम और रूप धारण करनेवाले व्यक्तिको जरा और मरणसे छुटकारा नहीं मिल सकता। जिसने जन्म लिया है, उसको निश्चय मरना होगा। इसलिये जितना चाहो, उतना दीर्घ जीवन मैं तुमको दे दूँ, पर अनन्त जीवन प्राप्त करना दुर्लभ है।'

भगवान्‌के ऐसे वचन सुनकर ईशानने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि 'हे प्रभो! यदि आप मुझे अजर-अमर नहीं भी करें तो कृपाकर यह वर दीजिये कि एक कल्प व्यतीत होनेपर मेरे शरीरका एक रोम गिरा करे और जब सब रोम गिर जायँ तब मेरा शरीर छूटे। शरीर-पातके पश्चात् मैं आपका गण बनूँ।' भगवान् सदाशिवने हर्षपूर्वक उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे कैलासको चले गये। उसी दिनसे ईशानका नाम लोमश पड़ गया और वे अपना सारा समय भगवान् शंकरकी आराधनामें बिताने लगे।

भगवान् शंकरकी उपासना कर लोमश महर्षिने इतना दीर्घ जीवन प्राप्त किया जितना कि संसारमें किसीको भी नहीं मिला था। उनकी आराधना करनेसे त्रिलोकीमें ऐसी कोई वस्तु नहीं जो न प्राप्त हो सके। शंकरकी सेवासे तथा प्रणवमन्त्रके जपसे बिना प्रयासके मुक्ति मिल जाती है। सब पापोंके क्षय हो जानेसे शिवजीके चरणोंमें मन लगता है। जिनका हृदय पापोंसे भरा है, उन्हें शिव-भजन अच्छा नहीं लगता। प्रथम तो इस भारतवर्षकी पावन भूमिमें मनुष्य-जन्म पाना ही दुर्लभ है, मनुष्य-जन्म पानेपर कर्मका अधिकारी होना उससे भी दुर्लभ है। कर्मके अधिकारी द्विजजातिमें जन्म भी प्राप्त हुआ तो भगवान् महादेवजीमें अविचल भक्ति होना नितान्त दुर्लभ है। पूर्वजन्मके जब बड़े पुण्य होते हैं तभी इन शुभ कर्मोंकी ओर मनकी प्रवृत्ति होती है, अन्यथा नहीं। परंतु शिवभक्तोंके लिये न तो संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ है और न कोई कार्य ही असाध्य है—

न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चासाध्यं महात्मनाम्।
शिवभक्तिकृतां पुंसां त्रिलोक्यामिति निश्चितम्॥

(स्कन्दपु०, कौमा० १२। ५९)

महान् शिवभक्त महर्षि गर्गाचार्यकी शिवोपासना

महर्षि गर्ग आङ्गिरस गोत्रके एक प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद ६। ४७ सूक्तके द्रष्टा भगवान् गर्ग ही हैं। इनका प्रसिद्ध आश्रम कुरुक्षेत्रमें देवनदी सरस्वतीके तटपर निर्दिष्ट है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इन्होंने यहीं ज्ञान प्राप्त किया और ज्योतिषशास्त्रके ग्रन्थोंकी रचना की। गर्गसंहिता-जैसा परम पवित्र ऐतिहासिक ग्रन्थ महर्षि गर्गाचार्यकी ही कृति है। महर्षि गर्ग परम शिवभक्त थे। ये महाराज पृथुके और यदुवंशियोंके गुरु तथा कुलपुरोहित रहे हैं। गोत्रकार ऋषियोंमें आपकी गणना विशिष्ट रूपमें होती है। यह प्रसिद्ध है कि भगवान् गर्गाचार्यने भगवान् शंकरकी आराधनासे श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त किया था। भगवान् शंकरमें इनकी अटूट श्रद्धा एवं भक्ति थी। महाभारतमें वर्णन आया है कि इन्होंने सरस्वती नदीके तटपर मानस यज्ञ करके भगवान् शिवको संतुष्ट किया था। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने इन्हें चौंसठ कलाओंका अद्भुत ज्ञान प्रदान किया। शिवकी कृपासे इन्हें इनके ही समान एक सहस्र ब्रह्मवादी पुत्र हुए और पुत्रोंसहित दस लाख वर्षकी आयु प्राप्त हुई।

(महाभा०, अनु० १८। ३८-३९)

देवी अनसूया एवं महर्षि अत्रिकी शिवोपासना

दक्षिण दिशामें चित्रकूट पर्वतके समीप परम पावन कामद नामका एक वन था। ब्रह्माजीके मानसपुत्र महर्षि अत्रि अपनी परम पतिव्रता पत्नी अनसूयाके साथ उसी वनमें निवास करते हुए भगवान् महेश्वरकी आराधनामें अपने समयका सदुपयोग कर रहे थे। एक बार ऐसा हुआ कि सौ वर्षोंतक बिलकुल ही वर्षा नहीं हुई। पृथिवी जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियोंसे विहीन हो गयी। अन्न तथा जलके अभावमें सर्वत्र महान् हाहाकार व्याप्त हो गया। समस्त संसार अत्युग्र तापसे जलने लगा। महर्षि अत्रि उस समय भी समाधिमें, भगवान् शंकरमें अपने आत्माको लगाये हुए परमानन्दमें मग्न थे। गुरुजीको ध्यानमग्न देख तथा अन्न आदिके अभावमें क्षुधासे पीड़ित शिष्य भी वहाँसे अन्यत्र चले गये। अब केवल अनसूया ही उस निर्जन वनमें रह गयीं। वे भला अपने पतिको ऐसी अवस्थामें छोड़कर कहाँ जा सकती थीं। ऐसे समयमें पतिकी परिचर्या और महादेवजीकी आराधनाको ही उन्होंने इस भयंकर आपत्तिसे बचनेका एकमात्र उपाय समझा।

अनसूयाने पतिदेवके समीप ही एक सुन्दर पार्थिव लिङ्गकी स्थापना की और अवर्षणके कारण अन्य किसी उपचारके न मिलनेसे वे मानस उपचारोंद्वारा भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करने लगीं। इस तरह उनका पूजनकर हाथ जोड़ भगवान् शंकर और अपने पतिकी परिक्रमा करतीं और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करती थीं। अन्न-जलका उन्होंने बिलकुल परित्याग कर दिया। इन दोनों देवोंकी उपासना ही उनका एकमात्र कार्य रह गया था।

अत्रिके तप और अनसूयाकी आराधनासे सभी देवता तथा ऋषि आश्चर्य करने लगे और दर्शन करनेके लिये वहाँ आये। गङ्गा आदि पवित्र नदियोंको भी आश्चर्य हुआ और वे भी वहाँ आ पहुँचीं।

सभी देवगण तथा मूर्तिमती पुण्यतोया गङ्गा आदि नदियाँ दोनोंके त्याग, सेवा, तपस्याकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। कुछ समयके बाद अन्य सभी देवता, ऋषि-महर्षि तो चले गये, किंतु गङ्गा माता और भगवान् महादेव वहीं रुक गये। भगवती गङ्गा अनसूयाके पातिव्रत-धर्म तथा शिव-सेवामें अनन्य निष्ठाके प्रभावसे मुग्ध होकर वहाँ रह गयीं और उन्होंने बिना कुछ उपकार किये वहाँसे न हटनेका निश्चय कर लिया तथा भगवान् शंकर महर्षि अत्रिके ध्यानके बन्धनमें ऐसे बँध गये कि वहाँसे न हट सके।

चौवन वर्षके पश्चात् महर्षि अत्रिकी समाधि टूटी। उठते ही उन्होंने जल माँगा। किंतु जलका तो वहाँ कहीं नाम भी न था। बेचारी अनसूया बहुत चिन्तित हुई और कमण्डलु लेकर जलकी खोजमें चलीं। उनके पीछे-पीछे सब नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी भी चलीं। मार्गमें उन्होंने अनसूयासे कहा—'देवि! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, मुझसे जो कहो, मैं करनेके लिये तैयार हूँ।'

अनसूयाने पूछा—'हे कमलनयने! आप कौन हैं और कहाँसे पधारी हैं? आप जबतक मुझे अपना पूरा परिचय न दें, तबतक मैं किसी प्रकारकी प्रार्थना कैसे कर सकती हूँ?' अतः आप मुझे अपना यथार्थ परिचय दीजिये।'

मूर्तिमती भगवती गङ्गाने कहा—'हे शुचिस्मिते! मैं गङ्गा हूँ और तुम्हारी पतिभक्ति तथा शिवभक्ति देखकर तुम्हारे वशीभूत हूँ। मुझसे जो वर माँगना हो सो माँग लो।'

गङ्गाजीके ऐसे वचन सुनकर अनसूयाने उन्हें प्रणाम किया और कहा कि 'हे सरिद्वरे! मेरे पतिदेव अभी समाधिसे उठे हैं और जल माँग रहे हैं। इस क्षेत्रमें बहुत वर्षोंसे जल ही नहीं बरसा। मैं जल लाऊँ तो कहाँसे लाऊँ। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे जल दीजिये।'

देवी गङ्गाने अनसूयासे एक गड्ढा खोदवाकर तैयार कराया और क्षणभरमें उस गर्तमें प्रविष्ट होकर जलरूप हो गयीं। उसी समय वह गर्त जलसे भर गया। यह देखकर अनसूयाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसमेंसे जल लेकर अपने पतिदेवके समीप चलीं और गङ्गाजीसे कहने लगीं—'देवि! जबतक मेरे स्वामी यहाँ न आयें, तबतक आप इसी गर्तमें निवास करें।'

गङ्गा बोलीं—'साध्वि! यदि तुम मुझे एक महीनेकी अपनी तपस्याका फल दे दो तो मैं इतनी देरतक इस गड्ढेमें निवास कर सकती हूँ।' अनसूयाने उनका कथन स्वीकार कर लिया और जल लाकर महर्षिको दिया। महर्षिने उस पवित्र जलसे आचमन किया और उसके लोकोत्तर स्वादको पाकर वे

बड़े प्रसन्न एवं विस्मित हुए।

मुनिने इधर-उधर दृष्टि फेरी तो आस-पासके सभी वृक्ष सूखे पाये और दिशाएँ आगसे जलती पायीं। मुनिने अनसूयासे कहा कि 'मालूम होता है कि यहाँ बहुत दिनोंसे जल नहीं बरसा और इस जलका स्वाद विचित्र मालूम पड़ता है। जैसा जल मैं पिया करता था, यह तो वैसा नहीं है, इसलिये बताओ तुम यह जल कहाँसे लायी हो?'

अनसूयाने संकुचित होते हुए विनीत भावसे निवेदन किया कि 'हे पूज्यदेव! भगवान् शंकरकी आराधनासे और आपकी सेवासे गङ्गाजी मेरे ऊपर प्रसन्न होकर यहाँ आयी हैं, यह उन्हींका पवित्र जल है।'

महर्षि अत्रिको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि 'हे सुन्दरि! तुम हँसी करती हो या सत्य कहती हो? तुम कुछ भी कहो, पर मुझे तो विश्वास नहीं होता। योगियों और देवोंके लिये भी जो कार्य दुष्कर है, वह तुमसे कैसे हो सकता है? मुझे तुम्हारे कहनेपर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो तुम चलकर मुझे वह स्थान दिखाओ। बिना देखे मैं विश्वास नहीं कर सकता।'

अनसूयाने मुनिको ले जाकर वह जलपूरित गर्त दिखा दिया। गङ्गाजीके दर्शनसे मुनिके हर्षका पारावार ही न रहा और वे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे कि 'हे देवि! आपने हम सबके ऊपर बड़ी कृपा की है। इस क्षेत्रका बड़ा भाग्य है कि आपका यहाँ शुभ आगमन हुआ है। अब मेरी प्रार्थना यही है कि आप कभी भी इस स्थानका परित्याग न करें।' अनसूयाने भी इसी बातकी प्रार्थना की।

उनका वचन सुनकर गङ्गाजीने अनसूयासे कहा कि 'हे पतिव्रते! यदि तुम शिवजीकी एक वर्षकी पूजाका फल तथा अपने पतिदेवकी सेवाका फल मुझे दे दो तो मैं यहाँ निवास कर सकती हूँ। दान, स्नान, यज्ञ और योग आदिसे किसीसे भी मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि पातिव्रतसे होती है। पतिव्रताको देखकर मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी किसी बातसे नहीं। हे साध्वि! पतिव्रता स्त्रीको देखकर मेरे भी पापोंका नाश हो जाता है। इसलिये संसारके कल्याणार्थ यदि तुम अपने एक वर्षके तपका फल देनेको तैयार हो जाओ, तो मैं यहाँ अपना स्थिर निवास कर लूँगी।'

गङ्गाजीके ऐसे वचन सुनकर पतिव्रता अनसूयाने एक वर्षके कठिन तपका पुण्य-फल उन्हें दे दिया, क्योंकि महापुरुष

लोग स्वयं कष्ट उठाकर दूसरोंका उपकार ही करते हैं। ईख स्वयं तो कोल्हूमें पेरी जाती है, परंतु दूसरोंको मीठा रस देती है। इसी प्रकार सोना स्वयं तो हथौड़ीसे पीटा जाता है, पर आभूषणके रूपमें परिणत होकर दूसरेको विभूषित करता है। ऐसे दुर्लभ पुण्य-फलको पाकर गङ्गाजीने उस स्थानमें रहनेका वचन दे दिया।

उसी समय अनसूयाद्वारा संस्थापित उस पार्थिव शिवलिङ्गमेंसे पञ्चमुख महादेवजीका आविर्भाव हुआ। उन्हें देखकर उन दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। देवदेवेश्वर महादेव बोले—'साध्वि! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, जो वर माँगना हो, माँगो।'

अनसूयाने हाथ जोड़कर कहा कि 'महेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप सदा इस वनमें निवास करें और अपना सर्वदुःखहर दर्शन देकर संसारको भव-बाधासे बचायें।' महर्षि अत्रिने भी भगवान्‌की स्तुति की और वहाँ निवास करनेके लिये प्रार्थना की।

आशुतोष भगवान्‌ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और पार्वती तथा गङ्गाजीके साथ वे 'अत्रीश्वर महादेव'के नामसे उस आश्रममें निवास करने लगे। उसी दिन वह दीर्घ अवर्षण समाप्त हो गया और काले मेघोंने मूसलाधार जल बरसाकर

क्षणभरमें संसारका चिरकालीन ताप नष्ट कर दिया। उस वनमे सब प्रकारके धान्य एवं फल-मूल उत्पन्न होने लगे। दूर-दूरसे ऋषिलोग आकर सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले उस वनमें बस गये। इस प्रकार अनसूयाकी तपस्या, महर्षि अत्रिके पुण्य एवं भगवान् शंकरकी अनुकम्पासे उस वनमें फिर नवजीवन आ गया। इस परम पावन तीर्थमें निवास करनेसे मनुष्यको अवश्य ही मुक्ति मिलती है। उस दिनसे अविनाशीरूपसे स्थित हुआ वह जल हाथभरके गर्तमें मन्दाकिनीके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

(शिवपु०, कोटिरुद्र०, अ०२—४)

शिवाराधनासे महर्षि कपिलको सांख्य-शास्त्रकी प्राप्ति

विख्यात सिद्धर्षि कपिल प्रजापति कर्दम और देवहूतिजीके गर्भसे उत्पन्न भगवान् विष्णुके अवतार थे। ज्ञानकी प्राप्तिके लिये इन्होंने भगवान् आशुतोष शिवकी आराधना की थी। कपिल भगवान् शिवके परम कृपापात्र थे। बिना शंकरकी कृपाके किसी प्राणीको भक्ति प्राप्त होनी दुर्लभ है। जिस मनुष्यकी भगवान् शिवमें दृढ़ भक्ति है, उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इनकी आराधनासे ज्ञानात्मा भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कपिलदेवको अपने दर्शन दिये। भगवान्का दर्शन पाकर वे मुक्तकण्ठसे स्तुति करते हुए बोले—'हे भगवन्! मैंने अनेक जन्मोंसे भक्तिपूर्वक आपकी आराधना की है। अब प्रसन्न होकर मुझे भवभयनाशक विशुद्ध ज्ञान दीजिये।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। विशुद्ध ज्ञान प्राप्तकर भगवान् कपिलने उत्तम सांख्यशास्त्रका प्रणयन किया। उन्होंने स्वयं कहा है—

कपिलश्च ततः प्राह सांख्यर्षिर्देवसम्मतः।
मया जन्मान्यनेकानि भक्त्या चाराधितो भवः॥
प्रीतश्च भगवान् ज्ञानं ददौ मम भवान्तकम्।

(महा०, अनु० १८।४-५)

महर्षि वाल्मीकिकी शिव-शरणागति

जगत्प्रसिद्ध श्रीवाल्मीकीय रामायणके रचयिता आदिकवि महर्षि वाल्मीकिको भला कौन नहीं जानता? तमसा नदीके तीरपर महर्षि वाल्मीकिका आश्रम था। एक समय यज्ञमें वेदसम्बन्धी विवाद होनेपर अग्निहोत्री मुनियोंने कुपित होकर उन्हें 'ब्रह्महत्या' का शाप दे दिया। जिससे ब्रह्महत्याके पापमें लिप्त होकर उन्होंने बहुत दिनोंतक व्याधका कार्य किया। कुछ कालके पश्चात् वे भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले आशुतोष भगवान् शंकरकी शरणमें गये और उनकी आराधनासे समस्त पापोंसे शीघ्र ही मुक्त हो गये। त्रिपुरहन्ता भगवान् महेश्वरने मुनिपर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया—'जाओ, तुम्हारी विमल कीर्ति तीनों लोकमें अमर होगी और तुम्हारा महाकाव्य संसारमें अद्वितीय तथा आदर्श होगा।' फिर क्या था, वे व्याधसे महर्षि वाल्मीकि हो गये। भगवान् शंकरके अन्तर्धान होते ही महर्षि वाल्मीकिको एक अद्भुत प्रकारका ज्ञान उत्पन्न हो गया और उन्होंने उस समय शिवभक्त भगवान् श्रीरामचन्द्रका जो यशोगान किया, वह रामायणकी कथाके रूपमें आज विश्वमें भगवद्भक्तिकी अजस्र धारा बहा रहा है।

महाभारतमें इस वृत्तान्तका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

वाल्मीकिश्चाह भगवान् युधिष्ठिरमिदं वचः।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति॥
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः॥
मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति॥

(महाभा०, अनु० १८।८—१०)

शिवेतिनामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः। भस्मीभवन्त्यनायासात् सत्यं सत्यं न संशयः॥

'शिव' इस नामरूपी दावानलसे बड़े-बड़े पातकोंके असंख्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं।

भगवान् व्यासदेवकी शिवोपासना

परम्परासे यह प्रसिद्धि है कि समस्त आगम-ग्रन्थोंके रचयिता या वक्ता भगवान् शंकर ही हैं। 'आगम' शब्दकी व्युत्पत्तिमें कुलार्णव आदि तन्त्रोंमें कहा गया है कि शिवके मुखसे निकलने और भगवती पार्वतीके कानोंमें प्रविष्ट होनेके कारण इनका नाम 'आगम' पड़ा। 'आगम' शब्दकी प्रसिद्धि **'आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ। तस्मादागम इत्युक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥'**—से हुई। इसीलिये भगवान् शिवको समस्त विद्याओंका मूलस्रोत, उद्गमस्थान या विद्यातीर्थ भी कहा जाता है—**'यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥'** जैसे भगवान् शंकर समस्त विद्याओंके प्रवक्ता हैं, ठीक उसी तरह भगवान् व्यास भी पुराणादि शास्त्रोंके निर्माता या वक्ता कहे गये हैं। भगवान् व्यास समस्त वेदोंके बार-बार उपनिबन्धन करनेके कारण 'वेदव्यास' नामसे प्रसिद्ध हैं। इतिहास, पुराण, उपपुराण, ब्रह्मसूत्र, बृहद्व्यासस्मृति आदि धर्मशास्त्रों, योगदर्शन आदिके भाष्योंके रचयिता होनेके कारण और **'यन्न भारते तन्न भारते'**, **'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'** आदिके अनुसार विश्वका सारा ज्ञान-विज्ञान भगवान् व्यासका उच्छिष्ट ही है। अतः **'व्यासो नारायणः साक्षात्'** के अनुसार भगवान् व्यास भी साक्षात् नारायण और शिव ही हैं। शिवपुराण, स्कन्दपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि प्रायः अधिकांश पुराणों-उपपुराणोंमें विशुद्ध शिव-महिमा ही भरी पड़ी है। केवल संहितात्मक और खण्डात्मक स्कन्दपुराणमें ही प्रायः दो लाखके लगभग अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानवर्धक सुन्दर श्लोक हैं। वे सब-के-सब प्रायः शिव-महिमासे ही ओत-प्रोत हैं। इसीलिये शूलपाणिने तो **'शेषेण भगवान् भवः'** कहकर प्रायः सभी पुराणोंको शिवपरक ही माना है। ये तथ्य वेदव्यासके शिव-प्रेमके ही निदर्शक हैं। भगवान् वेदव्यास आशुतोष भगवान् शिवके अनन्य भक्त हैं। उन्होंने कई शिवलिङ्गोंकी स्थापनाकर उनकी अर्चना की। काशी तथा रामनगरमें कई व्यासेश्वर शिवलिङ्ग हैं। रामनगरसे प्रायः तीन किलोमीटर पूर्व भगवान् व्यासका मन्दिर है। उसमें भगवान् व्यासदेवजीके साथ भगवान् शंकर भी विराजमान हैं। यहाँ व्यास-पूर्णिमाको बड़ा भारी मेला लगता है, यहाँ दूर-दूरसे दर्शनार्थी दर्शनके लिये आते हैं। वहींसे थोड़ी दूरपर प्रायः एक किलोमीटर लंबा-चौड़ा बड़ा-सा पक्का तालाब है, जो प्राचीन पत्थरोंसे सुबद्ध है, जिसके चारों ओर छोटे-बड़े अनेकों शिवलिङ्ग और मन्दिर हैं। काशीखण्डके अनुसार भगवान् व्यासदेव यहीं रहकर सदाशिवकी उपासना करते थे और दूरसे ही भगवान् विश्वनाथपर सदा दृष्टि लगाये रहते थे। प्रत्येक चतुर्दशीको भगवान् विश्वनाथ एवं अन्नपूर्णाका दर्शन करते थे। यह कथा काशीखण्डके अन्तिम प्रायः पाँच अध्यायोंमें विस्तारसे प्रतिपादित है। काशिराजके दुर्गके पश्चिम तरफ गङ्गा-तटपर एक विशाल ताम्रमय शिवलिङ्ग है, जो लगभग तीन हाथ ऊँचा और तदनुरूप ही स्थूल वृत्ताकार एवं रक्तवर्णका है।

शिवपुराणमें वर्णन आया है कि एक बार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले तीर्थराज प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, अमरावती, सरस्वती, सिन्धु, गङ्गासागर आदि तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए श्रीव्यासजी उस अविमुक्त-क्षेत्रमें पहुँचे, जहाँ जगत्पिता भगवान् विश्वेश्वर तथा जगन्माता भगवती श्रीअन्नपूर्णा देवी विराजमान हैं। यहाँ आकर उन्होंने समस्त देवी-देवताओंके दर्शन किये और शास्त्र-विधिसे समस्त वापी-कूप-सरोवर तथा कुण्डोंमें यथाविधि स्नान-दान करते हुए मणिकर्णिका-घाटपर विश्राम किया। तदनन्तर विनायक आदि देवगणोंको संतुष्ट करके आलस्यरहित हो पितृतीर्थमें श्राद्ध-तर्पण किया। इस प्रकार काशीकी पञ्चक्रोशयात्रा करके पुण्यात्मा व्यासजीने 'व्यासेश्वर' नामक शिवलिङ्गकी स्थापना की, जिनके दर्शन-पूजनसे मनुष्य सब विद्याओंमें बृहस्पतिके[1] समान विद्वान् हो जाते हैं।

एक बार व्यासमुनि अपने शिष्योंको पढ़ाकर विश्राम कर रहे थे। इसी समय एकाएक उनके मनमें ग्रन्थ रचनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। वे सोचने लगे कि किस देवी या देवताके

१-स्थापयामास पुण्यात्मा लिङ्गं व्यासेश्वराभिधम्। यद्दर्शनाद्भवेद्विप्र नरो विद्यासु वाक्पतिः ॥ (शिवपु०, उमासं० ४४। ५७)

आराधनसे मुझमें ग्रन्थ रचनेकी शक्ति होगी। सोचते-सोचते सायं-संध्याका समय आ पहुँचा। सायंकालीन संध्योपासनके पश्चात् मुनिवर व्यासजी समाधिस्थ होकर अपने इष्टदेव शंकरजीके ध्यानमें लग गये। इस तरह ध्यान करते-करते कुछ समय बीता। थोड़े दिनों बाद एक जर्जरकाय जटाधारी तपस्वी उनके सामने आये। व्यासजीने नेत्र खोलकर देखा और सामने आये हुए महान् तेजस्वी महात्मासे पूछा—

महात्मन्! किस शिवलिङ्गके आराधनसे हमारी मनःकामना सिद्ध होगी और संसारमें ग्रन्थ-रचनाकी शक्तिका प्रादुर्भाव कैसे होगा? क्योंकि ऋषियोंद्वारा मैंने शिवजीके अनेक नाम सुने हैं, जिनमें (१) ओंकारनाथ, (२) कृत्तिवासेश्वर, (३) केदारेश्वर, (४) कामेश, (५) चन्द्रेश, (६) कलशेश्वर, (७) जाम्बुकेश, (८) जैगीषेश्वर, (९) दशाश्वमेधेश्वर, (१०) द्रुमचण्डकेश, (११) गरुडेश, (१२) गोकर्णेश, (१३) गणेश्वर, (१४) धर्मेश, (१५) प्रसन्नवदनेश, (१६) तारकेश्वर, (१७) मरुतेश, (१८) नन्दिकेश, (१९) निवासेश, (२०) पत्रीश, (२१) पशुपति, (२२) हाटकेश्वर, (२३) तिलभाण्डेश, (२४) भारभूतेश्वर, (२५) विश्वेश्वर, (२६) मुक्तिनाथ, (२७) अमृतेश, (२८) भुवनेश्वर, (२९) विश्वेश्वर, (३०) सिद्धेश्वर, (३१) अजेश्वर, (३२) पार्वतीश्वर, (३३) हिरण्यगर्भेश, (३४) रामेश्वर, (३५) स्थानेश्वर, (३६) रत्नेश, (३७) कोटिरुद्रेश्वर, (३८) कमलेश्वर, (३९) वीरेश्वर, (४०) मध्यमेश्वर इत्यादि[1]—अनेक शिवलिङ्ग विख्यात हैं।

उस महात्माने कहा कि यों तो सभी शिवलिङ्ग समान हैं और सबकी आराधनासे आशुतोष भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं, परंतु आप 'मध्यमेश्वर[2]' महादेवका ध्यान-पूजन करें तो सर्वोत्तम होगा। काशीखण्डमें मध्यमेश्वर नामक शिवलिङ्गका माहात्म्य अवर्णनीय कहा गया है, जिनका दर्शन करनेके लिये समस्त देवता प्रतिपर्वमें वहाँ आते हैं, जिनकी सेवासे कितने ही देवी-देवता और यक्ष-गन्धर्व सिद्ध हो गये हैं। गन्धर्वराज 'तुम्बुरु' और देवर्षि नारद महादेवकी आराधनासे ही संगीतशास्त्रमें प्रवीण हुए हैं। इन्हींकी आराधनासे ब्रह्मा सृष्टि, भगवान् विष्णु पालन और रुद्र प्रलयकालमें इस संसारका संहार करते हैं। इन्हींकी कृपासे शेषनाग समस्त पृथिवीको अपने ऊपर धारण किये हुए हैं। कहाँतक कहा जाय सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वायु सभी चराचर देव-दानव एवं मनुष्य अपने-अपने अधिकारपर स्थिर रहते हुए सिद्धि प्राप्त करते रहते हैं।

उस महात्माके ऐसे वचन सुनकर व्यासजी ध्यानमग्न हो गये और फिर नेत्र खोलनेपर उस महात्माको उन्होंने नहीं देखा। तब अन्तर्धान हुआ जानकर उनके हृदयमें शिवलिङ्गकी आराधनाका दृढ़ निश्चय हो गया।

फिर क्या था, दूसरे ही दिनसे नित्य नियमपूर्वक फलाहार करते हुए श्रीव्यासजी मध्यमेश्वर शिवलिङ्गकी आराधना करने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन व्यासजी पूजाके बाद भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे कि जगत्पिता परमेश्वर शंकरजी बालयोगीके वेषमें प्रत्यक्ष हो गये और श्रीव्यासजी इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—

'हे देवाधिदेव! हे महाभाग! हे शरणागतवत्सल! हे उमापते! वेद भी आपकी महिमाको नहीं जानते हैं। आप ही संसारके उत्पादक, पालक और संहारक हैं। हे सदाशिव! आप सभी देवताओंमें प्रमुख हैं, सच्चिदानन्द हैं, आप त्रिलोकीके मनोरथोंको पूर्ण करते रहते हैं; देवता, योगीन्द्र, मुनीन्द्र भी आपके तत्त्वको नहीं जानते। आप भक्तोंके हृदयमें स्थित हैं, आपको प्रणाम है।'

महामुनि श्रीव्यासजीके स्तुति करनेपर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और मनोवाञ्छित वरदान देकर तथा उनके कण्ठमें स्थित होकर ग्रन्थ-रचनाकी शक्ति देकर अन्तर्धान हो गये। तबसे मध्यमेश्वर महादेवकी ख्याति और भी बढ़ गयी। जो मनुष्य उनकी पूजा और नित्य दर्शन करता है, वह निश्चय ही यशस्वी कवि और श्रीव्यासजीके समान पुराण-इतिहासका प्रसिद्ध लेखक हो जाता है। उन्हींकी कृपासे व्यासजी अमर हो

१-किं वा हिरण्यगर्भेशं किं वा श्रीमध्यमेश्वरम्। इत्यादि कोटिलिङ्गानां मध्येऽहं किमुपाश्रये॥ (शि० पु०, उमासंहिता ४४।७३)

२-(क) अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वरसंज्ञकः। अस्याराधनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः॥ (शिवपु०, उमासंहिता ४८।७३)

(ख) मध्यमेश्वर शिवलिङ्ग, पावन पुरी काशीमें कंपनीबागसे उत्तर बाराटीके निकट स्थित है।

गये और पुराणादि शास्त्रोंके स्रष्टा बन गये।

एवं लब्धवरो व्यासो महेशान्मध्यमेश्वरात्।
अष्टादश पुराणानि प्रणिनाय स्वलीलया॥
(शिवपु०, उमासं० ४४।११९)

स्कन्दपुराणके काशीखण्डके अन्तमें भगवान् व्यासकी शिवोपासना-सम्बन्धी एक सुन्दर कथा आयी है। वैसे तो भगवान् व्यासके भारत तथा भारतके बाहर भी ऐतिहासिक लोग अनेकों आश्रम मानते हैं। पुराणों तथा 'कल्याण' के 'तीर्थाङ्क' में भी उनके कई आश्रम निर्दिष्ट हैं। काशीखण्डके अनुसार नीलकण्ठ महादेवके पास एक गुफा है, जिसमे रहकर उन्होंने अधिकांश पुराणोंकी रचना की थी। अकेले काशीमें ही कई स्थानोंपर उनके रहनेकी चर्चा है। काशीखण्डके अनुसार उनके प्रायः दस हजार शिष्य थे। भाग्यचक्र किसीको नहीं छोड़ता। एक बार कुछ संयोग ऐसा हुआ कि वे तीन दिनोतक समूची काशीमें भिक्षाके लिये अपने शिष्य-मण्डलीके साथ घूमते रह गये, पर उन्हें कहीं भिक्षा न मिल सकी। इससे वे महाविरक्त तपस्वी काशीनिवासी धनियोंपर बहुत क्रुद्ध हुए और बोले कि इन धनियोंके पास कोई भी कमी नहीं है, पर ये धर्मनिरपेक्ष और आचार-विचारसे च्युत होकर धनके मदमें प्रमत्त हो गये है। अतः अब काशीमें इनके दो पीढ़ीसे अधिक धन नहीं रहेगा और दो पीढ़ियोंसे अधिक मुक्ति भी नहीं मिलेगी। यहाँके विद्वान् पण्डितोंने भी ध्यान नहीं दिया तथा हमसे और हमारे शिष्योंसे बात भी न की। इसलिये दो पीढ़ीसे अधिक किसी वंशमें सरस्वती (विद्या) भी नहीं रहेगी—

मा भूत् त्रैपुरुषी विद्या मा भूत् त्रैपुरुषं धनम्।
मा भूत् त्रैपुरुषी मुक्तिः काशीं व्यासः शपन्निति॥

फिर क्या था, तुरंत एक बड़ा आश्चर्य हुआ। एक घरसे अन्नपूर्णा-जैसी देवी बाहर आयी और सभी शिष्योसहित व्यासदेवजीको घरमें ले जाकर सादर भोजन करा दिया। भोजन, पान, दक्षिणा आदिके बाद गृहपति भी उठे और उनसे कहा कि 'महाराज! आपने जो शाप दिया वह तो ठीक है, लेकिन आपमें व्यवसायात्मिका बुद्धि और सहिष्णुताकी अभी कुछ कमी है। क्रोधके कारण ही मनुष्य शाप देता है। काशीमे क्रोधी व्यक्तिकी आवश्यकता नहीं। उसके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं होना चाहिये। अतः आप कृपया काशीसे कहीं बाहर ही रहें और भिक्षाके लिये कभी-कभी प्रतिपक्ष आ जाया करें।'

वास्तवमें वे भगवान् विश्वनाथ एवं अन्नपूर्णा ही थे। तभीसे भगवान् व्यास रामनगरमें निवास करने लगे। ऐसी कथाएँ तथा उपासनाके अनेक प्रसंग पुराणोमें सर्वत्र भरे हैं। यहाँ संक्षेपके कारण केवल एक उदाहरण दिया गया है। श्रद्धालु पाठकोंको विशेष जानकारीके लिये मूलपुराण-उपपुराणोंका अनुशीलन करना चाहिये। समभाव रखकर न्यायोपार्जित धन, गौ, ब्राह्मण, दीन, अनाथ, साधु-संतोंको यथासम्भव वितरित कर उसका उपयोग करना ही वास्तविक शिवोपासना माननी चाहिये, तभी कल्याण है। वस्तुतः शिवोपासकोंको भगवान् शिवके समान ही अल्प परिग्रह एवं अल्प सम्पत्तिसे काम चलाते रहना चाहिये, तभी भगवान् शिव प्रसन्न होंगे। भगवान् व्यासने इसीलिये गीतामें भगवान् श्रीकृष्णके शब्दोंमें (जो सबसे बड़े शिवोपासक हुए हैं) कहा है—**'यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः'** अर्थात् शिवोपासकको स्वाभाविक प्रारब्धवशात् प्राप्त साधनोंसे ही संतुष्ट रहना चाहिये। मत्सरयुक्त नहीं होना चाहिये और सर्वत्र भगवान् शिवको ही सभी प्राणिपदार्थोंमे देखते हुए पवित्र साधनोंसे शिवकी उपासना करनी चाहिये। उसे साध्य, साधक, साधना और सिद्धिको भी शिव—ब्रह्ममय ही देखना चाहिये। वहींका दूसरा वचन है—**'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥'**—इसीसे जीते-जी ही जीवको मुक्ति, ब्रह्मनिर्वाणरूपी पराशान्तिकी प्राप्ति हो जायगी।—**'ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।'**

जरत सकल सुर बृंद विषम गरल जेहिं पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस॥

जिस भयंकर विष [की ज्वाला] से सारे देवतागण जल रहे थे, उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन श्रीशिवजीको क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु [और] कौन है?

शिवभक्त उपमन्युकी शिव-साधना

भक्तराज उपमन्यु परम शिवभक्त वेदतत्त्वके ज्ञाता महर्षि व्याघ्रपादके बड़े पुत्र थे। एक दिन उपमन्युने मातासे दूध माँगा। घरमें दूध था नहीं। माताने चावलोंका आटा जलमें घोलकर उपमन्युको दे दिया। उपमन्यु मामाके घर दूध पी चुके थे। अतएव उन्होंने यह जानकर कि यह दूध नहीं है, मातासे कहा—'मा ! यह तो दूध नहीं है।' ऋषिपत्नी झूठ बोलना नहीं जानती थी, उन्होंने कहा—'बेटा ! तू सत्य कहता है, यह दूध नहीं है। नदी-किनारे, वनों और पहाडोंकी गुफाओंमें जीवन बितानेवाले हम तपस्वी मनुष्योंके यहाँ दूध कहाँसे मिल सकता है, हमारे तो सर्वस्व श्रीशिवजी महाराज हैं। तू यदि दूध चाहता है तो उन जगन्नाथ श्रीशिवजीको प्रसन्न कर। वे प्रसन्न होकर तुझे दूध-भात देंगे।'

माताकी बात सुनकर बालक उपमन्युने पूछा—'मा ! भगवान् श्रीशिवजी कौन हैं ? कहाँ रहते हैं ? उनका कैसा रूप है, मुझे वे किस प्रकार मिलेंगे और उन्हें प्रसन्न करनेका उपाय क्या है ?'

बालकके सरल वचनोंको सुनकर स्नेहवश माताकी आँखोंमें आँसू भर आये। माताने उसे शिवतत्त्व बतलाया और कहा—'तू उनका भक्त बन, उनमें मन लगा, उनमें विश्वास रख, एकमात्र उनकी शरण हो जा, उन्हींका भजन कर, उन्हींको नमस्कार कर। यों करनेसे वे कल्याणस्वरूप तेरा निश्चय ही कल्याण करेंगे। उनको प्रसन्न करनेका महामन्त्र है—**'नमः शिवाय'**।

मातासे उपदेश पाकर बालक उपमन्यु शिवको प्राप्त करनेका दृढ़ संकल्प करके घरसे निकल पड़े। वनमें जाकर प्रतिदिन **'नमः शिवाय'** मन्त्रके द्वारा वनके पत्र-पुष्पोंसे भगवान् शिवकी पूजा करते और शेष समय मन्त्र-जप करते हुए कठोर तप करने लगे। वनमें अकेले रहनेवाले तपस्वी उपमन्युको पिशाचोंने बहुत कुछ सताया, परंतु उपमन्युके मनमें न तो भय हुआ और न विघ्न करनेवालोंके प्रति क्रोध ही। वे उच्च स्वरसे 'नमः शिवाय' मन्त्रका कीर्तन करने लगे। इस पवित्र मन्त्रके सुननेसे मरीचिके शापसे पिशाचयोनिको प्राप्त हुए, उपमन्युके तपमें विघ्न करनेवाले वे मुनि पिशाचयोनिसे छूटकर पुनः मुनिदेहको प्राप्त हो कृतज्ञताके साथ उपमन्युकी सेवा करने लगे।

तदनन्तर देवताओंके द्वारा उपमन्युकी उग्र तपस्याका समाचार सुनकर सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल भोलेनाथ श्रीशंकरजी भक्तका गौरव बढ़ानेके लिये उनके अनन्यभावकी परीक्षा करनेकी इच्छासे इन्द्रका रूप धारणकर श्वेतवर्ण ऐरावतपर सवार हो उपमन्युके समीप जा पहुँचे। मुनिकुमार भक्तश्रेष्ठ उपमन्युने इन्द्ररूपी भगवान् महादेवको देखकर धरतीपर सिर टेककर प्रणाम किया और कहा—'देवराज ! आपने कृपा करके स्वयं मेरे समीप पधारकर मुझपर बड़ी कृपा की है। बतलाइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' इन्द्ररूपी परमात्मा शंकरने प्रसन्न होकर कहा—'हे सुव्रत ! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे मनमाना वर माँगो, तुम जो कुछ माँगोगे, वही मैं तुम्हें दूँगा।'

इन्द्रकी बात सुनकर उपमन्युने कहा—'देवराज ! आपकी बड़ी कृपा है, परंतु मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहता। मुझे न तो स्वर्ग चाहिये, न स्वर्गका ऐश्वर्य ही। मैं तो भगवान् शंकरका दासानुदास बनना चाहता हूँ। जबतक वे प्रसन्न होकर मुझे दर्शन नहीं देंगे, तबतक मैं तपको नहीं छोड़ूँगा। त्रिभुवनसार, सबके आदिपुरुष, अद्वितीय, अविनाशी भगवान् शिवको प्रसन्न किये बिना किसीको स्थिर शान्ति नहीं मिल सकती। यदि मेरे दोषोंके कारण मुझे इस जन्ममें भगवान्के दर्शन न हों और मेरा फिर जन्म हो तो उसमें भी भगवान् शिवपर ही मेरी अक्षय और अनन्य भक्ति बनी रहे।'

इन्द्रसे इस प्रकार कहकर उपमन्यु फिर अपनी तपस्यामें लग गये। तब इन्द्ररूपधारी शंकरने उपमन्युके सामने अपने गुर्णोंद्वारा अपनी ही निन्दा करना आरम्भ किया। मुनिको शिवनिन्दा सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ, कभी क्रोध न करनेवाले मुनिके मनमें भी इष्टकी निन्दा सुनकर क्रोधका संचार हो आया और उन्होंने इन्द्रका वध करनेकी इच्छासे अघोरास्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर इन्द्रपर फेंकी और शिवनिन्दा सुननेके प्रायश्चित्तस्वरूप अपने शरीरको भस्म करनेके लिये आग्नेयी धारणाका प्रयोग करने लगे।

उनकी यह स्थिति देखकर भगवान् शंकर परम प्रसन्न हो गये। भगवान्के आदेशसे 'आग्नेयी धारणा'का निवारण हो

गया और नन्दीने अघोरास्त्रका निवारण कर दिया। इतनेमें ही उपमन्युने चकित होकर देखा कि ऐरावत हाथीने चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिवाले बैलका रूप धारण कर लिया और इन्द्रकी जगह भगवान् शिव अपने दिव्य रूपमें जगज्जननी उमाके साथ उसपर विराजमान हैं। वे करोड़ों सूर्योंके समान तेजसे आच्छादित और करोड़ों चन्द्रमाओंके समान सुशीतल सुधामयी किरणधाराओंसे घिरे हुए हैं। उनके शीतल तेजसे सब दिशाएँ प्रकाशित और प्रफुल्लित हो गयीं। वे अनेक प्रकारके सुन्दर आभूषण पहने थे। उनके उज्ज्वल सफेद वस्त्र थे। सफेद फूलोंकी सुन्दर माला उनके गलेमें थी। श्वेत मस्तकपर चन्दन लगा था। श्वेत ही ध्वजा थी, श्वेत ही यज्ञोपवीत था। धवल चन्द्रयुक्त मुकुट था। सुन्दर दिव्य शरीरपर सुवर्ण-कमलोंसे गुँथी हुई और रत्नोंसे जड़ी हुई माला सुशोभित हो रही थी। माता उमाकी शोभा भी अवर्णनीय थी। ऐसे देव-मुनिवन्दित भगवान् शंकरके माता उमाके सहित दर्शन प्राप्तकर उपमन्युके हर्षका पार नहीं रहा। उपमन्यु गद्गदकण्ठसे प्रार्थना करने लगे।

भक्तकी निष्कपट और सरल प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने कहा—'बेटा उपमन्यु ! मैं तुझपर परम प्रसन्न हूँ। मैंने भलीभाँति परीक्षा करके देख लिया कि तू मेरा अनन्य और दृढ़ भक्त है। बता, तू क्या चाहता है ? यह याद रख कि तेरे लिये मुझको कुछ भी अदेय नहीं है।' भगवान् शंकरके स्नेहभरे वचनोंको सुनकर उपमन्युके आनन्दकी सीमा न रही। उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी धारा बहने लगी। वे गद्गद-स्वरसे बोले—'नाथ ! आज मुझे क्या मिलना बाकी रह गया ? मेरा यह जन्म सदाके लिये सफल हो गया। देवता भी जिनको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते, वे देवदेव आज कृपा करके मेरे सामने विराजमान हैं—इससे अधिक मुझे और क्या चाहिये। इसपर भी आप यदि देना ही चाहते हैं तो यही दीजिये कि आपके श्रीचरणोंमें मेरी अविचल और अनन्य भक्ति सदा बनी रहे।'

भगवान् चन्द्रशेखरने उपमन्युका मस्तक सूँघकर उन्हें देवीके हाथोंमें सौंप दिया। देवीजीने भी अत्यन्त स्नेहसे उनके मस्तकपर हाथ रखकर उन्हें अविनाशी कुमारपद प्रदान किया। तदनन्तर भगवान् शिवजीने कहा— 'बेटा ! तू आज अजर, अमर, तेजस्वी, यशस्वी और दिव्य ज्ञानयुक्त हो गया। तेरे सारे दुःखोंका सदाके लिये नाश हो गया। तू मेरा अनन्य भक्त है। यह दूध-भातकी खीर ले।' यह कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। उपमन्युने ही भगवान् श्रीकृष्णको शिवमन्त्रकी दीक्षा दी थी।

महान् शिवभक्त गन्धर्वराज पुष्पदन्तकी शिवाराधना

परम शिवभक्तोंकी गणनामें गन्धर्वराज पुष्पदन्तका नाम विशेष आदरके साथ लिया जाता है। 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' शिवविषयक साहित्यका अत्यन्त विशिष्ट और प्रधान अङ्ग है। इसके रचयिता परम शिवभक्त गन्धर्वराज पुष्पदन्त ही थे। शिवकी यश-भागीरथीमें उनकी पवित्र वाणीने अवगाहन कर शैव जगत्को जो रत्न प्रदान किये हैं, वे भक्ति-साहित्यकी श्रीवृद्धिमें सदा अमूल्य योग देते रहेंगे।

गन्धर्वराज पुष्पदन्त प्रतिदिन शिवकी आराधनाके लिये प्रातःकाल ही एक राजाके उपवनसे सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्प तोड़ लाया करते थे। राजा पुष्पोंको न पाकर मालियोंको कठोर दण्ड दिया करता था। मालियोंने बड़े-बड़े प्रयत्न किये, पर फूल ले जानेवालेका पता नहीं लगता था। वे सब इस निर्णयपर पहुँचे कि फूल ले जानेवाला उपवनमें आते ही किसी विशेष शक्तिकी कृपासे अदृश्य हो जाया करता है। सचिवोंने समस्याका समाधान निकाला, सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि 'उपवनके चारों ओर शिवनिर्माल्य फैला दिया जाय, शिव-निर्माल्यको लाँघते ही चोरकी अदृश्य होनेकी अन्तर्धानिका-शक्ति क्षीण हो जायगी।' ऐसा ही किया गया। गन्धर्वराजको इस योजनाका ज्ञान न था। निर्माल्यका उल्लङ्घन करते ही मालियोंने देख लिया। वे पकड़ लिये गये और कारागारमें डाल दिये गये।

उन्हें जब यह पता चला कि 'मैंने शिव-निर्माल्य लाँघकर महान् अपराध किया है, तब उन्होंने भगवान् आशुतोषको प्रसन्न करने और उनकी दया प्राप्त करनेका दृढ़ संकल्प किया। एक दीन-हीनकी तरह, असमर्थ और सर्वथा विवश होकर गन्धर्वराजने भगवान् शिवका कारागारमें स्मरण किया।

'अपराध-मार्जनका एकमात्र उपाय शिवाराधन ही हो सकता है'—ऐसा निश्चयकर उन्होंने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये स्तोत्र रचा। आशुतोष भगवान् भोलेनाथकी तो गति न्यारी ही है, भक्तने सच्चे हृदयसे पुकारा था, योगियोंकी अखण्ड समाधि, मुनियों और ध्यानी ज्ञानियोंकी तपस्याकी भी उपेक्षा कर देनेवाले शंकर भक्तकी पुकारपर दौड़ पड़े। कारागारमें दिव्य प्रकाश छा गया। गन्धर्वराजने देखा कि भगवान् शिवके मस्तकपर गङ्गा मुसकरा रही हैं, कण्ठ नीला है, गौर वर्णपर सर्पोंकी मालाएँ बड़ी सुन्दर लग रही हैं, गजकी खालसे प्रतिक्षण उनकी सुन्दरता बढ़ती जा रही है। लोक-लोकान्तरकी समस्त सम्पदा उनके चरणोंपर लोट रही है। भगवान् शिवके साक्षात्कारने उनकी भीषण तपस्याको सफल कर दिया, उनका अपराध मिट गया। उन्होंने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ाकर निवेदन किया—'भगवन्! आपकी महिमाकी परमावधिको न जानते हुए यदि मेरी स्तुति अनुचित है तो सर्वज्ञ ब्रह्मा आदिकी वाणी भी तो पहले आपके यशःस्तवनमें थक चुकी है। ऐसी अवस्थामें स्तुति करनेवालेपर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता। आपके स्तोत्रमें मेरा उद्योग अखण्ड और निर्विघ्न हो।' भगवान् शंकरने भक्तको अभयदान दिया। उनके जन्म-जन्मके बन्धन कट गये। दूसरे दिन राजाने कारागारमें स्वयं उपस्थित होकर उनके दर्शनसे अपने सौभाग्यकी सराहना की, जिन्हें भगवान् शिवने अपने दिव्य दर्शनसे मुक्त कर दिया, उनको कारागारमें बंद रखनेका साहस दूसरा व्यक्ति भला, किस तरह कर सकता! राजाने उनसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी।

गन्धर्वराज पुष्पदन्तकी गणना महान् शिवभक्तोंमें की जाती है। उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें 'पुष्पदन्तेश्वर' शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। उन्होंने शिवमहिम्नःस्तोत्रके रूपमें जो साहित्य दान किया है, उससे असंख्य जीवोंका कल्याण हो रहा है। शिवमहिम्नःस्तोत्रके साथ-ही-साथ परम भक्तप्रवर गन्धर्वराज पुष्पदन्तका भी नाम अमिट और अमर है। अपनी शिवाराधनासे उन्हें भगवान् शिवका सांनिध्य और शिवगणोंका आधिपत्य प्राप्त हुआ।

स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड, लिङ्ग-माहात्म्यके ७७वें अध्यायमें पुष्पदन्तकी शिवभक्तिके विषयमें एक रोचक कथा आयी है, तदनुसार प्राचीन कालमें शिनि नामके एक धर्मात्मा अयोनिज ब्राह्मण थे। उनके कोई संतान नहीं हुई थी। उन्होंने अयोनिज पुत्रकी प्राप्तिके उद्देश्यसे दीर्घकालतक कठोर तपद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना की। अपने महान् तपसे वे महान् तेजस्वी हो गये। उनके तपस्तेजसे सभी नदियोंका जल सूखने लगा, स्वर्गमें देवगण क्षुब्ध हो उठे। दिक्पाल एवं कुलपर्वत भी विचलित होने लगे। सम्पूर्ण पृथिवी हिलने-डुलने लगी। उस समय मेरु पर्वतपर समासीन भगवती पार्वतीने महादेवजीसे कहा—'देव! महामुनि शिनि आपका भक्त है, उसने दुष्कर तपद्वारा महान् कष्ट सहा है। हे प्रभो! आपका भक्त दुःखोंकी विभीषिकाओंका सामना करे यह अच्छी बात नहीं है, अतः हे देव! आप कृपा करके अपने भक्तपर दया कीजिये। जगन्माता पार्वतीके ऐसा कहनेपर भगवान्ने मुसकराते हुए कहा—'हे देवि! ऐसा ही होगा।' इसके बाद उन्होंने अपने गणोंका स्मरण किया। क्षणभरमें ही सहस्रों महान् रुद्रगण उपस्थित होकर हाथ जोड़कर कहने लगे—'स्वामिन्! हमें आज्ञा दीजिये।' इसमें गुणाधिप पुष्पदन्त भी थे। तब भगवान् शंकर बोले—'गणो! शिनि नामक एक ब्राह्मण मेरा भक्त है, वह अयोनिज एवं अजर-अमर पुत्रकी इच्छासे महान् तप कर रहा है, तुममेंसे कौन ऐसा है जो भूलोकमें उसका पुत्रत्व स्वीकार करेगा। मुझे तो भक्तकी इच्छा पूर्ण करनी है, क्योंकि मेरे भक्तका संकल्प किसी भी प्रकारसे मिथ्या नहीं हो सकता[1]। भगवान् शंकरका सांनिध्य छोड़कर भूलोकके सभी भोगोंका तुच्छ आनन्द प्राप्त करना किसी भी गणको अभीष्ट नहीं था, अतः सभी मुख नीचे कर मौन ही स्थित रहे। किंतु पुष्पदन्त गणाग्रणी थे, शिवके परम प्रिय थे, शिवकी मायासे मोहित हो वे बोल पड़े—'हे देव! इस उत्तम गतिको प्राप्तकर अब हम भूलोक जानेको तैयार नहीं हैं।' पुष्पदन्तसे आज्ञापराध हो पड़ा था, अब तो कोपभाजन बनना ही था। भगवान्ने उन्हें अप्रिय वचन कहनेके कारण मनुष्यलोकमें जन्म देनेका शाप दे डाला और वीरकको विप्रवर

१-मद्भक्तस्य न संकल्पो मिथ्या भवितुमर्हति॥ (अवन्ती०, लि० मा० ७७।२७)

शिनिके पुत्रत्व प्राप्त करनेके लिये कहा। भगवान्‌की आज्ञासे वीरकने ब्राह्मणपुत्रके रूपमें उनका अनुग्रह प्राप्त किया।

इधर शापसे दुःखी हो भूलोकमें आकर पुष्पदन्त करुण विलाप करने लगे, प्रभुकी आज्ञा न माननेके लिये वे बार-बार पश्चात्ताप करने लगे—अहो ! मैं बड़ा पापी हूँ, बड़ा अभागा हूँ, मैंने अपने स्वामीकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया, अब मेरी क्या गति होगी, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ। दुःखित पुष्पदन्तने पुनः भगवान् महादेवकी ही शरण ग्रहण की; क्योंकि अन्य कोई उपाय भी नहीं था। बड़े ही दीन स्वरोंमें बार-बार प्रणिपात करते हुए वे प्रार्थना करने लगे—

दीनोऽस्मि ज्ञानहीनोऽस्मि प्रणतोऽस्मि च शंकर।
कुरु प्रसादं देवेश अपराधं क्षमस्व मे॥
न हि निर्वहणं यान्ति प्रभूणामाश्रिता रुषः।
प्रसीद देवदेवेश दीनस्य कृपणस्य च॥
अपि कीटपतंगत्वं गच्छेयं तव शासनात्।
भक्तोऽहं सर्वदा देव पुत्रत्वे हि प्रतिष्ठितः॥

(स्कन्दपुराण, अवन्ती०, लिं० मा० ७७। ४४—४६)

पुष्पदन्तकी भक्तिनिष्ठा एवं स्तुतिसे माता पार्वती एवं भगवान् शिव प्रसन्न हुए, उन्होंने उसे दर्शन देकर महाकालवनमें जाकर आराधना करनेको कहा। फिर क्या था, पुष्पदन्त महाकालवनमें गये, वहाँ उन्होंने लिङ्गरूपमें भगवान्‌की आराधना की। उनकी उपासनासे भगवान् प्रसन्न हुए। वे भगवती पार्वती तथा देवगणोंके साथ महाकालवनमें गये। पुष्पदन्त नित्य पुष्पोंसे महादेवजीका अर्चन करते थे। उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने वात्सल्यके वशीभूत हो स्नेहवश पुष्पदन्तको उठाकर अपनी गोदमें बिठा लिया और पुनः अपने गणोंका अधिपति बना लिया। पुष्पदन्तद्वारा प्रतिष्ठित वह लिङ्ग 'पुष्पदन्तेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। अवन्तीखण्डमें इस लिङ्गकी बड़ी महिमा गायी गयी है।

महाराज भगीरथकी शिवाराधना

महाराज सगरके साठ हजार पुत्र कपिलकी क्रोधाग्निसे भस्म हो गये थे। बहुत दिनों बाद सगरके वंशमें समुत्पन्न राजर्षि दिलीपके पुत्र महाभाग भगीरथने 'गोकर्ण' तीर्थमें एक हजार वर्षतक कठिन तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया। वे प्रसन्न होकर वर देनेके लिये देवताओंको साथ लेकर महात्मा भगीरथके पास आये और वर माँगनेके लिये कहने लगे।

भगीरथने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मेरे पूर्वज इस समय न जाने किस दशामें पड़े हैं, उनका उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है। हे देव ! आप ऐसा प्रयत्न कीजिये कि गङ्गाजी इस भूलोकमें आकर अपने पावन जलसे मेरे पूर्वजोंका उद्धार करें।'

ब्रह्माजीने कहा—'मैं गङ्गाजीको तो भूलोकमें भेज दूँगा, पर उनके प्रवाहको रोकनेकी शक्ति पृथिवीमें नहीं है। इसके लिये दयासिन्धु भगवान् शिव जबतक कृपा नहीं करेंगे, तबतक कार्य सिद्ध नहीं होगा। वे ही गङ्गाजीके प्रवाहके वेगको रोक सकते हैं। इसलिये हे भगीरथ ! तुम उनकी आराधना करो।'

ब्रह्माजीके उपदेशके अनुसार भगीरथने शिवजीकी आराधना प्रारम्भ कर दी। वे अन्न-जलका परित्यागकर पैरके एक अँगूठेपर खड़े होकर एक वर्षतक भगवान् शंकरका ध्यान करते रहे। उनकी अनन्य शरणागतिसे प्रसन्न होकर भगवान्

उमापति प्रकट हुए और कहने लगे—'नरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ और तुम्हारी कामनापूर्ति करने आया हूँ। मैं गिरिराजकुमारी गङ्गादेवीको अपने मस्तकपर धारण कर तुम्हारा

प्रिय कार्य करूँगा[१]।'

भगवती गङ्गाको अपने वेगका बड़ा गर्व था। इससे उन्होंने शिवजीको बहाते हुए पातालमें प्रवेश कर जानेका निश्चय किया और विशाल रूप धारणकर बड़े दुःसह वेगसे भगवान् शिवके मस्तकपर गिरीं।

भगवान् शिवको उनके अभिमानका पता लग गया। इसलिये उन्होंने गङ्गाजीको अपने जटाजूटमें ही बाँध रखनेका निश्चय कर लिया। गङ्गाजी पूरे वेगसे शिवकी जटापर गिरीं और उसीमें समा गयीं। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पृथिवीपर उतर जायँ, पर किसी तरह जटा-मण्डलसे नहीं निकल सकीं। वहींपर वे कई वर्षोंतक चक्कर लगाती रहीं।

भगीरथको इस बातसे बड़ा दुःख हुआ और वे पुनः शिवजीकी आराधना करने लगे। शिवजीने भगीरथकी प्रार्थनापर गङ्गाजीको अपनी जटासे मुक्त कर दिया। उस समय गङ्गाकी सात धाराएँ हो गयीं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नामकी गङ्गाकी मङ्गलमयी तीन धाराएँ पूर्व दिशाकी ओर बह पड़ीं। सुचक्षु, सीता और सिन्धु नामकी तीन धाराएँ पश्चिम दिशाको प्रवाहित हुई और सातवीं धाराके रूपमें पतितपावनी भगवती गङ्गा महाराज भगीरथके रथके पीछे चली। सुन्दर रथपर बैठे हुए भगीरथ आगे-आगे जा रहे थे, पीछे-पीछे भागीरथी गङ्गा उनका अनुसरण कर रही थीं।

अनेक देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध आदि इस अद्भुत दृश्यको देखकर मुग्ध हो गये। देवता लोग भी आकर इस गङ्गावतरणके दृश्यको देखने लगे। भूतलवासी ऋषिगण उस जलको शिवजीके अङ्गसे निकलते देखकर बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ उसका स्पर्श कर परम आनन्दको प्राप्त हुए। गङ्गाकी वह धारा भूलोकके प्राणियोंका उद्धार करती हुई रसातलतक चली गयी और वहाँ पहुँचकर उसने भगीरथके भस्मीभूत पितामहोंका उद्धार किया। यह सब विलक्षण कार्य महाराज भगीरथकी शिव-भक्तिका ही परिणाम था।

(वा० रा०, बा०, ४२-४३)

वैष्णवशिरोमणि भीष्मपितामहका शिव-प्रेम

भीष्मपितामह महाराज शान्तनुके ज्येष्ठ पुत्र थे। वे पतितपावनी गङ्गाके गर्भसे आठवें वसुदेवताके अंश-रूपमें उत्पन्न हुए थे, उनका नाम देवव्रत था। भीषण (कठिन) प्रतिज्ञाके पालन करनेके कारण उनका नाम 'भीष्म' पड़ गया। महाभारतके अन्तमें जब भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे, तब उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरको अनेक प्रकारके दृष्टान्तों तथा आख्यानोंद्वारा राजधर्म, आपद्धर्म तथा मोक्षधर्मका उपदेश दिया था। तदनन्तर भगवान् शंकरकी महिमाको जाननेकी इच्छा रखनेवाले धर्मराज युधिष्ठिरने भीष्मपितामहसे कहा—'पितामह! कृपा करके अब आप जगत्पति महेश्वरके माहात्म्यके विषयमें उपदेश कीजिये।'

भीष्मपितामह बोले—'राजन्! भगवान् शंकर देवोंके भी देव साक्षात् ईश्वर हैं, वे सर्वत्र व्याप्त हैं, परंतु सबके आत्मस्वरूप होनेके कारण सर्वत्र दृष्टिगोचर नहीं होते। ऐसे अव्यक्त, नित्य और निर्विकार भगवान् महेश्वरके गुणोंके वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। जो ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रके भी स्रष्टा (उपादान कारणरूप) और प्रभु (नियन्ता) हैं, ब्रह्मा आदि देवताओंसे लेकर पिशाचतक जिनकी उपासना करते हैं, प्रकृति तथा प्रकृतिके भोक्ता पुरुषसे भी जो परे हैं, विलक्षण हैं, योग जाननेवाले तत्त्ववेत्ता ऋषि-मुनि जिनका चिन्तन करते रहते हैं, जो अक्षर (अपरिणामी) तथा परब्रह्म हैं, जो अनिर्वचनीय हैं अर्थात् जो न सत् हैं, न असत् हैं, जो प्रकृति और पुरुषसे परे हैं ऐसे प्रभु परमेश्वर महादेवके गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? अतः वत्स! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायणके अतिरिक्त मुझ-सरीखा पुरुष उन परमेश्वर शंकरके गुणोंको किस प्रकार जान सकता है[२]? क्योंकि भगवान् नारायण सर्वज्ञ हैं, व्यापक हैं, दुर्जय हैं और वे दिव्य दृष्टिसे महादेवजीका दर्शन किया करते हैं। राजन्! जब बदरिकाश्रममें श्रीकृष्णने भगवान् शंकरको प्रसन्न किया था तब शिवभक्तिके प्रभावसे पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने

१-प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम्। शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम्॥ (वा० रा०, बाल० ४३।३)

२-को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम्। ऋते नारायणात् पुत्र शङ्खचक्रगदाधरात्॥ (महा०, अनु० १४।८)

समस्त संसारको व्याप्त कर लिया और सब लोकोंके चाहने-योग्य भोग्य वस्तुसे भी अधिक प्रिय (अन्तर्यामी) पद पाया।' इतना कहकर भीष्मपितामहने शंकरकी महिमा जाननेवाले श्रीकृष्णकी प्रार्थना की—'हे देव! हे विष्णो! धर्मराजके प्रश्नोंका आप ही उत्तर दीजिये! क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।' तब श्रीकृष्णने कहा—'हे भीष्मपितामह! जिन भगवान् शंकरके गुणोंको ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान सकते, उनके गुणोंको भला मनुष्य कैसे जान सकता है? फिर भी महात्मा शंकरके गुणोंको किसी प्रकार यथाशक्ति मैं कहूँगा।' ऐसा कहकर पवित्रतासे आचमन करके भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें महर्षि तण्डिप्रोक्त शिवमहिमा तथा शिवसहस्रनामका श्रवण कराया।

(महाभारत, अनु० पर्व)

भगवत्पाद आद्य शंकराचार्यकी शिवोपासना

आदिदेव भगवान् शिव पूर्ण परब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। वे ही समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर इस जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार आदि करते हैं। वे सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, निर्गुण, निराकार, सगुण, साकार तथा अविनाशी हैं। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदिमें शिव-तत्त्वकी विविध प्रकारसे व्याख्या मिलती है। संत-महात्माओं, आचार्यों, विद्वानों तथा ऋषियों-मुनियोंने विभिन्न युगोंमें शिव-भक्तिका प्रचार-प्रसार करके जो महनीय कार्य किया है, उसीके द्वारा शिवभक्ति जन-जनमें इतनी लोकप्रिय हुई और आज भी ग्राम-ग्राममें सर्वत्र शिव-मन्दिरोंके दर्शन होते हैं। शिवभक्तिके इन प्रचारकोंमें भगवान् आद्य जगद्गुरु शंकराचार्यका पतित-पावन नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक भ्रमण करके वेद-शास्त्र-प्रतिपादित सनातनधर्मकी पुनः स्थापना की। वे साक्षात् शिवके अवतार हैं—

शंकरः शंकराचार्यः सद्गुरुः शर्वसंनिभः।

श्रीमाधवाचार्य-विरचित 'श्रीशंकरदिग्विजय' में इनके द्वारा बौद्धोंको परास्त करनेका बड़ा मनोहारी वर्णन हुआ है।

तदनुसार देवगणोंने कैलासपर्वतपर स्थित भगवान् देवाधिदेव महादेवके पास जाकर उन्हें प्रणाम कर बौद्धोंके द्वारा वैदिक धर्मको लुप्त करनेका वृत्तान्त सुनाया और कहा कि शैव तथा वैष्णव आगमका अनुसरण करनेवाले लोगोंने केवल शरीरपर लिङ्ग (शिवलिङ्ग) और चक्र (सुदर्शनचक्र) आदि चिह्नोंको ही धारण करना श्रेयस्कर मानकर शास्त्रोक्त कर्मको छोड़ दिया है। सर्वत्र पाखण्ड मात्र व्याप्त हो गया है, वेद-धर्म विनष्ट हो रहा है, संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्मोंका लोप होता जा रहा है। इसलिये प्रभो! आप लोकरक्षार्थ समस्त दुष्टोंका नाश करके वैदिक मार्गकी स्थापना करें जिससे संसार सुखी हो।

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकरने कहा कि मैं दुष्ट आचारके नाशके लिये, धर्मकी स्थापनाके लिये, ब्रह्मसूत्रके तात्पर्य-निर्णायक भाष्यकी रचनाकर, अज्ञानमूलक द्वैतरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये चार शिष्योंके साथ इस पृथिवीपर यतियोंमें श्रेष्ठ शंकरके नामसे उत्पन्न होऊँगा। मेरे समान आपलोग भी मनुष्य-शरीरको धारण करें।

तदनन्तर भगवान् शंकर केरल प्रदेशमें पूर्णानदीके पवित्र तटपर ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें स्वयं प्रकट हुए। यहीं राजशेखर नामक राजाने एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण कराकर उनकी पूजा-अर्चना आरम्भ की। उसी मन्दिरके पास स्थित कालटी नामक ग्राममें परम वैदिक विद्वान् शिवगुरु तथा उनकी पत्नी सती रहती थी। इसी ब्राह्मण-दम्पतिके यहाँ भगवान् शंकरने अवतार लिया। बहुत दिनोंतक पुत्र-प्राप्ति न होनेपर शिवगुरु और सतीने वृषक्षेत्रके अधिष्ठाता स्वयम्भू शंकरकी तपस्या आरम्भ की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उनके पुत्र-रूपमें अवतार लिया। उन्होंने गोविन्द भगवत्पादसे सभी शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे काशी जाकर अद्वैत वेदान्त एवं शिवभक्तिका प्रचार-प्रसार करना आरम्भ किया।

आचार्यको काशी-प्रवासमें एक बार भगवान् विश्वनाथका साक्षात् दर्शन हुआ। भगवान् विश्वनाथने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और आज्ञा दी कि वेदान्त-शास्त्रोंपर भाष्यकी रचनाकर सनातनधर्मकी रक्षा करो। आचार्य शंकरने भगवान् विश्वनाथकी इस आज्ञाको शिरोधार्य कर प्रस्थानत्रयी भाष्योंकी रचना की और सनातनधर्मके

प्रचार-प्रसारार्थ उत्तरमें ज्योतिर्मठ, दक्षिणमें शृंगेरीमठ, पूर्वमें गोवर्धनमठ और पश्चिममें शारदामठकी स्थापना की। सम्पूर्ण देशका भ्रमण कर उन्होंने स्थान-स्थानपर देवमन्दिरोंकी स्थापना की और सनातनधर्मकी समस्त लुप्त परम्पराओंका पुनरुद्धार किया।

भारतीय शास्त्रोंमें शिव, सूर्य, विष्णु, गणेश तथा दुर्गा—इन पाँच देवताओंकी उपासनाका विधान है। आचार्यने स्कन्दसहित इन पाँचोंकी उपासनाका प्रचार-प्रसार किया, जिससे वे षण्मत-संस्थापनाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अनेक स्तोत्रोंकी रचना की, उनमेंसे कुछ तो भक्तोंके कण्ठ-हार बने हुए हैं, जिनमें शिवभुजंग, शिवानन्दलहरी, शिवपादादिकेशान्तस्तोत्र, वेदसार-शिवस्तोत्र, शिवापराध-क्षमापनस्तोत्र, दक्षिणामूर्ति अष्टक, मृत्युंजयमानसिक पूजा, शिवनामावल्यष्टक, शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, कालभैरवाष्टक, शिवपञ्चाक्षर-नक्षत्रमाला, द्वादशलिङ्गस्तोत्र, दशश्लोकी स्तुति, शिवमानसपूजा तथा शिवाष्टक आदि विशेष उल्लेख्य हैं। इन स्तोत्रोंका निरन्तर तथा नियमित रूपसे भक्तिपूर्वक पाठ करनेसे मनुष्यका सर्वविध कल्याण होता है। भगवान् शंकराचार्यने इन स्तोत्रोंकी रचनाकर जिस शिवभक्तिकी धाराको प्रवाहित किया था, वह अजस्र रूपसे प्रवाहित होती हुई लोगोंको शिव-भक्तिकी प्रेरणा दे रही है। वर्तमान युगमें शिव-भक्तिका जो प्रचार-प्रसार दृष्टिगोचर हो रहा है, वस्तुतः उसका श्रेय आचार्य शंकरको ही है।

शिवावतार शंकराचार्यने सनातनधर्मका उद्धार करनेके लिये अवतार लेकर बदरिकाश्रममें भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहकी स्थापना की थी। तभीसे वहाँ पुनः विधिपूर्वक पूजा-अर्चनाका शुभारम्भ हुआ। पुराणोंमें उनके शिवावतार होने तथा सनातन धर्मोद्धारकके रूपमें किये हुए कार्योंका उल्लेख बार-बार हुआ है।

भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा श्रीवामन आदि जिस प्रकार भगवान् विष्णुके अवतार होनेके कारण साक्षात् नारायण हैं, उनमें और नारायणमें कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार भगवान् आद्य श्रीशंकराचार्य भगवान् शिवके अवतार होनेके कारण साक्षात् शिव हैं। उनमें और शिवमें भेद नहीं है। भगवान् आदिदेव श्रीशिवने इस धराधामपर उनके रूपमें अवतार लेकर वेद-शास्त्रप्रतिपादित सनातनधर्मका उद्धार किया और लोककल्याणके लिये शिवभक्तिका प्रचार-प्रसार किया। इसलिये 'महानुशासन' में आचार्य शंकरका कथन है—'सत्ययुगमें संसारके धर्मगुरु श्रीब्रह्माजी, त्रेतामें ऋषि सत्तम, द्वापरमें श्रीव्यासजी और कलियुगमें मैं (शंकराचार्य) स्वयं हूँ।' अतः हमें उनके धर्मोपदेशोंका पालन करते हुए शिवाराधनमें लगना चाहिये।

(डॉ॰ श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

—————

श्रीवल्लभाचार्यके हृदयमें श्रीशिवका स्थान

पुष्टि-सम्प्रदायको प्रकाशमें लानेवाले, अतएव पुष्टि-मार्गके आचार्य श्रीवल्लभाचार्य हैं। लोकाज्ञातहितकर वैदिकार्थको प्रकाशमें लानेवाले महापुरुष आचार्य कहलाते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीके ग्रन्थ दो तरहके हैं, परोक्षपरतन्त्र और प्रत्यक्षपरतन्त्र। सुबोधिनी, अणुभाष्य, पुरुषोत्तमसहस्रनामादि ग्रन्थ प्रत्यक्षपरतन्त्र ग्रन्थ हैं और तत्त्वदीप, षोडश-ग्रन्थ प्रभृति परोक्षपरतन्त्र ग्रन्थ हैं। दोनोंमें उन्होंने कहीं भी श्रीशंकरकी निन्दा नहीं की है। प्रत्युत अपने परोक्षपरतन्त्र ग्रन्थोंमें श्रीशिवको सर्वोत्तम मान दिया है।

षोडश-ग्रन्थोंमें सर्वप्रथम 'तत्त्वग्रन्थ' में श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं—

वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ।
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि॥
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः।
अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि।
.... द्वितीयार्थे महान्क्रमः॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीन देवता निर्गुण हैं, क्योंकि निर्गुण श्रीपुरुषोत्तम परब्रह्म ही प्रकृतिके तीन गुणोंके अधिष्ठेयत्वेन (नियममें रखनेकी इच्छासे) ग्रहणकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप हो गये हैं। अथर्वशिखा, श्वेताश्वतरीय एवं

कैवल्य आदि उपनिषदोंमें शिवका और महानारायणादि उपनिषदोंमें विष्णुका परब्रह्मरूपसे वर्णन भी है ही। इसीलिये शिवशास्त्रोंमें श्रीशंकरको और विष्णुशास्त्रोंमें श्रीविष्णुको निर्दोष और पूर्णकल्याणगुण कहा गया है। श्रीशिव और विष्णु दोनों भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। तथापि दोनोंने दो कार्य पृथक्-पृथक् ले रखे हैं। इसलिये दोनों ही दोनों पुरुषार्थोंका दान नियतरूपसे नहीं करते। श्रीशिव सर्वदा मोक्षका भोग करते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः
स्वात्मन् रतस्याविदुषः समीहितम्।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः
श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम्॥
आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे।
शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भवः॥

लोकमें यह बात सिद्ध है कि स्वामी स्वयं जिस पदार्थका उपभोग करता है, उसे अन्य किसीको नहीं देता। शिवजी मय एवं बाणसदृश अतिप्रिय पुरुषोंको मोक्ष देते भी हैं पर नियतरूपसे नहीं देते। विष्णु निर्गुण ब्रह्म रहते हुए भी सात्त्विक जगत्के नियामक हैं। इसी प्रकार श्रीशिवजी भी निर्गुण ब्रह्म होते हुए तामस जगत्के नियामक हैं। यही बात श्रीवल्लभाचार्यने अपने सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थमें कही है—

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः।
देवतारूपवत् प्रोक्ताः························॥

जगत् राजस, सात्त्विक और तामस तीन प्रकारका है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उक्त तीनों प्रकारके जगत्को नियममें रखनेके लिये निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी उस-उस जगत्के उपास्यदेव कहे गये हैं।

ऐसी अवस्थामें श्रीशिवजी सर्वसाधारणरूपसे मोक्षका दान नहीं करते। इस बालबोधमें श्रीवल्लभाचार्यका श्रीशिवजीके विषयमें आशय देखा जाय तो यही निकलता है कि श्रीशिवजी निर्गुण परब्रह्मके अवतार हैं, स्वयं ब्रह्म हैं, निर्दोष हैं, तामस जगत्के अधिष्ठाता हैं, सृष्टिसंहारकर्ता हैं, उपास्यदेव हैं, जगत्के हितकर्ता हैं, मोक्षशास्त्रके प्रवर्तक हैं, मोक्ष देनेकी सामर्थ्य रखते हैं और मोक्षदाता भी हैं।

श्रीवल्लभाचार्यका एक 'पत्रावलम्बन' नामक ग्रन्थ भी है। यह ग्रन्थ आचार्यपादने उत्तरावस्थामें बनाया था, यह बात प्रसिद्ध है। इसमें भी श्रीशिवजीके विषयमें श्रीवल्लभाचार्य लिखते हैं—

स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदान्तगोचरः।
काशीपतिस्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु॥

'यह सर्वश्रुत्युक्त ब्रह्मवाद मैंने स्थापित किया है, इससे काशीश (विश्वनाथ) त्रिभुवननाथ श्रीमहादेव मेरे ऊपर प्रसन्न हों।'

यह तो बात परोक्षपरतन्त्र-ग्रन्थोंकी हुई। प्रत्यक्ष-परतन्त्र-ग्रन्थोंमें सुबोधिनी श्रीभागवतकी टीका (भाष्य) है। उसमें तो शिवनिन्दाका अवसर ही कहाँ है? वहाँ तो शिवजीकी स्तुति ही मिलेगी, निन्दा नहीं। अणु भाष्यमें भी यह अवसर नहीं। पुरुषोत्तमसहस्रनाम भी श्रीमद्भागवतका ही अति संक्षेप ग्रन्थ है। उसमें शिवकी निन्दा कहाँ?

इस तरह पुष्टि-सम्प्रदायको प्रकाशमें लानेवाले मूलाचार्य श्रीवल्लभाचार्यके किसी ग्रन्थमें भी शिवनिन्दा नहीं है। जब मूलमें वस्तु ही नहीं तो वह की जाती है, यह कैसे कहा जाय? प्रत्युत पुष्टि-सम्प्रदायके मूलाचार्य श्रीवल्लभाचार्यके ग्रन्थोंसे तो यह सिद्ध होता है कि उनके हृदयमें श्रीशिवके लिये सर्वोत्तम स्थान है।

ठीक है, श्रीवल्लभाचार्यके ग्रन्थोंमें तो शिवनिन्दा नहीं मिलती, पर कितने ही पुष्टिमार्गीय श्रीशिवका सम्मान यथावत् नहीं करते, उनकी सेवा नहीं करते, यह क्यों?

यह क्यों? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अपनी-अपनी प्रकृति ही इसमें कारण है। और प्रकृति सत्त्वादि गुणयुक्त होती है। सत्त्व आत्माका यथार्थ प्रकाश करानेवाला है। अतएव जिसके हृदयमें सत्त्वगुणका भाग अधिक रहता है, वह प्रकृति और आत्माके स्वरूपको पहचानने लगता है और आत्माकी तरफ अपने-आप खिंचता है। किसीकी भी निन्दा करना उसे नहीं सुहाता, तब शिवजीकी निन्दा तो वह करेगा ही कैसे? वस्तुके स्वरूपको अयथार्थ-रूपसे प्रकाशित करना ही निन्दा कहलाता है। [illegible] है—'गुरु वरणकमेव तमः।' [illegible]
किसीकी निन्दा [illegible]
निन्दा भी [illegible]

आचार्यने नहीं लिया है।

अच्छा, आपने जो शिवजीकी सेवा नहीं करनेके विषयमें कहा, सो ठीक है। इसका उत्तर देना उचित प्रतीत होता है। प्रथम तो प्रकृतिके त्रिगुणात्मक होनेसे मनुष्यमात्रकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार ही मनुष्य वस्तुपरिग्रह करता है। अपनी प्रकृतिके अनुसार यदि कोई शिवजीकी सेवा न करता हो तो वह शिवद्वेष करता है या उनकी निन्दा करता है यह कहना या समझ लेना सर्वथा बेसमझी है। यदि एक वस्तुके परिग्रहमात्रसे अन्यका निन्दक किंवा द्वेष्टा गिना जाय तो फिर सारा जगत् ही द्वेष्टा और निन्दक ठहरेगा। क्योंकि सारा जगत् सारे जगत्का परिग्रह या सेवन नहीं कर सकता। इसीलिये तो परब्रह्मने अनेक अवतार धारण किये हैं, जिससे कि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सब लोग उनका भजन कर सकें।

परब्रह्मने जगत्रूपी कार्यके लिये प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका करणरूपसे ही ग्रहण किया है। निरन्तर[1] तथा सर्वदाके लिये ग्रहण किया है, इसलिये वे उनकी उपाधि हो गये। अब जब कोई चार मुख, हंसवाहन आदिका वर्णन करता है तो अब्रह्मवेत्ता (अनात्मग्राही) लोग ब्रह्माको ही समझ लेते हैं। जब कोई साँप-बिच्छूके गहनों, भस्म-धारण, गङ्गाधर आदिका वर्णन करता है तो लोग शिवको ही समझते हैं। इस तरह सब-का-सब भजन उपाधिपर ही आकर ठहरता है, परब्रह्मपर नहीं। यदि सेवककी बुद्धि उपाधियोंका ग्रहण न कर केवल परब्रह्मका ही ग्रहण करती, तब तो कोई हानिकी सम्भावना ही नहीं थी, किंतु सो तो है नहीं। यथा-तथा प्रकृतिवाले सेवकलोग अनात्मदृष्टि होनेसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उपाधिमें ही आसक्त होते हैं। इसलिये जिस रूपके और जिन साधनोंद्वारा सेवन करना अच्छा लगे, उन्हींसे करना ही उचित है। उन्हींसे उसे उधर्गतिकी प्राप्ति होती है और नाशकी शङ्का भी नहीं रहती। इसलिये कोई शिवजीका और कोई विष्णुका ही भजन करता हो तो कोई दोष नहीं है।

एक दूसरी बात और है। भजन दो प्रकारसे होता है—धर्मरूपसे और भजनरूपसे। अपने पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये (स्वार्थके लिये) विधिके परवश होकर जो भजन किया जाता है, वह धर्मरूपसे भजन कहा जाता है और जो सेव्यके सुखके लिये, पुरुषार्थवश नहीं, किंतु प्रेमपरवश होकर सेवन किया जाता है, वह भजनरूपसे सेवा कही जाती है। यथार्थ स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न होनेसे और प्रेमके भी न होनेसे आजकलका भजन केवल धर्मरूपसे ही होता है, इसलिये वह उपाधि-पर्यवसायी होता है। ऐसी अवस्थामें अपने प्रकृतिगुणके अनुसार स्वरूपमें उन-उन साधनोंद्वारा भजन करना ही श्रेयस्कर होता है। और भक्तिमार्गमें तो, विशेषकर पुष्टिमार्गमें, सेवाका विषय सेव्यरूप ही प्रधान रहता है, साधन और प्रयोजन दुर्बल रहते हैं। अतएव हर किसी रूपका भी सेवन करना भयावह नहीं हो सकता।

इसलिये तत्तन्मार्गमें अधिकारानुसार परब्रह्मके उन-उन स्वरूपोंकी सेवा करनेका नियम कर दिया गया है। उनके लिये उन नियमोंपर चलना ही उचित है। अतः श्रीकृष्णमार्गीय जीव यदि श्रीशिवकी सेवा न करे तो उसपर श्रीशिवद्वेषकी आशङ्का करना बेसमझी है और श्रीशिवभक्त यदि श्रीकृष्णकी सेवा न करता हो तो उसपर श्रीकृष्णद्वेषका कलंक भी नहीं लग सकता।

यह तो नित्यसेवन-पूजनकी बात हुई। नैमित्तिक सेवनकी बात दूसरी है। जो पूजन किसी निमित्तसे होता है, वह नैमित्तिक पूजन कहा जाता है—जैसे तीर्थयात्राके समय महाकालका पूजन किंवा श्रीविट्ठलनाथजीका पूजन और विवाहमें गणपतिका किंवा विष्णुका पूजन। यह पूजन तो धर्म (कर्तव्य) रूप है, इसलिये करना ही चाहिये। जो शिवमार्गी है उसे विष्णु-पूजन और जो विष्णुमार्गी है उसे शिवका पूजन

१-तथा चैते गुणाः कार्यार्थं करणत्वेन गृहीता अपि निरन्तरग्रहणादुपाधिरूपा जाताः……। तत्रैव निर्णयः। सेव्यः सेवको यादृशरूपं पश्यति स्वस्यापि तादृशं रूपं सम्पादयति। साधनानि च तानि यद्यपि अपहतपाप्मानं भगवन्तमन्यथाकर्तुं न शक्नुवन्ति तथापि जीवमन्यथा कुर्वन्ति। ततश्च यादृशेन रूपेण साधनेन वा नान्यथाभावस्तादृशरूपयानेवेश्वरः सेव्यः नाशाशङ्काऽभावात्। यदि पुनः सेवकस्य बुद्धिर्नोपाधिपर्यवसायिनी, तत्र यत्र क्वचित् सेवायामपि न काचिच्चिन्ता। यथा ब्रह्मविदः……

नेदं भक्तिमार्गभजनम्, किन्तु स्वपुरुषार्थसिद्धये धर्ममार्गेण। भक्तिमार्गे तु विषयस्य प्राधान्यात् प्रयोजनस्य दुर्बलत्वात् सर्वाण्येव रूपाणि भजनीयानि। (सुबोधिनी)

करना ही उचित है, क्योंकि शास्त्र अनुल्लङ्घनीय है। तीर्थादि शास्त्र सामान्य हैं अतएव सर्वाधिकारियोंको मान्य हैं, और कर्तव्याकर्तव्यमें शास्त्र ही प्रमाण है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

कितने ही मनुष्य भाव-चोर होते हैं। ये भाव-चोर पुरुष सभी मार्गोंमें होते हैं। उनके विषयमें मेरा कोई वक्तव्य नहीं है क्योंकि **'परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।'**

एक सज्जन धनिक गणपतिका पूजन कर रहे थे। जब पूज्यदेवको वस्त्र पहनानेका समय आया तो अक्षत चढ़ाकर बोले कि **'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि'** तो हमने कहा कि 'महाशय ! अगर आप स्नान करके गीले कपड़ेसे खड़े हों और आपका नौकर यदि एक मुट्ठी चावल आपके सिरपर डालकर कह दे कि **'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि'** तो कहिये कैसी बने!' इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि अजी साहब, ये तो देवता हैं, इन्हें वस्त्रकी क्या अपेक्षा है ? ये तो हमें देते हैं, इनके यहाँ वस्त्रकी क्या कमी है ?' इसी प्रकार बहुत-से लोग कह बैठते हैं कि अजी क्या शिव और क्या विष्णु, भगवान् तो सब एक हैं। बात ठीक है, यदि उन लोगोंकी बुद्धि इस तरह सहजमें ही निर्गुण और निरुपाधिक हो चुकी है तो उत्तम है, अन्यथा उनके विषयमें हम कुछ कहना नहीं चाहते। पाठक स्वयं अपना-अपना मत निश्चय कर सकते हैं।

हम तो इतना ही जानते हैं कि सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्यगण भगवान्के अवतार होते हैं, सर्वशास्त्रोंके तत्त्वज्ञ होते हैं और सात्त्विक-प्रकृति किंवा निर्गुण-प्रकृति होते हैं, इसलिये उनके हृदयमें राग-द्वेषका होना असम्भव है। वे तो सबको ब्रह्मरूप और भगवद्रूप ही देखते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीके हृदयमें श्रीशिवजीके लिये कितना उत्तम स्थान है, यह हम उन्हींके वचनोंसे स्पष्ट दिखा चुके हैं। ईश्वरके लिये जो स्थान होना चाहिये, वही स्थान शिवजीके लिये उनके हृदयमें है।

(देवर्षि पं॰ श्रीरमानाथजी शास्त्री)

आचार्य विद्यारण्यस्वामीकी शिवोपासना

आचार्य विद्यारण्यस्वामीने अपने गुरुके निर्देशानुसार ग्यारह अनुष्ठान किये। पर कोई परिणाम नहीं निकला। कुछ भी चमत्कार नहीं हुआ। तब उन्होंने स्थण्डिलपर अग्नि प्रज्वलित कर झोली, माला, आसन, पुस्तक आदि सबको अग्निसात् कर दिया। बस, केवल एक श्रीयन्त्रमय शिवलिङ्ग ही हाथमें बचा था। उसे भी वे अग्निमें डाल ही रहे थे कि एक स्त्री वहाँ आ गयी और बोली— 'महाराज ! आप यह क्या कर रहे हैं।' उन्होंने कहा कि 'पूजा-पाठ, उपासना सब पाखण्ड है, इसलिये मैं इन सबोंको जलाकर लोगोंको सचेत करूँगा कि वे उपासना छोड़कर अन्य पुरुषार्थ एवं परिश्रमोंका आश्रय लें।' इसपर वह स्त्री बोली कि 'यह सब तो ठीक है, पर जरा आप अपने पीछे देखिये कि वहाँ क्या हो रहा है।' विद्यारण्यने जब पीछे देखा तो वह स्थण्डिलाग्नि उनके पीछे ही दिखायी दी और उसमें ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थर गिरकर फूटने लगे। वे घबड़ाकर खड़े हो गये और धीरे-धीरे अग्निसे दूर हटने लगे। तबतक लगातार ग्यारह पत्थर आकाशमें गिरकर भयंकर ध्वनि करते हुए अग्निमें नष्ट हो गये। उन्होंने सोचा कि यह स्त्री इस विषयमें कुछ अवश्य जानती होगी, क्योंकि उसीने ही पीछे देखनेको कहा है। पर जब वे स्त्रीको खोजने लगे तो वह कहीं न दीखी। पार्श्ववर्ती उपवनकी झाड़ियोंमें भी उसे चिल्लाकर पुकारा पर वह नहीं आयी। अन्तमें आकाशसे एक ध्वनि आयी कि तुम घोर नास्तिक हो। मैं तो ठीक समयपर आ गयी थी। पर तुम्हारी गुरु और शास्त्रोंमें श्रद्धा नहीं थी। अतः तुमने सबको जला दिया, गुरुका अपमान किया और नास्तिकताका प्रचार करनेको उद्यत हो गये थे। अब भला बताओ तुम्हें किस देवताका दर्शन होगा और कौन-सी सिद्धि प्राप्त होनी चाहिये। तुम्हारे ग्यारह जन्मोंके पाप थे जो ग्यारह पहाड़के रूपमें गिरकर अग्निमें नष्ट हुए। अब पुनः गुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करो।

विद्यारण्यने रोते हुए अपने गुरुके चरणोंमें गिरकर यह सारी घटना सुनायी। उनके गुरु अत्यन्त कृपालु थे। उन्होंने उन्हें पुनः दूसरी माला, झोली और पुस्तकें आदि दे दीं और कहा कि तुम्हें एक ही अनुष्ठानसे भगवतीका सम्यक् दर्शन एवं ज्ञान प्राप्त हो जायगा। फिर सब कुछ वैसा ही हुआ। शंकराचार्यके सम्प्रदायमें वे ही सबसे बड़े विद्वान् हुए। फिर उन्होंने श्री[illegible] उपनिषद्-भाष्य आदि

विशाल मन्त्रोपासना-ग्रन्थ, जीवन्मुक्ति-विवेक, उपनिषद्-भाष्य, वेद, आरण्यक-भाष्य और पञ्चदशी आदि प्रायः शताधिक छोटे-बड़े ग्रन्थ लिखे तथा देवीसे यह भी प्रार्थना की कि जो शुद्ध हृदयसे गुरु न मिलनेपर मुझे ही गुरु मानकर इस ग्रन्थकी विधिपूर्वक उपासना करे तो उसे आप शीघ्र दर्शन दें, अन्यथा कलियुगमें सभी नास्तिक हो जायँगे। ये ही विद्यारण्य भगवान् शंकरकी कृपासे शृंगेरी मठके आचार्य हुए और प्रायः सौ वर्षोंसे अधिक दिनोंतक जीवित रहे। इन्होंने काश्मीर तथा विजयनगर दो विशाल साम्राज्योंकी स्थापना की थी, जिनकी राजधानियाँ श्रीयन्त्रपर स्थित होनेके कारण श्रीनगर तथा विद्यानगर (विजयनगर) के नामसे प्रसिद्ध हुईं। दोनोंके शासक नरेश इनके अत्यन्त अनुगत शिष्य थे और साम्राज्योंका सीधा संचालन इनके ही हाथोंमें था। यों 'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र' में '**मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि**' इसमें पचासी वर्षसे अधिक जीनेकी जो बात कही गयी है, वह इन्हींकी रचना सिद्ध होती है, क्योंकि शंकराचार्यजी ३२ वर्षतक ही जीवित थे।

देवताका ध्यान प्रायः हृदयमें होता है, यदि हृदय शुद्ध नहीं है, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदिसे तनिक भी दूषित है तो वहाँ देवता कैसे आयेंगे। जिस गंदे तालाबमें सूअर, गदहे, कुत्ते, गीध, कौए, बगुले आदि लोट-लोटकर स्नान आदि कर दूषित करेंगे, वहाँ राजहंस कैसे आ सकते है? गोस्वामीजीने भी कहा है—'जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥' (विनय-पत्रिका, १८५)

शैवागमोंमें शिव-ज्ञानकी बहुत चर्चा है। तदनुसार अभ्यास, ज्ञान, वैराग्य ही शिवकी प्रसन्नताके लिये मूल स्रोत बतलाये गये हैं। शिवगीता एवं भगवद्गीतामें प्रायः यही बात कही गयी है। रामचरितमानसके प्रारम्भमें गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है कि शिवरूप परमात्मा तो सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित ही हैं। पर विनम्रता और श्रद्धारूपी भवानी तथा त्याग, वैराग्य, दैन्य और विश्वासरूपी शिवके अभावमें वह प्रत्यक्ष नहीं होता—

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

'**देवो भूत्वा यजेद्देवम्**', '**शिवो भूत्वा शिवं यजेत्**' के अनुसार विष्णु बनकर विष्णुकी, शिव बनकर शिवकी और देवता बनकर देवताकी आराधना होती है। अतः शिवकी प्राप्तिके लिये अपनेको निरन्तर ऊपर उठाते हुए शिवके समान ही त्यागी, परोपकारी, सहिष्णु और काम, क्रोध, लोभ आदिसे शून्य होकर केवल विज्ञानमय, साधनामय एवं उपासनामय ही बनना पड़ेगा। गीताके '**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' के आधारपर मानसिक योग्यता न होने तथा अर्थ, काम-लिप्साके कारण ही अन्तर-बाह्य व्याप्त शिव नहीं दीखते। शुद्ध उपासनाका आश्रय लेनेपर सभी दोष धीरे-धीरे दूर होकर एकमात्र शान्त शिव ही सर्वत्र उद्भासित होते दीखेंगे।

शिव-स्तुति

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि किये बिष-पान।
दारुन दनुज, जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान ॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति सकल पुरान।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥

(विनयपत्रिका ३)

करना ही उचित है, क्योंकि शास्त्र अनुल्लङ्घनीय है। तीर्थादि शास्त्र सामान्य हैं अतएव सर्वाधिकारियोंको मान्य हैं, और कर्तव्याकर्तव्यमें शास्त्र ही प्रमाण है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

कितने ही मनुष्य भाव-चोर होते हैं। ये भाव-चोर पुरुष सभी मार्गोंमें होते हैं। उनके विषयमें मेरा कोई वक्तव्य नहीं है क्योंकि 'परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।'

एक सज्जन धनिक गणपतिका पूजन कर रहे थे। जब पूज्यदेवको वस्त्र पहनानेका समय आया तो अक्षत चढ़ाकर बोले कि 'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि' तो हमने कहा कि 'महाशय! अगर आप स्नान करके गीले कपड़ेसे खड़े हों और आपका नौकर यदि एक मुट्ठी चावल आपके सिरपर डालकर कह दे कि 'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि' तो कहिये कैसी बने।' इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि अजी साहब, ये तो देवता हैं, इन्हें वस्त्रकी क्या अपेक्षा है? ये तो हमें देते हैं, इनके यहाँ वस्त्रकी क्या कमी है?' इसी प्रकार बहुत-से लोग कह बैठते हैं कि अजी क्या शिव और क्या विष्णु, भगवान् तो सब एक हैं। बात ठीक है, यदि उन लोगोंकी बुद्धि इस तरह सहजमें ही निर्गुण और निरुपाधिक हो चुकी है तो उत्तम है, अन्यथा उनके विषयमें हम कुछ कहना नहीं चाहते। पाठक स्वयं अपना-अपना मत निश्चय कर सकते हैं।

हम तो इतना ही जानते हैं कि सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्यगण भगवान्के अवतार होते हैं, सर्वशास्त्रोंके तत्त्वज्ञ होते हैं और सात्त्विक-प्रकृति किंवा निर्गुण-प्रकृति होते हैं, इसलिये उनके हृदयमें राग-द्वेषका होना असम्भव है। वे तो सबको ब्रह्मरूप और भगवद्रूप ही देखते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीके हृदयमें श्रीशिवजीके लिये कितना उत्तम स्थान है, यह हम उन्हींके वचनोंसे स्पष्ट दिखा चुके हैं। ईश्वरके लिये जो स्थान होना चाहिये, वही स्थान शिवजीके लिये उनके हृदयमें है।

(देवर्षि पं॰ श्रीरमानाथजी शास्त्री)

आचार्य विद्यारण्यस्वामीकी शिवोपासना

आचार्य विद्यारण्यस्वामीने अपने गुरुके निर्देशानुसार ग्यारह अनुष्ठान किये। पर कोई परिणाम नहीं निकला। कुछ भी चमत्कार नहीं हुआ। तब उन्होंने स्थण्डिलपर अग्नि प्रज्वलित कर झोली, माला, आसन, पुस्तक आदि सबको अग्निसात् कर दिया। बस, केवल एक श्रीयन्त्रमय शिवलिङ्ग ही हाथमें बचा था। उसे भी वे अग्निमें डाल ही रहे थे कि एक स्त्री वहाँ आ गयी और बोली—'महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं।' उन्होंने कहा कि 'पूजा-पाठ, उपासना सब पाखण्ड है, इसलिये मैं इन सबोंको जलाकर लोगोंको सचेत करूँगा कि वे उपासना छोड़कर अन्य पुरुषार्थ एवं परिश्रमोंका आश्रय लें।' इसपर वह स्त्री बोली कि 'यह सब तो ठीक है, पर जरा आप अपने पीछे देखिये कि यहाँ क्या हो रहा है।' विद्यारण्यने जब पीछे देखा तो वह स्थण्डिलाग्नि उनके पीछे ही दिखायी दी और उसमें ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थर गिरकर फूटने लगे। वे घबड़ाकर खड़े हो गये और धीरे-धीरे अग्निसे दूर हटने लगे। तबतक लगातार ग्यारह पत्थर आकाशसे गिरकर भयंकर ध्वनि करते हुए अग्निमें नष्ट हो गये। उन्होंने सोचा कि यह स्त्री इस विषयमें कुछ अवश्य जानती होगी, क्योंकि उसीने ही पीछे देखनेको कहा है। पर जब वे स्त्रीको खोजने लगे तो वह कहीं न दीखी। पार्श्ववर्ती उपवनकी झाड़ियोंमें भी उसे चिल्लाकर पुकारा पर वह नहीं आयी। अन्तमें आकाशसे एक ध्वनि आयी कि तुम घोर नास्तिक हो। मैं तो ठीक समयपर आ गयी थी। पर तुम्हारी गुरु और शास्त्रोंमें श्रद्धा नहीं थी। अतः तुमने सबको जला दिया, गुरुका अपमान किया और नास्तिकताका प्रचार करनेको उद्यत हो गये थे। अब भला बताओ तुम्हें किस देवताका दर्शन होगा और कौन-सी सिद्धि प्राप्त होनी चाहिये। तुम्हारे ग्यारह जन्मोंके पाप थे जो ग्यारह पहाड़के रूपमें गिरकर अग्निमें नष्ट हुए। अब पुनः गुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करो।

विद्यारण्यने रोते हुए अपने गुरुके चरणोंमें गिरकर यह सारी घटना सुनायी। उनके गुरु अत्यन्त कृपालु थे। उन्होंने उन्हें पुनः दूसरी माला, झोली और पुस्तकें आदि दे दीं और कहा कि तुम्हें एक ही अनुष्ठानसे भगवतीका सम्यक् दर्शन एवं ज्ञान प्राप्त हो जायगा। फिर सब कुछ वैसा ही हुआ। शंकराचार्यके सम्प्रदायमें वे ही सबसे बड़े विद्वान् हुए। फिर उन्होंने श्रीविद्यार्णव, नृसिंहोत्तरतापिनी उपनिषद्-भाष्य आदि

विशाल मन्त्रोपासना-ग्रन्थ, जीवन्मुक्ति-विवेक, उपनिषद्-भाष्य, वेद, आरण्यक-भाष्य और पञ्चदशी आदि प्रायः शताधिक छोटे-बड़े ग्रन्थ लिखे तथा देवीसे यह भी प्रार्थना की कि जो शुद्ध हृदयसे गुरु न मिलनेपर मुझे ही गुरु मानकर इस ग्रन्थकी विधिपूर्वक उपासना करे तो उसे आप शीघ्र दर्शन दें, अन्यथा कलियुगमें सभी नास्तिक हो जायँगे। ये ही विद्यारण्य भगवान् शंकरकी कृपासे शृंगेरी मठके आचार्य हुए और प्रायः सौ वर्षोंसे अधिक दिनोंतक जीवित रहे। इन्होंने काश्मीर तथा विजयनगर दो विशाल साम्राज्योंकी स्थापना की थी, जिनकी राजधानियाँ श्रीयन्त्रपर स्थित होनेके कारण श्रीनगर तथा विद्यानगर (विजयनगर) के नामसे प्रसिद्ध हुईं। दोनोंके शासक नरेश इनके अत्यन्त अनुगत शिष्य थे और साम्राज्योंका सीधा संचालन इनके ही हाथोंमें था। यों 'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र' में 'मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि' इसमें पचासी वर्षसे अधिक जीनेकी जो बात कही गयी है, वह इन्हींकी रचना सिद्ध होती है, क्योंकि शंकराचार्यजी ३२ वर्षतक ही जीवित थे।

देवताका ध्यान प्राय. हृदयमें होता है, यदि हृदय शुद्ध नहीं है, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदिसे तनिक भी दूषित है तो वहाँ देवता कैसे आयेंगे। जिस गंदे तालाबमें सूअर, गदहे, कुत्ते, गीध, कौए, बगुले आदि लोट-लोटकर स्नान आदि कर दूषित करेंगे, वहाँ राजहंस कैसे आ सकते हैं? गोस्वामीजीने भी कहा है—'जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥' (विनय-पत्रिका, १८५)

शैवागमोंमें शिव-ज्ञानकी बहुत चर्चा है। तदनुसार अभ्यास, ज्ञान, वैराग्य ही शिवकी प्रसन्नताके लिये मूल स्रोत बतलाये गये हैं। शिवगीता एवं भगवद्गीतामें प्रायः यही बात कही गयी है। रामचरितमानसके प्रारम्भमें गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है कि शिवरूप परमात्मा तो सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित ही हैं। पर विनम्रता और श्रद्धारूपी भवानी तथा त्याग, वैराग्य, दैन्य और विश्वासरूपी शिवके अभावमें वह प्रत्यक्ष नहीं होता—

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

'देवो भूत्वा यजेद्देवम्', 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' के अनुसार विष्णु बनकर विष्णुकी, शिव बनकर शिवकी और देवता बनकर देवताकी आराधना होती है। अतः शिवकी प्राप्तिके लिये अपनेको निरन्तर ऊपर उठाते हुए शिवके समान ही त्यागी, परोपकारी, सहिष्णु और काम, क्रोध, लोभ आदिसे शून्य होकर केवल विज्ञानमय, साधनामय एवं उपासनामय ही बनना पड़ेगा। गीताके 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' के आधारपर मानसिक योग्यता न होने तथा अर्थ, काम-लिप्साके कारण ही अन्तर-बाह्य व्याप्त शिव नहीं दीखते। शुद्ध उपासनाका आश्रय लेनेपर सभी दोष धीरे-धीरे दूर होकर एकमात्र शान्त शिव ही सर्वत्र उद्भासित होते दीखेंगे।

शिव-स्तुति

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि किये बिष-पान।
दारुन दनुज, जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान ॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति सकल पुरान।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥

(विनयपत्रिका ३)

करना ही उचित है, क्योंकि शास्त्र अनुल्लङ्घनीय है। तीर्थादि शास्त्र सामान्य हैं अतएव सर्वाधिकारियोंको मान्य हैं, और कर्तव्याकर्तव्यमें शास्त्र ही प्रमाण है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

कितने ही मनुष्य भाव-चोर होते हैं। ये भाव-चोर पुरुष सभी मार्गोंमें होते हैं। उनके विषयमें मेरा कोई वक्तव्य नहीं है क्योंकि **'परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।'**

एक सज्जन धनिक गणपतिका पूजन कर रहे थे। जब पूज्यदेवको वस्त्र पहनानेका समय आया तो अक्षत चढ़ाकर बोले कि **'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि'** तो हमने कहा कि 'महाशय! अगर आप स्नान करके गीले कपड़ेसे खड़े हों और आपका नौकर यदि एक मुट्ठी चावल आपके सिरपर डालकर कह दे कि **'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि'** तो कहिये कैसी बने।' इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि अजी साहब, ये तो देवता हैं, इन्हें वस्त्रकी क्या अपेक्षा है? ये तो हमें देते हैं, इनके यहाँ वस्त्रकी क्या कमी है?' इसी प्रकार बहुत-से लोग कह बैठते हैं कि अजी क्या शिव और क्या विष्णु, भगवान् तो सब एक हैं। बात ठीक है, यदि उन लोगोंकी बुद्धि इस तरह सहजमें ही निर्गुण और निरुपाधिक हो चुकी है तो उत्तम है, अन्यथा उनके विषयमें हम कुछ कहना नहीं चाहते। पाठक स्वयं अपना-अपना मत निश्चय कर सकते हैं।

हम तो इतना ही जानते हैं कि सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्यगण भगवान्‌के अवतार होते हैं, सर्वशास्त्रोंके तत्त्वज्ञ होते हैं और सात्त्विक-प्रकृति किंवा निर्गुण-प्रकृति होते हैं, इसलिये उनके हृदयमें राग-द्वेषका होना असम्भव है। वे तो सबको ब्रह्मरूप और भगवद्रूप ही देखते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीके हृदयमें श्रीशिवजीके लिये कितना उत्तम स्थान है, यह हम उन्हींके वचनोंसे स्पष्ट दिखा चुके हैं। ईश्वरके लिये जो स्थान होना चाहिये, वही स्थान शिवजीके लिये उनके हृदयमें है।

(देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी शास्त्री)

आचार्य विद्यारण्यस्वामीकी शिवोपासना

आचार्य विद्यारण्यस्वामीने अपने गुरुके निर्देशानुसार ग्यारह अनुष्ठान किये। पर कोई परिणाम नहीं निकला। कुछ भी चमत्कार नहीं हुआ। तब उन्होंने स्थण्डिलपर अग्नि प्रज्वलित कर झोली, माला, आसन, पुस्तक आदि सबको अग्निसात् कर दिया। बस, केवल एक श्रीयन्त्रमय शिवलिङ्ग ही हाथमें बचा था। उसे भी वे अग्निमें डाल ही रहे थे कि एक स्त्री वहाँ आ गयी और बोली— 'महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं।' उन्होंने कहा कि 'पूजा-पाठ, उपासना सब पाखण्ड है, इसलिये मैं इन सबोंको जलाकर लोगोंको सचेत करूँगा कि वे उपासना छोड़कर अन्य पुरुषार्थ एवं परिश्रमोंका आश्रय लें।' इसपर वह स्त्री बोली कि 'यह सब तो ठीक है, पर जरा आप अपने पीछे देखिये कि वहाँ क्या हो रहा है।' विद्यारण्यने जब पीछे देखा तो वह स्थण्डिलाग्नि उनके पीछे ही दिखायी दी और उसमें ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थर गिरकर फूटने लगे। वे घबड़ाकर खड़े हो गये और धीरे-धीरे अग्निसे दूर हटने लगे। तबतक लगातार ग्यारह पत्थर आकाशसे गिरकर भयंकर ध्वनि करते हुए अग्निमें नष्ट हो गये। उन्होंने सोचा कि यह स्त्री इस विषयमें कुछ अवश्य जानती होगी, क्योंकि उसीने ही पीछे देखनेको कहा है। पर जब वे स्त्रीको खोजने लगे तो वह कहीं न दीखी। पार्श्ववर्ती उपवनकी झाड़ियोंमें भी उसे चिल्लाकर पुकारा पर वह नहीं आयी। अन्तमें आकाशसे एक ध्वनि आयी कि तुम घोर नास्तिक हो। मैं तो ठीक समयपर आ गयी थी। पर तुम्हारी गुरु और शास्त्रोंमें श्रद्धा नहीं थी। अतः तुमने सबको जला दिया, गुरुका अपमान किया और नास्तिकताका प्रचार करनेको उद्यत हो गये थे। अब भला बताओ तुम्हें किस देवताका दर्शन होगा और कौन-सी सिद्धि प्राप्त होनी चाहिये। तुम्हारे ग्यारह जन्मोंके पाप थे जो ग्यारह पहाड़के रूपमें गिरकर अग्निमें नष्ट हुए। अब पुनः गुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करो।

विद्यारण्यने रोते हुए अपने गुरुके चरणोंमें गिरकर यह सारी घटना सुनायी। उनके गुरु अत्यन्त कृपालु थे। उन्होंने उन्हें पुनः दूसरी माला, झोली और पुस्तकें आदि दे दीं और कहा कि तुम्हें एक ही अनुष्ठानसे भगवतीका सम्यक् दर्शन एवं ज्ञान प्राप्त हो जायगा। फिर सब कुछ वैसा ही हुआ। शंकराचार्यके सम्प्रदायमें वे ही सबसे बड़े विद्वान् हुए। फिर उन्होंने श्रीविद्यार्णव, नृसिंहोत्तरतापिनी उपनिषद्-भाष्य आदि

विशाल मन्त्रोपासना-ग्रन्थ, जीवन्मुक्ति-विवेक, उपनिषद्-भाष्य, वेद, आरण्यक-भाष्य और पञ्चदशी आदि प्रायः शताधिक छोटे-बड़े ग्रन्थ लिखे तथा देवीसे यह भी प्रार्थना की कि जो शुद्ध हृदयसे गुरु न मिलनेपर मुझे ही गुरु मानकर इस ग्रन्थकी विधिपूर्वक उपासना करे तो उसे आप शीघ्र दर्शन दें, अन्यथा कलियुगमें सभी नास्तिक हो जायँगे। ये ही विद्यारण्य भगवान् शंकरकी कृपासे शृंगेरी मठके आचार्य हुए और प्रायः सौ वर्षोंसे अधिक दिनोंतक जीवित रहे। इन्होंने काश्मीर तथा विजयनगर दो विशाल साम्राज्योंकी स्थापना की थी, जिनकी राजधानियाँ श्रीयन्त्रपर स्थित होनेके कारण श्रीनगर तथा विद्यानगर (विजयनगर) के नामसे प्रसिद्ध हुईं। दोनोंके शासक नरेश इनके अत्यन्त अनुगत शिष्य थे और साम्राज्योंका सीधा संचालन इनके ही हाथोंमें था। यों 'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र' में 'मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि' इसमें पचासी वर्षसे अधिक जीनेकी जो बात कही गयी है, वह इन्हींकी रचना सिद्ध होती है, क्योंकि शंकराचार्यजी ३२ वर्षतक ही जीवित थे।

देवताका ध्यान प्रायः हृदयमें होता है, यदि हृदय शुद्ध नहीं है, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदिसे तनिक भी दूषित है तो वहाँ देवता कैसे आयेंगे। जिस गंदे तालाबमें सूअर, गदहे, कुत्ते, गीध, कौए, बगुले आदि लोट-लोटकर स्नान आदि कर दूषित करेंगे, वहाँ राजहंस कैसे आ सकते हैं? गोस्वामीजीने भी कहा है—'जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥' (विनय-पत्रिका, १८५)

शैवागमोंमें शिव-ज्ञानकी बहुत चर्चा है। तदनुसार अभ्यास, ज्ञान, वैराग्य ही शिवकी प्रसन्नताके लिये मूल स्रोत बतलाये गये हैं। शिवगीता एवं भगवद्गीतामें प्रायः यही बात कही गयी है। रामचरितमानसके प्रारम्भमें गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है कि शिवरूप परमात्मा तो सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित ही हैं। पर विनम्रता और श्रद्धारूपी भवानी तथा त्याग, वैराग्य, दैन्य और विश्वासरूपी शिवके अभावमें वह प्रत्यक्ष नहीं होता—

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

'देवो भूत्वा यजेद्देवम्', 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' के अनुसार विष्णु बनकर विष्णुकी, शिव बनकर शिवकी और देवता बनकर देवताकी आराधना होती है। अतः शिवकी प्राप्तिके लिये अपनेको निरन्तर ऊपर उठाते हुए शिवके समान ही त्यागी, परोपकारी, सहिष्णु और काम, क्रोध, लोभ आदिसे शून्य होकर केवल विज्ञानमय, साधनामय एवं उपासनामय ही बनना पड़ेगा। गीताके 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' के आधारपर मानसिक योग्यता न होने तथा अर्थ, काम-लिप्साके कारण ही अन्तर-बाह्य व्याप्त शिव नहीं दीखते। शुद्ध उपासनाका आश्रय लेनेपर सभी दोष धीरे-धीरे दूर होकर एकमात्र शान्त शिव ही सर्वत्र उद्भासित होते दीखेंगे।

शिव-स्तुति

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि किये बिष-पान।
दारुन दनुज, जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान ॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति सकल पुरान।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥

(विनयपत्रिका ३)

श्रीशिवतत्त्व

(अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

शिव ही समस्त प्राणियोंके अन्तिम विश्रामके स्थान हैं—'विश्रामस्थानमेकम्'। 'शीङ् स्वप्ने' धातुसे 'शिव' शब्दकी सिद्धि है। 'शेरते प्राणिनो यत्र स शिवः'—अनन्त पाप-तापोंसे उद्विग्न होकर विश्रामके लिये प्राणी जहाँ शयन करें, बस उसी सर्वाधिष्ठान, सर्वाश्रयको शिव कहा जाता है। वैसे तो—

'शान्तं शिवं चतुर्थमद्वैतं मन्यन्ते।'

—इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे रहित, सर्वदृश्यविवर्जित, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दघन परब्रह्म ही शिवतत्त्व है, फिर भी वही परमतत्त्व अपनी दिव्य शक्तियोंसे युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्डोंका उत्पादन, पालन एवं संहार करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि संज्ञाओंको धारण करते हैं। यद्यपि कहीं ब्रह्माको जीव भी कहा गया है, 'सोऽविभेत् एकाकी न रेमे जाया मे स्यादथ कर्म कुर्वीय' इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार भय, अरमण आदि-युक्त होनेसे हिरण्यगर्भ एवं विराट्को जीव ही कहा गया है, तथापि वह एक-एक ब्रह्माण्डके उत्पादक मुख्य ब्रह्मादिके साथ तादात्म्याभिमानी जीव ब्रह्मा कहा जाता है। वास्तवमें तो जैसे किसान ही क्षेत्रमें बीजको बोकर अङ्कुरादि-रूपमें उत्पादक होता है, वही सिञ्चनादिद्वारा पालक और अन्तमें वही काटनेवाला होता है, वैसे ही एक ही अनन्त-अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न भगवान् विश्वके उत्पादक, पालक और संहारक होते हैं।

सर्वभूतेषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

भगवान्‌का कहना है कि समस्त भूतोंमें जितनी भी मूर्तियाँ उत्पन्न होती है, उन सबकी महद्‌ब्रह्म (प्रकृति) योनि (माता) है और बीज प्रदान करनेवाला पिता मैं हूँ। 'पिताऽहमस्य जगतः'—मैं ही समस्त जगत्‌का पिता—उत्पादक हूँ।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥

अर्थात् प्रकृतिरूप योनिमें जब मैं गर्भाधान करता हूँ, तब उससे समस्त विश्वकी उत्पत्ति होती है। इस तरह ब्रह्माण्डोत्पादक ब्रह्मा भी परमेश्वर ही है, अतएव—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।'

इस श्रुतिसे जो ब्रह्मका लक्षण कहा गया है, उससे विश्वके उत्पादक, पालक एवं संहारकको परमेश्वर समझना चाहिये। यदि यह तीनों पृथक्-पृथक् हों, तब तो कोई भी परमेश्वर नहीं सिद्ध हो सकेगा। क्योंकि निरतिशय ऐश्वर्य और सर्वज्ञ-गुण-सम्पन्नको परमेश्वर कहा जाता है। यदि ये तीनों ही सर्वशक्तिसम्पन्न परमेश्वर हैं, तो यह प्रश्न होगा कि ये तीनों मिलकर सलाहसे कार्य करते हैं या स्वतन्त्रतासे अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार ? यदि सलाहसे ही करते हैं यह माना जाय, तब तो इनमें परमेश्वर कोई भी न हुआ। किंतु इन तीनोंकी परिषद् या पञ्चायत ही परमेश्वर है, क्योंकि अकेले कोई भी कार्य करनेमें स्वतन्त्र नहीं है। यदि तीनोंकी इच्छा समान ही होती है और तीनोंकी इच्छानुसार ही उनकी शक्तियाँ कार्यमें प्रवृत्त होती हैं, तब भी तीनका मानना ही व्यर्थ है। फिर तो एकसे भी वह सब कार्य सम्पन्न ही हो सकता है। यदि द्वितीय पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् स्वतन्त्रतासे भी तीनों कार्य कर सकते हैं, तब भी इनमें कोई भी परमेश्वर नहीं सिद्ध होगा, क्योंकि स्वतन्त्रतासे यदि इच्छा उत्पन्न होगी, तो सम्भव है कि जिस समय एकको जगत्पालनकी रुचि हुई, उसी समय दूसरेको संहारकी रुचि उत्पन्न हो। अब यहाँ जिसकी इच्छा सफल होगी, उसीका निरङ्कुश ऐश्वर्य समझा जायगा। जिसका मनोरथ भग्न हुआ, उसकी ईश्वरता औपचारिक ही रहेगी। एक विषयमें विरुद्ध दो प्रकारकी इच्छाओंका सफल होना असम्भव ही है। इस तरह अनेक ईश्वरका होना किसीके भी मतमें कथमपि सम्भव नहीं, अतः एकेश्वरवाद ही सबको मानना पड़ता है। इसीलिये महानुभावोंने एकहीमें अवस्थाभेदसे उत्पादकत्व, पालकत्व और संहारकत्व माना है।

निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्चभूतानि।

स्मितमेतस्य चराचरस्य च सुप्तं महाप्रलयः ॥

भगवान्‌के निःश्वाससे ही वेदोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। वीक्षण (देखने) से आकाशादि अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतकी सृष्टि होती है। स्मित (मन्दहास, मुसकुराहट) से भौतिक अनन्त ब्रह्माण्ड बन जाते हैं और सुप्तिसे ही निखिल ब्रह्माण्डका प्रलय हो जाता है। इस दृष्टिसे एक ब्रह्माण्डके उत्पादक, पालक, संहारक ब्रह्मा, विष्णु, शिवके अतिरिक्त निखिल ब्रह्माण्डोंके उत्पादक, पालक, संहारक ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं है। जैसे एक ही गगनस्थ सूर्य अनन्त घटोदकों और तडागोदकोंमें प्रतिबिम्बित होता है, वैसे ही एक ही अखण्ड, अनन्त, निर्विकार चिदानन्द परमात्म-तत्त्व अनन्त अन्तःकरणों और मायाभेदोंमें प्रतिबिम्बित होते हैं। अन्तःकरणगत प्रतिबिम्ब ही जीव कहलाते हैं। मायागत प्रतिबिम्ब ही ईश्वर कहलाते हैं। जैसे अन्त.करणके स्वच्छत्वादितारतम्यसे जीवोंमे काल्पनिक भेद होता है, वैसे ही मायाकी उत्पादकत्व, पालकत्व, संहारकत्व-शक्तिके भेदसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रमें काल्पनिक भेद होता है। अनन्त ब्रह्माण्डकी कल्पनामें अनन्त ब्रह्माण्डकी उत्पादिनी शक्तियाँ भी अनन्त हैं। उन एक-एक शक्तियों, अनन्त अन्तःकरण और उत्पादकत्व, पालकत्व, संहारकत्व शक्तिसे युक्त माया है। इस तरह एक-एक शक्तिसे ब्रह्माण्ड और उसके अन्तर्गत अनन्त जीव एवं उत्पादक, पालक, संहारक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र व्यक्त होते हैं। परंतु इन सभी प्रतिबिम्बोंका मूलभूत जो बिम्ब है, वह तो सर्वथा एक ही है। वही विष्णुभक्तोंको विष्णुरूपसे, रामभक्तोंको रामरूपसे, शिवभक्तोंको शिव-रूपसे दृष्टिगोचर होता है। जैसे एक ही गगनस्थ सूर्य नीले चश्मेसे नीला, पीलेसे पीला दिखलायी देता है, वैसे ही विष्णु-भावनासे भावित-अन्तःकरण विष्णुभक्त उसी परमतत्त्वको विष्णु कहते हैं, शिव-भावनासे भावितमनस्क उसी परमतत्त्वको शिव कहते हैं और वही श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि रूपमें उपलब्ध होता है। वही गगनस्थ सूर्यस्थानीय परमतत्त्व 'शिव-स्कन्दादि' पुराणका शिव है, वही 'विष्णुपुराण', 'रामायण', 'भागवत' आदि सद्ग्रन्थोंमें विष्णु, राम, कृष्णरूपसे गाया गया है। भक्तकी भावनानुसार ही उस परमतत्त्वकी ही विशुद्धसत्त्वमयी दिव्य शक्तिके योगसे मधुर मनोहर मूर्ति भी व्यक्त होती है। इस तरह मूलतः शिव एवं विष्णु एक ही हैं, फिर भी उनके अपर रूपमें सत्त्वके योगसे विष्णुको सात्त्विक और तमके योगसे रुद्रको तामस कहा जाता है। वस्तुतः सत्त्वनियन्ता विष्णु और तमनियन्ता रुद्र हैं। तम ही मृत्यु है, काल है अतः उसके नियन्ता महामृत्युञ्जय महाकालेश्वर भगवान् रुद्र हैं। दूसरी दृष्टिसे भी जैसे तमःप्रधान सुषुप्तिसे ही जाग्रत्-स्वप्नकी सृष्टि होती है, वैसे ही तम.प्रधान प्रलयावस्थासे ही सर्वप्रपञ्चकी सृष्टि होती है।

कृष्णके अनन्य प्रेमी भक्तगण तमको बहुत ऊँचा किंवा सबसे उत्कृष्ट मानते हैं। प्रेममयी आसक्ति मोह, मूर्च्छा, सात्त्विक विवेक-प्रकाशसे कहीं अधिक महत्वकी होती है। वास्तवमें किसी भी कार्यमें अवष्टम्भ (रुकावट) प्रकाश और हलचल (प्रवृत्ति-चेष्टा) की अपेक्षा होती है। तीनोंमेंसे एकके बिना भी कार्य नहीं होता। प्राकृत या अप्राकृत दिव्य-से-दिव्य कार्योंमें भी अवष्टम्भकी अपेक्षा होती है, वही दिव्य अवष्टम्भ तम है। इसी तामस एवं तामस-भावनाका अत्यन्त महत्त्व माना जाता है। श्रीमद्भागवतका तामसफल (रासलीला) प्रकरण अपना सर्वाधिक महत्त्व रखता है। वैसे भी विश्रामके लिये तामस सुषुप्तिकी ऐसी महिमा है कि इन्द्रादि दिव्य भोग-सामग्री-सम्पन्न होकर भी उसे छोड़कर सुषुप्ति चाहते हैं। चिन्तन, मनन सात्त्विक होनेपर भी सुषुप्तिका प्रतिबन्धक होनेसे उद्वेजक समझा जाता है। जब जाग्रदादि अवस्थामें द्वैत-दर्शनसे जीव उद्विग्न हो उठता है, तब उसे विश्रामके लिये सुषुप्तिका आश्रयण अनिवार्य हो जाता है। वैसे ही जब सृष्टिकालके उपद्रवोंसे जीव व्याकुल हो जाता है, तब उसको दीर्घ सुषुप्तिमें विश्रामके लिये भगवान् सर्वसंहार करके प्रलयावस्था व्यक्त करते हैं।

यह संहार भी भगवान्‌की कृपा ही है, जैसे दुश्चिकित्स्य व्रणसे व्याकुल व्यक्तिको देखकर चिकित्सक करुणासे ही व्रण-छेदनके लिये तीक्ष्ण शस्त्रको ग्रहण करता है, वैसे ही दुर्निवार्य पाप-तापके बढ़ जानेपर करुणासे ही भगवान् विश्वका संहार करते हैं—

जिमि सिसु तन व्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥

(रा० च० मा०, उत्तर० ७४। ८)

कार्यावस्थासे कारणावस्थाका महत्त्व स्पष्ट ही है।

तमः प्रधानावस्था है, उसीसे उत्पादनावस्था और पालनावस्था व्यक्त होती है। अन्तमें फिर भी सबको प्रलयावस्थामें जाना पड़ता है—

'भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।'

अर्थात् यह समस्त भूतग्राम अनन्त कालसे उत्पन्न हो-होकर पुनः-पुनः प्रलयावस्थाको प्राप्त होता है। कारणसे ही सबकी उत्पत्ति और उसीमें पालन और पुनः उसीमें सबका संहार होता है। निःस्तब्ध समुद्रसे ही तरङ्गकी उत्पत्ति, उसीमें उसका पालन, अन्तमें फिर भी उसीमें संहार होता है। उत्पादनावस्थाके नियामक ब्रह्मा, पालनावस्थाके नियामक विष्णु और संहारावस्था एवं कारणावस्थाके नियामक शिव हैं। पहले भी कारणावस्था रहती है, अन्तमें भी वही रहती है। इस तरह प्रथम भी शिव ही, अन्तमें भी शिव ही तत्त्व अवशिष्ट रहता है—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

तत्त्वज्ञ लोग उसीमें आत्मभाव करते हैं, जो चराचर प्रपञ्चकी उत्पत्तिके पहले होता है। उसकी महिमा और वीर्यवत्ता प्रसिद्ध ही है। अतः वही मुख्य निरुपचरित ईश्वर या महेश्वर होता है।

अतः शिवजी ही केवल 'ईश्वर' शब्दसे कहे जाते हैं।

'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्।'

'महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।'

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'

अर्थात् ईशान ही सर्व विद्याओं एवं भूतोंके ईश्वर हैं, वही महेश्वर हैं, वही समस्त प्राणियोंके हृदयमे रहते हैं। हृदयमें ही सुषुप्ति होती है, वहीं कारणावस्थाके अधिपतिका होना युक्त भी है। कहीं उपनिषदोंमें एकादश प्राणोंको 'रुद्र' कहा गया है। वे निकलनेपर प्राणियोंको रुलाते हैं, इसलिये रुद्र कहे जाते हैं। अतः दस इन्द्रियाँ और मन ही एकादश रुद्र हैं। परंतु ये आध्यात्मिक रुद्र हैं। आधिदैविक एवं सर्वोपाधिविनिर्मुक्त रुद्र इनसे पृथक् हैं। जैसे विष्णु पादके अधिष्ठाता हैं, वैसे ही रुद्र अहंकारके अधिष्ठाता हैं—

'एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे।'

अर्थात् एक रुद्र ही तत्त्व था, द्वित्वसंख्यापूर्त्यर्थ कोई दूसरा तत्त्व ही न था। इन श्रुतियोंसे प्रोक्त रुद्र तो महाकारण या कार्यकारणातीत शुद्ध ब्रह्म ही है। यह भी 'रोदनात् रुद्र' है, प्रलयकालमें सबको रुलानेवाले यही हैं।

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥

(कठोपनिषद् २। २५)

अर्थात् ब्रह्मक्षत्रोपलक्षित समस्त प्रपञ्च जिसका ओदन (भात) है, मृत्यु जिसका उपसेचन (दूध, दही, दाल या कढ़ी) है, उसे कौन, कैसे, कहाँ जाने? जैसे प्राणी कढ़ी-भात मिलाकर खा लेता है, बस विश्वसंहारक काल और समस्त प्रपञ्चको मिलाकर खानेवाला परमात्मा मृत्युका भी मृत्यु है, अतः महामृत्युञ्जय भी वही है, कालका भी काल है, अतः कालकाल या महाकालेश्वर है। यदि कोई भी बच जाय, तब तो उसकी सर्वसंहारकतामें बाधा उपस्थित होती है, अतएव 'योऽवशिष्येत' वही एक ब्रह्म है। इसीलिये विष्णु भी वही है, यदि वे शिव या रुद्रसे पृथक् होंगे, तब महामृत्युञ्जय, महाकालेश्वर, सर्वसंहारकसे संहत हो जायँगे, अन्यथा एकको छोड़कर सर्वकी संहारकता ही शिवमें समझी जायगी। सर्वसंहर्ताके सामने दूसरी जो भी चीज उपस्थित होगी, वह उसका अवश्य संहार करेगा। अतः यदि कोई बचेगा तो उसका आत्मा ही बचेगा, क्योंकि अपनेमें संहार्य-संहारकभाव नहीं बनता। इसीलिये शिवकी आत्मा विष्णु और विष्णुकी आत्मा शिव है। वहाँ भिन्नता है ही नहीं, जिससे परसमवेत-क्रियाशालित्वरूप कर्मत्वका योग हो। सर्व-संहारकमें ही निरतिशय प्राबल्य एवं परमेश्वरत्व, सर्वोत्कृष्टत्व सिद्ध होता है। शेष जो भी उससे भिन्न अवशिष्ट होते हैं, उन सबका संहार हो जाता है। अतः उनका अनीश्वरत्व, निकृष्टत्व, विधेयत्व, तद्वशवर्तित्व सुतरां सिद्ध होता है।

जो परमेश्वर भक्तों, प्रेमियों और ज्ञानियोंके निरतिशय, निरुपाधिक परप्रेमके आस्पद होते हैं और परमानन्दस्वरूप होते हैं, वही अभक्तोंके लिये प्रचण्ड मृत्युरूप होकर उपलब्ध होते हैं और उनसे सब भयभीत होते हैं। संहारक और शासकसे सबको भय होना स्वाभाविक है। इसीलिये कहा गया है कि 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्।' अर्थात् परमेश्वर उद्यत वज्रके समान महाभयानक है। उसीके भयसे सूर्य, चन्द्र,

अग्नि, वायु, इन्द्र नियमसे अपने-अपने काममें लगे हैं। उसीके भयसे मृत्यु भी दौड़ रही है—

'भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चमः।' (तैत्तिरीय॰ २।८।१)

यही प्रचण्ड कोपरूप भी है, कोपका कार्य मृत्यु है। फिर जो मृत्युका भी मृत्यु है उसकी कोपरूपतामें क्या संदेह है? सर्वसंहारक प्रचण्ड उग्र शासक परमात्मा ही ईश्वर, ईशान, भीम, उग्र, रुद्र, चण्ड एवं चण्डिका आदि शब्दोंसे व्यवहृत होता है।

वेदान्तकी दृष्टिसे अज्ञानी लोग सर्वविधभेदशून्य, स्वप्रकाश अद्वैत ब्रह्मसे डरते हैं—

'योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः।'

(अद्वैत-प्रकरण (माण्डू॰) ३९)

जैसे नीमके कीड़ेको सिता शर्करासे उद्वेग होता है, वैसे ही सप्रपञ्च द्वैतसुखके कीट अज्ञानियोंको निष्प्रपञ्च अद्वैतसुखसे भय होता है, क्योंकि उनके अभिलषित वादित्र, नृत्य-गीतादि द्वैतसुखका वहाँ अत्यन्ताभाव होता है। परंतु, ज्ञानियोंके लिये तो वही परमानन्दरसरूप है। इस तरह अज्ञानियोंको उद्वेजक होते हुए भी वह तत्त्वज्ञानियोंको परमरसामृतरूप होकर प्रकट होता है।

विवेकियोंकी दृष्टिमें प्रमाद ही मृत्यु है—

'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि।' (सनत्सु॰)

उन समस्त प्रमादोंकी जड़ मोह या अज्ञान ही है और उसका अन्त करनेवाला ब्रह्माकारा चरम वृत्तिपर आरूढ़ शुद्ध ब्रह्म ही है। इस तरह मृत्युरूप अज्ञानके नाशक होनेसे सर्वसंहारक महामृत्युञ्जय महाकालेश्वर परमतत्त्व शिव ही हैं। वे ही लीलया दिव्यमङ्गलमयी मूर्ति धारण करते हैं, भक्तोंकी अपनी उपासनामें चावपूर्वक प्रवृत्ति देख, कुतूहलवशात् स्वयं भी भक्तिरसका आस्वादन करनेके लिये अपने-आपको उपास्य-उपासक दो रूपमें व्यक्त करते हैं। बाल रामचन्द्र, बाल मुकुन्दरूपसे निज हस्तारविन्दके अङ्गुष्ठको मुखारविन्दमें विनिवेशित कर चरणारविन्द-मकरन्द-लुब्ध भावुक मनोमिलिन्दोंके लोकोत्तर सौभाग्यको समझकर स्वयं भी भक्त होकर श्रीशिवकी उपासना करते हैं और शिवजीके रूपसे विष्णुरूपकी उपासना करते हैं। शिवके हृदयमें राम, रामके हृदयमें शिव हैं। साम्राज्य-सिंहासनसमासीन भगवान् रामके हृदयकमलमें अभिव्यक्त श्रीशिवका प्रत्यक्ष दर्शन महर्षियोंने किया और शिवके हृदयमें रामके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इस तरह ***'सेवक स्वामि सखा सिय पीय के'*** शिव सर्वाराध्य परम दैवत हैं।

श्रीकृष्णने उपमन्यु महर्षिसे दीक्षित होकर भगवान् अम्बासहित श्रीशिवकी आराधना करके दिव्य वर प्राप्त किया था। धर्मराज युधिष्ठिरने जब भीष्मजीसे शिवतत्त्वके सम्बन्धमें प्रश्न किया, तब उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट करके कहा कि 'श्रीकृष्ण उनकी कृपाके पात्र हैं, उनकी महिमाको जानते हैं और वही कुछ वर्णन भी कर सकते हैं।' युधिष्ठिरके प्रश्नसे श्रीकृष्णने शान्त, समाहित होकर यही कहा कि 'भगवान्‌की महिमा तो अनन्त है, तथापि उन्हींकी कृपासे उनकी महिमाको अति संक्षेपमें कहता हूँ।' यह कहकर बड़ी ही श्रद्धासे उन्होंने शिव-महिमाका गायन किया। भगवान् विष्णुने तो अपने नेत्रकमलसे भगवान्‌की पूजा की है। उसी भक्त्युद्रेकसे उन्हें सुदर्शनचक्र मिला है। शिव-विष्णुका तो परस्परमें ऐसा उपास्योपासक-सम्बन्ध है कि जो अन्यत्र हो ही नहीं सकता। तम काला होता है और सत्त्व शुक्ल, इस दृष्टिसे सत्त्वोपाधिक विष्णुको शुक्लवर्ण होना था और तम-उपाधिक रुद्रको कृष्णवर्ण होना था और सम्भवतः हैं भी वे वैसे ही, परंतु परस्पर एक-दूसरेकी ध्यानजनित तन्मयतासे दोनोंके ही स्वरूपमें परिवर्तन हो गया अर्थात् विष्णु कृष्णवर्ण और रुद्र शुक्लवर्ण हो गये। मुरलीरूपसे कृष्णके अधरामृतपानका अधिकार शिवको ही हुआ। श्रीकृष्ण अपने अमृतमय मुखचन्द्रपर, सुमधुर अधरपल्लवपर पधराकर अपनी कोमलाङ्गुलियोंसे उनके पादसंवाहन करते, अधरामृतका भोग धरते, किरीटमुकुटका छत्र धरते और कुण्डलसे नीराजन करते हैं। श्रीराधारूपसे श्रीशिवका प्राकट्य होता है तो कृष्णरूपसे विष्णुका, कालीरूपसे विष्णुका तो शंकररूपसे शिवका। इस तरह ये दोनों उभय-उभयात्मा, उभय-उभयभावात्मा हैं।

श्रीशिवका सगुण स्वरूप भी इतना अद्भुत, मधुर, मनोहर और मोहक है कि उनपर सभी मोहित हैं। भगवान्‌की तेजोमयी दिव्य, मधुर, मनोहर विशुद्धसत्त्वमयी, मङ्गलमयी मूर्तिको देखकर स्फटिक, शङ्ख, कुन्द, दुग्ध, कर्पूरखण्ड, श्वेताद्रि,

चन्द्रमा सभी लज्जित होते हैं। अनन्तकोटि चन्द्र सागरके मन्थनसे समुद्भूत, अद्भुत, अमृतमय, निष्कलङ्क पूर्णचन्द्र भी उनके मनोहर मुखचन्द्रकी आभासे लज्जित हो उठता है। मनोहर त्रिनयन, बालचन्द्र एवं जटामुकुटपर दुग्धधवल स्वच्छाकृति गङ्गाकी धारा हठात् मनको मोहती है। हस्ति-शुण्डके समान विशाल, भूतिभूषित, सुडौल, गोल, तेजोमय, अङ्गद-कङ्कण-शोभित भुजा, मुक्ता-मोतियोंके हार, नागेन्द्रहार, व्याघ्रचर्म, मनोहर चरणारविन्द और उनमें सुशोभित नखमणि-चन्द्रिकाएँ भावुकोंको अपार आनन्द प्रदान करती हैं। हिमाद्रिके समान धवलवर्ण स्वच्छ नन्दीगणपर विराजमान सदाशक्तिरूपा श्रीउमाके सङ्ग श्रीशिव ठीक वैसे ही शोभित होते हैं, जैसे धर्मतत्त्वके ऊपर ब्रह्मविद्यासहित ब्रह्म विराजमान हों, किंवा माधुर्याधिष्ठात्री महाशक्तिके साथ मूर्तिमान् होकर परमानन्द रसामृतसिन्धु विराजमान हों।

भगवान्की ऐसी सर्वमनोहारिता है कि सभी उनके उपासक हैं। कालकूट विष और शेषनागको गलेमें धारण करनेसे भगवान्की मृत्युञ्जयरूपता स्पष्ट है। जटामुकुटमें श्रीगङ्गाको धारण कर विश्वमुक्ति-मूलको स्वाधीन कर लिया। अग्निमय तृतीय नेत्रके समीपमें ही चन्द्रकलाको धारण कर अपने संहारकत्व-पोषकत्वरूप विरुद्ध धर्माश्रयत्वको दिखलाया। सर्वलोकाधिपति होकर भी विभूति और व्याघ्रचर्मको ही अपना भूषण-वसन बनाकर संसारमें वैराग्यको ही सर्वापेक्षया श्रेष्ठ बतलाया। आपका वाहन नन्दी, तो उमाका वाहन सिंह, गणपतिका वाहन मूषक, तो स्वामी कार्तिकेयका वाहन मयूर है। मूर्तिमान् त्रिशूल और भैरवादिगण आपकी सेवामें सदा संलग्न हैं। ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्णादि भी उनकी उपासना करते हैं। नर, नाग, गन्धर्व, किन्नर, सुर, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति प्रभृति भी शिवकी उपासनामें तल्लीन हैं।

इधर तामससे तामस असुर, दैत्य, यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच, बेताल, डाकिनी, शाकिनी, वृश्चिक, सर्प, सिंह सभी आपकी सेवामें तत्पर हैं। वस्तुतः परमेश्वरका लक्षण भी यही है कि उसे सभी पूजें।

पार्वतीके विवाहमें जब भगवान् शंकर प्रसन्न हुए, तब अपनी सौन्दर्य-माधुर्य-सुधामयी दिव्य मूर्तिका दर्शन दिया। बरातमें पहले लोग इन्द्रका ऐश्वर्य, माधुर्य देखकर मुग्ध हो गये, समझे कि यही शंकर हैं और उन्हींकी आरतीके लिये प्रवृत्त हुए। जब इन्द्रने कहा कि 'हम तो श्रीशंकरके उपासकोंके भी उपासकोंमें निम्नतम हैं', तब उन लोगोंने प्रजापति ब्रह्मा आदिका अद्भुत ऐश्वर्य देखकर उन्हें परमेश्वर समझा। जब उन्होंने भी अपनेको भगवान्का निम्नतम उपासक कहा, तब वे लोग विष्णुकी ओर प्रवृत्त हुए और उन्हें ही अद्भुत ऐश्वर्य-माधुर्य-सौन्दर्यसम्पन्न देखकर शंकर समझा। जब श्रीविष्णुने भी अपनेको शंकरका उपासक बतलाया, तब तो सब आश्चर्य-सिन्धुमें डूबने लगे।

सचमुच भगवान् कृष्णके श्रीअङ्गका सौन्दर्य, माधुर्य अद्भुत है। औरकी कौन कहे, उसपर वे स्वयं मुग्ध हो जाते हैं। मणिमय स्तम्भों या मणिमय प्राङ्गणमें प्रतिबिम्बित अपनी ही मधुर, मनोहर मङ्गलमयी मूर्तिको देख, उसके ही सम्मिलन और परिरम्भणके लिये वे स्वयं विभोर हो उठते हैं। श्रीमूर्तिके प्रत्येक अङ्गभूषणोंको भी भूषित करते हैं। कौस्तुभादि मणिगणोंने अनन्त आराधनाओंके अनन्तर अपनी शोभा बढ़ानेके लिये उनके श्रीकण्ठको प्राप्त किया है। किं बहुना, अनन्त गुणगणोंने भी अनन्त तपस्याओंके अनन्तर अपनी गुणत्वसिद्धिके लिये जिन निर्गुण, निरपेक्षका आश्रयण किया है, वे स्वयं श्रीकृष्ण जिसकी उपासना करें, जिसपर मुग्ध रहें, उसकी महिमा, मधुरिमाका कहना ही क्या ? राधारूपसे जिसे प्रतिक्षण हृदय एवं रोम-रोममें रखें, वंशीरूपसे अधरपल्लवपर रखें, जिनके स्वरूपका निरन्तर ध्यान करें, उनकी महिमाको कौन कह सकता है ? शब्द, स्पर्श, रस, गन्धके माधुर्यमें प्राणियोंका चित्त आसक्त होता है। चित्तमें अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय ब्रह्मका आरोहण कठिन होता है। इसीलिये भगवान् ऐसी मधुर, मनोहर, मङ्गलमयी मूर्तिरूपमें अपने-आपको व्यक्त करते हैं, जिसके शब्द-स्पर्शादिके माधुर्यका पारावार नहीं, जिसके लावण्य, सौन्दर्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्यकी तुलना कहीं है ही नहीं। मानो भगवान्की सौन्दर्य सुधा-जलनिधि मङ्गलमूर्तिसे ही, किंवा उसके सौन्दर्यादि-सुधा-सिन्धुके एक बिन्दुसे ही अनन्त ब्रह्माण्डमें सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य आदि वितत है।

जब प्राणीका मन प्राकृत कान्ताके सौन्दर्य, माधुर्यादिमें

आसक्त हो जाता है, तब अनन्त ब्रह्माण्डगत सौन्दर्य-माधुर्यादि बिन्दुओंके उद्गमस्थान सौन्दर्यादि सुधाजलनिधि भगवान्‌के मधुर स्वरूपमें क्यों न आसक्त होगा ?

भगवान्‌का हृदय भास्वती भगवती अनुकम्पादेवीके परतन्त्र है। संसारमें माँगनेवाला किसीको अच्छा नहीं लगता, उससे सभी घृणा करते हैं। परंतु, भगवान् शंकर तो आक, धतूर, अक्षत, बिल्वपत्र, जल मात्र चढ़ाने, गाल बजानेसे ही संतुष्ट होकर सब कुछ देनेको प्रस्तुत हो जाते हैं। ब्रह्माजी तो पार्वतीसे अपना दुखड़ा रोते हुए कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।

× × ×

दानी कहुँ संकर-सम नाहीं।
दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥
(विनयपत्रिका ५४)

भगवान् सदाशिवका भक्त भगवान्‌को एक ही बार प्रणाम करनेसे अपनेको मुक्त मानता है। भगवान् भी 'महादेव' ऐसे नाम उच्चारण करनेवालेके प्रति ऐसे दौड़ते हैं, जैसे वत्सला गौ अपने बछड़ेके प्रति—

महादेव महादेव महादेवेति वादिनम्।
वत्सं गौरिव गौरीशो धावन्तमनुधावति॥

जो पुरुष तीन बार 'महादेव, महादेव, महादेव' इस तरह भगवान्‌का नाम उच्चारण करता है, भगवान् एक नामसे मुक्ति देकर शेष दो नामसे सदाके लिये उसके ऋणी हो जाते है—

महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत्।
एकेन मुक्तिमाप्नोति द्वाभ्यां शम्भू ऋणी भवेत्॥

ठीक ही है, वेदान्त-सिद्धान्तानुसार शब्दसे ही तत्त्वका साक्षात्कार होता है। उपनिषदों, महावाक्यों एवं भगवत्स्वरूप-बोधक प्रणवादि नामोंसे तत्त्व-साक्षात्कार होता है। तत्त्व-साक्षात्कार होते ही कल्पित संसार मिट जाता है। स्वाभाविक पारमार्थिक ब्रह्मानन्दरसामृत-मुक्ति मिल जाती है। जैसे अमृतसागरमें क्षार-सागरकी कल्पना भ्रान्तिसे होती है, वैसे ही परमानन्दरसामृतमूर्ति शिवतत्त्वमें भवसागरकी भ्रान्ति होती है। अधिष्ठानके साक्षात्कारसे कल्पना मिट जाती है। यह ***'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं'*** का आशय है। दूसरी दृष्टिसे जैसे तृण, वीरुध, औषधोंके विचित्र सम्प्रयोग-विप्रयोगसे विचित्र गुणों और दोषोंका उद्भव-अभिभव होता है, वैसे ही वर्णोंके विचित्र सम्प्रयोग-विप्रयोगमें विचित्र शक्तियाँ होती हैं। 'क' 'ख' 'ग' 'घ' आदि वर्णोंके ही जोड़-तोड़से विचित्र वाङ्मय शास्त्र बने हैं। 'राजा' 'जारा', 'नदी' 'दीन' यह सब अर्थ-विपरिणाम वर्णोंके आनुपूर्वी ही भेदसे होते हैं। उन्हीं वर्णोंके ऐसे भी जोड़-तोड़ होते हैं, जिनसे घोर-से-घोर शत्रु वशमें हो जाते हैं। सर्प, वृश्चिक, पिशाच, राक्षस, देवता वशमें हो जाते हैं। ऐसे विचित्र वर्णविन्यास होते हैं, जिनका मूल्य संसारमे कुछ भी नहीं है। विद्वानों, कवियों, तार्किकोंके वर्णविन्यास-विशेषमें ही खूबी है, किन्हीं वर्णविन्यासोसे परम मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

इस तरह अदृष्टविधया भी भगवान्‌के शिव, महादेव आदि नामोंमें विचित्र शक्ति है, जिससे प्राणी निष्पाप होकर परमतत्त्वका साक्षात्कार कर कृतकृत्य हो जाता है। साधक भगवान् शिवकी जप-तप, ध्यान-पूजा, यशःश्रवण आदि जिन किन्हीं साधनोंसे उपासना प्रारम्भ करता है, उसी मार्गसे वे उपासनाको ही सफल बनाते हुए सभी प्रकारकी सिद्धियों तथा परासिद्धि-रूप अपने-आपको भी प्रदानकर उसे सभी प्रकार कृतकृत्य एवं सुखी कर देते हैं। अतः शिवोपासना ही सर्वोत्तम धर्म, कर्म एवं साधना है।

आपु आपु कहँ सब भलो अपने कहँ कोइ कोइ। तुलसी सब कहँ जो भलो सुजन सराहिअ सोइ॥

स्वयं अपने लिये सभी भले हैं (सभी अपनी भलाई करना चाहते है), कोई-कोई अपनोंको (मित्र-बान्धवोंको) भी भलाई करनेवाले होते हैं। तुलसीदासजी कहते है कि जो सबको भलाई करनेवाला (सुहृद्) है साधुजनोंके द्वारा उसीकी सराहना होती है।

योगिराज अरविन्दकी दृष्टिमें भगवान् शिव

शिवत्वके चिन्तन और अभीप्सामें आज जो कुछ सृष्ट है, उन सबका सहज समावेश हो जाता है। शिव-तत्त्वका कार्य केवल विनाश है, यह कल्पना शास्त्र और अध्यात्मकी दृष्टिसे सत्यके केवल एक लघु अंशको ही प्रकट करती है। इसीलिये श्रीअरविन्दने इसे इस तरह परिभाषित करनेका प्रयास किया है कि 'ब्रह्मा अमर हैं, विष्णु सनातन हैं और शिव अनन्त हैं।'

इस अनन्तताका छन्द, इसका उल्लास, आवेश और ध्यान जब अध्यात्मके मन्त्रद्रष्टाको झलक मात्र दिखा देता है तो शिवकी विभिन्न-मूर्तियोंमें किसी एकका किंचित् दर्शन, स्पर्श या अनुभव प्राप्त हो जाता है। इस हेतु अभीप्सा और तपस्की शक्ति भी शिवसे ही प्राप्त होती है। यही शक्ति असहायके समक्ष आशुतोषके रूपसे प्रकट होती है।

शिवकी इसी तपोमयी, छन्दमयी ध्यानमूर्तिसे नृत्यका प्रादुर्भाव होता है। वे नटराज हो उठते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें सर्वेश्वरकी लीलाका उच्छ्वास उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें थिरक उठता है। इन्हीं नटराजसे सारे नियमोंकी और व्याकरणकी सभी विधाओंका पृथिवीपर प्रादुर्भाव होता है। श्रीअरविन्दके अनुसार नटराज—काल-संहारशिव केवल अपने वैभव, शक्ति, शान्ति, संयम और ऐश्वर्यमें सर्वोत्तम नहीं हैं, प्रत्युत वे समय और स्थितिके आध्यात्मिक अतिक्रमणके प्रतीक भी हैं।

नटराजके नृत्यमें—शिव-मूत्रजालमे ब्रह्माण्डका छन्द, अभिव्यक्तिका स्फोट सभी कुछ छिपा है। भगवान् शिव जब ताण्डव करते हैं तो वे एकाकी नहीं होते, सृष्टिके विकासमें सभी प्रादुर्भूत सहायक शक्तियाँ वहाँ एकत्र होती हैं और अपना योगदान करती हैं—

वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं दधत् पद्मज-
स्तालानन्दकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता।
विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तात् स्थिताः
सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम्॥

इन सभी देव-देवियोंका और उनके वाद्योंका सृष्टिकी लीलामें अपना अर्थ और तात्पर्य है, किंतु इतना तो स्थूल रूपसे स्पष्ट है कि शिव-ताण्डवमे शिव एकाकी प्रतीक है, किंतु नृत्यमे योगदान सभी ईश्वरीय शक्तियोंका है। आज भी चिदम्बरम्‌के मन्दिरकी ओर ध्यान दें तो नटराज पञ्चम प्राकारके अंदर है। तत्वतः वे पञ्चमहाभूतों और पञ्चमहाप्राणोंके अंदरमें स्थित हैं। यहाँ है उनका आकाश-स्वरूप, अर्थात् कहीं कोई अवकाश नहीं। वे सर्वान्तरात्मा भी हैं और सर्वभूतनिवासी भी। यहाँ नटराजकी शक्ति-स्वरूपा नाट्येश्वरी भी हैं। आकाशमें नटराज और नाट्येश्वरीतककी इस आध्यात्मिक अन्तर्यात्राके साक्षी हैं ताण्डवके सहयोगी देवगण। यहाँ हैं संगीतके आद्य प्रवर्तक तुम्बुरु और देवकथाके गायक नारद। यह संगीत, व्याकरण और नृत्यकी त्रिवेणीरूप साधनास्थली है और कुण्डलिनीके जागरणकी प्रत्यूष वेलामे इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्नाकी लीला-विलासका अभिव्यक्त स्वरूप है।

इस धराधामपर चिदम्बरम् तत्त्वार्थ-साधक प्रतीक है। महर्षि व्याघ्रपादने जब शिवसे व्याकरण-तत्त्वको ग्रहण किया तो इस माहेश्वरसूत्रकी परम्पराके संवाहक बने पाणिनि। यहाँ महत्त्व कालान्तरालका नहीं है, महत्त्व है कालजयी परात्पर तत्त्वका। शिवका नृत्य सनातन जीवन-मृत्युके छन्दका आभास तो देता ही है, किंतु दैनिक जीवनचर्याके मूलाधारको भी प्रतिबिम्बित करता है। नटराजके नृत्यमें विज्ञान और अध्यात्म दोनोंने एकत्व लाभ किया है। उनके उठे हुए दक्षिण हस्तमें ढक्का प्रतीक है अनाहत ध्वनिका, वाम हस्तकी ज्वाला प्रतीक है शुद्धि और परिवर्तनकी, इनके समानुपातके मध्य स्थित शिवशीर्ष शान्त और अनासक्त होते हुए भी करुणासे, कृपामय अनुग्रहसे ओत-प्रोत है। द्वितीय दक्षिण हस्त अभय-मुद्रामें है जो स्थिति, शान्ति और रक्षाका प्रतीक है। द्वितीय वाम हस्त उस उठे हुए चरणकी ओर संकेत करता है जो मायासे मुक्तिका प्रतीक है और दक्षिण पाद अवस्थित है जीवपर। मानवीय अज्ञानमें बद्ध जीवकी अन्तिम परिणति है शिवत्वके चरणोंमें समर्पण।

आधुनिक भौतिक शास्त्र अपनी विशिष्ट शब्दावलीमें इसी तत्त्वको विज्ञानसे सिद्ध करता है कि पदार्थमें होनेवाले सभी घात-प्रतिघात उन अणुओं-परमाणुओंकी छन्दमय गति और यतिके कारण होते हैं। जिनका उद्भव और विघटन स्वयं हुआ करता है। यह नृत्य ही पदार्थके अस्तित्वका कारण है और

यह नृत्य आकाशकी अनन्तताके अवकाशमे ही सम्भव है।

आजका भौतिक शास्त्र शिवके नृत्यको परमाणुओंमें देखता है और अध्यात्म परमाणुओंके तत्त्वमें शिवके नृत्यकी अनुभूति करता है। शिवत्वकी अभिव्यक्तिके लिये शास्त्रोंने ध्यानका, ध्यान-मूर्तिका और सर्वगति-स्रोतस्विनीके रूपमें सनातन नृत्यका अलंकार प्रस्तुत किया है, इसीके आधारपर शिल्पी ऋषियोंने नटराजका रूपाङ्कन किया है और आजके भौतिकशास्त्री अति-आधुनिक विज्ञानका प्रयोग सनातन नृत्यकी व्याख्यामें कर रहे हैं। किंतु यह आध्यात्मिक स्थिति अध्यात्म एवं विज्ञान सभीको एकत्वकी अनुभूति कराती है। नटराजके नृत्यको तीन प्रतीकोंमें समझना होगा। प्रथम तो प्रभामण्डल अर्थात् ब्रह्माण्डमें गीतका प्रादुर्भाव। द्वितीय है नृत्यका उद्देश्य अर्थात् जीवको मायासे मुक्ति और तृतीय है चित्+अम्बरमें शिवत्वका अधिष्ठान।—श्रीदेवदत्तजी

परम कल्याणकारी जगद्गुरु शिव

(ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजके अमृत वचन)

सच्चिदानन्दमूर्ति कल्याणस्वरूप परमाराध्य भगवान् शंकर सर्वोपरि देव हैं तथा सम्पूर्ण सृष्टिके स्वामी हैं। उन्होंने ही इस जीव-जगत्का निर्माण किया है। जीव-जगत्के मूल कर्ता शिव हैं तथा वे ही जागतिक कार्योंके कारण भी हैं। जागतिक मल—विषय आदिसे जीव बँधा है तथा शिव-कृपासे ही वह पाश-मुक्त हो सकता है।

जो किसी इन्द्रियका गोचर नहीं, जो व्यवहारमें नहीं लाया जा सकता, जो ग्रहण कर सकनेके योग्य नहीं, जिसका कोई लक्षण नहीं, अतएव अचिन्त्य, वाणीसे अकथनीय, सर्वत्र एक आत्माका भान जिसकी पहचानका तत्त्व है। जिसमे कोई भी मायाकृत प्रपञ्च नहीं, जो सजातीय-विजातीय भेदशून्य, एक अद्वैत वस्तु है, वही तुरीयावस्थारूप शिव है, वही आत्मा है, उसीको जानना चाहिये। (माण्डूक्योपनिषद्)

आशुतोष भगवान् श्रीशिव जब प्रसन्न होते हैं तो साधक (भक्त) को अपनी दिव्य शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे अविद्याके अन्धकारका नाश हो जाता है और साधकको अपने इष्टकी प्राप्ति होती है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (४।४।२७) में सतीके दक्ष-यज्ञमें दग्ध होनेके प्रसंगमे श्रीशिवको 'जगद्गुरु' कहा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् श्रीशिव जगद्गुरु हैं। शास्त्रोंका आदेश है कि गुरुकी प्राप्ति तथा उनकी कृपा बिना इष्टदेवकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसका तात्पर्य है कि जबतक मनुष्य श्रीशिवजीको प्रसन्नकर उनकी कृपाका पात्र नहीं बन जाता, तबतक उसे इष्ट-साक्षात्कार नहीं हो सकता।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी इस गुरु-तत्त्वके रहस्यका वर्णन करते हुए रामचरितमानसके प्रारम्भमें कहते हैं—

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

भगवान् श्रीरामने अपने श्रीमुखसे कहा है—

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
(लंका० ३।३)

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥
(उत्तर० ४५)

भगवती श्रीसीताने पहले जनकपुरमें शिव-धनुषकी सेवाके द्वारा भगवान् शंकरकी प्रसन्नता प्राप्त की, तत्पश्चात् उनकी विद्याशक्ति गिरिजाके वरदानसे अपने आराध्य श्रीरामको प्राप्त किया। भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने दीक्षागुरु महामुनि उपमन्युद्वारा दीक्षित होकर श्रीशिवजीकी आराधना की थी। अस्तु, योग, ज्ञान, और भक्ति—इन तीनोंके परमाचार्य तथा सभी विद्याओं, शास्त्रों, कलाओं और ज्ञान-विज्ञानोंके प्रवर्तक मङ्गलमूर्ति आशुतोष भगवान् श्रीशिवकी उपासनाके बिना साधक अभीष्ट-लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

शिवोपासनाके द्वारा ही इस परम तत्त्व अथवा शिवत्वकी प्राप्ति सम्भव है। अतः उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये उनका ही अवलम्बन ग्रहण करना चाहिये। वे अपने भक्तकी स्वल्प भी आराधनासे शीघ्र ही प्रसन्न होकर उसका तत्क्षण परम कल्याण कर देते हैं। प्रेषक—श्रीमदनशर्मा शास्त्री

शिव-तत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्कुशं वामभागे नानालंकारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥

शिव-तत्त्व बहुत ही गहन है। मुझ-सरीखे साधारण व्यक्तिका इस तत्त्वपर कुछ लिखना एक प्रकारसे लड़कपनके समान है। परंतु इसी बहाने उस विज्ञानानन्दघन महेश्वरकी चर्चा हो जायगी, यह समझकर अपने मनोविनोदके लिये कुछ लिख रहा हूँ। विद्वान् महानुभाव क्षमा करें।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन मिलता है। इसपर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियोंके पृथक्-पृथक् मत होनेके कारण उनके वर्णनमें भेद होना सम्भव है; परंतु पुराण तो अठारहों एक ही महर्षि वेदव्यासके रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिके वर्णनमें विभिन्नता ही पायी जाती है। शैवपुराणोंमें शिवसे, वैष्णवपुराणोंमें विष्णु, कृष्ण या रामसे और शाक्तपुराणोंमें देवीसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है। इसका क्या कारण है? एक ही पुरुषद्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणोंमें एक ही खास विषयमें इतना भेद क्यों? सृष्टिके विषयमें ही नहीं, इतिहासों और कथाओंमे भी पुराणोंमें कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है। इसका क्या हेतु है?

इस प्रश्नपर मूल-तत्त्वकी ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरताके साथ विचार करनेपर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रममें भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास-पुराणोंके वर्णनमें एवं योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रोंके रचयिता ऋषियोंके कथनमें भेद रहनेपर भी वस्तुतः मूल सिद्धान्तमें कोई खास भेद नहीं है। क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदिमें प्रकृति-पुरुषसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाते हैं। वर्णनमें भेद होने अथवा भेद प्रतीत होनेके निम्नलिखित कई कारण हैं—

१-मूल-तत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्गके आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता। क्योंकि वेद, शास्त्र और पुराणोंमें भिन्न-भिन्न महासर्गोंका वर्णन है, इससे वर्णनमें भेद होना स्वाभाविक है।

२-महासर्ग और सर्गके आदिमें भी उत्पत्ति-क्रममें भेद रहता है। ग्रन्थोंमें कहीं महासर्गका वर्णन है तो कहीं सर्गका, इससे भी भेद हो जाता है।

३-प्रत्येक सर्गके आदिमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता, यह भी भेद होनेका एक कारण है।

४-सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारके क्रमका रहस्य बहुत ही सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, इसे समझानेके लिये नाना प्रकारके रूपकोंसे उदाहरण-वाक्योंद्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदिका रहस्य बतलानेकी चेष्टा की गयी है। इस तात्पर्यको न समझनेके कारण भी एक दूसरे ग्रन्थके वर्णनमें विशेष भेद प्रतीत होता है।

ये तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें वेद-शास्त्रोंमें भेद होनेके कारण हैं। अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार करना है। पुराणोंकी रचना महर्षि वेदव्यासजीने की। वेदव्यासजी महाराज बड़े भारी तत्त्वदर्शी विद्वान् और सृष्टिके समस्त रहस्यको जाननेवाले महापुरुष थे। उन्होंने देखा कि वेद-शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्मके अनेक नामोंका वर्णन होनेसे वास्तविक रहस्यको न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धिकी विचित्रताके कारण मनुष्य इन भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले एक ही परमात्माको अनेक मानने लगे हैं और नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार होनेसे असली तत्त्वका लक्ष्य छूट गया है। इस अवस्थामें उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्यकी ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्गपर लानेके लिये एवं श्रुति, स्मृति आदिका रहस्य स्त्री, शूद्रादि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको समझानेके लिये उन सबके परम हितके उद्देश्यसे पुराणोंकी रचना की। पुराणोंकी रचनाशैली देखनेसे प्रतीत होता है कि महर्षि वेदव्यासजीने उनमें इस प्रकारके वर्णन और उपदेश किये हैं, जिनके प्रभावसे परमेश्वरके नाना प्रकारके नाम और रूपोंको देखकर भी मनुष्य प्रमाद, लोभ और मोहके वशीभूत हो सन्मार्गका त्याग करके मार्गान्तरमें नहीं जा सकते। वे किसी भी नाम-रूपसे परमेश्वरकी उपासना करते हुए ही सन्मार्गपर आरूढ़ रह सकते हैं। बुद्धि और रुचि-वैचित्र्यके

कारण संसारमें विभिन्न प्रकारके देवताओंकी उपासना करनेवाले जनसमुदायको एक ही सूत्रमें बाँधकर उन्हें सन्मार्गपर लगा देनेके उद्देश्यसे ही वेदोक्त देवताओंको ईश्वरत्व देकर भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न देवताओंसे भिन्न-भिन्न भाँतिसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम बतलाया गया है। जीवोंपर महर्षि वेदव्यासजीकी परम कृपा है। उन्होंने सबके लिये परम धाम पहुँचनेका मार्ग सरल कर दिया। पुराणोंमें यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवान्‌के जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसीको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, विज्ञानानन्दघन परमात्मा माने और उसीको सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें प्रकट होकर क्रिया करनेवाला समझे। उपासकके लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेवसे बढ़कर और कोई है ही नहीं। सब उसीका लीला-विस्तार या विभूति है।

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य,विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि-अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि-सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं। कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है। क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानीका भाव ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये।

विज्ञानानन्दघन परमात्माके वेदोंमें दो स्वरूप माने गये हैं। प्रकृतिरहित ब्रह्मको निर्गुण ब्रह्म कहा गया है और जिस अंशमें प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है उस प्रकृतिसहित ब्रह्मके अंशको सगुण कहते हैं। सगुण ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निराकार, दूसरा साकार। उस निराकार, सगुण ब्रह्मको ही महेश्वर, परमेश्वर आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वही सर्वव्यापी, निराकार, सृष्टिकर्ता परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों रूपोंमें प्रकट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इस प्रकार पाँच रूपोंमें विभक्त-से हुए परात्पर, परब्रह्म परमात्माको ही शिवके उपासक सदाशिव, विष्णुके उपासक महाविष्णु और शक्तिके उपासक महाशक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि सभीके सम्बन्धमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। शिवके उपासक नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको महेश्वर; सृष्टिके उत्पन्न करनेवालेको ब्रह्मा, पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र कहते हैं और इन पाँचोंको ही शिवका रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भगवान् महेश्वर कहते हैं—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे॥
यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै।
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्बन्धनं न हि॥
यथैकस्या मृदो भेदो नाम्नि पात्रे न वस्तुतः।
यथैकस्य समुद्रस्य विकारो नैव वस्तुतः॥
एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम्।
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम्।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥

(शिव० ज्ञान० ४।४१—४४,४८—५१)

'हे विष्णो ! हे हरे ! मैं स्वभावसे निर्गुण होता हुआ भी संसारकी रचना, स्थिति एवं प्रलयके लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीन रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ। जिस प्रकार जलादिके संसर्गसे अर्थात् उनमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे सूर्य आदि ज्योतियोंमें कोई स्पर्शता नहीं आती, उसी प्रकार मुझ निर्गुणका भी गुणोंके संयोगसे बन्धन नहीं होता। मिट्टीके नाना प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तविक भेद

नहीं है—एक मिट्टी ही है। समुद्रके भी फेन, बुद्बुदे, तरङ्गादि विकार लक्षित होते हैं; वस्तुतः समुद्र एक ही है। यह समझकर आपलोगोंको भेदका कोई कारण न देखना चाहिये। वस्तुतः मात्र दृश्य पदार्थ शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धनका कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूल-स्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।'

साक्षात् महेश्वरके इन वचनोंसे उनका 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप—ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पञ्चवक्त्र हैं।

इसी प्रकार श्रीविष्णुके उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्मको महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥

(विष्णु० १।२।१—५)

'निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर, वासुदेव आदि नामोंसे प्रसिद्ध, संसार-तारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल, सूक्ष्म—उभयात्मक व्यक्ताव्यक्तस्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है। इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके भी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अंदर रहनेवाले, अच्युत पुरुषोत्तम भगवान्को मेरा प्रणाम है।'

यहाँ अव्यक्तसे निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्माका निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। व्यक्तसे सगुण स्वरूप समझना चाहिये। उस सगुणके भी स्थूल और सूक्ष्म—दो स्वरूप बतलाये गये है। यहाँ सूक्ष्मसे सर्वव्यापी भगवान् वासुदेवको समझना चाहिये, जो कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी मूल-कारण हैं एवं सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म पुरुषोत्तम नामसे बतलाये गये हैं। तथा स्थूलस्वरूप यहाँ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशके वाचक हैं जो कि हिरण्यगर्भ, हरि और शंकरके नामसे कहे गये हैं। इन्हीं सब वचनोंसे श्रीविष्णुभगवान्के उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार भगवती महाशक्तिकी स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं—

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमयि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(मार्कण्डेय० ९१।१०)

'ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति! हे गुणाश्रये! हे गुणमयी नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार हो।'

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥

(ब्रह्मवै०, प्रकृति० २।६६।७—१०)

तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी

उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो; परमतेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करती हो; तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्वमङ्गलोंका भी मङ्गल हो।'

ऊपरके उद्धरणसे महाशक्तिका विज्ञानानन्दघन स्वरूपके साथ ही सर्वव्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें होना सिद्ध है।

इसी प्रकार ब्रह्माजीके बारेमें कहा गया है—

जय देवातिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोगुणगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्।

× × ×

(देवीपुराण अ॰ ८३)

'आपकी जय हो। उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेवके लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूपसे चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते है एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं।'

उपर्युक्त वचनोंसे ब्रह्माजीके भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपोंका होना सिद्ध होता है। अव्यक्तसे तो परात्पर परब्रह्म-स्वरूप एवं कारणसे सर्वव्यापी, निराकार सगुणरूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारकारक होनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप होना सिद्ध होता है।

इसी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति भगवान् शिवके वाक्य हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥

(पद्म॰, पाता॰ २८। ६—८)

'आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकलाके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय स्वप्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुझ शर्व (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं।'

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें कहा है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सो कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्म परमात्मा होनेका विविध ग्रन्थोंमें उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कथा है कि एक महासर्गके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अङ्गोंसे भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा अन्यान्य सब देवी-देवता प्रादुर्भूत हुए। वहाँ श्रीशिवजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥

(ब्रह्मवै॰ १। ३। २५-२६)

'आप विश्वरूप हैं, विश्वके स्वामी हैं, नहीं नहीं, विश्वके स्वामियोंके भी स्वामी हैं, विश्वके कारण हैं, कारणके भी कारण

हैं, विश्वके आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्वका संहार करनेवाले हैं और नाना रूपोंसे विश्वमें आविर्भूत होते हैं। आप फलोंके बीज हैं, फलोंके आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।'

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(१४।२७)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
(९।१८)

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥
(९।१९)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(७।७)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१०।३)

'हे अर्जुन! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्य-धर्मका एवं अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ; अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मैं ही हूँ तथा प्राप्त होने योग्य, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबका आधार, निधान[1] और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ तथा वर्षाको आकर्षण करता हूँ और बरसाता हूँ एवं हे अर्जुन! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत्—सब कुछ मैं ही हूँ।'

'हे धनंजय! मेरेसे सिवा किञ्चिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है। जो मुझको अजन्मा (वास्तवमें जन्मरहित) अनादि[2] तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

ऊपरके इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण तत्त्वतः एक ही हैं। इस विवेचनपर दृष्टि डालकर विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माको मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम-रूपका भेद है, परंतु वस्तु-तत्त्वमें कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है। ईश्वरको इस प्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन समझकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार किसी भी नाम-रूपसे उस परमात्माको लक्ष्य करके जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्माकी उपासना है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिवके उपर्युक्त तत्त्वको न जाननेके कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णुकी निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन-से तो रहते ही है। परंतु इस प्रकारका व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझा जाता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करनेसे एकनिष्ठ अनन्य उपासनामें दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पतिको ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पतिके माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पतिके अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओंकी भी पतिकी आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये यथोचित आदरभावसे मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्मसे जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यशको प्राप्त होती है। वास्तवमें दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धिमें है अथवा व्यभिचार और शत्रुतामें है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्तव्य है। इसी प्रकार परमात्माके किसी एक नाम-रूपको अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभावसे भक्ति करते हुए ही अन्यान्य

१- प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं, उनका नाम 'निधान' है।
२-अनादि उसको कहते हैं जो आदिरहित होवे और सबका कारण होवे।

देवोंकी अपने इष्टदेवकी आज्ञानुसार उसी स्वामीकी प्रीतिके लिये श्रद्धा और आदरके साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। उपर्युक्त अवतरणोंके अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही हैं तथा वास्तवमें उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नाम-रूपसे द्वेष या उसकी निन्दा, तिरस्कार और उपेक्षा करना उस परब्रह्मसे ही वैसा करना है। कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णुने या श्रीब्रह्माने एक दूसरेकी न तो निन्दा आदि की है और न निन्दा आदि करनेके लिये किसीसे कहा ही है; बल्कि निन्दा आदिका निषेध और तीनोंको एक माननेकी प्रशंसा की है। शिवपुराणमें कहा गया है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः॥

'ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेके द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरेकी अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है मानो वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है, वे अगले जन्ममें राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुभगवान्‌से कहते हैं—

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।

(शिव० ज्ञान० ४। ६१-६२)

'मेरे दर्शनका जो फल है वही आपके दर्शनका है। आप मेरे हृदयमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। जो हम दोनोंमें भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।'

भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः॥

(पद्म०, पाता० २८। २१—२३)

'आप (शंकर) मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अंदर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हमारे अंदर भेद-भावना करते हैं, वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकोंमें यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्तिसे आपको भी प्रणाम करते हैं।'

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत् कल्पायुतं दिवि।
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा॥
ज्ञानवान् मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्।
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः॥

(ब्रह्मवैव० प्र० ६। ३१। ३२,४५,४७)

'मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्र और सूर्यका अस्तित्व रहेगा, तबतक कालसूत्रमें (नरकमें) पचते रहेंगे। जो शिवलिङ्गका निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। शिवलिङ्गके अर्चनसे मनुष्यको प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण कर शरीर छोड़ता है, वह करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है।'

करनेवालोंपर बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रहस्यको जानकर निष्काम-प्रेमभावसे भजनेवालोंपर प्रसन्न होते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है ? सकामभावसे, अपना मतलब गाँठनेके लिये जो अज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं, उनपर भी आप रीझ जाते हैं। भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचते, जरा-सी भक्ति करनेवालेपर ही आपके हृदयका दयासमुद्र उमड़ पड़ता है। इस रहस्यको समझनेवाले आपको व्यङ्गचसे 'भोलानाथ' कहा करते हैं। इस विषयमें गोसाईं तुलसीदासजी महाराजकी कल्पना बहुत ही सुन्दर है। वे कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी॥

ऐसे भोलेनाथ भगवान् शंकरको जो प्रेमसे नहीं भजते, वास्तवमें वे शिवके तत्त्वको जानते नहीं हैं, अतएव उनका मनुष्य-जन्म लेना ही व्यर्थ है। इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय। अतएव प्रिय पाठकगणो ! आपलोगोंसे मेरा नम्र निवेदन है, यदि आपलोग उचित समझें तो नीचे लिखे साधनोंको समझकर यथाशक्ति उन्हें काममें लानेकी चेष्टा करें—

(क) पवित्र और एकान्त स्थानमें गीता अध्याय ६, श्लोक १० से १४ के अनुसार—

(१) भगवान् शंकरके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका, उनके तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंद्वारा श्रवण करके, मनन करना एवं स्वयं भी सत्-शास्त्रोंको पढ़कर उनका रहस्य समझनेके लिये मनन करना और उनके अनुसार आचरण करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करना।

(२) भगवान् शिवकी शान्तमूर्तिका पूजन-वन्दनादि श्रद्धा और प्रेमसे नित्य करना।

(३) भगवान् शंकरमें अनन्य प्रेम होनेके लिये विनय-भावसे रुदन करते हुए गद्गद वाणीद्वारा स्तुति और प्रार्थना करना।

(४) 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रका मनके द्वारा या श्वासोंके द्वारा प्रेमभावसे गुप्त जप करना।

(५) उपर्युक्त रहस्यको समझकर प्रभावसहित यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका श्रद्धा-भक्तिसहित निष्कामभावसे ध्यान करना।

(ख) व्यवहारकालमें—

(१) स्वार्थको त्यागकर प्रेमपूर्वक सबके साथ सद्व्यवहार करना।

(२) भगवान् शिवमें प्रेम होनेके लिये उनकी आज्ञाके अनुसार फलासक्तिको त्यागकर शास्त्रानुकूल यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप, सेवा एवं वर्णाश्रमके अनुसार जीविकाके कर्मोंको करना।

(३) सुख, दुःख एवं सुख-दुःखकारक पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशको शंकरकी इच्छासे हुआ समझकर उनमें पद-पदपर भगवान् सदाशिवकी दयाका दर्शन करना।

(४) रहस्य और प्रभावको समझकर श्रद्धा और निष्काम प्रेमभावसे यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका निरन्तर ध्यान होनेके लिये चलते-फिरते, उठते-बैठते, उस शिवके नाम-जपका अभ्यास सदा-सर्वदा करना।

(५) दुर्गुण और दुराचारको त्यागकर सद्गुण और सदाचारके उपार्जनके लिये हर समय कोशिश करते रहना।

उपर्युक्त साधनोंको मनुष्य कटिबद्ध होकर ज्यों-ज्यों करता जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके अन्तःकरणकी पवित्रता, रहस्य और प्रभावका अनुभव तथा अतिशय श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। इसलिये कटिबद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करनी चाहिये। इन सब साधनोंमें भगवान् सदाशिवका प्रेम-पूर्वक निरन्तर चिन्तन करना सबसे बढ़कर है। अतएव नाना प्रकारके कर्मोंके बाहुल्यके कारण उसके चिन्तनमें एक क्षणकी भी बाधा न आवे, इसके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये। यदि अनन्य प्रेमकी प्रगाढ़ताके कारण शास्त्रानुकूल कर्मोंके

करनेमें कहीं कमी आती हो तो कोई हर्ज नहीं, किंतु प्रेममें बाधा नहीं पड़नी चाहिये। क्योंकि जहाँ अनन्य प्रेम है वहाँ भगवान्‌का चिन्तन (ध्यान) तो निरन्तर होता ही है। और उस ध्यानके प्रभावसे पद-पदपर भगवान्‌की दयाका अनुभव करता हुआ मनुष्य भगवान् सदाशिवके तत्त्वको यथार्थरूपसे समझकर कृतकृत्य हो जाता है, अर्थात् परम पदको प्राप्त हो जाता है। अतएव भगवान् शिवके प्रेम और प्रभावको समझकर उनके स्वरूपका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर चिन्तन होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

काशीमरणान्मुक्तिः

(शिवलोकवासी पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री)

इस जगत्‌के अंदर जो लोग नाना दुःख-परम्पराओंसे पूर्ण संसार-समुद्रके प्रवाहमें पतित होकर पुनः उससे निकलना चाहते हैं, वे विचारशील पुरुष अन्य अनेकों मार्गोंके रहते हुए भी काशी-निवासरूपी पन्थका ही अनुसरण करते हैं। धार्मिक मुमुक्षुगण इस विश्वको स्वप्नके समान मानकर सदा इस निम्नाङ्कित सूक्तिका अनुसंधान किया करते हैं—

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां संगो गङ्गाम्भः शिवपूजनम्॥

अर्थात् इस असार संसारमें यही चार बातें सार हैं—काशीका निवास, महात्माओंका संग, गङ्गाजल-सेवन और शिवका पूजन। इन चारोंमेंसे किसी भी उपायका अवलम्बन कर वे महात्माजन काशीकी ही शरण लेते हैं, इसे क्षणभर भी छोड़ना नहीं चाहते। इससे यह मालूम होता है कि काशीका अवश्य ही कोई अलौकिक माहात्म्य है। यहाँका मरण भी किस प्रकार मङ्गलजनक होकर आत्यन्तिक तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है—इसी विषयपर इस छोटेसे निबन्धमें कुछ विचार किया जा रहा है।

यद्यपि निमेषमात्रमें ही जगत्‌की सृष्टि, रक्षा और प्रलय करनेकी शक्ति रखनेवाले एवं साधुजनोंकी रक्षा, दुर्जनोंका नाश तथा धर्मकी स्थापनामात्रके उद्देश्यसे दिव्य शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र आदि अवतार-पुरुषों, समस्त ब्रह्माण्डको करामलकवत् प्रत्यक्ष करनेवाले वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियों और सत्यकी खोजमें लगे हुए महान् महिमाशाली नल आदि राजाओंसे सर्वथा पावन और पूजनीय इस भारतवर्षमें दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर 'नाना कष्टोंका निवारण करनेवाले किस अविनाशी एवं दुर्लभ लक्ष्यकी सिद्धि करनी चाहिये और उस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये कौन-कौनसे साधन हैं?' इस बातको यहाँके धूलिसे खेलनेवाले बालक-बालिकाएँ तक जानते थे, अतः इसके सम्बन्धमें कुछ कहना या लिखना अवश्य पिष्ट-पेषण ही होगा, तथापि आज इस भयंकर कलिकालसे ग्रस्त अवस्थामें हम भारतीय अपनी प्राचीन संस्कृतिका अध्ययन न करनेके कारण इधर ध्यान नहीं देते, इसीलिये कुछ लिखा जाता है।

आजकल चारों ओर उन्नतिकी चर्चा है। उन्नतिकी इच्छा स्वाभाविक होनी ही चाहिये, परंतु वास्तविक उन्नति क्या है? इस बातको नहीं जाननेके कारण आज उन्नतिकी आशामें—उन्नतिके नामपर शास्त्रका उल्लङ्घन और मनमाना आचरण लोग करने लगे हैं। भारतीयोंकी दृष्टिमें वही यथार्थ उन्नति है, जिसकी किसी भी कारणसे कभी न अवनति हुई हो, न होती हो और न भविष्यमें हो सकती हो।

ऐसी उन्नति दो प्रकारकी होती है—एक परा और दूसरी अपरा। उसमें अपराके भी दो भेद हैं—ऐहलौकिक तथा पारलौकिक। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति—इन चारों विद्याओंमें वर्णित पारलौकिक उन्नतिको बाधा न पहुँचानेवाले उपायोंद्वारा प्राप्त किये हुए धनसे वर्णाश्रम-मर्यादा तथा कुल-धर्मका यथाशक्ति पालन करनेसे जो अच्छे पुत्र, कलत्र, मित्र आदि प्रचुर सुखोंकी परम्परा प्राप्त होती है, उसकी अनुभूति ही ऐहिक उन्नति कहलाती है। और भगवद्भजन आदिसे परमात्मामें चित्तवृत्तिके एकाग्र हो जानेपर जो अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है, धार्मिक पुरुषों, महात्माओं तथा विद्वानोंके समागमसे अन्तःकरणमें जो उल्लासकी तरंगें उठती हैं, वे सब ऐहलौकिक उन्नतिके ही अंदर हैं।

पारलौकिक उन्नति वेद, स्मृति, इतिहास (रामायण, महाभारत) और पुराणोंमें बताये हुए कर्मोंके अनुष्ठानसे होती

है। इसका उपभोग केवल परलोकमें ही होता है तथा इसका उत्कर्ष उत्तरोत्तर हिरण्यगर्भपर्यन्त रहता है।

परा-उन्नति भी ऐहलौकिक और पारलौकिक-भेदसे दो तरहकी है। ऐहलौकिक उन्नतिसे जीवन्मुक्ति तथा पारलौकिक उन्नतिसे परममुक्ति सिद्ध होती है।

वेदान्त-वाक्योंके श्रवण-मननसे तत्त्वज्ञानरूपी अग्निद्वारा अपने सम्पूर्ण कर्मोंको जलाकर लोकदृष्टिसे बचे हुए प्रारब्ध-कर्मोंका द्रष्टा-बुद्धिसे उपभोग करते हुए देहत्यागमात्रकी अपेक्षा रखनेवाले महात्मा पुरुषकी शरीर छोड़नेसे पहलेकी अवस्था ही जीवन्मुक्तिका स्वरूप है और शरीर छूट जानेके बाद समस्त कर्मोंका सम्पूर्ण दृष्टिसे क्षय हो जानेके कारण आत्मस्वरूपकी उपलब्धि हो जाना ही परममुक्ति है।

ये ऐहिक, आमुष्मिक (पारलौकिक)-भेदसे वर्तमान परापररूप दोनों प्रकारकी उन्नतियाँ ही 'उन्नति' शब्दसे अभिहित हो सकती हैं। इनमें अवनतिकी सम्भावनाका कलंक नहीं लग सकता।

परा-उन्नतिके दो साधन हैं—कर्म और तत्त्वज्ञान। इनमें भी कर्म चित्तके प्रक्षालनद्वारा तत्त्वज्ञानका सहकारी बन जाता है। वर्णाश्रम-धर्मोचित अनेकों कर्म, योग, भगवान्‌की उपासना, संन्यास, मोक्षदायक सातों पुरियोंमें अथवा पुण्य-क्षेत्रोंमें निवास एवं प्राणत्याग, प्रायश्चित्तोंका अनुष्ठान—ये सभी साधन-समूह पुरुषके प्रयत्नोंद्वारा साध्य हैं तथा इनका करना, न करना और अन्यथा करना सब कुछ सम्भव है, इसलिये ये सब भिन्न-भिन्न-रूपसे कर्म ही हैं। इनमेंसे एकके या सबके करनेसे चित्त शुद्ध होता है और शुद्धचित्त पुरुष तत्त्व ग्रहण करनेमें समर्थ होता है। इसलिये अपनी निश्चित एवं आत्यन्तिक उन्नति चाहनेवालोंको शास्त्रोक्त साधनोंका ही सहारा लेना चाहिये, दूसरोंका नहीं।

तत्त्वज्ञान किसी विशेष गुरुके उपदेशसे अथवा श्रवण, मनन एवं निदिध्यासनसे होता है। अन्तःकरणकी भाँति आत्माका साक्षात्कार होना ही उसका स्वरूप है। तत्त्वका साक्षात्कार हो जानेके बाद संचित कर्म ज्ञानाग्निसे दग्ध हो जाते हैं और प्रारब्ध कर्मोंका उपभोगद्वारा क्षय हो जाता है। तत्त्वज्ञानके अनन्तर किये हुए किसी भी कर्मसे पाप-पुण्यकी उत्पत्ति नहीं होती। जन्मके चक्करमें डालनेवाला अदृष्टरूप बीज (कारण) नष्ट हो जाता है, अतः पुनः शरीर आदिका प्रादुर्भाव नहीं होता। तब दुःखोंका अत्यन्ताभावरूप मुक्ति सिद्ध होती है—यही शास्त्रज्ञोंका सिद्धान्त है। इसीको महर्षि गौतमने अपने न्यायसूत्रमें स्पष्ट किया है। यथा—

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।*

वैशेषिक भाष्यके रचयिता महर्षि प्रशस्तपादने कर्मपरायण पुरुषोंकी हिरण्यगर्भपर्यन्त उन्नति बतलाकर पुनः ज्ञाननिष्ठ मनुष्योंकी उन्नतिके विषयमें इस प्रकार कहा है—'ज्ञानपूर्वक किये हुए, फलके संकल्पसे रहित कर्मद्वारा मनुष्य विशुद्ध कुलमें जन्म लेता है। फिर वह दुःखोंको दूर करनेके उपायकी जिज्ञासासे आचार्यके पास जाकर जब तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है, तब उसका अज्ञान मिट जाता है। यदि वह विरक्त हुआ, तो उसके अंदर राग-द्वेष आदिका अभाव होनेसे तज्जन्य धर्म और अधर्मकी भी उत्पत्ति नहीं होती और पूर्वसंचित धर्माधर्मका उपभोगद्वारा क्षय हो जाता है। रागादि-निवृत्तिरूप केवल धर्म भी उसे संतोष, शरीरका विवेक और परमात्म-दर्शनजन्य सुख देकर निवृत्त हो जाता है। रागादिका निरोध हो जानेसे आत्मा निर्बीज हो जाता है, अतः उसे फिर शरीर नहीं धारण करना पड़ता। शरीरकी उत्पत्ति न होनेसे इन्धन जल जानेके बाद अग्निकी भाँति वह शान्तिरूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उसकी परम उन्नति होती है।

इन्हीं पारमार्थिक उन्नतियोंको लक्ष्य करके भारतीयोंके समस्त शास्त्र, सम्पूर्ण कलाएँ और अखिल व्यवहार एवं सब विधि-निषेधरूपकर्म प्रवृत्त होते हैं। इन्हीं दोनों प्रकारकी उन्नतियोंके लिये राजा-प्रजाके संगठनकी व्यवस्था होती थी। इस प्रकारकी उन्नतिके बाधक, शास्त्रोपदेशसे विमुख लोगोंकी उच्छृङ्खलताको मिटाकर उन्हें उन्नतिके मार्गपर अग्रसर करानेके लिये ही भारतवर्षमें राजा या शासकका होना आवश्यक समझा जाता था—न कि ऐश-आराम करने, शास्त्रानुसार चलनेवाले सत्पुरुषोंको दण्ड देने, शास्त्रविरुद्ध नये-नये कानून चलाने और प्रजापर मनमाना कर लगाकर उनका सर्वस्व हरण करनेके लिये।

* इसी सूत्रके अर्थका स्पष्टीकरण पूर्वमें हुआ है।

इन दोनों प्रकारकी उन्नतियोंके साधनोंका हमारे पूर्वज, त्रिकालज्ञ ऋषियोंने अष्टादश विद्यास्थानोंमें भलीभाँति विवेचन किया था। परंतु आज भारतीय पाश्चात्त्य शिक्षा, सभ्यता और संस्कृतिके प्रवाहमें अपनेको सर्वथा बहाकर उन्नतिके इन स्वरूपों और उसके साधनोंको सर्वथा भूल-से गये हैं। इसीलिये आज इन्द्रिय-सुख और धन-लोलुपता आदिके फंदेमें पड़कर उन्हींको प्राप्त करनेके लिये परिणामशून्य होकर उन्मत्तकी भाँति इतस्ततः दौड़ रहे हैं। इसीसे ईश्वर, धर्म, वेद-पुराणादि शास्त्र, तत्त्वज्ञ महात्मा, साधु-ब्राह्मण और तीर्थकी आज अवहेलना हो रही है, बल्कि कोई-कोई तो इनका नाम-निशान मिटा देना चाहते हैं। बिना भेद-भावके सबके साथ खान-पान और विवाह-सम्बन्ध करना, जाति-पाँतिके धार्मिक बन्धनोंको तोड़ देना, शास्त्रीय स्पर्शास्पर्श-विचारका विरोध करना, शास्त्रकी बात कहनेवालोंको मूर्ख मानना, विद्वानोंका अपमान करना और धार्मिक संस्कारोंको कुसंस्कार बतलाना आदि निषिद्ध आचरण आज गौरवके कार्य समझे जाने लगे हैं। इस प्रकार उन्नतिका स्वरूप बहुत ही संकुचित और भ्रमपूर्ण हो गया है। अधर्ममें धर्मबुद्धिका यही फल होता है। इसीलिये काम, क्रोध, लोभ—इन त्रिविध नरक-द्वारोंकी सेवा बढ़ चली है और मनुष्योंमें पशुपन आने लगा है। कहा है—

मनोभवमयाः केचित् सन्ति पारावता इव।
कूजत्प्रियतमाचञ्चुचुम्बनासक्तचेतसः ॥
केचित् क्रोधप्रधानाश्च सन्ति ते भुजगा इव।
ज्वलद्विषानलज्वालाजालपल्लविताननाः ॥
तथात्र केचिद् विद्यन्ते लोभमात्रपरायणाः।
द्रव्यसंग्रहणैकाग्रमनसो मूषका इव ॥

'कुछ लोग तो कबूतरोंके समान मञ्जु-शब्दोंमे बोलती हुई प्राणवल्लभाके चञ्चु-चुम्बनमें आसक्त हो कामविलासमें मग्न हो रहे हैं। कुछ भुजङ्गमोंकी भाँति वदनसे विषाग्निकी जलती हुई ज्वालाएँ उगलते हुए क्रोधको ही मुख्यरूपसे अपनाये बैठे हैं और यहाँपर कुछ लोग चूहोंकी तरह केवल लोभ-परायण हुए धन बटोरनेमे ही दत्तचित्त हैं।'

विचार करना चाहिये कि क्या इस जडताका नाम ही उन्नति है? परंतु क्या किया जाय? आज तो पाश्चात्त्य सभ्यताके पीछे भारतीय लोग भेड़िया-धसानकी भाँति आँखें मूँदकर दौड़ रहे हैं और आचार, विचार, व्यवहारमें उन्हींकी नकलकर सब ओरसे पतनके विकराल मुँहमें प्रवेश करना चाहते हैं। क्या हाथी, घोड़े, गैंडेकी भाँति शरीरको ऊँचा बनानेका नाम ही उन्नति है? क्या मांसलोलुप पशुओंकी भाँति विधि-निषेध, पवित्र-अपवित्र और भक्ष्याभक्ष्यका विचार छोड़कर सब कुछ चट कर जाना ही उन्नति है? क्या विवेक और मर्यादाहीन जीवोंकी भाँति सपिण्ड और सगोत्रका निषेध न मानकर या असवर्णमें विवाह करना, पर-स्त्री-गमन करना, ऋतुकाल, तिथि, नक्षत्र, दिन और गम्यागम्य आदिका विचार न करना, पशुवत् आचरण करना ही उन्नति है? क्या सभ्यताकी आड़में गरीबोंको सताना, परोपकार और सेवाके नामपर अपना स्वार्थ साधना, मीठे बोलकर दूसरोंका स्वत्व हरण कर लेना, साहूकार कहलाकर चोरका काम करना उन्नति है? क्या पात्रापात्रका विचार न कर, नाम-बड़ाई या अन्य स्वार्थ-साधनके लिये अशास्त्रीय कर्ममें धन लगाना उन्नति है? क्या वाक्‌चातुरीसे लोगोंपर प्रभाव जमाकर, उन्हें बहकाकर धर्मपथसे डिगाना उन्नति है। क्या दूसरोको सतानेके लिये, अपराधके बिना ही प्रतिकूल मत रखनेवालोंको दण्ड देनेके लिये या मौज-शौक करने और धर्मविरुद्ध कार्य करनेके लिये शासनाधिकार प्राप्त कर लेना उन्नति है? क्या हवाई जहाज, नाशक यन्त्र आदि वैज्ञानिक आविष्कारोके द्वारा अपनेसे कमजोर राष्ट्रपर आतङ्क जमाना और उसे लूटनेकी तैयारी करना उन्नति है? भारतीय ऋषियोंकी दृष्टिसे विचारकर देखा जाय तो इनमेंसे एक भी उन्नति नहीं है, वरं ऐसी सभी स्थितियाँ मनुष्यकी अवनतिकी ही सूचक हैं। परंतु खेदका विषय है कि कुसंसर्गसे आज बुद्धिमें इतना अन्तर पड़ गया है कि इन्हींको उन्नति समझा जा रहा है और इन्हींके वशमें हुए राग-द्वेषसे प्रमत्त होकर लोग आज अपनेको बड़ा उन्नत समझ रहे हैं। वञ्चनापूर्ण व्यवहार करनेपर भी अपनेको आत्मज्ञानी समझना, सदा-सर्वदा स्वार्थसाधनके लिये विकल रहनेपर भी परोपकार-प्रियताका ढिंढोरा पीटना और मनमाने आचरणकर अपनी उच्छृङ्खलताको बहादुरी बताना और गौरवका अनुभव करना आजकी उन्नतिका स्वरूप है। मनुष्य आज इस बातको भूले जा रहे हैं कि जन्म-जन्मान्तरोंके महान्

पुण्यसे यह पाञ्चभौतिक मनुष्य-शरीर धर्माचरणपूर्वक भगवत्प्राप्तिके लिये मिला है। इसके अंदर मल भरा है और एक-न-एक दिन इसका अन्त पुरीष, भस्म या क्रिमिके रूपमें हो जायगा। अतएव हमें वही करना चाहिये जिससे आत्माका यथार्थ कल्याण हो अर्थात् पूर्वोक्त अपरा और परा-उन्नतिका स्वरूप समझकर वैसी उन्नति करनेमें लगें। दयामय ऋषियोंने इन्हीं उन्नतियोंकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंकी रचना की थी, जिनके अनुसार चलकर मनुष्य इस लोकमें सात्त्विक सुख और अन्तमें मुक्तिकी प्राप्ति कर सकता है।

यों तो परमार्थके साधक ज्ञानी तथा पुण्यात्मा जनोंके लिये श्रवण, मनन आदि अनेकों मुक्तिके साधन बतलाये गये है, परंतु जो लोग नाना प्रकारके पाप-कर्मोंमें लगे हुए गौ, ब्राह्मण और देवताओंकी निन्दा करनेवाले तथा विषयसेवी हैं और जो श्रवण-मनन आदिमें आलसी एवं नास्तिक हैं तथा इसी प्रकार जो श्रुति-स्मृति आदिके अनधिकारी शूद्र, अन्त्यज, म्लेच्छ और कीट-पतङ्गादि प्राणी हैं, जिनका शरीर असाध्य रोगोंसे पीड़ित है अथवा अधिकारी होनेपर भी जो साधन-सम्पत्तिसे रहित हैं—इन सभीके लिये तो काशीमें मरना ही मुक्तिका साधक है और कोई नहीं।

यद्यपि—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

अर्थात् 'अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारकापुरी—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं'—इस वाक्यके अनुसार यद्यपि अयोध्या आदि नगरियाँ भी काशीके समान ही मोक्षरूप फल देनेवाली प्रतीत होती है, तथापि—

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि वै।
काशीं प्राप्य विमुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः॥

अर्थात् 'अन्य जितने मुक्ति-क्षेत्र हैं वे सभी काशीकी प्राप्ति कराते हैं और काशीमें पहुँचकर ही जीव मुक्त हो सकता है, अन्यथा करोड़ों तीर्थोंसे भी मुक्ति नहीं मिल सकती।' इस कथनसे काशी ही विशेषरूपसे मुक्ति देनेवाली प्रमाणित होती है।

अब यहाँ शङ्का उठती है कि जब '*अयोध्या, मथुरा*' इत्यादि तथा '*अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि*' इत्यादि दोनों वाक्य व्यासजीके ही कहे हुए हैं तो इनसे यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि 'काशी ही विशेषरूपसे मुक्ति देती है, अन्य सभी तीर्थ काशीको ही प्राप्त कराते हैं।'

इसका समाधान इस प्रकार है। '**अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि**' इस वाक्यमें 'मुक्ति' पदके उपादानसे यह सिद्ध हुआ कि अयोध्या आदि तीर्थ सम्यक् प्रकारसे ज्ञानोत्पादनद्वारा सालोक्य-मुक्ति प्रदान करते हैं, परंतु काशीमें तो जाने-अनजाने अथवा किसी भी कारणसे मरण हो जानेपर मुक्ति ही मिलती है, पुनः गर्भवासकी यातना नहीं भोगनी पड़ती। पद्मपुराणमें भी कहा है—

तीर्थान्तराणि क्षेत्राणि विष्णुभक्तिश्च नारद।
अन्तःकरणसंशुद्धिं जनयन्ति न संशयः॥
वाराणस्यपि देवर्षे तादृश्येव परंतु सा।
प्रकाशयति ब्रह्मैक्यं तारकस्योपदेशतः॥

'हे नारद! इसमें कोई संदेह नहीं कि काशीके अतिरिक्त अन्य तीर्थ तथा पुण्यक्षेत्र और भगवान् विष्णुकी भक्ति—ये सभी साधन अन्तःकरणको शुद्ध करते हैं। हे देवर्षे! चित्त शुद्ध करनेमें काशी भी इन्हींके समान है, परंतु इसमें एक विशेषता यह है कि यह तारक-मन्त्रके उपदेशसे ब्रह्मकी एकताका ज्ञान कराती है।'

काशीखण्डमें—

अविमुक्तिरहस्यज्ञा मुच्यन्ते ज्ञानिनो नराः।
अज्ञानिनोऽपि तिर्यञ्चो मुच्यन्ते हि सकल्मषाः॥

'यहाँ अविमुक्तिके रहस्यको जाननेवाले ज्ञानी मनुष्योंकी मुक्तिकी तो बात ही क्या है, जो अज्ञानी पक्षी आदि जीव हैं, वे चाहे पापी ही क्यों न हों, मुक्त हो जाते हैं।'

पद्मपुराणमें—

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे।
स्नानात् संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते नरैः।
इह सम्प्राप्यते येन तत एव विशिष्यते॥
सूच्यग्रमात्रमपि नास्ति ममास्पदेऽस्मिन्
स्थानं सुरैश्च विमृतस्य न यत्र मुक्तिः।
भूमौ जले वियति वा भुवि मध्यतो वा
सर्पाग्निदस्युपविभिर्निहतस्य जन्तोः॥

'नैमिषक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार (हरद्वार) तथा पुष्कर आदि क्षेत्रोंमें स्नान या निवास करनेसे मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता, परंतु काशीमे मिल जाता है, इसलिये यह सारे तीर्थोंमें विशिष्ट है। मेरे निवास-स्थान इस काशीमें सूईकी नोक-बराबर भी ऐसी जगह नहीं है, जहाँपर मरे हुएकी मुक्ति न हो। भले ही वह देवताओंद्वारा या पृथिवीपर अथवा जलमें डूबकर, आकाशसे गिरकर, भूमिके अंदर धँसकर मरा हो अथवा साँप, अग्नि, डाकू या बिजलीके गिरने आदि किसी भी कारणसे उसका प्राण गया हो।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें—

जितेन्द्रियाः पापविवर्जिताश्च
शान्ता महान्तो मधुसूदनाश्रयाः।
अन्येषु तीर्थेष्वपि मुक्तिभाजो
भवन्ति काश्यामपि को विशेषः॥

'जितेन्द्रिय, पापरहित, शान्त तथा भगवान्‌के भक्त महात्मा पुरुष तो अन्य तीर्थोंमें भी मुक्ति-लाभ कर सकते हैं, काशीहीमें कौन-सी विशेषता है'—ऐसा प्रश्न उठाकर समाधान किया है—

विशेषं शृणु वक्ष्यामि काश्याः कथयतो मम।
क्व तानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते॥
भवन्ति काशीमाहात्म्यात् सिद्धान्येव न संशयः।
अन्यत्र साधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा न वा॥
अत्र साधनवैकल्ये काशी पूर्णं प्रकल्पयेत्।

इसका तात्पर्य यह है कि साधन-सम्पत्तिसे युक्त अधिकारियोंकी मुक्ति काशीसे अतिरिक्त स्थानोंमें भी हो जाती है, परंतु काशीमें तो सभीकी मुक्ति होती है, यही उसकी विशेषता है। अतएव काशीखण्डमें कहा है—

संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबन्धनैः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥
श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥

अर्थात् 'जो कर्म-बन्धनोंमें बँधकर जन्म-मरणरूप संसारसे भयभीत हो रहे हैं तथा जो श्रुति-स्मृतिके ज्ञानसे रहित हो शौच तथा आचारको छोड़ बैठे हैं, जिनका मोक्ष होना कहीं भी सम्भव नहीं, उनकी एकमात्र काशीमें ही मुक्ति हो सकती है।'

इसे अर्थवाद नहीं समझना चाहिये, क्योंकि—

यत्र विश्वेश्वरो देवः साक्षात् स्वर्गतरङ्गिणी।
मिथ्या तत्रानुसूयन्ते तार्किकाश्चानुसूयकाः॥
उदाहरन्ति ये मूढाः कुतर्कबलदर्पिताः।
काश्यां सर्वार्थवादोऽयं ते विटकीटा युगे युगे॥
मा जानीह्यर्थवादत्वं काश्यां मुक्तिविनिर्णये।

'जहाँ भगवान् विश्वनाथ तथा साक्षात् पतितपावनी श्रीगङ्गाजी है, उस काशीपुरीकी निन्दा करनेवाले तार्किक व्यर्थ ही निन्दा करते हैं। अपने कुतर्कके बलपर घमंड करनेवाले जो मूर्खलोग काशीके माहात्म्यको अर्थवाद कहा करते हैं वे प्रत्येक युगमें विष्ठाके कीड़े होते हैं। काशीमें मुक्ति होनेका जो निर्णय है, उसे तुम अर्थवाद न समझो'—इत्यादि वाक्योंसे अर्थवाद कहनेवालोंका कीट-योनिमें गिरना कहा है। काशीमें मरनेके विषयमें काल अथवा अवस्थाका कोई विशेष विचार नहीं है। यही बात काशीखण्डमे कही गयी है—

उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत्।
सर्वोऽप्यस्य शुभः कालो ह्यविमुक्ते प्रिये यतः॥

'यहाँ उत्तरायण और दक्षिणायनका विचार नहीं करना चाहिये। हे प्रिये! इस अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेवालेके लिये प्रत्येक समय शुभ ही है।'

सनत्कुमारसंहितामें भी कहा है—

रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये
चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मशाने।
कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो
देहावसाने लभतेऽत्र मोक्षम्॥

'गली-कूचोंके अंदर या मल-मूत्रके नालोंमें अथवा चाण्डालके घरमें या श्मशानमें प्रयत्न करनेपर अथवा अनायास ही काशीमें देहत्याग करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।'

इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्वोक्त रीतिसे जिस किसी भी समयमें, जिस किसी स्थानपर, जिस किसी भी अवस्थामें काशीमें मरे हुए सभी मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है। काशीखण्डमें कहा है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वा पापयोनयः।

कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ॥
चन्द्रार्धमौलयः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।
अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा ॥
अविमुक्ते त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते ॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, म्लेच्छ आदि सम्पूर्ण पापयोनि अथवा वर्णसंकर जीव तथा कीड़े, चींटियाँ, मृग और पक्षिगण तथा अन्य भी जितने जीव हैं, वे सभी कालके वश हो मरनेपर मस्तकमें चन्द्रमा और ललाटमें नेत्र धारणकर वृषध्वज हो शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। इच्छा या अनिच्छासे पशु-पक्षी आदि योनियोंमें प्राप्त हुआ भी जीव इस काशीक्षेत्रमें प्राण त्याग करके मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।'

पद्मपुराणमें यह भी कहा है कि काशीमें मरनेके अनन्तर सालोक्य आदि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ क्रमशः होती हैं। यथा—

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः ।
ततः सरूपतां याति ततः सांनिध्यमश्नुते ।
ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः ॥

इनमें सालोक्य-मुक्तिका तात्पर्य शिवलोकमें निवास करना, सारूप्यका शिवके समान रूप प्राप्त करना, सांनिध्यका शिवके समीप रहना और सायुज्यका अर्थ शिवमें मिल जाना है। सालोक्यादि मुक्तिका भी क्षेत्र-भेदसे तारतम्य है, जैसे— काशी-क्षेत्रमें सालोक्य-मुक्ति, वाराणसी-क्षेत्रमें सारूप्य-मुक्ति, अविमुक्त-क्षेत्रमें सांनिध्य-मुक्ति और अन्तर्गृह-क्षेत्रमें सायुज्य-मुक्ति होती है। इसीको पद्मपुराणमें बतलाया गया है—

चतुर्धा भिद्यते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः ।
व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैक्यप्रबोधकम् ॥
काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः ।
वाराणस्यां मृतो जन्तुः साक्षात् सारूप्यमश्नुते ॥
अविमुक्ते विपन्नस्तु साक्षात् सांनिध्यमाप्नुयात् ॥
सलोकताञ्च सारूप्यं सांनिध्यं वापि सत्तमः ।
कल्पं कल्पमवाप्नोति ततो ब्रह्मात्मको भवेत् ॥

काशी आदि क्षेत्रोंका परिमाण अन्यत्र देखना चाहिये। उपर्युक्त आलोचनासे यह सिद्ध हो गया कि अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा काशीमें मरनेकी विशेषता है।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है—

न कर्मणामनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा ।
कैवल्यं लभते मर्त्यः किंतु ज्ञानेन केवलम् ॥

अर्थात् 'मनुष्य यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठान, दान और तपस्यासे भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, वह तो केवल ज्ञानसे ही सिद्ध हो सकता है'—इस स्मृतिके वाक्यसे तथा—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

अर्थात् 'उस ब्रह्मको जानकर ही मनुष्य अमृत (मोक्ष) पद प्राप्त कर सकता है, उसे पानेका और कोई मार्ग नहीं है'—इस श्रुति-वचनसे भी विरोध होनेके कारण 'काशी-मरण' को मोक्षका साधक कैसे माना जा सकता है?'

इसका समाधान यों है—'काशीमें मरनेसे मुक्ति होती है'—इस वाक्यका तात्पर्य यह है कि काशीमें मरनेसे पहले तत्त्वज्ञान होता है, तब मुक्ति। ऐसा माननेपर विरोधके लिये कोई स्थान नहीं रह जाता।

अब पुनः यह प्रश्न होता है कि जन्य (होनेवाले) ज्ञानमें तो जीवित शरीर ही कारण हुआ करता है, फिर काशीमें मर जानेके बाद तत्त्वज्ञान कैसे सम्भव हो सकता है? क्योंकि उस समय जीवित शरीररूप कारण रहता ही नहीं, यदि कहें कि '**प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मोपदिष्टे**' (प्राण निकलते समय रुद्र तारक-ब्रह्मका उपदेश करते हैं)—इस श्रुतिके अनुसार प्राण निकलनेकी ही अवस्थामें भगवान्‌द्वारा मन्त्रोपदेश हो जानेसे तथा विशिष्ट गुरुके दिये हुए मन्त्रके प्रभावसे शीघ्र ही उसी शरीरसे तत्त्वज्ञान हो जाता है, अतः वहाँ कारणका अभाव नहीं रहता, तो यह भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि यदि मृत्युके पहले ही तत्त्वज्ञान हो जाय तो काशीका मरना तत्त्वज्ञानका कारण नहीं सिद्ध हो सकता। इसका उत्तर यों है—काशीमें मृत्यु हो जानेके अनन्तर अदृष्ट-विशेषसे शरीरकी प्राप्ति होती है और उसके द्वारा तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें कोई प्रतिबन्धक नहीं रह जाता। अथवा जिस प्रकार बिना शरीरके ही ईश्वरमें ज्ञान होना माना जाता है, उसी तरह

काशीमें मरे हुए जीवको भी जीवित शरीरके अभावमें भी ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि काशी-मरणसे यदि सभी जीवोंकी मुक्ति मान ली जाय तो निषिद्ध कर्म करनेवालों और नियमपूर्वक विहित कर्म करनेवालोंमें क्या विशेषता रह जाती है, कोई नहीं। ऐसी दशामें काशीमें भले-बुरेका विचार छोड़कर लोग मनमाना आचरण करने लग जायँगे। यदि बुरे कर्मोंका प्रतिकूल फल न मिले तो अत्यन्त प्रयत्नसे सिद्ध होने योग्य पुण्य कर्ममें कौन प्रवृत्त होगा ? और—

अशनं व्यसनं वासः काश्यां येषाममार्गतः।
कीकटेन समा काशी गङ्गाप्यङ्गारवाहिनी॥

अर्थात् 'काशीमें जिन लोगोंका अशन, व्यसन अथवा निवास कुमार्गसे होता है, उनके लिये काशी तो कीकट (मगध) के समान है और गङ्गा आग बहानेवाली है'—इस शास्त्र-वाक्यकी संगति कैसे होगी ? इसका रहस्य यों समझना चाहिये कि सदाचारका त्याग न करनेवाले पापहीन पुरुषोंकी तो भगवान्‌के द्वारा उपदेश किये हुए तारकमन्त्रसे उत्पन्न तत्त्वज्ञानद्वारा तुरंत मुक्ति हो जाती है। परंतु अपने पापोंका प्रायश्चित्त न करनेवाले पापियोंकी इस काशीक्षेत्रमें कहीं भी जिस-किसी तरह मृत्यु हो जानेपर उन्हें पापके अनुसार यम-यातना अर्थात् तीस हजार वर्षतक रुद्रपिशाचता प्राप्त होती है, तत्पश्चात् शीघ्र अथवा देरीसे उनकी मुक्ति होती है। जैसा कि गरुडपुराणमें कहा है—

वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा।
योनिं प्रविश्य पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम्॥
पुनरेव च तत्रैव ज्ञानमुत्पद्यते ततः।
मोक्षं गमिष्यते सोऽपि गुह्यमेतत् खगाधिप॥

काशीखण्डमें—

कृत्वापि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत्।
भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मोक्षमवाप्स्यति॥

'जो मनुष्य काशीमें रहकर सदा पापोंमें रत रहता है वह तीस हजार वर्षतक पिशाच-योनिको भोगता है, फिर वहीं उसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उसके बाद मोक्ष मिल जाता है। हे गरुड ! यह रहस्यकी बात है। मनुष्य काशीमें पाप करके यदि काशीमें ही मर जाय तो वह रुद्र-पिशाच होकर फिर मोक्ष पाता है।'

अब फिर यह प्रश्न उठता है कि यदि पापी पुरुष काशीमें मरनेसे रुद्र-पिशाच हो जाता है तो फिर उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? क्योंकि उसके अंदर तत्त्व-ज्ञान तो होता ही नहीं। इसका उत्तर यह है कि पिशाच भी देवयोनिके ही अन्तर्गत है, इसलिये वह भी ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेका अधिकारी है और शंकरजीके उपदेश किये हुए तारकमन्त्रद्वारा उसे तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति हो ही जाती है। सनत्कुमारसंहितामें भी लिखा है—

यो वा गमिष्यत्यघकृद् बहिष्ठ-
स्त्यक्त्वासुमत्रैव शिवं लभेत।
अत्रैव पापैः सह चेन्मृतोऽसौ
न जन्ममृत्यू लभते च काश्याम्॥
कालेन मे यामगणैः फलेषु
नियोजितस्तत्सकलं प्रभुज्य।
अल्पेन कालेन समस्तमेव
सार्धं पुना रुद्रपिशाचरुद्रैः॥
भवप्रसादेन कृतोपदेशः
पिशाचयोनेरपि मुक्तिमेति।

'जो बाहरका रहनेवाला पापी पुरुष काशीमें जाकर प्राण-त्याग करता है वह यहीं शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेता है। और यदि वह काशीमें ही पापाचरण करता हुआ मर जाता है तो उसका भी यहाँ जन्म-मरण नहीं होता, बल्कि मेरे यम नामक गण उसे कर्मानुसार फलोंमें नियुक्त करते हैं और वह रुद्रपिशाचगणोंके साथ थोड़े ही नियमित समयमे उन समस्त फलोंको भोगकर शिवकी कृपासे ज्ञानोपदेश पाकर पिशाच-योनिसे भी मुक्त हो जाता है।'

जो काशीमें पाप करके अन्यत्र जाकर मर गये हों उनके विषयमें इस प्रकार कहा है—

अन्यत्र भुक्त्वापि समस्तपापं
पुण्यं च पश्चात् तृणगुल्मकादौ।
जातः क्रमाद् ब्राह्मणतामुपेत्य
त्वदुक्तमार्गैरपि मुक्तिमेति॥

'अन्यत्र मरनेपर भी समस्त पाप-पुण्योंको भोग लेनेके बाद वह तृण-लता आदि उद्भिज्ज योनियोंमें जन्म लेता है, पुनः क्रमशः ब्राह्मण होकर तुम्हारे बताये हुए मार्गसे मुक्त

हो जाता है।'

यदि कहें कि अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना काशीमें मरनेवालोंको तत्त्व-ज्ञान कैसे हो सकता है, क्योंकि तत्त्व-ज्ञान होनेके लिये अन्तःकरणका शुद्ध होना आवश्यक है—तो यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि अनेक जन्मोंके संचित किये हुए पुण्य-कर्मोंद्वारा जिनका चित्त शुद्ध हो चुका है, उन्हींका काशीमें मरना सम्भव है। अतएव ब्रह्मपुराणमें कहा है—

अनेकजन्मसंसिद्धान् वर्जयित्वा महामुनीन्।
नान्येषां मरणं तत्र यच्छन्त्येते विभीषणाः॥

अर्थात् 'ये भयावह रुद्रगण अनेक जन्मोंके सिद्ध महर्षियोंको छोड़कर और किसीको काशीमें नहीं मरने देते।'

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि काशीमें तो पापियोंकी भी मृत्यु होती देखी जाती है, परंतु जिसका चित्त शुद्ध होगा उसमें पापकी वासना हो ही नहीं सकती। ऐसी दशामें यह नियम कैसे माना जाय कि 'अनेक जन्मोंके उपार्जित पुण्योंद्वारा शुद्धचित्त महात्माओंकी ही यहाँ मृत्यु होती है'? यह भी ठीक नहीं, क्योंकि पूर्वोक्तरूपसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर भी प्रारब्ध-पापके कारण कंस और शिशुपाल आदिके समान पाप-वासना सम्भव है, अतः उक्त नियममें कोई बाधा नहीं आती।'

मरणावस्थामें अपान-वायुसे टकराकर जब मर्म फटने लगता है, उस समय व्याकुलचित्त पुरुष तो कुछ भी सुन नहीं सकता और असम्भावना तथा विपरीत भावना भी मिटायी नहीं जा सकती, ऐसी स्थितिमें तत्त्वका साक्षात्कार होना असम्भव है—इस तरहकी शङ्का भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि अपरिमित महिमाशाली श्रीविश्वनाथकी कृपासे हर तरहकी वेदना मिट जानेपर चित्तको प्रसन्न रखनेकी शक्ति प्राणीके अंदर हो सकती है और इस तरह श्रवण आदिके भी सम्भव होनेसे असम्भावना तथा विपरीत भावनाकी निवृत्तिमें किसी तरहकी बाधा नहीं आ सकती। तथा मरणकालमें बाह्य इन्द्रियोंकी अपेक्षाके बिना ही केवल हृदयमात्रसे श्रवण आदिकी उपपत्ति होती है, इसलिये काशीमरणसे जो अत्यन्त शुद्ध हो चुका है और श्रीविश्वनाथजीके प्रत्यक्ष दर्शनसे जिसकी पापराशि नष्ट हो गयी है, उसके असम्भावनादि प्रतिबन्धक तो नष्ट हो ही जाते हैं। जैसे गुरुके प्रभावसे अनादिकालिक अज्ञान मिट जाता है, वैसे ही अनादि असम्भावना तथा विपरीत भावना भी मिट ही जाती है। इस तरह काशीका अलौकिक महत्त्व तथा वहाँके मरणका मोक्षदायकत्व सिद्ध हुआ। इस विकराल कलिकालमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन आदि उपायोंसे तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करके मुक्त होना संसारमें आसक्त हम-जैसे पुरुषोंके लिये अत्यन्त कठिन है। उस तरहकी अभिलाषा करनी भी लड़कोंके चाँद पकड़नेकी इच्छाके समान है। भगवान्‌की कृपासे किन्हीं-किन्हीं महापुरुषोंकी यदि उस प्रकार मुक्ति होती हो तो हो, सर्वसाधारणके लिये वह सुलभ नहीं है। इसीको श्रीहर्षने बतलाया है—

ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना।
महाभयकृतत्राणा द्वित्राणां यदि जायते॥

'महान् भयसे रक्षा करनेवाली यह अद्वैतवासना ईश्वरकी कृपासे दो ही तीन पुरुषोंके अंदर होती है।'

इस कलियुगमें काशीमरणके अतिरिक्त मुक्त होनेका और कोई सरल उपाय नहीं है। जैसा कि कहा है—

कलिकालस्त्वयं तीक्ष्णः क्व नयः क्व परात्मदृक्।
काश्येव शरणं तेषां मुक्तिदा मलिनो नृणाम्॥
कलौ विनष्टव्रतधैर्यवीर्या
गच्छन्तु काशीं परमार्थराशिम्।

'यह कलिकाल तो अत्यन्त विकराल है, इसमें कहाँ नीति और कहाँ परमात्माका ज्ञान? इस युगमें पापी मनुष्योंको मुक्ति देनेके लिये काशी ही एकमात्र शरण है। कलिमें जिन लोगोंका व्रत, धीरता और वीरता नष्ट हो चुकी है, वे लोग परमार्थकी राशिभूत काशीको ही जायँ।'

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि इस तरहकी मुक्तिमें विद्वानोंकी प्रवृत्ति सर्वथा अनुचित है, क्योंकि दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये किये गये यत्नसे यदि सुखका भी त्याग हो जाय, तब तो आय-व्यय दोनों बराबर ही हुए। संसारमें थोड़ा-बहुत दुःख रहनेपर भी जैसे धान्य चाहनेवाला पुआलका, चावलका इच्छुक भूसीका तथा मांसार्थी कण्टक (मल) आदिका त्यागकर केवल अभीष्ट वस्तुओंको ही ग्रहण करता है, इसी प्रकार विवेकी पुरुष दुःख और उनके साधनोंको छोड़कर केवल सुखमात्र ग्रहण करता है। इसका समाधान यह है कि दुःख और उसके साधनोंका त्याग कर देनेसे सुखमात्रकी

उपलब्धि हो ही नहीं सकती। इसको ही न्यायवार्तिकमें स्पष्ट किया है— 'विवेकहानस्याशक्यत्वात्।'

—इसलिये सुख भोगनेकी इच्छावालेको दुःख भी भोगना पड़ता है और दुःखका त्याग करनेवालेको सुख भी छोड़ना पड़ता है। जिस तरह मधु और विष मिले हुए अन्नमें एकका त्याग और दूसरेका ग्रहण नहीं हो सकता।

यदि कहें, दुःखकी तरह सुखको भी मिटानेवाले तत्त्व-ज्ञानके कारणभूत काशीमरण आदि उपायोंमें विशेषज्ञ पुरुषोंका द्वेष होना स्वाभाविक है, अतः उसमें उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती, तो यह भी कहना उचित नहीं, क्योंकि जिन विषयी पुरुषोंका सुखमें उत्कट राग होता है वे—

युष्मत्कृते खञ्जनमञ्जुलाक्षि
शिरो मदीयं यदि याति यातु।
नीतानि नाशं जनकात्मजार्थे
दशाननेनापि दशाननानि॥

'हे खञ्जरीटके समान मनोहर नेत्रोंवाली ! तुम्हारे लिये यदि मेरा सिर भी जाता है तो जाय। देखो, सीताके लिये रावणने भी अपने दसो मस्तकोंको नष्ट कर डाला था'—इत्यादि बातें मानकर परस्त्रीमें आसक्त हो सचमुच ही मुक्तिमार्गमें प्रवृत्त नहीं होते। परतु जो लोग विवेकी हैं वे यह सोचकर कि 'इस संसारके कण्टकाकीर्ण पथमें दुःखरूपी अँधेरी रातें कितनी हैं और सुखके जुगनू कितने चमकते हैं ? ये सब कुछ क्रोधित भुजङ्गमके फणोंकी छायाके समान क्षणिक हैं' सुखको भी त्याग देना चाहते हैं। वे सुख तथा उसके साधनोंको भी व्यर्थ समझते हैं। वे विश्वासी पुरुष द्वेष न करके उलटा उसमें प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि बहुत बड़े दोषका ज्ञान ही प्रवृत्तिमें विरोधी होता है। इसलिये अपनी आध्यात्मिक उन्नति चाहनेवालोंको काशीका सेवन अवश्य करना चाहिये।

काशीवसत्या तत्त्वस्य संवित्त्या चोन्नतिः परा।
जायते सज्जना नूनं काशी संसेव्यतां मुदा॥
भारतीयसमाजोऽयं धर्माचरणलोलुपः।
कदाचित् समजो माभूत् सुधारकविमोहितः॥
म्लेच्छपापण्डसुगतसमाजमतविभ्रमाः।
जनाः सन्मार्गमायान्तु जननीशप्रसादतः॥

'हे सज्जनो ! काशीमें निवास करनेसे और तत्त्वज्ञानसे परा उन्नति होती है, इसलिये आप प्रसन्नताके साथ काशीसेवन अवश्य करें। यह भारतीय समाज सदासे ही धर्माचरणमें आसक्त रहा है, सुधारकोंद्वारा विमोहित होकर कभी मूर्ख न बनें। म्लेच्छ, पाखण्ड और बौद्ध आदि समाजोंके मतसे भ्रान्त मनुष्य पार्वती तथा शिवकी कृपासे अच्छे पथपर आ जायँ'।

श्रीशिव और श्रीराम-नाम

एक दिन पार्वतीजीने महादेवजीसे पूछा—'आप हरदम क्या जपते रहते है ?'

उत्तरमे महादेवजी विष्णुसहस्रनाम कह गये।

अन्तमें पार्वतीजीने कहा—'ये तो एक हजार नाम आपने कहे। इतना जपना तो सामान्य मनुष्यके लिये असम्भव है। कोई एक नाम कहिये जो सहस्रो नामोंके बराबर हो और उनके स्थानमे जपा जाय।'

इसपर महादेवजीने कहा—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
राम राम शुभ नाम रटि, सबखन आनँद-धाम। सहस नामके तुल्य है, राम-नाम शुभ नाम॥

पुनः शिवजी श्रीरामजीसे कहते है—

मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यां तु अर्धोदकनिवासिनः। अहं ददामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम्॥

अर्थात् मरनेके समय मणिकर्णिका-घाटपर गङ्गाजीमे जिस मनुष्यका शरीर गङ्गाजलमें पड़ा रहता है उसको मैं आपका तारक-मन्त्र देता हूँ, जिससे वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

(पद्मपुराण, उ॰ खण्ड)

कल्याणरूप शिवकी कल्याणकारी उपासना

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः
कार्येण यो हरिहरद्रुहिणत्वमेति।
देवः स विश्वजनवाङ्मनसातिवृत्त-
शक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं वः॥

परात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर शिव एक हैं, वे विश्वातीत हैं और विश्वमय भी हैं। वे गुणातीत हैं और गुणमय भी हैं। वे एक ही हैं और अनेक रूप बने हुए हैं। वे जब अपने विस्ताररहित अद्वितीय स्वरूपमें स्थित रहते हैं, तब मानो यह विविध विलासमयी असंख्य रूपोंवाली विश्वरूप जादूके खेलकी जननी प्रकृतिदेवी उनमें विलीन रहती है। यही शक्तिकी शक्तिमान्‌में अक्रिय, अव्यक्त स्थिति है—शक्ति है, परंतु वह दीखती नहीं है और बाह्य क्रिया-रहित है। पुनः जब वही शिव अपनी शक्तिको व्यक्त और क्रियान्विता करते हैं, तब वही क्रीडामयी शक्ति—प्रकृति शिवको ही विविध रूपोंमें प्रकट कर उनके खेलका सामान उत्पन्न करती है। एक ही देव विविध रूप धारणकर अपने-आप ही अपने-आपसे खेलते हैं। यही विश्वका विकास है। यहाँ शिव-शक्ति दोनोंकी लीला चलती है। शक्ति क्रियान्विता होकर शक्तिमान्‌के साथ तब प्रत्यक्ष-प्रकट विलास करती है। यही परात्पर परमेश्वर शिव, महाशिव, महाविष्णु, महाशक्ति, गोकुल-विहारी श्रीकृष्ण, साकेताधिपति श्रीराम आदि नाम-रूपोंसे प्रसिद्ध हैं। सच्चिदानन्द विज्ञानानन्दघन परमात्मा शिव ही भिन्न-भिन्न सर्ग और महासर्गोंमें भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे अपनी परात्परताको प्रकट करते हैं। जहाँ जटाजूटधारी श्रीशिवरूप सबके आदि-उत्पन्नकर्ता और सर्वपूज्य महेश्वर उपास्य हैं तथा अन्य नाम-रूप-धारी उपासक हैं, वहाँ वे शिव ही परात्पर महाशिव है तथा अन्यान्य देव उनसे अभिन्न होनेपर भी उन्हींके स्वरूपसे प्रकट, नाना रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध होते हुए सत्त्व-रज-तम गुणोंको लेकर आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं। उस महासर्गमें भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता भिन्न-भिन्न होनेपर भी सब उन एक ही परात्पर महाशिवके उपासक हैं। इसी प्रकार किसी सर्ग या महासर्गमें महाविष्णु-रूप परात्पर होते हैं और अन्य देवता उनसे प्रकट होते हैं, किसीमें ब्रह्मरूप, किसीमें महाशक्ति-रूप, किसीमें श्रीकृष्णरूप और किसीमें श्रीरामरूप परात्पर ब्रह्म होते हैं तथा अन्यान्य स्वरूप उन्हींसे प्रकट होकर उनकी उपासनाकी और उनके अधीन सृष्टि, पालन और विनाशकी विविध लीलाएँ करते हैं। इस तरह एक ही प्रभु भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट होकर उपास्य-उपासक, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा, शासक-शासितरूपसे लीला करते हैं। हाँ, एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, परात्परसे प्रकट त्रिदेव उनसे अभिन्न और पूर्ण शक्तियुक्त होते हुए भी तीनों भिन्न-भिन्न प्रकारकी क्रिया करते हैं तथा तीनोंकी शक्तियाँ भी अपने-अपने कार्यके अनुसार सीमित ही देखी जाती हैं।

यह नहीं समझना चाहिये कि परात्पर महाशिव परब्रह्मके ये सब भिन्न-भिन्न रूप काल्पनिक हैं। सभी रूप भगवान्‌के होनेके कारण नित्य, शुद्ध और दिव्य हैं। प्रकृतिके द्वारा रचे जानेवाले विश्वप्रपञ्चके विनाश होनेपर भी इनका विनाश नहीं होता, क्योंकि ये प्रकृतिकी सत्तासे परे स्वयं प्रभु परमात्माके स्वरूप हैं। जैसे परमात्माका निराकार रूप प्रकृतिसे परे नित्य निर्विकार है, इसी प्रकार उनके ये साकार रूप भी प्रकृतिसे परे नित्य निर्विकार हैं। अन्तर इतना ही है कि निराकार रूप कभी शक्तिको अपने अंदर इस कदर विलीन किये रहता है कि उसके अस्तित्वका ही पता नहीं लगता और कभी निराकार रहते हुए ही शक्तिको विकासोन्मुखी करके गुणसम्पन्न बन जाता है। परंतु साकार रूपमें शक्ति सदा ही जाग्रत, विकसित और सेवामें नियुक्त रहती है। हाँ, कभी-कभी वह भी अन्तःपुरकी महारानीके सदृश बाहर सर्वथा अप्रकट-सी रहकर प्रभुके साथ क्रीडारत रहती है और कभी बाह्य लीलामें प्रकट हो जाती है, यही नित्यधामकी लीला और अवतार-लीलाका तारतम्य है।

नित्यधामके शिव-शक्ति, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सावित्री, कृष्ण-राधा और राम-सीता ही समय-समयपर अवताररूपसे प्रकट होकर बाह्य लीला करते हैं। ये सब एक ही परमतत्त्वके अनेक नित्य और दिव्य स्वरूप हैं। अवतारोंमें, कभी तो परात्पर स्वयं अवतार लेते हैं और कभी सीमित शक्तिसे कार्य

करनेवाले त्रिदेवोंमेंसे किसीका अवतार होता है। जहाँ दण्ड और मोहकी लीला होती है, वहाँ दण्डित एवं मोहित होनेवाले अवतारोंको त्रिदेवोंमेंसे तथा दण्डदाता और मोह उत्पन्न करनेवालेको परात्पर प्रभु समझना चाहिये, जैसे नृसिंहरूपको शरभरूपके द्वारा दण्ड दिया जाना और शिवरूपका विष्णुद्वारा मोहिनी-रूपसे मोहित होना आदि। कहीं-कहीं परात्परके साक्षात् अवतारमें भी ऐसी लीला देखी जाती है, परंतु उसका गूढ़ रहस्य कुछ और ही होता है जो उनकी कृपासे ही समझमें आ सकता है।

कुछ लोगोंकी अनुभवहीन समझ, सूझ या कल्पना है कि भगवान् शिवका साकार स्वरूप कल्पनामात्र है। उनके एकमुख, पञ्चमुख, सर्पधारण, नीलकण्ठ, मदनदहन, वृषभ, कार्तिकेय, गणेश आदि सभी काल्पनिक रूपक हैं। इसलिये इन्हें वास्तविक न मानकर रूपक ही समझना चाहिये। परंतु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है, ये सभी सत्य हैं। जिन भक्तोंने भगवान् श्रीशिवकी कृपासे इन रूपों और लीलाओंको देखा है या जो आज भी भगवत्कृपासे प्राप्त साधन-बलसे देख सकते हैं अथवा देखते हैं तथा साक्षात् अनुभव करते हैं, वे ही इस तत्त्वको समझते हैं और उन्हींकी बातका वस्तुतः कुछ मूल्य है। उल्लूको सूर्य नहीं दीखता—इससे जैसे सूर्यके अस्तित्वमें कोई बाधा नहीं आती, इसी प्रकार किसीके मानने-न-माननेसे भगवत्स्वरूपका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। हाँ, माननेवाला लाभ उठाता है और न माननेवाला हानि। एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवान्‌की प्रत्येक लीला वास्तवमें इसी प्रकारकी होती है, जिससे पूरा-पूरा आध्यात्मिक रूपक भी बँध सके। क्योंकि वे जगत्‌की शिक्षाके लिये ही अपने नित्य-स्वरूपको धरातलमें प्रकट करके लीला किया करते हैं। वेद, महाभारत, भागवत, विष्णुपुराण, शिवपुराण आदि सभी ग्रन्थोंमें वर्णित भगवान्‌की लीलाओंके रूपक बन सकते हैं। परंतु रूपक ठीक बैठ जानेसे ही असली स्वरूपको काल्पनिक मान लेना वैसी ही भूल है, जैसी पिताके छाया-चित्र-(फोटो-) को देखकर उसके अस्तित्वको न मानना।

कुछ लोग कहते हैं कि शिव-पूजा अनार्योंकी चीज है, पीछेसे आर्योंमें प्रचलित हो गयी। इस कथनका आधार है वह मिथ्या कल्पना या अन्धविश्वास, जिसके बलपर यह कहा जाता है कि 'आर्य-जाति भारतवर्षमें पहलेसे नहीं बसती थी। पहले यहाँ अनार्य रहते थे।' आर्य पीछेसे आये। दो-चार विदेशी लोगोंने अटकलपच्चूसे ऐसा कह दिया, बस, उसीको ब्रह्मवाक्य मानकर लगे सब उन्हींका अनुकरण करने। शिव-पूजाके प्रमाण अब उस समयके भी मिल गये हैं, जिस समय इन लोगोंके मतमें आर्य-जाति यहाँ नहीं आयी थी। इसलिये इन्हें यह कहना पड़ा कि शिव-पूजा अनार्योंकी है। जो भ्रान्तिवश वेदोंके निर्माण-कालको केवल चार हजार वर्ष पूर्वका ही मानते हैं, उनके लिये ऐसा समझना स्वाभाविक है। परंतु वास्तवमें यह बात नहीं है। भारतवर्ष आर्योंका ही मूल निवास है और शिव-पूजा अनादि-कालसे ही प्रचलित है। क्योंकि सारा विश्व शिवसे ही उत्पन्न है, शिवमें ही स्थित है और शिवमें ही विलीन होता है। शिव ही इसको उत्पन्न करते हैं, शिव ही इसका पालन करते हैं और शिव ही संहार करते हैं। विभिन्न कार्योंके लिये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—ये तीन नाम हैं। जब शिव अनादि हैं तब शिवकी पूजाको परवर्ती बतलाना सरासर भूल है। परंतु क्या किया जाय ? वे लोग चार-पाँच हजार वर्षसे पीछे हटना ही नहीं चाहते। उनके चारों युग इसी कालमें पूरे हो जाते हैं। उनके इतिहासकी यही सीमा है। इससे पहलेके कालको तो वे प्रागैतिहासिक युग मानते हैं। मानो उस समय कुछ था ही नहीं और कहीं कुछ था तो उसको समझने, जानने या लिखनेवाला कोई नहीं था। प्राचीनताको—चारों युगोंको चार-पाँच हजार वर्षकी सीमामें बाँधकर वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि समस्त ग्रन्थोंमें वर्णित घटनाओंको तथा उनके ग्रन्थोंको इसी कालके अंदर सीमित मानकर तरह-तरहकी अद्भुत अटकलोंद्वारा इधर-उधरके कुलाबे मिलाकर मनगढ़ंत बातोंका प्रचार करते हैं और इसीका नाम आज नवीन शोध या रिसर्च है। इस विचित्र रिसर्चके युगमें प्राचीनताकी बातें सुनना बेवकूफी समझा जाता है। भला बेवकूफी कौन करे ? अतः स्वयं बेवकूफीसे बचनेके लिये पूर्वजोंको बेवकूफ बनाना चाहते हैं।

कुछ लोग श्रीशिव आदिके स्वरूप और उनकी लीलाएँ तथा उनकी उपासना-पद्धतिका पूरा रहस्य न समझनेके कारण उनमें दोष देखते हैं, फिर इनके रहस्यसे सर्वथा अनभिज्ञ, विद्वान् माने जानेवाले अन्यदेशीय आधुनिक शिक्षाप्राप्त प्रसिद्ध

पुरुष भगवान्के इन स्वरूपों, लीलाओं तथा पूजा-पद्धतिका जब उपहास करते हैं तथा इन्हें माननेवालोंको मूर्ख बतलाते हैं, तब तो इन लोगोंको आदर्श विद्वान् समझनेवाले एतद्देशीय उपर्युक्त पुरुषोंकी दोषदृष्टि और भी बढ़ जाती है और प्रत्यक्षदर्शी तत्त्वज्ञ ऋषियोंद्वारा रचित इन ग्रन्थोंसे, इनमें वर्णित घटनाओंसे, इनके सिद्धान्तोंसे लज्जाका अनुभव करते हुए, घरमें, देशमें इन्हें कोसते हैं और बाहर अपने धर्म तथा देशको लज्जा तथा उपहाससे बचानेके लिये उन कथाओंसे नये-नये रूपकोंकी कल्पना कर विदेशी विद्वानोंकी दृष्टिमें अपने धर्म और इतिहासको तथा देवतावादको निर्दोष एवं विज्ञानसम्मत उच्च दार्शनिक भावोंसे सम्पन्न सिद्ध करनेका प्रयास कर उसके असली तत्त्वको ढँक देते हैं, और इस तरह तत्त्वसे सर्वथा वञ्चित रह जाते हैं। शास्त्ररहस्यसे अनभिज्ञ, अतत्त्वविद् आधुनिक विद्वानोंकी बुद्धिको ही सर्वांशमें आदर्श मानकर उनसे उत्तम कहे जानेके लिये भारतीय विद्वानोंने भारतीय धर्म-ग्रन्थोंमें वर्णित तत्त्व तथा इतिहासोंको एवं भगवान्की लीलाओंको, अपनी सभ्यताके और ग्रन्थोंके गौरवको बढ़ानेकी अच्छी नीयतसे भी जो सर्वथा उड़ाने तथा उनका बुरी तरह अर्थान्तर करने और उन्हे समझानेकी चेष्टा की है एवं कर रहे हैं, उसे देखकर रहस्यविद् तत्त्वज्ञ लोग हँसते हैं। साथ ही इन लोगोंकी इस प्रकारकी प्रगतिका अशुभ परिणाम सोचकर खिन्न भी होते हैं। रहस्य खुलनेपर ही पता लगता है कि हमारे शास्त्रोंमें वर्णित सभी बातें सत्य हैं और हमें लजानेवाली नहीं, वरं संसारको ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देनेवाली हैं। परंतु इस रहस्यका उद्घाटन भगवत्कृपासे प्राप्त योग्य तत्त्वज्ञ सद्गुरुकी कृपासे ही हो सकता है। खेद है कि आजकल गुरुमुखसे ग्रन्थोंका रहस्य जाननेकी प्रणाली प्रायः नष्ट होकर अपने-आप ही अध्ययन और मनमाना अर्थ करनेकी प्रथा चल पड़ी है, जिससे रहस्य-मन्दिरके दरवाजेपर ताले-पर-ताले लगते जा रहे हैं। पता नहीं, इसके परिणामस्वरूप हमारा जीवन कितना बहिर्मुख और जड-भावापन्न हो जायगा।

इनके अतिरिक्त कुछ लोग भगवान् शिवको मानते तो हैं, किंतु उन्हें तामसी देव मानकर उनकी उपासना करनेमें दोष समझते हैं। वास्तवमें यह उनका भ्रम है, जो बाह्य दृष्टिवाले साम्प्रदायिक आग्रही मनुष्योंका पैदा किया हुआ है। जिन ही भगवान् शिवका गुणगान वेदों, उपनिषदों और वैष्णव कहे जानेवाले पुराणोंमें भी गाया गया है, उन्हें तामसी बतलाना अपने तमोगुणी होनेका ही परिचय देना है। परात्पर महाशिव तो सर्वथा गुणातीत हैं, वहाँ तो गुणोंकी क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत, नित्य, दिव्य, साकार चैतन्य रसविग्रह-स्वरूपमें क्रिया है, उसमें भी गुणोंका खेल नहीं है। भगवान्की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है और जिन त्रिदेव-मूर्तियोंमें सत्त्व, रज और तमकी लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणोंकी क्रियाके अनुसार नहीं है। भिन्न-भिन्न क्रियाओंके कारण सत्त्व, रज, तमका आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह गुणातीत ही हैं।

कुछ लोग भगवान् शंकरपर श्रद्धा रखते हैं, उन्हें परमेश्वर मानते हैं, परंतु मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं और प्रायः लौकिक कामनाओंकी सिद्धिके लिये ही उनकी भक्ति या पूजा करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि परम उदार आशुतोष, भगवान् सदाशिवमें दयाकी लीलाका विशेष प्रकाश होनेके कारण वे भक्तोंको मनमानी वस्तु देनेके लिये सदा ही तैयार रहते हैं, परंतु इससे इन्हें मुक्तिदाता न समझना बड़ा भारी प्रमाद है। जब भगवान् शिवके स्वरूपका तत्त्वज्ञान ही मुक्तिका नामान्तर है, तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना सिवा भ्रमके और क्या हो सकता है? वास्तवमें लौकिक कामनाओंने हमारे ज्ञानको हर लिया है, इसीलिये हम अपने अज्ञानका परमज्ञानस्वरूप शिवपर आरोप करके उनकी शक्तिको लौकिक कामनाओंकी पूर्तितक ही सीमित मान लेते हैं और शिवकी पूजा करके भी अपनी मूर्खतावश परमलाभसे वञ्चित रह जाते हैं। भगवान् शिव शुद्ध, सनातन, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म हैं, उनकी उपासना परमलाभके लिये ही या उनका पुनीत प्रेम प्राप्त करनेके लिये ही करनी चाहिये। सांसारिक हानि-लाभ प्रारब्धवश होते रहते हैं, इनके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं [illegible] लेनेसे कर्म शुभ और निष्काम हो जायँगे, [illegible] ही सांसारिक कष्टोंक[illegible] और [illegible] रहनेतक कष्ट [illegible] आपत्ति करनी

जानेवाले, सुख-दुःखोंको भक्त क्यों परवा करने लगा? लौकिक सुखका सर्वथा नाश होकर महान् विपत्ति पड़नेपर भी यदि भगवान्का भजन होता रहे तो भक्त उस विपत्तिको परम सम्पत्ति मानता है, परंतु उस सम्पत्ति और सुखका वह मुँह भी नहीं देखना चाहता, जो भगवान्के भजनको भुला देते हैं। भजन बिना जीवन, धन, परिवार, यश, ऐश्वर्य—सभी उसको विषवत् भासते हैं। भक्तको तो सर्वथा देवी पार्वतीकी भाँति अनन्य प्रेमभावसे भगवान् शिवकी उपासना ही करनी चाहिये। एक बात बहुत ध्यानमें रखनेकी है, भगवान् शिवके उपासकमें जगत्के भोगोंके प्रति वैराग्य अवश्य होना चाहिये। यह निश्चित सिद्धान्त है कि विषय-भोगोंमें जिनका चित्त आसक्त है, वे परमपदके अधिकारी नहीं हो सकते और उनका पतन ही होता है। ऐन्द्रिय विषयोंको प्राप्त करके अथवा विषयोंसे भरपूर जीवनमें रहकर उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहना जनक-सरीखे इने-गिने पूर्वाभ्यास-सम्पन्न पुरुषोंका ही कार्य है। अनुभव तो यह है कि विषयोंके संग तो क्या, उनके चिन्तनमात्रसे मनमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। भगवान् भोलेनाथ विषय माँगनेवालेको विषय और मोक्ष माँगनेवालेको मोक्ष दे देते हैं और प्रेमका भिखारी उनके प्रेमको प्राप्तकर धन्य होता है। वे कल्पवृक्ष हैं। मुँहमाँगा वरदान देनेवाले हैं। यदि उपासकने उनसे विषय माँगा तो वे विषय दे देंगे, परंतु विषय उसके लिये विषका कार्य करेगा और अन्तमें दुःखदायी होगा। कामनासे घिरे हुए विषयपरायण मूढ पुरुष ही असुर हैं। ऐसे असुरोंके अनेकों दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। जिन्होंने भगवान् शिवजीकी उपासना करके उनसे विषय माँग लिये और जो यथार्थ लाभसे वञ्चित रह गये। अतएव भगवान् शिवके उपासकको जगत्के विषयोंकी आसक्ति छोड़कर यथार्थ वैराग्यसम्पन्न होकर परम वस्तुकी चाहना करनी चाहिये, जिससे यथार्थ कल्याण हो। याद रखना चाहिये कि शिव स्वयं कल्याणस्वरूप ही हैं, इससे उनकी उपासनासे उपासकका कल्याण बहुत ही शीघ्र हो जाता है। सिर्फ विश्वास करके लग जानेमात्रकी देर है। भगवान्के दूसरे स्वरूप बहुत छान-बीनके अनन्तर फल देते हैं, परंतु औढरदानी शिव तत्काल फल दे देते हैं।

औढरदानी या आशुतोषका यह अर्थ नहीं करना चाहिये कि शिवस्वरूपमें बुद्धि या विवेककी कमी है। ऐसा मानना तो प्रकारान्तरसे उनका अपमान करना है। बुद्धि या विवेकके उद्गम-स्थान ही भगवान् शिव हैं। उन्हींसे बुद्धि प्राप्तकर समस्त देव, ऋषि, मनुष्य अपने-अपने कार्योंमें लगे रहते हैं। अलग-अलग रूपोंमें कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ रहती हैं। शंकरमें यही विशेषता है कि वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं और भक्तोंकी मनःकामना-पूर्तिके समय भोले-से बन जाते हैं। परंतु जब संहारका अवसर आता है तब रुद्ररूप बनते भी उन्हें देर नहीं लगती।

भगवान् शंकरको भोलानाथ मानकर ही लोग उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी, नशेबाज और बावला समझकर उनका उपहास करते हैं। विनोदसे भक्त सब कुछ कह सकते हैं और भक्तका आरोप भगवान् स्वीकार भी कर ही लेते हैं। परंतु जो वस्तुतः शिवको पागल, श्मशानवासी, औघड़, नशेबाज आदि समझते हैं, वे गहरी भूलमें हैं। शंकरका श्मशाननिवास, उनकी उन्मत्तता, उनका विषपान, उनका सर्वाङ्गीपन आदि बहुत गहरे रहस्यको लिये हुए हैं, जिसे श्रीशिवकी कृपासे शिव-भक्त ही समझ सकते हैं। जैसे व्यभिचारप्रिय लोग भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाको व्यभिचारका रूप देकर प्रकारान्तरसे अपने व्यभिचारदोषका समर्थन करते हैं, इसी प्रकार सदाचारहीन, अवैदिक क्रियाओंमें रत नशेबाज मनुष्य शिवके अनुकरणका ढोंग रचकर अपने दोषोंका समर्थन करना चाहते हैं। वस्तुतः शिवभक्तको सदाचारपरायण रहकर गाँजा, भाँग, मतवालापन, अपवित्र वस्तुओंके सेवन, अपवित्र आचरण आदिसे सदा बचते रहना चाहिये—यही शंकरका आदेश है।

भगवान् शिवको परात्पर मानकर उपासना करनेवालेके लिये तो वे परमब्रह्म हैं ही। अन्यान्य भगवत्स्वरूपोंके उपासकोंके लिये, जो शिवस्वरूपको परमब्रह्म नहीं मानते, भगवान् शिव उनके लिये मार्गदर्शक परमगुरु अवश्य हैं। भगवान् विष्णुके भक्तके लिये भी सद्गुरुरूपसे शिवकी उपासना आवश्यक है। वैष्णवग्रन्थोंमें इसका यथेष्ट उल्लेख है और साधकोंके अनुभव भी प्रमाण हैं। शक्तिके उपासक शक्तिमान् शिवको छोड़ ही कैसे सकते हैं? शिवके बिना शक्ति अकेली क्या करेगी? गणेश तो शिवके पुत्र ही हैं। पुत्रको पूजे और पिताका अपमान करे, यह शिष्ट मर्यादा कभी

नहीं हो सकती। सूर्यदेव तो भगवान् शिवके तेजोलिङ्गके ही नामान्तर हैं। इसके सिवा अन्यान्य मतावलम्बियोंके लिये भी कम-से-कम श्रद्धा-विश्वासरूप शक्ति-शिवकी आवश्यकता रहती ही है। योगियोंके लिये तो परमयोगीश्वर शिवकी आराधनाकी आवश्यकता है ही। ज्ञानके साधक परमकल्याणरूप शिवकी ही प्राप्ति चाहते हैं। न्याय, वैशेषिक आदि दर्शन भी शिवविद्याके ही प्रचारक हैं। तन्त्र तो शिवोपासनाके लिये ही बना है। ऐसी अवस्थामें जिस किसी भी दृष्टिसे शिवको परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु, सद्गुरु, महान् उपदेशक, उत्पादक, संहारक—कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबके लिये कर्तव्य है। और सुख—कल्याणकी इच्छा स्वाभाविक होनेके कारण प्रत्येक जीव कल्याणरूप शिवकी ही उपासना करता है।

कामना

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः।
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यार्तवचसा
कदा स्यामानन्दोद्गमबहुलबाष्पाप्लुतदृशः॥

जो फैलती हुई स्निग्ध चाँदनीसे अत्यन्त उज्ज्वल हो रहा है, ऐसे गङ्गाजीके किसी सुन्दर तटपर सुखपूर्वक बैठे हुए नीरव रजनीमें विश्वप्रपञ्चसे व्याकुल हो कब हम आर्त-वाणीसे 'शिव-शिव-शिव' उच्चारणकर अपनी आँखोंको आनन्दोद्रेकसे बहते हुए विपुल आँसुओंमें डुबो लेंगे ?

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरतः संसारे विगुणपरिणामा विधिगतीः।
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणै-
स्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः॥

सर्वस्व त्याग (बाँट) देनेपर अत्यन्त करुणाभरे हृदयसे संसारके अंदर प्रतिकूल परिणामोंको देनेवाली देवगतिका स्मरण करते हुए शंकरजीके चरणोंको ही एकमात्र चित्तका आधार मानकर क्या हम किसी पवित्र वनमें शरत्कालीन चन्द्रमाकी प्रतिदिन क्षीण होनेवाली किरणोंके साथ रात बिता सकेंगे ?

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो त्वां
ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले।
आत्मारामोऽफलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात् स्मरारे
दुःखान्मोक्ष्ये कदाऽहं तव चरणरतो ध्यानमार्गैकनिष्ठः॥

हे भगवान् शिव! मैं कब गङ्गाजलमें स्नानकर पवित्र फूल-फलोंसे आपकी पूजा करता हुआ पर्वतकी गुफामें शिलाखण्डके आसनपर बैठकर ध्येय ब्रह्ममें ध्यान लगाऊँगा और फलकी कामनाओंको छोड़ अपने-आपमें संतुष्ट रहकर गुरुके उपदेशोंमें तत्पर हो आपकी कृपासे एकमात्र ध्यान-मार्गमें आस्था रखकर आपके ही चरणोंमें लीन हो कब सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा पा सकूँगा ?

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
सदा पुण्येऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः॥

सर्प अथवा मालामें, बलवान् शत्रु या मित्रमें, मणि अथवा मिट्टीके ढेलेमें, फूलोंकी शय्या या पत्थरमें और तृण अथवा तरुणीमें समान भाव रखते हुए मेरे दिन किसी पुनीत काननमें 'शिव! शिव! शिव!' रटते हुए बीतें।

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारितैः
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते॥

अरे कामदेव! धनुषकी टङ्कारोंसे अपने हाथको तू क्यों कष्ट दे रहा है? अरी कोयल! तू भी अपने मृदुल कलनादोंसे क्या व्यर्थ कोलाहल मचा रही है? हे भोलीभाली रमणी! तुम्हारे इन स्नेहयुक्त, चतुर, मोहन एवं मधुर चञ्चल कटाक्षोंसे भी अब कुछ नहीं हो सकता! मेरे चित्तने तो श्रीचन्द्रशेखरके चरणोंका ध्यानरूपी अमृत-पान कर लिया है।

—भर्तृहरि

श्रीशिवोपासना

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु वरिष्ठ शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

भगवान् भूतभावन शिवशंकर आशुतोष सर्वदुःखप्रमोष साक्षात् निर्गुण निराकार निर्विकार अखण्ड अचिन्त्य अव्यपदेश्य परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम स्वरूप हैं। भगवान् शिव, श्रीमन्नारायण चतुर्भुज विष्णु और सर्वदेव पितामह ब्रह्माजी महाराज—ये तीनों एक ही निर्गुण-निराकार परम तत्त्वके स्वरूप हैं। यदि इन तीनोंको अलग-अलग मानें तो प्रश्न होगा कि ये तीनों प्रत्येक अपने-आपमें कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंशक्त सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वाधिष्ठान-स्वरूप हैं अथवा तीनों मिल करके भगवान् हैं। यदि तीनों मिल करके भगवान् हैं तो एकमें भी पूर्ण भगवत्ता नहीं रहेगी और यदि तीनोंको पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र परमतत्त्व मानें तो एकसे ही काम चल जायगा फिर दोको मानना व्यर्थ होगा। इसलिये तीनों एक ही निर्गुण-निराकार तत्त्वके सगुण-साकार निखिल कल्याणमयगुणगणनिलय-स्वरूप हैं, ऐसा ही मानना उचित होगा। कहा जा सकता है कि निर्गुण सगुण और निराकार साकार तथा निर्विकार सविकारका परस्पर विरोध है तो इसका उत्तर यह है कि संसारका प्रत्येक पदार्थ पहले निर्गुण निराकार निर्विकार-स्वरूपमें ही रहता है फिर वह निर्गुणसे सगुण और सगुणसे साकार बनता है। उदाहरणके लिये काष्ठमें अग्नि है, तभी तो दो काष्ठोंकी घर्षणासे उसमेंसे अग्नि पैदा हो जाती है। यदि काष्ठमें अग्नि नहीं होती तो लाख प्रयत्न करनेपर भी उसमेंसे अग्नि पैदा नहीं होती। तिलोंमें पहलेसे तेल है तभी कोल्हूमें पेरनेपर तेल निकलता है। काष्ठमें अग्नि निर्गुण है,निराकार है और निर्विकार है। अग्निका गुण है जलाना और प्रकाश करना। काष्ठमें अग्नि होते हुए भी काष्ठसे कोई जलता नहीं। मनों काष्ठ लोग अपने सिरपर लेकर घूमते हैं, किंतु अग्निका गुण दाहकत्व, प्रकाशकत्व उसमें नहीं है। मानना पड़ेगा कि काष्ठमें अग्नि तो है पर वह निर्गुण निराकार है। इसी प्रकार तिलोंमें तेल है, किंतु तिलोंमें तेलका कोई आकार अथवा गुण नहीं है। एक बूँद तेल कपड़ेपर गिर जाय तो कपड़ा चिकना हो जाता है। किंतु मनों तिल कपड़ेमें बाँधकर लोग ले जाते हैं, पर कपड़ा चिकना नहीं होता। इसलिये तिलोंमें भी तेल निर्गुण निराकार ही मानना पड़ेगा। जलमें पृथिवी है पर पृथिवीका गुण जलमें नहीं है। पृथिवीपर जरा-सा पदार्थ डालते ही स्थिर रहता है, किंतु जलमें कोई भारी वस्तु स्थिर नहीं रह सकती, जलमें पृथिवी है, इसीलिये जलसे पृथिवी पैदा होती है। इसी प्रकार जलमें अग्नि है, परंतु वह निर्गुण निराकार है। उसी निर्गुण निराकार अग्निके आधार जलसे अनन्त हाइड्रोइलेक्ट्रिक विद्युत् पैदा हो जाती है। वायु आकाशमें है, इसीलिये आकाशमें ही वायु है। अतः जहाँ अवकाश-स्वरूप आकाश हो वहीं वायु उत्पन्न होती है। सान्द्रावयवसंश्लिष्ट ठोस वस्तुमें वायुका प्रवेश या निर्गम नहीं होता। आकाशमें वायु निर्गुण निराकार-रूपसे ही रहती है। गर्मीके दिनोंमें परेशान होकर लोग कहते हैं, जरा-सी हवा नहीं चलती, पत्ता भी नहीं हिलता, पसीनेसे शरीर तरबतर-सराबोर हो जाता है, किंतु हाथमें पंखा लेकर हिलाते ही अथवा बिजलीके पंखेका स्विच दबाते ही वही निर्गुण निराकार वायु भुर्र भुर्र चलता है और पसीना सूख जाता है। पृथिवी, जल, अग्नि और वायुके गुण तो प्रत्यक्ष अनुभवके विषय हैं। किंतु आकाशका कोई गुण कभी किसीको दिखायी नहीं देता। दार्शनिकोंके मतमें शब्द आकाशका गुण है। कहना होगा कि निर्गुण आकाश शब्दके रूपमें सगुण हो गया, परंतु सगुण होनेपर भी साकार नहीं हुआ, क्योंकि मुखसे उच्चारण किये जानेवाले शब्दका रूप किसीको दिखायी नहीं देता, किंतु वही आकाश शब्दके रूपमें सगुण होकर लिपिके रूपमें नानारूप धारण कर साकार बन जाता है। लिपि जो है वह मुखसे बोले जानेवाले शब्दोंका चित्र ही तो है! इससे सिद्ध हुआ कि निर्गुण निराकार आकाश क्रमशः सगुण होकर हजारों रूपोंमें साकार हो गया। हमारी *सुजला सुफला सस्यश्यामला* भारतभूमिके विभिन्न-विभिन्न राज्योंमें विभिन्न-विभिन्न भाषाओंकी विभिन्न-विभिन्न लिपियाँ हैं। ये सब लिपियाँ उसी निर्गुण निराकार आकाशके शब्द-

रूपमें परिणत होनेपर साकार स्वरूप हैं। अंग्रेजी भाषाकी तो एककी ही चार लिपियाँ हैं। लिखनेकी अलग और छापनेकी अलग। उसमें भी लिखनेकी दो। क्योंकि प्रत्येक शब्दको प्रारम्भमें बड़ी अंग्रेजी लिपिसे लिखा जाता है और छापनेमें भी ऐसा ही होता है, तथा च जिन पञ्चमहाभूतोंसे यह सारा संसार उत्पन्न होता है, संसारकी प्रत्येक वस्तुकी यही स्थिति है। आमकी गुठलीको देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि इसमें अङ्कुर-जाल-स्कन्ध-शाखा-प्रशाखा, अनन्तानन्त पत्र-पुष्प, फलसहित आमका पेड़ स्थित है। प्रत्येक बीजमें ऐसा वृक्ष रहता है, तभी तो उस बीजसे वैसा वृक्ष पैदा हो जाता है। जो वस्तु जिसमें नहीं होती लाख प्रयत्न करनेपर भी उससे पैदा नहीं हो सकती। इसीलिये संतशिरोमणि कविशिरोमणि, भक्तशिरोमणि कलिपावनावतार तुलसीदासजी महाराजने कहा—*'बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल'*। दूधमें निर्गुण निराकार घृत विद्यमान है, मथन करनेसे निकल आता है। पानीमें घी नहीं है तो हजार वर्ष मथे तो भी घी पैदा नहीं हो सकता। तिलोंमेंसे तेल भी पहलेसे विद्यमान रहनेसे ही निकलता है। बालूको हजार वर्षतक पेरें तो भी उसमेंसे तेल नहीं निकल सकता।

अनन्तानन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके उपादान कारण पञ्चमहाभूत पहले निर्गुण निराकार, फिर सगुण निराकार और फिर सगुण साकाररूप धारण करते हैं तो इन पञ्चमहाभूतोंके परम अभिन्न निमित्तोपादान कारण परब्रह्म परमात्माको भी निर्गुण निराकार, सगुण निराकार और सगुण साकार मानना ही होगा। उसी निर्गुण निराकार भगवान्‌की भगवती भास्वती सत्त्वाशक्तिसे अनिर्वचनीय त्रिवर्णात्मिका, त्रिगुणात्मिका मायास्वरूप उपाधिके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीन रूप और तीन नाम बन जाते हैं। यहाँ यह शङ्का निर्मूल है कि एकके अनेक रूप कैसे? क्योंकि अल्पज्ञ-अल्प शक्तिमान् एक जीवके भी अनेक रूप हो जाते हैं। बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थामें जीवके भिन्न-भिन्न रूप हैं। फिर सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के अनेक रूप हो जायँ इसमें क्या आश्चर्य है? त्रिगुणात्मिका मायाके सत्त्वगुणको अपनी उपाधि बनाकर भगवान् विष्णुरूप धारण करते हैं और संसारका पालन करते हैं, रजोगुणको उपाधि बनाकर ब्रह्मारूप धारणकर भगवान् सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं और तमोगुणको उपाधि बनाकर वे ही भगवान् सारे संसारका प्रलय करते हैं। लोग कह सकते हैं कि प्रलय करना तो सबको एक साथ मार देना है, यह तो बड़ी निर्दयताका काम है, फिर भगवान् शिवरूप धारण करके सबको मारते हैं, यह क्या अनुचित नहीं है? कोई पिता अपनी ही संतानको क्या मारेगा? किंतु इसका उत्तर यह है कि मारना भी भगवान्‌की परम दयालुताका लक्षण है। जब जीव अत्यन्त दुःखी हो जाता है, वृद्धावस्थामें इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, आँखोंसे देखना, कानोंसे सुनना, खाना-पीना आदि भी कठिन हो जाता है, पड़ा-पड़ा खटियामें कराहता है, मल-मूत्र भी विसर्जन हो जाता है, अत्यन्त प्रेम करनेवाले पुत्र-पौत्र आदि भी समीप आना नहीं चाहते, सेवासे कतराने लगते हैं, नाक बंद करके पासमे खड़े होते हैं। ऐसी दीन-हीन अवस्थामे परम कल्याणकारक भगवान् शिव कहते हैं 'अरे जीव! अब मैं तुझपर कृपा करके तेरा यह शरीर ले लेता हूँ और तुझे ऐसा नया शरीर देता हूँ कि जो तेरे सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव तेरे इस शरीरसे घृणा करते थे, वे ही तुझको कंधेपर ही नहीं सिरपर बिठा करके नाचेंगे। और जिस मल-मूत्रसे घृणा करते थे उसको *'बालकका है जी, गंगा जल है जी'*—ऐसा कहकर कोई परहेज नहीं करेंगे। क्या यह भगवान्‌की परम दया नहीं है जो निकम्मे जरा-जर्जरित शरीरको लेकर उत्तम बालकका शरीर देते हैं। महाप्रलयमें भी जब सारे संसारके जीव अत्यन्त त्रस्त हो जाते हैं, कहीं किसीको त्राण नहीं मिलता तो भगवान् सबको अपने स्वरूपमें लीन कर परम शान्ति प्रदान करते हैं। इसीलिये भगवान्‌का नाम केवल शिव ही नहीं, अपितु सदाशिव है; क्योंकि वे प्राणिमात्रका सदैव कल्याण करते हैं। भगवान् भूतभावन शंकर विश्वनाथ प्रलयंकर होनेके कारण ही समष्टि-सुषुप्ति-अभिमानी-अव्याकृत तत्त्व हैं। भगवान्‌के बाह्यस्वरूप जटाजूट और भगवती भास्वती भागीरथीका प्रवाह परम शान्तिदायक है। मस्तकपर चन्द्रकला भी लोगोंको आह्लाद देनेवाली है। भगवान्‌के मस्तकमें ये दोनों फायर-ब्रिगेड हैं, क्योंकि उनके ललाटमें तृतीय नेत्र अग्निस्वरूप और कण्ठमें हालाहल विष—दोनोंके अग्निस्वरूप विषको शान्त करनेके लिये दो शीतल तत्त्व हैं। विशेष विवेचन देखना हो तो ब्रह्मलीन

धर्मसम्राट् अनन्तश्री स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजकी भक्तिसुधाके 'शिवतत्त्व' और 'शिवसे शिक्षा' लेखोंमें देखो। वास्तवमें शिव-तत्त्वका विवेचन तो पुष्पदन्ताचार्यके **'असितगिरिसमं स्यात्'** इत्यादि श्लोकके अनुसार कोई कर सकता नहीं।

शिवोपासना शब्दका अर्थ है शिवके समीप बैठना। **'उपसमीपे आसनम् उपासनम्'** स्त्रीलिङ्गमें उपासना। अर्थात् अपने आपको शिवमें समर्पित कर देना उपासनाका चरम स्वरूप है। उपासक और उपासना दोनोंके लीन हो जानेपर केवल उपास्य-स्वरूप ही रह जाना।

ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद् ध्येयैकगोचरः।

—यह अभियुक्तोंकी उक्ति भी इसी बातको कहती है। किसी साधारण बड़े आदमीके पास भी कोई बैठता है तो अपनेको पूर्ण सावधान देहेन्द्रियमनोबुद्धि-चित-अहंकारको स्वस्थ कर बैठता है। फिर अपने परमाराध्य इष्टदेवके सामने बैठनेके लिये तो अपने-आपको उसके अनुरूप बनाना चाहिये। इसीलिये कहा है कि **'देवो भूत्वा यजेद् देवं नादेवो देवमर्चयेत्।'**

उपासनाके प्रारम्भमें भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्याग, बहिर्याग, न्यास, ध्यान आदि करनेका तात्पर्य यह है कि अपनेको भगवदुपासनाके योग्य बनाना। स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरका लयकर दिव्य देह उत्पन्न करके ही उपासना की जा सकती है। पञ्चोपचार, षोडशोपचार, राजोपचार-पूजा—यह भगवान्की मध्यम कोटिकी उपासना है। अपने मनको मन्त्रमय वृत्तिके द्वारा उपास्यके साथ अभेद-बुद्धि करना यह परा उपासना है और समस्त संसार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डको उपास्य-तत्त्वमें लीनकर केवल तद्रूप ही सर्वत्र देखना यह परापरा भगवान्की उपासना है। वैसे जैसे शिवतत्त्व अनन्त है, वैसे ही उनकी उपासना भी अनन्त है।

श्रीशिवतत्त्व-रहस्य

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

देवादिदेव भगवान् शिवजीका महत्त्व अपूर्व है। इसलिये भारतीय वाङ्मयमें शिवकी महत्ता सर्वत्र वर्णित है। शिव साक्षात् ब्रह्म ही हैं। तभी माण्डूक्य श्रुतिमें कहा है—

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्य-मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥ (माण्डूक्य० ७)

वह ब्रह्म अस्थूल अर्थात् अदृश्य-तत्त्व होनेके कारण किसी भी इन्द्रियद्वारा गोचर नहीं होता है, अत. वह अदृष्ट है। उसे किसी भी व्यवहारमें नहीं लाया जा सकता, इसलिये वह अव्यवहार्य है। जो ग्रहण करने योग्य नहीं है, वह अग्राह्य है। उपलक्षण आदिसे रहित होनेके कारण अनुमानके द्वारा भी उसे नहीं जाना जा सकता है, अतः वह अचिन्त्य है। यही कारण है कि शब्दोंसे अव्यपदेश्य है, अर्थात् वह वाणीका विषय नही है। जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंसे परे होनेके कारण एकात्मप्रत्ययसार है। प्रपञ्चका उपशम, शान्त शिव और सजातीय, विजातीय एवं स्वगत-भेदशून्य केवल एक अद्वैत-स्वरूप है। इस प्रकार आत्माके विषयमें तत्त्ववेत्ता मनीषी मानते हैं। अतः वही आत्मा है और वही विशेषरूपसे जानने योग्य वस्तु है।

'शेते जगदस्मिन्निति शिवः' इस व्युत्पत्तिसे भी शिवका जगत्का अधिष्ठान होना सिद्ध होता है। वही परम तत्त्व शिव अपनी दिव्य शक्तियोंसे युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्डोंका सर्जन, पालन तथा संहार करता है और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदिके रूपोंको धारण करता है। इसलिये मुण्डक श्रुतिमें सविशेष और निर्विशेष ब्रह्मका पृथक्-पृथक् विशेषणोंसे कथन किया गया है। यथा—**'यत्तदद्रेश्यमग्राह्य-मगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।'** यहाँ उक्त कथनसे निर्विशेष ब्रह्मका कथन किया है जो अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षु-श्रोत्रादिसे रहित है। पर इससे अग्रिम वाक्यमें जो कहा है कि—**'नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।'** (मुण्डक० १।१।६)—यहाँ सविशेष ब्रह्मका कथन किया गया है। इसलिये ब्रह्मको नित्य, विभु, सर्वव्यापक, सूक्ष्म, अव्यय तथा सम्पूर्ण भूतोंका कारण बताया गया है। धीर, विवेकी पुरुष ही

कारण है। जीवके जगत्-बन्धनका कारण अज्ञान ही है। साधनाके द्वारा उस अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर गुरुवाक्य-श्रवणसे जीवको ज्यों ही यह ज्ञान हो जाता है कि 'मैं शिव हूँ' उसी क्षण उसे आत्मस्वरूप शिवत्वका साक्षात्कार (बोध) हो जाता है और जीव जीवन्मुक्त बन जाता है। संक्षिप्त रूपमें यही शैव-दर्शनोंका मूलभूत सिद्धान्त है।

शिव वैदिक देवता हैं। शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी—ये पाँच देवता उपासनामें प्रसिद्ध हैं। इन्हींको पञ्चदेव कहते हैं। इसलिये भी शिवको महादेव कहते हैं। शिवका एक नाम आशुतोष भी है। आशु—अर्थात् अतिशीघ्र तोष—यानी प्रसन्न होनेवाले और उपासनासे शीघ्र तथा अधिक सरलतासे प्रसन्न होनेके कारण उनका नाम आशुतोष उचित ही है। शिवने एक बार समुद्रमन्थनसे उत्पन्न हालाहलका पान करके देवताओंको भी अभयदान किया था। वे इतने अहिंसक हैं कि सर्प, बिच्छू भी उनके आभूषण बने हुए हैं।

शिवपुराणमें विष्णुकी और विष्णुपुराणमें शिवकी आलोचना दीखती है। परंतु वे प्रसंग अपने-अपने देवताकी अनन्य भक्ति प्रकट करनेके लिये हैं, उनकी निन्दाके लिये नहीं? अतः सगुणरूपमें भी शिव अति प्राचीन तथा वैदिक देवता हैं इसलिये उनकी पूजा-अर्चना सर्वत्र प्रसिद्ध है।

भगवान् भूतभावन शिवजीकी लीलाकथा भी रहस्यमयी है, इन कथा-प्रसंगोंमेंसे दक्षपुत्री सतीका शिवके साथ विवाह, दक्षयज्ञमें सतीका शरीर-त्याग, वीरभद्रका प्राकट्य, दक्षयज्ञ-विध्वंस, सतीका दूसरा जन्म, हिमालयनन्दिनीके रूपमें पार्वतीका आविर्भूत होना, पार्वतीकी तपस्या, पार्वतीसे शिवका विवाह, स्कन्द और गणपतिका जन्म, ज्योतिर्लिङ्गोंकी कथा, हरि-हरका लीला-युद्ध आदि कथाएँ नितान्त ही रोचक तथा महत्त्वपूर्ण हैं। शिवकी लीलाकथाएँ अनन्त हैं। अन्तमें पुष्पदन्ताचार्यकी इन पंक्तियोंके साथ इस निबन्धको समाप्त किया जाता है—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

सदाशिव-उपासना

(अनन्तश्रीविभूषित द्वारका-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-
मार्यं तमीशमजरामरमात्मवेदम्।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं
सम्भावये मनसि शंकरमम्बिकेशम्॥

भगवान् सदाशिवकी महिमा वेदोंमें गायी गयी है। शुक्लयजुर्वेदमें भगवान् शिवकी स्तुतिमें उन्हें प्रणाम करते हुए कहा गया है—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥
(१६।४१)

उपनिषदोंमें भी उनकी सर्वव्याप्तिका प्रदर्शन करते हुए कहा गया है—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥
(श्वेताश्वतर- ३।११)

रुद्रहृदय, दक्षिणामूर्ति, नीलरुद्रोपनिषद् आदि उपनिषदें भी शिवकी महिमा प्रतिपादित करती हैं।

भगवान् शिवके स्थिति, पालन, संहार, निग्रह (तिरोभाव) और अनुग्रह—ये पञ्चकृत्य सभी आगमोंमें प्रसिद्ध हैं।

संसारकी रचनाको 'सृष्टि' कहते हैं। सृष्टिका स्थिर रहना ही 'पालन' है। सृष्टिके पालनके पश्चात् विनष्ट होना 'संहार' कहलाता है। प्राणोंके उत्क्रमणको 'तिरोभाव' कहते हैं। इन चारों कृत्योंसे मुक्त होना 'अनुग्रह' कहलाता है। इन पाँचोंमें पूर्वके जो चार कृत्य हैं अर्थात् सृष्टि, पालन, संहार और तिरोभाव—ये संसारका विस्तार करनेवाले हैं और अन्तिम पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह है, जो मोक्षका हेतु है। वह सदाशिवमें स्थिर रहता है।

सर्गः संसारसंरम्भस्तत्प्रतिष्ठा स्थितिर्मता।
मर्दनं तस्य निरोधायस्तदुत्क्रमः॥
पञ्चकम्।

पञ्चमुखी महादेव

सर्गादि यच्चतुःकृत्यं संसारपरिजृम्भणम्।
पञ्चमं मुक्तिहेतुर्वै नित्यं मयि च सुस्थिरम्॥
(शिवपु॰, विद्ये॰ सं॰ १०। ३-४)

ये पाँचो कृत्य मेरे पाँच मुखोंद्वारा धारित हैं। चारों दिशाओमे चार मुख और पाँचवाँ मुख मध्यमें है।

पञ्चकृत्यमिदं वोढुं ममास्ति मुखपञ्चकम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम्॥

ये ही पञ्चमुख पृथक्-पृथक्रूपसे आराधित होते हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है—भगवान्‌का पश्चिम वक्त्र (मुख) 'सद्योजात' नामक है, जिसका मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

—यह वैदिक ध्यान है, इनका विस्तृत ध्यान इस प्रकार है—

प्रालेयामलबिन्दुकुन्दधवलं गोक्षीरफेनप्रभं
भस्माभ्यङ्गमनङ्गदेहदमनज्वालावलीलोचनम्।
ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणैः स्तुतिपरैरभ्यर्चितं योगिभि-
र्वन्देऽहं सकलं कलङ्करहितं स्थाणोर्मुखं पश्चिमम्॥
शुभ्रं त्रिलोचनं नाम्ना सद्योजातं शिवप्रदम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं वन्देऽहं पश्चिमं मुखम्॥

यह श्वेत वर्णका है, इनका वाहन हंस, पृथिवी तत्त्व और 'लं' बीज है, इनके अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा हैं। इन्हें धनुर्बाण मुद्रा दिखाते हैं।

उत्तरवक्त्र 'वामदेव' है, उसका वैदिक मन्त्र इस प्रकार है—

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः।
कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः॥

इसका तान्त्रिक ध्यान यों है—

गौरं कुङ्कुमपिङ्गलं सुतिलकं व्यापाण्डुगण्डस्थलं
भ्रूविक्षेपकटाक्षवीक्षणलसत्संसक्तकर्णोत्पलम्।
स्निग्धं बिम्बफलाधरं प्रहसितं नीलालकालंकृतं
वन्दे पूर्णशशाङ्कमण्डलनिभं वक्त्रं हरस्योत्तरम्॥
वामदेवं सुवर्णाभं दिव्यास्त्रगणसेवितम्।
अजन्मानमुमाकान्तं वन्देऽहं ह्युत्तरं मुखम्॥

इसका वर्ण कृष्ण, वाहन गरुड, अप् तत्त्व और 'वं' बीज है तथा विष्णु देवता हैं, इस ध्यानमें पद्ममुद्रा प्रदर्शित की जाती है।

भगवान् सदाशिवका दक्षिण वक्त्र 'अघोर' है, जिसका मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

इसका तान्त्रिक ध्यान इस प्रकार है—

कालाभ्रभ्रमराञ्जनाचलनिभं व्यावृत्तपिङ्गेक्षणं
खण्डेन्दुद्वयमिश्रितांशुदशनप्रोद्भिन्नदंष्ट्राङ्कुरम्।
सर्पप्रोतकपालशक्तिसकलं व्याकीर्णसच्छेखरं
वन्दे दक्षिणमीश्वरस्य कुटिलभ्रूभङ्गरौद्रं मुखम्॥
नीलाभ्रवर्णमोंकारमघोरं घोरदंष्ट्रकम्।
दंष्ट्राकरालमत्युग्रं वन्देऽहं दक्षिणं मुखम्॥

इसका वर्ण नील, वाहन कूर्म, तेजस्तत्त्व, 'रं' बीज और इसके देवता कालाग्नि रुद्र हैं, इन्हें ज्ञानमुद्रा प्रदर्शित की जाती है।

भगवान्‌के पूर्व वक्त्रका नाम 'तत्पुरुष' है। वेदमें इसका मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥'

तान्त्रिक ध्यान इस प्रकार है—

संवर्ताग्नितडित्प्रतप्तकनकप्रस्पर्द्धितेजोऽरुणं
गम्भीरस्मृतिनिःसृतोग्रदशनप्रोद्भासिताम्राधरम्।
बालेन्दुद्युतिलोलपिंगलजटाभारबद्धोरगं
वन्दे सिद्धसुरासुरेन्द्रनमितं पूर्वं मुखं शूलिनः॥
बालार्कवर्णमारक्तं पुरुषं च तडित्प्रभम्।
दिव्यं पिङ्गजटाधारं वन्देऽहं पूर्वदिङ्मुखम्॥

इसका पीत वर्ण, अश्व वाहन, वायु तत्त्व, चैतन्य आत्मा, 'यं' बीज और ईश्वर अधिदेवता है, इसकी कवच मुद्रा कही गयी है।

भगवान्‌के ऊर्ध्वमुखका 'ईशान' नाम है। इसका वैदिक मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥

तान्त्रिक ध्यान इस प्रकार है—

व्यक्ताव्यक्तगुणोत्तरं सुवदनं षट्त्रिंशतत्त्वाधिकं
तस्मादुत्तरतत्त्वमक्षयमिति ध्येयं सदा योगिभिः।
वन्दे तामसवर्जितेन मनसा सूक्ष्मातिसूक्ष्मं परं
शान्तं पञ्चममीश्वरस्य वदनं खव्यापि तेजोमयम्॥
ईशानं सूक्ष्ममव्यक्तं तेजःपुञ्जपरायणम्।
अमृतस्रावि चिद्रूपं वन्देऽहं पञ्चमं मुखम्॥

इसका दुग्ध-जैसा वर्ण, वृषभ वाहन, आकाश तत्त्व, 'हं' बीज, सर्वव्यापक आत्मा और सदाशिव देवता हैं, इसकी व्यापक मुद्रा (महामुद्रा) है। इन ध्यानोंमें पञ्चवक्त्रोंके स्वरूपका परिज्ञान होता है।

सदाशिवका पञ्चाक्षर और षडक्षर मन्त्र विहित है। प्रणवसहित इस पञ्चाक्षर शिवमन्त्रसे भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्ध होते हैं। इसी पञ्चाक्षर मन्त्रसे समस्त मातृका-वर्ण प्रकट हुए हैं, इसीसे गायत्री प्रकट हुई हैं। भगवान् सदाशिवका पूजन करनेके लिये शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। लिङ्गकी व्युत्पत्ति शास्त्रोंमें इस प्रकार बतायी गयी है—'लीनमर्थं गमयति इति लिङ्गम्'। मूर्ति और लिङ्गमें लिङ्ग श्रेष्ठ माना गया है। मुमुक्षु साधकोंको लिङ्गका पूजन करना चाहिये। लिङ्गका पूजन उपनीत साधकोंको प्रणवसे करना चाहिये। मूर्तिका पूजन शिवके पञ्चाक्षर मन्त्रसे किया जाता है। शिवलिङ्गकी स्थापना स्वयं या योग्य विद्वान्‌द्वारा कराये। विधिपूर्वक प्रतिष्ठापित शिवलिङ्गका पूजन उत्तम द्रव्ययुक्त उपचारोंसे करनेपर शिवलोक सुलभ हो जाता है।

चल-प्रतिष्ठामें शिवलिङ्ग या विग्रह छोटा लेना चाहिये। अचल-प्रतिष्ठाके लिये स्थूल विग्रह लेना चाहिये। शिवलिङ्गका पीठ उत्तम और सुदृढ़ होना चाहिये। शिवलिङ्ग जिस द्रव्यसे बना हो उसी द्रव्यसे पीठ भी बनाना चाहिये। पर यह नियम बाणलिङ्गके लिये नहीं है। लिङ्गकी लंबाई बनानेवाले या यजमानके नापसे बारह अंगुल होनी चाहिये। लंबाईमें कमीसे फलमें कमी आ जाती है। निश्चित मानसे अधिक हो तो कोई दोषकी बात नहीं है। चल-लिङ्गकी लंबाई कर्ताके नापसे एक अंगुलसे कम नहीं होनी चाहिये। अल्प होनेपर फलमें अल्पता आ जाती है। अधिक हो तो कोई हानि नहीं है।

स्थावर और जङ्गम-भेदसे भी लिङ्ग दो प्रकारका कहा जाता है। वृक्ष, लता आदि स्थावर लिङ्ग कहे जाते हैं। कृमि, कीटादिको भी जङ्गम लिङ्ग कहा जाता है। स्थावर लिङ्गको आहार, जल आदि देकर तृप्त किया जाता है, यही उनकी पूजा है।

महालिङ्गकी स्थापना करके विविध उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। षोडशोपचारोंसे या अर्घ्यसे नैवेद्यतक उपचार अर्पित करे। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सभी यथाशक्ति नित्य सम्पन्न करना चाहिये। इस तरह किया गया शिवपूजन शिवलोककी प्राप्ति कराता है। पार्थिवलिङ्गमें या बाणलिङ्गमें अथवा पारद शिवलिङ्गमें तथा स्फटिक शिवलिङ्गमें किया गया पूजन भी मनोरथोंको पूरा करनेवाला होता है। परिक्रमा और नमस्कार करनेसे भी शिवपदकी प्राप्ति होती है। यदि नियमपूर्वक शिवलिङ्गका दर्शन किया जाय तो वह भी कल्याणदायक होता है। पूजन दिशानिर्णयकी दृष्टिसे सामान्य-रूपसे दक्षिण दिशामें बैठकर उत्तराभिमुख होकर करना चाहिये।

शिवपूजा सार्ववर्णिक है अर्थात् सभी वर्णोंके लोग पूजा कर सकते हैं। वैदिकगण वैदिक मन्त्रोंसे पूजन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और विलोम,संकर आदि कोई भी क्यों न हो अधिकारानुसार पूजन कर सकते हैं, पौराणिक मन्त्रोंसे स्त्रियोंके द्वारा पूजाका विधान है।

द्विजाति वैदिक रीतिसे शिवलिङ्गकी पूजा कर सकते हैं, अन्य लोग जो अनुपनीत हैं, वे तान्त्रिक (पौराणिक) मन्त्रोंसे पूजा कर सकते हैं, या मूल मन्त्रसे कर सकते हैं। वेदज्ञ द्विजोंको वैदिक मार्गसे ही पूजन करना चाहिये।

शिव-नैवेद्य-ग्रहणपर भी विस्तृत मीमांसा हुई है। गण्डकीमें जहाँ शालग्राम-शिला उत्पन्न होती है, वहाँसे उत्पन्न शिवलिङ्गका, पारद शिवलिङ्गका, स्फटिक शिवलिङ्गका, रत्ननिर्मित शिवलिङ्गका एवं समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें विराजमान भगवान् शिवका नैवेद्य ग्राह्य है, किंतु जहाँ चण्डका अधिकार है वहाँ नैवेद्य अग्राह्य है। बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), स्वर्णादिनिर्मित लिङ्ग, जहाँसे सिद्धियाँ प्राप्त हुई हों ऐसे सिद्ध लिङ्ग या सिद्धोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्ग और स्वयम्भू आदि लिङ्गोंका प्रसाद ग्राह्य है।

जिस नैवेद्य, पत्र-पुष्पादिमें अग्राह्यता है, वह सभी

शालग्राम-शिलाके स्पर्शसे ग्राह्य होता है, साथ ही शिवलिङ्गसे स्पर्श किये विना भी अर्पित नैवेद्य ग्राह्य है।

शिवोपासनामें भस्म—त्रिपुण्ड्र, शिवनाम और रुद्राक्ष—ये तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

उत्तम यज्ञिय भस्म लेकर वैदिक जन **'अग्निरिति भस्म॰'** इत्यादि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर लगाते हैं और अन्य लोग अमन्त्रक ही लगाते हैं। अग्निहोत्रसे प्राप्त भस्म या अन्य यज्ञोंसे प्राप्त भस्मका प्रयोग किया जाता है। भस्म लगानेके वैसे तो प्रत्येक स्थान बताये गये हैं—बत्तीस, सोलह, आठ या पाँच स्थान। इनमेंसे कोई भी एक भाग लेकर उन स्थानोंमें नियमतः भस्म धारण करे। सर्वसामान्य रूपसे मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि—इन पाँच स्थानोंमें भस्म-वन्दन करे **'नमः शिवाय'** कहकर मस्तकमें त्रिपुण्ड्र धारण करें।

त्रिपुण्ड्रके पूर्व **'सद्योजातं॰'** मन्त्रसे अङ्गुष्ठसे ऊर्ध्वपुण्ड्र करे बादमें त्रिपुण्ड्र **'ईशाभ्यां नमः'** से दोनों पार्श्वोंमें, **'बीजाभ्यां नमः'** से दोनों कलाइयोंमे, **'पितृभ्यां नमः'** से अधोअङ्गोंमे, **'उमेशाभ्यां नमः'** से ऊर्ध्वाङ्गोंमें तथा **'भीमाय नमः'** से पीठमे और सिरके पिछले भागमें त्रिपुण्ड्र लगाये। शिव-नाम-जपमे जो उपनीत हो और जिनके यहाँ अविच्छिन्न यज्ञोपवीत-संस्कार होता चला आया हो, वे प्रणवसहित पञ्चाक्षर मन्त्र **'ॐ नमः शिवाय'** का जप करे। जो अनुपनीत हैं और स्त्रियाँ हैं, वे व्यत्यय करके अर्थात् **'शिवाय नमः'**, इस प्रकार जप करें। अथवा प्रणवके स्थानपर **'ह्रीं'** बीज लगाकर जप किया करे।

रुद्राक्ष भगवान् शिवके नेत्रोंसे गिरे जलकी बूँदोंसे उत्पन्न हुआ। ये रुद्राक्ष समस्त पापसमूहोंका भेदन करनेवाले है। भगवान् उमा-महेश्वरकी प्रसन्नताके लिये मनुष्योंको वर्णानुसार रुद्राक्षोको धारण करना चाहिये। आँवलेके बराबर रुद्राक्ष श्रेष्ठ होता है। यह समस्त अनिष्टोका नाशक है। बेरके बराबर रुद्राक्ष मध्यम फलदायी माना जाता है। फिर भी यह पर्याप्त फल देता है। जो गुंजाके समान होता है वह सभी मनोरथोको पूरा करनेवाला बताया गया है। कीड़ोंसे खाया हुआ, टूटा-फूटा आदि दोषोंसे युक्त रुद्राक्ष धारण नहीं करना चाहिये। जिस रुद्राक्षमें स्वतः छिद्र हो वह उत्तम, मनुष्यकृत छिद्र मध्यम होता है। रुद्राक्षके अनेक भेद हैं। शिवभक्तोको भक्तिसे उनको धारण करना चाहिये। रुद्राक्षपर जाबालोपनिषद् तथा शैव पुराणोंमे विस्तृत विवेचना है। अतः विशेष जानकारीके लिये उन्हे देखना चाहिये।

भगवान् शिवका व्यापक स्वरूप और उनकी उपासना

(वीतराग स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्दजी सरस्वती, एम्॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰, भूतपूर्व संसद-सदस्य)

शब्दजाल किल पारगायते
कविकविल्वगुणगुम्फिततेजसे ।
रससरोजपरिभ्रान्तपयोनिधे
शिवशिवात्मकतत्त्वविदे नमः ॥
वन्दे गुरुपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम्।
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥

शिव-शक्तिसामरस्यानन्ततेजःपुञ्ज स्वयं अपने तत्त्वमें भी अनन्त है तथा च अपने चिन्तक चञ्चरीक वर्गके लिये भी अनन्तानन्त है। श्रुतिने **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** कहकर सदाशिवके आनन्त्यको अवाङ्मनसगोचर कहा है। गोस्वामी तुलसीदास-जैसे साधक भक्तों तथा कवियोंके लिये दुराराध्य और आशुतोष-जैसे विरुद्ध धर्मोके ये आश्रयभूत परमेश्वर हैं। महाकवि कालिदासने भी विरुद्ध धर्मोका आश्रय महादेवको माना—**'स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते'**, **'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः'**। सदाशिव भारतीय वाङ्मयमें वैदिक और लौकिक—दोनों क्षेत्रमें परात्पर ब्रह्म एवं परमाराध्य हैं। पौराणिक साहित्यमें तो वैदिक विशेषणोंका सारगर्भित रहस्य, रूपक, आख्यायिका तथा श्रुतिपरक मन्त्रोंद्वारा विशद रूपसे विवेचन किया गया है। यजुर्वेदसंहितामें बहुत-से अध्याय शिव-स्तुतिपरक हैं, वहाँ शिवके विविध रूपोंका चित्रण और लौकिक-पारलौकिक एव पारमार्थिक परम रक्षकके रूपमें वर्णन मिलता है। शिवके निर्गुण निराकार, सगुण साकार, कोमल, मृदुल, सुन्दर रूपका विस्तृत वर्णन है। वहींपर भीमरूप (भयंकररूप) का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। इसीलिये महाकवि कालिदासने विशेष रूपसे **'भीमरूपः'** और **'शिव इत्युदीर्यते'** कहकर

दोनों परस्पर विरुद्ध तत्त्वोंकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। दार्शनिक भाषामें भी बुद्धिके अगम्य परम तत्त्व 'सत्य' कर्मजगत्के आदर्शभूत 'शिव' तथा इन्द्रियग्राह्य और अतीन्द्रिय विषयके असीम 'सुन्दर' तीनों दार्शनिक सरणियों—तर्कन्याय, कर्म-योगका 'परम कल्याण (परम शिव)' और सौन्दर्यशास्त्रका आदर्श सुन्दर, दर्शनशास्त्रका सर्वविद् आदर्श सदाशिव साक्षात् परब्रह्म अथवा परमतत्त्व है। इसी तत्त्वको संक्षेपमें दर्शनशास्त्र (Philosophy) के तीन महान् आदर्श-'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' (The Truth, The good and the Beauty) के रूपमें कहा गया है।

लौकिक पारम्परिक जगत्में शिवको तमोगुणका अधिष्ठातृ देव और संहारशक्तिका नियामक माना है। यही संहार-सामग्री—भूत-प्रेत, सर्प, बिच्छू, कुत्ता-भेड़िया आदि पौराणिक शिवके पारिवारिक अङ्ग हैं। इनका मुख्य उद्देश्य तत्त्वोंकी संहारपरकता तथा रूप-भयंकरताके प्रतिपादनमें योगदान है। बैलकी सवारी भी इसी परिकरका एक अंश मानी जा सकती है; किंतु वृषका मुख्य अर्थ सभी मङ्गलकामनाओंका आवश्यक धर्म-तत्त्व माना गया है। इसका रूप भी भयंकर नहीं है। सिरपर जटामुकुट, द्वितीयाके चन्द्रका आभूषण, मस्तकमें तृतीय नेत्र और नागका यज्ञोपवीत, गले, कान, मणिबन्ध, पादगुल्फ और कटिमें सर्पमालाका आभूषण—सभी सौन्दर्य और भीषणताके मिश्रित प्रतीक हैं। कवियोंद्वारा वर्णित शिव-पार्वती-विवाहमें शिवका यह शृंगार कविकुलके मनोविनोद-हास्य तथा शृंगार, भयानक आदि रसोंका रुचिर सम्मिश्रण है। इन और ऐसे अनेक कारणोंसे शिव मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, देव, दानव आदिके संयुक्त उपास्य प्रतीक हैं।

भारतीय और हिन्दू साहित्यके अतिरिक्त विदेशों और अनार्य संस्कृतियोंमें भी शिवके रूपोंका स्वीकरण किया गया है। ईजिप्टका शिव स्फिंग्स (Sphynx) सदाशिवके नन्दी हैं। (Count Jons Zenna) काउन्ट जान्स जन्नाने ईजिप्टमें नील नदीके तटपर शिवलिङ्ग और शिव-मन्दिरोंकी भरमारका वर्णन किया है—'There is abundance of the Temples of Amon on the banks of Nile as in egypt as there is abundance of the Temples of Shiva on the banks of ganges in India.' रोमन संस्कृतिमें भी इटलीके ऊपर आल्प्स (Alps) पर्वतमालाओंको कैलासका रूपान्तर स्वीकारा है, जहाँसे इन्द्रादि देवता वज्रके रूपमें *बिजलियाँ* पृथिवीपर गिराते हैं।

विश्वकी प्राचीनतम संस्कृतियोंमें फालिस वरशिप (Phallus worship) सबसे प्राचीन मानी गयी है। उपनिषद्में भी देवासुर-संग्राममें बाद देवताओंमें अहंभाव प्रकट हुआ और 'मैंने युद्ध जीता है' यह भावना प्रायः सभीमें उत्पन्न हुई। उसी समय भगवान् एक यक्षके रूपमें प्रकट हुए, जिसे देखकर देवताओंमें कुतूहल हुआ कि 'यह यक्ष कौन है?' सबसे पहले अग्निसे कहा गया—'पता लगाओ यक्ष कौन है।' अग्निने जाकर पूछा कि 'आप कौन हैं?' उत्तरमें यक्षने भी पूछा 'तुम कौन हो?' अग्निने कहा—'मैं अग्नि और जातवेदा हूँ।' तब यक्षने पूछा—'आप अग्निमें क्या शक्ति है?' अग्निने उत्तर दिया—'पृथिवीमें जो कुछ है सबको जलाकर भस्म कर सकता हूँ।' यक्षने एक तृण रख दिया और कहा—'इसे जलाओ।' अग्निने अपना सम्पूर्ण बल लगाया, पर तिनकेको जला न सका। अग्नि वहाँसे हारकर लौट गया। इसके अनन्तर वायुसे कहा गया—'आप पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है?' वायु वहाँ गया और उससे पूछा—'आप कौन हैं?' यक्षने भी लौटकर पूछा—'आप कौन हैं?' वायुने—'मैं वायु हूँ, खुले आकाशमें चलता हूँ, मेरा नाम मातरिश्वा है।' 'आपमें क्या शक्ति है'—यह यक्षके पूछनेपर वायुने कहा—'पृथिवीपर जो कुछ है सबको लेकर उड़ा सकता हूँ।' यक्षने उनके सामने भी एक तृण धर दिया और कहा—'इसे उड़ाओ।' वायु अपनी पूर्ण शक्तिसे प्रवृत्त हुए, पर वह तिनका टस-से-मस नहीं हुआ। वायु भी हारकर लौट गये। अन्तमें देवराज इन्द्रसे सभी देवताओंने कहा—'आप पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है?' इन्द्र बड़ी सज-धजके साथ देवराट् होनेकी भावना लेकर यक्षके पास गये, परंतु यक्ष वहीं अन्तर्धान हो गया। इन्द्रको बड़ा खेद हुआ कि हमसे बात भी नहीं हुई। उसी समय आकाशमें एक शक्ति 'हैमवती उमा' का दर्शन हुआ। उसने कहा—'ब्रह्मके कारण तुम्हारी विजय हुई है। ब्रह्मकी विजयमें तुम्हारी महिमा है।' उपनिषद्के ये यक्ष सदाशिव ही हैं। यही परात्पर पूर्णसे पूर्णतर और शिवसे शिव[illegible] [illegible]व हैं। इनका रूप अनन्त है, तेजोमय

है और श्रुतिने इसे अणोरणीयान्, महतोमहीयान् कहकर पुकारा है। प्रत्येक जीवाणुमें प्रवेश कर रहनेवाले शिव सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर हैं और अनन्त ब्रह्माण्डोंकी परिधिको अपनेमें परमाणुवत् लीन कर लेनेवाले सदाशिव महतोमहीयान् हैं। प्रकृतिका महत्तत्त्व यहाँ आरम्भ नहीं हुआ और महाकामेश्वर सदाशिवने अपनी सिसृक्षाका बीज नहीं छोड़ा यह 'एकोऽहं बहु स्याम्' से पूर्वकी स्थिति है। परमशिवके परम रूपमें परात्पर तत्त्व है, जहाँ अनन्त तत्त्वकी समझ साधारण जीव तो क्या मार्कण्डेय और काकभुशुण्डिको भी नहीं है। 'यत्र बिन्दुर्भवेत् सिन्धुः' की कल्पना सामान्य साधकके मनमें कैसे आये। इसलिये परम सिद्धोंने एक स्वरसे उद्घोष किया 'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।' शिवकी अनन्त नामावलिमेंसे कुछका संस्मरण ऋक्, यजुः, साम, अथर्व सभी श्रुतियोंने मुक्तकण्ठसे किया और भगवान् वेदव्यासने शिव, स्कन्द, अग्नि, वायु आदि पुराणोंमें अमित विस्तारसे आनन्त्यको स्पर्श करनेका प्रयत्न किया है, परंतु भगवती उमाने अनन्तकी रोक लगाकर व्यासके मुखसे 'शिवस्यार्धं प्रदक्षिणा' प्रतिपादित कर अनन्तताको चरितार्थ कर दिया है।

रावण, बाणासुर आदि राक्षस तथा दैत्य महामहानुभावोंने शिवके द्वारपर अनन्त ऋद्धि, अनन्तानन्त ऐश्वर्य और अनन्त सिद्धिका आस्वादन किया, जिसका प्रदर्शन शिवताण्डव आदि स्तुतियोंमें हुआ है।

अनन्तशिवकी अनन्तशक्तिका सामरस्य त्रैपुर-सिद्धान्तमें रसास्वादन-कोटिमें आया है—

चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमभिसंधाय भुवनं
पुनस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्॥
(सौन्दर्यलहरी ३१)

वेद, तन्त्र, पुराण आदिमें सिद्ध, साधक, देवता, दानव, रूप-कुरूप, सुन्दर, असुन्दर, आनन्दकर-भयंकर—सभी कोटिमें शंकरका सामान्य एकरूप, एकरस सामरस्य है। शंकरके अतिरिक्त कोई भी देवता-दानव अच्छे, सुखमय अंशों, स्वरूपोंके पक्षपाती हैं। शंकर ही एक ऐसे महादेव हैं, जिनके पास सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, देवता-दैत्य, पुष्प और कंटकका समान रूपसे सामञ्जस्य है, इसलिये ये ही परब्रह्म सर्वव्यापी सर्वहितैषी तथा सर्वाश्रय हैं। शंकरके द्वारसे कोई निराश नहीं लौटा, यहाँतक कि शंकरको भस्म करनेकी इच्छा रखनेवाला भस्मासुर भी अपनी कामना शिवको भस्म करनेकी दुर्बुद्धि प्राप्त कर सका। भले ही शंकर नारायणके रूपमें उस दुर्बुद्धिकी वास्तविक चिकित्सा करनेमें सफल हुए। दूसरे देवताओंको प्रसन्न करनेमें कुछ परिश्रम भले ही करना पड़े, किंतु स्वतःसिद्ध आशुतोष शंकर तो पत्र-पुष्प, फल, जल किसीकी भी कामना नहीं करते। आशुतोष भक्तकी भावनासे शीघ्र ही उसके अनुकूल होकर अपना सर्वस्व दे देते हैं। जीव—शिव सदाशिवके संनिधानसे परम शिव, परात्पर शिव और सर्वथा शिवाभिन्न हो जाता है। यही उसका परम शिव—परम कल्याण है।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः।
अर्पिता तेन मे देवाः प्रीयतां मे सदा शिवः॥

शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवः केवलोऽहम्

बुद्धिवाद करते समय कोई चाहे आत्मवादी हो या अनात्मवादी, हर एक ऐच्छिक व्यवहारका मूल-कारण 'मैं हूँ,' यह अनुभव होता है, जैसे जीभसे एक बार चख लेनेपर चीनीके मिठासकी सिद्धिके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही हमारी अपनी हस्तीके सम्बन्धमें भी किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। वास्तवमें होती भी नहीं। किसी एकान्त स्थलमें, मनकी प्रशान्तावस्थामें, हमारा आत्मिक अनुभव क्या हुआ करता है? 'मै हूँ, मै अमर हूँ, ज्ञानवान् और आनन्दस्वरूप हूँ।' बस, यही तो मानव-जातिकी इति-कर्तव्यता है। इस अल्पकालीन तथा अस्पष्ट अनुभूतिको सर्वकालीन और सुस्पष्ट बनानेमे दत्तचित्त रहना ही हमारा परम कर्तव्य है। शरीरसे हम भले ही 'नियत-कर्म' करते रहें, पर हृदयमें हमें सदा यही अनुभव करना चाहिये—

'चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।'

दोनों परस्पर विरुद्ध तत्त्वोंकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। दार्शनिक भाषामें भी बुद्धिके अगम्य परम तत्त्व 'सत्य' कर्मजगत्‌के आदर्शभूत 'शिव' तथा इन्द्रियग्राह्य और अतीन्द्रिय विषयके असीम 'सुन्दर' तीनों दार्शनिक सरणियों—तर्कन्याय, कर्म-योगका 'परम कल्याण (परम शिव)' और सौन्दर्यशास्त्रका आदर्श सुन्दर, दर्शनशास्त्रका सर्वविद् आदर्श सदाशिव साक्षात् परब्रह्म अथवा परमतत्त्व है। इसी तत्त्वको संक्षेपमें दर्शनशास्त्र (Philosophy) के तीन महान् आदर्श-'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' (The Truth, The good and the Beauty) के रूपमें कहा गया है।

लौकिक पारम्परिक जगत्‌में शिवको तमोगुणका अधिष्ठातृ देव और संहारशक्तिका नियामक माना है। यही संहार-सामग्री—भूत-प्रेत, सर्प, बिच्छू, कुत्ता-भेड़िया आदि पौराणिक शिवके पारिवारिक अङ्ग हैं। इनका मुख्य उद्देश्य तत्त्वोंकी संहारपरकता तथा रूप-भयंकरताके प्रतिपादनमें योगदान है। बैलकी सवारी भी इसी परिकरका एक अंश मानी जा सकती है, किंतु वृषका मुख्य अर्थ सभी मङ्गलकामनाओंका आवश्यक धर्म-तत्त्व माना गया है। इसका रूप भी भयंकर नहीं है। सिरपर जटामुकुट, द्वितीयाके चन्द्रका आभूषण, मस्तकमें तृतीय नेत्र और नागका यज्ञोपवीत, गले, कान, मणिबन्ध, पादगुल्फ और कटिमें सर्पमालाका आभूषण—सभी सौन्दर्य और भीषणताके मिश्रित प्रतीक हैं। कवियोंद्वारा वर्णित शिव-पार्वती-विवाहमें शिवका यह शृंगार कविकुलके मनोविनोद-हास्य तथा शृंगार, भयानक आदि रसोंका रुचिर सम्मिश्रण है। इन और ऐसे अनेक कारणोंसे शिव मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, देव, दानव आदिके संयुक्त उपास्य प्रतीक हैं।

भारतीय और हिन्दू साहित्यके अतिरिक्त विदेशों और अनार्य संस्कृतियोंमें भी शिवके रूपोंका स्वीकरण किया गया है। ईजिप्टका शिव सिंग्स ((Sphyns) सदाशिवके नन्दी हैं। (Count Jons Zenna) काउन्ट जान्स जन्नाने ईजिप्टमें नील नदीके तटपर शिवलिङ्ग और शिव-मन्दिरोंकी भरमारका वर्णन किया है—'There is abundance of the Temples of Amon on the banks of Nile as in egypt as there is abundance of the Temples of Shiva on the banks of ganges in India.' रोमन संस्कृतिमें भी इटलीके ऊपर आल्प्स (Alps) पर्वतमालाओंको कैलासका रूपान्तर स्वीकारा है, जहाँसे इन्द्रादि देवता वज्रके रूपमें बिजलियाँ पृथिवीपर गिराते हैं।

विश्वकी प्राचीनतम संस्कृतियोंमें फालिस वरशिप (Phallus worship) सबसे प्राचीन मानी गयी है। उपनिषद्‌में भी देवासुर-संग्रामके बाद देवताओंमें अहंभाव प्रकट हुआ और 'मैंने युद्ध जीता है' यह भावना प्रायः सभीमें उत्पन्न हुई। उसी समय भगवान् एक यक्षके रूपमें प्रकट हुए, जिसे देखकर देवताओंमें कुतूहल हुआ कि 'यह यक्ष कौन है?' सबसे पहले अग्निसे कहा गया—'पता लगाओ यक्ष कौन है।' अग्निने जाकर पूछा कि 'आप कौन हैं?' उत्तरमें यक्षने भी पूछा 'तुम कौन हो?' अग्निने कहा—'मैं अग्नि और जातवेदा हूँ।' तब यक्षने पूछा—'आप अग्निमें क्या शक्ति है?' अग्निने उत्तर दिया—'पृथिवीमें जो कुछ है सबको जलाकर भस्म कर सकता हूँ।' यक्षने एक तृण रख दिया और कहा—'इसे जलाओ।' अग्निने अपना सम्पूर्ण बल लगाया, पर तिनकेको जला न सका। अग्नि वहाँसे हारकर लौट गया। इसके अनन्तर वायुसे कहा गया—'आप पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है?' वायु वहाँ गया और उससे पूछा—'आप कौन हैं?' यक्षने भी लौटकर पूछा—'आप कौन हैं?' वायुने—'मैं वायु हूँ, खुले आकाशमें चलता हूँ, मेरा नाम मातरिश्वा है।' 'आपमें क्या शक्ति है'—यह यक्षके पूछनेपर वायुने कहा—'पृथिवीपर जो कुछ है सबको लेकर उड़ा सकता हूँ।' यक्षने उनके सामने भी एक तृण धर दिया और कहा—'इसे उड़ाओ।' वायु अपनी पूर्ण शक्तिसे प्रवृत्त हुए, पर वह तिनका टस-से-मस नहीं हुआ। वायु भी हारकर लौट गये। अन्तमें देवराज इन्द्रसे सभी देवताओंने कहा—'आप पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है?' इन्द्र बड़ी सज-धजके साथ देवराट् होनेकी भावना लेकर यक्षके पास गये, परंतु यक्ष वहीं अन्तर्धान हो गया। इन्द्रको बडा खेद हुआ कि हमसे बात भी नहीं हुई। उसी समय आकाशमें एक शक्ति 'हैमवती उमा' का दर्शन हुआ। उसने कहा—'ब्रह्मके कारण तुम्हारी विजय हुई है। ब्रह्मकी विजयमें तुम्हारी महिमा है।' उपनिषद्‌के ये यक्ष सदाशिव ही हैं। यही परात्पर पूर्णसे पूर्णतर और शिवसे शिवतर परब्रह्म सदाशिव हैं। इनका रूप अनन्त है, तेजोमय

है और श्रुतिने इसे अणोरणीयान्, महतोमहीयान् कहकर पुकारा है। प्रत्येक जीवाणुमें प्रवेश कर रहनेवाले शिव सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर हैं और अनन्त ब्रह्माण्डोंकी परिधिको अपनेमें परमाणुवत् लीन कर लेनेवाले सदाशिव महतोमहीयान् हैं। प्रकृतिका महत्तत्त्व यहाँ आरम्भ नहीं हुआ और महाकामेश्वर सदाशिवने अपनी सिसृक्षाका बीज नहीं छोड़ा यह 'एकोऽहं बहु स्याम्' से पूर्वकी स्थिति है। परमशिवके परम रूपमें परात्पर तत्त्व है, जहाँ अनन्त तत्त्वकी समझ साधारण जीव तो क्या मार्कण्डेय और काकभुशुण्डिको भी नहीं है। 'यत्र विन्दुर्भवेत् सिन्धुः' की कल्पना सामान्य साधकके मनमें कैसे आये। इसलिये परम सिद्धोंने एक स्वरसे उद्घोष किया 'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।' शिवकी अनन्त नामावलिमेसे कुछका संस्मरण ऋक्, यजुः, साम, अथर्व सभी श्रुतियोंने मुक्तकण्ठसे किया और भगवान् वेदव्यासने शिव, स्कन्द, अग्नि, वायु आदि पुराणोंमें अमित विस्तारसे आनन्त्यको स्पर्श करनेका प्रयत्न किया है, परंतु भगवती उमाने अनन्तकी रोक लगाकर व्यासके मुखसे 'शिवस्यार्ध प्रदक्षिणा' प्रतिपादित कर अनन्तताको चरितार्थ कर दिया है।

रावण, बाणासुर आदि राक्षस तथा दैत्य महामहानुभावोंने शिवके द्वारपर अनन्त ऋद्धि, अनन्तानन्त ऐश्वर्य और अनन्त सिद्धिका आस्वादन किया, जिसका प्रदर्शन शिवताण्डव आदि स्तुतियोंमें हुआ है।

अनन्तशिवकी अनन्तशक्तिका सामरस्य त्रैपुर-सिद्धान्तमें रसास्वादन-कोटिमें आया है—

चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमभिसंधाय भुवनं
पुनस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्॥

(सौन्दर्यलहरी ३१)

वेद, तन्त्र, पुराण आदिमें सिद्ध, साधक, देवता, दानव, रूप-कुरूप, सुन्दर, असुन्दर, आनन्दकर-भयंकर—सभी कोटिमें शंकरका सामान्य एकरूप, एकरस सामरस्य है। शंकरके अतिरिक्त कोई भी देवता-दानव अच्छे, सुखमय अंशों, स्वरूपोंके पक्षपाती हैं। शंकर ही एक ऐसे महादेव हैं, जिनके पास सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, देवता-दैत्य, पुष्प और कंटकका समान रूपसे सामञ्जस्य है, इसलिये ये ही परब्रह्म सर्वव्यापी सर्वहितैषी तथा सर्वाश्रय हैं। शंकरके द्वारसे कोई निराश नहीं लौटा, यहाँतक कि शंकरको भस्म करनेकी इच्छा रखनेवाला भस्मासुर भी अपनी कामना शिवको भस्म करनेकी दुर्बुद्धि प्राप्त कर सका। भले ही शंकर नारायणके रूपमें उस दुर्बुद्धिकी वास्तविक चिकित्सा करनेमें सफल हुए। दूसरे देवताओंको प्रसन्न करनेमें कुछ परिश्रम भले ही करना पड़े, किंतु स्वतःसिद्ध आशुतोष शंकर तो पत्र-पुष्प, फल, जल किसीकी भी कामना नहीं करते। आशुतोष भक्तकी भावनासे शीघ्र ही उसके अनुकूल होकर अपना सर्वस्व दे देते हैं। जीव—शिव सदाशिवके संनिधानसे परम शिव, परात्पर शिव और सर्वथा शिवाभिन्न हो जाता है। यही उसका परम शिव—परम कल्याण है।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः।
अर्पिता तेन मे देवाः प्रीयतां मे सदा शिवः॥

शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवः केवलोऽहम्

बुद्धिवाद करते समय कोई चाहे आत्मवादी हो या अनात्मवादी, हर एक ऐच्छिक व्यवहारका मूल-कारण 'मैं हूँ,' यह अनुभव होता है, जैसे जीभसे एक बार चख लेनेपर चीनीके मिठासकी सिद्धिके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही हमारी अपनी हस्तीके सम्बन्धमें भी किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। वास्तवमें होती भी नहीं। किसी एकान्त स्थलमें, मनकी प्रशान्तावस्थामें, हमारा आत्मिक अनुभव क्या हुआ करता है? 'मै हूँ, मैं अमर हूँ, ज्ञानवान् और आनन्दस्वरूप हूँ।' बस, यही तो मानव-जातिकी इति-कर्तव्यता है। इस अल्पकालीन तथा अस्पष्ट अनुभूतिको सर्वकालीन और सुस्पष्ट बनानेमें दत्तचित्त रहना ही हमारा परम कर्तव्य है। शरीरसे हम भले ही 'नियत-कर्म' करते रहें, पर हृदयमें हमें सदा यही अनुभव करना चाहिये—

'चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।'

सदाशिवतत्त्व और उनकी उपासना

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

सदाशिवतत्त्व

'शान्तं शिवमद्वैतम्' (माण्डूक्य०७)। परमात्म-तत्त्व सदा कल्याणरूप होनेसे 'सदाशिव' कहा जाता है। अचिन्त्यलीला-शक्तिके द्वारसे शिवतत्त्व स्वयं ही जगत्का निमित्त और उपादानकारण सिद्ध होता है। जगत् रज्जु-सर्पादि-तुल्य अतात्त्विक है। यही कारण है कि शिवतत्त्व जगत्का विवर्तोपादान निमित्तकारण कहा जाता है। उत्पत्ति-स्थिति-संहृति-निग्रह (उत्क्रमणादिके द्वारा जीवोंका नियमन) और अनुग्रहरूप पञ्चकृत्योंका वह निर्वाहक है। पृथिवीसे उत्पत्ति, जलसे स्थिति, तेजसे संहृति, वायुसे तिरोभाव (निग्रह) और आकाशसे अनुग्रह-लीलाका परिज्ञान होता है। 'ब्रह्मा' (हिरण्यगर्भात्मक सूर्य) उत्पत्तिनामक कृत्यके निर्वाहक हैं। 'विष्णु' स्थिति-नामक कृत्यके निर्वाहक हैं। 'रुद्र' संहार-नामक कृत्यके निर्वाहक हैं। 'गणेश' (महेशान) निग्रह-नामक कृत्यके निर्वाहक हैं। शक्ति (सदाशिव) अनुग्रह-नामक कृत्यके निर्वाहक हैं। पञ्चकृत्यके निर्वाहक पञ्चदेवरूपसे सदाशिव-तत्त्व ही अभिव्यक्त है।

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—ये सदाशिवकी पञ्चमूर्तियाँ हैं। ईशानमूर्ति (ऊर्ध्व) मध्यमुख तुल्य है। तत्पुरुषमूर्ति पश्चिममुख तुल्य है। अघोर मूर्ति दक्षिणमुख तुल्य है। वामदेवमूर्ति उत्तरमुख तुल्य है। सद्योजातमूर्ति पूर्वमुख तुल्य है। 'ईशान' क्षेत्रज्ञको व्याप्त करनेवाली मूर्ति है। 'तत्पुरुष' अव्यक्तको व्याप्त करके स्थित है। 'अघोर' बुद्धि (महत्तत्त्व) को व्याप्त करके स्थित है। धर्माधर्म, ज्ञानाज्ञान, रागाराग और ऐश्वर्यानैश्वर्य—ये अष्ट बौद्ध प्रत्यय हैं। 'वामदेव' अहंको व्याप्त करके स्थित है। 'सद्योजात' मनको व्याप्त करके स्थित है। पुनः 'ईशान' आकाश, शब्दतन्मात्रा, श्रवणेन्द्रिय और वागिन्द्रियको व्याप्त करके स्थित है। 'तत्पुरुष' वायु, स्पर्शतन्मात्रा, त्वगिन्द्रिय और हस्तेन्द्रियको व्याप्त करके स्थित है। 'अघोर' अग्नितत्त्व, रूपतन्मात्रा, नेत्रेन्द्रिय और पादेन्द्रियको व्याप्त करके स्थित है। 'वामदेव' जल, रसतन्मात्रा, रसनेन्द्रिय और पायु (उपस्थ) को व्याप्त करके स्थित है। 'सद्योजात' पृथिवी, गन्धतन्मात्रा, घ्राणेन्द्रिय तथा उपस्थ (गुदा) को व्याप्त करके स्थित है। इस प्रकार सांख्योक्त क्षेत्रज्ञ प्रकृति, महत्, अहं, मन, दशविध इन्द्रियाँ तथा सूक्ष्म-स्थूल दशविध भूतरूप पचीस तत्त्वोंको व्याप्तकर सदाशिव भगवान् प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार स्वप्रकाश सर्वाश्रयका नाम सदाशिव है।

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव—ये सदाशिवकी प्रसिद्ध अष्ट मूर्तियाँ हैं। शिवकी 'शार्वी' मूर्ति पृथिवीमयी है। 'भावी' मूर्ति जलमयी है। 'रौद्री' मूर्ति तेजोमयी है। 'औग्री' मूर्ति वायुमयी है। 'भैमी' मूर्ति आकाशमयी है। 'पशुपति' मूर्ति क्षेत्रज्ञरूपा है। 'ईशान' मूर्ति सूर्यरूपिणी है। 'महादेव' मूर्ति चन्द्रमयी है। सोम, सूर्य और अग्नि—ये तेजके ही प्रभेद हैं। शेष पृथिवी, जल, वायु, आकाश और आत्मा (क्षेत्रज्ञ, पशुपति) ये पञ्चमूर्तियाँ हैं। इस प्रकार क्षेत्रज्ञ तथा पञ्चभूतरूपसे सदाशिव-तत्त्वकी अभिव्यक्ति है। 'शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, भवाय जलमूर्तये नमः, रुद्राय अग्निमूर्तये नमः, उग्राय वायुमूर्तये नमः, भीमाय आकाशमूर्तये नमः, पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, महादेवाय सोममूर्तये नमः, ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः।'

भूमिरापस्तथा तेजोवायुर्व्योम च चन्द्रमाः।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः॥

(नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद्)

'ॐ महादेवाय नमः, ॐ महेश्वराय नमः, ॐ शूलपाणये नमः, ॐ पिनाकधृषे नमः' आदि शिवके अष्टाक्षर मन्त्र हैं। ये अष्टमूर्ति और अष्ट विभागापन्न प्रणवके द्योतक हैं। अकार, उकार, मकार, विन्दु, नाद, शब्द, काल और कलासे युक्त प्रणव 'दीर्घ' प्रणव है। दीर्घ प्रणवके अकार, उकार, मकार, नाद, विन्दु, कला, अनुसंधान और ध्यान—ये अष्टप्रभेद भी मान्य हैं। इनमें 'अकार' सद्योजात है। 'उकार' वामदेव है। मकार 'अघोर' है। 'नाद' तत्पुरुष है। 'विन्दु' ईशान है। 'कला' व्यापक है। 'अनुसंधान' नित्य है। 'ध्यान' ब्रह्मस्वरूप है। इस प्रकार सर्वव्यापक अष्टाक्षर है।

'अकारोकारमकारनादविन्दुकलानुसंधानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति।' (नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद्)

मकारपर्यन्त जो प्रणव है, वह अ, उ, म्—इन तत्त्वोंसे युक्त है। इसीको 'ह्रस्वप्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और 'म्'कार इन दोनोंकी एकता है। इस प्रकार शिवात्मतत्त्वका अभिव्यञ्जक प्रणव त्रितत्त्वात्मक और अष्टतत्त्वात्मक है।

'शिवतत्त्व' शिवद है। शिवमें 'श' शयन और सुख-वाचक है। सुखशयन सुषुप्ति अथवा समाधि है। सुषुप्ति और समाधिमें दैहिक तापका वारण और क्षालन होता है। 'इ' अभीष्टोपलब्धिरूप काम है। अभीष्टोपलब्धिसे भौतिक तापका वारण होता है। 'व' अमृतबीज, वरुण और विश्लेष है। वरुणादि अधिदैव हैं। उनके अनुग्रहसे दैविक तापका विश्लेष (वारण) होता है। सर्वात्मस्वरूप शिवतत्त्व विज्ञानसे समाधिसिद्धि, अभीष्टोपलब्धि और दैवानुग्रहकी प्राप्ति सदा सम्भव है। इस प्रकार त्रिविध तापोंकी शान्ति शिवस्वरूप वास्तव वस्तुके परिशीलनसे सहज सम्भव है। इसी प्रकार शकारका अर्थ है नित्यसुख और आनन्द। इकारका अर्थ है पुरुष और वकारका अर्थ है अमृतस्वरूपा शक्ति। इन सबका सम्मिलितरूप शिव है। अतः इस रूपमें भगवान् शिवको आत्मस्वरूप जानकर उनकी अर्चना करे—

शं नित्यसुखमानन्दमिकारः पुरुषः स्मृतः ॥
वकारः शक्तिरमृतं मेलनं शिव उच्यते।
तस्मादेवं स्वमात्मानं शिवं कृत्वार्चयेच्छिवम् ॥

(शिवपुराणविद्येश्वरसंहिता १८)

सदाशिवका 'शिव' यह स्वरूपपरक नाम है, 'शंकर' यह स्वभावपरक नाम है और प्रलयंकर यह प्रभावपरक नाम है। जिस प्रकार भगवान् सूर्य प्रकाशस्वरूप हैं, अतः प्रकाश विकीर्ण करना उनका स्वभाव है तथा तम और शैत्यका वारण उनका प्रभाव है, उसी प्रकार विश्वेश्वर महादेव शिवस्वरूप हैं, कल्याण-स्वरूप होनेसे वे शंकर है, प्राणियोंका सदा ही मङ्गल करते रहना उनका स्वभाव है। मङ्गलप्रद होनेसे वे अमङ्गलोंके विध्वंसक, प्रलयंकर हैं। अमङ्गलध्वंस शिवका प्रभाव है।

सदाशिव-तत्त्वके मुख्यतः तीन रूप है—(१) कार्यब्रह्म, (२) कारणब्रह्म ; और (३) कार्य-कारणातीत परब्रह्म। मृद्घटादि-तुल्य स्थूल-सूक्ष्मोपहित चित्पदार्थ 'कार्यब्रह्म' है। घटाद्युत्पादिनी शक्त्युपहित मृत्तुल्य मायोपहित चित्पदार्थ 'कारणब्रह्म' है। केवल मृत्तुल्य चित्पदार्थ कार्य-करणातीत परब्रह्म है।

जिस प्रकार तरङ्गमालाका उदयस्थान, निलय (निवास) स्थान और विलयस्थान जल है, उसी प्रकार स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्के उदयस्थान, निलयस्थान और विलयस्थान शिव हैं। यही कारण है कि शिव स्वयं लिङ्ग हैं। उनको वह्निधूमवत् गमक (अनुमापक) होनेसे स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् भी लिङ्ग है—

सूक्ष्मत्वात् कारणत्वाच्च लयनाद्गमनादपि।
लक्षणात् परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते ॥

(योगशिखोपनिषद् २।१०)

शिव एव स्वयं लिङ्गं लिङ्गं गमकमेव हि।
शिवेन गम्यते सर्वं शिवो नान्येन गम्यते ॥
अतः सत्यचिदानन्दलक्षणः परमेश्वरः।
स्वयमेव सदा लिङ्गं न लिङ्गं तस्य विद्यते ॥

(सूतसंहिता ४।२७-२८)

सदाशिवका सगुण-साकारस्वरूप भी इतना अद्भुत है कि उसपर सभी मोहित होते है। भगवान्‌की तेजोमयी मूर्तिका दर्शन कर स्फटिक, शङ्ख, कुन्द, दुग्ध, कर्पूरखण्ड, श्वेताद्रि, चन्द्रादि सभी लज्जित होते हैं। मनोहर त्रिनयन, बालचन्द्र तथा जटामुकुट और उसपर दुग्धतुल्य स्वच्छाकृति गङ्गधारा मनको हठात् हरती है। शिव सकलविरुद्ध धर्माश्रय हैं। वे त्रिदेहमुक्त होनेसे दिगम्बर है। ज्ञानाग्निदग्ध जगत् जो कि अकिंचित्कर है, उसीको लीलापूर्वक अङ्गराग बनानेवाले शिव भस्माङ्गरागी हैं। सबके विश्रामस्थल शब्दब्रह्म और परब्रह्मरूप शिव अक्षय्य वटतुल्य है। सांख्य, योग और वेदान्तरूप तीन अद्भुत जटाएँ शिरोभूषण है। वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और प्राज्ञेश्वररूप अग्नि, सूर्य और चन्द्र सदाशिव भगवान्‌के त्रिनेत्र हैं। शिव चन्द्रतुल्य आह्लादक, सूर्यतुल्य तमोनाशक और अग्नितुल्य रागादिनाशक है। वायु भक्षणकर गुहामें रहनेवाले योगीन्द्र, मुनीन्द्र, भुजङ्गतुल्य हैं। शंकर उन्हें भूषणरूपसे स्वीकार करते है। यही कारण है कि हर भुजङ्गाभरण कहे जाते हैं। वैराग्य, बोध और उपरतिरूप त्रिशूलको धारण करनेवाले पशुपति वासनाक्षय, मनोनाश और अज्ञानविध्वंस कर जीवोंका उद्धार

हो ?' शंकरजी बोले—'मैं राजदरबारी सोमदत्त गायकका शिष्य हूँ।' यह सुनकर आगन्तुक गायक चकित हो गया। उसने अपने मनमें सोचा कि जिसका शिष्य इतना निपुण है, उसका गुरु स्वयं कैसा होगा ? अतः सोमदत्तको परास्त करना असम्भव समझकर वह समयसे पूर्व ही तुरंत अपने देशको भाग गया और सोमदत्तकी रक्षा हो गयी। भोलेभण्डारी भगवान् शंकर इतने दयालु हैं कि अपने भक्तके भलेकी रक्षाके लिये अभक्तके सम्मुख भी भिखारीका वेश धारण करके नाचने-गानेका कार्य बिना संकोच किया।

ऐसे दयालु कृपालु श्रीशंकरजीकी उपासना कितनी सरल है—

मूर्तिर्मृदा बिल्वदलेन पूजा अयत्नसाध्यं वदनाब्जवाद्यम्।
फलं च यद्यत् मनसोऽभिलाषो स्वरूपविश्वेश्वर एव देवः॥

अर्थात् 'मिट्टीसे ही मूर्ति बन जाती है, बेलके पत्तेसे ही पूजा हो जाती है तथा बिना मेहनतके ही मुँह बजा देनेसे बाजेका काम हो जाता है। फिर इस पूजासे जो-जो मनकी अभिलाषाएँ होती हैं सब पूरी हो जाती हैं।'

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' भोलेभाले कल्याणस्वरूप श्रीभगवान् शंकर, जो भक्तोंके लिये भोले और दुष्टोंके लिये भाले हैं, हमारा कल्याण करें। ॐ शान्तिः ! शान्तिः ! शान्तिः !

भगवान् सदाशिव एवं उनकी उपासना

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

'सदाशिव'का अर्थ है 'नित्य मङ्गलमय'। नित्य-मङ्गल अर्थात् त्रिकाल-मङ्गल। उपासनाका अर्थ है सम्बन्ध बनाये रखना।

श्रीमदादिशंकर-भगवत्पादसे संस्थापित षट्-उपासना-पद्धतियोंमेंसे भगवान् सदाशिवकी उपासना-पद्धति भी एक है। उसका स्वरूप इस प्रकार है—ईश्वरके दो स्वरूप अनुभूत होते हैं—एक है निर्गुण, जो सम्पूर्ण मानवोंके मनसे सुदूर होता है, दूसरा है सगुण, जो वैयक्तिक प्रकृतिके अनुरूप नाम एवं रूपके भेदोंसे यानी भिन्न-भिन्न नाम व रूपोंसे अनुभवयोग्य है, तीसरा एक स्वरूप इसी पद्धतिमें है जो हाथ-पैर आदि न होनेसे सगुण नहीं होता। स्वरूप होनेसे निर्गुण भी नहीं। वही रूप-अरूप है 'लिङ्ग'। लिङ्ग माने चिह्न। निर्गुण सदाशिवका चिह्न होनेसे यह शिवलिङ्ग कहलाता है। शिवका अर्थ तो है लिङ्ग—चिह्न अथवा 'शिवप्रज्ञाने' अर्थवाला लिङ्ग।

'ज्ञानमिच्छेन्महेश्वरात्' यह है हमारे पुरखोंकी अनुभवोक्ति। ज्ञान ही मोक्षका साधन होता है। एक ही निर्गुण वस्तु सत्य है, उससे ही यह विभिन्नतापूर्ण जागतिक सृष्टि होती है, स्थिति होती है तथा संहार भी। उनका सत्य-स्वरूपावगमन ही ज्ञान है। यह तो महेश्वरकी कृपासे ही प्राप्त होता है।

जगत्‌की विभिन्नता तो शक्ति तथा शिव (जड) दोनोंके संयोगसे ही होती है। जैसे विद्युत् 'शक्ति' और लैंप, फैन, रेडियो आदि जड वस्तुएँ हैं। असीम एक ही शक्तिके भिन्न-भिन्न रूप हैं। ये सब शक्तियाँ जो हममें पायी जाती हैं, असीम शक्ति व जड दोनोंका सम्मिलित स्वरूप है यथा— पार्वती-परमेश्वर उमा-महेश्वर आदि-आदि।

मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, जिसका मुख्य लक्ष्य है मोक्ष। जिसका मुख्य साधन है ज्ञान, जो भगवान् सदाशिवकी उपासनासे ही उपलब्ध होता है। इस उपासनामें श्रेष्ठतम स्थान है 'लिङ्ग'का।

'अभिषेकप्रियः शिवः' यह है यहाँके उपासकोंका अनुभव। अतः प्रत्येक कल्याणकामी व्यक्तिको प्रतिदिन घरमें हो या मन्दिरमें लिङ्गका अभिषेक करना चाहिये। उनकी अर्चना भी केवल पुष्प-पत्रोंसे हो जाती है। उनमें अग्रगण्य माना गया है 'बिल्वपत्र'।

महान् सिद्ध पुरुष 'श्रीतिरुमूलर' का तो कहना है कि पत्रसे अर्चन करना सबको सुलभ है। यह है बाहरी पूजा। यदि यह न हो सके तो मानसिक पूजा भी विहित ही है।

एकाग्रचित्त होकर सारी पूजा-पद्धतियोंको मनसा ही कर लेना मानसिक पूजा है। बाहरी क्रम ही मानसिक क्रमका सहायक बनेगा।

अतः प्रत्येकको दैनिक लिङ्ग-पूजामें रत रहना उससे ऐहिक तथा आमुष्मिक लाभ प्राप्त करना, एवं मानव-जन्म सफल बना लेना है। नारायण ! नारायण ! नारायण !

भगवान् शंकर

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

'शंकर' का अर्थ है—कल्याण करनेवाला। अतः भगवान् शंकरका काम केवल दूसरोंका कल्याण करना है। जैसे संसारमें लोग अन्नक्षेत्र खोलते हैं, ऐसे ही भगवान् शंकरने काशीमें मुक्तिका क्षेत्र खोल रखा है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥
(मानस ४। १ सो॰)

शास्त्रमें भी आता है—'काशीमरणान्मुक्तिः'। काशीको 'वाराणसी' भी कहते हैं। 'वरुणा' और 'असी'—दोनों नदियाँ गङ्गाजीमें आकर मिलती हैं, उनके बीचका क्षेत्र 'वाराणसी' कहलाता है। इस क्षेत्रमें मरनेवालेकी मुक्ति हो जाती है।

यहाँ शंका होती है कि काशीमें मरनेवालेके पापोंका क्या होता है? इसका समाधान है कि काशीमें मरनेवाले पापीको पहले 'भैरवी यातना' भुगतनी पड़ती है, फिर उसकी मुक्ति हो जाती है। भैरवी यातना बड़ी कठोर यातना है, जो थोड़े समयमें सब पापोंका नाश कर देती है। काशी केदारखण्डमें मरनेवालेको तो भैरवी यातना भी नहीं भोगनी पड़ती!

सालगरामजीने कहा है—

जगमें जिते जड़ जीव जाकी अन्त समय,
　　जम के जबर जोधा खबर लिये करे।
काशीपति विश्वनाथ वाराणसी वासिन की,
　　फाँसी यम नाशनको शासन दिये करे॥
मेरी प्रजा है के किम पैहैं काल दण्डत्रास,
　　सालग[illegible] यही विचार हमेश हिये करे।
[illegible] पिनाकी यातें प्रानिन के,
　　[illegible] समय कान में किये करे॥

[illegible] ये कानमें भगवान् शंकर तारक [illegible] सुननेसे उनकी मुक्ति हो [illegible] है—

दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥
(युद्ध॰ १५। ६२)

'हे प्रभो! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मैं दिन-रात पार्वतीके साथ काशीमें रहता हूँ और वहाँ मरणासन्न मनुष्योंको उनके मोक्षके लिये आपके तारक-मन्त्र 'राम' नामका उपदेश देता हूँ।'

गोस्वामीजी कहते हैं—

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
(मानस १। १९। २)

भगवान् शंकरका राम-नामपर बहुत स्नेह है। एक बार कुछ लोग एक मुरदेको श्मशानमें ले जा रहे थे और 'राम-नाम सत् है' ऐसा बोल रहे थे। शंकरजीने राम-नाम सुना तो वे भी उनके साथ हो गये। जैसे पैसोंकी बात सुनकर लोभी आदमी उधर खिंच जाता है, ऐसे ही राम-नाम सुनकर शंकरजीका मन भी उन लोगोंकी ओर खिंच गया। अब लोगोंने मुरदेको श्मशानमें ले जाकर जला दिया और वहाँसे लौटने लगे। शंकरजीने देखा तो विचार किया कि बात क्या है? अब कोई आदमी राम-नाम ले ही नहीं रहा है! उनके मनमें आया कि उस मुरदेमें ही कोई करामात थी, जिसके कारण ये सब लोग राम-नाम ले रहे थे। अतः उसीके पास जाना चाहिये। शंकरजीने श्मशानमें जाकर देखा कि वह तो जलकर राख हो गया है। अतः शंकरजीने उस मुरदेकी राख अपने शरीरमें लगा ली और वहीं रहने लगे! राख और मसान—दोनोंके पहले अक्षर लेनेसे 'राम' हो जाता है! एक कविने कहा है—

रुचिर रकार बिन तज दी सती-सी नार,
　　कीनी नाहि रति रुद्र पायके कलेश को।
गिरिजा भई है पुनि तप ते अपर्णा तबे,
　　कीनी अर्धंगा प्यारी लागी गिरिजेश को॥
विष्नुपदी गंगा तउ धूर्जटी धरि न सीस,
　　भागीरथी भई तब धारी है अशेष को।
बार-बार करत रकार व मकार ध्वनि,
　　पूरण है प्यार राम-नाम पे महेश को॥

सतीके नाममें 'र' कार अथवा 'म' कार नहीं हैं, इसलिये

शंकरजीने सतीका त्याग कर दिया। जब सतीने हिमाचलके यहाँ जन्म लिया, तब उनका नाम गिरिजा (पार्वती) हो गया। इतनेपर भी शंकरजी मुझे स्वीकार करेंगे या नहीं—ऐसा सोचकर पार्वतीजी तपस्या करने लगीं। जब उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये, तब उनका नाम 'अपर्णा' हो गया। गिरिजा और अपर्णा— दोनों नामोंमें 'र' कार आ गया तो शंकरजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पार्वतीजीको अपनी अर्धाङ्गिनी बना लिया। इसी तरह शंकरजीने गङ्गाको स्वीकार नहीं किया। परंतु जब गङ्गाका नाम 'भागीरथी' पड़ गया, तब शंकरजीने उनको अपनी जटामें धारण कर लिया। अतः भगवान् शंकरका राम-नाममें विशेष प्रेम है। वे दिन-रात राम-नामका जप करते रहते हैं—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

(मानस १।१०८।४)

केवल दुनियाके कल्याणके लिये ही वे राम-नामका जप करते हैं, अपने लिये नहीं।

शंकरके हृदयमें विष्णुका और विष्णुके हृदयमें शंकरका बहुत अधिक स्नेह है। शिव तामसमूर्ति हैं और विष्णु सत्त्वमूर्ति हैं, पर एक-दूसरेका ध्यान करनेसे शिव श्वेतवर्णके और विष्णु श्यामवर्णके हो गये। वैष्णवोंका तिलक (ऊर्ध्वपुण्ड्र) त्रिशूलका रूप है और शैवोंका तिलक (त्रिपुण्ड्र) धनुषका रूप है। अतः शिव और विष्णुमें भेदबुद्धि नहीं होनी चाहिये—

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥

(मानस ६।२)

उभयोः प्रकृतिस्त्वेका प्रत्ययभेदेन भिन्नवद् भाति।
कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विनाशास्त्रम्॥

अर्थात् (१) हरि और हर—दोनोंकी प्रकृति (वास्तविक तत्त्व) एक ही है, पर निश्चयके भेदसे दोनों भिन्नकी तरह दीखते हैं। कुछ मूर्खलोग हरि और हरको भिन्न-भिन्न बताते हैं, जो विनाश करनेका अस्त्र (विनाश-अस्त्रम्) है।

(२) हरि और हर—दोनोंकी प्रकृति एक ही है अर्थात् दोनों एक ही 'हृ' धातुसे बने हैं, पर प्रत्यय के भेदसे दोनों भिन्नकी तरह दीखते हैं। कुछ मूर्खलोग हरि और हरको भिन्न-भिन्न बताते हैं, जो शास्त्रसे विरुद्ध (विना-शास्त्रम्) है।

अतः शिव और विष्णुमें कभी भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये—

शिवश्च हृदये विष्णोः विष्णोश्च हृदये शिवः।

कहीं-कहीं ऐसा भी आता है कि वैष्णव शिवलिङ्गको नमस्कार न करे। परतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णवका शंकरसे द्वेष है। इसका तात्पर्य यह है कि वैष्णवोंके मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्रका जो तिलक रहता है, उसमें विष्णुके दो चरणोंके बीचमें लक्ष्मीजीका लाल रंगका चिह्न (श्री) रहता है। लक्ष्मीजीको शिवलिङ्गके पास जानेमें लज्जा आती है। अतः वैष्णवोंके लिये शिवलिङ्गको नमस्कार करनेका निषेध आया है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

'सेवक स्वामि सखा सिय पी के।'

(मानस १।१५।२)

अर्थात् भगवान् शंकर रामजीके सेवक, स्वामी और सखा—तीनों ही हैं। रामजीकी सेवा करनेके लिये शंकरने हनुमान्‌जीका रूप धारण किया। वानरका रूप उन्होंने इसलिये धारण किया कि अपने स्वामीकी सेवा तो करूँ, पर उनसे चाहूँ कुछ भी नहीं, क्योंकि वानरको न रोटी चाहिये, न कपड़ा चाहिये और न मकान चाहिये। वह जो कुछ भी मिले, उसीसे अपना निर्वाह कर लेता है। रामजीने पहले रामेश्वर शिवलिङ्गका पूजन किया, फिर लंकापर चढ़ाई की। अतः भगवान् शंकर रामजीके स्वामी भी हैं। रामजी कहते हैं—*'संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥'* अतः भगवान् शंकर रामजीके सखा भी हैं।

भगवान् शंकर आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) हैं। वे थोड़ी ... करनेसे ही ... जाते हैं। इस विषयमें ... सिद्ध है ... था। एक दिन उसको ... नहीं ... उस दिन
[illegible]
देखा। ... दे
स्वर्णका ...

लिये जूतीसहित शिवलिङ्गपर चढ़ गया। 'इसने अपने-आपको मेरे अर्पण कर दिया'—ऐसा मानकर भगवान् शंकर उसके सामने प्रकट हो गये।

एक कुतिया खरगोशको मारनेके लिये उसके पीछे भागी। खरगोश भागता-भागता एक शिवमन्दिरके भीतर घुस गया। वहाँ वह शिवलिङ्गकी परिक्रमामें भागा तो आधी परिक्रमामें ही कुतियाने खरगोशको पकड़ लिया। शिवलिङ्गकी आधी परिक्रमा हो जानेसे उस खरगोशकी मुक्ति हो गयी।

भगवान् शंकर बहुत सीधे-सरल हैं। भस्मासुरने उनसे यह वरदान माँगा कि मैं जिसके सिरपर हाथ रखूँ, वह भस्म हो जाय तो शंकरजीने उसको वरदान दे दिया। अब पार्वतीको पानेकी इच्छासे वह उलटे शंकरजीके ही सिरपर हाथ रखनेके लिये भागा। तब भगवान् विष्णु उन दोनोंके बीचमें आ गये और भस्मासुरको रोककर बोले कि कम-से-कम पहले परीक्षा करके तो देख लो कि शंकरका वरदान सही है या नहीं! भस्मासुरने विष्णुकी मायासे मोहित होकर अपने सिरपर हाथ रखा तो वह तत्काल भस्म हो गया। इस प्रकार सीधे-सरल होनेसे शंकर किसीपर संदेह करते ही नहीं, किसीको जानना चाहते ही नहीं, नहीं तो वे पहले ही भस्मासुरकी नीयत जान लेते।

भगवान् शंकरसे वरदान माँगना हो तो भक्त नरसीजीकी तरह माँगना चाहिये, नहीं तो ठगे जायँगे। जब नरसीजीको भगवान् शंकरने दर्शन दिये और उनसे वरदान माँगनेके लिये कहा, तब नरसीजीने कहा कि जो चीज आपको सबसे अधिक प्रिय लगती हो, वही दीजिये। भगवान् शंकरने कहा कि मेरेको कृष्ण सबसे अधिक प्रिय लगते हैं, अतः मैं तुम्हें उनके ही पास ले चलता हूँ। ऐसा कहकर भगवान् शंकर उनको गोलोक ले गये। तात्पर्य है कि शंकरसे वरदान माँगनेमें अपनी बुद्धि नहीं लगानी चाहिये।

शंकरकी प्रसन्नताके लिये साधक प्रतिदिन आधी रातको (ग्यारहसे दो बजेके बीच) ईशानकोण (उत्तर-पूर्व) की तरफ मुख करके 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रकी एक सौ बीस माला जप करे। यदि गङ्गाजीका तट हो तो अपने चरण उनके बहते हुए जलमें डालकर जप करना अधिक उत्तम है। इस तरह छः मास करनेसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं और साधकको दर्शन, मुक्ति, ज्ञान दे देते हैं।

उपनिषत्संदर्भमें शिवोपासना

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-(सुमेरु) पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

शिव-विज्ञानसे विमुक्ति

'जगत्' शिव-शक्तिमय है, जैसे मृद्घट मिट्टी और घटोत्पादिनी शक्तिमय है। शिव मृत्तिका-तुल्य है। शक्तियुक्त शिव ईश्वर-संज्ञक है, वह बीज-तुल्य है। हिरण्यगर्भ अङ्कुर-तुल्य है। वैश्वानर पत्र, पुष्प, फल, वृक्ष-तुल्य है। इस प्रकार शक्तिके योगसे शिवकी ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट्-रूपसे अभिव्यक्ति है।

सम्पूर्ण जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान शिव-तत्त्व है, अतः जगत् शिवरूप है। निर्गुण-निराकार शिव-तत्त्व कार्य-कारणातीत परात्पर परब्रह्म है। सगुण-निराकार अन्तर्यामी ईश्वर 'कारण ब्रह्म' है। सगुण साकार हिरण्यगर्भ और विराट् 'कार्य-ब्रह्म' है। कारण ब्रह्म जहाँ सगुण निराकार है, वहाँ अचिन्त्य लीला-शक्तिके योगसे सगुण साकार भी हो सकता है। भगवत्तत्त्व जिस उपाधिसे युक्त होता है, उसका श्रीविग्रह उस निमित्तसे अभिव्यक्त होता है, यह नियम है।

पशु विलक्षण परात्पर परब्रह्म परमेश्वरका नाम शिव है। पाश-संयुक्त पशुतुल्य अशिव जीवोंको पाशमुक्त करनेवाली उपासना शिवोपासना है—

अशिवाः पाशसंयुक्ताः पशवः सर्वचेतनाः।
यस्माद् विलक्षणास्तेभ्यस्तस्मादीशः शिवः स्मृतः॥

(शिवोपनिषद् १।१०)

त्रिगुणकी साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृतिसहित उसके परिणाम बुद्धि (महत्), अहं, शब्द-स्पर्शादि पञ्च तन्मात्राएँ, मन, श्रोत्र-वागादि दशविध इन्द्रियाँ और आकाशादि पञ्चभूत—ये चौबीस तत्त्व 'पाश' कहे गये हैं। सच्चिदानन्द होते हुए भी अनादि अज्ञानके कारण इनमें निबद्ध जीव शैवागमोंमें 'पशु' माना गया है।

त्रिगुणमयी प्रकृति जबतक बन्धनमें हेतु बनी रहती है,

तबतक उसकी अज्ञान (अविद्या) संज्ञा रहती है। शिवोपनिषद्के अनुसार अज्ञान पचीसवाँ तत्त्व है। उसमे तादात्म्यापन्न अज्ञ जीव छब्बीसवाँ तत्त्व है। नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सर्वेश्वर जीव सत्ताईसवाँ शिव-तत्त्व है। शिव-तत्त्वके विचारसे तत्त्वविज्ञान और तत्त्व-विज्ञानसे विमुक्ति सम्भव है।

शिवोपासना

भक्तिभावपूर्वक 'शिव'-नामोच्चारणसे शीघ्र ही समस्त पापोंकी निवृत्ति और शिव-पदकी प्राप्ति सुनिश्चित है—

नामसंकीर्तनादेव शिवस्याशेषपातकैः ।
यतः प्रमुच्यते क्षिप्रं मन्त्रोऽयं द्व्यक्षरः परः ॥
यः शिवं शिवमित्येवं द्व्यक्षरं मन्त्रमभ्यसेत् ।
एकाक्षरं वा सततं स याति परमं पदम् ॥

(शिवोपनिषद् १।२०-२१)

प्रत्येक व्यक्तिका अन्तःकरण शिवायतन है। हृदय अन्तःकरणका अभिव्यञ्जक है। हृत्-पद्म-वेदिका 'ॐ'कार लिङ्ग है। पुरुष लिङ्गका स्थापक है। सत्य सम्मार्जन है। अहिंसा गोमय है। संतोष पुष्प है। प्राणायाम धूप है। प्रत्याहार नैवेद्य है। शान्ति सलिल है। वैराग्य चन्दन है। अस्तेय प्रदक्षिणा है। इस प्रकारका शिवार्चन शिवलोकप्रद और शिवात्म-विज्ञानप्रद है। शिवयोगी, शिवज्ञानी, शिवजापी, शिवतपी और शिवकर्मी—ये पाँचों निःसंदेह मुक्ति-लाभ करते हैं।

आग्नेय, वारुण, मान्त्र, वायव्य, ऐन्द्र, मानस, शान्ति (क्षमा) और ज्ञान—ये अष्टविध स्नान यथावसर यथायोग्य शिवोपासकोंके योग्य हैं। रुद्रमन्त्रसे विधिवत् विनिर्मित भस्म-विलेपनका नाम 'आग्नेय' स्नान है। जलस्नान 'वारुण' स्नान है। मूर्धाको हाथसे स्पर्श करते हुए शिवके ध्यानपूर्वक एकादश शिवनामोच्चारण 'मान्त्र' स्नान है। वातनिक्षिप्त गोपदरजस्नान 'वायव्य' स्नान है। सूर्यालोककी स्थितिमे बरसते हुए जलसे ऐन्द्री दिशामे स्थित होकर किया जानेवाला स्नान 'ऐन्द्र' स्नान है।

सर्वतीर्थोंका स्मरण करते हुए हाथसे जल ग्रहण कर सिरपर छिड़कना 'मानस' स्नान है। भीषण ताड़ना और तिरस्कार प्राप्त होनेपर भी अनुद्विग्न और आक्रोशरहित रहना 'क्षमा' स्नान है। तीर्थयात्रियों, योगियों, तपस्वियों और ब्रह्मवेत्ताओंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसी फलकी प्राप्ति क्षमाशीलको होती है—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरांस्यायतनानि च ।
तेषु स्नातस्य यत् पुण्यं तत्पुण्यं क्षान्तिवारिणा ॥
यैव ब्रह्मविदां प्राप्तिर्यैव प्राप्तिस्तपस्विनाम् ।
यैव योगाभियुक्तानां गतिः सैव क्षमावताम् ॥

(शिवोपनिषद् ५।३७, ४०)

शिवविज्ञानसे स्नान 'ज्ञान-स्नान' है। शिवविज्ञानी सूर्यरश्मिवत् नित्य विशुद्ध रहता है—

ज्ञानामलाम्भसा स्नातः सर्वदैव मुनिः शुचिः ।
निर्मलः सुविशुद्धश्च विज्ञेयः सूर्यरश्मिवत् ॥

(शिवोपनिषद् ५।४१)

शिवोपासनाके लिये जल, मन्त्र, दया, दान, सत्य, इन्द्रियसंयम, ज्ञान, शौच भावात्मशुद्धिरूप अष्टविध शौचका नित्य ही आलम्बन लेना चाहिये—

जलं मन्त्रं दया दानं सत्यमिन्द्रियसंयमः ।
ज्ञानं भावात्मशुद्धिश्च शौचमष्टविधं श्रुतम् ॥

(शिवोपनिषद् ५।४४)

'शिव' तमोगुणके नियामक हैं। रुद्ररूपसे संहारक होते हुए भी शिवरूपसे अनुग्राहक हैं। ईशावास्योपनिषद्में 'ईश'-रूपसे, केनोपनिषद्में यक्षावतार परब्रह्मरूपसे उनका प्रतिपादन है। रुद्राष्टाध्यायीमें रुद्ररूपसे उनकी उपासना है। भगवत्तत्त्वका निग्रह और संहारप्रधान नाम 'रुद्र' है तथा अनुग्रहप्रधान नाम 'शिव' है। वे काशीमे मरनेवाले जीवोंको 'राम'-मन्त्रका उपदेशकर भवसागरसे तारते हैं। शिवका यह तारकेश्वर-रूप सद्गुरु-रूप है। जो सबके ईश्वर है, वे ही तारक सद्गुरु हो सकते हैं। राम-कृष्णादिरूपसे उन्हींकी अभिव्यक्ति है।

श्रवन घटहुँ पुनि दृग घटहुँ घटउ सकल बल देह। इते घटें घटिहै कहा जौ न घटै हरिनेह ॥
कानोंसे चाहे कम सुनायी पड़े, आँखोंकी रोशनी भी चाहे घट जाय, सारे शरीरका बल भी चाहे क्षीण हो जाय; किंतु यदि श्रीहरिमें प्रेम नहीं घटे तो इनके घटनेसे हमारा क्या घट जायगा ?

शिवोपासनामें रुद्राक्षका महत्त्व

(अनन्तश्री स्वामी श्रीमाधवाश्रमजी महाराज)

वेदमें तीन काण्ड प्रसिद्ध हैं—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। एक लक्ष मन्त्रोंमें अस्सी सहस्र मन्त्र कर्मकाण्डके, सोलह सहस्र मन्त्र उपासनाकाण्डके और चार सहस्र मन्त्र ज्ञानकाण्डके हैं।

उपासनाके सोलह सहस्र मन्त्रोंमें उपासनाकी विधि वेदमें सूत्ररूपसे और कहीं-कहीं विस्तृत रूपसे भी वर्णित है। उन्हीं सूत्रोंकी व्याख्या पुराण एवं दर्शनोंमें विस्तृत रूपसे वर्णित है। इसी संदर्भमें शिवोपासनाका भी वर्णन है। शिवोपासनाका मूल शैव सिद्धान्त (पाशुपतदर्शन) है।

शिवोपासनाकी दार्शनिकता

'दृशिर् प्रेक्षणे' धातुसे दर्शन शब्दकी निष्पत्ति होती है। प्रेक्षण अर्थात् देखना **'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'** पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानके साधनका नाम दर्शन है, उन साधनोंसे उस परमतत्त्वका ज्ञान होनेमें ही दर्शनका तात्पर्य है।

भूतभावन आशुतोष भगवान् शंकरके स्वरूपको जाननेमें पाशुपतदर्शनमें जिन पदार्थोंका वर्णन किया गया है, उनका निरूपण संक्षेपमें इस प्रकार है—(१) कार्य, (२) कारण, (३) योग, (४) विधि और (५) दुःखान्त। इन पाँच पदार्थोंका वर्णन ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्यायके द्वितीय पादके सैंतीसवें सूत्र **'पत्युरसामञ्जस्यात्'** में भी भाष्यकार तथा टीकाकारोंने उल्लेख किया है। दर्शनकारके अनुसार इन्हीं पाँच पदार्थोंका बोधकर जीवके पशुपाशका विमोचन होता है। अर्थात् अज्ञानी जीव पशु है, कर्मादि बन्धन पाश है, ये ही बन्धन जन्म-मरणके हेतु हैं। इस जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त होनेके लिये ही शैव दर्शनका विधान किया गया है। इसी दार्शनिक शैलीमें शिवोपासनाका वर्णन मिलता है।

शिवोपासनामें रुद्राक्ष मुख्य अङ्ग है, इस कारण रुद्राक्षका विशिष्ट महत्त्व बताया गया है।

रुद्राक्षकी उत्पत्ति

'रुद्रस्य अक्षि रुद्राक्षः, अक्ष्युपलक्षितम् अश्रु, तज्जन्यः वृक्षः' अर्थात् शंकरजीके अश्रुओंसे उत्पन्न हुआ वृक्ष रुद्राक्ष वृक्ष हुआ। श्रीमद्देवीभागवतमें इस संदर्भमें एक कथा भी उपलब्ध है—एक बार आशुतोष भगवान् शंकरने देवताओं एवं मनुष्योंके हितकी भावनासे त्रिपुरासुरका वध करना चाहा और एक सहस्र वर्षोंतक तपस्या की तथा अघोरास्त्रका चिन्तन किया, भगवान्‌की आँखोंसे अश्रुबिन्दु गिरे, उन्हीं अश्रुओंसे रुद्राक्षके महान् वृक्षोंकी उत्पत्ति हुई।

रुद्राक्षकी उत्पत्ति गौड़ देशमें हुई, तदनन्तर इन देशोंमें भी रुद्राक्ष उत्पन्न हुआ जैसे मथुरा, अयोध्या, लंका, मलय, सह्याद्रि और काशी।

रुद्राक्षके वर्ण और धारणमें अधिकार

रुद्राक्ष चार वर्णका होता है—श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण। इसी प्रकार वर्ण-भेदसे रुद्राक्ष धारण करनेकी विधि है—ब्राह्मणको श्वेत वर्णका, क्षत्रियको रक्त वर्णका, वैश्यको पीत वर्णका और शूद्रको कृष्ण वर्णका रुद्राक्ष धारण करनेकी विधि है।

सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां
शिवाज्ञया धार्याः सदैव रुद्राक्षाः।

(शिवपु॰, विश्वे॰ २५।४७)

सभी आश्रमों एवं वर्णों तथा स्त्री और शूद्रोंको सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये, यह शिवजीकी आज्ञा है।

रुद्राक्षके मुख और धारण-विधि

शास्त्रोंमें रुद्राक्षके एक मुखसे चौदह मुखतकका वर्णन प्रशस्त है। रुद्राक्ष दो जातिके होते हैं। रुद्राक्ष तथा भद्राक्ष—**'रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षः स्यान्महाफलम्'** (दे॰ भा॰ ११।७।६)। *रुद्राक्षके मध्यमें भद्राक्षका धारण करना भी महान् फलदायक होता है।*

रुद्राक्षमें स्वयं छिद्र होता है—**'स्वयमेव कृतं द्वारं रुद्राक्षंस्यादिहोत्तमम् यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत्।'** (रुद्रा॰ जाबालो॰ १२-१३)। जिस रुद्राक्षमें स्वयं छिद्र होता है, वह उत्तम होता है, पुरुष-प्रयत्नसे किया गया छिद्र मध्यम कोटिका माना गया है।

एकमुखी रुद्राक्षके विशिष्ट महत्त्वका वर्णन इस प्रकार किया गया है—**'एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम्'**

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव तथा परतत्त्व (परब्रह्म)-स्वरूप है और परतत्त्व-प्रकाशक भी है। और 'ब्रह्महत्यां व्यपोहति' (दे० भा० ११।४) ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है, इसको धारण करनेका मन्त्र यह है—

'ॐ ह्रीं नमः।'

'द्विवक्त्रं तु मुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरात्मकम्'

द्विमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अर्धनारीश्वर है, इसको धारण करनेसे शिव-पार्वती प्रसन्न हो जाते हैं। 'ॐ नमः' इस मन्त्रसे द्विमुखी रुद्राक्ष धारण करना चाहिये।

'त्रिमुखं चैव रुद्राक्षमग्नित्रयस्वरूपकम्'

त्रिमुखी रुद्राक्ष तीनों अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) का स्वरूप है। तीन मुखवाले रुद्राक्षको धारण करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। 'ॐ क्लीं नमः' यह त्रिमुखी रुद्राक्ष धारण करनेका मन्त्र है।

'चतुर्मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्त्रस्वरूपकम्।'

चतुर्मुखी रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माजीका स्वरूप है। इस रुद्राक्ष-धारणसे संततिकी प्राप्ति होती है। 'ॐ ह्रीं नमः' यह इसके धारण करनेका मन्त्र है।

'पञ्चवक्त्रं तु रुद्राक्षं पञ्चब्रह्मस्वरूपकम्'

पञ्चमुखी रुद्राक्ष पञ्चदेवों (विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी)-का स्वरूप है। इसके धारण करनेसे नरहत्याके पापसे प्राणी मुक्त हो जाता है। पञ्चमुखीको 'ॐ ह्रीं नमः' इस मन्त्रसे धारण करना चाहिये।

'षड्वक्त्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकेयाधिदैवतम्'

षण्मुखी रुद्राक्ष साक्षात् कार्तिकेय हैं। इसके धारण करनेसे श्री एवं आरोग्यकी प्राप्ति होती है। 'ॐ ह्रीं नमः' इस मन्त्रसे इसे धारण करना चाहिये।

'सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनङ्गो नाम नामतः'

सप्तमुखी रुद्राक्ष अनङ्ग नामवाला है। इसके धारण करनेसे स्वर्णस्तेयी स्वर्णचोरीके पापसे मुक्त हो जाता है।'ॐ हुं नमः' यह धारण करनेका मन्त्र है।

'अष्टवक्त्रो महादेवः साक्षी देवो विनायकः'

अष्टमुखी रुद्राक्ष साक्षात् साक्षी विनायक है और इसके धारण करनेसे पञ्च पातकोंका विनाश होता है। 'ॐ हुं नमः' इस मन्त्रसे धारण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

नववक्त्रं तु रुद्राक्षं नवशक्त्यधिदैवतम्।
तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नव शक्तयः॥

नवमुखी रुद्राक्ष नव दुर्गाका प्रतीक है। उसको 'ॐ ह्रीं हुं नमः' इस मन्त्रसे बायें भुजदण्डपर धारण करनेसे नव शक्तियाँ प्रसन्न हो जाती हैं।

'दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः'

दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् जनार्दन है। 'ॐ ह्रीं नमः' इस मन्त्रसे धारण करनेपर साधककी पूर्णायु होती है और वह शान्ति प्राप्त करता है।

'एकादशमुखं त्वक्षं रुद्रैकादशदैवतम्'

(रुद्राक्षजाबाल०)

एकादशमुखो यस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरि।
स रुद्रो धारणात् तस्य सर्वत्र विजयी भवेत्॥

(शि० पु० वि० सं० २५।७५)

एकादशमुखी रुद्राक्ष 'ॐ ह्रीं हुं नमः' इस मन्त्रसे धारण करना चाहिये। धारक साक्षात् रुद्ररूप होकर सर्वत्र विजयी होता है।

रुद्राक्षं द्वादशमुखं महाविष्णुस्वरूपकम्।
द्वादशादित्यरूपं च बिभर्त्येव हि तत्परम्॥

(रुद्राक्षजाबाल०१४)

द्वादशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् महाविष्णुका स्वरूप है। 'ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः' इस मन्त्रसे धारण करनेसे धारक साक्षात् विष्णुको ही धारण करता है। इसे कानमें धारण करे। इससे अश्वमेधादिका फल प्राप्त होता है।

त्रयोदशमुखं त्वक्षं कामदं सिद्धिदं शुभम्।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति॥

(रुद्राक्षजाबाल०१५)

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष धारण करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्तिपूर्वक कामदेव प्रसन्न हो जाते हैं। 'ॐ ह्रीं नमः' इस मन्त्रसे इसे धारण करना चाहिये।

चतुर्दशमुखं त्वक्षं रुद्रनेत्रसमुद्भवम्।
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वदारोग्यमाप्नुयात्॥

(रुद्राक्षजाबाल० १६)

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष रुद्रकी अक्षिसे उत्पन्न हुआ, वह भगवान्‌का नेत्र-स्वरूप है। 'ॐ नमः' इस मन्त्रसे धारण

करनेपर यह रुद्राक्ष सभी व्याधियोंको हर लेता है।

रुद्राक्ष धारण करनेमें वर्जित पदार्थ

रुद्राक्ष धारण करनेवालेको निम्नलिखित पदार्थोंका वर्जन (त्याग) करना चाहिये—

मद्यं मांसं च लसुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः ॥

(रुद्राक्षजाबाल०१७)

रुद्राक्ष धारण करनेपर मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहजन, लिसोडा और विड्वराह (ग्राम्यसूकर) इन पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये।

रुद्राक्षको मन्त्रपूर्वक ही धारण करे

विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः।
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

विना मन्त्रोच्चारणके रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य घोर नरकमें तबतक रहता है, जबतक चौदह इन्द्रोंका राज्य रहता है।

रुद्राक्षको शुभ मुहूर्तमें धारण करे

ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि वा।
दर्शेषु पूर्णमासे च पूर्णेषु दिवसेषु च।
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैर्विमुच्यते ॥

ग्रहणमें, विषुवसंक्रान्ति (मेषार्क तथा तुलार्क)-के दिन कर्क-संक्रान्ति और मकर-संक्रान्ति, अमावास्या, पूर्णिमा एवं पूर्णा तिथिको रुद्राक्ष धारण करनेसे सद्यः सम्पूर्ण पापोसे निवृत्ति हो जाती है।

शिवतत्त्व-मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपालवैष्णवपीठाधीश्वर १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीसांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

अखण्ड भूमण्डलके ऊपर चतुर्दश भुवनपारङ्गत गोलोक-धाममें विराजमान अखिल ब्रह्माण्डनायक सच्चिदानन्द-विग्रह सर्वशक्तिमान् गुणातीत निर्विकार चराचर-नियन्ता सर्वेश्वर श्रीगोपालदेव अद्वितीय परमतत्त्व हैं। उनकी प्रपञ्चलीलाके निर्वाह करनेके लिये स्वेच्छाशक्ति प्रकृतिके सत्त्व-रज-तम— इन तीनो गुणोंका चोला पहिनकर गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु, महेश-संज्ञासे अवतरित हुए तीन देव प्रसिद्ध हैं। सृष्टिलीलाके निमित्त ब्रह्मा, पालनलीलाके लिये विष्णु और संहारलीलाके लिये वे शिवरूपसे प्रकट हुए हैं। अवतारी पूर्णपुरुषोत्तम परम पुरुषके अंशावतार-कलावतार-आवेशावतार आदि अनेक अवतार हुए हैं।

इस प्रकार एक ही परब्रह्मने क्रीडार्थ ही अपनेको मूर्तित्रयी बनाकर प्रपञ्च-लीला की है। उन्हींके अधीन तीनों देव जगत्का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं। उनकी प्रेरणाके विना कोई भी देव कुछ करनेमें समर्थ ही नहीं हो पाते। यह बात केनोपनिषद्में स्पष्ट वर्णित है। 'शिव' शब्दमें 'इ'कार शक्तिका द्योतक है। शिव और शक्तिका परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है। शिव और शक्तिको अलग करके वैसे ही नहीं देखा जा सकता, जैसे स्वरके विना व्यञ्जनका उच्चारण नहीं होता। आशुतोष शिवकी उपासनासे वैभवकी उपलब्धि होती है। ये सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। भगवान् शिव पूज्यदेव हैं, उनकी अर्चना **'अर्चय शिवम्'** इस शास्त्रीय विधिसे सिद्ध है। शिवजीको अभिषेक अत्यन्त प्रिय है। -**'अभिषेकप्रियः शिवः'**। रुद्रीसे अभिषिक्त शिवजी भक्तोंकी मनःकामना पूर्ण कर देते हैं। जगत्का उपकार करनेके लिये भगवान् शिवने हलाहल विषका पान किया था, इसीलिये देवोंने उन्हे 'महादेव' संज्ञासे विभूषित किया। उनकी पिशाचचर्या संसारसे वैराग्यकी शिक्षाके लिये है। वे हरिके अनन्य भक्त परम वैष्णव हैं। विभूतियोंमें उनकी गणना भी है—**'वैष्णवानां यथा शम्भुः।'** इसी प्रकार हरि भी अनन्य शैव हैं। वैष्णवाग्रणी शिवने हरिचरणामृतरूपा गङ्गाको जटाजूटमें बाँध ली तो वे गङ्गाधर कहलाये। उनके तीन नेत्र हैं। सोम-सूर्य-अग्निरूप तीन नेत्र होनेसे वे त्र्यम्बकेश्वर कहलाते हैं। हरिका ध्यान करनेके लिये कैलास पर्वतके शिखरपर योगमय पीठके ऊपर आसीन होकर

गोपालका नाम स्मरण करते हुए वे ध्यानमग्न रहते हैं। शिवजीने गोपालसहस्रनामका उपदेश पार्वतीजीको दिया था, जिसका पाठ करनेसे बहुत-से भक्त लाभान्वित हुए हैं। शिवजी गोपालके अनन्य भक्त थे, उन्होंने पुत्रैषिणी गौरीको गोपालकी उपासना करनेके लिये प्रेरित किया, तभी उन्हें कृष्णके अंशावतार अग्रपूज्य श्रीगणेश पुत्र-रूपसे प्राप्त हुए। ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणेशखण्डमें यह कथा है।

वे तन्त्रशास्त्रके प्रवर्तक आचार्य एवं योगशास्त्रके प्रणेता भी माने गये हैं। किंच उन्हें सभी विद्याओंका आद्य आचार्य कहा गया है—**'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः ।'**

जिज्ञासुओंके उपास्य भगवान् शिव ज्ञानदाता भी हैं—**'ज्ञानं चेच्छेन्महेश्वरात् ।'** ब्रह्मकपालसे छुटकारा पानेके लिये सर्वत्र तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए जिस आनन्दकानन, अविमुक्त तीर्थ वाराणसी नामसे प्रसिद्ध आदि केशवद्वारा निर्मित काशीपुरीमें आकर वे कपालसे मुक्त हुए थे, वह क्षेत्र कपालमोचन-तीर्थ नामसे विख्यात है। काशी केशवकी प्यारी पुरी थी, इसे हरिने हरको दे दिया और उसमें मरनेवालेको तारक ब्रह्मका उपदेश देनेको कहा। काशीमें वे विश्वनाथ नामसे विराजमान हैं। भोलेनाथ महादेवकी उपासना सर्वाभीष्टफलदायिनी मानी गयी है। उनकी निन्दा करनेवाले मायामूढ हैं। जीवोंके स्वभावानुसार कर्ममें अधिकार होता है। इसीलिये कोई विष्णुकी तो कोई शिव आदि देवोंकी उपासना करके वाञ्छित फल पाता है। इसलिये किसीकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। सभी देव माननीय होते हैं। शास्त्रकी भी आज्ञा है कि हरि एवं हरमें भेद-दृष्टि कभी नहीं करनी चाहिये।

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मना ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥

(श्रीमद्भा० ४।७।५४)

दक्षको समझाते हुए भगवान्‌ने कहा कि हम ब्रह्मा-विष्णु और शिव तीनों स्वरूपतः एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं, अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है। राजन्! मैं ही गुणमयी माया शक्तिके द्वारा त्रिमूर्ति धारण करके विश्वकी सृष्टि तथा पालन एवं संहार करता हूँ। अतः भगवान् शिवको दोष-दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये। उनकी उपासना करके अनेकों महर्षि-राजर्षि-देवर्षि प्रभृति इष्ट-सिद्धिको प्राप्त कर चुके हैं। इसलिये परम कल्याणकी इच्छा करनेवालोंको शिव-पूजन करना अभीष्ट है। उनकी आराधना नर्मदेश्वर-बाणलिङ्ग-पार्थिवपूजा आदि रूपसे शास्त्रोंमें वर्णित है। वैदिक-तान्त्रिक-मिश्रित पूजा विधानद्वारा यथाधिकार शिवोपासना करनी चाहिये। रुद्रीद्वारा अभिषेक करनेसे रोग-निवृत्ति, ग्रहपीडा-शान्ति, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति आदि फल-श्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। पञ्चायतन-पूजामें भी भगवान् शिवका विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट है। बिल्वपत्र उन्हें अत्यन्त प्रिय है। प्रिय वस्तु निवेदन करनेसे आशुतोष प्रसन्न हो जाते हैं। द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग प्रसिद्ध ही हैं। उनका दर्शन-स्पर्श-पूजन-वन्दन-सेवन करनेसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं। भगवान् श्रीरामने रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापनाकर भगवान् शिवकी आराधना की है। परमोपकारी सदाशिवजीको न भजना कृतघ्नता है। अतः वैष्णव हों या अन्य मतावलम्बी, वे सभीके द्वारा पूजनीय हैं। उनकी पूजा पञ्चाक्षर शिवमन्त्र 'नमः शिवाय' आदि सभीके लिये उपादेय है। किं बहुना, उनकी महिमा अपार है, उन्हें शतशः नमन है।

शिवजीके पूर्वज

(विवाहके समय प्रश्नोत्तर)

प्र०—तुम्हारे पिता कौन हैं?

उ०—ब्रह्मा।

प्र०—बाबा कौन हैं?

उ०—विष्णु।

प्र०—परबाबा कौन हैं?

उ०—सो तो सबके हम ही हैं।

नाथयोग-परम्परा और योगराज शिव

(गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

हमारे नाथयोगका मूल आधार शिवोपदिष्ट महायोगज्ञान है और आद्यन्त इसी परम्पराको हमारे आदिगुरु महायोगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ, शिवगोरक्षमहायोगी गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, योगिराज भर्तृहरि, गोपीचंद, चौरंगीनाथ, चर्पटीनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, गहिनीनाथ, रतननाथ, लक्ष्मणनाथ बालगुदाई, सिद्धपुरुष गम्भीरनाथ और परमपूज्य गुरुदेव महन्त दिग्विजयनाथजी महाराज आदिने स्वसंवेद्य परमात्मबोध अलखनिरंजनके साक्षात्कारके धरातलपर अपनी शिवमयी योगविभूतिसे प्राणान्वित कर लोककल्याण और आत्महितकी सिद्धि की। हमारे समस्त नाथसिद्ध अवधूत और योगियोंके जीवनचरित भगवान् आदिनाथ परमयोगेश्वर शिवकी कृपासे सम्प्लावित और संस्कारित है। भगवान् शिवने आद्याशक्ति जगदीश्वरी पार्वती—गौरीको जगत्‌के हितसाधनके निमित्त स्वीकारकर महायोगज्ञानका उपदेशामृत प्रदान किया। निःसंदेह शिव योगराज हैं। आद्याशक्तिने इसी 'योगराज' विशेषणसे उनका स्तवन किया—

नमस्ते योगराजाय सर्वज्ञाय नमो नमः।

(योगबीज—१९०)

भगवान् शिवने करुणापूर्वक शिव-विद्या-महायोग-विद्याका, जो गुप्तप्राय कही गयी है, भगवती पार्वतीको उपदेश देकर जनसाधारणके लिये योगसाधनाका सहज विषय बना दिया। शिवने क्षीरसागरमें सौम्यशृंगपर उपदेश देनेके पहले पराम्बा जगदीश्वरीसे कहा था—

शिवविद्या महाविद्या गुप्ता चाग्रे महेश्वरि।

(शिवसंहिता ५। २४८)

योगराजेश्वर भगवान् शिवने स्वसंवेद्य परम प्रतिपाद्य अलखनिरंजनस्वरूप द्वैताद्वैतविवर्जित नाथयोगमें स्वीकृत परमात्मतत्त्वका स्वरूप विवेचित कर इस बातको स्पष्ट कर दिया कि परब्रह्म परमतत्त्व शिवके स्वरूप-विवेचनका प्राणाधार द्वैताद्वैत-विलक्षण माहेश्वर योगज्ञानमें अभिव्यक्त श्रीनाथतत्त्व ही है।

एकं ज्ञानं नित्यमाद्यन्तशून्यं
नान्यत् किंचिद् वर्तते वस्तु सत्यम्।
यद्भेदोऽस्मिन्निन्द्रियोपाधिना वै
ज्ञानस्यायं भास्यते नान्यथैव॥

(शिवसंहिता १। १)

द्वैताद्वैतविवर्जित परमतत्त्व ही—एकमात्र स्वसंवेद्य परमज्ञान ही सर्वोपरि नित्य सनातन है, जिसका न आदि है न अन्त। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सत्य वस्तु नहीं है। इन्द्रियोंकी उपाधिके द्वारा जो कुछ भी भेद प्रतीत होता है—पृथक्-पृथक् दीख पड़ता है, वह परमतत्त्व ज्ञान ही भासित होता है, अन्य कुछ भी नहीं। वह द्वैताद्वैतविलक्षण परमतत्त्व ही महायोगज्ञानसे सम्बन्धित परमाद्वय शिवस्वरूपका, स्वसंवेद्य अलखनिरंजनका पर्याय है। इस परमाद्वैत-शिव-स्वरूपकी महाप्रकाशिका आद्या शक्ति शिवकी सिसृक्षा शक्ति ही है। महायोगी गोरखनाथजीने महायोगज्ञानके प्रकाशमें इस विलक्षण सर्वोपरि परमतत्त्व-परमेश्वर-परात्पर शिवस्वरूपका प्रकाशन किया है।

अतएव परमकारणं परमेश्वरः परात्परः शिवः स्वस्वरूपतया सर्वतोमुखः सर्वाकारतया स्फुरितुं शक्नोतीत्यतः शक्तिमान् शिवोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किंचन। स्वशक्त्या सहितः सोऽपि सर्वस्याभासको भवेत्।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति ४। १३)

आदिनाथ शिव सूक्ष्म, स्थूल समस्त भौतिक पदार्थोंके परम कारण परमेश्वर हैं। वे अपने स्वरूपमें परात्पर हैं, चैतन्यस्वरूप सबमें व्यापक हैं। शक्तियुक्त होनेपर ही शिव सर्वसमर्थ है। वे शक्तिरहित होनेपर कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं होते। निजशक्तिसे युक्त होनेपर ही वे विश्वके साक्षी हैं। उनकी स्वस्वरूपबोधात्मक विज्ञप्ति है।

शिवशक्तिसमायोगाज्जायते परमा स्थितिः।

(योगबीज०-१२९)

शक्ति और शक्तिमान्‌में नाममात्रका भी अन्तर अथवा पार्थक्य नहीं है। वे दो हैं ही नहीं, स्तर अथवा तात्त्विक प्रक्रियासे दो भले ही भासित हैं, पर वे एक हैं, एक ही सत्ता हैं। कहा गया है—

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेराभ्यन्तरः शिवः।

अन्तरं नैव जानीयाच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥

सम्पूर्ण सामरस्यके धरातलपर शक्ति और शक्तिमान् दोनों एक-दूसरेसे अभिन्न हैं। कूटस्थ असंग-शिव सर्वत्र व्यापक हैं। शिवको धारण करनेवाली शक्ति स्वभावतः व्यापक है, शिवमें शक्ति है, शक्तिमें शिव हैं। जिस तरह चन्द्रमा और चाँदनीमें स्वरूपतः भेद—भिन्नता किंवा द्वैत नहीं है, उसी तरह शिव और शक्तिमें भेद नहीं है। दोनोंमें कूटस्थता और असंगताकी दृष्टिसे व्यवहारमें भेद परिलक्षित होता है और पारमार्थिक सत्तामें वे स्वरूपतः अखण्ड, अभेद—अद्वय हैं। शिव-शक्ति एक हैं (सिद्धसिद्धान्तपद्धति ४।२६)। अतएव अलखनिरंजन परमेश्वर, अद्वय परमेश्वर, द्वैताद्वैतविलक्षण महेश्वरकी अभिन्न शिवमयी शक्ति-स्वरूपताके सामरस्य-स्वरूपायित अद्वयत्वका निर्वचन इस प्रकार करनेमें शक्ति और शक्तिमान्में अखण्ड एकरूपता सहज स्थापित हो जाती है कि अखण्ड शुद्ध चैतन्य सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म-स्वसंवेद्य अलखनिरंजन परमशिव सर्वत्र विद्यमान हैं। यह चेतन ही समस्त विश्वप्रपञ्चका आधार है। प्रकृति, माया आदि तत्त्वोंपर महिमासहित शक्ति सर्वत्र प्रकाशित हो रही है। समस्त मानसिक व्यापारोंमें इसी शक्तिकी सत्ता अभिव्यक्त है। आशय यह है कि सभी पदार्थोंकी समस्त व्यवस्थाओंके अङ्गों और गुणोंको एकत्र करनेवाला तथा सभी प्रकारकी सत्ताओंकी व्यवस्थाओंमें संवित् ही प्रकाशमान है। वही समस्त व्यावहारिक सत्ताओंके सीमित परिवर्तनशील तथा अनेक वस्तु-रूपोंमें स्वयंको प्रकट कर रहा है। सभी प्रकारके मानसिक अनुभवोंमें स्वयंको अनेक आत्म (गत) रूपोंमें प्रकटकर कौशलसे वह संवित् ही अनेक सीमित विशेषताएँ धारण कर लेता है। इस तरह परासंवित्-स्वरूप शिवशक्तिके सामरस्यका स्पष्ट निर्णीत रूप यह है कि व्यष्टि-समष्टि भूत भौतिक समस्त पदार्थोंका अनुभवरूप सच्चिदानन्दस्वरूप चेतन ब्रह्म परम शिव परमेश्वर ही निजा, परा, सूक्ष्मा शक्ति-रूपोंके द्वारों, समस्त पिण्डों, सचराचरका परमाधार है। शिवशक्तिका यही सहज सामरस्य-अभिप्रेत शिवशक्तिस्वरूप सम्पूर्ण नाथका स्तवन है—

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथायते नमः॥

(गोरक्षसिद्धान्त संग्रह—१)

जिनकी बायीं ओर निर्गुण-स्वरूप (ब्रह्म) और दाहिनी ओर अद्भुत निजाशक्ति-इच्छाशक्ति (परमेश्वरी पराम्बा महामाया) विराजमान हैं और बीचमें जो स्वयं पूर्ण अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार द्वन्द्वातीत (अलखनिरंजन द्वैताद्वैत-विवर्जित स्वरूप) विद्यमान हैं, उन श्रीनाथ (आदिब्रह्म, आदिनाथ परमेश्वर) को नमस्कार है। हठयोगप्रदीपिकाके रचयिताने नादबिन्दुकलात्मा शिवस्वरूप गुरुको नमस्कार किया है कि उनकी उपासनासे योगी निरंजन-पद प्राप्त करता है।

नमः शिवाय गुरवे नादबिन्दुकलात्मने।
निरंजनपदं याति नित्यं यत्र परायणः॥

(हठयोगप्रदीपिका ४।१)

अखण्ड ज्ञानस्वरूप निरंजन ही सर्वभावपदातीत हैं। यह द्वैताद्वैतविवर्जित शिवस्वरूप परमात्मतत्त्व ही नाथयोगका प्राणामृत है।

दानी कहुँ संकर-सम नाहीं।
दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥
मारिकै मार थप्यौ जगमें, जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुरकौ रीझि निवाजिबौ कह्यौ क्यों परत मो पाहीं॥
जोग कोटि करि जो गति हरिसों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेद-बिदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं॥
ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं॥

(विनयपत्रिका ४)

नाट्यके आद्य प्रवर्तक नटराज शंकर

(पद्मभूषण आचार्य पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

भारतके आध्यात्मिक जगत्‌मे भगवान् शंकरकी जो अलौकिक महिमा सर्वत्र व्याप्त है, उसके विषयमें विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। वह तो सर्वविदित है। परंतु साहित्यिक संसारमें भी उनका उससे भी बढ़कर प्रभाव परिलक्षित होता है। इस तथ्यसे बहुतसे आलोचकोका परिचय नहीं होगा। इस विषयका कुछ परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

भगवान् शंकर नाट्यके आद्य प्रवर्तक हैं और इस प्रवर्तनाके अवसरपर वे नटराजके नामसे अभिहित किये जाते हैं। भरतके नाट्यशास्त्रमे इस विषयका बडा ही रोचक वर्णन उपलब्ध होता है। भरतके अनुसार कृतयुगमे नाटकका आरम्भ परिलक्षित नहीं होता। इसका आरम्भ त्रेतायुगमे दृष्टिगोचर होता है। त्रेतायुगमें विश्वमें विशेष परिवर्तन हुआ। लोगोमें काम, लोभ, ईर्ष्या, क्रोध आदि भावोका विशेष अस्तित्व आ गया। ग्राम्यधर्मकी अधिक प्रवृत्ति हुई। उस युगमें मनोरञ्जनका सर्वथा अभाव था। देवताओंको यह बात खलने लगी। इस त्रुटिको दूर करनेके लिये महेन्द्र आदि प्रमुख देव पितामहके पास गये और उनसे अपनी प्रार्थना कह सुनायी कि 'भगवन्! हमलोग क्रीडनक चाहते हैं जो दृश्य तथा श्रव्य दोनों हो[1]। आपके द्वारा प्रचारित वेदका व्यवहार शूद्र जातियोके श्रवणयोग्य नहीं। वेदशास्त्रके उपदेशके वे पात्र नहीं हैं। वे तो सरस तथा सुकुमार नयके द्वारा अपने कर्तव्यके निरूपणसे ही लाभ उठा सकते हैं, इसलिये हमारा आग्रह है आप सार्ववर्णिक वेदकी रचना करें। ऋग्वेदादि तो त्रैवर्णिक हैं— ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अर्थात् द्विजोके लिये ही वे उपयुक्त है। अतः आप सार्ववर्णिक पञ्चम वेदकी रचना करनेकी कृपा करे। ब्रह्माने देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार की और चारो वेदोसे एक-एक तत्त्वका संग्रह कर उन्होने चार तत्त्वोंसे सम्पन्न 'नाट्य-वेद'का निर्माण किया—

> जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
> यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
>
> (नाट्यशास्त्र १।१७)

'ब्रह्माने ऋग्वेदसे पाठ्य, सामवेदसे गीत, यजुर्वेदसे अभिनय तथा अथर्ववेदसे रसोंको ग्रहण किया और इन चारों तत्त्वोंसे सम्पन्न नाट्यवेदकी रचना की।'

शास्त्रकी रचनाके अनन्तर तन्निर्दिष्ट अभिनयके प्रदर्शनके लिये ब्रह्माने भरतमुनिको आदेश दिया। तदनुसार इन्होंने अपने पुत्रों तथा अप्सराओंके सहयोगसे दो नाटकोंका मञ्चन किया, जिसमें प्रथम था अमृत-मन्थन समवकार और दूसरा था त्रिपुर-दाह डिम। पूर्वरङ्गके विधिवत् पूजा तथा अर्चनाके अनन्तर समुचित अवसरपर इन दोनोंका अभिनय किया गया। इस अभिनयके द्रष्टाके रूपमें भगवान् शंकर स्वयं उपस्थित थे तथा साथमें उनके भूतगण भी थे। भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने नाट्यकी सम्यक् सृष्टिसे आह्लादित होकर पितामहसे कहा कि नाटकका प्रयोग तो यथार्थ ही हुआ, परंतु इसमें रोचकता कम है, क्योंकि इसमें नृत्यका कथमपि संनिवेश नहीं किया गया है। इस अभावकी पूर्तिका उपाय भगवान् शंकरने बताया—

> मयापीदं स्मृतं नृत्यं संध्याकालेषु नृत्यता।
> नानाकरणसंयुक्तैरङ्गहारैर्विभूषितम्।
> पूर्वरङ्गविधावस्मिन् त्वया सम्यक् प्रयोज्यताम्॥
>
> (नाट्यशास्त्र ४।१३)

संध्याकालमें नृत्य करते समय मैंने ही नाना करणोंसे संयुक्त अङ्गहारोंसे विभूषित नृत्य किया है। उसका संयोग पूर्वरङ्गमें करो, जिससे यह शुद्ध पूर्वरङ्ग इन नृत्यादि उपकरणोंसे समन्वित होनेपर 'चित्र' शब्दके द्वारा व्यवहृत किया जाय—

> यश्चायं पूर्वरङ्गस्तु त्वया शुद्धः प्रयोजितः।
> एतद्विमिश्रितश्चायं चित्रो नाम भविष्यति॥
>
> (भरतनाट्यशास्त्र ४।१५)

अभिनवगुप्तने अभिनवभारतीमें उक्त श्लोककी व्याख्यामें यही लिखा है कि प्रथमतः अभिनयमें रञ्जकता अर्थात् दर्शकोंको आकर्षित करनेकी योग्यता किञ्चिन्मात्र थी,

---

१-महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः। क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्॥ (नाट्यशास्त्र १।११)

परंतु नृत्तसे मिश्रित होनेपर यह अभिनय अतिशय रञ्जकतासे सम्पन्न हो जायगा।

प्रदोषमें शिवनृत्य—यहाँ ध्यातव्य है कि भगवान् शंकर प्रदोष-कालमें डमरू बजाते हुए आनन्दातिरेकसे मग्न होकर जगत्को आह्लादित करनेके लिये नृत्य करते हैं। उनके नृत्यका यही समुचित काल बताया गया है। महाकवि कालिदासने भी मेघदूतमें इसी कालका निर्देश किया है—

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन् संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयां
आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम्॥

(मेघदूत, पूर्वमेघ श्लोक ३८)

उज्जयिनीके महाकालके मन्दिरकी घटना है। यक्ष मेघसे कह रहे हैं—'हे मेघ! यदि तुम महाकालके मन्दिरमें साँझ होनेसे पहिले पहुँच जावो तो वहाँ तबतक ठहर जाना, जबतक सूर्य भलीभाँति आँखोंसे ओझल न हो जायँ और जब महादेवकी साँझकी सुहावनी आरती होने लगे, तब तुम भी अपने गर्जनका नगाड़ा बजाने लगना, जिससे गम्भीर गर्जनका पूरा-पूरा फल मिल जायगा। इसी अवसरपर कविका उल्लेख है—

'नृत्तारम्भे हरपशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छाम्।'

जिससे उस समय भगवान् शंकरके नृतारम्भकी सूचना मिलती है।

नाट्यका महत्त्व—कालिदासने भी भरतमुनिके द्वारा बहुशः वर्णित नाट्यके महत्त्वका अपने इस कथनसे पूरा समर्थन किया है—

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्॥

(मालविकाग्निमित्रम् १।४)

तात्पर्य, मुनिलोगोंका कहना है कि यह नाट्य तो देवताओंकी आँखोंको सुहावनेवाला यज्ञ है। पार्वतीके साथ विवाहके अनन्तर शिवने अपने शरीरमें इसके दो भाग कर दिये हैं, एक है ताण्डव और दूसरा है लास्य। ताण्डव तो शंकरका नृत्य है—उद्धत तथा आकर्षक। लास्य पार्वतीका नृत्य है—सुकुमार तथा मनोहर। संसारके तीनों गुणोंसे उत्पन्न नानारसचरित यहाँ दिखलायी पड़ते हैं। तथ्य तो यह है कि अलग-अलग रुचिवाले लोगोंके लिये नाटक ही ऐसा उत्सव है, जिसमें सबको एक समान आनन्द मिलता है।

नाट्यके अलौकिक सरसता, सार्वभौम आकर्षण तथा सार्वत्रिक मनोरञ्जनका प्रधान कारण नटराज शंकरके द्वारा प्रदर्शित नृत्योंका संनिवेश ही है। शुद्ध अभिनयको चित्र अभिनयमें परिवर्तित करनेका श्रेय उन्हींको प्राप्त है। नाट्यशास्त्रमें नृत्तके सम्पादनकी क्रिया अङ्गहारोंके द्वारा होती है। अङ्गहारका प्रधान सहायक होता है 'करण'। इस शब्दकी व्याख्यामें भरतमुनिका लक्षण-निर्देश इस प्रकार है—

हस्तपादसमायोगो नृत्यस्य करणं मतम्।

(तत्रैव ४।३०)

साधारणतया हाथ तथा पैरके सम्यक् योग होनेसे करणकी निष्पत्ति होती है। अभिनवभारतीके अनुसार हस्त-पादका यहाँ प्रयोग विस्तृत अर्थमें किया गया है। हस्तका अर्थ केवल हाथ न होकर शरीरका ऊपरी भाग है तथा पादका तात्पर्य शरीरका अपरकायसे है जिसके अन्तर्गत पार्श्व (पसली) कटि, ऊरू, जंघा तथा चरण आदिका समावेश किया जाता है। इन दोनोंकी जो संयुक्त क्रिया होगी, उसीका पारिभाषिक नामकरण है—

पूर्वक्षेत्रसंयोगत्यागेन समुचितक्षेत्रान्तरप्राप्तिपर्यन्ततया एका क्रिया तत् करणमित्यर्थः। हस्तोपलक्षितस्य पूर्वकायवर्तिशाखाङ्गोपाङ्गादेः पादोपलक्षितस्य चापरकायगतपार्श्वकट्यूरूजङ्घाचरणादेः सङ्गततया त्रुटितत्त्वेनावृत्तियोजने पूर्वक्षेत्रसंयोगत्यागेन समुचितक्षेत्रान्तरप्राप्तिपर्यन्ततया एका क्रिया तत् करणमित्यर्थः उत्तरसंयोगान्तं सर्वत्र कर्म।

(नाट्यशास्त्र ४।३० की अभिनवभारती)

ये करण एक सौ आठ प्रकारके होते हैं, जिसमें पहिलेका नाम 'तलपुष्पपुट' है तथा अन्तिमका नाम गङ्गावतरण है।

मूलतः ये समग्र करण कोपरुंजीदेव नामक दक्षिण भारतके शासकद्वारा (१२४३ ई० १२७२ ई०) चिदम्बरम् नामक प्रख्यात स्थानमें नटराजके गोपुरोंमें पत्थर काटकर तैयार

किये गये थे और प्रत्येक करणका नाम-निर्देश नाट्यशास्त्रके श्लोकोंके साथ किया गया था, जिसमेंसे केवल ९३ ही 'करण' आज उपलब्ध हैं और शेष १५ करण नष्ट हो गये है। श्लोकोंसे सम्पन्न होनेके कारण इनकी पहिचान भलीभाँति की गयी है।

इन्हीं करणोंसे संवलित होनेवाले अङ्गविक्षेप संख्यामें ३२ होते हैं, जिनके नाम और लक्षण नाट्यशास्त्रमें दिये गये हैं। प्रथम अङ्गहारका नाम स्थिरहस्त है तथा अन्तिमका नाम अर्धनिकुट्टक। इन्हींके संगमें चार रेचक भी होते हैं। 'रेचक' शब्दका अर्थ होता है 'वलन'—चलाना, हिलाना या गति देना। चार विशिष्ट अङ्गोंके चलानेके कारण चार रेचक होते हैं—(१) पादरेचक, (२) कटिरेचक (३) कररेचक तथा (४) कण्ठरेचक।

इन समग्र अङ्गहारों तथा रेचकोंसे संयुक्त लय और तालके वशमें भगवान् शंकरने दक्ष-यज्ञके नष्ट किये जानेपर डिंडिम, गोमुख, पणव आदि विविध वाद्योंके संगमें संध्याकालमें जो नृत्य किया उसे ही 'ताण्डव' कहते हैं। महादेवकी आज्ञासे उन्हींके प्रधान गण 'तण्डु' ने इन नृत्योंको अभिनयके प्रयोगके निमित्त भरतमुनिको दिया था। तण्डुसे सम्बन्ध रखनेके कारण इनका नाम 'ताण्डव' पडा। अभिनवगुप्तने अपनी टीकामें 'तण्डु' शम्भुके प्रख्यात गण 'नन्दी'का ही नामान्तर बतलाया है। महादेवके आदेशसे भरतने इनका समुचित प्रयोग अभिनयके संग कर उसे चमत्कृत, आकर्षक, मनोरञ्जक बनाया। इन्हीं नृत्योंके कर्ता होनेके कारण शंकर 'नटराज'के प्रख्यात अभिधानसे अभिहित किये जाते हैं और नाट्यके आद्य प्रवर्तक होनेके गौरवसे मण्डित माने जाते हैं—

आङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम्।
आहार्यं चन्द्रतारादि तं नुमः सात्त्विकं शिवम्॥

(अभिनयदर्पण)

आद्य नर्तक तथा अभिनयकर्ताके रूपमें नटराजका बड़ा ही अभिराम वर्णन संस्कृत ग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है—

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवनेः रक्षतः स्वैरपातैः
संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्वलोकातिगानाम्।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रां ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते-
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्यम्॥

(मुद्राराक्षस १।२)

'भगवान् शंकर पूरे हर्षमें आकर पृथिवीपर अपना पैर पटकें, तो पृथिवीके धँस जानेकी आशङ्का उत्पन्न हो जाती है। अतः वे पृथिवीकी इस अवनतिसे रक्षा करते हुए नाचते हैं। समस्त लोकोंमे फैलनेवाली अपनी भुजाओंको संकुचित करते हुए अभिनय करते हैं, जिससे वे लोक भुजाओंके आघातसे छिन्न-भिन्न न हो जायँ। शिवजीके तृतीय नेत्रसे अग्निके कण निकलते हैं अतः लोकोंके जल जानेके भयसे वे अपनी दृष्टिको बंद करके ही नाचते हैं। इस प्रकार आधारको किसी प्रकार आघात न पहुँचे इसलिये वे स्वच्छन्द-रूपसे नाचनेका व्यापार नहीं करते। त्रिपुरके विजयकर्ता भगवान् शंकरका दुःखसे सम्पादित नृत्य आपलोगोंकी रक्षा करे।'

इस प्रकार शिवका ताण्डव जगत्के मङ्गलके लिये प्रवृत्त होता है। नटराजका नर्तन जगत्की सृष्टिके लिये होता है, संहारके लिये नहीं। नटराजकी यही कल्पना पुराणों तथा काव्य-ग्रन्थोंमें बहुशः वर्णित है। नटराज भगवान् शंकर नृत्त तथा नाट्यके आद्य प्रवर्तक माने जाते हैं। साहित्य-जगत्को नटराजकी यह देन सर्वथा स्मरणीय तथा अभिनन्दनीय बनी रहेगी।

राजनीतिज्ञ शंकर

मूसेपर साँप राखै, साँपपर मोर राखै, बैलपर सिंह राखै, वाके कहा भीति है।
पूतनिको भूत राखै, भूतको बिभूति राखै, छमुखकों गजमुख यहै बडी नीति है॥
कामपर बाम राखै, बिषकों पियूष राखै, आगपर पानी राखै सोई जग जीति है।
'देवीदास' देखौ ज्ञानी संकरकी सावधानी, सब बिधि लायक पै राखै राजनीति है॥

शिव-योग

(पं॰ श्रीगंगाधरजी शर्मा)

मनुष्यके कल्याणके लिये योग एक मुख्य साधन है। तभी तो हमारे प्राचीन ऋषि-मुनिजन बड़े आदरसे योगशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करते थे। इससे उन्हें कैवल्य-सुखकी प्राप्ति होती थी। विषादका विषय है कि आजकल विकासके नामपर इस शास्त्रका ह्रास ही हो रहा है। भगवान्की प्रेरणासे ही इस शास्त्रका उद्धार हो सकता है। अस्तु! योगके सम्बन्धमें श्रीशिवजी कहते हैं—

मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थाप्य चेतसः।
वृत्त्यन्तरनिरोधो यः स योग इति गीयते॥

अर्थात् 'मेरे बतलाये हुए मार्गके अनुसार मुझमें मन लगाकर दूसरी वृत्तियोंका निरोध करना ही योग है।' यद्यपि मायावृत संसारमें इस योगका साधन साधारण बात नहीं है तथापि जैसे एक धान कूटनेवाली स्त्री एक हाथसे ढेंकी चलाती जाती है, दूसरेसे उछलते हुए धानोंको समेटकर ऊखलमें डालती रहती है, बीच-बीचमें उसीसे बच्चेको स्तनपान भी करा लेती है और साथ ही ग्राहकोंके साथ धानका मोल-तोल भी करती जाती है, परंतु यह सब होनेपर भी ऊखलमें पड़कर कहीं हाथमें चोट न आ जाय, इसके लिये पूर्ण सतर्कताके साथ मनको उसी जगह स्थिर रखती है, वैसे ही चंचल स्वभाववाले इस मनको बाहरके कामोंसे निवृत्त करके दहराकाशके पर-शिवमें स्थिर करना ही योग है। यह योग मन्त्र, लय, हठ, राज, शिव—पाँच प्रकारका है। इस मोक्षदायी योगशास्त्रका बोध शिवजीने सर्वप्रथम अपने अट्ठाईस शिष्योंको कराया, पीछे इन शिष्योंने भी अपने चार-चार शिष्योंको इसका उपदेश किया। इस विषयका शिवागम, स्कन्दपुराण और लिङ्गपुराणमें सविस्तर वर्णन है।

श्वेतस्तु तारो मदनः सुहोत्रः कङ्क एव च।
लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च॥
दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च।
सुबालको गौतमश्च तथा वेदशिरो मुनिः॥
गोकर्णश्च गुहावासी शिखण्डी चापरः स्मृतः।
जटामाली चाट्टहासो दारुको लाङ्गली तथा॥
महाकालश्च शूली च दण्डी मुण्डी तथैव च।
सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीश्वर एव च॥
अष्टाविंशतिसंख्याका योगाचार्या युगक्रमात्॥

इसी प्रकार शिवमहापुराणकी वायवीय संहितामें भी श्रीव्यासजीने अट्ठाईस योगके आचार्योंको और एक सौ बारह उपाचार्योंको इस योगशास्त्रकी शिक्षा देनेकी बात कही है। महर्षि पतञ्जलिने इन आगमोंके सारसे योगसूत्रोंकी रचना करके मुमुक्षुजनोंका बड़ा उपकार किया है। योगाभ्याससे शिवैक्यको चाहनेवाले साधकको चाहिये कि गुरुमुखसे शिव-दीक्षाद्वारा उपदिष्ट होकर प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें शिव-ध्यानपूर्वक उठकर शौच, आचमन, दन्तधावनादिसे निवृत्त होकर जलस्नान और भस्मस्नानसे शुद्ध हो जाय और फिर एकान्तमें दर्भ, वस्त्र या कम्बलके आसनपर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। संकल्पके उपरान्त प्राणायामको तीन बार करके गुरूपदिष्ट महामन्त्रके अनुसार ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्तियोंको सिरसे लेकर पैरतकके उन-उन स्थलोंमें स्थापना करके अपने आश्रमोचित अङ्गन्यास करन्यासादि षडङ्गन्यासोंको करके कल्पोक्त-विधानसे मन्त्र-पुरश्चरणपूर्वक रुद्राक्षमाला या हाथकी अङ्गुलियोंसे ध्यानसहित जप करे। यही मन्त्रयोग है। इसको पर-शिवने अपने मतके वीर, नन्दि, भृङ्गी, वृषभ, स्कन्द नामक पाँच गोत्र-पुरुषोंके लिये मूलपञ्चाक्षरी, मायापञ्चाक्षरी, शक्तिपञ्चाक्षरी, स्थूलपञ्चाक्षरी, प्रसादपञ्चाक्षरी—इस प्रकार पाँच भागोंमें विभक्त किया है। इस मतके संस्थापक पाँच आचार्य अपने-अपने शिष्योंको यथागोत्र बीजाक्षरोंके व्यत्याससे उपदेश देकर शिवयोगसम्पन्न बना देते हैं।

लययोगका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

यस्य चित्तं निजध्येये मनसा मरुता सह।
लीनं भवति देवेश लययोगी स एव हि॥

इस सदाशिव ब्रह्मयोगीके कथनानुसार परिशुद्ध चैतन्यसहित होकर अपने ध्येयमें या वैकृत प्राणायामसे प्रकट हुए नादमें मन और प्राणोंके साथ लय हो जाना ही लययोग है। और यही योगी यदि यम-नियमादि अष्टाङ्गपूर्वक—

महामुद्रा महाबन्धो महावेदश्च खेचरी।
उड्डियाणं मूलबन्धस्ततो जालंधराभिधः॥
करणी विपरीता सा वज्रोली शक्तिचालनम्॥

—उपर्युक्त वाक्योंके अनुसार मुद्राबन्धोंके अनुसंधानसे और षट्कर्मोंके आचरणसे केवल कुम्भकमें वायुको रोककर शिवका ध्यान करता है तो हठयोगी कहलाता है, इस हठयोगमें पारंगत होनेपर बाह्य, मध्य और आन्तर्य नामक तीन लक्ष्योंमें षडध्वातीत और षडध्वोपादानकारण जो ब्रह्म है, उसका साक्षात् करनेके बाद बाह्य प्रपञ्च-व्यापारसे डरकर सब विषयोंको त्याग केवल समाधिनिष्ठ हो जाना ही राजयोग है। ये चारों योग अधिकारी-भेदसे 'मृदु, मध्य, अतिमात्र, अतिमात्रतर' इस प्रकारसे चार प्रकारके हैं। जो बलहीन, संसारी, पराधीन, अल्पज्ञ, रोगशील, भोगासक्त और बाह्य-कार्याकुल होकर भी योगाभ्यास करे, वह मृदु-योगी है। यह मन्त्रयोगासक्त है। जो सुख-दुःखोंके भागी, सज्जनसंगी, सर्वेन्द्रियोंके उद्रेकसे शून्य, शुद्धान्तःकरणवाला योगाभ्यासका प्रेमी होगा वह मध्य-योगी है। यह लययोगासक्त है। जो शम-दमादि सद्गुणोंसे युक्त, धैर्य-सत्त्व-शौचादिनिष्ठ, निश्चल और निष्काम योगानुरागी हो वह अतिमात्र-योगी है। वह हठयोगका अधिकारी है और जो सकल शास्त्रोंका ज्ञाता, सर्वभोगत्यागी, सर्वबाह्य-व्यापारशून्य, विकाररहित होकर योगाभ्यास करे वह अतिमात्रतर-योगी है। वह राजयोगका अधिकारी है। मुक्तिदायक और उत्तमोत्तम राजयोग अधिकारी-भेदसे सांख्य, तारक, अमनस्क नामसे तीन प्रकारका है। पृथिवीसे लेकर प्रकृतितक जो पचीस तत्त्व हैं, इनके ज्ञानसे होनेवाला योग सांख्ययोग है। समाधिस्थ होकर मन, दृष्टि और प्राणोंको बहिर्मुख न होने देते हुए मुद्राबन्धन करना तारक-योग है। मनको प्रकृतिमें लीन-सा करके अन्तर्मुद्रा-ज्ञानसे युक्त होना अमनस्क-योग है। ये तीन योग सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य नामक त्रिविध मुक्तिके साधन हैं।

राजत्वात् सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः।

—इस वचनके अनुसार राजयोग ही सब योगोंमें श्रेष्ठ है। इस योगको ही कुछ लोग 'शिवयोग' कहते हैं, परंतु शिवसिद्धान्त तो इसे शिवयोगका प्रवेशद्वार मानता है। श्रीशिवयोगिपुङ्गव चन्नसदाशिवजीके—

प्रतिपाद्यस्तयोर्भेदस्तथा शिवरतात्मनाम्।
तस्मान्मनीषिग्राह्योऽयं शिवयोगोऽस्तु केवलः॥

—इस वचनके अनुसार वह योग शिवयोग नहीं हो सकता जो पातञ्जलादि शास्त्रोंमें वर्णित है। अर्थात् गुणत्रय-साक्षात्कार ही 'तारकत्रय' है, प्रकृतिमें मनका लय ही 'अमनस्क' है, पुरुषका साक्षात्कार ही 'राजयोग' है—

तदात्मवत्त्वं योगित्वं जिताक्षः सोपपद्यते।

—इस श्रुतिके अनुसार जितेन्द्रिय साधकका पर-शिव ब्रह्ममें आत्माको बाँधना ही 'शिवयोग' हो सकता है। यह शिवयोग—

ज्ञानं शिवमयं भक्तिः शैवी ध्यानं शिवात्मकम्।
शैवव्रतं शिवार्चेति शिवयोगो हि पञ्चधा॥

—के अनुसार पाँच प्रकारका है। इनमें 'शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान, शिवव्रत' नामक ये चार भेद शिव-पूजाके प्रमुख अङ्ग होनेके कारण शिवपूजा ही असली शिवयोग है। जो इस पर-शिवके ब्रह्म-अभिमुख होगा उसीको महासुखकी प्राप्ति हो सकती है। कहा भी है—

शिवार्चनविहीनो यः पशुरेव न संशयः।
शतसंसारचक्रेऽस्मिन्नजस्रं परिवर्तते॥

इस शिवपूजारूपी शिवयोगका हठयोग तो साधनमात्र है। 'शिवयोगः साधकानां साध्यः स्यात् साधनं हठः'—इस हठयोगके यम, नियम, आसन एवं प्राणायामरूपी चार बाह्याङ्ग और प्रत्याहार, ध्यान, धारणा एवं समाधिरूपी चार आभ्यन्तराङ्ग भी हैं। इन अष्टाङ्गोंसे युक्त और शिवयोगका साधक मुमुक्षु ही शैवपदवाच्य है। कहा है—

स्वात्मनैव सदाष्टाङ्गैः पूजयेच्छिवमन्वहम्।
शैवः स एव विद्वान् स च योगविदां वरः॥

वीरशैवोंमें यही अष्टाङ्ग 'षट्स्थल' के नामसे प्रसिद्ध हैं। लिङ्गपुराणके उत्तर भागके इक्कीसवें अध्यायमें श्रीव्यासजीने इसका विस्तार इस प्रकार किया है—

यमेन नियमेनैव मन्ये भक्त इति स्वयम्।

स्थिरासनसमायुक्तो माहेश्वरपदान्वितः ॥
चराचरलयस्थानलिङ्गमाकाशसंज्ञकम् ।
प्राणायामसमायुक्तः प्राणलिङ्गी भवेत् पुमान् ॥
प्रत्याहारेण संयुक्तः प्रसीदति न संशयः ।
ध्यानधारणसम्पन्नः शरणस्थलवान् सुधीः ॥
लिङ्गैक्योऽद्वैतभावात्मा निश्चलैक्यसमाधिना ।
एवमष्टाङ्गयोगेन वीरशैवो भवेन्नरः ॥

—इन श्लोकोंको श्रीसदाशिवयोगीने अपनी 'शिवयोग-प्रदीपिका' में उद्धृत किया है। इनका भाव यह है कि जो निष्ठारूपी स्थिर आसनपर आसीन होगा, वही माहेश्वर है। जो चराचरके लयस्थान और आकाशसंज्ञारूपी शुद्ध प्रसादलिङ्गमें प्राणवायुके साथ मनको स्थिर करेगा, वही प्राणलिङ्गी है। जो उस प्राणलिङ्गमें लीन होनेवाले मनःप्राणोंका निश्चलतापूर्वक प्रत्याहार करेगा वही प्रसादी है। और जो उस महालिङ्गके ध्यान-धारणादिसे युक्त होकर केवल निश्चल शिवयोगसे शिवाद्वैतभावसम्पन्न होगा वही लिङ्गैक्यप्राप्त है। इस प्रकारका अष्टाङ्गसम्पन्न शिवयोगी ही षट्स्थल-सिद्धिको पायेगा। इसीलिये आर्यगण यह उपदेश देते हैं कि—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्मणा ज्ञानतोऽपि वा।
त्वमप्यष्टाङ्गयोगेन शिवयोगी भवानघ ॥

अर्थात् 'अष्टाङ्गयोग भी शैवसिद्धान्त है, अतएव हे अनघ ! तुम भी कर्मरूपी अष्टाङ्गयोगसे अथवा बाह्य और आभ्यन्तरिक ज्ञानरूपी अष्टाङ्गयोगसे शिवयोगकी सिद्धि प्राप्तकर शिव-सायुज्य-मुक्तिके भागी बनो।' हमारी इच्छा है कि सारे संसारमें शिवयोगसे पवित्र शान्ति फैल जाय।

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम्।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चयात् ॥

शिव और शक्ति

(श्रीयुत स्वामी श्रीरामदासजी)

'शिव' और 'शक्ति'—ये परम शिव अर्थात् परम तत्त्वके दो रूप हैं। शिव कूटस्थ तत्त्व है और शक्ति परिणामिनी है। विविध वैचित्र्यपूर्ण संसारके रूपमें अभिव्यक्त शक्तिका आधार एवं अधिष्ठान शिव है। शिव अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल आत्मा है। शक्ति दृश्य, चल एवं नाम-रूपके द्वारा व्यक्त सत्ता है। शक्ति-नटी शिवके अनन्त, शान्त एवं गम्भीर वक्षःस्थलपर अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका रूप धारणकर तथा उनके अंदर सर्ग, स्थिति एवं संहारकी त्रिविध लीला करती हुई नृत्य करती रहती है।

अब प्रश्न यह होता है कि परमात्माके इन दोनों स्वरूपोंके सर्वोच्च एवं व्यापक ज्ञानके द्वारा मुमुक्षुको मोक्ष एवं अक्षय सुखकी प्राप्ति किस प्रकार होती है ?

शिवका साक्षात्कार करना व्यष्टि-भावको लाँघकर ऊँचा उठना है। इस व्यष्टि-भावके अंदर उपाधियुक्त एवं व्यावहारिक जीवनका ज्ञान रहता है, जो अज्ञान एवं दुःखका कारण है। शक्तिके चरणोंमें आत्मसमर्पण करना ही शिवके साक्षात्कारका साधन माना गया है। यहाँ आत्मसमर्पणका अर्थ है देहाभिमान अथवा अहंबुद्धिसे सर्वथा ऊपर उठ जाना। जीवनके सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों ही रूपोंमें जो कुछ भी क्रियाएँ, परिवर्तन एवं चेष्टाएँ होती हैं, सब शक्तिके ही कार्य हैं और यह शक्ति वह ईश्वरीय तत्त्व है जो समस्त चराचर जगत्में व्याप्त है तथा जो स्वयं जगत्के रूपमें अभिव्यक्त है। इस तत्त्वके समझनेसे यह अवस्था प्राप्त होती है।

आत्मसमर्पण अर्थात् व्यष्टि-बुद्धिको शिवके समष्टि-तत्त्वमें विलीन कर देनेसे जब आत्माको परमात्माके शिवतत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है तब उसे उस परम शिवके पूर्ण स्वरूपकी समग्ररूपेण उपलब्धि होती है जो शिव और शक्ति दोनों है और दोनोंसे परे भी है। तब जीव व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकारके तत्त्वोंके ज्ञान तथा उनके संयोगमें निरतिशय स्वतन्त्रताका अनुभव करता है और अमृतत्वके आनन्दका उपभोग करता है।

इस परम तत्त्व—परम शिवके दुरारोह पदको प्राप्त करनेके लिये साधक पूजा, आराधना, यज्ञ, तप एवं उनके परिणामस्वरूप दिव्य मूर्तियोंके दर्शन—यह सब कुछ करता है। मनुष्यकी आकाङ्क्षा एवं पुरुषार्थका यह चरम फल है। इस दुरारोह एवं अनिर्वचनीय पदपर आरूढ़ होकर भगवत्प्राप्त

पुरुष अपने आत्माके अंदर सबके आत्माको और सबके शरीरको अपने शरीरमें देखता है। वह उस परम तत्त्वके अंदर अव्यक्त शिव एवं व्यक्त शक्ति दोनोंको सर्वथा अभिन्नरूपमें देखता है।

यह स्पष्ट है कि जीवके लिये पहली सीढ़ी शान्त, स्थिर, शिवतत्त्वके अगाध समुद्रमें गहरा गोता लगाना तथा उसके अंदर अपनेको विलीन कर देना है। क्योंकि उस निर्लेप, निर्विकार सत्ता—शिवकी वास्तविक एकताका अनुभव किये बिना प्रत्यक्षमें भिन्न एवं विरोधी प्रतीत होनेवाले सारे पदार्थोंकी एकता एवं अभेदका बोध सम्भव नहीं है।

शिव और शक्ति एक दूसरेसे उसी प्रकार अभिन्न हैं, जिस प्रकार सूर्य और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका ताप तथा दूध और उसकी सफेदी। शिवकी आराधना शक्तिकी आराधना है और शक्तिकी उपासना शिवकी उपासना है। इन दो परस्परविरोधी एवं प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होनेवाले तत्त्वों, शिव और शक्तिकी विषमता एवं विरोधका सामञ्जस्य ही परमात्म-तत्त्वका रहस्य है। इस पहेलीको समझना अथवा सुलझाना ऊँची-से-ऊँची बुद्धिवाले मनुष्यकी भी शक्तिके बाहर है। इस रहस्यको समझना स्वयं रहस्यमय बन जाना है।

'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई'

एक और अनेक रुद्र

(श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी)

वेदों और पुराणोंमें रुद्र देवताका वर्णन बहुत है। उस सारे वर्णनका संग्रह और यथोचित वर्गीकरण करके रुद्र देवताके स्वरूपका निश्चय करना बहुत ही बोधप्रद है। परंतु उक्त कार्य बहुत विस्तृत होनेके कारण इस छोटे-से लेखमें होना असम्भव है, अतः उसके छोटे-से विभागका संक्षेपसे विचार करनेका संकल्प इस लेखमे किया गया है। वेदमें 'रुद्र एक है' ऐसा भी वर्णन है और 'अनेक रुद्र हैं', ऐसा भी है। जो एक होगा उसका अनेक होना सम्भव नहीं और जो अनेक होगा उसका एक होना सम्भव नहीं, सामान्यतः ऐसा समझा जाता है। रुद्रके विषयमें यह सामान्य नियम लागू हो सकता है अथवा इसमें कोई विशेष गूढ़ रहस्य है, यहाँपर इसका विचार करना आवश्यक है। यह विवेचन प्रारम्भ करनेके पूर्व जिन वचनोंमें रुद्रके एकत्व और अनेकत्वका निर्देश है उन वचनोंपर हम एक दृष्टि डालेंगे—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः।
असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्।

(निरुक्त १।१५।७)

'रुद्र एक ही है दूसरा कोई नहीं है। असंख्य-सहस्रों रुद्र इस भूमिपर हैं।' ये दोनों वचन निरुक्तमें हैं। इनमें, रुद्र एक है और सहस्रों हैं—ये दोनों कथन स्पष्ट शब्दोंमें हैं। यही भाव निम्नाङ्कित वचनोंसे भी प्रकट होता है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।(श्वेता॰ ३।२)

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।

(तै॰ सं॰ १।८।६।१)

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै॰।

(अथर्वशिरस् ५)

रुद्रमेकत्वमाहुः शाश्वतं वै पुराणम्।

(अथर्वशिरस् ५)

इन वचनोंमें 'रुद्र एक है, दूसरा रुद्र नहीं है' ऐसा स्पष्ट कहा है। इन वचनोंके पश्चात् पाठक निम्नलिखित वचन देखें—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्॥

(यजु॰ १६।५४)

'असंख्य और हजारों रुद्र भूमिके ऊपर हैं।'

ये दोनों प्रकारके वचन एक रुद्रके वाचक हैं अथवा इनसे विभिन्न रुद्रोंका बोध होता है, यह प्रश्न यहाँ विचारणीय है। इस विषयकी आलोचना करते समय निम्नलिखित वचनोंपर भी ध्यान देना चाहिये।

रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे॥

(ऋ॰ १०।६४।८)

शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः॥

(ऋ॰ ७।३५।६)

रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नः ॥

(ऋ० १० । ६६ । ३)

रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ॥

(ऋ० ७ । १० । ४)

इन वचनोंमें कहा है कि एक रुद्र अनेक रुद्रोंके साथ रहता है। यदि ये ऋग्वेदके वचन सत्य मानते हैं तो इनके आधारपर यह मानना पड़ेगा कि एक रुद्र भिन्न है और अनेक रुद्र उससे भिन्न हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो 'एक रुद्र अनेक रुद्रोंके साथ रहता है' इस कथनका कोई अर्थ नहीं हो सकता। इसलिये इतनी खोजसे यह बात निश्चित हुई कि एक रुद्र और अनेक रुद्र—ये परस्पर भिन्न हैं। अब हमें देखना चाहिये कि इनका स्वरूप क्या है ? इस विषयमे नीचे दिये हुए मन्त्र मननपूर्वक देखने चाहिये—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

(श्वेता० ३ । ४)

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य
ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये ॥

(अथर्व० ७ । ९२ । १)

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी
रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न-
मृधग्घुवेम [illegible] ॥

[illegible] । ४९ । १०)

(यः रुद्रः) जो रुद्र (देवा[illegible] [illegible]दि अन्य देवोंको उत्पन्न करनेवाला,(विश्व [illegible] स्वामी, [illegible] ज्ञानी, अत: [illegible] उत्पन्न [illegible] हमें शुभ [illegible] जलमें [illegible] और [illegible] करता [illegible] हमारा नम [illegible] पितरं रुद्रम्) सब भुवनोंका रक्षक रुद्र है, वह (बृहन्तम्) बड़ा, (ऋष्वम्) ज्ञानी, प्रेरक, (अजरम्) जरारहित है, उसकी हम दिनमें और रात्रिमें प्रशंसा करते हैं।'

एक रुद्रके स्वरूपका निश्चय करनेके लिये इतने मन्त्र पर्याप्त हैं। जो एक रुद्र है उसका यह स्वरूप है। वह सब जगत्का उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता, उस जगत्में व्यापक और महाज्ञानी है। पाठक विचार करेंगे तो उनको स्पष्ट बोध होगा कि यह तो परमात्माका वर्णन है। परमात्मा एक और अद्वितीय है, उसके समान दूसरा कोई भी नहीं है। इसी परमात्माको रुद्र, इन्द्र आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।

अतः यहाँ उसी परमात्माका वर्णन 'रुद्र' शब्दद्वारा किया गया है और जहाँ-जहाँ (एक एव रुद्रः) एक ही रुद्र है—ऐसा वर्णन होगा, वहाँ-वहाँ 'रुद्र' शब्दसे परमात्मा अर्थ लेना उचित है। यह अर्थ लेकर मन्त्रोंका अर्थ किस प्रकार होता है इसपर विचार कीजिये—

ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-
र्न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम् ।

(ऋक्० २ । ३३ । ९)

'इस भुवनके महान् स्वामी रुद्रदेवसे अर्थात् परमात्मासे उसकी महाशक्ति कोई छीन नहीं सकता।' उसकी शक्ति उससे पृथक् नहीं हो सकती। इस रुद्रकी खोज भक्तजन अन्तःकरणमें करते हैं—इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया ।

(ऋक्० ९ । ७३ । ३)

'मुमुक्षुजन (तं रुद्रम्) उस रुद्रको अर्थात् परमात्माको (जने परः अन्तः मनीषया इच्छन्ति) मनुष्यके अन्तःकरणमें बुद्धिद्वारा जानना चाहते हैं।' अर्थात् इसकी खोज अन्तःकरणमें की जाती है और मुमुक्षुजनोंको वह अपने हृदयमें [illegible] होता है। इस प्रकार यह रुद्रका वर्णन परमात्मपरक [illegible]न मन्त्रोंका मनन करनेसे यह निश्चय हो जाता है। इस [illegible] स्थिर करके अर्थात् एक रुद्रको परमात्मा [illegible] रुद्र' कौन है इस विषयपर विचार [illegible] कोष्ठक आता है—

एकः रुद्रः	अनन्ताः रुद्राः
अद्वितीयः रुद्रः	सहस्राणि सहस्रशो रुद्राः।
जनकः, पिता, रुद्रः	पुत्राः रुद्राः
व्यापकः रुद्रः	अव्यापकाः रुद्राः
ईशः रुद्रः	अनीशाः रुद्राः
उपास्यः रुद्रः	उपासकाः रुद्राः
एकः परमात्मा	अनन्ताः जीवात्मानः

इनमेंसे कई शब्द पूर्वोक्त मन्त्रोंमे आ चुके हैं और कई शब्द अर्थके अनुसंधानसे लिये गये हैं। यदि यह कोष्ठक पूर्वोक्त वचनोंसे सिद्ध हो गया, तो फिर 'एक रुद्र' परमात्मा है और 'अनन्त रुद्र' अनन्त जीवात्मा हैं, इस विषयमें कोई संदेह नहीं रह जायगा। अब इसके लिये कुछ प्रमाण देखने हैं—

रुद्रस्य ये मीळहुषः सन्ति पुत्राः।

(ऋक्० ६।६६।३)

'दाता रुद्रके ये अनन्त रुद्र पुत्र हैं।' रुद्रके पुत्र रुद्र ही हो सकते हैं, इसमें किसीको संदेह नहीं होना चाहिये। जैसे परमात्माके पुत्र अणु-आत्मा (जीवात्मा हैं, वैसे ही व्यापक रुद्रके पुत्र अनन्त रुद्र किंवा अव्यापक जीवात्मा हैं। इन पिता-पुत्रोंका वर्णन वेदमें इस तरह मिलता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषाम्॥(ऋ० ५।६०।५)

'इनका पिता रुद्र तरुण है और ये अनन्त रुद्र आपसमें भाई हैं। इनमें न तो कोई ज्येष्ठ है और न कनिष्ठ ही है अर्थात् ये सब आपसमें समान अधिकारवाले हैं। सब जीवात्मा आपसमें ऐसे ही भाई हैं, जिनमें कोई बड़ा नहीं और कोई छोटा नहीं है।'

इस प्रकार 'एक रुद्र' कौन है और 'अनेक रुद्र' कौन हैं—इस बातका स्पष्टीकरण किया गया। इस स्पष्टीकरणसे पाठकोंको ज्ञात होगा कि 'जीव और शिव' की कल्पना ही इन रुद्रोंद्वारा वेदमन्त्रोंमें बतायी गयी है। जीव अनेक हैं और शिव एक है। जीव कभी-न-कभी शिव बननेवाला है, इसलिये तत्त्वदृष्टिसे जीव और शिव एक है—यह बतानेके उद्देश्यसे ही दोनोंका नाम एक रखा गया है। देखिये—

जीवाः	शिवः
रुद्रासः	रुद्रः
आत्मानः	आत्मा
अजाः	अजः
अग्नयः	अग्निः

इस तरह दोनोंके एक प्रकारके नाम बताते हैं कि वे दोनों तत्त्वतः एक हैं। इसीलिये जीव शिव बनता है। जीवसे शिव बननेकी कल्पना निम्नलिखित शब्दोंद्वारा वेद-शास्त्रमे बतायी गयी है—

जीव	शिव
पुरुष	पुरुषोत्तम
आत्मा	परमात्मा
ब्रह्म	परब्रह्म
नर	नारायण
पिण्डव्यापी	ब्रह्माण्डव्यापी
रुद्र	महारुद्र
इन्द्र	महेन्द्र
देव	महादेव

नर ही नारायण बनता है। यही अर्थ रुद्रके 'महारुद्र' बननेका है। शब्दभेद होनेपर भी अर्थभेद नहीं होता। अनेक शब्दोंद्वारा एक ही आशय व्यक्त होता है। अस्तु, इस रीतिसे एकवचनात्मक 'रुद्र' शब्दसे परमात्माकी कल्पना और बहु-वचनात्मक 'रुद्र' शब्दसे जीव-आत्माओंकी कल्पना वैदिक वाङ्मयमें प्रकट होती है, यह बात यहाँ इन सब प्रमाणोंसे विशद हो चुकी है।

जो कहते हैं कि वेदमन्त्रोंमें अध्यात्मविषय नहीं है, वे इस दृष्टिसे 'रुद्रसूक्त' देखें और उनका मनन करें। इस मननसे, रुद्रसूक्तोंमें अध्यात्म-विषय ही भरा है—यह बात उनके मनमें निःसंदेह प्रकट होगी। इसीलिये कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (क० उ० १।२।१५)

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः (गीता १५।१५)

'सब वेदोंके द्वारा आत्माका ही ज्ञान होता है।' वास्तवमें सम्पूर्ण वेदमन्त्र एक अद्वितीय आत्माका बोध कराते हैं, उनमें अनेक नामोंसे एक ही सत्य वस्तुका वर्णन किया गया है। परंतु दुःखकी बात है कि आजकल यह रहस्य बहुत कम मनुष्योंको विदित है। इसलिये विद्वान् लोग भी यही समझते हैं कि वेदमें अध्यात्मविषय नहीं है, वह केवल वेदोंके परवर्ती उपनिषदों

रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नः ॥

(ऋ० १०।६६।३)

रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ॥

(ऋ० ७।१०।४)

इन वचनोंमें कहा है कि एक रुद्र अनेक रुद्रोंके साथ रहता है। यदि ये ऋग्वेदके वचन सत्य मानते हैं तो इनके आधारपर यह मानना पड़ेगा कि एक रुद्र भिन्न है और अनेक रुद्र उससे भिन्न हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो 'एक रुद्र अनेक रुद्रोंके साथ रहता है' इस कथनका कोई अर्थ नहीं हो सकता। इसलिये इतनी खोजसे यह बात निश्चित हुई कि एक रुद्र और अनेक रुद्र—ये परस्पर भिन्न हैं। अब हमें देखना चाहिये कि इनका स्वरूप क्या है ? इस विषयमें नीचे दिये हुए मन्त्र मननपूर्वक देखने चाहिये—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

(श्वेता० ३।४)

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य
ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये ॥

(अथर्व० ७।९२।१)

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी
रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न-
मृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥

(ऋक्० ६।४९।१०)

(यः रुद्रः) जो रुद्र (देवानां प्रभवः) अग्नि आदि अन्य देवोंको उत्पन्न करनेवाला,(विश्व-अधिपः) विश्वका एकमात्र स्वामी, (महर्षिः) महाज्ञानी, अतीन्द्रियार्थदर्शी, हिरण्यगर्भको उत्पन्न करनेवाला है, वह हमें शुभ बुद्धि दे। जो रुद्र अग्निमें, जलमें, ओषधि-वनस्पतियोंमें है और जो सब भुवनोंका निर्माण करता है, उस तेजस्वी रुद्रको हमारा नमस्कार हो। (भुवनस्य पितरं रुद्रम्) सब भुवनोंका रक्षक रुद्र है, वह (बृहन्तम्) बड़ा, (ऋष्वम्) ज्ञानी, प्रेरक, (अजरम्) जराहित है, उसकी हम दिनमें और रात्रिमें प्रशंसा करते हैं।'

एक रुद्रके स्वरूपका निश्चय करनेके लिये इतने मन्त्र पर्याप्त हैं। जो एक रुद्र है उसका यह स्वरूप है। वह सब जगत्का उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता, उस जगत्में व्यापक और महाज्ञानी है। पाठक विचार करेंगे तो उनको स्पष्ट बोध होगा कि यह तो परमात्माका वर्णन है। परमात्मा एक और अद्वितीय है, उसके समान दूसरा कोई भी नहीं है। इसी परमात्माको रुद्र, इन्द्र आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

अतः यहाँ उसी परमात्माका वर्णन 'रुद्र' शब्दद्वारा किया गया है और जहाँ-जहाँ (एक एव रुद्रः) एक ही रुद्र है—ऐसा वर्णन होगा, वहाँ-वहाँ 'रुद्र' शब्दसे परमात्मा अर्थ लेना उचित है। यह अर्थ लेकर मन्त्रोंका अर्थ किस प्रकार होता है इसपर विचार कीजिये—

ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-
र्न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम्।

(ऋक्० २।३३।९)

'इस भुवनके महान् स्वामी रुद्रदेवसे अर्थात् परमात्मासे उसकी महाशक्ति कोई छीन नहीं सकता।' उसकी शक्ति उससे पृथक् नहीं हो सकती। इस रुद्रकी खोज भक्तजन अन्तःकरणमें करते हैं—इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया।

(ऋक्० ९।७३।३)

'मुमुक्षुजन (तं रुद्रम्) उस रुद्रको अर्थात् परमात्माको (जने परः अन्तः मनीषया इच्छन्ति) मनुष्यके अन्तःकरणमें बुद्धिद्वारा जानना चाहते हैं।' अर्थात् इसकी खोज अन्तःकरणमें की जाती है और मुमुक्षुजनोंको वह अपने हृदयमें प्राप्त होता है। इस प्रकार यह रुद्रका वर्णन परमात्मपरक है—इन मन्त्रोंका मनन करनेसे यह निश्चय हो जाता है। इस निश्चयको मनमें स्थिर करके अर्थात् एक रुद्रको परमात्मा मानकर जब हम 'अनेक रुद्र' कौन हैं इस विषयपर विचार करते हैं तब हमारे सम्मुख निम्नाङ्कित कोष्ठक आता है—

एकः रुद्रः	अनन्ताः रुद्राः
अद्वितीयः रुद्रः	सहस्राणि सहस्रशो रुद्राः।
जनकः, पिता, रुद्रः	पुत्राः रुद्राः
व्यापकः रुद्रः	अव्यापकाः रुद्राः
ईशः रुद्रः	अनीशाः रुद्राः
उपास्यः रुद्रः	उपासकाः रुद्राः
एकः परमात्मा	अनन्ताः जीवात्मानः

इनमेंसे कई शब्द पूर्वोक्त मन्त्रोंमें आ चुके हैं और कई शब्द अर्थके अनुसंधानसे लिये गये हैं। यदि यह कोष्ठक पूर्वोक्त वचनोंसे सिद्ध हो गया, तो फिर 'एक रुद्र' परमात्मा है और 'अनन्त रुद्र' अनन्त जीवात्मा हैं, इस विषयमें कोई संदेह नहीं रह जायगा। अब इसके लिये कुछ प्रमाण देखने हैं—

रुद्रस्य ये मीळहुषः सन्ति पुत्राः। (ऋक्० ६। ६६। ३)

'दाता रुद्रके ये अनन्त रुद्र पुत्र हैं।' रुद्रके पुत्र रुद्र ही हो सकते हैं, इसमें किसीको संदेह नहीं होना चाहिये। जैसे परमात्माके पुत्र अणु-आत्मा (जीवात्मा हैं, वैसे ही व्यापक रुद्रके पुत्र अनन्त रुद्र किंवा अव्यापक जीवात्मा हैं। इन पिता-पुत्रोंका वर्णन वेदमें इस तरह मिलता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषाम्॥(ऋ० ५। ६०। ५)

'इनका पिता रुद्र तरुण है और ये अनन्त रुद्र आपसमें भाई हैं। इनमें न तो कोई ज्येष्ठ है और न कनिष्ठ ही है अर्थात् ये सब आपसमें समान अधिकारवाले हैं। सब जीवात्मा आपसमें ऐसे ही भाई हैं, जिनमें कोई बड़ा नहीं और कोई छोटा नहीं है।'

इस प्रकार 'एक रुद्र' कौन है और 'अनेक रुद्र' कौन हैं—इस बातका स्पष्टीकरण किया गया। इस स्पष्टीकरणसे पाठकोंको ज्ञात होगा कि 'जीव और शिव' की कल्पना ही इन रुद्रोंद्वारा वेदमन्त्रोंमें बतायी गयी है। जीव अनेक हैं और शिव एक है। जीव कभी-न-कभी शिव बननेवाला है, इसलिये तत्त्वदृष्टिसे जीव और शिव एक हैं—यह बतानेके उद्देश्यसे ही दोनोंका नाम एक रखा गया है। देखिये—

जीवाः	शिवः
रुद्रासः	रुद्रः
आत्मानः	आत्मा
अजाः	अजः
अग्नयः	अग्निः

इस तरह दोनोंके एक प्रकारके नाम बताते हैं कि वे दोनों तत्त्वतः एक हैं। इसीलिये जीव शिव बनता है। जीवसे शिव बननेकी कल्पना निम्नलिखित शब्दोंद्वारा वेद-शास्त्रमें बतायी गयी है—

जीव	शिव
पुरुष	पुरुषोत्तम
आत्मा	परमात्मा
ब्रह्म	परब्रह्म
नर	नारायण
पिण्डव्यापी	ब्रह्माण्डव्यापी
रुद्र	महारुद्र
इन्द्र	महेन्द्र
देव	महादेव

नर ही नारायण बनता है। यही अर्थ रुद्रके 'महारुद्र' बननेका है। शब्दभेद होनेपर भी अर्थभेद नहीं होता। अनेक शब्दोंद्वारा एक ही आशय व्यक्त होता है। अस्तु, इस रीतिसे एकवचनात्मक 'रुद्र' शब्दसे परमात्माकी कल्पना और बहु-वचनात्मक 'रुद्र' शब्दसे जीव-आत्माओंकी कल्पना वैदिक वाङ्मयमें प्रकट होती है, यह बात यहाँ इन सब प्रमाणोंसे विशद हो चुकी है।

जो कहते हैं कि वेदमन्त्रोंमें अध्यात्मविषय नहीं है, वे इस दृष्टिसे 'रुद्रसूक्त' देखें और उनका मनन करें। इस मननसे, रुद्रसूक्तोंमें अध्यात्म-विषय ही भरा है—यह बात उनके मनमें निःसंदेह प्रकट होगी। इसीलिये कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (क० उ० १। २। १५)

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः (गीता १५। १५)

'सब वेदोंके द्वारा आत्माका ही ज्ञान होता है।' वास्तवमें सम्पूर्ण वेदमन्त्र एक अद्वितीय आत्माका बोध कराते हैं, उनमें अनेक नामोंसे एक ही सत्य वस्तुका वर्णन किया गया है। परंतु दुःखकी बात है कि आजकल यह रहस्य बहुत कम मनुष्योंको विदित है। इसलिये विद्वान् लोग भी यही समझते हैं कि वेदमें अध्यात्मविषय नहीं है, वह केवल वेदोंके परवर्ती उपनिषदों

और गीता आदि ग्रन्थोंमें है। परंतु सारे वेद जिस एक आत्मतत्त्वका वर्णन करते हैं वही सत्य वेद-विद्या है। वह जिस रीतिसे जानी जाती थी उसका थोड़ा-सा विवरण इस लेखमें किया गया है और यह बतानेका भी यत्न किया गया है कि रुद्रसूक्तोंमें आत्माका ही बहुत अंशोंमें वर्णन है।

यहाँ पाठक शङ्का करेंगे कि क्या 'रुद्र' शब्द आत्मापरक है और है तो वैसा अर्थ इससे पूर्व किसने माना है?—इस विषयमें हम भाष्यकारोंका ही प्रमाण देते हैं, जिससे पाठक जान सकेंगे कि भाष्यकारोंकी सम्मतिमें भी 'रुद्र' शब्द आत्मावाचक है—

श्रीसायणाचार्यका अर्थ

१-रुद्रस्य परमेश्वरस्य (ऋक्० ६।२८।७)

२-रुद्रः संहर्ता देवः (अथर्व० १।१९।३)

३-जगत्स्रष्टा सर्वं जगदनुप्रविष्टः रुद्रः।
(अथर्व० ७।९२।१)

४-रुद्रः परमेश्वरः। (अथर्व० ११।२।३)

इस तरह 'रुद्र' शब्दका अर्थ श्रीसायणाचार्यजीने भी परमेश्वर ही किया है। अन्यान्य भाष्यकारोंको भी यह अर्थ मान्य है। अथर्ववेदके सूक्तमें भी यही अर्थ स्पष्ट बताया गया है—

स धाता स विधर्ता····।
सोऽर्यमा स रुद्रः स महादेवः ॥ ४ ॥
स एव मृत्युः····स रक्षः····स रुद्रः ॥ २६ ॥
तस्य······वशे चन्द्रमाः ॥ २८ ॥
(अथर्व० १३।६)

'वह धाता, विधाता, रुद्र, महादेव, मृत्यु, रक्षस् है, उसके वशमें चन्द्रमा है।' इन मन्त्रोंमें महादेववाचक अनेक शब्द है। महादेवके सहचारी रक्षस् और चन्द्रमाका भी इस सूक्तमें निर्देश है। इससे स्पष्ट है कि 'रुद्र', 'महादेव' आदि शब्द यहाँ विशिष्ट अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं और वह अर्थ मुख्यतया परमात्मा है। क्योंकि वही धाता-विधाता है। इस रीतिसे वेदने भी अपना अर्थ स्वयं प्रकट किया है।

देव बड़े
किये दूर

जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌के 'विश्वरूप' के दर्शनका वर्णन है, वैसे ही रुद्रसूक्तोंमें रुद्रस्वरूपी परमेश्वरको विश्वरूप कहा गया है। विश्वरूपदर्शनके प्रसंगको लेकर श्रीमद्भगवद्गीता और रुद्रसूक्तकी समानता है। 'रुद्रके विश्वरूपके प्रसंगमें विद्युत्, अग्नि, वात, वायु, सोम, गृत्स, पुलस्ति, भिषक्, सभा, सभापति, वनपति, अरण्यपति, स्थपति, क्षेत्रपति, गणपति, व्रातपति, शूर, रथी, अरथ, आशुसेन, सेनानी, असिमान्, इषुमान्, धन्वी, सु-आयुध, कवची, अग्रेवध, दूरेवध, अश्वपति, वाणिज, अन्नपति, वृक्षपति, पशुपति, शिल्पी, रथकार, तक्षा, क्षत्ता, सूत, कुलाल, निषाद, परिचर, स्तेन—ये सब रुद्रके रूप हैं, ऐसा रुद्रसूक्तमें कहा है। श्रीमद्भगवद्गीतामें केवल थोड़ी-सी विभूतियाँ कही हैं, रुद्रसूक्तमें उससे कई गुना अधिक वर्णन है और अधिक व्यापक भी है। इन दोनों वर्णनोंकी तुलना करनेसे पाठकोंको पता लगेगा कि श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्मा, ब्रह्म, भगवान्, अहम् आदि शब्दोंद्वारा जिस आत्माका वर्णन है, उसीका वर्णन वेदमें 'रुद्र' सूक्तोंमें 'रुद्र' शब्दसे किया गया है।

इस प्रकार तुलना करके देखनेसे रुद्र-'देवता'का आध्यात्मिक स्वरूप ध्यानमें आ जाता है। वेदमें देवताओंका जो वर्णन है, वह आध्यात्मिक ज्ञान बतानेके उद्देश्य-से ही है। यदि उस वर्णनका आध्यात्मिक भाग न देखा जाय तो वेद पढ़नेसे कोई लाभ नहीं होगा। वेदमें भी यही बात कही है—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति (ऋग्वेद)

'जो आत्माको नहीं जानता वह वेदमन्त्र लेकर क्या करेगा?' अर्थात् जिसको वेदमन्त्रोंमें आत्माका ज्ञान नहीं दीखता उसको वेदमन्त्रोंसे कोई लाभ नहीं होगा। हमारे धर्मका मुख्य धर्मग्रन्थ वेद है। उस [illegible] इतनी [illegible] अध्ययन नहीं करते [illegible] दूर होना [illegible] है कि विद्वान् [illegible] ओर [illegible] इस विषयमें [illegible]

शिवपुराणमें शिव-तत्त्व

(चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

परात्पर शिव

प्रलयका अवसान होनेपर पुनः सृष्टिके प्रारम्भके पूर्व जब परब्रह्म सृष्ट्युन्मुख होते हैं, तब वे परात्पर सदाशिव कहलाते हैं, वही सृष्टिके मूलकारण हैं। मनुस्मृतिमें इन्हें 'स्वयम्भू' कहा गया है। यथा—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत् तमोनुदः॥

तब स्वयम्भू भगवान् अव्यक्त होनेपर भी प्रलयके तमको दूरकर प्रकाशित हुए और महाभूत एवं अन्य सब बड़े शक्तिशाली तत्त्व उनसे प्रकट हुए। शिवपुराणमें भी इसी आशयका वचन है—

सिसृक्षया पुराऽव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः।
सत्कार्यकारणोपेतः स्वयमाविरभूत् प्रभुः॥

(वा० सं० अ० ३०।८)

इन्हींको श्रीमद्भगवद्गीतामें महेश्वर-संज्ञा दी गयी है।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥

(१३।२२)

साक्षी, हितोपदेष्टा, पोषक एवं भोक्तारूप जो महेश्वर परमात्मा है, वह इस शरीरमें परम पुरुषकी भाँति है। शिवपुराणका वचन है कि शिव प्रकृति और पुरुष दोनोंसे परे हैं। यथा—

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः।
तदधीनप्रवृत्तित्वात् प्रकृतेः पुरुषस्य च॥

(वा० सं० पू० अ० २८।३३)

यह महेश्वर अपनी इच्छा-शक्तिद्वारा सृष्टिकी रचना करते हैं। श्रुतिका वचन है—'**मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।**' शिवकी यह शक्ति दो रूपमें कार्य करती है—(१) मूल-प्रकृति और (२) दैवी-प्रकृति। गीतामें मूल-प्रकृतिको अपरा-प्रकृति कहा है जिससे पञ्चभूत और अन्तःकरण आदि दृश्य पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई। परा-प्रकृति चैतन्य-शक्ति है, जो इस अपरा-प्रकृतिको नाम-रूपमें परिवर्तित करती है। अपरा-प्रकृतिको 'अविद्या' और पराको 'विद्या' कहते हैं। परा-प्रकृतिको 'पुरुष' भी कहते हैं। इन दोनों प्रकृतियोंके नायक और प्रेरक श्रीशिव—महेश्वर हैं।

क्षरन्त्यविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः॥
माया प्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो माययावृतः।
सम्बन्धो मलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः॥

शिव त्रिदेवसे पृथक् हैं

सगुण अर्थात् मायासंवलित ब्रह्म जिनकी 'पुरुष' संज्ञा है, शिवकी इच्छाके अनुसार गुणोंके क्षोभसे रजोगुणसे ब्रह्मा, सत्त्वसे विष्णु और तमसे रुद्ररूप हुए। ये तीनों ब्रह्माण्डके त्रिदेव हैं और शिव अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं। शिवपुराण वा० सं० अ० २ का वचन है—

पुरुषाधिष्ठितात् पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया।
बुद्ध्यादयो विशेषान्ता विकाराश्चाभवन् क्रमात्॥
ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः।
जगतः कारणत्वेन त्रयो देवा विजज्ञिरे॥
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम्।
प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः॥

प्रथम ईश्वरकी आज्ञासे, पुरुषाधिष्ठित अव्यक्तसे क्रमशः बुद्धिसे लेकर विशेषपर्यन्त विकार उत्पन्न हुए। उनमें ब्रह्मा, विष्णु* और रुद्र—ये तीन देव जगत्के कारणरूप उत्पन्न हुए। ये तीनों क्रमशः सृष्टि, स्थिति और लयके कार्यमें महेश्वरद्वारा नियुक्त हैं। इन त्रिदेवोंमें परस्पर कोई भेद नहीं है। तीनों एक हैं और तीनोंका कार्य मिलकर होता है। अर्थात् तीनों ही एक-दूसरेके कार्यमें सहायता देते हुए एकमत होकर कार्य करते हैं। जो इन तीनोंमें भेद समझता है, एकको बड़ा और दूसरेको छोटा कहता है, वह शिवपुराणमें प्रतिपादित वचनके अनुसार राक्षस अथवा पिशाचके समान है, इसमें

* महाविष्णु श्रीशिवके समान त्रिदेवान्तर्गत विष्णुसे उच्च हैं और वही वैष्णवोंके इष्ट हैं। उन्हींके अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण हुए।

और गीता आदि ग्रन्थोंमें है। परंतु सारे वेद जिस एक आत्मतत्त्वका वर्णन करते हैं वही सत्य वेद-विद्या है। वह जिस रीतिसे जानी जाती थी उसका थोड़ा-सा विवरण इस लेखमें किया गया है और यह बतानेका भी यत्न किया गया है कि रुद्रसूक्तोंमें आत्माका ही बहुत अंशोंमें वर्णन है।

यहाँ पाठक शङ्का करेंगे कि क्या 'रुद्र' शब्द आत्मापरक है और है तो वैसा अर्थ इससे पूर्व किसने माना है?—इस विषयमें हम भाष्यकारोंका ही प्रमाण देते हैं, जिससे पाठक जान सकेंगे कि भाष्यकारोंकी सम्मतिमें भी 'रुद्र' शब्द आत्मावाचक है—

श्रीसायणाचार्यका अर्थ

१-रुद्रस्य परमेश्वरस्य (ऋक्० ६।२८।७)

२-रुद्रः संहर्ता देवः (अथर्व० १।१९।३)

३-जगत्स्रष्टा सर्वं जगदनुप्रविष्टः रुद्रः। (अथर्व० ७।९२।१)

४-रुद्रः परमेश्वरः। (अथर्व० ११।२।३)

इस तरह 'रुद्र' शब्दका अर्थ श्रीसायणाचार्यजीने भी परमेश्वर ही किया है। अन्यान्य भाष्यकारोंको भी यह अर्थ मान्य है। अथर्ववेदके सूक्तमें भी यही अर्थ स्पष्ट बताया गया है—

स धाता स विधर्ता····।
सोऽर्यमा स रुद्रः स महादेवः ॥ ४ ॥
स एव मृत्युः····स रक्षः····स रुद्रः ॥ २६ ॥
तस्य·····वशे चन्द्रमाः ॥ २८ ॥
(अथर्व० १३।६)

'वह धाता, विधाता, रुद्र, महादेव, मृत्यु, रक्षस् है, उसके वशमें चन्द्रमा है।' इन मन्त्रोंमें महादेववाचक अनेक शब्द हैं। महादेवके सहचारी रक्षस् और चन्द्रमाका भी इस सूक्तमें निर्देश है। इससे स्पष्ट है कि 'रुद्र', 'महादेव' आदि शब्द यहाँ विशिष्ट अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं और वह अर्थ मुख्यतया परमात्मा है। क्योंकि वही धाता-विधाता है। इस रीतिसे वेदने भी अपना अर्थ स्वयं प्रकट किया है।

जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्के 'विश्वरूप' के दर्शनका वर्णन है, वैसे ही रुद्रसूक्तोंमें रुद्रस्वरूपी परमेश्वरको विश्वरूप कहा गया है। विश्वरूपदर्शनके प्रसंगको लेकर श्रीमद्भगवद्गीता और रुद्रसूक्तकी समानता है। 'रुद्रके विश्वरूपके प्रसंगमें विद्युत्, अग्नि, वात, वायु, सोम, गृत्स, पुलस्ति, भिषक्, सभा, सभापति, वनपति, अरण्यपति, स्थपति, क्षेत्रपति, गणपति, व्रातपति, शूर, रथी, अरथ, आशुसेन, सेनानी, असिमान्, इषुमान्, धन्वी, सु-आयुध, कवची, अग्रेवध, दूरेवध, अश्वपति, वाणिज, अन्नपति, वृक्षपति, पशुपति, शिल्पी, रथकार, तक्षा, क्षत्ता, सूत, कुलाल, निषाद, परिचर, स्तेन—ये सब रुद्रके रूप हैं, ऐसा रुद्रसूक्तमें कहा है। श्रीमद्भगवद्गीतामें केवल थोड़ी-सी विभूतियाँ कही हैं, रुद्रसूक्तमें उससे कई गुना अधिक वर्णन है और अधिक व्यापक भी है। इन दोनों वर्णनोंकी तुलना करनेसे पाठकोंको पता लगेगा कि श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्मा, ब्रह्म, भगवान्, अहम् आदि शब्दोंद्वारा जिस आत्माका वर्णन है, उसीका वर्णन वेदमें 'रुद्र' सूक्तोंमें 'रुद्र' शब्दसे किया गया है।

इस प्रकार तुलना करके देखनेसे रुद्र-'देवता'का आध्यात्मिक स्वरूप ध्यानमें आ जाता है। वेदमें देवताओंका जो वर्णन है, वह आध्यात्मिक ज्ञान बतानेके उद्देश्य-से ही है। यदि उस वर्णनका आध्यात्मिक भाग न देखा जाय तो वेद पढ़नेसे कोई लाभ नहीं होगा। वेदमें भी यही बात कही है—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति (ऋग्वेद)

'जो आत्माको नहीं जानता वह वेदमन्त्र लेकर क्या करेगा?' अर्थात् जिसको वेदमन्त्रोंमें आत्माका ज्ञान नहीं दीखता उसको वेदमन्त्रोंसे कोई लाभ नहीं होगा। हमारे धर्मका मुख्य धर्मग्रन्थ वेद है। उस वेदके अध्ययनके विषयमें इतनी अनास्था है कि आध्यात्मिक दृष्टिसे कोई उसका अध्ययन नहीं करता। यह दोष दूर होना चाहिये। आशा है कि विद्वान् लोगोंका चित्त इस ओर आकर्षित होगा और इस विषयमें अनास्था शीघ्र दूर होगी तथा वैदिक धर्मका समुपबृंहण उपनिषद्, इतिहास और स्मृतिशास्त्रोंके द्वारा होगा।

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनि के, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे॥

शिवपुराणमें शिव-तत्त्व

(चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

परात्पर शिव

प्रलयका अवसान होनेपर पुनः सृष्टिके प्रारम्भके पूर्व जब परब्रह्म सृष्ट्युन्मुख होते हैं, तब वे परात्पर सदाशिव कहलाते हैं, वही सृष्टिके मूलकारण हैं। मनुस्मृतिमें इन्हें 'स्वयम्भू' कहा गया है। यथा—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत् तमोनुदः॥

तब स्वयम्भू भगवान् अव्यक्त होनेपर भी प्रलयके तमको दूरकर प्रकाशित हुए और महाभूत एवं अन्य सब बड़े शक्तिशाली तत्त्व उनसे प्रकट हुए। शिवपुराणमें भी इसी आशयका वचन है—

सिसृक्षया पुराऽव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः।
सत्कार्यकारणोपेतः स्वयमाविरभूत् प्रभुः॥
(वा० सं० अ० ३०।८)

इन्हींको श्रीमद्भगवद्गीतामें महेश्वर-संज्ञा दी गयी है।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥
(१३।२२)

साक्षी, हितोपदेष्टा, पोषक एवं भोक्तारूप जो महेश्वर परमात्मा है, वह इस शरीरमें परम पुरुषकी भांति है। शिवपुराणका वचन है कि शिव प्रकृति और पुरुष दोनोंसे परे हैं। यथा—

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः।
तदधीनप्रवृत्तित्वात् प्रकृतेः पुरुषस्य च॥
(वा० सं० पू० अ० २८।३३)

यह महेश्वर अपनी इच्छा-शक्तिद्वारा सृष्टिकी रचना करते हैं। श्रुतिका वचन है—'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।' शिवकी यह शक्ति दो रूपमें कार्य करती है—(१) मूल-प्रकृति और (२) दैवी-प्रकृति। गीतामें मूल-प्रकृतिको अपरा-प्रकृति कहा है जिससे पञ्चभूत और अन्तःकरण आदि दृश्य पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई। परा-प्रकृति चैतन्य-शक्ति है, जो इस अपरा-प्रकृतिको नाम-रूपमें परिवर्तित करती है। अपरा-प्रकृतिको 'अविद्या' और पराको 'विद्या' कहते हैं। परा-प्रकृतिको 'पुरुष' भी कहते हैं। इन दोनों प्रकृतियोंके नायक और प्रेरक श्रीशिव—महेश्वर हैं।

क्षरन्त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः॥
माया प्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो माययावृतः।
सम्बन्धो मलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः॥

शिव त्रिदेवसे पृथक् हैं

सगुण अर्थात् मायासंवलित ब्रह्म जिनकी 'पुरुष' संज्ञा है, शिवकी इच्छाके अनुसार गुणोंके क्षोभसे रजोगुणसे ब्रह्मा, सत्त्वसे विष्णु और तमसे रुद्ररूप हुए। ये तीनों ब्रह्माण्डके त्रिदेव हैं और शिव अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं। शिवपुराण वा० सं० अ० २ का वचन है—

पुरुषाधिष्ठितात् पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया।
बुद्ध्यादयो विशेषान्ता विकाराश्चाभवन् क्रमात्॥
ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः।
जगतः कारणत्वेन त्रयो देवा विजज्ञिरे॥
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम्।
प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः॥

प्रथम ईश्वरकी आज्ञासे, पुरुषाधिष्ठित अव्यक्तसे क्रमशः बुद्धिसे लेकर विशेषपर्यन्त विकार उत्पन्न हुए। उनमें ब्रह्मा, विष्णु* और रुद्र—ये तीन देव जगत्के कारणरूप उत्पन्न हुए। ये तीनों क्रमशः सृष्टि, स्थिति और लयके कार्यमें महेश्वरद्वारा नियुक्त हैं। इन त्रिदेवोंमें परस्पर कोई भेद नहीं है। तीनों एक हैं और तीनोंका कार्य मिलकर होता है। अर्थात् तीनों ही एक-दूसरेके कार्यमें सहायता देते हुए एकमत होकर कार्य करते हैं। जो इन तीनोंमें भेद समझता है, एकको बड़ा और दूसरेको छोटा कहता है, वह शिवपुराणमें प्रतिपादित वचनके अनुसार राक्षस अथवा पिशाचके समान है, इसमें

* महाविष्णु श्रीशिवके समान त्रिदेवान्तर्गत विष्णुसे उच्च हैं और वही वैष्णवोंके इष्ट हैं। उन्हींके अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण हुए।

संदेह नहीं। शिवपुराणमें लिखा है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः॥

चतुर्व्यूह

गुणत्रयसे अतीत भगवान् शिव चार व्यूहोंमें विभक्त हैं—(१) ब्रह्मा, (२) काल, (३) रुद्र और (४) विष्णु। शिव सबके आधार हैं और शक्तिकी भी उत्पत्तिके स्थान हैं, जैसा कि शिवपुराणके उपर्युक्त प्रकरणमें लिखा है—

देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः।
सकलः सकलाधारः शक्तेरुत्पत्तिकारणम्॥
सोऽयमात्मत्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च।
लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः॥
यः सर्वस्मात् परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः।
स एव तत्तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः॥
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा।
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम्॥

त्रिदेवान्तर्गत रुद्र गुणातीत शिवसे स्वरूपतः पृथक् हैं

श्रीशिव ब्रह्माण्डके अधिष्ठाता त्रिदेवोंके अन्तर्गत रुद्रसे पृथक् हैं। इसके और भी प्रमाण श्रीशिवपुराणमें हैं। यथा—

दक्षिणाङ्गान्महेशस्य जातो ब्रह्मात्मसंज्ञकः।
वामाङ्गादभवद्विष्णुस्ततो विद्येतिसंज्ञितः।
हृदयान्नीलरुद्रोऽभूच्छिवस्य शिवसंज्ञितः॥

इससे यह भी सिद्ध होता है कि त्रिदेवोंमें भी एक देव रुद्र हैं, अतएव रुद्र एक ही हैं—यद्यपि ग्यारह गुण-कर्मके कारण उनके ग्यारह काम और ग्यारह नाम हैं।

शिव-लिङ्ग केवल चिन्मय है, स्थूल नहीं

सदाशिवसे जो चैतन्य-शक्ति उत्पन्न हुई और उससे जो चिन्मय-आदि पुरुष हुए, वही यथार्थमें शिवके लिङ्ग हैं, क्योंकि उन्हींसे चराचर विश्वकी उत्पत्ति हुई, वे ही सबके लिङ्ग अथवा कारण हैं और उन्हींमें विश्वका लय होगा। शिवपुराणमें लिखा है कि समस्त लिङ्ग-पीठ (आधार) अर्थात् प्रकृति पार्वती और लिङ्गको चिन्मय पुरुष समझना चाहिये। इन दोनोंके संयोगसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। यथा—

पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गं च चिन्मयम्।
(वि॰सं॰अ॰९)

शिवपुराणमें शिवके वाक्य हैं कि जो लिङ्ग (महाचैतन्य) को संसारका मूल-कारण और इस कारण-जगत्को लिङ्गमय (चैतन्यमय) समझकर इस आध्यात्मिक दृष्टिसे लिङ्गकी पूजा करता है वही मेरी यथार्थ पूजा करता है। यथा—

योऽर्चयाऽर्चयते देवि पुरुषो मां गिरेः सुते।
लोकं लिङ्गात्मकं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयते हि माम्॥
न मे तस्मात् प्रियतरः प्रियो वा विद्यते ततः।

शिवपुराणके अनेक स्थलोंमें (उदाहरणतः वा॰सं॰उ॰ अ॰ २७) और लिङ्गपुराणमें भी कथा आती है कि सृष्टिके आदिमें अर्थात् किसी ब्रह्माण्डके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुको लिङ्गके दर्शन हुए, जिसका आदि-अन्त दोनोंने नहीं पाया। उसके बाद उस लिङ्गमें प्रणवके अक्षर प्रकट हुए। प्रणवके अक्षरोंके प्रकट होनेका तात्पर्य नाद अर्थात् शब्द-ब्रह्मका प्रकट होना है जो सृष्टिके समस्त पदार्थोंका आदि-कारण है। ये विष्णु और ब्रह्मा उस ब्रह्माण्डके त्रिदेवान्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु थे न कि महाविष्णु, जिनमें और सदाशिवमें भेद नहीं है। लिङ्गसे तात्पर्य यहाँ महाचैतन्यमय आदिपुरुषका है जिसके संकल्प अथवा इच्छा-शक्तिमें सम्पूर्ण विश्व निहित है और उसीसे इस विश्वकी उत्पत्ति हुई।

पञ्च और अष्टमूर्ति

शिवपुराणकी सनत्कुमारसंहिताके छठे अध्यायमें लिखा है कि शिवकी प्रथम मूर्ति क्रीडा करती है, दूसरी तपस्या करती है, तीसरी लोकसंहार करती है, चौथी प्रजाकी सृष्टि करती है और पाँचवीं ज्ञान-प्रधान होनेके कारण सद्वस्तुयुक्त सम्पूर्ण संसारको आच्छन्न कर रखती है। वही ईशानमूर्ति सबके प्रभु, सबमें वर्तमान, सृष्टि और प्रलयकर्ता तथा सबके रक्षक हैं। उनका नाम ईशान है।

उक्त पुराणकी वायवीय संहिताके चौथे अध्यायमें लिखा है कि श्रीशिवकी ईशान नामकी परमोत्तम प्रथम मूर्ति साक्षात्

प्रकृति-भोक्ता, क्षेत्रज्ञ पुरुषमें अधिष्ठित रहती है। तत्पुरुष नामकी दूसरी मूर्ति सत्त्वादि गुणाश्रय, भोग्य प्रकृतिमें अधिष्ठित है। तीसरी घोराख्य मूर्ति धर्मादि अष्टाङ्ग-संयुक्त बुद्धिमें अवस्थित रहती है। चौथी मूर्ति जिसे वामदेव कहते हैं अहंकारकी अधिष्ठात्री है और पाँचवीं सद्योजात मूर्ति मनकी अधिष्ठात्री है। श्रीशिवकी अष्टमूर्तियाँ—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित रहती हैं।

अर्धनारीश्वर

श्रीशिवपुराणकी वायवीय संहिता (पूर्वभाग) के १३वें और १४वें अध्यायमें कथा आती है कि जब ब्रह्माकी मानसिक सृष्टिसे प्रजाकी वृद्धि न हुई, तब उन्होंने प्रजावृद्धिका ठीक उपाय जाननेके लिये तपस्या करना प्रारम्भ किया। तपस्याके कारण ब्रह्माके मनमे आद्याशक्ति उदित हुई। उक्त शक्तिके आश्रयसे ब्रह्मा त्र्यम्बकेश्वर शिवके ध्यान करनेमें प्रवृत्त हुए। श्रीशिव ध्यानके प्रभावसे संतुष्ट होकर अर्धनारीश्वर अर्थात् आधी स्त्री (शक्ति) और आधे पुरुष (शिव) के रूपमें ब्रह्माके समक्ष प्रकट हुए। ब्रह्माने शिव और उनकी शक्ति दोनोंकी स्तुति की। स्तुतिसे प्रसन्न होकर श्रीशिवने अपने शरीरसे एक देवीकी उत्पत्ति की, जिनकी संज्ञा परमा शक्ति थी। ब्रह्माने उक्त श्रीदेवीसे कहा कि 'मैंने अबतक मनद्वारा देवतादिकी उत्पत्ति की है किंतु वे बार-बार उत्पन्न होकर भी वृद्धिंगत नहीं हो रहे हैं। अतएव अब मैं मैथुन-जन्य सृष्टिद्वारा प्रजाकी वृद्धि करना चाहता हूँ। इसके पूर्व आपसे अक्षय नारी-कुलकी उत्पत्ति न हुई जिसके कारण मैं स्त्रीको नहीं बना सकता। अतएव आप कृपाकर मेरे पुत्र दक्षके यहाँ कन्यारूपमें जन्म लीजिये' ऊपरकी कथासे तीन परमोत्तम सिद्धान्त प्रकट होते हैं। एक तो यह कि शिव-लिङ्गरूपमें संसारके समस्त चराचर प्राणियोके साँचे हैं और जो साँचेकी भाँति संकल्प-रूपमें लिङ्गके अंदर नहीं है, उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि परात्पर शिवकी प्राप्ति उनकी शक्तिसे सम्बन्ध होनेपर ही होती है, जैसे ब्रह्माको हुई। तीसरी यह कि संसारकी मानवी प्रजाका कारण अर्धनारीश्वर होनेसे सभी पुरुष शिवरूप और सब स्त्रियाँ शक्तिरूपिणी हैं, जैसा कि शिवपुराणमें लिखा है—

शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।

(वा॰सं॰पू॰अ॰ ४। ५५)

शिव जगद्गुरु

श्रीशिवका एक बृहत् परम कल्याणकारी कार्य इस विश्वमें जगद्गुरुके रूपमें नाना प्रकारकी विद्या, योग, ज्ञान, भक्ति आदिका प्रचार करना है, जो बिना उनकी कृपाके यथार्थ रूपमें प्राप्त नहीं हो सकते। श्रीशिव केवल जगद्गुरु ही नहीं हैं किंतु अपने कार्य-कलाप, आहार-विहार और संयम-नियम आदिद्वारा जीवन्मुक्तके लिये आदर्श हैं। लिङ्गपुराणके अध्याय ७ और शिवपुराणकी वायवीय संहिता पूर्व-भागके अ॰ २२मे शिवके योगाचार्य होनेका और उनके शिष्य-प्रशिष्योंका विशद वर्णन है। शिवपुराणका कथन है—

युगावर्तेषु शिष्येषु योगाचार्यस्वरूपिणा।
तत्र तत्रावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्तते॥
संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः।
रुरुर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः॥
ते च पाशुपता ज्ञेयाः संहितानां प्रवर्तकाः।
तत्संततीनां गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः॥

प्रतियुगके आरम्भमें श्रीशिव योगाचार्यके रूपमें अवतीर्ण होकर शिष्योंको शिक्षा प्रदान करते हैं। चार बड़े ऋषियोंने इस (योग-शास्त्र) का संक्षेपमें वर्णन किया। उनके नाम रुरु, दधीच, अगस्त्य और महायशा उपमन्यु हैं। ये पशुपतिके उपासक और पाशुपत-संहिताओंके प्रवर्तक हुए। इनके वंशमें सैकड़ों-हजारों गुरु उत्पन्न हुए। शिवपुराणकी वायवीय संहिताके उत्तर-भागके १०वे अध्यायमें इन योगाचार्यों और उनके शिष्य-प्रशिष्योंका सविस्तर वर्णन है और उनके नाम भी वहाँ दिये गये हैं। प्रथम २८ योगाचार्य हुए, ४×७=२८। इन अट्ठाईसके चार-चार शिष्य हुए, जिनकी संख्या २८×४=११२ हुई। इनमे सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, कुथुमि, मित्रक आदिके भी नाम हैं। लिखा है कि संसारकी मङ्गल-कामना ही इनका व्रत है। इस अध्यायके अन्तका निम्नश्लोक बड़े महत्त्वका है, वह इस प्रकार है—

स्वदेशिकानिमान् मत्वा नित्यं यः शिवमर्चयेत्।
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥

ही रहा था कि एक अति प्रकाशमान ज्योतिर्लिङ्ग उत्पन्न हुआ। उस लिङ्गके प्रादुर्भावको देखकर दोनोंने उसे अपनी कलह-निवृत्तिका साधन समझ यह निश्चय किया कि जो कोई इस लिङ्गके अन्तिम भागको स्पर्श करे वही परमेश्वर है। वह लिङ्ग नीचे और ऊपर दोनों ओर था। ब्रह्माजी तो हंस बनकर लिङ्गका अग्रभाग ढूँढ़नेको ऊपर उड़े और विष्णुजीने अति विशाल एवं सुदृढ़ वराह बनकर लिङ्गके नीचेकी ओर प्रवेश किया। इसी भाँति दोनों हजारों वर्षतक चलते रहे, परंतु लिङ्गका अन्त न पाया। तब दोनों अति व्याकुल हो लौट आये और बार-बार उस परमेश्वरको प्रणाम कर उसकी मायासे मोहित हो विचार करने लगे कि यह क्या है कि जिसका कहीं न अन्त है न आदि! विचार करते-करते एक ओर प्लुतस्वरसे 'ओ३म्, ओ३म्' यह शब्द सुनायी पड़ा। शब्दका अनुसंधान करके लिङ्गकी दक्षिण ओर देखा तो ॐकारस्वरूप स्वयं शिव दीख पड़े। भगवान् विष्णुने शिवकी स्तुति की। स्तुतिको सुनकर महादेवजी प्रसन्न हो कहने लगे—'हम तुमसे प्रसन्न हैं, तुम भय छोड़कर हमारा दर्शन करो। तुम दोनों ही हमारी देहसे उत्पन्न हुए हो। सब सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा हमारे दक्षिण अङ्गसे और विष्णु वाम अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं। हम तुमसे प्रसन्न हैं, वर माँगो।'

विष्णु और ब्रह्माने शिवजीके चरणोंमें दृढ़ भक्ति माँगी।

पार्वती-स्वयंवर

जिस समय हिमालयने पार्वतीका स्वयंवर किया था, उस समय उनके निमन्त्रणसे अनेकों देव, नाग, किंनर आदि इकट्ठे हुए। शिव भी एक बालकके रूपमें आये और पार्वतीके उत्सङ्गमें जाकर बैठ गये। बालकके इस उद्धत व्यवहारको देख सब देवगण बहुत क्रुद्ध हुए और एक-एक करके उस बालकपर प्रहार करनेको अग्रसर हुए। परंतु वह बालक कोई साधारण बालक न था। वह तो स्वयं सदाशिव थे। सदाशिवने अपने ओजद्वारा देवताओंके अङ्गोंको स्तम्भित एवं अस्त्रोंको कुण्ठित कर दिया। देवताओंके इस पराभवको देखकर ब्रह्माने ध्यानपूर्वक विचार किया तो ज्ञात हुआ कि यह बालक स्वयं शिव है। तब तो वे महादेवजीके चरणोंमें लोट गये और इस प्रकार स्तुति की—

स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्तकः।
बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहंकारस्त्वमीश्वरः॥
भूतानामिन्द्रियाणां च त्वमेवेश प्रवर्तकः।
तवाहं दक्षिणाद्धस्तात् सृष्टः पूर्वं पुरातनः॥
वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः।
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम्॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता।
नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमो नमः॥
प्रसादात् तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः।
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः॥
कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवन्त्विमे*॥

ब्रह्माजीकी इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर शिवजीने कृपा करके देवताओंको पूर्ववत् पुष्ट कर दिया।

उपर्युक्त स्तुतिसे ज्ञात होता है कि भगवान् शिवकी ब्रह्माजीने पूर्ण ब्रह्म परमेश्वरके रूपमें ही आराधना की है। उपर्युक्त श्लोकोंमें जिस पुरुषकी वन्दना की गयी है, उससे श्रेष्ठतर एवं उच्चतर कोई हो ही नहीं सकता। समस्त लोकोंका स्रष्टा एवं प्रकृतिका प्रवर्तक एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर ही हो सकता है।

शिव-विवाहके समय विष्णुके प्रति ब्रह्माजीके निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय हैं।

'हे विष्णु! आप और भगवती पार्वती शिवजीके वाम-अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं। शिवजीकी मायाहीसे भगवती हिमालयकी कन्या हुईं। सब जगत्की, आपकी और हमारी यह पार्वती माता हैं और शिवजी पिता हैं। शिवजीकी मूर्तियोंसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है। भूमि, जल, अग्नि, आकाश, पवन, सूर्य, चन्द्र—ये सब शिवजीकी मूर्तियाँ हैं। यह पार्वती शुक्ल, कृष्ण, लोहित वर्णोंसे युक्त अजा अर्थात् माया हैं और आप भी प्रकृतिरूप हैं। अब हमारे और हिमालयके वचनसे शिवजीके प्रति पार्वतीजीको देना उचित है।'

इसपर परम शिव-भक्त विष्णुभगवान्ने उठकर शिवजीको प्रणाम किया और उनके चरणोंको धोकर उस चरणोदकको अपने, ब्रह्माजीके और हिमालयके मस्तकपर छिड़का और पार्वतीको शिवजीके अर्पण किया।

* लिङ्गपुराण, पूर्वार्ध, अध्याय १०२।

महालिङ्गोद्भव

शरभावतार

लिङ्गपुराणके ९६ वें अध्यायमें शरभरूप शिवका नृसिंहरूप विष्णुको परास्त करनेकी कथा बड़ी विचित्र है।

हिरण्यकशिपुका वध करके विष्णुरूप नृसिंह भयंकर गर्जना करने लगे। उनकी भयंकर गर्जनाके घोर शब्दसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक काँप उठे। सब सिद्ध, साध्य, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता भी अपने-अपने प्राण बचानेके लिये भयभीत हो भागे। वे लोकालोक पर्वतके शिखरपरसे अति विनम्र-भावसे नृसिंहजीकी स्तुति करने लगे। परंतु नृसिंहजी इसपर भी शान्त न हुए। तब तो सब देवता अपनी रक्षाके लिये मन्दराचलपर शिवजीके समीप गये। देवताओंकी दीन दशा देखकर शिवजीने प्रसन्नवदन होकर कहा कि हम शीघ्र ही नृसिंहरूप अग्निको शान्त करेंगे।

देवताओंकी स्तुति सुनकर नृसिंहरूप तेजको शान्त करनेके लिये महादेवजीने भैरवरूप अपने अंश वीरभद्रका स्मरण किया। वीरभद्र उसी क्षण उपस्थित हुए। महादेवजीने वीरभद्रसे कहा—'वत्स! इस समय देवताओंको बड़ा भय हो रहा है। इस कारण नृसिंहरूप अग्निको शीघ्र जाकर शान्त करो। पहले तो मीठे वचनोंसे समझाओ, यदि न समझे तो भैरवरूप दिखलाओ।'

शिवजीकी यह आज्ञा पाकर शान्तरूपसे वीरभद्र नृसिंहके समीप जाकर उनको समझाने लगे। इस समयका वीरभद्र-विष्णु-संवाद बड़ा मार्मिक है। इसमें भगवान् विष्णुके ऊपर शिवका [illegible] भलीभाँति प्रदर्शित होता है।

[illegible] —'हे नृसिंहजी! आपने जगत्के [illegible] लिया है और परमेश्वरने भी जगत्की [illegible] दे रखा है। मत्स्यरूप धरकर आपने इस जगत्की रक्षा [illegible]। और वराहरूपसे पृथिवीको धारण किया, इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुका संहार किया, वामनरूप धारण कर राजा बलिको बाँधा। इस प्रकार जब-जब लोकोंमें दुःख उत्पन्न [illegible]ता है, तब-तब आप अवतार लेकर सब दुःख दूर करते हैं। आप सब जीवोंके उत्पन्न करनेवाले और प्रभु हैं। आपसे अधिक कोई शिवभक्त नहीं।'

वीरभद्रजीके शान्तिमय वचनोंसे नृसिंहजीकी क्रोधाग्नि शान्त न हुई। उन्होंने उत्तर दिया—'वीरभद्र! तू जहाँसे आया है वहीं चला जा।' इसपर नृसिंहजीसे वीरभद्रका बहुत विवाद हुआ। अन्तमें शिवकृपासे वीरभद्रका अति दुर्धर्ष, आकाशतक व्यापक, बड़ा विस्तृत एवं भयंकर रूप हो गया। उस समय शिवजीके उस भयंकर तेजस्वी स्वरूपमें सब तेज विलीन हो गये। इस रूपका आधा शरीर मृगका और आधा शरभ पक्षीका था। शरभरूप शिव अपनी पुच्छमें नृसिंहको लपेटकर छातीमें चोंचका प्रहार करते हुए जैसे सर्पको गरुड़ ले उड़े, ऐसे ले उड़े। फिर तो नृसिंहजीने शिवजीसे क्षमा-याचना की और अति विनम्रभावसे स्तुति की।

सुदर्शन-चक्रकी कथा

एक बार शिवजीको प्रसन्न करनेके हेतु विष्णुने बड़ा उग्र तप किया। उस समय उन्होंने 'शिवसहस्रनाम-स्तोत्र' के लिये शिवजीको अर्पित करनेके अर्थ एक सहस्र कमल एकत्रित किये। शिवजीने कौतुकवश एक कमल उन कमलोंमेंसे लुप्त कर दिया। जब सहस्रनामका उच्चारण समाप्त करनेको हुए तो विष्णुको ज्ञात हुआ कि एक कमल कम है। बस उन्होंने उसके स्थानपर अपना नेत्र निकालकर शिवजीको समर्पित कर दिया। फिर तो देवादिदेवने प्रसन्न हो विष्णुजीको दर्शन दिया और उनको उनके उन नेत्रोंकी जगह कमल-सरीखे नेत्र प्रदान किये। तभीसे विष्णुका नाम पुण्डरीकाक्ष पड़ा। सुदर्शन-चक्र भी उसी समय शिवजीने विष्णुको दिया।

इसी प्रकार और कई कथाएँ लिङ्गपुराणमें ऐसी हैं जिनमें देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु और ब्रह्मासे शिवका उत्कर्ष दिखाया गया है।

वस्तुतः एकेश्वरवादपर हिन्दू-सिद्धान्त बहुत ही स्पष्ट है। लिङ्गपुराणमें जिस प्रकार शिवको परब्रह्म परमात्मा-स्वरूप माना है, उसी प्रकार अन्य पुराणोंने विष्णु, देवी आदिको सर्वशक्तिमान् माना है। परंतु सर्वशक्तिमान् परब्रह्म, परमेश्वरस्वरूप है एक ही व्यक्ति। किसी भी पुराणमें परमेश्वरकी शक्तिका भागीदार नहीं मिलता। पूर्ण पुरुषकी ही भिन्न-भिन्न नामोंसे उपासना की गयी है। कहीं उसको विष्णु कहते हैं कहीं ब्रह्मा, कहीं शिव और कहीं गणेश। जैसी जिसकी रुचि हुई उपास्यदेवका नाम रख लिया और लगा उसका गुणगान करके अपना जन्म सफल करने। हिन्दू-विचारोंका अद्भुत ऐक्य ही हिन्दू-धर्मकी महान् विशेषता है।

शिव-तत्त्व-विचार

(श्रीविनायक नारायण जोशी, साखरे महाराज)

किसी भी देवताका नाम सुनते ही उसका शास्त्रप्रतिपादित आकार याद आ जाता है। 'विष्णु' शब्दके श्रवणसे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण की हुई श्यामसुन्दर-आकृति मनमें उतर आती है। 'गणपति' शब्दके श्रवणसे गज-वदन और विशाल उदरकी आकृति ध्यानमे आ जाती है। उसी प्रकार राम, शंकर, कृष्ण आदि शब्दोंके श्रवणसे उनके आकार मनमें आ जाते हैं। मनुष्यके विषयमें भी यही बात है, परंतु थोड़ा-सा विचार करनेपर यह बात ध्यानमें आ जायगी कि केवल मनमें आ जानेवाला अथवा दृष्टिगोचर होनेवाला आकार ही वाच्य-पदार्थ नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी पुरुषका पिता मरणोन्मुख-दशामें है, उसका पुत्र परदेशसे पिताके दर्शनके लिये आ रहा है, परंतु दुर्दैवसे उसके दरवाजेपर आते-आते पिताकी मृत्यु हो गयी। पुत्रने यथाविधि पिताका देह-संस्कार किया तथापि वह शोक प्रकट करते हुए अपने मित्रसे कहता है कि 'मैं इतनी शीघ्रतासे यहाँपर आया, परंतु अभाग्यवश पिताजीसे भेंट न हो सकी।' इन सब बातोंसे यही बात निश्चित होती है कि पिताके केवल स्थूल शरीरको ही वह पिता नहीं समझता था बल्कि पितृशरीरमें जो चैतन्य जीव था, उसे ही वह पिता मानता था।

अब यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि 'जीव' क्या चीज है ? इसका निर्णय जीवकी ही बुद्धिसे होना प्रायः असम्भव है। हाथ-पैर आदि आँखोंसे दिखलायी पड़ते हैं, इसलिये उनका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियोंके द्वारा हो सकता है, परंतु 'जीव' पदका वाच्यार्थ इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होना सम्भव नहीं है। अदृश्य पदार्थोके ज्ञानके लिये श्रुतिकी ही शरण लेनी पड़ती है। कहा भी है— 'अदृष्टार्थे श्रुतिरेव बलीयसी।' मृत पुरुषकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी कौन है, इसका निर्णय सामान्य बुद्धिके मनुष्यसे नहीं हो सकता, इसके लिये कायदा-कानूनके जानकार न्यायाधीशकी ही आवश्यकता होती है और न्यायाधीश भी मनमाना निर्णय नहीं कर सकता, उसे कानूनके अनुसार चलना पड़ेगा, क्योंकि उत्तराधिकार अदृश्य होनेसे उसकी गतिको केवल कानून (शास्त्र) ही जान सकता है। इसी प्रकार जीव और जीवाधिपति शिवका यथार्थ स्वरूप बतलानेका एकमात्र अधिकार भी श्रुतिमाताको ही है।

जीवके स्वरूपके सम्बन्धमें श्रुतिका अभिप्राय केवल श्रुति-वाक्योंसे ही जान लेना सामान्य जीवोंकी बुद्धिके परेकी बात है। उस अभिप्रायको जाननेके लिये, उपनिषद्-वाक्योंके तात्पर्यका निर्णय करनेवाले भगवान् बादरायणाचार्य और उनके सूत्रोंके भाष्यकारोंके ग्रन्थोंके आधारपर ही हमें विचार करना चाहिये। इन महापुरुषोंका यही कहना है कि स्थूल शरीरके भीतर सर्वस्थूल शरीरव्यापी अन्तःकरण—बुद्धि-तत्त्व है, यह अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंके सत्त्वगुणके अर्ध-भागका कार्य है। वैसे ही प्रत्येक भूतके सत्त्वगुणके अर्ध-भागसे श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ सत्त्वगुणके ही कार्य हैं। पञ्चमहाभूतोंके रजोगुणके अर्ध-भागसे पञ्चप्राण और पञ्चकर्मेन्द्रियाँ हुई हैं। पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चप्राण और अन्तःकरण इन—सोलह पदार्थोके समुदायको सूक्ष्म-लिङ्गशरीर कहते हैं। इनमें पञ्चप्राण और पञ्चकर्मेन्द्रियाँ ज्ञानशून्य हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य पदार्थोंका ज्ञान करा देती हैं, ऐसा प्रतीत होता है, तथापि उनमें अन्तःकरणके ज्ञान-स्रोतसे ही ज्ञान-शक्ति आती है। सूक्ष्म विचारसे यही निश्चित होता है कि अन्तःकरणकी ज्ञान-रूप वृत्ति ही ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा बाहर जाकर शब्दादि बाह्य स्थूल पदार्थोंको विषय करती है अर्थात् उन पदार्थोंका ज्ञान करा देती है। यहाँपर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पञ्चमहाभूत जड हैं, उनके सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुआ अन्तःकरण भी जड होना चाहिये। ऐसे जड अन्तःकरणमें ज्ञान कैसे हो सकता है ? इसका समाधान यह है कि श्रुति-वचनोंसे यह सिद्ध है कि जगत्का कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म ज्ञानरूप ही है। ब्रह्मशब्दकी व्युत्पत्तिसे उसकी निरतिशय व्यापकता सिद्ध होती है अर्थात् ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिसमें वह व्याप्त न हो। उपर्युक्त स्थूल-सूक्ष्म-संघातोंमें भी ब्रह्म व्याप्त है। जिस प्रकार बिजलीके तारोंमें प्रकाश सर्वत्र व्याप्त रहनेपर भी वह चाहे जहाँसे प्रकट नहीं हो पड़ता, प्रत्युत जहाँ उसमें 'बल्ब' जोड़ा जाता है वहीं प्रकट होता है, उसी प्रकार जितने अंशमें ज्ञानरूप ब्रह्मके साथ अन्तःकरणका सम्बन्ध होता है, उतने ही अंशमें

उसके सामान्य ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। इसीको शास्त्रीय परिभाषामें 'आभास' कहते हैं। और अन्तःकरणरूप उपाधिमें जो ब्रह्मांश होता है, उसे उसकी प्रकाशकताके कारण 'साक्षी', निर्विकारताके कारण 'कूटस्थ', व्यापकताके कारण 'आत्मा' और 'पारमार्थिक जीव' संज्ञाएँ प्राप्त हुई हैं। अर्थात् अन्तःकरणव्याप्त ब्रह्मांश कूटस्थ+अन्तःकरण+ आभास=जीव है। यह जीव 'जीव' पदका वाच्य है और केवल कूटस्थ जीव-पदका लक्ष्य है। वास्तवमें कूटस्थ अपरिच्छिन्न, निर्विकार ब्रह्म ही है, परंतु अन्तःकरण-उपाधिके कारण उसे जीवत्व-धर्म प्राप्त हो जानेसे अन्तःकरणके सर्व धर्म भ्रमसे कूटस्थमें भासने लगते हैं। अर्थात् अन्तःकरणकी परिच्छिन्नता, काम, संकल्प, सुख-दुःख, धर्माधर्म, श्रद्धा-अश्रद्धा आदि धर्म अन्तःकरणमें अभिव्यक्त हुए आत्मप्रकाशमें—जिसे ऊपर 'आभास' कहा गया है—भासते हैं और आभासके अज्ञानसे ये ही गुण ब्रह्मरूप आत्मामें भासने लगते हैं। दर्पणके दाग या मलके दोष प्रतिबिम्बमें दिखायी देते हैं तथापि वे दोष होते हैं दर्पणमें ही, न कि प्रतिबिम्बमें। वैसे ही स्थूल-सूक्ष्म-संघातोंके धर्म वास्तवमें 'आभास' में न होते हुए भी 'आभास' उन धर्मोंको अपने ही मानता है, यही जीवका जीवत्व है और इसीका नाम संसार है।

जैसा कि लेखके प्रारम्भमें कहा गया है कि 'देवदत्त' कहते ही देवदत्तके शरीरका स्थूल आकार दृष्टिके सामने आ जाता है। वैसे ही विष्णु, शंकर, गणपति आदि देवताओंके नामोच्चारणके साथ ही उनके आकार दृष्टिके सामने आ जाते हैं। विचार करनेपर जिस प्रकार यह निश्चित होता है कि देवदत्तका स्थूल शरीर ही देवदत्त नहीं है, उसका चैतन्यविशिष्ट स्थूल-सूक्ष्म शरीर-संघात ही देवदत्त है, उसी प्रकार देवताओंके नाम सुननेसे उनके जो-जो आकार मनमें आ जाते हैं, केवल वे ही देवता नहीं हैं, बल्कि यह समझना चाहिये कि उनके आकारविशिष्ट चैतन्यके ही 'शंकर', 'विष्णु' आदि नाम हैं। ऐसे ईश्वरके अनुग्रहसे ही जीवको गुरुद्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। अब ईश्वरके स्वरूपके विषयमें शास्त्र क्या कहते हैं, इसका विचार किया जा रहा है।

संसारका अर्थ है जन्म-मरणका प्रवाह। जीव इस प्रवाहमें बहा जा रहा है, इस संसारके दुःखसे मुक्त होनेके उद्देश्यसे ही वह जीवनभर कष्ट सहन करता है, परंतु जबतक ईश्वरके अनुग्रहसे वैराग्य उत्पन्न होकर श्रोत्रिय गुरुके उपदेशसे जीव-ब्रह्मके ऐक्यका ज्ञान निःसंदिग्ध-भावसे हृदयमें उदित नहीं होता, तबतक अन्य किसी भी उपायसे सांसारिक दुःखकी सर्वथा निवृत्ति नहीं हो सकती, इस बातकी घोषणा यह **'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** श्रुति कर रही है।

जिस ईश्वरके प्रसादसे वैराग्य आदिकी प्राप्ति होकर जीव जन्म-मरणरूप संसार-दुःखसे निवृत्त हो जाता है और निरतिशय आनन्दरूप मोक्षको प्राप्त करता है, उस ईश्वरके स्वरूपको अवश्य जान लेना चाहिये। जैसे ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि कूटस्थ, अन्तःकरण, आभास—इन तीनोंको मिलाकर जीव कहते हैं, वैसे ही शास्त्रकारोंने शुद्धब्रह्म+माया+आभास=ईश्वर—इस प्रकार ईश्वरका स्वरूप स्थिर किया है। जिस प्रकार जीवके अन्तःकरण-उपाधिमें काम-क्रोध, सुख-दुःख, धर्माधर्म आदि रहते हैं, परंतु भासते हैं कूटस्थमें, उसी प्रकार शास्त्र यह भी प्रतिपादन करता है कि ईश्वरस्वरूपकी माया-उपाधिमें अचिन्त्य ऐश्वर्य, दयालुत्व, भक्तपर अनुग्रह करना आदि जो अनन्त गुण हैं वे सब अधिष्ठान—शुद्ध ब्रह्ममे भासमान होते हैं।

जीव और ईश्वरके स्वरूपमें तीन-तीन ही पदार्थ हैं तथापि जीव अन्तःकरणोपलक्षित अविद्या-उपाधिके अधीन रहता है और ईश्वरानुग्रहसे मुक्त होनेतक वह अपनेको दीन-दुःखी मानता है। परंतु ईश्वरके सम्बन्धमें इसके विपरीत स्थिति है, अर्थात् ईश्वरस्वरूपकी माया-उपाधि ईश्वरके अधीन होनेसे ईश्वर नित्य-मुक्त है। * यद्यपि जेलमें जेलर और कैदी दोनों ही रहते हैं तथापि जेल जेलरके अधीन रहता है और कैदी जेलके अधीन रहता है। जेलरूप उपाधि दोनोंकी समान है तथापि कैदीका उपास्य जेलर है, वैसे ही जीव और ईश्वरकी उपाधि अकेली माया होनेपर भी माया ईश्वरके अधीन होनेसे मायाविशिष्ट परमात्मा अर्थात् कल्याणकारक शिव ही

---

* जीवेशावाभासेन करोति माया । माया चाविद्या च स्वयमेव भवति।

'माया अपने स्वरूपमें आभासको लेकर जीव और ईश्वर (भेद) करती है। जीव-भेद करते समय उसी मायाकी 'अविद्या' संज्ञा होती है।'

र्वजीवोंके उपास्य हैं। यही मायाविशिष्ट परमात्मा भक्तोंपर नुग्रह करनेके लिये शिव, विष्णु, गणपति, राम, कृष्ण आदि प धारण करते हैं। मायाविशिष्ट ईश्वर शिवपदका वाच्य है र शुद्ध ब्रह्म शिव-पदका लक्ष्य है, ऐसा—

आनन्दरूपः सर्वार्थसाधकत्वेन हेतुना।
सर्वसम्बन्धवत्त्वेन सम्पूर्णः शिवसंज्ञितः॥

(शिवपुराण)

—भगवान् व्यासजीने वर्णन किया है। जिसे रानुग्रहसे आचार्य—गुरुके द्वारा असंदिग्धभावसे ऐसा बोध ता है कि शिवपदका लक्ष्य जो शुद्ध ब्रह्म-परमात्मा है वही ा आत्मा है, वह शरीरपात होनेतक जीवन्मुक्तिका सुख-लाभ रता है और देहपातके अनन्तर विदेह—कैवल्यपदको प्राप्त ता है।

कुछ बेसमझ लोग यह कुशङ्का करते हैं कि मङ्गल-रूप भगवान् शिव जो सर्व ऐश्वर्योंका परित्याग कर दरिद्रके मान रहते है, श्मशानमें वास करते हैं और शरीरमें भस्म ाकर व्याघ्रचर्म परिधान करते हैं, यह सब क्यों ? इसका हस्य, सूत्रभाष्यकी 'रत्नप्रभा' टीकामें श्रीरामानन्दस्वामीने म्नलिखित श्लोकमें खोला है—

श्रीगौर्या सकलार्थदं निजपदाम्भोजेन मुक्तिप्रदं
प्रौढं विघ्नवनं हरन्तमनघं श्रीढुण्ढितुण्डासिना।
वन्दे चर्मकपालिकोपकरणैर्वैराग्यसौख्यात् परं
नास्तीति प्रदिशन्तमन्तविधुरं श्रीकाशिकेशं शिवम्॥

इसका सार यही है कि इस वृत्तिको धारणकर श्रीशंकरने यही सूचित किया है कि वैराग्यसुखसे बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

उपर्युक्त विवेचनसे यही सिद्ध हुआ कि शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा ही 'शिव' पदका लक्ष्य है और मायाविशिष्ट परमात्मा शिवपदका वाच्य है। वाच्यार्थकी अपेक्षा लक्ष्यार्थ श्रेष्ठ होता है, यही नियम है। शिवपुराणमें व्यासजीने देवताओंमें शिवको सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। यह सर्वश्रेष्ठत्व वहाँ शिवपदके लक्ष्यार्थकी दृष्टिसे है। इसी प्रकार विष्णुपुराणमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा विष्णुभगवान्‌की जो श्रेष्ठता वर्णन की गयी है, वह भी लक्ष्यार्थकी दृष्टिसे ही है और इसी दृष्टिसे गणपति, राम, कृष्ण आदि देवताओंकी श्रेष्ठताका वर्णन है। जिस पुराणमें जिस देवताकी सर्वश्रेष्ठताका वर्णन किया गया है, वह लक्ष्यार्थकी दृष्टिसे ही है और उसमें जो अन्य देवताओंकी निकृष्टताका वर्णन किया गया है वह वाच्यार्थकी दृष्टिसे है। जिसे इसका यथार्थ ज्ञान होता है उसे पुराणोंके वाक्योंमें परस्पर विरोध नहीं प्रतीत हो सकता और न वह अन्य देवताके उपासकोंसे विरोध ही कर सकता है।

शिवनामामृत

शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते। संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने। शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः। पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि॥
शिवेति नामपीयूषवर्षाधारापरिप्लुताः। संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन॥
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्। तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा॥

(शि० पु० वि० २३। २९—३३)

'जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ हो संसाररूपी समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे ाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसारके मूलभूत पातकरूपी पादपोंका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश ो जाता है। जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिव-नामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापोंके दावानलसे दग्ध ोनेवाले लोगोंको उस शिव-नामामृतके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टिजनित धारामें गोते लगा हे हैं, वे संसाररूपी दावानलके बीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते। जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगोंकी सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है।

जगद्गुरु-तत्त्व

(भा० ध० म० के एक साधु)

सत्-चित् और आनन्दके एकाधारमें अद्वैतानुभव ही स्व-स्वरूपका अनुभव है। यह सृष्टिसे अतीत जो स्व-स्वरूपका अनुभव है वह परम मन्त्रमय है, वही महादेव सदाशिवका परम मङ्गलमय शिवरूप है, वही निर्गुण ब्रह्मपद है। तीनों गुणोंसे अतीत, अद्वैतरूपमें सृष्टिसे भी परे, परममङ्गलके आधारभूत शिवका यही निर्गुण स्वानुभव है। इसके अतिरिक्त सदाशिवरूपी महादेवी-आलिङ्गित महादेवका जो स्वरूप है वही सगुण ब्रह्मका स्वरूप है। उसी रूपको ईश्वर कहते हैं तथा उसी रूपकी वैष्णवगण महाविष्णु, सौरगण सूर्यदेव, शाक्तगण महादेवी, गाणपत्यगण गणपति और शैवगण महादेव नामसे अपने-अपने ढंगपर उपासना करते हैं। सगुणरूपमे गुणमयी ब्रह्मशक्ति ब्रह्मरूपसे अलग होकर, महादेवके साथ आलिङ्गित रहकर जगत्प्रपञ्चकी सृष्टि, स्थिति और लय करती है। महादेवी ब्रह्ममयी प्रकृति ही निर्गुण ब्रह्मको सगुण बनानेका कारण होती है। सगुण पञ्चोपासना-सम्बन्धी भागवत, देवीभागवत, शिवपुराण आदि पञ्चोपासनाके अलग-अलग पुराणोंमें निर्गुण ब्रह्मसे सगुण ब्रह्मके स्वानुभवका जो रहस्य है वह रूपान्तरसे इसी विचारको पुष्ट करता है। केवल शिवोपासनासम्बन्धी पुराणोंमें महादेव और महादेवीके संयोग और वियोग, विहार और लीला, जन्म और विवाह आदि मधुर चरित्रोंका वर्णन सबसे अधिक पाया जाता है। इसका कारण यह है कि शिव-चरित्रमें जड और चेतन—इन दोनों राज्यो और प्रकृति तथा पुरुपसम्बन्धी दोनों वैभवोका विस्तार बहुत पाया जाता है। एक ओर सदाशिव ज्ञान-प्रदाता होनेसे देवताओंके ही महादेव नहीं हैं, वे ऋषियोके भी अधिनायक हैं। दूसरी ओर भगवान् ब्रह्मा केवल निगमके प्रकाशक हैं, रचयिता नहीं, क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं। परंतु भगवान् शिव आगमके प्रणेता हैं और निगमके स्मारक महर्षियोंके नेता हैं। इस कारण उन्हें 'मुक्तिदाता' कहनेमें सुगमता होती है। योगशास्त्रके तो भगवान् शिव आदिगुरु हैं। क्योंकि शिव-शक्तिका योग ही यथार्थ योग है। मन्त्रयोगमें बहिःप्रकृति तथा अन्तःप्रकृति नाम और रूपके योगसे समाधिरूपी शिवत्वकी प्राप्ति होती है। हठयोगमें प्राणरूपी शिव और सूक्ष्मशरीरावच्छिन्न प्रकृतिके योगसे समाधिरूपी शिवस्वरूपकी प्राप्ति होती है। लययोगमें कुलकुण्डलीरूपी शक्तिके जाग्रत् होकर सहस्रकमलमें स्थित सदाशिवके साथ आलिङ्गित होनेपर लययोग—समाधिका उदय होकर शिवत्वकी प्राप्ति होती है। ज्ञानमय राजयोग तो स्वयं ही शिवस्वरूप है और उसका फल साक्षात् शिवत्वकी प्राप्ति है। इस कारण यह मानना पड़ेगा कि परमयोगिराज शिव ही योगके प्रकाशक एवं प्रधान योगाचार्य हैं। विश्वजननी महामाया पार्वतीरूपसे उनकी सदा सेवा करती हैं, प्रकृतिके यावत् ऐश्वर्योका आकर नगराज हिमालय पार्वतीदेवीका पित्रालय हो सकता है, इसमें संदेह ही क्या है? ऐसी महादेवी शिवा जिनकी अर्धाङ्गिनी हैं, वही 'सदाशिव' कहला सकते हैं। हिमालय-दुहिता त्रिगुणमयी प्रकृति जिनको सदा आलिङ्गित किये रहती हैं उनका स्वरूप ही ब्रह्मका सगुण ध्यानगम्य स्वरूप हो सकता है, इसमें भी क्या संदेह हो सकता है? महामाया महादेवी भक्तको विद्यारूपिणी होकर अपनी गोदमें लेती हुई ब्रह्ममें लय हो जाती हैं, ऐसी महामायासे युक्त 'सदाशिव' ही मुक्तिदाता हो सकते हैं और वही यथार्थमें 'जगद्गुरु' कहा सकते हैं। यही कारण है कि शक्तिसहित शिवके रूपमें ही गुरुका ध्यान करनेकी आज्ञा तन्त्रोंमें पायी जाती है। यही परमात्माके निर्गुणसे सगुण हो जानेका मधुर रहस्य है और शिवजीकी लिङ्गपूजा वास्तवमें श्रीभगवान्के विराट्स्वरूपकी पूजा है, इस बातको लिङ्गपुराण और शम्भुगीता आदि शास्त्र हाथ उठाकर जगत्में उद्घोषित कर रहे हैं। इस प्रकार जो तत्त्वज्ञानी त्रिभावतत्त्वयुक्त ब्रह्म, ईश और विराट्का स्वानुभव प्राप्त कर सकते हैं, जो सगुण और निर्गुण ब्रह्मका रहस्य समझ सकते हैं, जो त्रिमूर्ति-तत्त्वकी उपासना करनेमें समर्थ होते हैं और जो सगुण पञ्चोपासनाकी उदारता और सगुण ब्रह्मके अवताररूपी लीलाविग्रहकी मधुर लीलाका यथार्थरूपसे आस्वादन कर सकते हैं, वे ही जगद्गुरुके साथ तादात्म्यभावसे युक्त होकर गुरुपदवाच्य होते हैं।

वेदोंमें शिव-तत्त्व

(श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

शिव ही ब्रह्म हैं

श्वेताश्वतरोपनिषद्के प्रारम्भमें ब्रह्मके सम्बन्धमें जिज्ञासा उठायी गयी है। पूछा गया है कि जगत्का कारण जो ब्रह्म है, वह कौन है?—

'किं कारणं ब्रह्म' (१।१)

श्रुतिने आगे चलकर इस 'ब्रह्म' शब्दके स्थानपर 'रुद्र' और 'शिव' शब्दका प्रयोग किया है—

'एको हि रुद्रः।' (३।२)

'स ······ शिवः।' (३।११)

समाधानमें बताया गया है कि जगत्का कारण स्वभाव आदि न होकर स्वयं भगवान् शिव ही इसके अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
(३।२)

अर्थात् जो अपनी शासन-शक्तियोंके द्वारा लोकोंपर शासन करते हैं, वे रुद्र भगवान् एक ही हैं। इसलिये विद्वानोंने जगत्के कारणके रूपमें किसी अन्यका आश्रयण नहीं किया है। वे प्रत्येक जीवके भीतर स्थित हैं, समस्त जीवोंका निर्माणकर पालन करते हैं तथा प्रलयमें सबको समेट भी लेते हैं।

इस तरह 'शिव' और 'रुद्र' ब्रह्मके पर्यायवाची शब्द ठहरते हैं। 'शिव' को 'रुद्र' इसलिये कहा जाता है कि अपने उपासकोंके सामने अपना रूप शीघ्र ही प्रकट कर देते हैं—

कस्मादुच्यते रुद्रः? यस्मादृषिभिः ········· द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते।

(अथर्वशिर० उप०४)

भगवान् शिवको 'रुद्र' इसलिये भी कहते हैं—ये 'रुत्' अर्थात् दुःखको विनष्ट कर देते हैं—'रुत्=दुःखम्, द्रावयति= नाशयतीति रुद्रः।'

तत्त्व एक है, नाम अनेक

शिवतत्त्व तो एक ही है—'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' (छा० उ० ६।२।१) उस अद्वय-तत्त्वके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं—'एकमेव सत्। नेह नानास्ति किंचन।' (बृ०उ० ४।४।१९) किंतु उस अद्वय तत्त्वके नाम अनेक होते हैं—'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' (ऋ० १।१६४।४६) अर्थात् उस अद्वय-तत्त्वको विज्ञगण अनेक नामोंसे पुकारते हैं।

रूप भी अनेक

नामकी तरह उस अद्वय-तत्त्वके रूप भी अनेक होते हैं। ऋग्वेदने 'पुरुरूपः' (२।१२।९) लिखकर इस तथ्यको स्पष्ट कर दिया है। दूसरी श्रुतिने उदाहरण देकर समझाया है कि एक ही भगवान् अनेक रूपमें कैसे आ जाते हैं—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठोपनिषद् २।२।९)

जैसे कण-कणमें अनुस्यूत अग्नि एक ही है, किंतु अनेक रूपोंमें हमारे सामने प्रकट होती है, वैसे भगवान् शिव एक होते हुए भी अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं। लोक-कल्याणके लिये *सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, ईशान* आदि अनेक अवतार-रूपोंमें वे प्रकट हुए हैं। (शिवपु०, शतरुद्रसंहिता)

अनेक नाम-रूप क्यों?

जिज्ञासा होती है कि शिव एक ही हैं, तब वे अनेक नामों और अनेक रूपोंको क्यों ग्रहण करते हैं? इसके उत्तरमें श्रुतिने कहा है—

प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा कृता।

(रुद्रहृदय, उप० १५)

अर्थात् प्रयोजनवश भगवान् शिव अपनी अनेक मूर्तियाँ बना लेते हैं—अब देखना है कि आखिर वह कौन-सा प्रयोजन है, जिसके लिये वह अद्वय-तत्त्व अनेक नामों और

रूपोंको ग्रहण करता है।

विविधताका कारण लीला

इसका समाधान ब्रह्मसूत्रसे होता है। वहाँ बताया गया है कि लीला (क्रीडा) के अतिरिक्त इस सृष्टि-रूप विविधताका और कोई प्रयोजन नहीं है—

'लोकवत् तु लीलाकैवल्यम्।'

(ब्रह्मसूत्र २।१।३३)

अर्थात् वह अद्वय-तत्त्व जो सृष्टिके रूपमें आता है, उसका प्रयोजन एकमात्र 'लीला' है। इसके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन नहीं है।

आप्तकामकी कामना व्याहत नहीं

प्रश्न उठता है कि ईश्वर तो आप्तकाम हैं अर्थात् उनकी सब इच्छाएँ पूर्ण रहती हैं, फिर वे खेलकी भी कामना कैसे कर सकते है? ईश्वरको 'आप्तकाम' कहना और फिर उनमें किसी कामनाका कहना तो व्याहत है, हमलोगोंको तो तरह-तरहके अभावोंसे जूझना पड़ता है, जिनकी पूर्तिके लिये हम कामनाएँ किया करते है। ईश्वरको तो किसी वस्तुका अभाव तो है नहीं, फिर वे कामना किसकी करेंगे? यह जिज्ञासा महात्मा विदुरको भी व्यग्र करती थी। उन्होंने मैत्रेयजीसे पूछा था—'ब्रह्मन्! भगवान् तो शुद्ध बोध-स्वरूप निर्विकार और निर्गुण हैं। फिर उनके साथ लीलासे ही गुण और क्रियाका सम्बन्ध कैसे हो सकता है? बालकोंमे जो खेलकी प्रवृत्ति होती है, वह कामना-प्रयुक्त होती है, किंतु भगवान् तो असंग हैं और नित्य-तृप्त हैं फिर लीलाके लिये संकल्प ही कैसे करेंगे?

ब्रह्मन् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः।
लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः॥
क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषान्यतः।
स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदान्यतः॥

(श्रीमद्भा० ३।७।२-३)

लीला स्वरूप-भूत

बात यह है कि ईश्वर प्रेम-रूप हैं—'तस्मात् प्रेमानन्दात्' (साम० उप०)। और प्रेममें क्रीडाएँ होती ही हैं। क्योंकि लीला प्रेमका स्वभाव है। प्रेम अपने प्रेमास्पदपर सब कुछ न्योछावर कर देना चाहता है। चाहता है कि वह अपने प्रियको निरन्तर देखता ही रहे। वह कभी नहीं चाहता कि उसका प्रेमास्पद कभी उसकी आँखोंकी ओटमें हो। प्रेममें इस तरहकी अनगिनत लीलाएँ चला ही करती हैं।

शिव ही लीला-स्थली और खेलनेवाले भी बन गये

किंतु जब ईश्वर एक है, अद्वितीय है, तब देखा-देखी और अर्पणका यह खेल किसके साथ खेले और कहाँ रहकर खेले?

इसकी पूर्तिके लिये सन्मय, चिन्मय और आनन्दमय प्रभु स्वयं स्थावर भी बन जाते हैं और जङ्गम भी। उनका स्थूल-से-स्थूल रूप है—ब्रह्माण्ड, जो क्रीडास्थलीका काम देता है—

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्॥

(श्रीमद्भा० २।१।२४)

अर्थात् यह ब्रह्माण्ड, जिसमे भूत, वर्तमान और भविष्यकी समस्त वस्तुएँ दीख पड़ती हैं। भगवान्का स्थूल-से-स्थूल शरीर है।

प्राकृत होनेके कारण प्रारम्भमें यह ब्रह्माण्ड निर्जीव था। भगवान्ने इसमे प्रवेशकर इसे जीवित कर दिया—'जीवो जीवेन जीवयत्' (श्रीमद्भा०)। फिर वे विराट्-पुरुषके रूपमें आये। उसके बाद दो पैरोंवाले और चार पैरोंवाले बहुत-से शरीर बनाये और अंशरूपसे इनमें भी प्रविष्ट हो गये—

पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः।
पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत्॥

(बृ० उ० २।५।१८)

इस तरह क्रीडास्थली भी तैयार हो गयी और खेलमें भाग लेनेवालोंकी भीड़ भी इकट्ठी हो गयी। इन प्राणियोंके जो अनन्त सिर, अनन्त आँखें और अनन्त पैर हैं, ये सब उन्हींके ब्रह्माण्ड-देहमें हैं। इसीसे प्रभुको 'सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्' कहा गया है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

(श्वे० उ० ३।१४)

भगवान् शिवने सब जगह आँखें, मुँह और पैर कर लिये—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
(श्वे० उ० ३।३)

इसलिये कि अपने प्रेमियोंको हजार-हजार नेत्रोसे निरन्तर निहारा करें, अपने प्रेमियोके अर्पित वस्तुओंका भोग लगा सकें, हजारों हाथोंसे उनका रक्षण कर सकें एवं उन्हें स्नेहसे गले लगा सकें और जहाँ-कहीं बुलाया जाय, वहाँ तत्काल पहुँच भी सकें। श्रुति कहती है—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

अर्थात् जो रुद्र भगवान् देवताओंकी उत्पत्ति एवं वृद्धिके हेतु हैं, जो विश्वके नाथ और सर्वज्ञ हैं तथा जिन्होंने सृष्टिके आदिमें हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया था, वे हमें शुभ बुद्धिसे संयुक्त करें।

इस तरह रुद्र भगवान् क्रीडा-स्थलीका निर्माणकर एवं जीवोंको प्रकटकर इनके शरीररूपी नगरमें, बाह्य-जगत्में बसकर लीला कर रहे हैं—

नवद्वारे पुरे देही हꣳसो लेलायते बहिः।
(श्वे० उ० ३।१८)

रुचिके अनुरूप रूप

प्रेममें रुचिका अत्यधिक महत्त्व है। लोगोंकी रुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है। रुचिके अनुरूप नाम और रूप न मिले तो उपासनामें प्रगति नहीं हो पाती। रुचिके विपरीत उपासनासे तुकाराम-जैसे संत भी घबड़ाते हैं। संत तुकारामकी रुचि विट्ठल-रूप गोपाल कृष्णपर थी। राम, कृष्ण, हरि नाम ही उन्हे रुचता था। इनके गुरुदेवने स्वप्नमें इन्हें इन्हीं नामों और रूपोंकी उपासनाकी दीक्षा दी। इससे संत तुकारामको बहुत ही संतोष हुआ। उन्होंने कहा है—

'गुरुने मुझे कृपासागर पाण्डुरंग ही जहाज दिया।' 'गुरुदेवने मुझे वही सरल मन्त्र बताया, जो मुझे अतिप्रिय था, जिसमें कोई बखेड़ा नहीं।'

भक्त अपनी रुचिके अनुसार भगवान्के नाम और रूपका वर्णन कर सकें, इसलिये वे अनन्त नामों और रूपोंमें आते हैं—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥
(श्रीरा० पू० उ० १।७)

अर्थात् ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, प्राकृत शरीरसे रहित है फिर भी वह उपासकोंके हितके लिये उनकी रुचिके अनुसार वरण करनेके लिये भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट होता है।

वही विराट्-पुरुषके रूपमें आता है, विष्णु, दुर्गा, गणेश और सूर्यके रूपमें आता है—**'ब्रह्मण्येवं हि पञ्चधा'** (श्रीरा० पू० उ० १।१०)

पाँच ही नहीं, सम्पूर्ण व्यक्त और अव्यक्तके रूपमें प्रभु ही तो आये हैं—

उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम्॥
(रुद्रहृदयोपनिषद् १०)

जिसकी रुचि उमापति नीलकण्ठ महादेवपर हो जाती है, वह ब्रह्मको इसी रूपमें पाना चाहता है—

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्॥
(कैवल्योपनिषद् ७)

यदि ब्रह्मकी अभिव्यक्ति इस रूपमें न होती तो इस रुचिवाले व्यक्तिकी आध्यात्मिक भूख कभी शान्त नहीं होती। बेचारेकी पारमार्थिक उन्नति मारी जाती। जब वह शास्त्रोंमें देखता है कि हमारे उपास्य ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ देव हैं, परब्रह्म हैं, यही ब्रह्मा हैं, यही शिव हैं, यही इन्द्र हैं, यही विष्णु हैं, यही प्राण, काल, अग्नि, चन्द्रमा हैं, जो कुछ स्थावर-जङ्गम है, सब हमारे ही प्रभु हैं, तब इस रुचिवाले उपासकको सब तरहसे संतोष हो जाता है—

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
(कैवल्योपनिषद् ८-९)

वही अद्वय तत्त्व देवीके रूपमें

इसी तरह यदि किसीकी रुचि जगदम्बाकी ओर है तो उसके लिये परमात्मा देवीके रूपमें आते हैं। वेद ऐसे

उपासकोंको बताता है कि सृष्टिके आदिमें एकमात्र ये देवी ही थीं। इन्हीं देवीने ब्रह्माण्ड पैदा किया, इन्हींसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र उत्पन्न हुए—

देवी ह्येकाग्र आसीत् सैव जगदण्डमसृजत्...... । तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत् रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्। गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्।...... सर्वमजीजनत्। (बह्वृचोपनिषद्)

यदि पराम्बा स्वयं अपने श्रीमुखसे कहे कि 'वत्स ! मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् हूँ। शून्य और अशून्य मैं ही हूँ। मैं ही आनन्द हूँ और अनानन्द हूँ, मैं ही विज्ञान हूँ और अविज्ञान हूँ, तो इन उपासकोंको कितना आश्वासन प्राप्त होता है—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यं चाशून्यं च। अहमानन्दानानन्दौ। विज्ञानाविज्ञाने अहम्।

(देव्युपनिषत्)

वही अद्वय रूप सूर्यके रूपमें

इसी तरह किसीका रुझान प्रत्यक्ष देवता सूर्यकी ओर होवे उसका हृदय इस ज्योतिर्मय देवतामें रम गया। ऐसे उपासकके लिये यदि ब्रह्म आदित्य-रूपमें न आते तो इसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति कैसे होती ? और वह आदित्य पूर्ण ब्रह्म न हो, केवल देवता हो तो भी उपासककी रुचिको ठेस लग सकती है। अतः ब्रह्म आदित्यके रूपमें आये। वेदने सूर्योपासकको आश्वासन दिया कि तुम जिसकी ओर झुके हो वह परब्रह्म परमात्मा है। वही अद्वय-तत्त्व है, उसीसे सबकी उत्पत्ति होती है—

आदित्याद्वायुर्जायते। आदित्याद्भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्ते। आदित्याज्ज्योतिर्जायते।आदित्याद्व्योम दिशो जायन्ते। आदित्याद्देवा जायन्ते। आदित्याद्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति। असावादित्यो ब्रह्म।

(सूर्योपनिषद्)

उपर्युक्त पंक्तियोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि शिव-तत्त्व एक ही है, उसीके ब्रह्मा, विष्णु, गणपति, दुर्गा, सूर्य आदि भिन्न-भिन्न नाम और रूप हैं। यदि भक्त उपमन्युका मन उस सत्-तत्त्वके शिव-रूप नाम और रूपमे अनुरक्त था, तो शैव उपनिषदों, पुराणों एवं आगमोंने उनके रुचिके अनुसार इस अद्वयतत्त्वका सर्वविध निरूपण किया। इसी तरह जिनकी रुचि दुर्गामें है, उनके लिये शाक्त उपनिषदों, पुराणों, आगमोंने इस अद्वयतत्त्वकी सर्वात्मकताका निरूपण किया। यही बात गणपति आदि देवताओंके लिये है।

इस तथ्यकी जानकारी न रहनेसे ही लोगोंको भ्रम हो जाता है कि शैव ग्रन्थोंमें शिवकी सर्वात्मकता बतायी गयी है और वैष्णव-ग्रन्थोमें विष्णुकी; जो परस्पर विरुद्ध है।

शिव सर्वात्मक हैं अतः सबका सम्मान करो

ऊपरकी पंक्तियोसे ईश्वरके सम्बन्धमे हिन्दू-धर्मकी अन्य धर्मोंकी अपेक्षा एक विशेषता भी दिखायी देती है, अन्य धर्म असत्‌को भगवान् नहीं मानते हैं, किंतु वेद कहता है कि सत्-असत् जो कुछ भी है सब ईश्वर है। ईश्वरके अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है—

तदात्मकत्वात् सर्वस्य तस्माद्भिन्नं नहि क्वचित्।

(रुद्रहृ०, उप० २७)

इस तरह वेदने मानवमात्रके लिये बहुत ही सुगम साधन प्रस्तुत कर दिया है। जब हम समस्त जड-चेतनको भगवन्मय देखते हैं, तब सबका सम्मान करना हमारे लिये आवश्यक हो जाता है। अपमान करनेवालेका भी हमको सम्मान ही करना होगा; क्योंकि वह भी शिव-तत्त्वसे भिन्न नहीं है। हमारे साथ उसका जो अभद्र व्यवहार हो रहा है, उसका मूल कारण तो वस्तुतः हम ही हैं। हमसे जो कभी अभद्रकर्म हो गया था, उसीका परिणाम हम भुगत रहे हैं। निमित्त भले ही कोई बन जाय। हमें तो निमित्तसे भी प्यार ही करना है—

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। २७)

भगवान् आदेश देते हैं कि सब प्राणियोंके भीतरमें बसे हुए मुझ परमात्माको उचित रूपसे दान और सम्मान प्रदान करो, मुझमें मैत्रीभाव रखो और सबको समान-दृष्टिसे देखो।

उपनिषदोंमें शिव-तत्त्व

(पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा, सांख्याचार्य)

आनन्दाभिलाषी जीवको संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये शिव-तत्त्वावगमन ही सुदृढ़ पोत है। उपनिषदोंमें विशदरूपसे इस तत्त्वका विवेचन है, उसीका सारांश यहाँ दिया जाता है।

कैवल्योपनिषद्में—

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं
शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्॥
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥

(१।६—९)

'जो अचिन्त्य है, अव्यक्त और अनन्तस्वरूप है, कल्याणमय है, प्रशान्त है, अमृत है, जो ब्रह्म अर्थात् निखिल ब्रह्माण्डका मूल कारण है, जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं, जो एक अर्थात् अद्वितीय है, विभु और चिदानन्द है, रूपरहित और अद्भुत है, उस उमासहित अर्थात् ब्रह्मविद्याके साथ परमेश्वरको, समस्त चराचरके स्वामीको, प्रशान्तस्वरूप, त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव अर्थात् परात्पर परब्रह्मको—जो सब भूतोंका मूल कारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्यासे परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यानके द्वारा प्राप्त करते हैं।

वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर—अविनाशी परमात्मा है, वही विष्णु है, वह प्राण है, वह काल है, अग्नि है, वह चन्द्रमा है। जो कुछ हो चुका है और जो भविष्यमें होनेवाला है, वह सब वही है, उस सनातन तत्त्वको जानकर प्राणी मृत्युके परे चला जाता है। इसके अतिरिक्त मुक्तिका दूसरा कोई मार्ग नहीं है।'

इस प्रकार सभी चराचर जगत् एवं अपने-आपको श्रीसदाशिवमें विराजमान जानकर विद्वान् शिवरूप हो जाता है। आत्मा (आप) को अरणि और ॐशिवको उत्तरारणि बनाकर इस ज्ञाननिर्मन्थन करनेके अभ्याससे बुद्धिमान्‌के सब पाप नष्ट हो जाते हैं और शिव-तत्त्वकी प्राप्ति होती है। भगवान् शिव ही निज मायाके कार्य—अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित जीवरूपसे प्रकट हैं। वही तदंश जीव शरीर धारणकर जाग्रदवस्थामें कलत्र-अन्न-पान आदि नाना भोग-विलास-पदार्थोंसे तृप्त होता है, स्वप्नके कल्पित सुख-दुःखोंको भोगता एवं सुषुप्तिकालमें तमोगुणसे अभिभूत हो आनन्दका अनुभव करता है और जन्मान्तरके कर्मयोगसे बार-बार जन्मादि ग्रहणकर तीनों अवस्थाओंमें सुख-दुःख-भोगरूप क्रीडा करता है। शिव-तत्त्ववेत्ता जीव जब यह अनुभव कर लेता है कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति आदि प्रपञ्चको जो भगवान् प्रकाशित कर रहे हैं वह सदाशिव मैं ही हूँ, तब वह संसारके सब बन्धनोंसे छूट जाता है। अवस्थात्रयमें जो-जो भोक्ता, भोग्य, भोग-पदार्थ हैं, उनसे भिन्न साक्षी चेतन मैं सदाशिव हूँ। जिसमें यह सकल प्रपञ्च उत्पन्न होता है, जिसमें प्रतिष्ठित है एवं जिसमें लय हो जाता है, वह अद्वितीय सत्-चित्-आनन्दस्वरूप शिव मैं ही हूँ। सब गुण मुझीमें विद्यमान हैं—

अणोरणीयानहमेव तद्व-
न्महानहं विश्वमहं विचित्रम्।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो
हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥

'मैं अणुसे भी अणु हूँ, इसी प्रकार मैं महान्‌से भी महान् हूँ, यह विचित्र विश्व मेरा ही स्वरूप है। मैं पुरातन पुरुष हूँ, मैं ईश्वर हूँ, मैं हिरण्मय पुरुष ब्रह्मा हूँ, मैं शिवस्वरूप हूँ।'

इन्द्रियरहित होकर भी उनके विषयोंको भोगता हूँ, मेरी शक्ति अचिन्त्य है—

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः।

अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम्॥
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो
न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति॥
न भूमिरापो न च वह्निरस्ति
न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम्॥
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम्।

'वह पाणि-पाद-विहीन, अचिन्त्यशक्ति परब्रह्म मैं हूँ। मैं नेत्रोंके बिना देखता हूँ, कानोंके बिना सुनता हूँ, बुद्धि आदिसे पृथक् होकर मैं ही जानता हूँ, मुझको जाननेवाला कोई नहीं है, मैं सदा चित्स्वरूप हूँ। समस्त वेद मेरा ही ज्ञान कराते हैं, मैं ही वेदान्तका कर्ता हूँ, वेदवेत्ता भी मैं ही हूँ। मुझे पुण्य-पाप नहीं लगते, मेरा कभी नाश नहीं होता और न जन्म ही होता है। और न मेरे शरीर, मन-बुद्धि और इन्द्रियाँ ही हैं। मेरे लिये न भूमि है, न जल है, न अग्नि है, न वायु और न आकाश ही है। जो इस प्रकार गुहा—बुद्धिके गह्वरमें स्थित, निष्कल (अवयवहीन) और अद्वितीय, सदसत्‌से परे सबके साक्षी मेरे परमात्मस्वरूपको जानता है, वह शुद्ध परमात्मस्वरूपको प्राप्त होता है।

इस प्रकार जो पुरुष 'शतरुद्रिय' का अध्ययन करता हुआ अपनेको मायासे परे, अद्वय, शिवस्वरूप समझता है वह अग्निपूत, वायुपूत होता है और ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णस्तेय, कृत्याकृत्य आदि पापोंसे छूटकर पवित्र हो जाता एवं संसारके जन्म-मरण-चक्रसे परे होकर शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है।

भगवान् शिवके महादेव, भव, दिव्य, शंकर, शम्भु, उमाकान्त, हर, मृड, नीलकण्ठ, ईश, ईशान, महेश, महेश्वर, परमेश्वर, भर्ग, शर्व, रुद्र, महारुद्र, कालरुद्र, त्रिलोचन, विरूपाक्ष, विश्वरूप, वामदेव, काल, महाकाल, कलविकरण, पशुपति आदि अनेक नाम हैं।

नारायणोपनिषद्‌में आपको अनेक नामोंसे नमस्कार किया गया है—

'शिवाय नमः, शिवलिङ्गाय नमः, भवाय नमः, भवलिङ्गाय नमः, शर्वाय नमः, शर्वलिङ्गाय नमः, बलाय नमः, बलप्रमथनाय नमः इत्यादि, एवं 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।'

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपति-र्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्।

नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतयेऽम्बिकापतये उमापतये पशुपतये नमो नमः।

श्वेताश्वतरोपनिषद्‌में भगवान् शिवकी सर्वव्यापकता और विराट्‌रूपताका वर्णन है। यथा—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

'वह भगवान् सब ओर मुख, सिर और ग्रीवावाला है, समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करता है और सर्वव्यापी है, इसलिये वह कल्याणस्वरूप परमेश्वर सब जगह पहुँचा हुआ है।'

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥
एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।

'जो रुद्र इन्द्रादि देवताओंकी उत्पत्तिका हेतु और वृद्धिका हेतु है तथा जो सबका अधिपति और महान् ज्ञानी (सर्वज्ञ) है, जिसने पहले हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया था, वह परमदेव परमात्मा हमलोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करें।

जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासन-शक्तियोंद्वारा इन सब लोकोंपर शासन करता है, वह रुद्र एक ही है।' (इसीलिये विद्वान् पुरुषोंने जगत्‌के कारणका निश्चय करते समय दूसरेका आश्रय नहीं लिया।)

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।

सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै-
द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

'सब जगह आँखवाला तथा सब जगह मुखवाला, सब जगह हाथवाला और सब जगह पैरवाला, आकाश और पृथिवीकी सृष्टि करनेवाला (वह) एकमात्र देव (परमात्मा) मनुष्य आदि जीवोंको दो-दो बाँहोंसे युक्त करता है (तथा) पक्षी-पतंग आदिको पाँखोंसे युक्त करता है।'

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

'वह परमपुरुष परमात्मा सब जगह हाथ-पैरवाला, सब जगह आँख, सिर और मुखवाला (तथा) सब जगह कानोंवाला है, (वही) ब्रह्माण्डमें सबको सब ओरसे घेरकर स्थित है।'

भक्तकी भगवान् रुद्रसे अपने आरोग्य, आयुर्वृद्धि, माता-पिता, पुत्र-कलत्र, मित्र-सेवक, सैनिक तथा पशु आदिकी रक्षाके निमित्त इस प्रकार प्रार्थना वर्णित है—

याते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि। यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्। प्रजां मा मे रीरिषः। आयुरुग्रं नृचक्षसं त्वा हविषा विधेम। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्। मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नोऽवधीः पितरम्मोत मातरम्मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः। मा न स्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः मा नो वीरान् रुद्र भामिनोऽवधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे।

शिवजी सर्वोत्तम देव हैं—संसारमें शिवजी ही सब कुछ हैं—

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित्।

इन्हीं देवके ज्ञानसे मुक्ति होती है—

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥

नारायण और जाबाल-उपनिषदोंमें रुद्र-गायत्री इस प्रकार निर्दिष्ट है—

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

नारायणोपनिषद्में मृत्युको जीतनेवाले शिवजीका प्रसिद्ध मृत्युञ्जय-मन्त्र बतलाया गया है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।

जाबाल और रामोत्तरतापिनी-उपनिषदोंमें—भगवान् रुद्र कुरुक्षेत्रमें प्राणियोंको अन्तसमय 'तारक' मन्त्रका उपदेश देते हैं जिसके द्वारा जीव अमर होते—मुक्ति पाते हैं—

अत्र (कुरुक्षेत्रे) हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति।

बृहज्जाबाल और रुद्राक्ष-जाबाल उपनिषदोंमें—शिव-माहात्म्य एवं शिव-स्मरणपूर्वक भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेसे शिव-सायुज्य-प्राप्ति वर्णित है—

यज्ज्ञानाग्निः स्वातिरिक्तभ्रमं भस्म करोति तत्।
बृहज्जाबालनिगमशिरोवेद्यमहं महः ॥
रुद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रतयोज्ज्वलम्।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं शिवमात्रपदं भजे ॥
.... शिवसायुज्यमाप्नोति।

गर्भोपनिषद्में बताया गया है कि गर्भस्थ जीव दुःख-निवृत्त्यर्थ भगवान् महेश्वरसे प्रार्थना करता है। जब जीव माताके गर्भमें आता है और नवम मासमें इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पूर्ण हो जाते हैं, ज्ञान-सामग्री (इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि) के उदय होनेसे इसको पूर्वजन्मोंमें किये शुभाशुभ कर्मोंका स्मरण आता है, तब यह पश्चात्ताप करता है कि—अफसोस !

मैंने सहस्रों जन्म लिये, विविध प्रकारके भोजन-पान किये, अनेक माताओंके स्तनोंका दूध पिया, अनेक बार जन्मा और मरा। जिन कुटुम्बियोंके पालन-पोषणके लिये मैंने अगणित पुण्य-पाप कर्म किये, वे प्यारे कुटुम्बी तो खा-पीकर, सुख भोगकर चल दिये, किंतु पापोंका फल—दुःख मैं अकेला ही भोग रहा हूँ। हाय ! इस दुःखके समुद्रमें पड़ा हुआ मैं नरकवडवाग्निमें जल रहा हूँ। इससे छुटकारेका मुझे कोई उपाय नहीं सूझ [illegible]। करूँ [illegible] ? हे महेश्वर ! इस घोर संक[illegible] यदि [illegible] छूट जाऊँ तो हे सब [illegible] दाता ! मैं आपका [illegible]

पूर्वं योनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः॥
जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः।
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्॥
एकाकी तेन दह्योऽहं गतास्ते फलभोगिनः।
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम्॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्॥

भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव जीवकी पुकार सुनते हैं और इसको गर्भके संकटसे मुक्त करते हैं। जय शिव !

शिव-तत्त्व-विचार

(पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा)

जगत्स्रष्टा परमात्माका नाम शिव है, इसका अर्थ कल्याण करनेवाला है। जब कल्याण करनेवाले दो पदार्थोंका विचार करते हैं तब वही शिवतर हो जाता है। सारे ब्रह्माण्डमें वही सबसे अधिक सुख-शान्ति देनेवाला है। इस कारणसे ऋषिलोग उसे शिवतम कहते हैं—

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

'ॐ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।'

(यजु० १६। ५१)

ईश्वरका एक नाम रुद्र है, क्योंकि दीन-दुखियोंके दुःखपर आँसू बहाता है तथा पापियोंको रुलाता है। उक्त शब्दमें 'रुद्' धातु है, जिसका अर्थ रोना है। वह मुक्तिका स्वामी है।

'अमृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।'

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।

(श्वेताश्वतर० १। ११)

कोई उसकी इच्छामें विघ्न नहीं उपस्थित कर सकता। वही उत्पन्न करता है, पालन करता है तथा संहारमें प्रवृत्त होता है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

(श्वेताश्वतर० ३। २)

कर्म-फल देनेके लिये सृष्टि होती है। उसमें जीव नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। उससे सबका छुटकारा केवल प्रलयमें होता है। वह माता-पिताके समान सबको सुला देता है। यह परमात्माकी बड़ी कृपा है। कोई-कोई इस भावसे भी उसे शिव—सुलानेवाला कहते हैं। उस समय किसीको तनिक कष्ट नहीं होता। वह सबके दुःखोंको हर लेता है अतएव हर है, दुःखोंका हरण करनेवाला है। जिनको इस करुणाका ज्ञान नहीं है, वे इस दुःखमोचन कार्यको तमोगुण कहते हैं। उनकी बुद्धिके लिये एक कविकी उक्ति है—

'विदन्ति मूढा न सुरूपमव्ययम्।'

वह कर्पूर-गौर है, सभी सत्त्वगुण उसीसे प्रकट होते हैं, सत्त्वगुण स्वच्छ प्रकाशमय है। उसमें जो दोषराहित्य है, वही गौरवर्णता है।

वह पापियोंको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक शूल—पीडा देता है, इसीसे वह त्रिशूलधारी है। लोहेके त्रिशूलसे कोई प्रयोजन नहीं—

'शूलत्रयं संवितरन् दुरात्मने
त्रिशूलधारिन् नियमेन शोभसे॥'

(शैव-सिद्धान्तसार)

प्रलयकालमें उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता, ब्रह्माण्ड श्मशान हो जाता है, उसकी भस्म और रुण्ड-मुण्डमें वही व्यापक होता है, अतएव 'चिता-भस्मालेपी' और 'रुण्डमुण्डधारी' कहलाता है न कि वह अघोरियोंके समान चिता-निवासी है।

कल्पान्तकाले प्रलुठत्कपाले
समग्रलोके विपुलश्मशाने।
त्वमेकदेवोऽसि तदावशिष्ट-
श्चिताश्रयो भूतिधरः कपाली॥

(शै० सि० सा०)

वह भूत, भविष्यत्, वर्तमान—तीनों कालोंकी बातोंको

जानता है, इसीसे त्रिनयन कहलाता है। जो लोग समझते हैं कि उसके तीन आँखें हैं, वे भूलते हैं।

'वृष' शब्दका अर्थ धर्म है। वह धर्मारूढ है तथा धर्मात्माओंके हृदयमें निवास करता है, इसीसे वृषपर चढ़नेवाला प्रसिद्ध है, बैलसे कोई तात्पर्य नहीं—

वृषग्रहाणां वृषरक्षको विभो
वृषं समास्थाय जगन्ति रक्षसि॥

जगत्में जो लूले-लँगड़े, काने-अंधे अथवा ऊँची नाकवाले हैं, वे भी उसकी भक्ति करते हैं, तो वह उन्हें अपना लेता है; क्योंकि सब भूतोंका—प्राणियोंका स्वामी है। जो उसे प्रेतपति मानते हैं, वे इस तत्त्वको नहीं जानते—

अन्धाश्च काणा अथवाऽवटीटा
भवन्तु खञ्जा उत वा सुरूपाः।
ये प्राणिनः पादपरागलुब्धा
भूतेश्वरत्वाच्छरणं त्वमेव॥

साँपके दो जीभें होती हैं। चुगलखोर भी द्विजिह्व हैं। उन्हें भी वह गर्दनका हार बना लेता है। पिता अपने बुरे लड़कोंको भी अपनेमें लिपटाये रखता है। सर्प-मालाका यही भाव शास्त्रसम्मत है। पाप और विषमें भेद नहीं। वह सबके दोषोंको—विषोंको पी जाता है—क्षमा कर देता है। इसीसे गरल-पान करनेवाला समझा जाता है।

परमात्मा अपनेको पुरुष और स्त्री दो रूपोंमें प्रकट करता है, जिससे कि सांसारिक जीवोंको माता-पिता दोनोंके सुख प्राप्त हों। उन दोनोंका आपसमें कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं होता। वे भाई-बहिनके समान परस्पर पवित्र रहते हैं। जगत्के कल्याणके लिये दो रूपोंमें ध्यात होते हैं—

'स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः'
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'

(ऋग्वेद)

शिवजीके लिये वेदोंमे 'त्र्यम्बक' शब्द व्यवहृत होता है। षड्विंशब्राह्मणमें 'त्र्यम्बकं यजामहे' की व्याख्याके अवसरपर कहा है—'स्त्री अम्बा स्वसा यस्य' अर्थात् ईश्वर—शिवजी स्त्री-पुरुष दो रूपोंमें हैं, जैसे बहिन-भाई होते हैं। सायणाचार्यने 'पृषोदरादि' के सहारे 'स्त्री' शब्दके सकारका लोप किया है। वेदमें 'त्र्यम्बक' का अर्थ त्रिलोचन नहीं बल्कि उमासहाय शिव है।

लोग कहते हैं कि पार्वतीजीकी उत्पत्ति पर्वत और मेनकासे हुई है। वैदिक कोषका नाम निघण्टु है। उसमें 'पर्वत' का अर्थ आकाश और 'मेनका' का अर्थ बुद्धि लिखा हुआ है। पार्वतीजी आकाशमें सब स्थलोंमें व्याप्त हैं और बुद्धिसे जानी जाती हैं। यही उनकी उत्पत्तिका मतलब है। श्रीशंकराचार्यजीने तलवकार-उपनिषद्की व्याख्यामें 'उमा' शब्दका अर्थ ब्रह्मविद्या किया है। उनके मतमें शिव-पार्वती दोनों ज्ञान-स्वरूप सिद्ध होते हैं। हमारी समझमें वे माता-पिता हैं। लड़कोंके लिये माता-पिताकी गोदसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। हम उसीके प्रार्थी हैं, वही परमपद है—

'तद्धाम परमं मम'

जो 'शिव' ये अक्षर उच्चारण करते हैं, उनके घरमें सब मङ्गल होते हैं—

सुमङ्गलं तस्य गृहे विराजते
शिवेति वर्णैर्भुवि यो हि भाषते।

शंकर-स्तवन

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषण भुजंगवर॥
मुंडमाल, बिधु बाल भाल, डमरू कपालु कर।
बिबुध बृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद सूलधर॥
त्रिपुरारि, त्रिलोचन, दिग्बसन, बिषभोजन, भवभयहरन।
कह तुलसिदासु सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन॥

शिव-सूत्रोंसे व्याकरणकी उत्पत्ति

(श्रीयुत डॉ० प्रभातचन्द्रजी चक्रवर्ती)

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

अर्थात् 'वेद जिनके निःश्वास हैं, जिन्होंने वेदोंसे सारी सृष्टिकी रचना की और जो विद्याओंके तीर्थ हैं ऐसे शिवकी मैं वन्दना करता हूँ।'

पुराणोंमें भगवान् शिवको विद्याका प्रधान देवता कहा गया है। उन्हें 'विद्यातीर्थ' नामसे पुकारा गया है और सर्वज्ञ[1] माना गया है। उन्हें ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया[2]—इन तीन शक्तियोंका समन्वय एवं समस्त ज्ञानका स्रोत माना गया है। ज्ञानपिपासुओंको उन्हींकी पूजा एवं आराधना करनेका विशेषरूपसे आदेश किया गया है और भारतके व्याकरण-रचयिताओंके कुलगुरु महर्षि पाणिनिके—जिनके व्याकरण-सूत्रोंकी हम प्रस्तुत निबन्धमें आलोचना करेंगे—जीवनके महाव्रतकी सिद्धि भी उन्हीं देवाधिदेव महादेवके कृपाकटाक्षसे हुई। यही नहीं, पाणिनीय व्याकरणकी उत्पत्ति भी इन्हीं विद्या-निधान भगवान् महेशानसे मानी जाती है, जिन्होंने प्रथम सृष्टिकर्ता ब्रह्माको आविर्भूत किया और तदनन्तर सर्गके आदिमें उन्हें वेद-विद्याका उपदेश दिया—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वेता० ६। १८)

'जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्माको उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्माको समस्त वेदोंका ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्मज्ञानविषयक बुद्धिको प्रकट करनेवाले प्रसिद्ध देव परमेश्वरको मैं मोक्षकी इच्छावाला साधक आश्रयरूपमें ग्रहण करता हूँ।'

वेदोंके छः प्रधान अङ्गोंमें व्याकरण भी एक अङ्ग है, यही नहीं, वेदोंके अध्ययनमें सबसे अधिक उपयोगी होनेके कारण वह सबमें प्रधान[3] है। पाणिनीय व्याकरणको 'वेदाङ्गव्याकरण' इस नामसे निर्दिष्ट किया गया है जो सर्वथा उचित ही है। क्योंकि इस व्याकरणमें लौकिक (साधारण बोल-चालके) तथा वैदिक दोनों प्रकारके शब्दोंका विवेचन किया गया है।

पाणिनीय अष्टाध्यायीकी रचना १४ छोटे-छोटे सूत्रोंके आधारपर हुई है, जिन्हें माहेश्वर अथवा शिव-सूत्र कहते हैं। इन मूल सूत्रोंके आधारपर व्याकरण-शास्त्रकी रचना इस बातको सिद्ध करती है कि मनुष्यकी सारी करामातोंकी कुंजी किसी अदृष्ट शक्तिके हाथमें रहती है। इन्हीं सूत्रोंकी भाँति दूसरे शिव-सूत्र भी हैं, जिनका सम्बन्ध काश्मीरीय शैवागमसे है और जिनकी शैवोंके महान् आचार्य वसुगुप्तने भगवान् शंकरकी प्रेरणासे रचना की थी[4]।

महर्षि पाणिनिने किस प्रकारकी विचित्र परिस्थितिमें इन माहेश्वर सूत्रोंको प्राप्त किया, इस सम्बन्धका इतिहास 'कथासरित्सागर', 'हरचरितचिन्तामणि', 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा नन्दिकेश्वरकी 'काशिकावृत्ति'में उपलब्ध होता है। इन ग्रन्थोंमें जो कुछ वृत्तान्त मिलता है वह प्रायः परस्पर मिलता-जुलता-सा ही है। मुख्य घटना अर्थात् शिवसे पाणिनिके

१-सर्वज्ञताकी महेश्वरके छः प्रधान गुणोंमें गणना की गयी है। यथा—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः। अचिन्त्यशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

दुर्गासिंहने भी स्वरचित 'कातन्त्रवृत्ति' के मङ्गलाचरणमें उन्हें सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी कहा है। यथा—

देवदेवं प्रणम्यादौ सर्वज्ञं सर्वदर्शिनम्। कातन्त्रस्य प्रवक्ष्यामि व्याख्यानं सार्ववर्णिकम्॥

२-तन्त्रोंमें इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। यथा—

ते ज्ञानेच्छाक्रियात्मानो वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिण.। (शारदातिलक)

ज्ञानक्रियास्वभावं शिवतत्त्वं जगदुराचार्याः। (तत्त्वप्रकाश)

३-मुखं व्याकरणं स्मृतम्—(पाणिनीय शिक्षा)। प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम् (महाभाष्य)।

४-'सूत्रमाह महेश्वरः' 'शिवसूत्रमरीरचत्।' (भास्करानन्द)

रचनाशक्ति प्राप्त करनेके सम्बन्धमें तो बिलकुल मतभेद नहीं है।[१] पाणिनिकी[२] माताका नाम दाक्षी तथा पिताका नाम पणिन् था। इन्होंने बचपनमें ही आचार्य उपवर्षके यहाँ विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। व्याडि तथा वररुचि (कात्यायन) इनके सहाध्यायी थे। एक दिन पाणिनि व्याकरण-सम्बन्धी शास्त्रार्थमें अपने सहाध्यायियोंसे हार गये, जिससे उनके हृदयको गहरी चोट पहुँची। भगवान्‌का विधान सदा मङ्गलपूर्ण होता है। उनका शाप भी अनुग्रहरूप हुआ करता है। बादमें अपनी बराबरीवालोंसे हारनेके कारण पाणिनिको जो असह्य यन्त्रणा हुई उसने उनके जीवनको पलट दिया। व्याकरण-शास्त्रमें पारदर्शी होनेके उद्देश्यसे तथा वैयाकरणोंमें सर्वश्रेष्ठ बननेकी प्रबल आकाङ्क्षासे उन्होंने आशुतोष शंकरकी आराधनाके हेतु कठोर तप आरम्भ किया। भगवान्‌के अनुग्रहसे उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। पाणिनिने अद्भुत सफलताके साथ एक ऐसे शृङ्खलाबद्ध व्याकरणकी रचना की जिसकी जोड़का दूसरा व्याकरण भारतीय वाङ्मयमें अभीतक कदाचित् बना ही नहीं। इस सम्बन्धमें एक दूसरी आख्यायिका भी प्रचलित है जो इस प्रकार है—

प्रयागमें अक्षयवटके नीचे पाणिनि कठोर तपस्या कर रहे थे। उस समय भगवान् शूलपाणि सिद्धोंका संघ साथ लिये हुए उनके सामने प्रकट हुए और लगे ताण्डव-नृत्य करने। नृत्यके समय भगवान्‌ने आनन्दातिरेकसे चौदह[३] बार डमरू-ध्वनि की।

इस अपूर्व एवं अलौकिक घटनासे पाणिनिको पहली बार व्याकरण-सूत्र रचनेकी शक्ति प्राप्त हुई और इसी शक्तिके द्वारा उन्होंने आगे चलकर 'अष्टाध्यायी' का वैज्ञानिक ढंगसे निर्माण किया, जिसका आज संस्कृत-व्याकरणमें इतना मान है। डमरूके चौदह नादोंसे ही चौदह मूल सूत्रोंकी रचना हुई, जिनके आधारपर सारी अष्टाध्यायी प्रणीत हुई। इसीलिये इनको शिव-सूत्र अर्थात् शिवके द्वारा आविर्भूत व्याकरण-सूत्र कहते है, जो सर्वथा उचित ही है। शिव-सूत्रोंमें वर्णोंका विन्यास—जिसे 'वर्णसमाम्नाय' कहते हैं—इस अद्भुत एवं अपूर्व कौशलसे किया गया है कि उनके जोड़नेसे 'अण्' 'इण्' इत्यादि प्रत्याहार बन जाते हैं, जो सारे व्याकरणशास्त्रकी मूलभित्ति हैं। इन्हींके कारण शिव-सूत्रोंका इतना अधिक माहात्म्य है। यह बात बिलकुल सत्य है कि इन संज्ञाओं अथवा प्रत्याहारोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना अष्टाध्यायीके तत्त्वको समझना असम्भव है और ये संज्ञाएँ शिव-सूत्रोंके अन्तर्गत वर्णसमूहोंसे ही बनी हैं।

पाणिनीय व्याकरणकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें यह पिछला इतिहास अधिक मान्य है। पाणिनीय शिक्षामें भी यह आख्यान[४] इसी प्रकार वर्णित है।

नन्दिकेश्वरने अपनी 'काशिकावृत्ति' में इन शिव-सूत्रोंकी इस प्रकारसे व्याख्या की है मानो इनकी रचना शैवागम तथा शाक्तागमके दिव्य रहस्यका उद्घाटन करनेके उद्देश्यसे ही हुई थी। उदाहरणतः उन्होंने प्रथम सूत्र 'अइउण्' की निम्नलिखित प्रकारसे व्याख्या की है[५]—

'अ' निर्गुण ब्रह्मका वाचक है और 'उ' सगुण ब्रह्मका। जब 'अ' अर्थात् निर्गुण ब्रह्म 'इ' अर्थात् माया (चिच्छक्ति) के साथ सम्पर्कमें आता है तब वह 'उ' अर्थात् सगुण ब्रह्म हो जाता है। तन्त्रोंमें[६] भी इसी प्रकारका सिद्धान्त वर्णित है। तान्त्रिक सिद्धान्तके अनुसार सृष्टिका विकास शिव-शक्तिके[७] संयोगका परिणाम है। वर्णोंकी दिव्य शक्ति (मात्रिका वर्ण) को पहले-पहल तान्त्रिकोंने ही स्वीकार किया

१-सर्वविद्यामुखं तेन प्राप्तं व्याकरणं नवम्। (कथासरित्सागर)
आराध्य तपसा तत्र विद्याकामः स शंकरम्। प्राप्य व्याकरणं दिव्यं स च विद्यामुखं शुभम्॥ (हरचरितचिन्तामणि)

२-पाणिनिके सम्बन्धमें यह प्रसिद्धि है कि वे बाल्यकालमें मन्दबुद्धि थे।

३-नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्। उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥ (नन्दिकेश्वरकाशिका)

४-येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्। कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥

५-अइउण्—
अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु। चित्कलामिं समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वरः॥ (काशिका २)

६-शिवशक्त्यात्मकं विश्वम्।

७-श्रीमच्छंकराचार्यने भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी स्तुतिमें पुरुष और प्रकृतिके इस अनादि युग्मका (जिसे विज्ञान तथा दर्शनकी भाषामें जड़ तथा

हो, यह बात नहीं है। वैदिक कालमें भी यह बात सिद्धान्त-रूपसे स्वीकार कर ली गयी थी। यही कारण है कि प्रणव ('ॐ'कार)को वेदोंने साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप माना है और उपनिषदोंमें[1] भी परब्रह्मके लिङ्गरूपमें शब्दब्रह्मकी उपासनाका उपदेश दिया गया है।

इस सम्बन्धमें एक इतिहास और है। वह इस प्रकार है कि स्वयं भगवान् शिवने एक व्याकरण-शास्त्रकी रचना की। जो उदधिके समान विस्तीर्ण और जो 'माहेश व्याकरण' के नामसे जगत्में प्रसिद्ध हुआ। कहा जाता है कि महर्षि व्यासदेवको इस व्याकरणका ज्ञान था और उन्होंने उसमेंसे बहुत-से प्रयोग अपने ग्रन्थोंमें व्यवहृत किये हैं। लोगोंका कहना है कि माहेश व्याकरणके सामने पाणिनीय व्याकरण समुद्रके सामने एक जल-सीकरके[2] समान होगा। कातन्त्र व्याकरणके सम्बन्धमें भी जिसका बंगालमें अधिक प्रचार है, इसी प्रकारका एक आख्यान प्रसिद्ध है। इसे 'कलाप' अथवा कौमार व्याकरण इसीलिये कहते हैं कि इसका पहला सूत्र 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' भगवान् शंकरके मुखारविन्दसे आविर्भूत बताया जाता है और साथ ही यह भी कहा जाता है कि इसे शंकर-सूनु श्रीकार्तिकेयने अपने वाहन मयूरके पंखोंमें लिखा[3] था। कौमार व्याकरणके कार्तिकेयद्वारा प्रचार होनेका सविस्तर वर्णन गरुडपुराण एवं अग्निपुराणमें मिलता[4] है।

शिव और अर्थशास्त्र

(श्रीभगवानदासजी केला)

शिव एक प्राचीन, अलौकिक और भारतीय विभूति है तथा अर्थशास्त्र अपने आधुनिक रूपमें एक नवीन, लौकिक तथा पाश्चात्त्य विद्या है। परंतु यह विरोधाभास होते हुए भी इन दोनोंमें एक समानता है। शिवका अर्थ कल्याणकारी है और अर्थशास्त्र भी मानव-समाजको कम-से-कम भौतिक सुख प्रदान करनेका दावा रखता है। इस लेखमे हमें यह विचार करना है कि शिवजीके जीवन तथा विचारोंमें ऐसी कौन-सी बाते हैं जिनसे जनताका ऐसा हित हुआ हो या होता हो जैसा कि अर्थशास्त्रसे होता है या होना चाहिये। विषय महान् है, हमें कुछ नमूनेके उदाहरणोंसे ही संतोष कर लेना होगा।

हमारी आवश्यकताएँ या धनोपभोग

मानव-समाजमें धन या अर्थसम्बन्धी विविध प्रकारकी क्रियाएँ इसीलिये होती हैं कि मनुष्योंको बहुत-सी चीजोंकी जीवन-निर्वाह या भोग-विलासके लिये या अपनी क्षमताकी वृद्धिके लिये जरूरत होती है। अतः अर्थशास्त्रका मुख्य विषय 'मानवी आवश्यकताएँ' हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियोंका विचार है कि नित्य नयी आवश्यकताओंकी वृद्धि करते रहने और फिर उनकी पूर्तिके प्रयत्न करनेमें आर्थिक उन्नति है। परंतु इस 'उन्नति'से मानव-समाजको अर्थशास्त्रका अभीष्ट सुख कहाँतक प्राप्त होता है, यह एक प्रश्न ही है। सर्वत्र असंतोष बढ़ता जा रहा है। सभ्यताका स्वरूप बहिर्मुख है। धन-वैभवकी जिस परिमाणमें वृद्धि होती है, उससे कहीं अधिक हमारी आवश्यकताएँ बढ़ जानेके कारण अभावजनित दुःखकी मात्रा निरन्तर अधिकाधिक होती जा रही है। इसके विपरीत भगवान् शिवका आदर्श है अपनी आवश्यकताएँ न्यून-से-न्यून रखना, वन्य पदार्थ, जड़ी-बूटियोका भोजन, मृगछाला आदि पहनना, अपनी धन-सम्पत्ति इतर बन्धुओंके उपभोगार्थ वितरण कर देना, थोड़ेमें ही संतोष करना, ऐश्वर्य और वैभवका

चेतनका संयोग कह सकते हैं) बड़े हृदयग्राही शब्दोंमें वर्णन किया है। वे कहते हैं—

शिव. शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।न चेदेवं देवो न खलु कुशल. स्पन्दितुमपि॥ (सौन्दर्यलहरी)

१- महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलिने भी वर्णोंको ब्रह्मका जाज्वल्यमान स्फुलिङ्ग माना है। यथा—

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः। फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशि.॥

२-यान्युज्जहार माहेशाद्व्यासो व्याकरणार्णवात्। तानि किं पदरत्नानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे॥

इस श्लोकको गोपाल चक्रवर्तीने अपनी 'दुर्गासप्तशती' की टीकामें उद्धृत किया है।

३-शंकरस्य मुखाद्वाणीं श्रुत्वा चैव षडाननः। लिलेख शिखिनः पुच्छे कलाप इति कथ्यते॥

४-अथ व्याकरणं वक्ष्ये कुमारोक्तं च शौनक। (गरुडपुराण २०८)

त्याग। ऐसे आदर्शयुक्त व्यक्तिका जीवन आजकलकी अर्थशास्त्र-भाषामें असभ्य-अवनत और जंगली कहा जायगा, परंतु क्या हम उस सभ्यता और उन्नतिसे बाज न आवें जिससे औरोंकी दृष्टिमें हमारा जीवन ऊँचे स्टैंडर्डका होते हुए भी वह प्रतिक्षण हमें भार-स्वरूप हो रहा है ? क्या हम आशुतोषका पूजन कर कुछ अंशमें 'आशुतोष' बननेका यत्न करेंगे ? क्या हम केवल जिह्वाको अच्छा लगनेवाले नाना प्रकारके चटपटे, मसालेदार भोजनोंका परित्याग करेंगे ? क्या हम साधारण मोटे-झोटे, परंतु शुद्ध स्वदेशी वस्त्रके उपयोगमें गौरव मानेंगे और रंग-बिरंगे, मुलायम और शौकीनीके वस्त्रोंका प्रदर्शन बंद करेंगे ? क्या सादगीसे रहना हमारा आदर्श होगा ? भगवान् शिवने लोक-कल्याणकारी गङ्गा माताका भार अपने मस्तकपर धारण करके बतला दिया कि सादगी और तपका जीवन बितानेवाले ही कठिनाइयोंको पार कर सकते हैं, भोग-विलासमें फँसे हुए कुछ नहीं कर पाते।

धनोत्पत्ति

जबतक हमारी आवश्यकताएँ परिमित न होंगी और वे निरन्तर बढ़ती रहेंगी, हमें दिन-रात उनकी पूर्तिके लिये विविध प्रयत्नोंमें लगा रहना होगा, हमें हर रोज नयी-नयी वस्तुएँ बनानी होंगी, हम कभी भी सुखकी नींद न सोयेंगे, हमारा जीवन हर घड़ी हाय-हाय करते बीतेगा। परंतु इसके विपरीत यदि हम भगवान् शिवके रहन-सहनसे थोड़ी-सी शिक्षा लेकर अपने भोजन-वस्त्रादिकी आवश्यकताओंको परिमित रखनेकी चेष्टा करेंगे, तो उनकी पूर्ति बहुत कुछ तो प्रकृति-रत पदार्थोंसे ही हो सकती है और जो थोड़ी-सी कमी रहेगी, वह सहज ही थोड़े-से समयमें हमारे श्रमसे पूरी हो सकती है। इस प्रकार हमारे जीवनका शेष समय विविध प्रकारके ज्ञान-विज्ञानके उपार्जन और नैतिक तथा आध्यात्मिक विषयोंके चिन्तन और मननमें लग सकता है। आजकल धनी और उन्नत देशोंमें भी पाँच-दस फीसदी व्यक्तियोंको छोड़कर शेष सब जीवन-निर्वाह-सम्बन्धी संघर्षमें ग्रस्त हैं। इस रोगका निवारण करनेमें आधुनिक सभ्यता नितान्त असमर्थ प्रमाणित हो रही है, इस सम्बन्धमें शिवजी अपने उदाहरणसे अनुपम शिक्षा दे रहे हैं। ऊँचे और शान्तिमय विचारोंके लिये सादगीका जीवन आवश्यक है। भौतिकवादके नशेमें उन्मत्त तथा धन, वैभव और ऐश्वर्यके मोहजालमें फँसे हुए सज्जनोंसे सहज ही यह आशा नहीं कि वह इस उपदेशपर अभी सम्यक् ध्यान देंगे, परंतु समयकी ठोकरें उन्हें सावधान होनेपर विवश करेंगी। धनोत्पत्ति-सम्बन्धी विचारोंमें आमूल क्रान्ति होगी। इस समय शराब, धूम्रपान, नशीले मादक पदार्थ और आतिशबाजीका सामान आदि प्रत्येक ऐसी वस्तुका बनाना 'धनोत्पत्ति'का काम कहा जाता है, जिसका विनिमय होता हो, जिसे मनुष्य सेवन करते हों, चाहे उसके 'उपभोग'से उनको कुछ भी लाभ न होकर उन्हें कुछ शारीरिक, मानसिक या नैतिक हानि ही क्यों न हो। क्या कभी वह समय न आयेगा, जब केवल शिव या कल्याण करनेवाली वस्तुओंका निर्माण ही 'धनोत्पत्ति' कहा जायगा ?

विनिमय और व्यापार

आज दिन हम दूसरोंसे छल-कपट, मिथ्या व्यवहार करनेमें गौरव अनुभव करते हैं। दूसरोंका धन अपहरण करनेमें अपनी आर्थिक कुशलता समझते हैं। हम चाहते हैं कि सबका धन हमारे कब्जेमें आ जाय। अपरिमित संग्रह करते रहनेपर भी हमारी तृप्ति नहीं होती। भगवान् शिवकी भाँति हम त्यागके सुखकी प्राप्ति कब करेंगे ? अपना सर्वस्व औरोंको देकर, औरको धनी देखकर उनके आनन्दसे हम कब आनन्दित होंगे ? जबतक ऐसा न होगा कोई देश आन्तरिक शान्ति नहीं पायेगा और अन्ताराष्ट्रिय व्यापार सदैव कलहका कारण होगा, चाहे व्यापारिक संधियाँ और समझौते कितने ही क्यों न हो जायँ। हमें दूसरोंके हितमें अपना हित समझना चाहिये। इस प्रकार शराब, अफीम, शौकीनीके सामान बेचना तथा दूसरोंके व्यवसाय-धंधे नष्ट करके जबरदस्ती अपना कोई भी माल बाहर भेजना और वहाँ उसकी माँग बढ़ाना सब अनीतिपूर्ण व्यापार हैं। शिवके अनुयायियोंको चाहिये कि जहाँ स्वयं स्वावलम्बी हों, वहाँ दूसरोंको भी व्यापारिक दासतामें फँसानेवाले न बनें।

उपसंहार

इसी प्रकार अर्थशास्त्रके अन्य विषयोंपर विचार किया जा सकता है। भगवान् शिवकी पूजाका अभिप्राय इस तत्त्वको ग्रहण करना होना चाहिये कि जिस अर्थशास्त्रके सिद्धान्त वास्तवमें हमारे एवं दूसरोंके लिये कल्याणकारी न हों, उसे

अर्थशास्त्र ही न समझा जाय। इसके लिये आवश्यक है कि हम इन्द्रियोंके दास न होकर भगवान् शिवकी भाँति संयमी जीवन व्यतीत करनेवाले हों और हाँ, हम समाज-शास्त्रके इस अङ्गपर केवल बाहरी दृष्टिसे न देखकर तीसरे नेत्र (विवेक-बुद्धि) से देखनेवाले हों। उसीसे हम 'काम' पर विजय पा सकते हैं और अपने-आपको एवं दूसरोंको सच्चा सुख प्रदान कर सकते हैं।

शिव-स्वरूप

(डॉ॰ श्रीराकेश मार्कण्डेयजी)

भगवान् शिवके मन्दिर भारतके प्रायः प्रत्येक गाँव और शहरमें प्रचुरतासे उपलब्ध होते हैं। इनमें कहीं भगवान् शिवकी समाधिस्थ अनुग्रहमूर्ति और कहीं मूर्तिके स्थानपर उनका मूल विग्रह प्रतीकके रूपमें प्रतिष्ठित रहता है, जो 'लिङ्ग' इस नामसे अभिहित होता है और अनादिकालसे देवताओं, ऋषि-मुनियों, सिद्धों, योगीश्वरों, साधकों तथा भक्तोंद्वारा पूजित होता आया है। लिङ्गके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें शिवमहापुराणकी विद्येश्वर-संहिताके आरम्भिक अध्यायोंमें एक बड़ी विचित्र कथा पायी जाती है। जिसके अनुसार एक वार ब्रह्मा और विष्णुके मध्य श्रेष्ठताके प्रश्नको लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे विवादने जब युद्धका रूप ले लिया तब समस्त देवताओं और ऋषियोंने मनसे एकमात्र परमेश्वरकी शरण ली और तभी एक चमत्कार हुआ। न जाने कहाँसे आकाशमें एक अद्भुत अति दिव्य प्रकाशस्तम्भ प्रकट हो गया। इस स्थितिमें युद्धकी समस्त चेष्टाएँ समाप्त हो गयीं और विश्व विनष्ट होनेसे बच गया। परंतु ब्रह्मा एवं विष्णुके मनमें इस प्रकाशस्तम्भको लेकर अनेकों शङ्काएँ उठ खड़ी हुईं। जब कुछ समाधान नहीं हुआ तो यही पारस्परिक सहमति हुई कि जो भी इसका आदि या अन्त ढूँढ़ निकालेगा, वही श्रेष्ठ होगा। एक निश्चित समयके बाद दुबारा मिलनेका प्रण करके ब्रह्मा और विष्णु अलग-अलग दिशाओंमें चल पड़े।

विष्णुने प्रकाशस्तम्भका अन्त देखनेके लिये दिव्य वराहका रूप धारणकर नीचेकी ओर प्रस्थान किया। बहुत समयतक खोजनेपर भी इसका अन्त नहीं मिला, अन्ततः हारकर पुनः उसी स्थानपर वापस आ गये जहाँसे चले थे। उधर ब्रह्माने भी दिव्य हंसका रूप धारण करके ऊपरकी ओर खोज करनी आरम्भ की। परंतु बहुत समयके बाद भी उन्हें इसका कुछ अता-पता नहीं लगा।

ब्रह्मा और विष्णु उस अद्भुत स्वरूपको नहीं जान पाये थे, इसलिये उन्होंने तत्त्वतः जाननेकी इच्छासे भगवान् शिवकी शरण ली। भगवान् शिवकी मायासे मोहित होकर वे विचार करने लगे कि यह क्या है, जिसका न आदि है न अन्त। फिर दोनों उस ज्योतिर्मय स्तम्भको प्रणाम कर कहने लगे—'महाप्रभो ! हम आपके स्वरूपको नहीं जानते। आप जो कोई भी क्यों न हों, आपको हमारा नमस्कार है। महेशान ! आप शीघ्र ही हमें अपने यथार्थस्वरूपका दर्शन कराइये।' भगवान् शंकर दोनोंके प्रतिपालक तथा सबके अविनाशी प्रभु हैं। वे प्रार्थनासे द्रवित हो गये। उसी समय एकाएक एक ओरसे प्लुत स्वरसे **'ओ३म्', 'ओ३म्'** यह शब्द उन्हें सुनायी पड़ा। शब्दका अनुसंधान करके उन्होंने ज्योतिः-स्तम्भके दक्षिण ओर देखा तो उन्हें ॐकारस्वरूप स्वयं शिव दीख पड़े। शिवने उन्हे तत्काल ही दिव्य ज्ञान तथा अपनी साम्यता प्रदान की। उन्होंने बताया कि जो दिव्य प्रकाशस्तम्भ उन दोनोंको पहले दिखायी दिया था, वही उनका अमूर्त, निर्गुण, निराकार, निष्कल स्वरूप है। यही वास्तविक स्वरूप है, इसीका ध्यान करना चाहिये, ॐकारसे इसका बोध होता है। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुमें शान्ति-स्थापना करके शिवस्वरूप अन्तर्धान हो गया। जिस समय यह दिव्य प्रकाश-स्तम्भ प्रकट हुआ, उस समयको शिवरात्रिका नाम दिया गया। भुक्ति-मुक्ति-दायक होनेके कारण यह पर्व बड़ा पवित्र है। उन्नत आध्यात्मिक साधक शिवस्वरूपका ध्यान ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें हृदयमें, भ्रूमध्य—आज्ञाचक्रमें या ब्रह्मरन्ध्रमें करते हैं। परंतु साधारण जनके लिये पूजाका यह स्वरूप कठिन है, इसलिये उनके ध्यानको क्रमशः दृढ़ करनेके लिये तथा अन्तिम लक्ष्यकी ओर अग्रसर होने-हेतु भगवान् शिव लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हुए।

श्रीशंकर हैं। देहधारियोंको अपने देहकी भाँति वे मुझे अकारण ही प्रिय हैं[१]। एक बार मैं और शंकर दोनो ही पृथिवीपर घूमने निकले। मैं अपने प्रियतमकी खोजमें इस आशयसे निकला कि मेरी ही तरह जो अपने प्रियतमकी खोजमें देश-देशान्तरमें भटक रहा होगा, वही मुझे अकारण प्रिय होगा। थोड़ी देरके बाद मेरी श्रीशंकरजीसे भेंट हो गयी। ज्यों ही हमलोगोंकी चार आँखें हुईं कि हमलोग पूर्वजन्मार्जित विद्याकी भाँति एक-दूसरेके प्रति आकृष्ट हो गये। 'वास्तवमें मैं ही जनार्दन हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग-अलग दो घड़ोंमें रखे हुए जल भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है। शंकरजी अतिरिक्त शिवकी अर्चा करनेवाला शिवभक्त भी मु अत्यन्त प्रिय है। इसके विपरीत जो शिवकी पूजा नहीं कर वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकते[२]।'

शिव-द्रोही वैष्णवोंको और विष्णु-द्वेषी शैवोंको इ प्रसंगपर ध्यान देना चाहिये।

मङ्गलमूर्ति भगवान् सदाशिव

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी, सदस्य बदरी-केदार-मन्दिर-समिति)

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥

(श्वेताश्वतरोप० ३।५)

'हे रुद्रदेव! आपकी जो भयानकतासे शून्य तथा पुण्यकर्मोंसे प्रकाशित होनेवाली कल्याणमयी सौम्यमूर्ति है, जिसका दर्शन करके मनुष्य परम आनन्दमें मग्न हो जाता है, हे गिरिशन्त अर्थात् पर्वतपर निवास करते हुए समस्त लोकोंको सुख पहुँचानेवाले परमेश्वर! उस परम शान्तमूर्तिसे ही कृपा करके आप हमलोगोंकी ओर देखिये। आपकी कृपादृष्टि पड़ते ही हम सर्वथा पवित्र होकर आपकी प्राप्तिके योग्य बन जायँगे।'

सृष्टिके समस्त उद्योगोंका उद्देश्य सुखकी प्राप्ति है। भगवत्कृपाका अवलम्बन लेनेवाले पुरुषार्थी एवं मनस्वीके लिये विजय प्राप्त करना सहज ही है। यदि मानव चतुर्विध पुरुषार्थके लिये निष्ठापूर्वक प्रयत्नशील रहे तो उसे सुखकी खोज करनेकी आवश्यकता नहीं है, सुख तो स्वयं उसका अनुगामी बन जायगा। चतुर्विध पुरुषार्थका प्रथम सोपान है 'धर्म-सम्पादन'। भगवान् सदाशिव धर्मकी साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं और उनके विधिवत् पूजनसे जीवनमें कभी दुःखकी अनुभूति नहीं होती—

भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः।
भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः॥

(शि० पु०, रु० सृ० खं०)

'जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर हैं, जो मनसे उन्हींके शरणागत हैं तथा उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते।'

श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासके अनेक स्वर्णिम पृष्ठ चन्द्रार्धभूषणके अनादि-अनन्त, परमोपास्य, परात्पर, शोक-संताप-निवारक, परमैश्वर्यशाली होनेके प्रमाणसे भरे पड़े हैं। मङ्गलकी आकाङ्क्षा रखनेवाले जनोंको शिवकी उपासना अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि वे अद्वितीय हैं—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

(महाभा०, अनु० १५।११)

चतुर्विध पुरुषार्थका अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' है, जिसकी कामना-हेतु सिद्ध, योगी, विरक्त, संन्यासी, गृहस्थ नर-नारी सभी इसलिये प्रयास करते रहते हैं कि कैसे हमें इस भव-बन्धनसे छुटकारा मिले? जीवनभरका समस्त भौतिकवादी प्रयास बिना मोक्षके निष्फल हो जाता है और 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्०' का अनवरत चक्र चलता ही रहता है।

१-न मे प्रियतमाः सन्ति शिव एकः प्रियो मम। अहेतुकः प्रियोऽसौ मे स्वकायः प्राणिनामिव॥

२-स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः। उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव॥
शिवादन्यः प्रियो मेऽस्ति भक्तो यः शिवपूजकः। शिवस्यापूजको लक्ष्मि न कदापि प्रियो मम॥

(बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड)

मानव-जैसी श्रेष्ठ योनिको पाकर भी इस चरम पुरुषार्थकी प्राप्ति (मोक्ष) के बिना जीवन नानाविध क्लेशमें स्वयंको आवृत कर लेता है। परम कष्टहारी वृषभध्वजकी शरण आवागमनके इस चक्रसे छुटकारेका सरलतम उपाय है। शिवपुराण (वा॰ सं॰, पू॰ खं॰ ४। ५५) में कहा गया है—

ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत् स्वयम्।
यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः॥
मुमुक्षुरस्मात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम्॥

तात्पर्य यह कि 'ब्रह्माका निर्माण कर उन्हें श्रुतियोंके ज्ञानसे समलंकृत करनेवाले तथा स्वरूप-विषयक बुद्धिको प्रकाशित करनेवाले परमेश्वर शिवको जानकर मैं इस घोर संकटमय संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये उनकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

मानव जब स्वयं काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकारकी विषैली वृत्तियोंसे आवृत होकर अमानवीय कृत्य करने लगता है तो वह परिवार, समाज और देशके लिये विषधरसे भी भयंकर बन जाता है और इस असह्य विषसे बचनेका कोई उपाय नहीं रह जाता। सागर-मन्थनका आख्यान इस बातकी पुष्टि करता है कि देव तथा दानवोंके समक्ष भी यही स्थिति पैदा हो गयी थी—

भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा
अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम्॥
(श्रीमद्भा॰ ८। ७। १९)

इस असाध्य विषसे बचनेका कोई उपाय भी तो नहीं था। प्रजापतियोंने जब पिनाकपाणिसे प्रार्थना की, तब उन्होंने समीपमें बैठी अपनी प्रिया सतीसे कहा—'देवि! बड़े खेदकी बात है कि समुद्र-मन्थनमें निकले कालकूटसे प्रजापर अकारण विपदाका पहाड़ टूट पड़ा है। ये बेचारे अपने प्राणोंकी रक्षा चाहते हैं। इस विषम परिस्थितिमें मेरा कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ—'**एतावान् हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्**'—शक्ति-सामर्थ्यवान् जीवन तभी सफल है, जब वह दीन-दुखियोंकी रक्षाका संबल बने।

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया॥
(श्रीमद्भा॰ ८। ७। ३९)

सज्जन पुरुष अपने अनित्य देहकी बलि देकर भी दूसरोंके प्राणोंकी रक्षा करते हैं। कल्याणि! स्वनिर्मित मोहपाशमें आबद्ध प्राणी मायासे मोहित होकर परस्पर वैरकी गाँठ बाँधे बैठे हैं। अतः देवि! मैं तत्काल इस विषका भक्षण करता हूँ, जिससे मेरी प्रजाका मङ्गल हो।

भगवान् त्रिलोकेश्वर भूतभावन सदाशिव गरल पानकर सर्वदाके लिये नीलकण्ठ बन जाते हैं।

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥
(श्रीमद्भा॰ ८। ७। ४४)

'परोपकारी सज्जन पुरुष प्रायः प्रजाके संकटनिवारणार्थ स्वयंको कष्टमें डाल देते हैं। परंतु यह उनके लिये विपत्ति नहीं, वरन् सबके हृदयमें विराजित विराट् भगवान्‌की परमाराधना है।'

गङ्गावतरणका आख्यान भगवान् शशाङ्कशेखरकी लोकोपकारी महिमाका ही यशोगान है।

हिमालयकी ज्येष्ठ कन्या हैमवती गङ्गाको मृत्युलोकमें जानेका आदेश तो ब्रह्माने दे दिया, पर गङ्गाके स्वर्गसे गिरनेका वेग एक समस्या बनकर रह गयी। ब्रह्माने स्पष्ट कहा—'**गङ्गायाः पतनं राजन् पृथिवी न सहिष्यते**'। राजन्! गङ्गाके गिरनेका वेग पृथ्वी नहीं सहन कर सकेगी। केवल त्रिनेत्रधारी शंकरहीमें इसके प्रचण्ड वेगको रोकनेकी क्षमता है।

भगवान् शंकरकी अनुकम्पाने जिस धराको गङ्गा-जैसा अद्भुत उपहार प्रदान किया, उस औढरदानीकी प्रशस्तिमें जितना कुछ कहा जाय अल्प ही होगा।

भगवान् आशुतोष तो वस्तुतः वाल्मीकीय रामायणके मुख्य प्रतिपाद्य ही हैं। रामकथाके प्रथम वक्ताके रूपमें वाल्मीकीय रामायणके अनेक सर्ग उनकी प्रशस्तिमें भरे पड़े हैं। महर्षि वाल्मीकि अपने आराध्यके भी वन्दनीय आशुतोषका गुणगान करते अघाते नहीं।

चिरंतन, अनादि, विश्वदीप्ति, अनिवृत्तात्मा सदाशिवके विषयमें यदि स्वयं युगावतार श्रीकृष्ण भी अपने श्रद्धा-भाव व्यक्त करते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥

पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
(ब्रह्मवैवर्तपु० ६।३१)

देव ! मेरा आपसे बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्यारे हैं। जो दुष्कर्मोंमें रत अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे अनन्तकालतक नरकमें पचते रहेंगे। महाकवि कालिदासने अपने 'रघुवंश' महाकाव्यके सर्वप्रथम छन्दमें शब्द और अर्थकी अविच्छेद्य एकताको उपमान बनाकर अपने आराध्य 'शिवा-शिव' का अद्भुत समन्वय चित्रित किया है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥
(रघुवंश १।१)

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटकका मङ्गलाचरण भी कविकुल-दीप कालिदासके भगवान् देवाधिदेव महादेवके प्रति अपने श्रद्धा-सुमनोंका मूर्तरूप है—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥

'सृष्टिकर्ता प्रजापतिकी प्रथम सृष्टि अर्थात् जलमूर्ति, विधिपूर्वक दी गयी आहुतियोंका वहन करनेवाली अग्निकी मूर्ति तथा हवि प्रदान करनेवाली यजमानमूर्ति, दिन-रात इन दो समयोंका निर्माण करनेवाली सूर्य-चन्द्रमूर्ति, जो कानका विषय या देवता है और सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त है, वह आकाशमूर्ति, सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंकी बीजभूता धरित्री देवी और जो समस्त प्राणियोंका प्राण-संचार करनेवाली वायुमूर्ति है—इन प्रत्यक्ष आठ मूर्तियोंसे व्याप्त भगवान् सर्वेश्वर शिव आप सबकी रक्षा करें।'

भूतभावनके अनन्त नाम और अनन्त विभूतियाँ हैं—

'मुण्डो विरूपो विक्रान्तो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः ।
पिङ्गलाक्षो जनाध्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥

जैसे अनेक रूपोंमें उन्हें स्मरण किया जाता है, अपनी-अपनी रुचिके अनुरूप भक्तजन अपने आराध्यका पूजन, अर्चन-वन्दन भी करते आ रहे हैं, जिस प्रकार विभिन्न स्थलों एवं दिशाओंसे प्रवाहित होनेपर भी प्रत्येक सरिताका विलीन-स्थल सागर ही है, ठीक इसी भाँति सबके आश्रय भगवान् सदाशिव ही हैं। महिम्नःस्तोत्रके रचयिता पुष्पदन्ताचार्यने इन्हीं भावोंको मुखरित करते हुए कहा है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

सभी आगम, सांख्य, योग, शैवसिद्धान्त, वैष्णव आदि मत अपनी-अपनी रुचिके अनुसार 'यह श्रेष्ठ है' 'यह हितकर है' इत्यादि सीधे-टेढ़े मार्गोंका भले ही अवलम्बन करते हों, पर जैसे सभी जल-स्रोतोंके जलका एकमात्र आश्रय सागर है, उसी प्रकार भगवान् सदाशिव आप ही एकमात्र सबके गम्य हैं।

शिवमहापुराणका मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करनेपर लगता है भगवान् वेदव्यासने कल्याणके प्रतीक शिवकी मङ्गलमूर्तिका चित्रण इस कौशलसे किया है कि सर्वत्र जीवनके मार्गदर्शक मङ्गलसूत्र मुखरित हो उठे हों। यथा—

वायवीय संहिताके तीसरे अध्यायमें ब्रह्मा एवं मुनिवरोंके परस्पर परमतत्त्वविषयक जिज्ञासाका समाधान करते हुए ब्रह्माजीने कहा—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं यस्य वै विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥
यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्म विष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ।
सहभूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयते ॥
कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम् ।
न सम्प्रसूयतेऽन्यस्मात् कुतश्चन कदाचन ॥
(शिवपु०, वा० सं०, पू० खं० ३।१—३)

मुनिवरो ! जिनका साक्षात्कार कर मनसहित वाणी तृप्त हो जाती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करनेवाला पुरुष सर्वदा निडर रहता है, जिनसे भूतादिक, इन्द्रादिक, ब्रह्मादिक विष्णुसहित यह समस्त जगत् पहले प्रकट होता है, जो कारणोंके भी कारण, स्रष्टा और ज्ञाता परम कारण हैं, जिनके सिवा और किसीसे कभी भी जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होती वह केवल रुद्र ही हैं।

जहाँ साक्षात्कार-जैसे दुरूह विषयपर साधकको सहज

दिशा-निर्देश प्राप्त होता है, वहीं परोपकार-जैसे सर्वमाङ्गलिक विषयका भी समावेश शिवपुराणमें किया गया है।

शिवरात्रिव्रत-कथामें सत्यकी प्रतिष्ठाका प्रतिपादन करती हुई मृगी वधिकसे याचना करती है—

उपकारकरस्यैव यत् पुण्यं जायते त्विह।
तत् पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि॥

'उपकार करनेवाले प्राणीको इस लोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता।'

विवाहके पश्चात् गिरिजाको बिदा करते समय एक सती-साध्वी ब्राह्मण-पत्नीको माध्यम बनाकर गिरिराजकिशोरीको पातिव्रत्यकी दी गयी शिक्षा समस्त नारीजातिके लिये प्रकाश-स्तम्भ है—

धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः।
पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी॥

(शिवपु०, रु० सं०, पा० ५४।९)

'संसारमें पतिव्रता नारीके समान और कोई धन्य नहीं। वह विशिष्ट पूजनीय है। पतिव्रता सभी लोकोंको पवित्र करनेवाली तथा समस्त अघराशिको विनष्ट करनेवाली है।'

'शिवे! जो पतिको परमेश्वरके समान जानकर उसकी सेवामें रत रहती है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग कर अन्तमें पतिके साथ कल्याणगतिको प्राप्त होती है'—

सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे।
इह भुक्त्वा खिलान् भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम्॥

गणेशकी बाललीलाओंके माध्यमसे माता-पिताके प्रति पुत्रका कर्तव्य, दक्ष-यज्ञ-आख्यानसे अपूज्योंका सम्मान और पूज्यकी अवहेलनाका परिणाम दर्शित किया गया है—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम्॥

व्यवहारके क्रियाकलापोंमें सभी यह कामना करते हैं कि हर व्यक्ति उनके साथ अच्छा व्यवहार करे, परंतु यह सिद्धान्त एकाङ्गी न बन जाय, अतः भगवान् आशुतोष इसी प्रसंगमें स्वयं कहते हैं—

परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद् भविष्यति।
परेषां क्लेदनं कर्म न कार्यं तत्कदाचन॥

(शिवपु०, रु० सं० स० खं० ४२।५)

दूसरोंके प्रति हम जैसा व्यवहार करते हैं, वह अपने ही लिये फलित होता है अतः ऐसे कर्मसे बचें जो दूसरोंको पीड़ा देनेवाला हो।

प्राणिमात्रके मङ्गलकी कामना करनेवाले भगवान् मङ्गलमूर्ति महादेवकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। कहाँ अद्भुत, अक्षत, अविनाशी, अप्रमेय, अजन्मा, निर्मल, मायारहित, अतुल महिमावाले, महेश्वर परात्पर शिव और कहाँ मैं अत्यल्पज्ञ प्राणी! मेरी कामना तो मात्र इतनी ही है कि मैं आपका सर्वदा जयगान करता रहूँ।

जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय।
जयामेय जयामाय जयाभव जयामल॥
अनन्तकान्तिसम्पन्न जयासादृश्यविग्रह।
अतर्क्यमहिमाधार जयानुकूल मङ्गल॥

(शिवपु०, शा० सं० ३१।४,८)

'हे प्रभो! आप अद्भुत हैं, आपकी जय हो। आप अक्षुद्र (महान्) हैं, आपकी जय हो। आप अविनाशी एवं अव्यय हैं, आपकी जय हो। हे अप्रमेय परमात्मन्! आपकी जय हो। मायारहित महेश्वर! आपकी जय हो। हे अजन्मा शिव! आपकी जय हो। हे निर्मल शंकर! आपकी जय हो। आप अनन्तकान्तिसे सम्पन्न हैं। आपके श्रीविग्रहकी कहीं तुलना नहीं है, आपकी जय हो। आप अतर्क्य महिमाके आधार हैं तथा शान्तिमय मङ्गलके निकेतन हैं, आपकी जय हो।

भक्तरक्षक शिव

सोच बिमोच अनेक लये जस गान सुन्यौं शिव तैं सुजसी है।
सेवनमें गुरुदेव तु ही प्रभु तेरी ही चित्तमें गाँस गँसी है॥
ओ सिरताज चराचरके! तव प्रेममें 'प्रेम' की फाँस फँसी है।
लाजु यचा कितौ देखु इतै, अब मेरी हँसी किधौं तेरी हँसी है॥

शिवतत्त्व-मीमांसा

(राष्ट्रपति-सम्मानित आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

महाप्रलयके अन्तमें नटराजराज शिवने अपने 'शब्द-ब्रह्म'का नाद घोषित किया। जब सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पर्वतादि कुछ भी नहीं थे, उस समय आकाशसे ऊपर अन्तरिक्षमें केवल ध्वनिमात्र ही थी। वह ध्वनि ही शब्दब्रह्म 'ॐ' कारस्वरूप है। वही ध्वनि चौदह बार प्रतिध्वनित होकर व्याकरणशास्त्रके वाक्-शक्तिके चौदह सूत्र हुए। ये चौदह सूत्र प्रतीकात्मक अक्षरब्रह्म हैं। यहींसे शब्दब्रह्मका आविर्भाव हुआ। इन चौदह प्रतिध्वनियोंसे चतुर्दश भुवनोंका एवं चतुर्दश विद्याओंका विकास हुआ। यथा—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

वाक्यपदीयकी इस कारिकाके अनुसार यही शब्दब्रह्म जो शिवतत्त्वसे निकला है, समग्र सृष्टिका कारण है।

शिवतत्त्वकी मीमांसा करनेकी पृष्ठभूमिमें यह देखना अनिवार्य है कि आखिर यहाँ शिवतत्त्व कैसे विश्वकल्याण-कारी—अतिरहस्यात्मक मूल उत्स है? यह शिव ही क्रमशः सूर्य एवं चन्द्रादिके रूपमें दृश्य हुआ तथा इन्हींकी विकीर्ण सहस्र किरणें शिवकी बिखरी हुई जटाएँ हैं। ये सूर्य-रश्मियाँ ही सभी रसतत्त्वों, जीव-जन्तुओं, प्राणियों एवं वृक्ष-वनस्पतियोंके संरक्षक-संवर्धक हैं। ये ही रश्मियाँ जल-ग्रहण, जल-वर्षण करती हैं।

फलतः ये सूर्य परब्रह्मस्वरूप शिवतत्त्वसे विकसित हैं। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' सूर्य ही सबकी आत्मा हैं। (यजुर्वेद ७।४२)। 'सूर्यो वै ब्रह्म'—सूर्य ही ब्रह्म हैं। (उपनिषद्) 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' (यजुर्वेद) जैसे धाता—सृष्टिकर्ताने सूर्य, चन्द्रमाकी सृष्टि की। ये धाता वही परम शिव हैं, जहाँसे सृष्टिकी रचना हुई। उसी परमशिवतत्त्वके कार्यविभाजन-प्रक्रियामें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश हैं। उसी अन्तरिक्षमें नित्य, शाश्वत, शब्दब्रह्म, 'ॐ'कार विद्यमान है। वही वाक्-शक्ति है। यथा—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥

अर्थात् लोकमें कोई भी ज्ञान शब्दके बिना नहीं हो[illegible] सभी ज्ञान शब्दोंमें ही अन्तर्भूत होकर प्रकाशित या अभिव्य[illegible] होते हैं।

अब कुछ और गम्भीर, रहस्यपूर्ण वाक्-तत्त्व, शिवत[illegible] कुण्डलिनी-तत्त्वकी ओर बढ़ें। शब्दशास्त्रका 'स्फोटवाद' अ[illegible] आगमशास्त्रका 'कुण्डलिनी-रहस्य' दोनों एक ही तत्त्वकी [illegible] इङ्गित करते हैं। यहाँ थोड़ा-सा दोनोंका विश्लेषण किया [illegible] रहा है—

परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी—ये वाक्के चार [illegible] हैं। यथा—

परा वाङ्मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा॥
वैखर्या हि कृतो नादः परश्रवणगोचरः।
मध्यमायाः कृतो नादः स्फोटव्यञ्जक उच्यते॥

अर्थात् मूलाधारचक्रस्थित ध्वनि 'परा' वाक् है। उस[illegible] ऊपर 'नाभि' समीपस्थ ध्वनि 'पश्यन्ती' है। उससे ऊप[illegible] हृदयमें स्थित 'मध्यमा' नादध्वनि है एवं वैखरी ध्वनिद्वारा ह[illegible] वाणी—वाक्का लोगोंमें विस्तार होता है—आदान-प्रदा[illegible] होता है। इनमें 'परा' एवं 'पश्यन्ती'—ये दोनों वाक्शक्ति योगियोंद्वारा ही बोधगम्य हैं। 'मध्यमा' वाक्को व्याकरण-शास्त्रके अनुसार 'स्फोट' कहा गया है। स्फुटति अर्थः यस्मात स स्फोटः—अर्थात् जहाँ पहुँचकर अर्थका ज्ञान सुस्पष्ट होता है। कोई भी शब्द या वाक्य मौनरूपमें उच्चरित करें—वे आपको सुस्पष्ट श्रवणगोचर होंगे तथा उनके अर्थका भी ज्ञान मध्यमा नादके स्फोटसे होगा।

कण्ठसे निकलनेवाली वैखरी ध्वनि तो परस्पर वाक्योंके आदान-प्रदानके लिये है। ये वैखरी शब्द अनित्य हैं। लेकिन मध्यमा नादध्वनि जो स्फोटवादके नामसे ख्यात है, वह नित्य है। यहाँ व्याकरण-शब्दशास्त्रके विशाल स्फोटवादके विवरणमें न जाकर केवल प्रसंग-संगतिके लिये इनका उल्लेख यहाँ किया गया है।

अब आये कुण्डलिनी-तत्त्वकी प्रक्रियापर। आगम-

शास्त्रानुसार—**मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य सुषुम्नामार्गेण हृदयस्थजीवात्मना सह संयोज्य कण्ठस्थवैखरीं स्पृशन् मस्तकस्थिताधोमुखसहस्रारदले स्थितेन परमशिवेन संयोजयेत्, येन ततोऽमृतक्षरणं जायते।** (तन्त्रसार)

अर्थात् नाभिके नीचे मूलाधारसे सर्पिणीके आकारकी कुण्डलिनीको योगबलसे उठाकर उसे पीठकी रीढ़के मध्य स्थित इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना—इन तीन नाडियोंके मध्य सुषुम्ना नाडी—सूक्ष्मतम नाडीके मार्गसे हृदयमें स्थित जीवात्माके साथ संयोग कराकर कुण्डलिनीको कण्ठस्थित वैखरीके मार्गसे मस्तक—ब्रह्माण्डमें अधोमुख विकसित सहस्रदल-कमलके बीच स्थित परमशिव (परब्रह्म)मे उस कुण्डलिनीको मिला दे। उसके मिलते ही वहाँसे अमृत-क्षरण होने लगेगा जो सृष्टितत्त्वके विकासका कारण है।

इस तरह गम्भीरतम कुण्डलिनी-तत्त्व एवं कठिनतम शब्द-ब्रह्म-तत्त्व 'स्फोटवाद'—दोनोंके एक ही सिक्केके दो भाग—दो पहलू हैं।

अब प्रायः यह स्पष्ट हो जायगा कि शरीरस्थ जीवात्मा-परमात्माका संयोग इडा, पिङ्गला, सुषुम्नाद्वारा जिस कुण्डलिनीसे होता है, वही वाक्तत्त्व परा-पश्यन्ती-मध्यमाद्वारा स्फुटित होकर शब्दशक्तिके रूपमें परिणत हो सृष्टिका कारण बनता है। अतएव **'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माभिधीयते'**—शब्दब्रह्ममें निष्णात ही परब्रह्मको प्राप्त करता है, ऐसा सिद्धान्त है।

वाक्यपदीयका कथन है—

इदमाद्यं पदं स्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम्।
इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः॥

यही शब्दब्रह्म आद्य—प्रथम स्थान, सिद्धियोंका सोपान है और यही वाक्शक्ति मोक्ष चाहनेवालोंके लिये सरलतम राजमार्ग है।

शिवतत्त्व-मीमांसाके क्रममें उपर्युक्त संक्षिप्त विवरणोंसे यह स्पष्ट होता है कि 'शिवतत्त्व' ही सृष्टिका कारण है। यही शिवताण्डव नृत्तकी चरम परिणति है। ये सभी बातें तो रहस्यमय हैं ही, साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोणके साथ आस्थारूपी मृणालतन्तु (कमलके डंठलके मध्यका रेशा) के समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपमें जुड़े हैं।

यहाँ भगवद्गीताके वाङ्मय तपकी ओर भी दृष्टिपात अपेक्षित है। यथा—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(१७। १५)

इस वचनमें मधुर वाणी और सत्य तथा कल्याणकारी वाक्योंका प्रयोग ही सर्वोत्कृष्ट साधना या वाङ्मय तप कहा गया है। परमतत्त्व और मधुरतम वाणी तो भगवान् शिवका मङ्गलमय नाम ही है, जो उच्चारण करते ही समस्त पाप-तापोंका शमन कर परममङ्गलका विस्तार करती है—

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसंगादघमाशु हन्ति तत्।

(श्रीमद्भा० ४। ४। १४)

मात्र इसी शिवनामके निरन्तर जपसे परम शान्ति, परम कल्याण और सभी साधनाओंकी सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है। नाम-जपसे सरल और शीघ्र अधिक-से-अधिक फल देनेवाली साधना और कोई नहीं है। इससे पराभक्तिकी प्राप्तिपूर्वक पूर्णतम परम शिवका ज्ञान एवं साक्षात्कार कर भक्त सर्वथा कृतार्थ हो जाता है।

शिवालयका तत्त्व-रहस्य

(श्रीअशोकजी जोशी, एम्० ए०, बी० एड्०)

प्रायः प्रत्येक शिवालयमें नन्दी, कूर्म (कच्छप), गणेश, हनुमान्, जलधारा, नाग-जैसे रहस्यमय प्रतीक देखे जाते हैं। देव-देवियोंकी आकृतियोंमें, उनके आसन-वाहन-प्रतीक-लक्षणोंमें सूक्ष्म भाव एवं गूढ ज्ञानगम्य सांकेतिक सूत्र संनिहित रहते हैं।

शिवालयकी ही चर्चा की जाय तो प्रत्येक मन्दिरमें नन्दीके दर्शन सर्वप्रथम होते हैं। यह महादेवका वाहन है। यह सामान्य बैल नहीं है। यह ब्रह्मचर्यका प्रतीक है। शिवका वाहन जैसे नन्दी है वैसे ही हमारे आत्माका वाहन शरीर—काया है। अतः शिवको आत्माका एवं नन्दीको शरीरका

प्रतीक समझा जा सकता है। जैसे नन्दीकी दृष्टि सदाशिवकी ओर ही है, वैसे ही हमारा शरीर आत्माभिमुख बने, शरीरका लक्ष्य आत्मा बने, यह संकेत समझना चाहिये।

शिवका अर्थ है कल्याण। सभीके कल्याणका भाव आत्मसात् करे, सभीके मङ्गलकी कामना करे तो जीव शिवमय बन जाता है। अपने आत्मामें ऐसे शिवत्वको प्रकट करनेकी साधनाको ही शिवपूजा या शिव-दर्शन कह सकते हैं और इसके लिये सर्वप्रथम आत्माके वाहन शरीरको उपयुक्त बनाना होगा। शरीर नन्दीकी तरह आत्माभिमुख बने, शिवभावसे ओतप्रोत बने। इसके लिये तप एवं ब्रह्मचर्यकी साधना करे, स्थिर एवं दृढ़ रहे, यही महत्त्वपूर्ण शिक्षा इस नन्दीके माध्यमसे दी गयी है।

नन्दीके बाद शिवकी ओर आगे बढ़नेसे कछुआ आता है। नन्दी यदि हमारे स्थूल-शरीरके लिये प्रेरक मार्गदर्शक है तो कछुआ सूक्ष्म-शरीरका अर्थात् मनका मार्गदर्शन करता है। हमारा मन कछुए-जैसा कवचधारी सुदृढ़ बनना चाहिये। जैसे कच्छप शिवकी ओर गतिशील है, वैसे ही हमारा मन भी शिवमय बने, कल्याणका ही चिन्तन करे, आत्माके श्रेय-हेतु यत्नशील रहे एवं संयमी तथा स्थितप्रज्ञ रहे।

अर्थात् मनकी गति, विचारोंका प्रवाह, इन्द्रियोंके काम शिवभावयुक्त आत्माके ही लिये हुआ करें, यही शिक्षा देनेके लिये कच्छप शिवकी ओर सरकता बताया जाता है। कछुआ कभी नन्दीकी ओर नहीं जाता, शिवकी ही ओर जाता है। हमारा मन भी देहाभिमुख नहीं, आत्माभिमुख ही बना रहे। भौतिक नहीं आध्यात्मिक ही बना रहे। शिवत्वका ही चिन्तन करे।

नन्दी एवं कच्छप दोनों जब शिवकी ओर बढ़ रहे हैं, अर्थात् शारीरिक कर्म एवं मानसिक चिन्तन दोनों जब आत्माकी ओर बढ़ रहे हैं, तब इन दोनोंकी शिवरूप आत्माको पानेकी योग्यता है या नहीं, इसकी कसौटी करनेके लिये शिव-मन्दिरके द्वारपर दो द्वारपाल खड़े हैं—गणेश और हनुमान्।

गणेश एवं हनुमान्‌के दिव्य आदर्श यदि जीवनमें नहीं आये तो शिवका या कल्याणमय आत्माका साक्षात्कार भला कैसे हो सकेगा?

गणेशका आदर्श क्या है? बुद्धि एवं समृद्धिका सदुपयोग करना, यही इनका सिद्धान्त है। इसीलिये आवश्यक गुण गणेशके हाथोंमें स्थित प्रतीकोंद्वारा बताये जाते हैं। अङ्कुश संयम—आत्मनियन्त्रणका, कमल पवित्रता—निर्लेपताका, पुस्तक उच्च-उदार विचारधाराका एवं मोदक मधुर स्वभावका प्रतीक है। वे मूषक-जैसे तुच्छ रंगको भी चाहते—अपनाते हैं। ऐसे गुण रखनेसे ही आत्मदर्शन—शिवदर्शनकी पात्रता प्रमाणित होती है।

हनुमान्‌का आदर्श क्या है? विश्वहितके लिये तत्परता-युक्त सेवा और संयम। ब्रह्मचर्यमय जीवन ही इनका मूल सिद्धान्त है। यही कारण है कि हनुमान् सदैव रामजीके कार्योंमें सहयोगी रहे हैं, अर्जुनके रथपर विराजित रहे हैं। ऐसी तत्परता बरतनेसे ही विश्व कल्याणमय शिवत्व या आत्मदर्शनकी पात्रताको प्राप्त कर सकता है।

गणेश-हनुमान्‌की परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेसे साधकको शिवरूप आत्माकी प्राप्ति हो सकती है। किंतु इतनी महान् विजय जिसे प्राप्त होती है, उसमें अहंकार आ सकता है। मैं बड़ा हूँ, श्रेष्ठ हूँ ऐसा अहंकार ही तो पग-पगपर आत्म-परमात्मके मिलनमें बाधक बन जाता है। इसी बातका स्मरण देनेके लिये मानो शिवालयके मन्दिरका प्रवेशद्वार सोपान-भूमिसे कुछ ऊँचा ही रखा जाता है। द्वार भी कुछ छोटा ही रहता है। अतः प्रकोष्ठको पार करके निज मन्दिरके ऊँचे सोपानपर चरण रखते समय एवं अन्तिम शिवद्वारमें प्रवेश करते हुए अत्यन्त विनम्रता, सावधानी बरतनी पड़ती है, सिर भी झुकाना पड़ता है। साधकके अहंकारका तिमिर जब नष्ट हो जाता है, तब भीतर-बाहर सर्वत्र शिवत्वके दर्शन होने लगते हैं। सभी कुछ मङ्गलमय लगने लगता है। आत्मज्ञानके सदृश पवित्र एवं प्रकाशमय और क्या हो सकता है?

भीतरमें जब प्रवेश किया जाय, तब कर्ममय स्थूल जगत् एवं विचारमय सूक्ष्म जगत् तो बाहर ही छूट जाता है। निजमें जो कारण जगत्‌की—आत्मस्वरूपकी प्रतीति होती है वह अवर्णनीय है, शिवत्व-भावमें ओतप्रोत कर देनेवाली है।

शिवालयके निज मन्दिरमें जो शिवलिङ्ग है, उसे आत्म-लिङ्ग, ब्रह्मलिङ्ग कहते हैं। यहाँ विश्वकल्याणनिमग्न ब्रह्माकार—विश्वाकार परम आत्मा ही स्थित है। हिमालय-सा शान्त महान्, श्मशान-सा सुनसान शिवरूप आत्मा ही भयंकर

शत्रुओंके बीच रह सकता है। कालरूप सर्पको गले लगा सकता है। मृत्युको भी मित्र बना सकता है। कालातीत महाकाल कहला सकता है। ज्ञान-वैराग्यको धारण कर सकता है।

भगवान् शिवद्वारा धारण किये जानेवाले कपाल, कमण्डलु आदि पदार्थ संतोषी, तपस्वी, अपरिग्रही जीवन-साधनाके प्रतीक हैं। भस्म—चिताभस्मालेप ज्ञान-वैराग्य और विनाशशील विश्वमें अविनाशीके वरणके सूत्र—संकेत है। डमरू-निनाद आत्मानन्द—निजानन्दकी आनन्दानुभूतिका प्रतीक है। काला नाग कालातीत चिर-समाधि-भावका प्रतीक है।

त्रिदल—विल्वपत्र, तीन नेत्र, त्रिपुण्ड्र, त्रिशूल आदि सत्त्वगुण-रजोगुण-तमोगुण—इन तीनोंको सम करनेका संकेत देते हैं। त्रिकाय, त्रिलोक और त्रिकालसे पर होनेका निर्देश देते हैं। भीतरी भावावेशोंको शान्त करनेके लिये साधक भ्रुकुटीमें ध्यान केन्द्रित किया करते हैं। इसी स्थानमें त्रिकुटी, सहस्रचक्र, सहस्रदल-कमल, अमृतकुम्भ, ब्रह्मकलश, आज्ञाचक्र, शिव-पार्वती-योग-जैसे वर्णनोंद्वारा सिद्धि-सामर्थ्यकी प्राप्तिकी क्षमता होनेकी चर्चा योगशास्त्रोंमें की गयी है। विवेक-बुद्धिरूपी तृतीय नेत्र भविष्यदर्शन, अतीन्द्रिय शक्ति एवं कामदहन-जैसी क्षमताओंका केन्द्र माना गया है। शिवके रुद्र तो भीतरी आवेश-आवेग ही हैं, इनको शम करना, यही तो शंकरका काम है। त्रिदेव यानी ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी इन्हीं सभी त्रिपरिमाण—त्रयीयुक्त प्रतीकोंसे सूचित हैं। अ-उ-म्—इन तीनों अक्षरोंके समन्वित एकाक्षर 'ॐ'में भी यही भाव समायोजित है।

विश्वकल्याण-हित हालाहलको भी पी लेना एवं विश्वके तमाम कोलाहलसे परे रहकर मृदङ्ग, शृङ्ग, घण्टा, डमरू, शंखके निनादमें मग्न रहना अर्थात् आत्मस्थ रहना, ब्रह्ममें रत रहना यही शिवसंदेश इनके कई छोटे-मोटे प्रतीकोंद्वारा भी घोषित हुआ है। शंख, डमरू आदि योग-साधनामें भीतरी अनाहत नादके भी संकेत हैं, जिसे 'नाद ब्रह्म' कहते हैं।

शिवपर अविरत टपकनेवाली जलधारा जटामें स्थित गङ्गाका प्रतीक है। वह ज्ञान-गङ्गा है। स्वर्गकी ऋतम्भरा प्रज्ञा—दिव्य बुद्धि—गायत्री अथवा त्रिकाल संध्या, जिसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी उपासते रहते हैं, यही ज्ञान-गङ्गा है।

शिवलिङ्ग यदि शिवमय आत्मा है, तो उनके साथ छायाकी तरह अवस्थित पार्वती उस आत्माकी शक्ति है। इसमें संकेत यह है कि ऐसे कल्याणमय, शिवमय आत्माकी आत्म-शक्ति भी छायाकी तरह उसका अनुसरण करती है, प्रेरणा-सहयोगिनी बनती है।

शिवालयकी जलधारा उत्तर दिशाकी ओर बहती है। उत्तरमें स्थित ध्रुव तारक उच्च स्थिर लक्ष्यका प्रतीक है। शिवमय-कल्याणकामी आत्माका ज्ञान-प्रवाह, चिन्तन-प्रवाह सदैव उच्च स्थिर लक्ष्यकी ओर ही गति करता है। उनका लक्ष्य ध्रुव अविचल रहता है। कई पुरातन शिवमन्दिरोंमें उत्तरी दीवारमें गङ्गाजीकी प्रतिमा भी रहती है। उसे स्वर्गीय दिव्य बुद्धि, ऋतम्भरा प्रज्ञा—गायत्री ही समझना चाहिये, जो ब्रह्माण्डसे अवतरित चेतना है।

शिवपर अविरत टपकनेवाली जलधाराकी तरह ही साधकपर भी ब्रह्माण्डीय चेतनाकी अमृतधारा—प्रभुकृपा अविरत बरसती रहती है। ऐसा विश्वास करना चाहिये।

इस प्रकार शिवालय-स्थित इन प्रतीकों—चिह्नोंके तत्त्व-रहस्योंका चिन्तन कर भावनासे ओत-प्रोत बने व्यक्तित्वको शिवमय बनाया जा सके, तो इसीमें हमारे दर्शन-पूजन-उपासना आदिकी यथार्थ सार्थकता है।

ॐ नमः शिवाय।

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खागो कछू,' जनि मागिये थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरैं जाचक जोरो॥
नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहि पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्मा कहै, गिरिजा! सिखयो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो॥

शिव और शक्ति

(आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री)

लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः
कार्येण यो हरिहरद्रुहिणत्वमेति ।
देवः स विश्वजनवाङ्मनसातिवृत्त-
शक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं वः ॥

(जगद्धरभट्टः, स्तु० कुसु० त० स्तो० ३)

'जो 'शिव' जीवोंके उपकारार्थ तीनों लोकोंकी स्थिति (पालन), नाश (संहार) और उत्पत्ति-कार्य सम्पन्न करते हुए विष्णु, रुद्र और ब्रह्मारूपको धारण करते हैं तथा जिस 'शिव' की 'शक्ति' समस्त प्राणियोंकी वाणी और मनसे अत्यन्त अगम्य है, वह स्वयंप्रकाश शिव (परमेश्वर) आपलोगोंको सर्वदा अक्षय कल्याण (मोक्ष) प्रदान करें।'

शिव शब्दका अर्थ है 'कल्याण'। शिव ही शंकर है। 'शं' का भी अर्थ है 'कल्याण'। 'कर'का अर्थ है—करनेवाला। शिव, अद्वैत, कल्याण, आनन्द—ये सारे शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं। शिव ही ब्रह्म हैं। ब्रह्म ही शिव है। ब्रह्म जगत्के जन्मादिका कारण है। श्रुतिके अनुसार सृष्टिके पूर्व सत् और असत् नहीं थे, केवल शिव ही था।

शिवसे भिन्न शक्ति नहीं और शक्तिसे भिन्न शिव नहीं। शिवमें 'इ'कार ही शक्ति है। इकार निकल जानेपर 'शव' ही रह जाता है। शिव कूटस्थ तत्त्व है और शक्ति परिणामिनी तत्त्व है। नाना प्रकारकी विचित्रताओंसे परिपूर्ण संसारके रूपमें अभिव्यक्त शक्तिका आधार एवं अधिष्ठान शिव ही है। शिव ही अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल, अरूप, अजन्मा आत्मा है और शक्ति दृश्य, चल, रूपवान्, जन्म लेनेवाली अर्थात् नाम-रूपके द्वारा व्यक्त सत्ता है। विश्वके अनन्त, शान्त एवं गम्भीर वक्षःस्थलपर अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका रूप धारणकर तथा उनके भीतर सर्ग, स्थिति और नाशकी विविध लीला करती हुई शक्ति अनवरत नृत्य करती रहती है।

जैसे पुष्पमें गन्ध, चन्द्रमें चन्द्रिका, सूर्यमें प्रभा नित्य और स्वभाव-सिद्ध है, उसी प्रकार शिवमें शक्ति भी स्वभाव-सिद्ध है। शक्तिके उमा, दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती आदि नाम हैं। शिव पुरुष हैं और उमा स्त्री। शिव ब्रह्मा हैं और उमा सरस्वती। शिव विष्णु हैं और उमा लक्ष्मी। शिव सूर्य हैं तो उमा छाया। शिव चन्द्र हैं तो उमा तारा। शिव यज्ञ हैं तो उमा वेदी। शिव अग्नि हैं तो उमा स्वाहा। शिव अर्थ हैं तो उमा अक्षरद्योतिका। इस प्रकार सर्वत्र शिवके साथ शक्ति विद्यमान है। शास्त्रोंका कथन है कि शिवका साक्षात् करना बहुत कठिन है। सर्वप्रथम शक्तिके सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ता है। बिना शक्तिकी सहायताके शिवका साक्षात्कार नहीं होता। शक्तिकी साधनाके बिना शिव अर्थात् कल्याणकी प्राप्ति सम्भव नहीं। अतः भारत आदिकालसे ही संयुक्त शिव-शक्तिका उपासक रहा है।

शक्तिके सम्मुख आत्मसमर्पणका तात्पर्य यही है कि शक्तिके सहारे मानव देहाभिमान अथवा अहंकारसे ऊपर उठ सकता है। जीवनकी सूक्ष्म और स्थूल जितनी भी क्रियाएँ हैं, सभी शक्तिके ही कार्य हैं। शक्ति ईश्वरीय तत्त्व मानी जाती है। शक्ति ही समस्त चर और अचरमें व्याप्त है। शिवकी आराधना ही शक्तिकी आराधना है। भारतीय दर्शनके विद्वानोंने यह माना है कि शिव और शक्तिकी विषमता एवं विधिका सामञ्जस्य ही परमात्मतत्त्वका रहस्य है।

चरकसंहितामें महाप्रलयके बादकी स्थितिका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि 'उस समय मृत्यु और जीवन नहीं था। रात्रि-दिवसका विभाग करनेवाला सूर्य भी नहीं था।' प्रश्न उठता है कि उस समय क्या था? उत्तरमें यही कहा गया है कि उस समय समाधिस्थ सूत्रात्मा, श्वास-प्रश्वास-रूप, कल्प, सृष्टि और प्रलय आदि व्यवहारसे रहित, शान्त समुद्रके समान अनन्ताकाररूपिणी, नित्य, ज्ञान-शक्ति (उमा) के साथ एक अखण्ड, परिपूर्ण शिव ही अस्तित्वरूप क्रियावाला था। उस शिवकी अनन्त शक्तिके किसी एक भागमें ही माया बीजरूपमें थी। जैसे बीजकी शक्ति अपनी उत्पत्तिके पहले बीजमें ही रहती है, वैसे ही अव्यक्त शक्ति नित्य उमासे भिन्न नहीं है। उमा भी आगन्तुक मायासे भिन्न नहीं हैं।

उमा शक्ति हैं। नित्यस्वरूपा हैं। ज्ञानका रूप नहीं तो चेतनका रूप कहाँसे होगा? अतः शिव ज्ञानके स्वरूप हैं और निराकार हैं। अपरिणामिनी शक्तिकी परिचायिका परिणामिनी बीज शक्ति है। शिव ही ब्रह्म हैं। शिव ही प्रणव

(ॐ) है। जो प्रणव है, वही सर्वव्यापी है। वही अनन्त शक्ति-स्वरूपा उमा (शक्ति) हैं। जो उमा हैं वही तारकमन्त्र है। वही ॐकार है। जो तारकमन्त्र है, वही ब्रह्मविद्या है। जो तारक है, वही सूक्ष्म ज्ञान-शक्ति है। जो सूक्ष्म है, वही शुद्ध है। जो शुद्ध है, वही उमा हैं। जो उमा हैं, वही ब्रह्म हैं। वही एक अद्वितीय शिव हैं। वही ईशान है। वही भगवान् हैं। वही महेश्वर हैं। वही महादेव हैं।

'यः ॐकारः स प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तः योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मम्'''' ।'

(अथर्वशिरउपनिषद्)

श्रुतियोंका कथन है कि जिनमें समस्त वस्तुएँ शयन करती है, वही शिव हैं। वही अद्वैत ज्ञान हैं। वही निराकार हैं। वही निर्विकार हैं। वही निर्गुण ब्रह्म हैं। शिव जब अपने स्वरूपमें रहते हैं और जब वे अपनी शक्तिको क्रोडीभूत करके अर्थात् अपनी गोदमें लेकर एक होकर रहते हैं, तब सृष्टिका प्रादुर्भाव बंद हो जाता है। पुनः जब अपनी मायाको या अपनी शक्तिको अङ्गीकार करते हैं, तब वे अपने स्वरूपमें स्थित होते हुए सगुण-भाव धारण करते हैं। सगुणावस्थामें ही वे विश्वस्थ हो जाते हैं। समस्त देवता ही शिव-शक्ति हैं। समस्त स्थावर-जंगम उसी शिव-शक्तिकी सम्मिलित अवस्था हैं। सब देव मिलकर एक परमात्मा हैं और वह परमात्मा ही 'शिव' हैं।

शिव जब विस्ताररहित अद्वितीय रूपमें स्थित रहते हैं, तब मानो वह विविधस्थ विलासमयी प्रकृति नटी उनमें विलीन रहती है। शक्ति शिवमें अक्रिय, अव्यक्तरूपमें स्थित है। शक्ति है, परंतु दृश्य नहीं होती। शक्ति बाह्य-क्रियासे रहित भी है। पुनः जब वही शिव अपनी शक्तिको व्यक्त और क्रिया-रूपमें परिणत करते हैं, तब वही क्रियामयी शक्ति (प्रकृति) शिवको विविध रूपोमें प्रकट करके उनकी क्रीडाका उपकरण प्रस्तुत करती है। एक ही शिव विविध रूप धारण करके अपने-आपसे ही खेलते हैं।

शिव सगुण भी हैं निर्गुण भी। वे साकार होकर भी निराकार हैं। अपाणिपाद होकर भी ग्रहण एवं गमन करनेवाले हैं। 'सर्वेन्द्रियगुणाभासम्' होनेपर भी इन्द्रियोंसे हीन हैं। वे दूर भी हैं और समीप भी। निर्विकल्प होते हुए भी सविकल्प हैं। शिव मन-बुद्धिसे परे होते हुए भी बुद्धिगम्य हैं। शिव अणुसे भी परम अणु हैं। महान्‌से भी महान् हैं। शिव सृष्टि, स्थिति (पालन) और विनाश (संहार) करनेवाले हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हैं। वे तीनों रूपोमें स्थित एक ही (शिव) हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६।७) में लिखा है—'सर्वनियन्ताओंके महान् नियन्ता देवताओंके परम दैवत, प्रजापति ब्रह्मादिके भी स्वामी स्वयंप्रकाशस्वरूप एवं पूज्य महेश्वर महारुद्र भगवान् (शिव) हैं'—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

भक्ति-भावनासे प्रेरित होकर शिवभक्तोंने शिवका त्रिनेत्र, त्रिशूल, मुण्डमाला धारण किये रूपमें दर्शन किया है, उन्हें दिगम्बर, श्मशानवासी कहा है। किसी भक्तने शिवको अर्धनारीश्वर माना है, किसीने शिवको मदनजित् समझा। किसीने शिवको भस्मधारी भी कहा। वास्तवमें शिवके त्रिनेत्र, त्रिशूल और उनके मुण्डमाला आदि धारण करनेका गूढ़ रहस्य है। शिवके त्रिनेत्र, त्रिकाल अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान-ज्ञानके बोधक हैं। तीनों नेत्र सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि-स्वरूप हैं। शिवका मुण्डमाल मरणधर्मा प्राणीको सदा-सर्वदा मृत्युका स्मरण कराता है। मृत्युका स्मरण होते ही मानव सावधान हो जाता है। सावधान होते ही जीव अपनेको दुष्कर्मोंसे विरत रखनेका प्रयास भी कर सकता है। शिव दिगम्बर होते हुए भक्तोंके ऐश्वर्यको बढ़ानेवाले हैं और मुक्त-हस्त दान करते रहते हैं। श्मशानसेवी होते हुए भी तीनों लोकोंके स्वामी हैं। अर्धनारीश्वर होते हुए भी योगाधिराज हैं। मदनजित् होते हुए भी सदा-सर्वदा शक्ति (उमा) के साथ रहते हैं। भस्मधारी होते हुए भी अनेकानेक रत्नराशियोंके अधिपति हैं। वही शिव अजन्मा भी हैं और वही शिव अनेक रूपोंमें आविर्भूत भी हैं। गुणातीत भी हैं। गुणाध्यक्ष भी हैं। अव्यक्त भी हैं और व्यक्त भी हैं। संयुक्त शिव-शक्तिकी उपासनामें मानव-जीवनकी पूर्ण सार्थकता है और इसमें उसका परम कल्याण भी निहित है।

शिवलिङ्ग और काशी

(पण्डित श्रीभवानीशंकरजी)

श्रीगणेश

पञ्च उपास्य देवोंमें एक देव श्रीआदिगणेशको महेश्वरने सृष्टिके प्रारम्भमें सृष्टि-कार्यमें विघ्न-बाधाके प्रशमनार्थ अपने साक्षात् अंशसे प्रकट किया, इसी कारण प्रत्येक यज्ञादि शुभ कार्योंमें प्रथम श्रीगणेशकी पूजा होती है। जब उस महेश्वर परात्पर तत्त्वने व्यक्तरूपमें शिवमूर्ति धारण की तो उसी अनादि शैलीके अनुसार श्रीगणेश भी उनके यहाँ पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए और गणोंके (देवताओंके) अधिपति अर्थात् संचालक बने। सर्वप्रथम श्रीगणेशकी वन्दना और गुणगान करना आवश्यक है—

ॐ देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥

यह गणाधिप गणेश ज्ञानके दाता हैं, इसी कारण बुद्धिद्वारा कार्य करते हैं। इनका विशाल मस्तक इनकी महती बुद्धिका सूचक है। इसी बुद्धिके बलसे इनका क्षुद्र अधोभाग इनके विशाल ऊर्ध्वभागको सहारा देता है और परम लघु जन्तु मूषकसे वाहनका कार्य चलता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि आभ्यन्तरिक ज्ञान और बुद्धि प्रचुर रूपमें प्राप्त हों तो उसके बलसे बहुत स्वल्प बाह्य सामग्रीसे कार्य उत्तमतासे चल सकता है। समाजमें कोई-कोई जो विशिष्ट महापुरुष होनेकी योग्यताके साथ जन्म लेते हैं वह इन्हीं श्रीगणेशके कृपापात्र होते हैं।

एक बार श्रीमहादेवको अपने एक यज्ञमें बुलानेके लिये देवताओंको निमन्त्रण भेजना था। कार्तिकेयजीसे यह कार्य अवधिके भीतर न हो सका। तब श्रीगणेशजीपर यह भार दिया गया, किंतु उनका वाहन क्षुद्र मूषक था जो बहुत मन्दगतिसे चलनेवाला था। अतः श्रीगणेशजीने बुद्धिसे कार्य किया। श्रीमहादेवजीमें सब देवताओंका वास है, ऐसा समझकर उन्हींकी तीन बार परिक्रमा करके सब देवताओंको वहीं निमन्त्रण दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सब देवताओंको यज्ञ और निमन्त्रणकी जानकारी हो गयी और सब-के-सब यज्ञमें सम्मिलित हुए।

परात्पर शिव और आद्या शक्ति

सृष्टिमें जो परम परात्पर हैं वही शिव हैं। माण्डूक्योपनिषद्में शिवका यों वर्णन मिलता है—

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।

जिनकी प्रज्ञा बहिर्मुख नहीं है, अन्तर्मुख नहीं है और उभयमुख भी नहीं है, जो प्रज्ञानघन नहीं हैं, प्रज्ञ नहीं हैं और अप्रज्ञ भी नहीं हैं, जो वर्णनसे अतीत हैं, दर्शनसे अतीत, व्यवहारसे अतीत, ग्रहणसे अतीत, लक्षणसे अतीत, चिन्तासे अतीत, निर्देशसे अतीत, आत्मप्रत्ययमात्र-सिद्ध, प्रपञ्चातीत, शान्त, शिव, अद्वैत और तुरीयपदस्थित हैं वे ही निरुपाधिक जानने योग्य हैं। इनका ही नाम 'महेश्वर', 'स्वयम्भू' और 'ईशान' है। श्रुति भी कहती है—

'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥'

वे ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता, पतियोंके भी परम पति, परात्पर, परम पूज्य और भुवनेश हैं। जिनमें यह विश्व है, जिनसे यह विश्व है, जिनके द्वारा यह विश्व है, जो स्वयं यह विश्व हैं, जो इस विश्वके परसे भी परे हैं, उन स्वयम्भू भगवान्‌की मैं शरण लेता हूँ। उन्हीं ईशान और वरदाता पूज्यदेवको जाननेसे जीव आत्यन्तिकी शान्तिका अधिकारी हो जाता है।

यह सदाशिव अपनी शक्तिसे युक्त होकर सृष्टि रचते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद्में लिखा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

'माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृति—मायाके अधिष्ठाता मायी हैं। मायाके द्वारा उन्हींके अवयवभूत जीवोंसे समस्त संसार परिव्याप्त हो रहा है।'

इस प्रकार यह अव्यय सदाशिव सृष्टिकी रचनाके निमित्त दो हो जाते हैं। क्योंकि सृष्टि बिना द्वैत (आधार-आधेय) के हो नहीं सकती। आधेय (चैतन्य पुरुष) बिना आधार (प्रकृति, उपाधि) के व्यक्त नहीं हो सकता। इसी कारण इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं, उनमें अभ्यन्तरचेतन और बाह्य प्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि (शरीर) देखे जाते हैं। दृश्यादृश्य सब लोकोंमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है। इसी कारण इस अनादि-चैतन्य परमपुरुष परमात्माकी शिवसंज्ञा सृष्ट्युन्मुख होनेपर अनादि लिङ्ग है और उस परम आधेयको आधार देनेवाली अनादि प्रकृतिका नाम योनि है, क्योंकि वे दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं। शिव लिङ्गरूपमें पिता और प्रकृति योनिरूपमें माता है। गीतामें इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया गया है—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
(१४।३)

'महद्ब्रह्म (महान् प्रकृति) मेरी योनि है, जिसमें मैं बीज देकर गर्भका संचार करता हूँ और इसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।'

इसी अनादि सदाशिव-लिङ्ग और अनादि प्रकृति-योनिसे समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है। इसमें आधेय बीज-प्रदाता (लिङ्ग) और आधार बीजको धारण करनेवाली (योनि) का संयोग आवश्यक है। इन दोनोंके संयोगके बिना कुछ नहीं उत्पन्न हो सकता। इसी परम भावका मनुजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥
(१।३२)

सृष्टिके समय परम पुरुष अपने ही अर्धाङ्गसे प्रकृतिको निकालकर उसमें समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकार शिवका लिङ्ग-योनिभाव और अर्धनारीश्वरभाव एक ही वस्तु है। सृष्टिके बीजको देनेवाले परमलिङ्गरूप श्रीशिव जब अपनी प्रकृतिरूपा नारी (योनि) से आधार-आधेयकी भाँति संयुक्त होते हैं, तभी सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार श्रीशिव अपनी तेजोमयी प्रकृतिको धारणकर उससे आच्छादित होकर व्यक्त होते हैं, अन्यथा उनका व्यक्त होना असम्भव है। इसी कारण कहा है—

त्वया हृतं वामवपुः शरीरं त्वं शम्भोः।

अर्थात् 'हे देवि! आपने श्रीशिवके आधे शरीर—वाम-भागको हरण कर लिया है, अतएव आप उनके शरीर हैं।'

यह लिङ्ग-योनि जिसका व्यवहार श्रीशिव-पूजामें होता है, प्रकृति और पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टिकी उत्पत्तिकी सूचक है। इस प्रकार यह परम परात्पर जगत्पिता और दयामयी जगन्माताके आदिसम्बन्धके भावकी द्योतक है। अतः यह परम पवित्र और मधुर भाव है। इसमें अश्लीलताका आक्षेप करना ठीक नहीं, यह अनादि प्रकृति-पुरुषका सम्बन्ध परम सृष्टि-यज्ञ है, जिसका परिणाम यह सुन्दर सृष्टि है। अतएव शुद्ध मैथुन जिसका उद्देश्य कामोपभोग नहीं बल्कि पितृऋणसे उद्धार पानेके लिये उत्पत्ति-धर्मका पालन करना है, कामाचार नहीं, परम यज्ञ है और इस प्रकार विचार करनेसे परम कर्तव्य सिद्ध होता है। इस दृष्टिसे प्रत्येक जन्तुका परम पवित्र कर्तव्य है कि वह लिङ्ग-योनिका उत्पत्तिधर्मके पालनके लिये ही उचित व्यवहार करे। और इनका यज्ञार्थ-धर्मार्थ व्यवहार न करके कामोपभोगके निमित्त व्यवहार करना दुरुपयोग है और अवश्य ही पापजनक है।

इस प्रकार शिवलिङ्गका अर्थ ज्ञापक अर्थात् प्रकट करनेवाला है। क्योंकि इसीके व्यक्त होनेसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ आलय है अर्थात् यह प्राणियोंका परम कारण है और निवास-स्थान है। तीसरा अर्थ है 'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्' अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायँ वह परम कारण लिङ्ग है। लिखा भी है—

लीयमानमिदं सर्वं ब्रह्मण्येव हि लीयते।

लिङ्ग परमानन्दका कारण है, जिससे क्रमशः ज्योति और प्रणवकी उत्पत्ति हुई है। लिङ्गपुराण (अ० १७) में कहा है कि सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुके बीच यह विवाद चल रहा

था कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है। इतनेमें उन्हें एक बृहत् ज्योतिर्लिङ्ग दिखलायी दिया। उसके मूल और परिमाणका पता लगानेके लिये ब्रह्मा ऊपर गये और विष्णु नीचे, परंतु दोनोंमेंसे किसीको उसका पता न चला। विष्णुके स्मरण करनेपर वेद-नामके ऋषि वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने समझाया कि प्रणवमें 'अ' कार ब्रह्मा हैं, 'उ' कार विष्णु हैं और 'म' कार श्रीशिव हैं। 'म' कार ही बीज है और वही बीज लिङ्गरूपसे सबका परम कारण है। ऊपरकी कथामें विष्णुसे तात्पर्य है ब्रह्माण्डके विष्णुसे न कि महाविष्णुसे, जो अनेक ब्रह्माण्डोंके नायक हैं तथा जिनमें और सदाशिवमें कोई भेद नहीं है।

शिव और मन्त्र

परमपुरुष शिव और उनकी शक्तिके सम्मेलनसे जो स्पन्दन उत्पन्न हुआ, वही सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण बना। इसीको शिवका ताण्डव-नृत्य कहते हैं। रसायन-विज्ञानका सिद्धान्त है कि इलेक्ट्रान जो पुरुषके समान आधेय है उनका प्रोटॉन, जो प्रकृतिके समान आधेय है, के साथ संघर्ष होनेसे जो स्पन्दन उत्पन्न होता है उसीके द्वारा अणुओंकी उत्पत्ति होती है और उन अणुओंसे आकार बनते हैं।

जब सदाशिव आनन्दोन्मत्त होकर अर्थात् मा आनन्दमयीसे युक्त होकर नृत्य करते हैं तो उस महानृत्यके परिणामसे इस सृष्टिके पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यह विश्व सदाशिवके नृत्य और नादका परिणाम है; क्योंकि नृत्यमें वह डमरू बजाते हैं। जहाँ स्पन्दन होता है वहाँ शब्द भी होता है। इस प्रकार श्रीशिवके डमरूके शब्दसे (जो प्रकृति और पुरुषके सम्मेलनके द्वारा नादरूपमें प्रकट होता है) व्याकरणके मुख्य शब्द-सूत्रकी उत्पत्ति हुई। यह शब्द चार प्रकारके शब्दोंमें अन्तिम 'वैखरी' वाक्‌का व्यक्त रूप है। अतएव वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरमे शक्ति संनिहित है। इस शक्तिके कारण आभ्यन्तरिक षट्चक्रोंमें इन अक्षरोंका निवासस्थान है। इस शिवशक्तिके नादका स्थान स्वर्गके ऊपरी भागमें है, जिसकी 'परा' संज्ञा है। उस पराको स्वर्गलोकमें ऋषिगण मन्त्ररूपमें देखते हैं, इसीसे उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। परंतु ये मन्त्र उस 'परा' के आध्यात्मिक रूप हैं जो स्वर्गमें देखे और सुने जाते हैं। पश्चात् वे मन्त्रमें वैखरीरूपसे प्रकट होते हैं, क्योंकि श्रीशिव उस परावाक्‌के कारण हैं, जिसके द्वारा मन्त्र आदि समस्त वाक्योंकी उत्पत्ति हुई है। अतएव श्रीशिव मन्त्रशास्त्रके प्रवर्तक कहे जाते हैं। शिवपूजाके अन्तमें जो 'बम्-बम्' शब्दका उच्चारण किया जाता है वह प्रणवका ही सुलभ रूप है जो अत्यन्त प्रभावशाली है।

ऊपर सदाशिवका वर्णन हुआ। परंतु उनका व्यक्तभाव श्रीमहादेव मनुष्यरूप पिण्डाण्डके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ऊँची-से-ऊँची जितनी उन्नति कर सकता है, श्रीमहादेव उसके आदर्शस्वरूप हैं। उन्हींको लक्ष्यमें रखकर साधकको उन्नतिके पथमें अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण श्रीशिव जगद्गुरु हैं। तात्पर्य यह कि उनमें यज्ञ, तपस्या, योग, भक्ति, ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा पायी जाती है। वह इनके आदर्श और उपदेष्टा हैं। शिवका तीसरा नेत्र दिव्य ज्ञानचक्षु है, जो प्रत्येक मनुष्यके भीतर है, परंतु यह बिना श्रीजगद्गुरु शिवकी सहायताके खुल नहीं सकता। गायत्रीशक्ति शिवके इसी आदर्शको लेती है और अपने सृष्टि-कार्यमें इसको लक्ष्य बनाकर उसी ओर साधकोंको प्रवृत्त करती है।

आध्यात्मिक काशी

जब साधककी चित्तवृत्ति शुद्ध, शान्त और निःस्वार्थ होकर अपने अभ्यन्तरके आध्यात्मिक हृदयमें वहाँ स्थित होती है जहाँ प्रज्ञाका बीज होता है तो उसी अवस्थाको काशीप्राप्ति कहते हैं। यह अवस्था परम सुषुप्तिके समान है। इसमें आनन्दका अनुभव होता है, इसी कारण काशीको आनन्द-वन कहते हैं। इस काशीमें महाश्मशानकी स्थिति (जहाँ शिवका वास होता है) का कारण यह है कि यहाँ शिवके तेजसे विकारोंके दग्ध होनेपर अनात्मरूप उपाधियोंसे छुटकारा मिलता है और अहंकार भी दग्ध हो जाता है। गौरीमुखका तात्पर्य यह है कि इस काशीप्राप्तिकी अवस्थामें साधक दैवी ज्योति और बोधशक्तिके सम्मुख पहुँच जाता है और ज्यों ही उसका आध्यात्मिक दिव्य चक्षु श्रीशिवके द्वारा खुलता है त्यों ही वह त्रिलोकीके पार पहुँच गौरी अर्थात् विद्यादेवीको बिना आवरणके देखनेमें समर्थ हो जाता है। मणिकर्णिका प्रणवकर्णिका है और इनकी तीन कर्णिकाएँ चित्तकी तीन अवस्थाओंकी द्योतक हैं, जैसे—

(१) साधारण, जाग्रत्-अवस्था।

(२) दूर-दर्शन और दूर-श्रवणकी अवस्था।

(३) स्वर्गलोककी अवस्था।

काशी इन तीनोंके परे है, जिसके लाभसे मुक्ति होती है। श्रीशिवजी तारक-मन्त्र तभी प्रदान करते हैं जब साधक हृदयरूप काशीमें (कारण-शरीरमें) स्थित होता है और तब वह मन्त्रके प्रभावसे सदाके लिये तुरीयावस्थामें चला जाता है।

त्रिशूलका भाव है त्रितापका नाश करना अर्थात् त्रितापसे मुक्ति पाकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे भी परे तुरीयामें पहुँचना। ऐसा साधक ही यथार्थ त्रिशूलधारी है।

अन्य भाव

शिवके मस्तकमें चन्द्रमाका संकेत प्रणवकी अर्धमात्रासे है और इसी निमित्त उनके मस्तकको अर्धचन्द्र भूषित करता है। योगिगण अपने अभ्यन्तरके चित्-अग्निके द्वारा अहंकारको दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत आदि सबको दग्धकर परम शुद्ध आध्यात्मिक भावमें परिवर्तित कर देते हैं, तब वह निर्विकार, शुद्ध और शान्त हो जाता है। उसे ही भस्म कहते हैं। उस शुद्ध भावरूप भस्मको धारण करनेसे शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक गङ्गा एक बड़ा तेजःपुञ्ज है जो महाविष्णुके चरणसे निकलकर ब्रह्माण्डके नायक श्रीमहादेवके मस्तकपर गिरता है और वहाँसे संसारके कल्याणके निमित्त फैलता है। इस तेजःपुञ्जको केवल महादेव धारण कर सकते हैं, क्योंकि शिव और विष्णु एक हैं। श्रीशिवकी कृपासे इस आध्यात्मिक गङ्गाका लाभ अभ्यन्तरमें—अन्तरस्थ काशी-क्षेत्रमें होता है।

शिवके पाँच मुख हैं—ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात। ईशानका अर्थ है स्वामी, अघोरका अर्थ है कि निन्दित कर्म करनेवाले भी श्रीशिवकी कृपासे निन्दित कर्मको शुद्ध बना लेते हैं। तत्पुरुषका अर्थ है अपने आत्मामें स्थिति-लाभ करना। वामदेव विकारोंके नाश करनेवाले हैं। सद्योजात बालकके समान परम स्वच्छ, शुद्ध और निर्विकार है। त्र्यम्बकका अर्थ है ब्रह्माण्डके त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनोंके अम्ब अर्थात् कारण। जीवात्माकी तीव्र भक्ति (सेवा) और मिलनके प्रगाढ़ और अनन्य अनुराग तथा विशुद्ध निर्हेतुक प्रेमसे शिवप्राप्ति होती है और वह अनुराग मिलन होनेपर श्रीशिवके चरण-कमलके स्पर्शकी परम शान्तिमें पूर्णताको प्राप्त होता है।

संहारमें कल्याण

(पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ)

यद्यपि भगवान् शिवमें शिवत्व परिव्याप्त है तथापि उनमें संहारक शक्ति ही विशेष रूपसे अधिष्ठित है और उसी शक्तिके कारण वे संसारमें सबसे अधिक प्रसिद्ध देवता हैं।

तनपर वस्त्र नहीं, लँगोटीके लिये कपड़ा नहीं। जब कोई मिलने जाता है तो नीचे साँपको लपेटने लगते हैं। शरीरपर विभूति, गलेमें अस्थिपञ्जर अथवा कंकाल, निवासके लिये श्मशान, ऐसा तो रुद्र-रूप किंतु नाम देखो तो 'शिव'। यह विरोधाभास भी बड़ा रहस्यपूर्ण है। इनका दूसरा प्रसिद्ध नाम 'रुद्र' है। 'रुद्र' इसलिये कि ये दुष्टोंको रुलानेवाले हैं। वैसे वैदिक शब्दोंमें 'त्र्यम्बक' कहलाते हैं। भूत, वर्तमान, भविष्य—इन तीनों कालोंकी बातको आप जाननेवाले हैं।

'त्र्यम्बकं यजामहे'—यह वेदमन्त्र प्रसिद्ध ही है।

शिवजीका, रुद्रजीका यह भयंकर रूप भी है सही, किंतु इनका शिव-स्वरूप नहीं है, यह बात नहीं। यदि रुद्ररूपके अतिरिक्त इनका शिवरूप न होता तो वेदमन्त्र—

'या ते रुद्र शिवा तनूः'

'हे रुद्र! तेरे जो शिव—कल्याणकारी शरीर हैं, रूप हैं उनसे हमारा शिव कर—कल्याण कर, ऐसी प्रार्थना क्यों करते?'

वस्तुतः बात यह है कि जब 'शिव' अपने स्वरूपमें लीन होते हैं तब वह सौम्य रहते हैं, जब संसारके अनर्थोंपर दृष्टि डालते हैं तब भयंकर हो जाते हैं और उस दशामें कवि शंकरके शब्दोंमें कहना पड़ता है कि—

शंकर! यदि तू शंकर है, फिर क्यों विपरीत भयंकर है।

संसारमें ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ नाम है 'ओम्'। उसमें हैं तीन अक्षर—'अ, उ, म्'। वे हैं तीन शक्तिके द्योतक। अ=उत्पत्ति-शक्तिका द्योतक (प्रजापति—ब्रह्मा), उ=धारक अर्थात् स्थिति-शक्तिका द्योतक (विष्णु), म्=प्रलय अर्थात्

संहारक शक्तिका द्योतक (रुद्र)। तीनों शक्तियोंका पुञ्ज ही परमेश्वर है। वैदिक रुद्रीमें रुद्रकी समस्त संहारक शक्तियोंका विस्तृत वर्णन है। उसकी संहारक शक्तिमें ही संसारका कल्याण है। यदि रुद्रमें संहारक शक्ति न हो तो असंख्य जीवात्माओंके अदृष्ट अर्थात् धर्माधर्मके अनुरूप समयपर और तत्त्वोंके क्रमपूर्वक सृष्टिका संहार कौन करे ? सृष्टिका संहार न हो तो फिर अदृष्ट चक्रके अनुसार प्रजापति भी बैठे-बैठे क्या करें, विष्णु भी क्या करें ? संहारक शक्तिके कारण ही शिवजीकी अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक पूजा होती है। पौराणिक गाथा भी चाहे किसी रूपमें प्रथित हो, इसी तत्त्वका बोध कराती है। शिवजीके संहारमें ही संसारका कल्याण है।

वैसे शिवजी योगविद्याके आद्य प्रवर्तक माने गये हैं। कैलासमें, हिमालयकी गोदमें रहें और योगके निगूढ़ तत्त्वोंको भी न जानें तो वहाँ क्या करें ? शिवजीने स्वयं कहा है—

'विविच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम्॥

'मैंने समस्त शास्त्रोंकी विवेचना की, उन शास्त्रोंको बार-बार विचारा और मैं इसी निश्चयपर पहुँचा हूँ कि योगशास्त्रसे बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है।'

वैसे शिवजी नृत्यविद्याके आद्य प्रवर्तक थे और उनके डमरूसे ही—(१) अ-इ-उ-ण्, (२) ऋ-लृ-क्, (३) ए-ओ-ङ्, (४) ऐ-औ-च्, (५) ह-य-व-र-ट्, (६) ल-ण्, (७) ञ-म-ङ-ण-न-म्, (८) झ-भ-ञ्, (९) घ-ढ-ध-ष्, (१०) ज-ब-ग-ड-द-श्, (११) ख-फ-छ-ठ-थ-च-ट-त-व्, (१२) क-प-य्, (१३) श-ष-स-र्, (१४) ह-ल्—ये व्याकरण-शास्त्रके मूल १४ सूत्र निकले।

योग-विद्याके प्रवर्तक, नृत्यविद्याके उत्पादक, व्याकरण-शास्त्रके संचालक शिवजीका बाह्यरूप भले ही भयंकर हो, किंतु उनकी सब कृतियाँ शिवकारक ही हैं। इसीलिये परिणामवादको लेकर रुद्रजी शिव ही हैं—चाहे पौराणिक शिव हों, चाहे वैदिक शिव हों, चाहे परमपदको प्राप्त योगाचार्य शिव, नर्तकाचार्य शिव अथवा व्याकरण-शास्त्रके प्रवर्तक शिव हों।

उस परमपिता प्रभुसे हम प्रतिदिन संध्यामें प्रार्थना करते हैं—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

क्यों ?

इसलिये कि सांसारिक दृष्टिसे रुद्र हैं एकादश—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय—ये दस और मुख्य प्राण ग्यारहवाँ जिसके कि ये उपर्युक्त दस भेद हैं। शरीर-यन्त्रको यही चलाते रहते हैं। ये ठीक-ठीक चलें तो मनुष्यका सब शिव—कल्याण समझिये, नहीं तो यही रुद्र रुलानेवाले बन जाते हैं। इनमेंसे एककी गति भी बिगड़ी तो शरीर निकम्मा बना समझिये। जो इन एकादश प्राणोंको मिताहार-विहारद्वारा, योगाभ्यासद्वारा वशमें रखता है, वही सुख पाता है। इसलिये एकादश रुद्रोंको उपासनाद्वारा प्रसन्न करो।

भजनमें जल्दी करो

भजन-आतुरी कीजिये और बात में देर॥
और बात में देर जगत्-में जीवन थोरा।
मानुष-तन धन जात गोड़ धरि करौ निहोरा॥
काँच महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
खुला ... नित उठि चहता॥
... अपना।

वेदोंमें रुद्रस्वरूप एवं रुद्रोपासना

(स्वामी श्रीशङ्करानन्दजी गिरि)

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
(ऋक्संहिता १०।१२९।१)

'उस महाप्रलयमें मायारूप कारण (असत्) न था और न सूत्रात्मारूप कार्य (सत्) था, यह अधोभागवर्ती रजतकपाल न था और न मध्यभागवर्ती अन्तरिक्ष था। उस आकाशसे परे वह प्रकाशयुक्त ऊर्ध्वकपाल जो दुर्गम और अगाध है क्या था ? यह जगत् किससे ढका हुआ था, किस अवस्थामें था और किसके आधारपर था ?

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥
(ऋक्संहिता १०।१२९।२)

उस समय मृत्यु और जीवन नहीं था, रात्रि-दिवसका विभाग करनेवाला सूर्य भी नहीं था। तब उस प्रलयमें क्या था ? उस समय समष्टिस्वरूप सूत्रात्मा, श्वास-प्रश्वासरूप कल्पसृष्टि और प्रलय आदि व्यवहारसे रहित, शान्त समुद्रके समान रुत्-शब्दवाच्य ऋत्-स्वयंप्रकाशी चेतन और 'द्र'-शब्दवाच्य अनन्ताकाशरूपिणी नित्यज्ञानशक्ति उमाके साथ एक अखण्ड, परिपूर्ण रुद्र अस्तित्वरूप क्रियावाला था। उस रुद्रकी अनन्त शक्तिके किसी एक भागमें माया बीज-रूपसे थी। जैसे वटवृक्षकी शक्ति अपनी उत्पत्तिके पहले वटबीजमें रहती है, वैसे ही अव्यक्तशक्ति उमामें रहती है। बीजशक्ति नित्य उमासे भिन्न नहीं है, क्योंकि उमा आगन्तुक अवस्थारूप मायासे पृथक् है।

उमा नित्य-ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानका रूप नहीं तो चेतनका रूप कहाँसे होगा ? इसीलिये रुद्र ज्ञानस्वरूप निराकार है और अपरिणामिनी उमाके परिचयको देनेवाली परिणामिनी बीज-शक्ति है। यदि इस बीजकी सत्ता अनादि-सान्तप्रवाहसे न होती तो जगत्रूप वृक्षकी उत्पत्ति और प्रलय कैसे होता ? तथा अनन्त शक्तिरूप रुद्रकी महिमाका गुणगान कौन करता ? ज्ञानस्वरूपका परिचय करानेवाली यही लिङ्गरूप बीजशक्ति है। जैसे अग्निसे उसकी दाहिका शक्ति पृथक् नहीं होती, वैसे ही बीजसत्तासे अपरिणामिनी शक्ति पृथक् नहीं होती।

महाप्रलयरूप समाधिमें उस रुद्रसे उत्तम और कुछ न था—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनाँस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
(श्वेता० ३।२)

'इन ब्रह्माण्डवर्ती भुवनोंपर ब्रह्मारूपसे शासन करता हुआ और उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक शरीरके मध्यमें चेतनरूपसे विराजमान तथा प्रलयके समय कोपमें भरकर संहार करता हुआ एक अद्वितीय रुद्र ही अपनी अनन्तशक्ति उमाके साथ स्थित है, उससे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है।'

यदातमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः।
(श्वेता० ४।१८)

'जब प्रलयरूप समाधिमें न दिन था न रात्रि थी, न कार्यकारण ही था, तब सब प्रकारके आवरणसे रहित तुरीय-स्वरूप एक रुद्र ही था।' जब सब प्रपञ्च अव्यक्तमें लय हो जाता है और प्राणशक्ति निर्विशेषरूपसे उमामें ओतप्रोत होती है—कार्य-कारणसे रहित शवकी तरह अनन्त शक्तिमय श्मशानमें शयन करती है, तब अनन्ताकाशात्मक श्मशान-व्यापी एक रुद्र ही अवशिष्ट रहता है, उसके समान न कोई दूसरा हुआ, न होगा।

स्वधया च शम्भुः।
(ऋग्वेद ३।१७।५)

संहारक शक्तिका द्योतक (रुद्र)। तीनों शक्तियोंका पुञ्ज ही परमेश्वर है। वैदिक रुद्रीमें रुद्रकी समस्त संहारक शक्तियोका विस्तृत वर्णन है। उसकी संहारक शक्तिमें ही संसारका कल्याण है। यदि रुद्रमें संहारक शक्ति न हो तो असंख्य जीवात्माओंके अदृष्ट अर्थात् धर्माधर्मके अनुरूप समयपर और तत्त्वोंके क्रमपूर्वक सृष्टिका संहार कौन करे? सृष्टिका संहार न हो तो फिर अदृष्ट चक्रके अनुसार प्रजापति भी बैठे-बैठे क्या करें, विष्णु भी क्या करें? संहारक शक्तिके कारण ही शिवजीकी अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक पूजा होती है। पौराणिक गाथा भी चाहे किसी रूपमें प्रथित हो, इसी तत्त्वका बोध कराती है। शिवजीके संहारमें ही संसारका कल्याण है।

वैसे शिवजी योगविद्याके आद्य प्रवर्तक माने गये हैं। कैलासमें, हिमालयकी गोदमें रहें और योगके निगूढ़ तत्त्वोंको भी न जानें तो वहाँ क्या करें? शिवजीने स्वयं कहा है—

विविच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम्॥

'मैंने समस्त शास्त्रोंकी विवेचना की, उन शास्त्रोंको बार-बार विचारा और मैं इसी निश्चयपर पहुँचा हूँ कि योगशास्त्रसे बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है।'

वैसे शिवजी नृत्यविद्याके आद्य प्रवर्तक थे और उनके डमरूसे ही—(१) अ-इ-उ-ण्, (२) ऋ-लृ-क्, (३) ए-ओ-ङ्, (४) ऐ-औ-च्, (५) ह-य-व-र-ट्, (६) ल-ण्, (७) ञ-म-ङ-ण-न-म्, (८) झ-भ-ञ्, (९) घ-ढ-ध-ष्, (१०) ज-ब-ग-ड-द-श्, (११) ख-फ-छ-ठ-थ-च-ट-त-व्, (१२) क-प-य्, (१३) श-ष-स-र्, (१४) ह-ल्—ये व्याकरण-शास्त्रके मूल १४ सूत्र निकले।

योग-विद्याके प्रवर्तक, नृत्यविद्याके उत्पादक, व्याकरण-शास्त्रके संचालक शिवजीका बाह्यरूप भले ही भयंकर हो, किंतु उनकी सब कृतियाँ शिवकारक ही हैं। इसीलिये परिणामवादको लेकर रुद्रजी शिव ही हैं—चाहे पौराणिक शिव हों, चाहे वैदिक शिव हों, चाहे परमपदको प्राप्त योगाचार्य शिव, नर्तकाचार्य शिव अथवा व्याकरण-शास्त्रके प्रवर्तक शिव हों।

उस परमपिता प्रभुसे हम प्रतिदिन संध्यामें प्रार्थना करते हैं—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

क्यों?

इसलिये कि सांसारिक दृष्टिसे रुद्र हैं एकादश—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय—ये दस और मुख्य प्राण ग्यारहवाँ जिसके कि ये उपर्युक्त दस भेद हैं। शरीर-यन्त्रको यही चलाते रहते हैं। ये ठीक-ठीक चलें तो मनुष्यका सब शिव—कल्याण समझिये, नहीं तो यही रुद्र रुलानेवाले बन जाते हैं। इनमेंसे एककी गति भी बिगड़ी तो शरीर निकम्मा बना समझिये। जो इन एकादश प्राणोंको मिताहार-विहारद्वारा, योगाभ्यासद्वारा वशमें रखता है, वही सुख पाता है। इसलिये एकादश रुद्रोंको उपासनाद्वारा प्रसन्न करो।

भजनमें जल्दी करो

भजन-आतुरी कीजिये और बात में देर॥
और बात में देर जगत् में जीवन थोरा।
मानुष-तन धन जात गोड़ धरि करौ निहोरा॥
काँच महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
दस दरवाजा खुला उड़न को नित उठि चहता॥
भजि लीजै भगवान् एही में भल है अपना।
आवागौन छुटि जाय जनम की मिटै कलपना॥
पलटू अटक न कीजिये चौरासी घर फेर।
भजन-आतुरी कीजिये और बात में देर॥

वेदोंमें रुद्रस्वरूप एवं रुद्रोपासना

(स्वामी श्रीशङ्करानन्दजी गिरि)

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
(ऋक्संहिता १०।१२९।१)

'उस महाप्रलयमें मायारूप कारण (असत्) न था और न सूत्रात्मारूप कार्य (सत्) था, यह अधोभागवर्ती रजतकपाल न था और न मध्यभागवर्ती अन्तरिक्ष था। उस आकाशसे परे वह प्रकाशयुक्त ऊर्ध्वकपाल जो दुर्गम और अगाध है क्या था? यह जगत् किससे ढका हुआ था, किस अवस्थामें था और किसके आधारपर था?

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥
(ऋक्संहिता १०।१२९।२)

उस समय मृत्यु और जीवन नहीं था, रात्रि-दिवसका विभाग करनेवाला सूर्य भी नहीं था। तब उस प्रलयमें क्या था? उस समय समष्टिस्वरूप सूत्रात्मा, श्वास-प्रश्वासरूप कल्पसृष्टि और प्रलय आदि व्यवहारसे रहित, शान्त समुद्रके समान रुत्-शब्दवाच्य ऋत्-स्वयंप्रकाशी चेतन और 'द्र'-शब्दवाच्य अनन्ताकाशरूपिणी नित्यज्ञानशक्ति उमाके साथ एक अखण्ड, परिपूर्ण रुद्र अस्तित्वरूप क्रियावाला था। उस रुद्रकी अनन्त शक्तिके किसी एक भागमें माया बीज-रूपसे थी। जैसे वटवृक्षकी शक्ति अपनी उत्पत्तिके पहले वटबीजमें रहती है, वैसे ही अव्यक्तशक्ति उमामें रहती है। बीजशक्ति नित्य उमासे भिन्न नहीं है, क्योंकि उमा आगन्तुक अवस्थारूप मायासे पृथक् है।

उमा नित्य-ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानका रूप नहीं तो चेतनका रूप कहाँसे होगा? इसीलिये रुद्र ज्ञानस्वरूप निराकार है और अपरिणामिनी उमाके परिचयको देनेवाली परिणामिनी बीज-शक्ति है। यदि इस बीजकी सत्ता अनादि-सान्तप्रवाहसे न होती तो जगत्‌रूप वृक्षकी उत्पत्ति और प्रलय कैसे होता? तथा अनन्त शक्तिरूप रुद्रकी महिमाका गुणगान कौन करता? ज्ञानस्वरूपका परिचय करानेवाली यही लिङ्गरूप बीजशक्ति है। जैसे अग्निसे उसकी दाहिका शक्ति पृथक् नहीं होती, वैसे ही बीजसत्तासे अपरिणामिनी शक्ति पृथक् नहीं होती।

महाप्रलयरूप समाधिमें उस रुद्रसे उत्तम और कुछ न था—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनाँस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
(श्वेता० ३।२)

'इन ब्रह्माण्डवर्ती भुवनोंपर ब्रह्मारूपसे शासन करता हुआ और उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक शरीरके मध्यमें चेतनरूपसे विराजमान तथा प्रलयके समय कोपमें भरकर संहार करता हुआ एक अद्वितीय रुद्र ही अपनी अनन्तशक्ति उमाके साथ स्थित है, उससे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है।'

यदातमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः।
(श्वेता० ४।१८)

'जब प्रलयरूप समाधिमें न दिन था न रात्रि थी, न कार्यकारण ही था, तब सब प्रकारके आवरणसे रहित तुरीय-स्वरूप एक रुद्र ही था।' जब सब प्रपञ्च अव्यक्तमें लय हो जाता है और प्राणशक्ति निर्विशेषरूपसे उमामें ओतप्रोत होती है—कार्य-कारणसे रहित शवकी तरह अनन्त शक्तिमय श्मशानमें शयन करती है, तब अनन्ताकाशात्मक श्मशान-व्यापी एक रुद्र ही अवशिष्ट रहता है, उसके समान न कोई दूसरा हुआ, न होगा।

स्वधया च शम्भुः।
(ऋग्वेद ३।१७।५)

'अपनी शक्तिके सहित एक रुद्र ही है।'

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।

(कैवल्य० ७)

'उमायुक्त परमेश्वर समर्थ है—अग्नि, विद्युत् और सूर्यरूप तीन नेत्रोंवाला, नीलकण्ठ और तुरीयस्वरूप है। विश्वरचनाके पूर्व बीजशक्ति चेतनके जितने स्वरूपमें स्फुरित होती है, उसका (चेतनका) उतना ही भाग—नीलकण्ठ होता है, क्योंकि अधिष्ठित मायाजलको मायिकने अधिष्ठानरूपसे पान किया था।

विषं जलम्।

(ऋक्संहिता १०।८७।१८)

'जलका नाम विष है और माया अव्यक्त शक्तिका नाम सलिल है'।

नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।

(यजु० संहिता १६।२८)

'नीलकण्ठ और श्वेतकण्ठवाले रुद्रके प्रति मेरा बारम्बार प्रणाम है।' सृष्टिके समय चेतनके एकभागरूप कण्ठमें बीजशक्ति मायाके रूपमें भासती है और प्रलयके समय यह माया बीजशक्तिके रूपमें रहती है। इसी अभिप्रायसे रुद्र नीलकण्ठ और श्वेतकण्ठ हैं।

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः॥

(तैत्तिरीयारण्यक० १०।१२)

उत्तम स्वरूप ऋतम् (रुद्र) ही सत्यम् (ब्रह्मा) है। रुद्रने कण्ठमें मायारूप तमको धारण किया है और वाम-भागमें उमाको धारण किया है। उस परिणामरहित, त्रिपादस्वरूप, कूटस्थ, निराकार, समस्त जगत्के आकारमें विवर्तरूपसे व्यापक प्रसिद्ध रुद्र पुरुषको नमस्कार है।

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो
विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं
नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥

(ऋक्संहिता ५।४२।११)

जो रुद्र अग्नीषोमात्मक सुन्दर धनुष-बाणको धारण करता है, (यहाँ 'अग्नि' भोक्ता और प्रकाशरूप अमृत है और 'सोम' भोग्य तथा अप्रकाशरूप मृत्यु है। प्राणशक्तिकी ही बाह्यावस्थाका नाम मृत्यु-शक्ति और क्षर है।) इस कार्यात्मक सुन्दर बाणको अक्षररूप उत्तम धनुषमें धारण करनेवाला वह तीसरा पुरुष रुद्र है, समस्त ब्रह्माण्डके परम सुखका आधार है, उसके अतिरिक्त सब प्रपञ्च दुःखस्वरूप हैं। हे मेरे चञ्चल मन! यदि इहलोक और स्वर्गके फलके भोगकी इच्छा है तो यज्ञोंके द्वारा उसकी पूजा कर तथा गायत्री आदि मन्त्रोंसे उसकी प्रार्थना कर अथवा परम मुक्तिरूप उत्तम शान्तिके लिये अभेदभावसे निरन्तर उसका ध्यान कर। वही प्राणादि-व्यापारसे रहित तथा प्राणशक्तिका प्रेरक स्वयंप्रकाश और शुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद्योजनात् तत्त्वभावाद्
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः॥

(श्वेता० १।१०)

आवरणात्मक आधार—मृत्युशक्ति क्षर और प्रकाशात्मक आधेय आभ्यन्तर प्राण ही अक्षर है। घोर और अघोरमय शरीरोंको धारण करके ब्रह्मा और जीवरूपसे समष्टि तथा व्यष्टि—ब्रह्माण्ड और पिण्डका शासन करनेवाला एक अद्वितीय रुद्र ही देव है। उस रुद्रका अभेद चिन्तन करनेसे स्वस्वरूप-साक्षात्कारके साथ समष्टि-व्यष्टि-मायारूप उपाधि विलीन हो जाती है। जिस प्रकार स्वप्नके पदार्थ जाग्रत्-अवस्थामें विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञानमें माया अदृश्य हो जाती है।

प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम।

(ऋक्सं० ७।४१।१)

रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे।

(जाबालोप०)

रुद्र तारनेवाले ब्रह्म हैं, ज्ञानीको देहत्याग करते समय रुद्र भगवान् ॐकार मन्त्रका उपदेश करते हैं।

य ॐकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म स एको रुद्रः स

ईशानः, स भगवान् महेश्वरः, स महादेवः।

(अथर्वशिरउप० २।४)

'जो ॐकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है, वह अनन्त-शक्तिस्वरूप उमा है। जो उमा है वही तारकमन्त्र ब्रह्मविद्या है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है, जो सूक्ष्म है वही शुद्ध है, जो शुद्ध है वही विद्युत्-अभिमानी उमा है, जो उमा है वही परब्रह्म है, वही एक अद्वितीय रुद्र है, वही ईशान है, वही भगवान् महेश्वर है, और वही महादेव है।'

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

(श्वेता० ३।११)

'वह रुद्र भगवान् समस्त प्राणियोंके सिर, ग्रीवा आदि अङ्गवाले हैं और सबके हृदयमें क्षेत्रज्ञरूपसे शयन करनेवाले हैं। वह सर्वव्यापी, सब ब्रह्माण्डमें स्थित हैं—इसी कारण वह सुखस्वरूप शिव हैं।'

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

अनन्त प्राणियोंके सिर, नेत्र, मुख, पैर आदि सब अङ्ग रुद्रके ही हैं, अर्थात् सब उसकी सत्तामें ही कल्पित हैं—उसे सब प्राणियोंके भीतर शयन करनेसे पुरुष कहा जाता है। वह रुद्र समष्टि-व्यष्टि-ब्रह्माण्ड-पिण्डको अपनी सत्तासे घेरकर सर्वत्र सामान्यरूपसे व्यापक होता हुआ भी दशदिशाव्यापी ब्रह्माण्डके शिरोभाग—सत्यलोकमें विशेष ब्रह्मरूपसे स्थित है। यही ब्रह्म सूर्यमण्डलमें भर्गरूपसे विराजमान है और सूर्यमण्डल-अभिमानी, चेतन रुद्र—पुरुष ही दश-प्राणयुक्त व्यष्टि-शरीरमें ग्यारहवें जीवरूपसे प्रविष्ट हुआ है।

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु। पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः। विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्। सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।

(तैत्तिरीयारण्यक० १०।१६)

जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट हैं, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्मारूपसे, प्रजापतिलोकमें प्रजापतिरूपसे, सूर्यमण्डलमें वैराटरूपसे तथा देहमें जीवरूपसे स्थित हुआ है—उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्रको बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा वह सब प्रपञ्च रुद्रकी सत्तासे भिन्न नहीं हो सकता, यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्रके प्रति प्रणाम हो।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥

(सामवेदीय कौथुमीय संहिता १।७।७)

'अपने पत्नी-रूप अव्याकृतके मध्यमें पूज्य ब्रह्माको प्रकट करनेवाले, यज्ञके प्रतिपालक, ज्योतिःस्वरूप (अग्नि), व्यापक, स्वामी रुद्रको, वज्रके समान भयंकर मृत्युके पूर्व अपनी रक्षाके लिये सब मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञानके द्वारा अर्चा करें।'

रोदसी रुद्रपत्नी॰ (ऋक्सं॰१०।९२।११)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

(श्वेता॰ ३।४)

सब प्राणियोंके पहले नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ रुद्रने ब्रह्माको प्रकट किया।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि-
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥

(ऋक्॰ १०।१२९।४)

प्रलयके पूर्व सृष्टिके जीवोंके भोगनेसे जो अवशिष्ट रहते हैं, उन्हीं कर्मोंके संस्कार अपरिपक्वदशामें प्रलयरूप और परिपक्व-दशामें उत्तर सृष्टिरूप हैं। ये ही कर्मसंस्कार बीजशक्ति हैं। जब अधिष्ठानमें बीजशक्तिका सृष्टि-संकल्प-रूपसे स्फुरण होता है, तब उस संकल्पमें ज्ञानस्वरूप चेतन उस जड संकल्परूप क्रियाका प्रेरक बीजी होता है। मायिक बीजीसे प्रेरित हुई क्रियारूप माया अव्याकृतके रूपमें प्रकट होती है। सब जगत्की उत्पत्तिके पहले जिस चिदाभासको महेश्वरने अव्याकृतरूप प्राणशक्तिमें स्थापन किया, वही प्रथम शरीरधारी स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा हुए। यही ब्रह्मा अव्याकृत

रमें शयन करनेके कारण स्थूल विराट्के कारण हैं। ब्रह्माके रमकारण रुद्रको अन्तर्मुखी वृत्तिके द्वारा विचार कर ऋषियोंने अपनी बुद्धिरूप गुहामें स्वस्वरूपसे जाना।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व-
न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये॥

(अथर्ववेद ७।९२।१)

'अग्नि, वायु, विद्युत्, सूर्य आदि प्रकाशवाले समूहमें जो रुद्र पुरुषरूपसे प्रविष्ट हुआ है तथा जो जल, चन्द्रमा, नक्षत्रादिकोंमें व्यापक है, वही प्राणियोंके हृदय, कण्ठ और वक्षुमें तथा वनस्पतियोंके अन्तर्गत अन्न, घास आदिमें स्थित है। इन नाम-रूपात्मक समस्त चराचरको उत्पन्न करके पालन करने तथा अन्तकालमें इनका संहार करनेमें जो समर्थ है उस अद्वितीय व्यापक रुद्रके लिये नमस्कार है।'

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद् यक्षमिति।

(केन० ३।१२)

उस इन्द्रने पूज्यस्वरूप रुद्रके अन्तर्धान होते ही उस निर्मल आकाशमें प्रकट हुई प्राणशक्तिकी अधिष्ठात्री देवी, असंख्य रूपोंको प्राणशक्तिरूप मायाके द्वारा धारण करनेवाली, अपरिमित शोभासे शोभायमान, हिमालयकी पुत्री और रुद्रकी अर्धाङ्गिनी, प्रसिद्ध जगन्माता उमासे पूछा कि वह पूज्यदेव जो अदृश्य हो गया, कौन था?

अम्बिकापतय उमापतये नमो नमः।

(तैत्तिरीयारण्यक०१०।१८)

'जगन्माताके स्वामी ज्ञानरूपिणी उमाको अर्धाङ्गमें धारण करनेवाले रुद्रके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार हो।'

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥

(अ० वे०१०।८।४३)

नवद्वारवाले स्थूलदेहके मध्य हृदय-कमल है। उसमें देहके धर्मको अभेदरूपसे अपने व्यापक स्वरूपमें माननेवाला क्षेत्रज्ञ स्थित है, यही जीव मायाके त्रिवृतरूपसे ढका हुआ है। विराट्, सूत्रात्मा, अव्याकृत—यह तीन आवरण ब्रह्माके हैं और स्थूल, सूक्ष्म, कारण-देह यह तीन आवरण जीवके हैं। आवरणरहित तुरीयस्वरूप जीव और प्रसिद्ध पूज्यस्वरूप रुद्रको अभेदरूपसे वेदके जाननेवाले ही जानते हैं।

ज्योतिर्हरः (निरुक्त ४।१९)

सविता हरः (ऋक्०१०।१५८।२)

ज्योतिःस्वरूप हर हैं। जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले रुद्र हैं।

सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरातात् सविताधरात्तात्। सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥

(ऋक्० १०।३६।१४)

'रुद्र पीछे हैं, हर आगे हैं, सविता दक्षिण ओर हैं, ईशान उत्तर ओर हैं। सविता हमारे लिये सब सुखकी प्रेरणा करें, रुद्रदेव हमारे लिये दीर्घ आयु प्रदान करें।'

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वद-
न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋक्० १।१६४।४६)

इस मन्त्रमें 'अग्नि' शब्द दो बार आया है, एक बार देवताके लिये और दूसरी बार रुद्रके लिये। जो एक रुद्र है उसे ही बहुत प्रकारसे मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाशयुक्त, उदय-अस्तरूपसे गमन करनेवाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं।

अग्निं वै देवानां प्रथमं यजेत्।

(तैत्ति० ब्रा० ३।७।१।८)

सब देवताओंसे पहले अग्निका पूजन (अर्थात् अग्निहोत्र) करना चाहिये।

अग्निर्वै देवानां प्रथमः

(ऐत० ब्रा० २०।१।१)

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्

(ऐत० ब्रा० १।९।२)

सब देवताओंका मुख प्रथम अग्नि है। अग्निमें हवन किये हुए हविको अग्निमुखसे ग्रहणकर देवता तृप्त होते हैं। जिस प्रकार हमारे मुखद्वारा खाया हुआ अन्न सब शरीरको पुष्ट करता है, उसी प्रकार अग्निमें हवन किया हुआ हवि भी सब ब्रह्माण्डवर्ती देवताओंको तृप्त करता है।

मुखं देवानामग्निः मुखत एव प्राणं दधाति।

(कपिष्ठल कठसं० ३१। २०)

'देवताओंका मुख अग्नि है, अग्निरूप मुखसे ही सब कोई प्राण धारण करते हैं।'

प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि। शिवोमाविशाप्रदाहाय ।

(तैत्तिरीयारण्यक० १०। ३४)

'हे हुत द्रव्य! मैं तुझे पाँच प्राणोंमें आहुतिरूपसे हवन करता हूँ। तू शिवरूप होकर मेरी भूख-प्यासके शमनके लिये मेरे शरीरमें प्रवेश कर।'

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी।

(ऋक्० १०। ११७। ६)

'जो द्विज रुद्रस्वरूप सविताको और पापके हरनेवाले अतिथिको हवनके सहित प्राणाहुतिसे तथा भोजनसे तृप्त नहीं करता, वह केवल पापी है और पापरूप भोजनका खानेवाला है।'

इस प्रकार अग्निरूपमें रुद्रकी उपासना सनातनसे द्विजातियोंमें चली आती है, वैदिक रुद्रकी उपासनाका यही एक सर्वव्यापक स्वरूप है।

भगवान् शंकरका प्रणवरूप

(स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी पुरी)

नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गिने।
नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते॥

वेदोंमें भगवान् शंकरका विशेष वर्णन है। यजुर्वेदके प्रधान देव भगवान् रुद्र हैं।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

(यजुर्वेद १६। ४१)

भक्तोंको भोग-मोक्षरूप सुखके दाता, कल्याणरूप, कल्याणकारी शिवको नमस्कार है, इत्यादि। यजुर्वेदमें १६ वाँ अध्याय रुद्रकी महिमाका गान करनेके कारण ही 'रुद्राध्याय' के नामसे प्रसिद्ध है।

वेदोंके अतिरिक्त अनेक स्मृतियों तथा इतिहास-पुराणोंमें भी शंकरके स्वरूपका अति स्पष्ट वर्णन पाया जाता है और स्कन्दपुराण, लिङ्गपुराणादिमें तो परमात्मा शिवका माहात्म्य तथा स्वरूप अति उत्तम रीतिसे वर्णित है। उनमें भगवान् शंकरके अनेक रूपों तथा माहात्म्यका वर्णन है। परंतु भगवान् शिवके प्रणव-स्वरूपका वर्णन जैसा शिवपुराणमें स्पष्ट तथा विस्तृतरूपसे है वैसा अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता, इसलिये यहाँ उक्त पुराणमें वर्णित भगवान् शंकरके प्रणव-स्वरूप तथा उसके माहात्म्यकी कुछ आलोचना की जाती है।

एक समय भगवान् शंकर सुरम्य कैलास-पर्वतके शिखरपर भगवती पार्वतीके सहित विराजमान थे और दीक्षाविधिके क्रमसे प्रणवादि महामन्त्रोंका देवीसे प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कर रहे थे, उस समय भगवती पार्वती पतिको प्रसन्न देखकर कहने लगीं—'हे देव! आपने मुझे प्रणवसहित मन्त्रका उपदेश दिया है, इस कारण मैं सर्वप्रथम प्रणव-स्वरूपको जानना चाहती हूँ। हे शिव! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो इसका अवश्य वर्णन कीजिये।' इस प्रार्थनाको सुनकर भगवान् शंकर पार्वतीसे कहने लगे—

'प्रणवार्थका परिज्ञान ही मेरे स्वरूपका ज्ञान है। प्रणवस्वरूप मन्त्र सब विद्याओंका बीज है, वह वटबीजके सदृश अति सूक्ष्म तथा महान् अर्थवाला है। वह वेदोंका आदि तथा सार है एवं मेरा स्वरूप है। तीन गुणसे अतीत, सर्वज्ञ, सर्वस्रष्टा, सर्वप्रभु, सर्वगत, शिवस्वरूपमें ही मैं उस ओंकारमें स्थित हूँ, तीन गुणोंसे न्यून—प्राधान्ययोगसे जगत्में जो कुछ वस्तु है वह समष्टि और व्यष्टिरूपसे प्रणवार्थ ही है। यह प्रणव सर्वार्थका साधक है और अक्षर ब्रह्म है। इस कारण इसी प्रणवसे शिवजी सर्वप्रथम जगत्का निर्माण करते हैं। जो शिव है वही प्रणव है, जो प्रणव है वही शिव है, क्योंकि वाच्य और वाचकमें कोई भेद नहीं होता। इसीलिये ब्रह्मर्षिलोग मुझे

क्षर ओंकाररूप ब्रह्म कहते हैं। मुमुक्षुको चाहिये कि वह त्रको ही सर्वकारण, निर्विकार, निर्गुण शिवस्वरूप समझे।' ॰सं॰अ॰ ३। १-९) भगवान् स्वामिकार्तिक ऋषि वाम- से कहते हैं—

'हे वामदेव! आपके स्नेहसे मैं आपके ज्ञानके लिये इस का तात्पर्य वर्णन करता हूँ, आप सुनें। शिवशक्तिका योग परमात्मा है (और वह परमात्मा ही आकाशादिके रूपमें गत होता है। जैसे उपादानकारण मृत्तिका अपनेसे अभिन्न रूप ग्रहण करती है, जैसे दुग्ध दहीके आकारमें बदल ा है अथवा जैसे रज्जुरूप उपादान अज्ञानके कारण सर्पादि कारमें परिणत हो जाता है, ऐसे ही ॐकारस्वरूप परब्रह्म कारमें परिणत होता है)। परमात्माकी पराशक्तिसे छक्ति उत्पन्न होती है और चैतन्यशक्तिसे आनन्दशक्ति, से इच्छाशक्ति, इच्छाशक्तिसे ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्तिसे मी क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई है और इन्हीं शक्तियोंसे क्रमशः त्की उत्पत्ति हुई है। चिदानन्दशक्तिसे नाद और विन्दु न्न हुए हैं, इच्छाशक्तिसे मकार, ज्ञानशक्तिसे उकार और ाशक्तिसे अकार-स्वर उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार प्रणवकी हुई है और इस प्रणवसे पञ्चब्रह्मकी, तत्पश्चात् कलादि से आकाशादिकी उत्पत्ति हुई है।' (कै॰ सं॰ अ॰ । ५३—५७)। स्वामिकार्तिकेयने जिस प्रकार परमात्माकी शक्तिसे प्रणवके अकारादि पञ्चवर्णोंकी उत्पत्ति बतलायी है, ही स्वयं भगवान् शंकरने भी स्वीय पञ्चमुखसे प्रणवकी त्ति बतायी है। भगवान् शंकर ब्रह्मा-विष्णुसे कहते हैं—

'ॐकार मेरे मुखसे उत्पन्न होनेके कारण मेरे ही स्वरूपका क है, यह वाच्य है, मैं वाचक हूँ, यह मन्त्र मेरा आत्मा इसका स्मरण करनेसे मेरा ही स्मरण होता है, मेरे उत्तरकी के मुखसे अकार, पश्चिमके मुखसे उकार, दक्षिणके मुखसे र, पूर्वके मुखसे विन्दु और मध्यके मुखसे नाद उत्पन्न ा है, इस प्रकार पाँचों मुखोंसे निर्गत हुए इन सबसे 'ॐ' एकाक्षर बना है। सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत्, स्त्री- ादि भूतसमुदाय एवं चारों वेद—सभी इसी मन्त्रसे व्याप्त और यह शिवशक्तिका बोधक है।' (विद्येश्वरसंहिता १६। २०)

इसी प्रसंगमें भगवान् शंकरने प्रणव-मन्त्रसे 'नमः शिवाय' मन्त्रकी भी उत्पत्ति बतायी है। यथा—

अस्मात् पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्य तत्।
अकारादिक्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम्॥ २१॥

अर्थात् इसी प्रणवसे पञ्चाक्षरमन्त्र उत्पन्न हुआ है अर्थात् अकारसे नकार, उकारसे मकार, मकारसे शि, विन्दुसे वा और नादसे यकार उत्पन्न हुआ है।

इसका नाम प्रणव क्यों है ?

प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः।
नवं नावान्तरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः॥

(विद्ये॰सं॰अ॰१७, श्लोक ४)

अर्थात् (प्र) प्रकृतिसे उत्पन्न हुए संसार-सागरके लिये (नवम्) यह प्रणव नौकारूप है, इस कारण पण्डितलोग इसे 'प्रणव' कहते हैं। अथवा—

प्रः प्रपञ्चो हि नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः॥ ५॥

(प्र) प्रपञ्च (न) नहीं है (वः) तुममें, अर्थात् जिसको जपनेसे संसार नहीं रहता उसका नाम 'प्रणव' है। अथवा—

(प्र) प्रकृष्टरूपसे (न) मोक्षको ले जाता है (वः) जपनेवाले तुमलोगोंको, इस कारण इसका नाम 'प्रणव' है। अथवा—

स्वजापकानां योगिनां स्वमन्त्रपूजकस्य च।
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम्॥ ६॥

अर्थात् अपना पूजन करनेवालेको, उसके सर्व कर्म क्षय कर, दिव्य ज्ञान देनेसे यह 'प्रणव' कहलाता है। अथवा—

तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम्॥ ७॥
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः।

अर्थात् मायारहित होनेसे प्रणवको 'नूतन' कहते हैं, यह महात्माओंको अत्यन्त नवीन शुद्ध रूप प्रदान करता है। नूतन करनेवाला होनेके कारण पण्डितलोग इसे 'प्रणव' कहते हैं।

स्वयं शिवजी भी कहते हैं—

ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु।
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात् प्रणव ईरितः॥

(कै॰ सं॰ अ॰ ३, श्लोक १४)

अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंका यह प्रणव ही प्राण है, इससे इसको 'प्रणव' कहते है।

हंस-मन्त्रमें प्रणवकी प्राप्ति

प्राणिमात्र श्वास-प्रश्वासमे हंस-मन्त्रका उच्चारण करते हैं। इस मन्त्रमें भी सदा प्रणवका ही जाप होता है, इस बातको भगवान् कार्तिकेय स्वामी वामदेवके प्रति कहते हैं—

प्रतिलोमात्मके हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम्।
तव स्नेहाद् वामदेव सावधानतया शृणु॥
व्यञ्जनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्जनात्।
ओमित्येव भवेत् स्थूलो वाचकः परमात्मनः॥

(कै॰ सं॰ अ॰ १६। ३७-३८)

अर्थात् हे वामदेव! हंस-मन्त्रके प्रतिलोम (विपरीत) **'सोऽहं'** मन्त्रसे प्रणवकी प्राप्तिके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। व्यञ्जन 'स' कार और 'ह' कारके वर्जनसे 'ॐ' इस प्रकार परमात्माका वाचक स्थूल अक्षर होता है।

प्रणव तारक मन्त्र है

इस प्रणव-मन्त्रको 'तारक' मन्त्र कहा जाता है, क्योंकि इस मन्त्रद्वारा प्राणिमात्र भव-समुद्रसे तर जाते हैं। भगवान् शंकर कहते हैं—

एनमवेहि देवेशि सर्वमन्त्रशिरोमणिम्।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे॥

(कै॰ सं॰ अ॰ ३, श्लोक १०)

अर्थात् 'हे देवि! सर्व मन्त्रोंके शिरोमणि इस ओंकारको ही मैं काशीमे प्राणत्याग करनेवाले जीवोंको मुक्तिहेतु देता हूँ।' स्वामिकार्तिकेय भी वामदेवसे कहते हैं—

एनमेव महामन्त्रं जीवानां च तनुत्यजाम्।
काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः॥

(कै॰ सं॰ अ॰ १३, श्लोक ६२)

अर्थात् शिवजी काशीमें शरीर त्याग करनेवालेको मरते समय इसी महामन्त्रका उपदेश देकर मुक्त करते हैं।

प्रणवका विषय

भगवान् शिवजी पार्वतीके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं—

विषयः स्यामहं देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात्।

(कै॰ सं॰ अ॰ ३, श्लोक ३६)

अर्थात् जीव-ब्रह्मकी एक भावनासे मैं (शिव) ही इसका विषय हूँ। स्वामिकार्तिकेय वामदेवसे कहते हैं—

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शपथं प्रब्रवीमि ते।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥
प्रणवार्थः शिवः साक्षात् प्राधान्येन प्रकीर्तितः।
श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च॥

(कै॰ सं॰ अ॰ १२, श्लोक ५-६)

अर्थात् मैं दक्षिण भुजा उठाकर शपथपूर्वक कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है, प्रणव प्रधानतया साक्षात् शिवका ही वाचक कहा गया है। यही बात श्रुति-स्मृति, शास्त्र-पुराण और आगमोंमें भी बतलायी गयी है।

इसके अधिकारी

अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम्।

(कै॰ सं॰ अ॰ ३, श्लोक ३५)

अर्थात् जिसे दृढ़ वैराग्य हो वही इसका अधिकारी है।

शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः।
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः॥ ६६॥

अर्थात् शम-दमादि धर्ममें निरत, वेदान्तज्ञानके पारगामी, मात्सर्यरहित, यत्नशील उपासक ही इसके अधिकारी हैं।

सम्बन्ध

जीवात्मनो मया सार्धमैक्यस्य प्रणवस्य च।
वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः॥

(कै॰ सं॰ अ॰ ३, श्लोक ३७)

अर्थात् प्रणव मेरी और जीवात्माकी एकताका वाचक है, अतः इस एकताका प्रणवके साथ वाच्य-वाचक-भाव-सम्बन्ध है।

प्रणवका स्थान

आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम्।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात्॥
स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीतं परात्परम्॥

(कै॰ सं॰ अ॰ ३, श्लोक ३४-३५)

अर्थात् आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धिचक्र, आज्ञाचक्र, शक्ति और शान्ति—ये कलाक्रमसे प्रणवके स्थान हैं, हे देवि ! शान्तिसे जो अतीत है उसको 'परात्पर' कहते हैं।

उपासना-विधि

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशोकं विशदं परम्।
अष्टपत्रं केशराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम्॥
आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्त्वान्तमयं पदम्।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योम भावयेत्॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मां त्वया सह।
चिन्तयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुत्सुक्तमानसः॥

(कै० सं० अ० ३, श्लोक ६७-६८, ८९)

अर्थात् उपासक स्वच्छ, शोकरहित, उज्ज्वल, अष्टदल कमलके समान मकरन्दयुक्त, कर्णिकासे शोभायमान हृदय-कमलके मध्यमें आधार-शक्तिसे आरम्भ करके त्रितत्त्वमय उत्तम पदका ध्यान करके दहरव्योमकी भावना करे। 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण कर तुम्हारे साथ मेरा दहराकाशके बीचमें सदा उत्कण्ठासे चिन्तन करे।

उपासनाका फल

एवंविधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च।
मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये॥

अर्थात् हे प्रिये ! इस प्रकार उपासना करनेवालेको मेरे लोककी गति प्राप्त होती है और मुझसे ज्ञान प्राप्तकर वह मेरे ही सायुज्यको प्राप्त हो जाता है।

जप-विधि

ॐ अस्य श्रीप्रणवमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, परमात्मा सदाशिवो देवता, अं बीजम्, उं शक्तिः, मं कीलकम्, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास

शिरसि, ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे, गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि, परमात्मने देवतायै नमः। गुह्ये, अं बीजाय नमः। पादयोः, उं शक्तये नमः। नाभौ, मं कीलकाय नमः। सर्वाङ्गे, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

करन्यास

अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। उं तर्जनीभ्यां नमः। मं मध्यमाभ्यां नमः। अं अनामिकाभ्यां नमः। उं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। मं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

अं ब्रह्मणे हृदयाय नमः। उं विष्णवे शिरसे स्वाहा। मं रुद्राय शिखायै वषट्। अं ब्रह्मणे कवचाय हुम्। उं विष्णवे नेत्रत्रयाय वौषट्। मं रुद्राय अस्त्राय फट्।

ध्यान

ॐकारं निगमैकवेद्यमनिशं वेदान्ततत्त्वास्पदं
चोत्पत्तिस्थितिनाशहेतुममलं विश्वस्य विश्वात्मकम्।
विश्वत्राणपरायणं श्रुतिशतैः सम्प्रोच्यमानं प्रभुं
सत्यं ज्ञानमनन्तमूर्तिममलं शुद्धात्मकं तं भजे॥

नमस्कार

ॐकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥

प्रणव-जपका फल

महर्षि पतञ्जलिने कहा है—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

अर्थात् प्रणवके जपसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति तथा सारे विघ्नोंका नाश होता है।

भगवान् शंकर ब्रह्मा-विष्णुसे कहते हैं—

तत्तन्मन्त्रेण तत्सिद्धिः सर्वसिद्धिरितो भवेत्।

(वि० सं० अ० १०, श्लोक २३)

अनेन मन्त्रकन्देन भोगो मोक्षश्च सिध्यति।
सकला मन्त्रराजानः साक्षाद् भोगप्रदाः शुभाः॥

अर्थात् उस-उस मन्त्रसे वह-वह सिद्धि होती है, किंतु प्रणव-मन्त्रसे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यह सकल मन्त्रोंका मूल है और भोग-मोक्ष दोनोंका देनेवाला है।

वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद्वन्दने संध्ययोरपि।
नवकोटिजपाज्जप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत्॥

(विद्ये० सं० अ० १७, श्लोक १८)

पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमाप्नुयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपां जयमवाप्नुयात्॥ १९॥
पुनश्च नवकोट्या तु तेजसां जयमाप्नुयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु वायोर्जयमवाप्नुयात्।

आकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वै ॥ २० ॥
गन्धादीनां क्रमेणैव नवकोटिजपेन वै ।
अहंकारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै ॥ २१ ॥
सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्यं शुद्धो भवेत् पुमान् ।
ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः ॥ २२ ॥
एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुनः ।
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥
शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः ।
सदा जपन् सदा ध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम् ॥ २४ ॥
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः ॥ २५ ॥

अर्थात् वेदके आदिमें तथा दोनों कालके संध्या-वन्दनमें भी ॐकारका प्रयोग करना चाहिये। नौ करोड़ जप करनेसे पुरुष शुद्ध हो जाता है। फिर नौ करोड़ जप करनेसे पृथिवी-तत्त्वका जय होता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़से क्रमशः जल, अग्नि, वायु एवं आकाश-तत्त्वका जय होता है। पश्चात् नौ-नौ करोड़से क्रमशः पञ्चतन्मात्राओं तथा अहंकार-तत्त्वका जय होता है। नित्य सहस्र मन्त्र जपनेसे पुरुष शुद्ध रहता है, फिर इससे अधिक जप आत्मज्ञानकी सिद्धिके लिये होता है। इस प्रकार १०८ करोड़ जप करनेसे पुरुष प्रबुद्ध होकर शुद्ध योगको प्राप्त होता है और शुद्ध योगसे निःसंदेह जीवन्मुक्त हो जाता है।

प्रणवरूप शिवका सदा जप और ध्यान करनेवाला महायोगी समाधिमें स्थित होकर शिवरूप हो जाता है—

'शिव एव न संशयः'।

शिवलिङ्गोपासना-रहस्य

(अनन्तश्री ब्रह्मलीन पूज्यपाद धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

सर्वाधिष्ठान, सर्वप्रकाशक, परब्रह्म परमात्मा ही '**शान्तं शिवं चतुर्थम्मन्यन्ते**' इत्यादि श्रुतियोंसे शिवतत्त्व कहा गया है। वही सच्चिदानन्द परमात्मा अपने-आपको ही शिव-शक्ति-रूपमें प्रकट करता है। वह परमार्थतः निर्गुण, निराकार होते हुए भी अपनी अचिन्त्य दिव्य लीलाशक्तिसे सगुण, साकार, सच्चिदानन्दघनरूपमें भी प्रकट होते हैं। वही शिव-शक्ति, राधा-कृष्ण, अर्धनारीश्वर आदि रूपमें प्रकट होते हैं। सत्ताके बिना आनन्द नहीं और आनन्दके बिना सत्ता नहीं। 'स्वप्रकाश सत्तारूप आनन्द' ऐसा कहनेसे आनन्दकी वैषयिक सुख-रूपताका वारण होता है, सत्ताको आनन्दरूप कहनेसे उसकी जड़ताका वारण होता है। जैसे आनन्दसिन्धुमें माधुर्य उसका स्वरूप ही है, वैसे ही पार्वती-शिवका स्वरूप किंवा आत्मा ही है। माधुर्यके बिना आनन्द नहीं और आनन्दके बिना माधुर्य नहीं। दूसरी दृष्टिसे—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥
(गीता १४।४)

'समस्त प्राणियोंमें जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उन सबकी योनि अर्थात् उत्पन्न करनेवाली माता प्रकृति है और बीज देनेवाला शिव (लिङ्ग) पिता मैं हूँ। अर्थात् मूल प्रकृति और परमात्मा ही उन माता-पिता (योनि-लिङ्ग) रूपमें उन-उन मूर्तियों (वस्तुओं) का उत्पादन करते हैं। '**एकोऽहं बहु: स्याम् प्रजायेय**' इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार एक ब्रह्मतत्त्व ही प्रजोत्पादन या बहुभवनके संकल्पमात्रसे अनन्त रूपोंमें विवर्तित हो जाता है। 'सोऽकामयत' यह प्रजाकी सिसृक्षारूप संकल्प ही प्राथमिक आधिदैविक काम है। इसीके द्वारा प्रकृतिसंसृष्ट होकर भगवान् अनन्त ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करते या कराते हैं—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया ॥

—यह काम भी भगवान्‌का ही अंश है—'**कामस्तु वासुदेवांशः**' (भागवत)। लोकमें भी प्रेम, काम या इच्छाका मुख्य विषय आनन्द ही है। सुखमें साक्षात् कामना और उससे अन्यमें सुखका साधन होनेसे इच्छा होती है, इसीलिये आनन्द और तद्रूप आत्मा निरतिशय, निरुपाधिक पर प्रेमका आस्पद है, अन्य वस्तुएँ सातिशय, सोपाधिक अपर प्रेमके आस्पद हैं। जैसे विषयके प्रभावसे कटु निम्बमें मिठास प्रतीत होती है, वैसे ही भ्रान्ति या मोहके प्रभावसे मांसमयी कान्तामें आनन्दका भान होता है। परंतु इसके अतिरिक्त शुद्ध आनन्द या आत्मामें जो प्रेम, आनन्द, कामना है, वह तो स्वाभाविक है, आत्माका अंश ही है, इसीलिये अद्वैत आत्मा ही निरुपाधिक प्रेमका

आस्पद कहा जाता है, परंतु वहाँ प्रेम और उसके आश्रय तथा विषयमें भेद नहीं है।

प्रेम, आनन्द, रस—ये सभी आत्माके ही स्वरूप हैं। रसरूप आनन्दसे ही समस्त विश्व उत्पन्न होता है, अतः सबमें उसका होना अनिवार्य है। इसीलिये जिस तरह सोपाधिक आनन्द और सोपाधिक प्रेम सर्वत्र है ही, उसी तरह कान्ता भी सोपाधिक आनन्दरूप कही जा सकती है। अतएव वह सोपाधिक प्रेमका विषय भी है। परंतु निरुपाधिक प्रेम तो निरुपाधिक आत्मामें ही होता है। जैसे सत्के ही सविशेष रूपमें अनुकूलता, प्रतिकूलता, हेयता, उपादेयता होती है, निर्विशेष तो शुद्ध आत्मा ही है, वैसे ही सविशेष आनन्द और प्रेममें भी हेयता, उपादेयता है।

सुन्दर, मनोहर देवता और तद्विषयक प्रेम आदि उपादेय हैं, सुन्दरी वेश्यादिकी आनन्दरूपता और तद्विषयक प्रेम हेय है। जैसे अति पवित्र दुग्ध भी अपवित्र पात्रके संसर्गसे अपवित्र समझा जाता है, वैसे ही आनन्द और प्रेम भी अपवित्र उपाधियोंके संसर्गसे दूषित हो जाता है। शास्त्रनिषिद्ध विषयोंमें आनन्द और प्रेम दोष है, हेय है। शास्त्रविहित विषयोंमें आनन्द और प्रेम पुण्य है, उपादेय है। परंतु निर्विशेष, सर्वोपाधियुक्त प्रेम, आनन्द तो स्पष्ट आत्मा या ब्रह्म ही है। इतनेपर भी आनन्द और प्रेम सभी है। आत्माके ही अंश अपवित्र विषयके दूषणसे ही कामिनी आदि विषयक प्रेमको मन या राग आदि कहा जाता है, देवताविषयक प्रेमको भक्ति आदि कहा जाता है। सजातीयमें ही सजातीयका आकर्षण होता है। बस यह आकर्षण ही प्रेम या काम है। कान्ताकान्त दोनोंहीमें रहनेवाली तत्तदवच्छिन्न रस या आनन्दमें ही जो परस्पर आकर्षण है, वही काम है।

समष्टि ब्रह्मका प्रकृतिकी ओर झुकाव आधिदैविक काम है। परंतु जहाँ शुद्ध, सच्चिदानन्दघन परब्रह्मका स्वरूपमें ही आकर्षण होता है, किंवा आत्माको अपने ही अत्यन्त अभिन्न स्वरूपमें ही जो आकर्षण या निरतिशय, निरुपाधिक प्रेम है, वह तो आत्मस्वरूप ही है। यही राधा-कृष्ण, गौरी-शंकर, अर्धनारीश्वरका परस्पर प्रेम, परस्पर आकर्षण है और यह शुद्ध प्रेम ही शुद्ध काम है। यह कामेश्वर या कृष्णका स्वरूप ही है। अनन्त ब्रह्माण्डमें विस्तीर्ण कामविन्दु मन्मथ है। अनन्त ब्रह्माण्डनायकका प्रकृतिमें वीर्याधानका प्रयोजक कामसागर साक्षात् मन्मथ है। परंतु, सौन्दर्य-माधुर्यसार-सर्वस्व, निखिलरसामृतमूर्ति कृष्णचन्द्रका जो अपनी ही स्वरूपभूता माधुर्याधिष्ठात्री राधामें आकर्षण है, वह तो साक्षान्मन्मथमन्मथ ही है। उनका पूर्णतम सौन्दर्य ऐसा अद्भुत है कि उन्हें ही विस्मित कर देता है। काम उनकी पदनख-मणि-चन्द्रिकाकी रश्मिच्छटाको देखकर मुग्ध हो गया। उसका स्त्रीत्व-पुंस्त्वभाव ही मिट गया, उसने अपने मनमें यह ठान लिया कि अनन्त जन्मोंतक भी तपस्या करके व्रजाङ्गनाभाव प्राप्त कर श्रीकृष्णके पद-नख-मणि-चन्द्रिकाका सेवन प्राप्त करूँगा। परंतु यहाँ तो कृष्णने ही अपने स्वरूपपर मुग्ध होकर उस रसके समास्वादनके लिये व्रजाङ्गना-भावप्राप्त्यर्थ तपस्याका विचार कर लिया। यहाँ शुद्ध परमतत्त्वमें ही शिवशक्तिभाव, अर्धनारीश्वरभाव और शुद्ध आकर्षण प्रेम या काम है। सद्रूप गौरी एवं चिद्रूप शिव दोनों ही जब अर्धनारीश्वरके रूपमें मिथुनीभूत (सम्मिलित) होते हैं, तभी पूर्ण सच्चिदानन्दका भाव व्यक्त होता है, परंतु यह भेद केवल औपचारिक ही है, वास्तवमें तो वे दोनों एक ही हैं।

कुछ महानुभावोंका कहना है कि पूर्ण सौन्दर्य अपनेमें ही अपने प्रतिविम्बको अपने-आप देख सकता है, भगवान् अपने स्वरूपको देखकर स्वयं विस्मित हो जाते हैं—

'विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्।'
(श्रीमद्भा० ३।२।१२)

बस, इसीसे प्रेम या काम प्रकट होता है। इसीसे शिव-शक्तिका सम्मिलन होता है। वही शृंगाररस है। कामेश्वर-कामेश्वरी, श्रीकृष्ण-राधा, अर्धनारीश्वर वही है। पूर्ण सौन्दर्य अनन्त है, अप्सराओंका सौन्दर्य उसके सामने नगण्य है। उसी सौन्दर्यके कणमात्रसे भगवान् विष्णुने मोहिनीरूपसे शिवको मोह लिया। उसीके लेशसे मदन मुनियोंको मोहता है। वही सगुणरूपमें कहीं ललिता, कहीं कृष्णरूपमें प्रकट होता है—

'षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।'
(सुभगोदय)

'नित्यं किशोर एवासौ भगवानन्तकान्तकः॥'

कभी आद्या ललिता ही पुंरूपधारिणी होकर कृष्ण बनती

है, वही वंशीनादसे विश्वको मोहित करती है—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वंशीनादसमारम्भादकरोद्विवशं जगत्॥

(तन्त्रराज)

प्रकृतिपार, सौन्दर्य-माधुर्यसार, आनन्दरससार परमात्मामें ही शिव-पार्वती-भाव बनता है। अनन्तकोटिब्रह्माण्डोत्पादिनी अनिर्वचनीय शक्तिविशिष्ट ब्रह्ममें भी शिव-पार्वती-भाव है। उसी परमात्मामें लिङ्ग-योनिभावकी कल्पना है।

निराकार, निर्विकार, व्यापक दृक् या पुरुषतत्त्वका प्रतीक ही लिङ्ग है और अनन्तब्रह्माण्डोत्पादिनी महाशक्ति प्रकृति ही योनि, अर्घा या जलहरी है। न केवल पुरुषसे सृष्टि हो सकती है, न केवल प्रकृतिसे। पुरुष निर्विकार, कूटस्थ है, प्रकृति ज्ञानविहीन, जड़ है। अतः सृष्टिके लिये दृक्-दृश्य, प्रकृति-पुरुषका सम्बन्ध अपेक्षित होता है। 'गीता'में भी प्रकृतिको परमात्माकी योनि कहा गया है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥

(१४। ३)

भगवान् कहते हैं—महद्ब्रह्म—प्रकृति—मेरी योनि है, उसीमें मैं गर्भाधान करता हूँ, तभी उससे महदादिक्रमेण समस्त प्रजा उत्पन्न होती है। प्रकृतिरूप योनिमें प्रतिष्ठित होकर ही पुरुषरूप लिङ्गका उत्पादन करता है। अतएव बिना योनि-लिङ्ग-सम्बन्धके कहीं भी किसीकी सृष्टि ही नहीं होती। हाँ, यह बात अवश्य समझ लेनी चाहिये कि लोकप्रसिद्ध मांसचर्ममय ही लिङ्ग और योनि नहीं है, किंतु वह व्यापक भी है। उत्पत्तिका उपादानकारण पुरुषत्वका चिह्न ही लिङ्ग कहलाता है। दृश्य अण्डरूप ब्रह्म ही अदृश्य पुरुष-ब्रह्मका चिह्न है और वही संसारका उपादान भी है, अतः वह लिङ्गपदवाच्य है। लिङ्ग और योनि पुरुष-स्त्रीके गुह्याङ्गपरक होनेसे ही इन्हें अश्लील समझना ठीक नहीं है। गेहूँ, यव आदिमें भी जिस भागमें अङ्कुर निकलता है उसे योनि माना जाता है, दाने निकलनेसे पहले जो छत्र होता है वह लिङ्ग है। ब्रह्मा या देवताओंके संकल्पसे उत्पन्न सृष्टिका भी लिङ्ग-योनिसे सम्बन्ध है, अर्थात् शिव-शक्ति ही यहाँ लिङ्ग-योनि शब्दसे विवक्षित है।

जैसे दृक्तत्त्व व्यापक है, वैसे ही दृश्य प्रकृतितत्त्व भी। तभी तो कभी लोकप्रसिद्ध योनि-लिङ्गके बिना भी मानसी संकल्पजा सृष्टि होती थी। कहीं दर्शनसे, कहीं स्पर्शसे, कहीं फलादिसे भी संतान उत्पन्न हो जाती थी। कहीं भी कैसी भी, सृष्टि क्यों न हो, परंतु वहाँ सृष्टिके उत्पादनानुकूल शिव-शक्तिका सम्बन्ध अवश्य मानना पड़ता है। वृक्ष, लता, दूर्वा, तृणादि सभी तत्त्वोंकी उत्पत्तिमें तदुपयुक्त शिव-शक्तिका सम्बन्ध अनिवार्य है। योगसिद्ध महर्षियोंका प्रकृतिपर अधिकार होता था। अतः ये संकल्प, स्पर्श, अवलोकन आदिसे ही सृष्टि करनेकी क्षमता रखते थे।

जिस प्रकार सर्वसाधारण लोग जिसे नेत्र समझते हैं वह नेत्र नहीं है, किंतु वह तो अतीन्द्रिय नेत्र इन्द्रियकी अभिव्यक्तिका स्थान गोलक है, इन्द्रिय उससे पृथक् सूक्ष्म वस्तु है। प्रसिद्ध नासिका या कान ही घ्राण और श्रोत्र नहीं, किंतु यह सब तो गोलक है। घ्राण, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ तो अतिसूक्ष्म हैं, वे नेत्रादिके विषय नहीं हैं। फिर भी विशेषरूपसे उनका इन गोलकोंमें प्राकट्य होता है, अतएव कभी जब इन गोलकोंके ज्यों-के-त्यों बने रहनेपर भी इन्द्रियशक्ति क्षीण हो जाती है, तब दर्शन, श्रवण, आघ्राण आदि नहीं होते। योगियोंको घ्राण, श्रोत्र, नेत्र-सम्बन्ध बिना भी दूरदर्शन श्रवणादि होते हैं। उसी तरह लौकिक प्रसिद्ध लिङ्ग-योनि आदि केवल गोलक हैं, उनमें व्यक्त होनेवाला योनि-लिङ्ग तो अतीन्द्रिय ही है। वैसे ही प्रजनन इन्द्रिय, वीर्य, रज आदि भी उसके मुख्य रूप नहीं, किंतु उनसे भी सूक्ष्म, उनमें विशेष-रूपसे व्यक्त दृक्-दृश्य ही शिव और शक्ति हैं।

यद्वा जैसे अग्नितादात्म्यापन्न लौह-पिण्डमें दाहकत्व, प्रकाशकत्व हो सकता है, वैसे ही पुरुष-प्रतिबिम्बोपेत ही अचेतन प्रकृति चेतित होकर विश्वका निर्माण करती है। मूर्तिपूजाका भी भाव यही होता है कि दृश्यसे अदृश्यकी पूजा हो। शालग्राममें विष्णुकी भावना होती है। केवल काष्ठ, पाषाण, धातुकी पूजा नहीं होती, किंतु मन्त्र और विधानोंकी महिमासे आहूत, संनिहित व्यापक भावना भावित दैवततत्त्व ही मूर्तिमें आराध्य होता है। व्यष्टिके द्वारा ही प्राणियोंके मनमें समष्टिभावका आरोहण होता है। अतएव समस्त व्यष्टि लिङ्गों एवं अन्यत्र भी व्यापक शिवतत्त्वकी समष्टि मूर्ति मह...

लिङ्ग है। जैसे व्यष्टि नेत्रोंका अधिष्ठाता समष्टिदेव सूर्य है, वैसे ही व्यष्टि प्रजननशक्तियोंमें व्याप्त शिवतत्त्वका समष्टिस्वरूप शिवलिङ्ग है। जैसे व्यष्टि नेत्रकी उपासना न होकर समष्टिनेत्र सूर्यकी ही आराधना होती है और प्रतिमा भी उन्हींकी बनती है, वैसे ही समष्टि शिवमूर्तिकी ही उपासना और प्रतिमा होती है। जैसे जाग्रत्, स्वप्नकी उत्पत्ति और लय सौषुप्त तमसे ही होते हैं, वैसे ही तमसे सबका उद्भव और उसीमें सबका लय होता है। तमको वशमें रखकर उसके अधिष्ठाता शिव ही सर्वकारण हैं। कार्योंको कारणका पता आद्यन्त नहीं लगता।

यह कहा जा चुका है कि समस्त योनियोंका समष्टि रूप प्रकृति है, वही शिवलिङ्गका पीठ या जलहरी है। योनिमें प्रतिष्ठित लिङ्ग आनन्दप्रधान, आनन्दमय होता है। जैसे समस्त रूपोंका आश्रय चक्षु, समस्त गन्धोंका आश्रय—एकायतन घ्राण है, वैसे ही समस्त आनन्दोंका एकायतन लिङ्ग-योनिरूप उपस्थ है। अतएव, प्रकृतिविशिष्ट दृक्-रूप परमात्मा आनन्दमय कहलाता है। सुषुप्तिमें भी उसीके अंशभूत व्यष्टि आनन्दमयका उपलम्भ होता है। प्रिय, मोद, प्रमोद, आनन्द— ये आनन्दमयके अवयव हैं, शुद्ध ब्रह्म इन सबका आधार है। जब अनन्तब्रह्माण्डोत्पादिनी प्रकृति समष्टि योनि है, तब अनन्तब्रह्माण्डनायक परमात्मा ही समष्टि लिङ्ग है और अनन्त ब्रह्माण्ड प्रपञ्च ही उनसे उत्पन्न सृष्टि है। इसीलिये परमप्रकाशमय, अखण्ड, अनन्त शिवतत्त्व ही वास्तविक लिङ्ग है और वह परम प्रकृतिरूप योनि—जलहरीमें प्रतिष्ठित है। उसीकी प्रतिकृति पाषाणमयी, धातुमयी जलहरी और लिङ्गरूपमें बनायी जाती है।

अदीर्घदर्शी अज्ञ प्राणीके लिये सांसारिक सुखोंमें सर्वाधिक सुख प्रिया-प्रियतम-परिष्वङ्ग-मैथुनमें है। अतः उसके उदाहरणसे भी श्रुतियोंने अनन्त, अखण्ड, परमानन्द ब्रह्म और प्रकृतिके आनन्दमय स्वरूपको दिखलाया है। कहीं-कहीं जीवात्माके परमात्मसंम्मिलन-सुखको इसी दृष्टान्त-सुखसे दिखलाया गया है—

तद् यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो
न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्।
एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो
न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्॥

(बृहदारण्यक० ४।३।२१)

जैसे प्रियतमाके परिरम्भणमें कामुकको आनन्दोद्रेकसे बाह्य, आभ्यन्तर विश्व विस्मृत होता है, वैसे ही जीवको परमात्माके सम्मिलनमें प्रपञ्चका विस्मरण होता है। श्रुतियों एवं पुराणोमें आध्यात्मिक, आधिदैविक तत्त्वोंका ही लौकिक भाषामें वर्णन किया जाता है, जिससे कभी-कभी अज्ञोंको उसमें अश्लीलता झलकने लगती है। गोलोकधाममें एक पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने अकेले अरमणके कारण अपने-आपको दो रूपमें प्रकट किया—एक श्याम तेज, दूसरा गौर तेज। गौर तेज राधिकामें श्यामल तेज कृष्णसे गर्भाधान होनेपर महत्तत्त्वप्रधान हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। यह भी प्रकृति-पुरुषके संयोगसे महत्तत्त्वादि प्रपञ्चकी उत्पत्ति रूपक कही गयी है।

इसीको यों भी समझ सकते हैं—जाग्रत्, स्वप्नके अभिमानी विश्व, तैजस और विराट्, हिरण्यगर्भ—ये सभी सावयव हैं। किंतु सर्वलयाधिकरण ईश्वर निरवयव है, वह मायासे आवृत होता है। अविद्याके भीतर ही रहनेवाला तो जीव है, परंतु जो **'अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्'** के सिद्धान्तानुसार अविद्याका अतिक्रमण कर स्थित है, वही ईश्वर है। निरावरण तत्त्व शिव है। ईश्वरभाव मायासे आवृत और शिवभाव अनावृत है। माया जलहरी है और उसके भीतर आवृत ईश्वर है, जलहरीके बाहर निकला हुआ शिवलिङ्ग निरावरण ईश्वर है। जिसका पृथक्-पृथक् अङ्ग न व्यक्त हो, वह पिण्डके ही रूपमें रहेगा। सुषुप्तिमें प्रतीयमान विशिष्ट आत्मभावका सूचक पिण्डी है। शिवके सम्बन्धमात्रसे प्रकृति स्वयं विकाररूपमें प्रवाहित होती है। इसलिये अर्घा गोल नहीं, किंतु दीर्घ होता है। लिङ्गके मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु, ऊपर प्रणवात्मक शंकर हैं। लिङ्ग महेश्वर, अर्घा महादेवी हैं—

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः।
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः॥
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।
तयोः सम्पूजनान्नित्यं देवी देवश्च पूजितौ॥

(लिङ्गपुराण)

चैतन्यरूप लिङ्ग सत्ता और प्रकृतिसे ही ब्रह्माण्डकी रचना

हुई और उन्हींके द्वारा वह प्रलयको भी प्राप्त होगा। शुद्ध मोक्षके लिये भी उसीकी आराधना करनी होगी।

यद्वा प्रणवमें अकार शिवलिङ्ग है, उकार जलहरी है, मकार शिव-शक्तिका सम्मिलित रूप समझ लिया जाता है। शिव ब्रह्मका स्थूल आकार विराट् ब्रह्माण्ड है, ब्रह्माण्डके आकारका ही शिवलिङ्ग होता है। निर्गुण ब्रह्मका बोधक होनेसे यही ब्रह्माण्ड लिङ्ग है अथवा उकारसे जलहरी, अकारसे पिण्डी और मकारसे त्रिगुणात्मक त्रिपुण्ड्र कहा गया है। अथवा निराकारके आकाशरूप आकार, ज्योतिःस्तम्भाकार तथा ब्रह्माण्डाकार आदि सभी स्वरूपोंमें शक्तिसहित शिवतत्त्वका ही निवेश है। सर्वरूप, पूर्ण एवं निराकारका आकार अण्डके आकारका ही होता है। मैदानमें खड़े होकर देखनेसे पृथिवीपर टिका हुआ आकाश अर्धअण्डाकार ही मालूम होता है। पृथिवीके ऊपर जैसे आकाश है, वैसे ही नीचे भी, दोनोंको मिलानेसे वह पूर्ण अण्डाकार ही होगा। आत्मासे आकाशकी उत्पत्ति है, यही निराकारका ज्ञापक लिङ्ग उसका स्थूल शरीर है। पञ्चतत्त्वात्मिका प्रकृति उसकी पीठिका है। आकाश भी अमूर्त और निराकार होनेसे विशेष रूपसे तो प्रत्यक्ष होता नहीं, फिर भी वह कुछ है ऐसा ही निश्चय होता है। उसीका सूचक भावमय गोलाकार है। शिवब्रह्म निराकार होता हुआ भी सब कुछ है, निर्विशेष ही सर्वविशेषरूप होता ही है। चिदाकाशमें भी इसी तरह शिवलिङ्गकी भावना है। इसी अण्डाकार रेखासे सब अङ्क उत्पन्न होते हैं। यही किसी अङ्कके आगे आकर उसे दशगुना अधिक करता है।

ज्योतिर्लिङ्गका स्वरूप इस तरह समझना चाहिये—

'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।'

(ऋ० १०। १२९। १)

न सन्न चासच्छिव एव केवलः।

अर्थात् पहले कुछ भी नहीं था, केवल शिव ही था।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभन्॥

(अथर्ववेद)

उसीसे विद्युत् पुरुष और फिर उससे निमेषादि काल-विभाग उत्पन्न हुए। वही विद्युत् पुरुष ज्योतिर्लिङ्ग हुआ। उसका पार आदि, अन्त, मध्य कहींसे किसीको नहीं मिला। वही **'तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्'** (मनु०) है। अर्थात् सूर्यके समान परम तेजोमय अण्ड उत्पन्न हुआ।

तल्लिङ्गमासंज्ञितं साक्षात् तेजो माहेश्वरं परम्।
तदेव मूलप्रकृतिर्माया च गगनात्मिका॥

(शिवपुराण)

'शिवपुराण' में लिङ्ग शब्दकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है—

लिङ्गमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः।
शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिङ्गमुच्यते॥

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता)

अर्थात् शिवशक्तिके चिह्नका सम्मेलन ही लिङ्ग है। लिङ्गमें विश्वप्रसूतिकर्ताकी अर्चा करनी चाहिये। यह परमार्थ शिवतत्त्वका गमक, बोधक होनेसे भी लिङ्ग कहलाता है। प्रणव भी भगवान्‌का ज्ञापक होनेसे लिङ्ग कहा गया है। पञ्चाक्षर उसका स्थूल रूप है—

तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम्।
सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्॥
स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पञ्चाक्षरमुच्यते।

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता)

माघ कृष्ण चतुर्दशी महाशिवरात्रिके दिन कोटि सूर्यके समान परम तेजोमय शिवलिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ है। 'शिवपुराण' में लिखा है कि एकमात्र शिव ही निर्गुण-निराकार होनेसे निष्कल हैं, शेष सभी सगुण विग्रहयुक्त होनेसे सकल कहे जाते हैं। निष्कल होनेसे ही शिवका निराकार (आकारविशेषशून्य) लिङ्ग ही पूज्य होता है, सकल होनेसे ही अन्य देवताओंका साकार विग्रह पूज्य होता है। शिव सकल, निष्कल दोनों ही हैं, अतः उनका निराकार लिङ्ग और साकार स्वरूप दोनों ही पूज्य होते हैं। दूसरे देवता साक्षात् निष्कल ब्रह्मरूप नहीं हैं। अतएव, निराकार लिङ्गरूपमें उनकी आराधना नहीं होती।

शिवपुराणमें निष्कल स्तम्भ-रूपमें ब्रह्मा-विष्णुका विवाद मिटानेके लिये शिवका प्रादुर्भाव वर्णित है। श्रीशिवलिङ्गहीसे समस्त विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्तमें सबका उन्हींमें लय होता है। सबके आश्रय होनेसे और सबके लयका अधिष्ठान होनेसे भगवान् ही लिङ्ग कहलाते हैं।

कार्यद्वारा कारणरूपसे लिङ्गित—अवगत होनेसे ही भगवान् 'लिङ्ग'-शब्द वाच्य हैं। इसलिये जब सब सृष्टिका आधार ही शिवलिङ्ग है, तब तो फिर सर्वत्र शिवलिङ्गकी पूजा पायी जाय, यह ठीक ही है। अतः यह कहना कि शिवलिङ्गकी पूजा पहले केवल अनार्य ही करते थे और यह उनकी ही देन है सर्वथा निराधार है। क्योंकि न तो पहले कोई अनार्य थे और न आर्य ही बाहरसे आये। सृष्टि तो ब्रह्मा, कश्यप, इन्द्र आदि देवताओं और मनु आदि प्रजापतियोंसे हुई जो कि सभी शिवके उपासक एवं आर्य ही थे तथा सभी वेद-पुराण आदिमें भी शिवलिङ्गकी ही महिमा निरूपित है, तो फिर विदेशियोंके अटकलपच्चू इतिहासकी कल्पना भला कौन मान सकता है।

दूसरी दृष्टिसे कूटस्थ स्थाणु परब्रह्म ही शिव है। श्रीपार्वती शक्ति अपर्णा लताके संसर्गसे यह पुराण स्थाणु कैवल्यपदवी देता है जो कि कल्पवृक्षोंके लिये देना भी अशक्य है। स्थाणु (ठूँठ) लिङ्गरूपमें व्यक्त शिव है, अपर्णा जलहरी है। शिवलिङ्गका कुछ अंश जलहरीसे ग्रस्त है, यही योनिग्रस्त लिङ्ग है, प्रकृतिसंस्पृष्ट पुरुषोत्तम है—

पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गं च चिन्मयम्।

ऊपर महान् अंश योनिबहिर्भूत प्रकृतिसे असंस्पृष्ट है—

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'

प्रकृतिविशिष्ट परम ब्रह्म ही सर्वकर्ता, सर्वफलदाता है, केवल तो उदासीन है। शुद्ध शिवतत्त्व त्रिगुणातीत है, त्रिमूर्त्यन्तर्गत शिव परम बीज, तमोगुणके नियामक हैं। सत्त्वके नियमनकी अपेक्षा भी तमका नियमन बहुत कठिन है। सर्वसंहारक तम है, पर उसको भी वशमें रखनेवाले शिवकी विशेषता स्पष्ट ही है।

एक दृष्टिसे सभी चिह्न 'लिङ्ग' शब्दसे ही वाच्य हैं। चिह्नशून्य निर्गुण, निराकार, निर्विकार ब्रह्म अलिङ्ग है। श्रुतियाँ उसे अशब्द, अस्पर्श, अरूप बतलाती हैं। परंतु, लिङ्गका अधिष्ठान मूल वही है। अव्यक्त तत्त्व लिङ्ग है। मायाद्वारा एक ही परब्रह्म परमात्मासे ब्रह्माण्डरूप लिङ्गका प्रादुर्भाव होता है। चौबीस प्रकृति-विकृति, पचीसवाँ पुरुष, छब्बीसवाँ ईश्वर यह सब कुछ लिङ्ग ही है। उसीसे ब्रह्म, विष्णु, रुद्रका आविर्भाव होता है। प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे त्रिकोण योनि बनती है। प्रकृतिमें स्थित निर्विकारबोधरूप शिवतत्त्व ही लिङ्ग है। इसीको विश्वतै प्राज्ञ, विराट्-हिरण्यगर्भ—वैश्वानर, जाग्रत्-स्वप्न-सु ऋक्-साम-यजु, परा-पश्यन्ती-मध्यमा आदि विकृतियाँ त्रिकोणपीठोंमें तुरीय, प्रणव, परा वाक्स्वरूप लिङ्ग संनिहित हैं।

'अ, उ, म्' इस प्रणवात्मक त्रिकोणमें अर्धमात्रास लिङ्ग है। परमेश्वर समष्टि-व्यष्टि लिङ्गरूपसे प्रत्येक यो प्रतिष्ठित होकर पञ्चकोशात्मक देहोंको उत्पन्न करता है-

अधितिष्ठति योनिं यो योनिं वाचैक ईश्वरः।
देहं पञ्चविधं येन तमीशानं पुरातनम्॥

(लिङ्गपु० २। १८।

वेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, पुराण, तन्त्र स ही शिवकी महिमा गायी गयी है। राम, कृष्ण, इन्द्र, व कुबेर आदि देवाधिदेवोंने भी शिवलिङ्गार्चासे सिद्धियाँ प्राप्त हैं। भगवान् शंकरने जितेन्द्रिय होनेके कारण कामको ही दिया। अतः सबके लिये जितेन्द्रिय होना आवश्यक है। भी शिवलिङ्गपूजाका एक उत्कृष्ट शिक्षात्मक दृष्टिकोण है

किसी अवसरमें दृग् और दृश्य दोनों एक ही होते हैं—

'आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम्।'

(श्रीमद्भागवत ११। २४

सृष्टिसे पहले ज्ञान और अर्थ (दृश्य) एकमेव हो थे। दृश्यशक्तिके उद्भव बिना सर्वसंद्रष्टा चिदात्मा अपनेको असत् ही मानने लगता है—

'मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक्।'

(श्रीमद्भा० ३। ५।

वह अन्तर्मुख विमर्शरूप सुप्त शक्ति ही 'माया' प कही जाती है—

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः॥

निरधिष्ठान शक्ति नहीं और अशक्त अधिष्ठान न अतः उभयस्वरूप ही है। इसीलिये शिव ही शक्ति और श ही शिव, इस दृष्टिसे योनि लिङ्गात्मक एवं लिङ्ग योन्यात है। फिर भी इस द्वैतमें अद्वैत तत्त्व अनुस्यूत है। ईश्वर अ महाशक्तिकी अधिष्ठानभूत अद्वैतसत्ता भी निरञ्जन, निष्क

सत्ताके साथ एकीभूत है। यह सृष्टिका बीज होनेपर भी निःस्पन्द शिवमात्र है। अव्यक्त अवस्था अलिङ्गावस्था भी है। इसे महालिङ्गावस्था भी कहा जा सकता है। अव्यक्तसे तेजोमय, ज्योतिर्मय तत्त्व आविर्भूत होता है। वह स्वयं उत्पन्न होनेसे स्वयम्भू लिङ्ग है। वह अव्यक्त अवस्थाका परिचायक होनेसे लिङ्ग है। परमार्थतः द्वैतशून्य तत्त्व है। योनि त्रिकोण है, केन्द्र या मध्यबिन्दु लिङ्ग है—

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके।
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम्॥
(तन्त्रराज)

इस वचनमें इच्छा-ज्ञान क्रियात्मक योनिमें कोटिसूर्य-समप्रभ स्वयम्भू चिज्ज्योतिःस्वरूप शिवलिङ्ग माना गया है। मूलाधार आदि षट्चक्र भी योनि ही है। सर्वत्र यही लिङ्ग भी भिन्न-भिन्न रूपमें विराजमान है। योनिसे अतीत होकर बिन्दु अव्यक्त और लिङ्ग अलिङ्ग हो जाता है। कोई गुण, कर्म, द्रव्य बिना योनि-लिङ्गके नहीं बन सकते। याज्ञिकोंके यहाँ भी वेदीकी स्त्री-रूपमें, कुण्डकी योनिरूपमें और अग्निकी रुद्र-लिङ्गरूपमें उपासना होती है।

लिङ्गार्चनतन्त्रमें वर्णन आया है कि एक समय देवी पार्वतीने भगवान् शंकरसे प्रश्न किया कि 'इन्द्रियोंसे रहित देव शून्यरूप है, उसका कोई आकार नहीं है, उस शून्यके पूजनसे क्या फल ?' शिवजीने कहा— 'महेशानि ! शक्तिशून्य शिव शव या प्रेतके ही समान है। उसकी पूजा नहीं बन सकती, किंतु रौद्री शक्तिसहित ही उनकी पूजा होनी चाहिये। वही ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका आद्याशक्ति सार्धत्रिवलया (साढ़े तीन फेरेकी) कुण्डलिनीरूपा है। वह शिवतत्त्वको अपने साढ़े तीन फेरेसे वेष्टित किये हुए है। उसी शक्तिके संयोगसे शिव अनन्त ब्रह्माण्डका उत्पादनादि कार्य करते हैं। वही कुण्डलिनी योनि है, उससे परिवेष्टित शिवलिङ्ग है। यही अपर्णालता-परिवेष्टित स्थाणु भी है, अपर्णा पार्वती योनि है, कूटस्थ ब्रह्म ही स्थाणु, ठूँठ या लिङ्ग है।'

'स्कन्दपुराण'के अनुसार लिङ्गपूजनके बिना महान् अमङ्गल होता है और उसके पूजनसे भुक्ति, मुक्ति सब कुछ मिलती है—

विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः।
महाहानिर्भवेत् तस्य दुर्गतस्य दुरात्मनः॥
एकतः सर्वदानानि व्रतानि विविधानि च।
तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गाराधनमेकतः॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधापन्निवारणम्॥

यद्यपि शिवलिङ्ग और उसकी पूजा अनादिकालसे ही है तथापि उनके आविर्भावका पुराणोंमें वर्णन है—ब्रह्मा, विष्णु दोनों ही 'मैं बड़ा हूँ' ऐसा कहकर परस्पर लड़ रहे थे। उनका विवाद मिटानेके लिये परमज्योतिर्मय लिङ्गका आविर्भाव हुआ। ब्रह्मा भगवान्‌के उस ज्योतिर्मयलिङ्गका पता लगानेके लिये हंसपर आरूढ़ होकर ऊपरकी ओर गये और विष्णु वराहरूप धारण कर नीचे गये। हजारों वर्षतक घोर परिश्रम करनेपर भी दोनोंको उसका कहीं आद्यन्त न मिला। शिवलिङ्गके मस्तकसे गिरती हुई केतकीने कहा कि 'मैं दस कल्पसे चलते-चलते यहाँतक पहुँची हूँ, अभी कुछ ठिकाना नहीं कि कितना जाना पड़ेगा।' इससे शिवलिङ्गकी अनन्तता मालूम पड़ती है। दिव्यवाणीसे भगवान् शिवने ब्रह्मा, विष्णु दोनोंको प्रबोध कराया।

अन्यत्र पृथिवीको पीठ और आकाशको लिङ्ग कहा है। जैसे वेदीपर लिङ्ग विराजता है वैसे ही पृथिवीपर आकाश है। जैसे ब्रह्मका एक देश ही प्रकृति-संस्पृष्ट है, वैसे ही आकाशलिङ्गका भी एक देश ही पृथिवीसंस्पृष्ट है। इसीलिये कहीं लिङ्ग ठीक पुरुषके जननेन्द्रियके समान ही होता है, कहीं ब्रह्माण्डके आकारका, कहीं पिण्डके आकारका। केदारेश्वरकी नित्यसिद्ध स्वयम्भू-मूर्ति कहीं भी लिङ्गके आकारकी नहीं है। वही कारणावस्था या पिण्डावस्थाका चिह्न ही लिङ्ग समझना चाहिये। वस्तुदृष्टिसे फिर भी वह लिङ्ग ही है।

शिव-शक्तिके सहवासमें अवकाश न मिलनेसे शुक्राचार्यने उन्हें शाप दिया कि तुम योनिस्थ लिङ्गके रूपमें पूजित होगे। एक बार शंकर दिगम्बर-वेशसे स्वलिङ्ग अपने हस्तमें लेकर दारुकवनमें गये। उन्हें देखकर ऋषिपत्नियाँ मोहित हो गयीं, यह देखकर ऋषियोंने शंकरको शाप दिया कि तुम्हारे लिङ्गका पतन हो जाय। ऐसा ही हुआ, किंतु लिङ्गके पृथिवीपर गिरते ही वह प्रज्वलित होकर अपने तेजसे लोकोंको भस्म करने लगा। अन्तमें शिवाने उसे योनिमें स्थापित किया और सब ऋषियों और देवताओंने उसकी पूजा की। यहाँ लिङ्ग-योनि

कार्यद्वारा कारणरूपसे लिङ्गित—अवगत होनेसे ही भगवान् 'लिङ्ग'-शब्द वाच्य हैं। इसलिये जब सब सृष्टिका आधार ही शिवलिङ्ग है, तब तो फिर सर्वत्र शिवलिङ्गकी पूजा पायी जाय, यह ठीक ही है। अतः यह कहना कि शिवलिङ्गकी पूजा पहले केवल अनार्य ही करते थे और यह उनकी ही देन है सर्वथा निराधार है। क्योंकि न तो पहले कोई अनार्य थे और न आर्य ही बाहरसे आये। सृष्टि तो ब्रह्मा, कश्यप, इन्द्र आदि देवताओं और मनु आदि प्रजापतियोंसे हुई जो कि सभी शिवके उपासक एवं आर्य ही थे तथा सभी वेद-पुराण आदिमें भी शिवलिङ्गकी ही महिमा निरूपित है, तो फिर विदेशियोंके अटकलपच्चू इतिहासकी कल्पना भला कौन मान सकता है।

दूसरी दृष्टिसे कूटस्थ स्थाणु परब्रह्म ही शिव है। श्रीपार्वती शक्ति अपर्णा लताके संसर्गसे यह पुराण स्थाणु कैवल्यपदवी देता है जो कि कल्पवृक्षोंके लिये देना भी अशक्य है। स्थाणु (ठूँठ) लिङ्गरूपमें व्यक्त शिव है, अपर्णा जलहरी है। शिवलिङ्गका कुछ अंश जलहरीसे ग्रस्त है, यही योनिग्रस्त लिङ्ग है, प्रकृतिसंसृष्ट पुरुषोत्तम है—

पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गं च चिन्मयम्।

ऊपर महान् अंश योनिबहिर्भूत प्रकृतिसे असंसृष्ट है—

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'

प्रकृतिविशिष्ट परम ब्रह्म ही सर्वकर्ता, सर्वफलदाता है, केवल तो उदासीन है। शुद्ध शिवतत्त्व त्रिगुणातीत है, त्रिमूर्त्यन्तर्गत शिव परम बीज, तमोगुणके नियामक हैं। सत्त्वके नियमनकी अपेक्षा भी तमका नियमन बहुत कठिन है। सर्वसंहारक तम है, पर उसको भी वशमें रखनेवाले शिवकी विशेषता स्पष्ट ही है।

एक दृष्टिसे सभी चिह्न 'लिङ्ग' शब्दसे ही वाच्य हैं। चिह्नशून्य निर्गुण, निराकार, निर्विकार ब्रह्म अलिङ्ग है। श्रुतियाँ उसे अशब्द, अस्पर्श, अरूप बतलाती हैं। परंतु, लिङ्गका अधिष्ठान मूल वही है। अव्यक्त तत्त्व लिङ्ग है। मायाद्वारा एक ही परब्रह्म परमात्मासे ब्रह्माण्डरूप लिङ्गका प्रादुर्भाव होता है। चौबीस प्रकृति-विकृति, पचीसवाँ पुरुष, छब्बीसवाँ ईश्वर यह सब कुछ लिङ्ग ही है। उसीसे ब्रह्म, विष्णु, रुद्रका आविर्भाव होता है। प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे त्रिकोण योनि बनती है। प्रकृतिमें स्थित निर्विकारबोधरूप शिवतत्त्व ही लिङ्ग है। इसीको विश्वतैजस-प्राज्ञ, विराट्-हिरण्यगर्भ—वैश्वानर, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, ऋक्-साम-यजु, परा-पश्यन्ती-मध्यमा आदि विकृतियाँ हैं जो त्रिकोणपीठोंमें तुरीय, प्रणव, परा वाक्स्वरूप लिङ्गरूपमें संनिहित हैं।

'अ, उ, म्' इस प्रणवात्मक त्रिकोणमें अर्धमात्रास्वरूप लिङ्ग है। परमेश्वर समष्टि-व्यष्टि लिङ्गरूपसे प्रत्येक योनिमें प्रतिष्ठित होकर पञ्चकोशात्मक देहोंको उत्पन्न करता है—

अधितिष्ठति योनिं यो योनिं वाचैक ईश्वरः।
देहं पञ्चविधं येन तमीशानं पुरातनम्॥

(लिङ्गपु० २।१८।३९)

वेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, पुराण, तन्त्र सर्वत्र ही शिवकी महिमा गायी गयी है। राम, कृष्ण, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवाधिदेवोंने भी शिवलिङ्गार्चासे सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। भगवान् शंकरने जितेन्द्रिय होनेके कारण कामको ही जला दिया। अतः सबके लिये जितेन्द्रिय होना आवश्यक है। यह भी शिवलिङ्गपूजाका एक उत्कृष्ट शिक्षात्मक दृष्टिकोण है।

किसी अवसरमें दृग् और दृश्य दोनों एक ही रूप होते हैं—

'आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम्।'

(श्रीमद्भागवत ११।२४।२)

सृष्टिसे पहले ज्ञान और अर्थ (दृश्य) एकमेव हो रहे थे। दृश्यशक्तिके उद्भव बिना सर्वसंद्रष्टा चिदात्मा भी अपनेको असत् ही मानने लगता है—

'मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक्।'

(श्रीमद्भा० ३।५।२४)

वह अन्तर्मुख विमर्शरूप सुप्त शक्ति ही 'माया' पदसे कही जाती है—

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः॥

निरधिष्ठान शक्ति नहीं और अशक्त अधिष्ठान नहीं, अतः उभयस्वरूप ही है। इसीलिये शिव ही शक्ति और शक्ति ही शिव, इस दृष्टिसे योनि लिङ्गात्मक एवं लिङ्ग योन्यात्मक है। फिर भी इस द्वैतमें अद्वैत तत्त्व अनुस्यूत है। ईश्वर और महाशक्तिकी अधिष्ठानभूत अद्वैतसत्ता भी निरञ्जन, निष्कल-

सत्ताके साथ एकीभूत है। यह सृष्टिका बीज होनेपर भी निःस्पन्द शिवमात्र है। अव्यक्त अवस्था अलिङ्गावस्था भी है। इसे महालिङ्गावस्था भी कहा जा सकता है। अव्यक्तसे तेजोमय, ज्योतिर्मय तत्त्व आविर्भूत होता है। वह स्वयं उत्पन्न होनेसे स्वयम्भू लिङ्ग है। वह अव्यक्त अवस्थाका परिचायक होनेसे लिङ्ग है। परमार्थतः द्वैतशून्य तत्त्व है। योनि त्रिकोण है, केन्द्र या मध्यविन्दु लिङ्ग है—

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके।
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम्॥

(तन्त्रराज)

इस वचनमें इच्छा-ज्ञान क्रियात्मक योनिमें कोटिसूर्य-समप्रभ स्वयम्भू चिज्ज्योतिःस्वरूप शिवलिङ्ग माना गया है। मूलाधार आदि षट्चक्र भी योनि ही है। सर्वत्र यही लिङ्ग भी भिन्न-भिन्न रूपमें विराजमान है। योनिसे अतीत होकर विन्दु अव्यक्त और लिङ्ग अलिङ्ग हो जाता है। कोई गुण, कर्म, द्रव्य बिना योनि-लिङ्गके नहीं बन सकते। याज्ञिकोंके यहाँ भी वेदीकी स्त्री-रूपमें, कुण्डकी योनिरूपमें और अग्निकी रुद्र-लिङ्गरूपमें उपासना होती है।

लिङ्गार्चनतन्त्रमें वर्णन आया है कि एक समय देवी पार्वतीने भगवान् शंकरसे प्रश्न किया कि 'इन्द्रियोंसे रहित देव शून्यरूप है, उसका कोई आकार नहीं है, उस शून्यके पूजनसे क्या फल ?' शिवजीने कहा— 'महेशानि ! शक्तिशून्य शिव शव या प्रेतके ही समान है। उसकी पूजा नहीं बन सकती, किंतु रौद्री शक्तिसहित ही उनकी पूजा होनी चाहिये। वही ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका आद्याशक्ति सार्धत्रिवलया (साढ़े तीन फेरेकी) कुण्डलिनीरूपा है। वह शिवतत्त्वको अपने साढ़े तीन फेरेसे वेष्टित किये हुए है। उसी शक्तिके संयोगसे शिव अनन्त ब्रह्माण्डका उत्पादनादि कार्य करते हैं। वही कुण्डलिनी योनि है, उससे परिवेष्टित शिवलिङ्ग है। यही अपर्णालता-परिवेष्टित स्थाणु भी है, अपर्णा पार्वती योनि है, कूटस्थ ब्रह्म ही स्थाणु, ठूँठ या लिङ्ग है।'

'स्कन्दपुराण'के अनुसार लिङ्गपूजनके बिना महान् अमङ्गल होता है और उसके पूजनसे भुक्ति, मुक्ति सब कुछ मिलती है—

विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः।
महाहानिर्भवेत् तस्य दुर्गतस्य दुरात्मनः॥
एकतः सर्वदानानि व्रतानि विविधानि च।
तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गाराधनमेकतः॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधापन्निवारणम्॥

यद्यपि शिवलिङ्ग और उसकी पूजा अनादिकालसे ही है तथापि उनके आविर्भावका पुराणोंमें वर्णन है—ब्रह्मा, विष्णु दोनों ही 'मैं बड़ा हूँ' ऐसा कहकर परस्पर लड़ रहे थे। उनका विवाद मिटानेके लिये परमज्योतिर्मय लिङ्गका आविर्भाव हुआ। ब्रह्मा भगवान्‌के उस ज्योतिर्मयलिङ्गका पता लगानेके लिये हंसपर आरूढ़ होकर ऊपरकी ओर गये और विष्णु वराहरूप धारण कर नीचे गये। हजारों वर्षतक घोर परिश्रम करनेपर भी दोनोंको उसका कहीं आद्यन्त न मिला। शिवलिङ्गके मस्तकसे गिरती हुई केतकीने कहा कि 'मैं दस कल्पसे चलते-चलते यहाँतक पहुँची हूँ, अभी कुछ ठिकाना नहीं कि कितना जाना पड़ेगा।' इससे शिवलिङ्गकी अनन्तता मालूम पड़ती है। दिव्यवाणीसे भगवान् शिवने ब्रह्मा, विष्णु दोनोंको प्रबोध कराया।

अन्यत्र पृथिवीको पीठ और आकाशको लिङ्ग कहा है। जैसे वेदीपर लिङ्ग विराजता है वैसे ही पृथिवीपर आकाश है। जैसे ब्रह्मका एक देश ही प्रकृति-संस्पृष्ट है, वैसे ही आकाशलिङ्गका भी एक देश ही पृथिवीसंस्पृष्ट है। इसीलिये कहीं लिङ्ग ठीक पुरुषके जननेन्द्रियके समान ही होता है, कहीं ब्रह्माण्डके आकारका, कहीं पिण्डके आकारका। केदारेश्वरकी नित्यसिद्ध स्वयम्भू-मूर्ति कहीं भी लिङ्गके आकारकी नहीं है। वही कारणावस्था या पिण्डावस्थाका चिह्न ही लिङ्ग समझना चाहिये। वस्तुदृष्टिसे फिर भी वह लिङ्ग ही है।

शिव-शक्तिके सहवासमें अवकाश न मिलनेसे शुक्राचार्यने उन्हें शाप दिया कि तुम योनिस्थ लिङ्गके रूपमें पूजित होगे। एक बार शंकर दिगम्बर-वेशसे स्वलिङ्ग अपने हस्तमें लेकर दारुकवनमें गये। उन्हें देखकर ऋषिपत्नियाँ मोहित हो गयीं, यह देखकर ऋषियोंने शंकरको शाप दिया कि तुम्हारे लिङ्गका पतन हो जाय। ऐसा ही हुआ, किंतु लिङ्गके पृथिवीपर गिरते ही वह प्रज्वलित होकर अपने तेजसे लोकोंको भस्म करने लगा। अन्तमें शिवाने उसे योनिमें स्थापित किया और सब ऋषियों और देवताओंने उसकी पूजा की। यहाँ लिङ्ग-योनि

दिव्यप्रकृति और परम पुरुष ही हैं। शिवशक्तिरूप लिङ्ग-योनिको प्राकृत स्त्री-पुरुषके समान चर्मखण्ड मूत्रेन्द्रिय मात्र मान लेना बड़ा अपराध होगा। वहीं यह भी कथा है कि मुनियोंके शापसे गिरा हुआ शिवलिङ्ग अग्निके समान जाज्वल्यमान होकर भूमि, स्वर्ग एवं पातालमें व्याप्त हो गया। फिर सभी लोग बड़े दुःखी हुए। ब्रह्माजीने कहा कि—

'गिरिजाकी प्रार्थना करो, वही योनिरूपसे परमज्योतिर्मय लिङ्गको धारण कर सकती हैं।'

फिर सब देवताओं एवं मुनियोंने जब आराधना की, तब भगवान् और गिरिजा दोनों प्रसन्न हो गये और गिरिजामें शिवकी प्रतिष्ठा हुई। क्या साधारण लिङ्गका गिरकर अग्निमय होकर सर्वलोकोंमें घूमना बन सकता है? और विष्णु, राम, कृष्ण तथा सभी देव, मुनि क्या केवल साधारण लिङ्ग-योनिकी ही पूजा करते थे? यदि यही बात थी तो कृष्णको उपमन्युके यहाँ जाकर दीक्षापूर्वक घोर तपस्या करनेकी क्या आवश्यकता थी?

शिववल्लभा पार्वती बाणरूपा कही गयी है और योनि-रूपाका अर्थ ही बाणरूपा है। 'बाण' शब्द पाँच संख्याका बोधक होता है, पञ्चशर अभिप्रायसे काममें, पञ्चमुखके अभिप्रायसे शिवमें, पञ्चतत्त्वात्मिकाकी दृष्टिसे पार्वतीमें 'बाण' शब्दका प्रयोग होता है। जैसे विद्युत्पुञ्ज पञ्चतत्त्वमें व्याप्त होते हुए भी जल और पर्वतश्रेणीमें अधिकतासे रहता है, वैसे ही पार्वती बाणरूपा हुई अर्थात् पर्वतश्रेणीरूपा हुई और उन्हींमें वह तेजोमय लिङ्ग समा गया। विद्युत्पुञ्ज यदि अपनी योनि पृथिवी या जलमें पड़े, तो स्थिर होता है, अन्यथा वृक्ष, मनुष्य सबको भस्म ही करता है। यही बात शिवजीने कही है—

पार्वतीं च विना नान्या लिङ्गं धारयितुं क्षमा।
तया धृतं च मल्लिङ्गं द्रुतं शान्तिं गमिष्यति॥

अर्थात् पार्वतीके बिना कोई इसे नहीं धारण कर सकता, उनके धारणसे वह शीघ्र ही शान्त हो जायगा।

'सतश्च योनिमसतश्च०।' (यजु०)

'यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येकः।' (श्वेता०)

'यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः।' (श्वेता०)

'तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः।' (यजु०)

—इत्यादि मन्त्रोंमें योनिका अर्थ मूत्रेन्द्रिय ही है, यह कहना अज्ञता ही है। श्रीविष्णु आदि देवाधिदेवोंका भी यह योनिप्रतिष्ठित लिङ्ग प्राकृत वस्तु कथमपि नहीं हो सक यदि विष्णुकर्तृक पूजा आदिको क्षेपक कहें, तब तो स कथाको ही क्षेपक मान सकते हैं।

अव्यक्तका लिङ्ग (व्यक्त ब्रह्माण्ड) भृगु (प्रकृति) आकर्षण-विकर्षण-विशेषके तारतम्यसे द्यावापृथिवीरूपमें टूक हो गया—

वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः।
(गोपथ, पूर्व० २।

शम्भोः पपात भुवि लिङ्गमिदं प्रसिद्धम्
शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य॥

श्रीशंकरने भी विश्वेश्वरलिङ्गकी प्रतिष्ठापना और की है—

ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेणान्येन केन वा।
लिङ्गप्रतिष्ठामुत्सृज्य क्रियते स्वपदस्थितिः॥
किमन्यदिह वक्तव्यं प्रतिष्ठां प्रति कारणम्।
प्रतिष्ठितं शिवेनापि लिङ्गं वैश्वेश्वरं यतः॥

'नारद पाञ्चरात्र' के तीसरे रात्रमें, जो कि वैष्णवो सर्वस्व है, लिखा है कि एक शंकरके सिवा सभी स्त्रैण ब्रह्मा, विष्णु, दक्ष आदिने तपस्यासे कालिका देवीको प्र किया। देवीने कहा—'वर माँगो।' देवोंने कहा कि 'अ दक्ष-कन्या होकर शिवको मोहित करें।' जगदीश्व कहा—'शम्भु तो बालक है।' ब्रह्माने कहा—'शम्भुके सम दूसरा कोई पुरुष हो नहीं सकता।' यह सुनकर दक्षके य देवी सतीरूपसे प्रकट हुईं। देवताओंने विवाह कराय सती-शिवके रमणसे दोनोंका तेज भूमण्डलमें पड़ा, व पाताल, भूतल, स्वर्ग सर्वत्र योनिसहित शिवलिङ्ग हु लिङ्गपूजा देवता, ऋषि, मुनि, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणप सभी करते हैं—

'शाक्तो वा वैष्णवो वापि सौरो वा गाणपोऽथवा।
शिवार्चनविहीनस्य कुतः सिद्धिर्भवेत् प्रिये॥'
(उत्पत्तितन्त्र

यद्यपि शुद्ध दार्शनिक और आध्यात्मिक विवेचनों शिवलिङ्ग अनादि ही है, उसकी पूजा भी अनादि ही है तथा अर्थवादरूपमें अनेक प्रकारसे शिवलिङ्गकी उत्पत्ति औ

पूजाका आरम्भ लिखा गया है। जैसे यद्यपि नित्यसिद्ध ही राम-कृष्णका अवतार माना जाता है, तथापि अवतारसे पहले भी वे पूज्य थे ही,क्योंकि कल्प-कल्पमें उनके अवतार होते रहते हैं, कोई अवतार नया नहीं है। वैसी ही बात शिवलिङ्गके विषयमें भी समझनी चाहिये। नित्य होनेपर भी भिन्न-भिन्न कल्पमें उसके आविर्भावके क्रम भिन्न हैं। समष्टि पूजन-शक्तिसम्पन्न शिवतत्त्व ही समष्टि लिङ्ग है।

लिङ्गरूपसे अतिरिक्त भी भगवान् शिवके गङ्गाधर, चन्द्रशेखर, त्रिलोचन, पञ्चवक्त्र, नीलकण्ठ, कृत्तिवास, व्याघ्रचर्मासन, त्रिशूलधर, वृषभध्वज, मृत्युञ्जय, सद्योजात, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव, ईशान, साम्बसदाशिव आदि अनन्त रूप हैं, जिनका लोकोत्तर सौन्दर्य एवं माधुर्य है

'नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञम्।'
'प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते।'
(माण्डूक्योपनिषद् ४)

'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरम्।'
'तमीशानं वरदं समीड्यम्।'
'मायिनं तु महेश्वरम्।'

इन श्रुतियोंमें परब्रह्म परमात्माको ही हर और मायाको ही प्रकृति या गौरी कहा गया है। सभी जगह संसारमें देह-देही आदिमें आधार-आधेय-भाव देखा जाता है। अनन्त चैतन्य परमात्मा शिव है, वही सृष्ट्युन्मुख होनेपर लिङ्ग ही है। उन्हींका आधार योनि प्रकृति है, शिव लिङ्गरूपमें पिता, प्रकृति योनिरूपमें माता है—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥

अर्धनारीश्वरका भाव ही योनिलिङ्गके रूपमें समादृत होता है। सृष्टिके बीजको देखनेवाले परमलिङ्गरूप श्रीशिव प्रकृतिरूपा नारीयोनिमें आधाराधेयभावसे संयुक्त होकर उससे आच्छादित होकर व्यक्त होते हैं। यही जगन्माता-पिताके आदि-सम्बन्धका द्योतक है। काम-वासनारहित शुद्ध सामरस्य भी पितृऋणसे उऋण होनेका साधन है। शिवपुराणमें लिखा है—विन्दु देवी और नाद शिव है। विन्दुरूपा देवी माता और नादरूप शिव पिता हैं, अतः परमानन्द-लाभार्थ शिवलिङ्गका पूजन परमावश्यक है।

सदाशिवसे उत्पन्न चैतन्यशक्तिद्वारा जायमान चिन्मय आदिपुरुष ही शिवलिङ्ग है। समस्त पीठ अम्बामय है, लिङ्ग चिन्मय है। भगवान् शंकर कहते हैं कि जो संसारके मूल कारण महाचैतन्यको और लोकको लिङ्गात्मक जानकर लिङ्गपूजा करता है, मुझे उससे प्रिय अन्य कोई नर नहीं—

लोकं लिङ्गात्मकं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयते हि माम्।
न मे तस्मात् प्रियतरः प्रियो वा विद्यते क्वचित्॥

लिङ्ग चिह्न है, सर्वस्वरूपकी पूजा कैसे हो, इसलिये लिङ्गकी कल्पना है। आदि एवं अन्तमें जगत् अण्डाकृति ही रहता है। अतएव ब्रह्माण्डकी आकृति ही शिवलिङ्ग है। शिव-शक्तिके सहवाससे ही पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादिकोंकी भी उत्पत्ति होती है। शिव स्वयं अलिङ्ग हैं, उनसे लिङ्गकी उत्पत्ति होती है।

भिन्न-भिन्न कामनाओंसे शिवलिङ्गार्चनके विधान भी पृथक्-पृथक् हैं—यवमय, गोधूममय, सिताखण्डमय, लवणज, हरतालमय, त्रिकटुकमय (शुण्ठी, पिप्पली, मरीचमय) ऐश्वर्य-पुत्रादिकामप्रदायक लिङ्ग है। गव्यघृतमय लिङ्ग बुद्धिवर्द्धक है। पार्थिव लिङ्ग सर्वकामप्रद है तिल-पिष्टमय, तुषज, भस्मोत्थ, गुडमय, गन्धमय, शर्करामय, वंशाङ्कुरज, गोमयज, केशमयज, अस्थिमयज, दधिमय, दुग्धमय, फलमय, धान्यमय, पुष्पमय, धात्रीफलोद्भव, नवनीतमय, दुर्वाकाण्ड-समुद्भव, कर्पूरज,अयस्कान्तमय, वज्रमय, मौक्तिकमय, महानीलमय, महेन्द्रनीलमणिमय, क्षीरसमुद्भव, सूर्यकान्तमणिज, चन्द्रकान्तमणिमय, स्फटिक, शूलाख्यमणिमय, वैदूर्य, सुवर्णमय, राजत, आरकूटमय, काँस्यमय, सीसकमय, अष्टधातुनिर्मित, ताम्रमय, रक्तचन्दनमय, रंगमय (राँगा), त्रिलोकमय, दारुज, कस्तूरिकामय, गोरोचनमय, कुंकुममय, श्वेतागुरुमय, कृष्णागुरुमय, पाषाणमय, लाक्षामय, वालुकामय, पारदमय लिङ्ग भिन्न-भिन्न कामनाओंकी पूर्तिके लिये पूजनीय बतलाये गये हैं। पार्थिव पूजनके लिये ब्राह्मणादि वर्णोंको क्रमसे शुक्ल, पीत, रक्त, कृष्णवर्णकी मृत्तिकासे शिवलिङ्ग बनाना चाहिये। तोलाभर मिट्टीसे अङ्गुष्ठपर्वके परिमाणका लिङ्ग बनाना चाहिये। पूजा भी वैदिक, तान्त्रिक एवं मिश्र-विधि या

नाममन्त्रोंसे करनी चाहिये। किं बहुना, शिवलिङ्गकी विशेषताओं, पूजाओं एवं विधियोंपर शास्त्रोंमें अत्यन्त विस्तृत वर्णन है।

बाण और नार्मद लिङ्गकी परीक्षाके लिये उसे तण्डुलादिसे सात बार तौला जाता है। यदि दूसरी बार तौलनेमें तण्डुल बढ़ जाय, लिङ्ग हलका हो जाय तो वह गृहियोंका पूज्य है। यदि लिङ्ग अधिक ठहरे, तो वह विरक्तोंके पूजने योग्य है और सात बार तौलनेपर भी बढ़े ही, घटे नहीं, तो उसे बाणलिङ्ग, अन्यथा नार्मद लिङ्ग जानना चाहिये।

प्रायः शिवको अनार्य देवता बतलाया जाता है। परंतु वेदोंमें शिवका बहुत प्रधानरूपसे वर्णन है।

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
(श्वेताश्वतर॰ ३।२)

समस्त भुवनोंको अपनी ईशनीशक्तिसे ईशन करते हुए सबमें विराजमान शिव ही अन्तमें सबका संहार करते हैं। बस, वही परमतत्त्व सर्वस्व हैं, उनसे भिन्न दूसरी वस्तु थी ही नहीं।

यदा तमस्तत्र दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः।

जब प्रलयमें रात-दिन, कार्य-कारण कुछ भी नहीं था, तब केवल एक शिव ही थे।

'स्वधया शम्भुः॰।'
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्॥'
'नमो नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय।'
(यजु॰)

यहाँ रुद्रके नील और श्वेत दोनों ही तरहके कण्ठ कहे गये हैं।

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः॥
(तैत्तिरीयारण्यक)

यहाँ भी कृष्ण-पिङ्गल, ऋत-सत्य, ऊर्ध्वरेता विरूपाक्षको नमस्कार किया गया है।

'भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ॥'
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः॥
(ऋ॰ ६।४९।१०)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥
(श्वेता॰ ३।४)

यो अग्नौ रुद्रो योऽप्स्वन्तर्य
ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये॥
(अथर्व॰ ७।९२।१)

अर्थात् अन्य देवोंका कारण, विश्वका एकमात्र स्वामी, अतीन्द्रियार्थज्ञानी और हिरण्यगर्भको उत्पन्न करनेवाला रुद्र हमें शुभ बुद्धि दे। जो अग्निमें, जलमें, ओषधि एवं वनस्पतियोंमें रहता है और जो सबका निर्माता है, उसी तेजस्वी रुद्रको हमारा प्रणाम हो। जो भुवनका पिता है, बड़ा है, प्रेरक और ज्ञानी है, उस अजरकी हम स्तुति करते हैं इत्यादि। जो कहते हैं कि अग्नि ही वेदके रुद्र हैं, उन्हें इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि अग्नि, जल क्या, सभी प्रपञ्चमें रुद्र रहते हैं। जब रुद्रसे भिन्न दूसरा तत्त्व ही नहीं है, तब अग्नि आदि सभी रुद्र हों यह ठीक ही है।

एक ही परमात्माके अग्नि, वायु, मातरिश्वा आदि अनेक नाम होते ही हैं—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'
'अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।'

परंतु, अग्निसे भिन्न रुद्र है ही नहीं, यह कहना संगत नहीं है।

'ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम्॥'
(ऋ॰ २।३३।९)

इस भुवनके स्वामी रुद्रदेवसे उनकी महाशक्ति पृथक् नहीं हो सकती।

'अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया॥'
(ऋ॰ ८।७२।३)

मुमुक्षु उस रुद्र परमात्माको मनुष्यके भीतर बुद्धिद्वारा जानना चाहते हैं। रुद्रसे उत्पन्न सब रुद्र ही हैं।

'स रुद्रः स महादेवः।'
'रुद्रः परमेश्वरः।'

(अथर्व० ११।२।३)

इत्यादि मन्त्रोंमें भी परमात्माको ही रुद्र, महादेव आदि कहा गया है। जो कहते हैं कि शिवसे पृथक् रुद्र हैं, उन्हें वेदोंके ही अन्यान्य मन्त्रोंपर ध्यान देना चाहिये, जिनमें स्पष्टरूपसे परमेश्वरके लिये ही शिव, त्र्यम्बक, महादेव, महेशान, परमेश्वर, ईशान, ईश्वर आदि शब्द आये हैं।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

(ऋक्० ७।५९।१२)

'ये भूतानामधिपतयः कपर्दिनः।'
'असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्।'
'नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः।'

(यजु०)

'तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा
यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं
नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥'

(ऋ० ५।४२।११)

'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।'

(श्वेता० १।१०)

'सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः।'

(श्वेता० ३।११)

'आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं
होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरातनयित्नोरचित्ता-
द्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्।'

(साम—कौथुम १।७।७)

'त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो
दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।'

(ऋ० २।१।६)

—इत्यादि मन्त्रोंमें अग्निको ही रुद्र कहा गया है।

'स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो
बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।'

वैदिकोंके यहाँ शिवपूजाकी सामग्रियोंमें किसी भी तामस पदार्थका प्रयोग नहीं होता। बिल्वपत्र, पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे ही भगवान्‌की पूजा होती है। मद्य-मांसका तो शिवलिङ्गपूजामें कभी कहीं भी उपयोग नहीं होता। अतः शिव तामस देवता हैं यह कहना सर्वथा अनभिज्ञता है। हाँ, त्रिमूर्त्यन्तर्गत शिव कारणावस्थाके नियन्ता माने जाते हैं। कारण या अव्यक्तकी अवस्था अवष्टम्भात्मक होनेसे तमःप्रधाना कही जा सकती है। 'तम आसीत्तमसागूढमग्रे' इस श्रुतिमें तमको ही सबका आदि और कारण कहा गया है। उसीमें वैषम्य होनेसे सत्त्व-रजका उद्भव होता है। तमका नियन्त्रण करना सबापेक्षयापि कठिन है। भगवान् शिव तमके नियन्ता हैं, तमके वश नहीं हैं। शिव भयानक भी हैं, शान्त भी हैं। सर्वसंहारक, कालकाल, महाकालेश्वर महामृत्युञ्जय भगवान्‌में उग्रता उचित ही है। ब्रह्मक्षत्रोपलक्षित समस्त प्रपञ्च जिसका ओदन है, मृत्यु जिसका दाल-शाक है, मृत्युसहित संसारको जो खा जाता है, उसका उग्र होना स्वाभाविक है। शिवसे भिन्न जो भी कुछ है, उन सबके संहारक शिव हैं। इसीलिये विष्णुको उनका स्वरूप ही माना जाता है। अन्यथा भिन्न होनेपर तो उनमें भी संहार्यता आ जायगी। वस्तुतः हरि-हर, शिव-विष्णु सर्वथा एक ही हैं। उनमें अणुभर भी भेद है ही नहीं। 'भीषास्माद्वातः पवते०' भगवान्‌के भयसे ही वायु, अग्नि, सूर्य, मृत्यु अपना काम करते हैं। 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' समुद्यत महावज्रके समान भगवान्‌से सब डरते हैं, तभी भगवान्‌को मन्यु या चण्ड-कोपरूप माना गया है। 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' हे रुद्र! आपके मन्युस्वरूपको मैं वन्दना करता हूँ। वही शक्तिरूपधारिणी होकर चण्डिका कहलाते हैं, फिर भी वह ज्ञानियों और भक्तोंके लिये रसस्वरूप हैं।

'रसो वै सः', 'एष ह्येवानन्दयाति।' (श्रुति)

भगवान् रसस्वरूप हैं, निखिलरसामृतमूर्ति भगवान्‌से ही समस्त विश्वको आनन्द प्राप्त होता है, इसीलिये भगवान्‌की अघोरा, शिवातनु घोरतनुसे पृथक् वर्णित है—

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।

तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥

भगवान्‌की कल्याणमयी, शन्तमा, शिवा, तनू परम-कल्याणमयी है।

'शान्तं शिवम्'

'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥'

इस तरह रुद्राध्यायमें उग्र, श्रेष्ठ और भीमरूप वर्णित हैं।

'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।'

(यजु० १६।४१)

इस मन्त्रमें शिवको शिवस्वरूप, कल्याणदाता, मोक्षदाता कहा गया है।

इस तरह अनादि, अपौरुषेय वेदों एवं तन्मूलक इतिहास, पुराण, तन्त्रोंद्वारा शिवका परमेश्वरत्व, शान्तत्व, सर्वपूज्यत्व सिद्ध होता है और उनकी पूजा भी उसी प्रकार अनादि सिद्ध है। वे विश्वमूर्ति एवं अनन्तमूर्ति हैं, अतः यौगिक, तान्त्रिक, आध्यात्मिक, वैदिक, भावनामयी, पदार्थमयी अनेक सूक्ष्म, स्थूल, मूर्त, अमूर्त, पञ्चमुख, अर्धनारीश्वर और लिङ्ग, वेर आदिके रूपमें तथा अन्य सूर्य, विष्णु आदिके रूपमें वही उपास्य हैं। उनकी यह उपासना समीचीन एवं परम कल्याणमय है। उनका स्मरण, जप, ध्यान, भावना परम मङ्गलमय है। उनकी कृपासे ही उनकी उपासनाका सौभाग्य प्राप्त होता है। लेशमात्र भी स्मृति आगे चलकर मोक्षतक सम्पादन कर देती है—'तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि।'

अर्धनारीश्वर भगवान् सदाशिव

(श्री एरच जे० एस० तारापुरवाला)

भगवान् शिवके अनेक रूपोंमें उनका अर्धनारीश्वर-रूप ही सम्भवतः सर्वोत्तम है। अवश्य ही, पहले-पहल देखनेमें विचित्र एवं अस्वाभाविक-सा नजर आता है, परंतु अधिक ध्यानपूर्वक देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है, मानो इसके अंदर मानव-जातिका एक महान् आदर्श छिपा हुआ है। इलोराके एक गुहा-मन्दिरमें भगवान् शिवके इस अर्धनारीश्वर-रूपकी एक बड़ी भव्य मूर्ति है। उसे देखनेसे यह पता लगता है कि इसके निर्माणकर्ताने उस आध्यात्मिक भावको भलीभाँति हृदयंगम किया था, जो इसके पीछे छिपा हुआ है। मूर्तिके अंदर नर एवं नारी-रूपका अच्छा सम्मिश्रण हुआ है, उसके दोनों अङ्गोंका इस सुन्दरताके साथ मेल हुआ है कि यह देखते ही बनता है। इस मूर्तिके दर्शनमात्रसे मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मेरा मस्तिष्क इस अर्धनारीश्वर-रूपके आध्यात्मिक रहस्यकी खोजमें लग गया।

सत्, चित् और आनन्द—ईश्वरके इन तीन रूपोंमें आनन्दरूप, जिसका दूसरा नाम साम्यावस्था अथवा अक्षुब्ध-भाव है, भगवान् शिवका है। मनुष्य भी ईश्वरसे ही उत्पन्न—उसीका अंश है, अतः उसके अंदर भी ये तीनों रूप विद्यमान हैं। इनमेंसे स्थूल शरीर उसका सदंश है तथा बाह्य चेतना चिदंश है और जब ये दोनों मिलकर परमात्माके स्वरूपकी पूर्ण उपलब्धि कराते हैं, तब जाकर उसके आनन्दांशकी अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार मनुष्यके अंदर भी सत् और चित्‌के पूर्ण अविसंवादसे आनन्दकी उत्पत्ति होती है।

एक दूसरी ही दृष्टिसे विचार करनेपर यह समझमें आता है कि ईश्वरका सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनन्दरूप वह स्वरूप है जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनोंका पूर्णरूपेण सामञ्जस्य हो जाता है अथवा यों कहिये कि शिव और शक्ति दोनों मिलकर अर्धनारीश्वर-रूपमें हमारे सामने आते हैं। उसीमें हमें सत् और चित्—इन दो रूपोंके साथ-साथ उनके तीसरे आनन्दरूपके भी दर्शन होते हैं। बाइबलके सर्गसम्बन्धी अध्याय (Genesis) में लिखा है कि 'ईश्वरने मनुष्यके रूपमें अपनी ही प्रतिकृति बनायी, उन्होंने उसकी पुरुष और स्त्रीके रूपमें सृष्टि की।' (God created man in his own image, male and female created He them.) स्त्री और पुरुष दोनों ही ईश्वरकी प्रतिकृति हैं, स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परंतु 'आनन्द' के दर्शन तब होते हैं, जब ये दोनों पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि इस पूर्ण एकताका स्वरूप क्या

है ? साधारणतया लोग शिवको 'योगीश्वर' कहते हैं, परंतु वास्तवमें वे गृहस्थोंके ईश्वर हैं, विवाहित दम्पतीके उपास्य देवता हैं। विवाहित स्त्रियाँ जो उन्हें पूजती हैं, इसमें अवश्य ही कुछ तत्त्व है। बात यह है कि शिवजी स्त्री और पुरुषकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण वे उन्हे पूजती हैं। हमें किसी भी वस्तुको, उसके गुण-दोषका विचार करते हुए उसके यथार्थ स्वरूपमें देखना चाहिये और उसी रूपमें उसके महत्त्वको समझना चाहिये। हमें परस्परविरोधी द्वन्द्वोंकी विषमताको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। क्योंकि यही तो वास्तविक योग है। कहा भी है—'समत्वं योग उच्यते' अर्थात् समताका नाम ही 'योग' है। स्थूल जगत्की सारी विषमताओंसे घिरे रहनेपर भी अपनी चित्तवृत्तिको शान्त एवं स्थिर बनाये रखना ही योगका स्वरूप है। भगवान् शिव अपने पारिवारिक सम्बन्धोंसे हमें इसी योगकी शिक्षा देते हैं। देखिये न, बाह्यदृष्टिसे आपका परिवार विषमताका जीता-जागता नमूना है। सबके जुदे-जुदे रास्ते हैं। किसीका किसीके साथ मेल नहीं। आप बैलपर चढ़ते हैं तो भगवती भवानी सिंहवाहिनी हैं, दोनोंका कैसा जोड़ मिला है? आप भुजङ्गभूषण हैं तो श्रीस्वामिकार्तिकेयको मोरकी सवारी पसंद है और उधर लम्बोदर गणेशजी महाराजको चूहेपर चढ़नेमें ही सुभीता सूझता है। आपने गङ्गाजीको सिरपर चढ़ा रखा है जिससे पार्वतीजीको दिन-रात सौतियाडाह हुआ करता होगा। इस प्रकार आपकी गृहस्थी क्या है, मानो झंझटकी पिटारी है, मानसिक शान्ति और पारिवारिक सुखके लिये कैसा सुन्दर साज जुटा है? परंतु भगवान् शिव तो प्रेम और शान्तिके अथाह समुद्र एवं सच्चे योगी ठहरे। उनके मङ्गलमय शासनमें सभी प्राणी अपना स्वाभाविक वैर-भाव भुलाकर आपसमें तथा संसारके अन्य सब जीवोंके साथ पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वयं उनका तो किसीके साथ द्वेष है नहीं, वे तो आनन्दरूप ही हैं, जो कोई उनके सम्पर्कमें आता है, वह भी आनन्दरूप बन जाता है। उनके चारों ओर आनन्दके ही परमाणु फैले रहते हैं। यही महेशका सबसे महान् गुण है और इसीलिये आप 'शिव' (कल्याणरूप) एवं 'शंकर' (आनन्ददाता) कहलाते हैं। सारे विरोधोंका सामञ्जस्य कर उस शान्तिकी उपलब्धि करनी चाहिये, जो बुद्धिसे परेकी वस्तु है, यही अमूल्य शिक्षा हमें शिवजीके चरित्रसे मिलती है।

हम क्षुद्र जीवोंको गृहस्थाश्रममें रहकर ही भगवान् शिवकी इस शिक्षाको अमलमें लाना चाहिये। हममेंसे प्रत्येकको चाहिये कि वह पार्वती-जैसी योग्य पत्नीका वरण कर स्वामिकार्तिकेय और गणेशजी-जैसी विरुद्ध स्वभाववाली संततिका प्रेमपूर्वक लालन-पालन करे। अपनी धर्मपत्नीके साथ पूर्ण एकात्मताका अनुभव कर, उसकी आत्मामें आत्मा मिलाकर ही मनुष्य आनन्दरूप शिवकी उपलब्धि कर सकता है। वास्तविक योगका स्वरूप यही है, जिसकी सिद्धि संसारमें रहकर ही हो सकती है। यह बिलकुल सीधी-सी बात है कि किसी जंगलमें अथवा हिमालयकी चोटीपर रहकर कोई भी समताका व्यवहार कर सकता है, परंतु अपने दैनिक जीवनमें, नाना प्रकारकी झंझटोंका सामना करते हुए भी जो अक्षुब्ध रह सकता है, वही शिवका सच्चा भक्त है।

यही सच्ची समता, जो सत् और चित्के पूर्ण संयोगसे उत्पन्न होती है, अर्धनारीश्वरके विग्रहमें अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष प्रकृतिके संयोगद्वारा माया (द्वन्द्वमय जगत्) के आवरणको भेदकर आनन्दरूप पूर्णताको प्राप्त कर लेता है। तब सारे विरोध मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जाता है जहाँ न पुरुष है, न प्रकृति, न स्त्री है, न पुरुष—केवल एक अद्वितीय वस्तु—'एकमेवाद्वितीयम्' ही शेष रह जाता है। वही अनन्त आनन्दकी मूर्ति अर्धनारीश्वर शिव हैं।

अलबेला शिव

माथेमें त्रिपुण्ड विधु बालहू बिराजै 'प्रेम',
जटनके बीच गंगधारको झमेला है।
सींगी कर राजै एक करमें त्रिसूल धारे,
गरे मुंडमाल घाले काँधे नाग-सेला है॥

कटि बाघछाला बाँधे भसम रमाये तन,
बाम अंग गौरी देवी चढ़नको बैला है।
धेला है न पल्ले, खरचीला है अजूबी भाँति,
ऐसा गिरिमेला देव संभु अलबेला है॥

नटराज शिव

(डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी, विद्याविभूषण, साहित्यमार्तण्ड)

भगवान् शिवके अनेक रूपोंमें उनका नर्तकरूप भी प्रसिद्ध है। ताण्डव नृत्यके साथ शिवका अभिन्न सम्बन्ध है। दक्षिण भारतमें शिवके नटराज या नटेशरूपका प्रचार प्रचुरतासे हुआ है। यहाँतक कि अपस्मार पुरुषकी पीठपर ताण्डव नृत्य करनेवाले प्रलयंकर महानट शिवकी कांस्य-प्रतिमा दक्षिण भारतके कला-जगत्‌का बहुमान्य सांस्कृतिक प्रतीक बन गयी है। उत्तर भारतमें शिवकी नर्तकप्रतिमाएँ कम संख्यामें मिलती हैं, किंतु उनका प्रारम्भ गुप्तकालसे हुआ है।

गुप्तकालमें शिवकी ध्यान-मूर्तियोंमें 'महानट' का उल्लेख मिलता है। वीणा लिये हुए शिवको 'वीणादक्षिणामूर्ति' के नामसे पहचाना जाता है। उत्तर भारतमें शिवकी इस ध्यानमूर्तिके तीन अन्य रूप भी मिलते हैं। एकमें वीणापाणि शिव वृष और पार्वतीके साथ खड़े दिखायी पड़ते हैं। दूसरीमें हाथमें वीणा लिये नृत्य करते हुए शिवके दर्शन होते हैं और तीसरीमें वीणा लिये हुए मातृकापट्टपर स्थित दृष्टिगोचर होते हैं।

'नटराज' भगवान् शिवका ही एक विशिष्ट रूप है। शिवने ही नृत्य-नाट्यकलाका प्रवर्तन किया, ऐसी पारम्परिक अवधारणा है। निश्चित घटना या विषयकी अभिव्यक्तिके लिये जो अङ्ग-संचालन किया जाता है, उसे 'नाट्य' या 'नटन' कहते हैं। 'नटन' करनेवाला ही नट है। शिव आदि नट हैं और उनकी नाट्यमहिमाके प्रति श्रद्धा प्रदर्शनके लिये उन्हें 'नटराज' कहा जाता है। नटराज उनका विरुद है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही नटराजकी नृत्यशाला है। उनका नृत्य जब प्रारम्भ होता है, तब उनके नृत्य-झंकारसे समग्र विश्व-व्यापार मुखर और गतिशील हो उठता है और जब नृत्य-विराम होता है, तब समस्त चराचर जगत् शान्त और आत्मानन्दमें निमग्न हो जाता है। नटराजके नृत्यमें ही ईश्वरका सारा कार्यकलाप प्रतिरूपित है। नटराजका नृत्य ही सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पाँच ईश्वरीय क्रियाओंका द्योतक है।

वैयाकरणोंकी अवधारणा है कि पाणिनिप्रोक्त व्याकरणके प्रसिद्ध मूल चौदह सूत्र 'नृत्त'की समाप्तिमें नटराजद्वारा चौदह बार किये गये डमरू-निनादसे ही उत्पन्न हुए हैं।

नटराजद्वारा प्रवर्तित नृत्यके अनेक प्रकार हैं, जिनमें ताण्डव सर्वप्रमुख है। कहते हैं—शिवने त्रिपुरदाहके बाद उल्लास-नर्तन किया था और इसका अनुकरण उनके शिष्य 'तण्ड' या 'तण्डु' मुनिने किया। यही उल्लास-नर्तन ताण्डवका मूल है। तण्डु मुनिद्वारा प्रचारित यह नृत्य 'ताण्डव' नामसे लोकप्रचलित हुआ। परंतु मूलतः इस नृत्यकी संज्ञा 'शिवताण्डव' है। क्योंकि शिव इसके आदिप्रवर्तक और तण्डु इसके प्रथम प्रचारक थे।

उल्लास-नर्तनमें रस और भाव नहीं थे। भगवान् शिव इस ताण्डवसे अतिशय उन्मत्त हो उठे थे। वह भूल ही गये थे कि त्रिपुर-वधका मुख्य उद्देश्य जगत्‌की रक्षा था। 'शिवमहिम्नःस्तोत्र'में आचार्य पुष्पदन्तने कहा है—'जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।' उल्लासके अतिरेकमें उनके उत्ताल नर्तनसे नभोमण्डल विक्षुब्ध हो गया था, दिशाएँ चटपटा उठी थीं, धरित्री धसकने लगी थी, परंतु शिव निर्बाध नाचते ही गये—निर्बाध। उन्हें संयत करना आवश्यक समझ भगवती पार्वतीने लास्य नृत्य किया। इस नृत्यका प्रयोजन सोद्देश्य था। ताण्डव रस-भावसे विवर्जित था और लास्य रस-भावसे समन्वित। इसी ताण्डव एवं लास्यके सामञ्जस्यसे सृष्टि-प्रपञ्चका विस्तार हुआ है।

शैवागममें ताण्डव नृत्यके सात प्रकारोंका उल्लेख है। जैसे—आनन्दताण्डव या ललितताण्डव, संध्याताण्डव, कालिकाताण्डव, त्रिपुरताण्डव, गौरीताण्डव और संहारताण्डव तथा उमाताण्डव। आगमोंमें उल्लेख है कि नटराज शिवद्वारा प्रस्तूयमान संध्याताण्डवके समय ब्रह्मा ताल देते हैं, सरस्वती वीणा बजाती हैं, इन्द्र बाँसुरी और विष्णु मृदङ्ग बजाते हैं, लक्ष्मी गान करती हैं और सभी देवता नृत्य देखते हैं। शिव और शिवाका सम्पृक्त होकर सक्रिय होना ही नटराजका नर्तन है। इस नृत्यमें मृदङ्ग, भेरी, पटह, भाण्ड, डिंडिम, पणव, दर्दुर, गोमुख आदि आनद्ध वाद्योंका प्रयोग हुआ था।

दक्षिण भारतके चिदम्बरम्-मन्दिरमें जगद्विदित नटराजकी मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिनका नृत्य पवित्रतम माना जाता है। नटराज शिवने प्रथम बार पृथिवीपर चिदम्बरम्-मन्दिरमें ही संध्या-समय ताण्डव-नृत्य प्रस्तुत किया था, ऐसी पारम्परिक

मान्यता है। किंतु ज्ञातव्य है कि नटराज-मूर्तिने नादप्रधान नादान्त नृत्य केवल चिदम्बरम्में ही नहीं, अपितु दक्षिण भारतके अनेक स्थानोमें किया था। महाकवि कालिदासने भी 'मेघदूत' के पूर्वमेघमें उज्जयिनीके महाकाल शिवके वर्णन-प्रसंगमें उनके द्वारा सांध्य-नृत्य करनेका उल्लेख किया है—

कुर्वन् संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम्।
नृत्यारम्भे हरपशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छाम्।

(३४, ३६)

प्रसिद्धि है कि त्रैलोक्यजननी गौरीको रत्नखचित सिंहासनपर बैठाकर उनके समक्ष नटराज शिव प्रतिदिन संध्या-समय नृत्य करते हैं।

चतुर्मुख नटराज जब नृत्य-भूमिपर उतरते हैं, तब वह अपना बायाँ पैर अतिभंग-मुद्रामे उठा लेते हैं और अपने जटाभारको बाँध लेते हैं। पुन· अपने अङ्गोंको विभिन्न रत्नोंसे अलंकृत करते हैं। कुछ जो खुली जटाएँ होती हैं, वे हवामें फहराती रहती हैं। बद्ध केश, कपाल, सर्प, गङ्गा, चन्द्रमा और रत्नमाला—सब मिलकर विचित्र शोभा बिखेरते रहते हैं। बायें कानमें वह पुरुष-कर्णाभूषण और दायें कानमें स्त्री-कर्णाभूषण पहनते हैं। गलेमें हार और यज्ञोपवीत सुशोभित रहते हैं। कमरमें रत्नखचित मेखला और अंगुलिमें मुद्रिका रहती है। अङ्गवस्त्र लहराता रहता है। ललितताण्डवके समय नटराजके प्रथम दायें हाथमें डमरू रहता है और अन्य ताण्डवके समय दूसरा दायाँ हाथ अभयमुद्रामे। प्रथम बायें हाथमें अग्नि रहती है और दूसरा बायाँ हाथ संकेतमुद्रामें तथा झुका हुआ रहता है। उनका दायाँ पैर पेटके बल लेटे 'अपस्मार' नामक वामनपुरुषकी पीठपर रहता है। वामनपुरुष पद्मपीठपर अवस्थित रहता है और उसके हाथमें कृष्णसर्प रहता है। पद्मपीठका आकार लम्ब-वर्तुल होता है, जिससे मण्डलाकार ज्वालाङ्कुर फूटता रहता है और मण्डलको शिवका दूसरा दायाँ और बायाँ हाथ स्पर्श करते रहते हैं। इस प्रकार वर्णित नटराजके अङ्ग और आयुध आदि सभी उपकरण प्रतीकात्मक माने गये हैं। नटराजके इस रूपसे मूर्ति, शिल्प, नृत्य, नाट्य, साहित्य आदि समग्र स्थापत्य और ललित कलाएँ अनुप्राणित हैं।

शिवपुराणमें उल्लेख है कि नटराज या महानर्तक शिव नृत्यकलाके प्रवर्तक थे—सुर-तालके महान् ज्ञाता थे। शिवको कहीं-कहीं 'महाभिषक्' भी कहा गया है। 'शिव' संज्ञा ही नटराजके मङ्गलमय सहज जीवन-दर्शनकी ओर संकेत करती है। नटराज शिवका उद्धत नृत्य ताण्डव और पार्वतीका कोमल नृत्य लास्य सृष्टिके आवर्तन और प्रवर्तनके द्वन्द्वका समाहार है। नृत्यमें स्वयं विरोधोंका संतुलन और समञ्जन है। सामाजिक स्तरपर यही संतुलन परिवारके पवित्र बन्धनमें आबद्ध पति-पत्नीका नृत्य है और अन्ततोगत्वा उच्चतम नृत्य भी वही है, जहाँ नृत्य भी अनृत्य हो जाता है और नर्तक नृत्यमय। इसी संदर्भमें नटराज स्वयं नृत्यमय हैं।

नटराजका ताण्डव केवल प्रलय या संहारका ही नृत्य नहीं है, अपितु सृष्टि और संहारके संतुलनके निमित्त निरन्तर चलनेवाला महानृत्य है। प्रलयनृत्य तो वह तभी होता है, जब शिव क्रुद्ध होते हैं। औढरदानी शिव कभी अप्रसन्न नहीं होते, किंतु मानव जब प्रकृति या धर्मके विरुद्ध आचरण करता है, तभी वे क्रुद्ध होते हैं। उनके डमरू-स्वरसे जीवमें आत्माका प्रवेश होता है और उनके पैरोंकी थापसे यह धरती अन्न-जल और फूल-फलकी उत्पत्तिका कारण बनती है। नटराज शिवका नृत्य रुक जाय तो समस्त सृष्टि ही विलीन हो जाय।

मूलतः 'ताण्डव' शब्द नृत्यका ही एक पर्याय है, किंतु महानटराज शिवके महानृत्यके साथ सम्बद्ध हो जानेसे अपनी स्वतन्त्र आख्याके साथ यह 'सृष्टि-विवर्तक शिवनृत्य' के रूपमें विश्वव्यापक हो गया है।

शङ्खेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्कप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरम्॥

शङ्ख और चन्द्रमाकी-सी कान्तिके अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, व्याघ्रचर्मके वस्त्रवाले, कालके समान (अथवा काले रंगके) भयानक सर्पोंका भूषण धारण करनेवाले, गङ्गा और चन्द्रमाके प्रेमी, काशीपति, कलियुगके पापसमूहका नाश करनेवाले, कल्याणके कल्पवृक्ष, गुणोंके निधान और कामदेवको भस्म करनेवाले पार्वतीपति वन्दनीय श्रीशंकरजीको मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान् भूतनाथ और भारत

(पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')

यह कैसे कहा जा सकता है कि भारतके आधारसे ही भगवान् भूतनाथकी कल्पना हुई है? वे असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति और समस्त सृष्टिके अधीश्वर हैं, उनके रोम-रोममें भारत-जैसे करोड़ों प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिये यदि कहा जा सकता है तो यही कहा जा सकता है कि उस विश्व-मूर्तिकी एक लघुतम मूर्ति भारतवर्ष भी है। वह हमारा पवित्र और पूज्यतम देश है। जब उसमें हम भगवान् भूतनाथका साम्य अधिकतर पाते हैं, तो हृदय परमानन्दसे उत्फुल्ल हो जाता है।

'भूत' शब्दका अर्थ है पञ्चभूत अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। उसका दूसरा अर्थ है प्राणिसमूह अथवा समस्त सजीव-सृष्टि, जैसा कि निम्नलिखित वाक्योंसे प्रकट होता है—

सर्वभूतहिते रतः।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।

भूत शब्दका तीसरा अर्थ है—योनिविशेष, जिसकी सत्ता मनुष्य-जातिसे भिन्न है और जिसकी गणना प्रेत एवं वेतालादि जीवोंकी कोटिमें होती है। जब भगवान् शिवको हम भूतनाथ कहते हैं तो उसका अर्थ यह होता है कि वे पञ्चभूतसे लेकर चींटीपर्यन्त समस्त जीवोंके स्वामी हैं। भारत भी इसी अर्थमें भूतनाथ है। चाहे उसके स्वामित्वकी व्यापकता उतनी न हो, बहुत ही थोड़ी—समुद्रके बिन्दु-बराबर हो, तो भी वह भूतनाथ है। क्योंकि पञ्चभूतके अनेक अंशों और प्राणिसमूहके एक बहुत बड़े विभागपर उसका भी अधिकार है। यदि वे शशिशेखर हैं, तो भारत भी शशिशेखर है। उनके ललाट-देशमें मयङ्क विराजमान है, तो उसके ऊर्ध्वभागमें। यदि वे सूर्यशशाङ्कवह्निनयन हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। क्योंकि उसके जीवमात्रके नयनोंका साधन दिनमें सूर्य और रात्रिमें शशाङ्क एवं अग्नि (अर्थात् अग्निप्रसूत समस्त आलोक) हैं। यदि भगवान् शिवके सिरपर पुण्यसलिला भगवती भागीरथी विराजमान हैं, तो भारतका शिरोदेश भी उन्हींकी पवित्र धारासे प्लावित है। यदि वे विभूति-भूषण हैं—उनके कुन्देन्दु-गौर शरीरपर विभूति अर्थात् भभूत विलसित है, जो सांसारिक सर्वविभूतियोंकी जननी है, तो भारत भी विभूति-भूषण है—उसके अङ्कमें नाना प्रकारके रत्न ही नहीं विराजमान हैं, वह उन समस्त विभूतियोंका भी जनक है, जिससे उसकी भूमि स्वर्णप्रसविनी कही जाती है। यदि वे मुकुन्दप्रिय हैं, तो भारत भी मुकुन्दप्रिय है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे बार-बार अवतार धारण करके उसका भार निवारण न करते और न उसके भक्ति-भाजन बनते। उनके अङ्गोंमें निवासकर यदि सर्प-जैसा वक्रगति भयंकर जन्तु भी सरल गति बनता और विष वमन करना भूल जाता है, तो उसके अङ्कमें निवास करके अनेक वक्रगति-प्राणियोंकी भी यही अवस्था हुई और होती है। भारतकी अङ्गभूत आर्यधर्मावलम्बिनी अनेक विदेशी जातियाँ इसका प्रमाण हैं। यदि भगवान् शिव भुजङ्गभूषण हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। अष्टकुलसम्भूत समस्त नाग इसके उदाहरण हैं। यदि वे वृषभवाहन हैं, तो भारतको भी ऐसा होनेका गौरव प्राप्त है। क्योंकि वह कृषिप्रधान देश है और उसका समस्त कृषि-कर्म वृषभपर ही अवलम्बित है।

भगवान् भूतनाथकी सहकारिणी अथवा सहधर्मिणी शक्तिका नाम उमा है। उमा क्या है—'ह्रीः श्रीः कीर्तिर्द्युतिः पुष्टिरुमा लक्ष्मीः सरस्वती।' उमा श्री है, कीर्ति है, द्युति है, पुष्टि है और सरस्वती एवं लक्ष्मीस्वरूपा है। उमा वह दिव्य ज्योति है जिसकी कामना प्रत्येक तमनिपतित जिज्ञासु करता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' वेदवाक्य है। भारत भी ऐसी ही शक्तिसे शक्तिमान् है। जिस समय सभ्यताका विकास भी नहीं हुआ था, अज्ञानका अन्धकार चारों ओर छाया हुआ था, उस समय भारतकी शक्तिसे ही धरातल शक्तिमान् हुआ। उसीकी श्रीसे श्रीमान् एवं उसीके प्रकाशसे प्रकाशमान बना। उसीने उसको पुष्टि दी, उसीकी लक्ष्मीसे वह धन-धान्य-सम्पन्न हुआ और उसीकी सरस्वती उसके अन्ध नेत्रोंके लिये ज्ञानाञ्जन-शलाका हुई। चारों वेद भारतवर्षकी ही विभूति हैं। सबसे पहले उन्होंने ही यह महामन्त्र उच्चारण किया—

'सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।' 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' इत्यादि।

प्रयोजन यह कि जितने सार्वभौम सिद्धान्त है, उन सबकी जननी वेदप्रसवकारिणी शक्ति ही है। यह सच है कि ईश्वरीय ज्ञान वृक्षोंके एक-एक पत्तेपर लिखा हुआ है। दृष्टिमान् प्राणीके लिये उसकी विभूति संसारके प्रत्येक पदार्थमें उपलब्ध होती है। किंतु ईश्वरीय ज्ञानके आविष्कारकोंका भी कोई स्थान है। वेद-मन्त्रोंके द्रष्टा उसी स्थानके अधिकारी हैं। धरातलमें सर्वप्रथम सब प्रकारके ज्ञान और विज्ञानके प्रवर्तकका पद उन्हींको प्राप्त है। मनुभगवान् भी यही कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अनेक अंग्रेज विद्वानोंने भी भारत-शक्तिके इस उत्कर्षको स्वीकार किया है और पक्षपातहीन होकर उसकी गुरुताका गुण गाया है। इस विषयके पर्याप्त प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, किंतु व्यर्थ विस्तार अपेक्षित नहीं। सारांश यह कि भारतीय शक्ति वास्तवमें उमा-स्वरूपिणी है। उन्हींके समान वह ज्योतिर्मयी और अलौकिक कीर्तिशालिनी है। उन्हींके समान सिंह-वाहना भी। यदि धरातलमें पाशवशक्तिमें सिंहको प्रधानता है, यदि उसपर अधिकार प्राप्त करके ही उमा सिंह-वाहना है, तो अपनी ज्ञान-गरिमासे धराकी समस्त पाशवशक्तियोंपर विजयिनी होकर भारतीय मेधामयी शक्ति भी सिंह-वाहना है। यदि उमा ज्ञान-गरिष्ठ गणेशजी और दुष्ट-दलन-क्षम, परम पराक्रमी स्वामिकार्तिक-जैसे पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं, तो भारतकी शक्तिने भी ऐसी अनेक संतानें उत्पन्न की हैं जिन्होंने ज्ञान-गरिमा और दुष्ट-दलन-शक्ति—दोनों बातोंमें अलौकिक कीर्ति प्राप्त की है। प्रमाणमें वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास-जैसे महर्षि और भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णचन्द्र-जैसे लोकोत्तर पुरुष उपस्थित किये जा सकते हैं।

भगवान् शंकर और भारतवर्षमें इतना साम्य पाकर कौन ऐसी भारत-संतान है कि जो गौरवित और परमानन्दित न हो? वास्तवमें बात यह है कि भारतीयोंका उपास्य भारतवर्ष वैसा ही है जैसे भगवान् शिव। क्या यह तत्त्व समझकर हमलोग भारतकी यथार्थ सेवा कर अपना उभय लोक बनानेके लिये सचेष्ट न होंगे? विश्वास है कि अवश्य सचेष्ट होंगे। क्योंकि भारतवर्ष एक पवित्र देश ही नहीं है, वह उन ईश्वरीय सर्वविभूतियोंसे भी विभूषित है जो धरातलके किसी अन्य देशको प्राप्त नहीं।

श्रीश्रीमृत्युञ्जय-शिव-तत्त्व

(पूज्यपाद ब्रह्मीभूत भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द स्वामीजीका उपदेश)

मृत्यु तथा अमृतत्वका स्वरूप

जिज्ञासु—मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप क्या है और उनकी उपासना कैसे की जाती है, इस सम्बन्धमें कुछ उपदेश देकर मुझे कृतार्थ कीजिये।

वक्ता—जिन्होंने मृत्युपर जय प्राप्त की है, जिन्होंने अमृतत्वका लाभ किया है, वे मृत्युञ्जय हैं। अतः मृत्युञ्जयका स्वरूप जाननेके लिये पहले मृत्यु क्या है और अमृतत्व किसे कहते हैं यह जानना होगा। शास्त्रोंमें श्रीमृत्युञ्जय महादेवके ध्यानके जो श्लोक मिलते हैं, उनसे तथा वेदोक्त त्र्यम्बक-मन्त्रसे मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप जाना जा सकता है। उनके स्वरूपको पूर्णतया जाननेके लिये श्रीत्र्यम्बकदेवके व्यापक रूपका पता लगाना होगा, त्र्यम्बकके साथ प्रणवका, व्याहृतिका तथा गायत्रीका क्या सम्बन्ध है, यह जानना होगा और विशिष्ट साधनाके द्वारा उसकी उपलब्धि करनी होगी।

जिज्ञासु—तो पहले मृत्यु तथा अमृतत्वके सम्बन्धमें ही कुछ उपदेश दीजिये।

वक्ता—यदि मैं तुमसे पूछूँ कि मृत्यु क्या चीज है, मृत्युसे तुम क्या समझते हो, तो इसका उत्तर तुम क्या दोगे?

जिज्ञासु—मनुष्यकी आयु समाप्त हो जानेपर इस शरीरसे उसके प्राण निकल जाते हैं, तब यह शरीर निश्चेष्ट हो जाता है, इसके अंदर चेतनाका कोई लक्षण नहीं दिखायी देता। उस समय हम कहते हैं कि उसकी मृत्यु हो गयी। स्थूल देहसे लिङ्ग-शरीरका अलग हो जाना ही मृत्यु है। सुना है, मृत्युके उपरान्त जीव नया शरीर धारण करता है।

वक्ता—तुमने जो कुछ कहा वह बिल्कुल यथार्थ है। किंतु मृत्युके तत्त्वको तुमने अबतक भलीभाँति नहीं समझा। इसके लिये पहले यह जान लेना होगा कि प्राण किसे कहते है और शरीरके साथ उसका संयोग और वियोग किस प्रकार

भगवान् भूतनाथ और भारत

(पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')

यह कैसे कहा जा सकता है कि भारतके आधारसे ही भगवान् भूतनाथकी कल्पना हुई है? वे असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति और समस्त सृष्टिके अधीश्वर हैं, उनके रोम-रोममें भारत-जैसे करोड़ों प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिये यदि कहा जा सकता है तो यही कहा जा सकता है कि उस विश्व-मूर्तिकी एक लघुतम मूर्ति भारतवर्ष भी है। वह हमारा पवित्र और पूज्यतम देश है। जब उसमें हम भगवान् भूतनाथका साम्य अधिकतर पाते हैं, तो हृदय परमानन्दसे उत्फुल्ल हो जाता है।

'भूत' शब्दका अर्थ है पञ्चभूत अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। उसका दूसरा अर्थ है प्राणिसमूह अथवा समस्त सजीव-सृष्टि, जैसा कि निम्नलिखित वाक्योंसे प्रकट होता है—

सर्वभूतहिते रतः।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।

भूत शब्दका तीसरा अर्थ है—योनिविशेष, जिसकी सत्ता मनुष्य-जातिसे भिन्न है और जिसकी गणना प्रेत एवं वेतालादि जीवोंकी कोटिमें होती है। जब भगवान् शिवको हम भूतनाथ कहते हैं तो उसका अर्थ यह होता है कि वे पञ्चभूतसे लेकर चींटीपर्यन्त समस्त जीवोंके स्वामी हैं। भारत भी इसी अर्थमें भूतनाथ है। चाहे उसके स्वामित्वकी व्यापकता उतनी न हो, बहुत ही थोड़ी—समुद्रके बिन्दु-बराबर हो, तो भी वह भूतनाथ है। क्योंकि पञ्चभूतके अनेक अंशों और प्राणिसमूहके एक बहुत बड़े विभागपर उसका भी अधिकार है। यदि वे शशिशेखर हैं, तो भारत भी शशिशेखर है। उनके ललाट-देशमें मयङ्क विराजमान है, तो उसके ऊर्ध्वभागमें। यदि वे सूर्यशशाङ्कवह्निनयन हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। क्योंकि उसके जीवमात्रके नयनोंका साधन दिनमें सूर्य और रात्रिमें शशाङ्क एवं अग्नि (अर्थात् अग्निप्रसूत समस्त आलोक) हैं। यदि भगवान् शिवके सिरपर पुण्यसलिला भगवती भागीरथी विराजमान हैं, तो भारतका शिरोदेश भी उन्हींकी पवित्र धारासे प्लावित है। यदि वे विभूति-भूषण हैं—उनके कुन्देन्दु-गौर शरीरपर विभूति अर्थात् भभूत विलसित है, जो सांसारिक सर्वविभूतियोंकी जननी है, तो भारत भी विभूति-भूषण है—उसके अङ्कमें नाना प्रकारके रत्न ही नहीं विराजमान हैं, वह उन समस्त विभूतियोंका भी जनक है, जिससे उसकी भूमि स्वर्णप्रसविनी कही जाती है। यदि वे मुकुन्दप्रिय हैं, तो भारत भी मुकुन्दप्रिय है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे बार-बार अवतार धारण करके उसका भार निवारण न करते और न उसके भक्ति-भाजन बनते। उनके अङ्गोंमें निवासकर यदि सर्प-जैसा वक्रगति भयंकर जन्तु भी सरल गति बनता और विष वमन करना भूल जाता है, तो उसके अङ्कमें निवास करके अनेक वक्रगति-प्राणियोंकी भी यही अवस्था हुई और होती है। भारतकी अङ्गभूत आर्यधर्मावलम्बिनी अनेक विदेशी जातियाँ इसका प्रमाण हैं। यदि भगवान् शिव भुजङ्गभूषण हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। अष्टकुलसम्भूत समस्त नाग इसके उदाहरण हैं। यदि वे वृषभवाहन हैं, तो भारतको भी ऐसा होनेका गौरव प्राप्त है। क्योंकि वह कृषिप्रधान देश है और उसका समस्त कृषि-कर्म वृषभपर ही अवलम्बित है।

भगवान् भूतनाथकी सहकारिणी अथवा सहधर्मिणी शक्तिका नाम उमा है। उमा क्या है—'ह्रीः श्रीः कीर्तिर्द्युतिः पुष्टिरुमा लक्ष्मीः सरस्वती।' उमा श्री है, कीर्ति है, द्युति है, पुष्टि है और सरस्वती एवं लक्ष्मीस्वरूपा है। उमा वह दिव्य ज्योति है जिसकी कामना प्रत्येक तमनिपतित जिज्ञासु करता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' वेदवाक्य है। भारत भी ऐसी ही शक्तिसे शक्तिमान् है। जिस समय सभ्यताका विकास भी नहीं हुआ था, अज्ञानका अन्धकार चारों ओर छाया हुआ था, उस समय भारतकी शक्तिसे ही धरातल शक्तिमान् हुआ। उसीकी श्रीसे श्रीमान् एवं उसीके प्रकाशसे प्रकाशमान बना। उसीने उसको पुष्टि दी, उसीकी लक्ष्मीसे वह धन-धान्य-सम्पन्न हुआ और उसीकी सरस्वती उसके अन्ध नेत्रोंके लिये ज्ञानाञ्जन-शलाका हुई। चारों वेद भारतवर्षकी ही विभूति हैं। सबसे पहले उन्होंने ही यह महामन्त्र उच्चारण किया—

'सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।' 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' इत्यादि।

प्रयोजन यह कि जितने सार्वभौम सिद्धान्त हैं, उन सबकी जननी वेदप्रसवकारिणी शक्ति ही है। यह सच है कि ईश्वरीय ज्ञान वृक्षोंके एक-एक पत्तेपर लिखा हुआ है। दृष्टिमान् प्राणीके लिये उसकी विभूति संसारके प्रत्येक पदार्थमें उपलब्ध होती है। किंतु ईश्वरीय ज्ञानके आविष्कारकोंका भी कोई स्थान है। वेद-मन्त्रोंके द्रष्टा उसी स्थानके अधिकारी हैं। धरातलमें सर्वप्रथम सब प्रकारके ज्ञान और विज्ञानके प्रवर्तकका पद उन्हींको प्राप्त है। मनुभगवान् भी यही कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अनेक अंग्रेज विद्वानोंने भी भारत-शक्तिके इस उत्कर्षको स्वीकार किया है और पक्षपातहीन होकर उसकी गुरुताका गुण गाया है। इस विषयके पर्याप्त प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, किंतु व्यर्थ विस्तार अपेक्षित नहीं। सारांश यह कि भारतीय शक्ति वास्तवमें उमा-स्वरूपिणी है। उन्हींके समान वह ज्योतिर्मयी और अलौकिक कीर्तिशालिनी है। उन्हींके समान सिंह-वाहना भी। यदि धरातलमें पाशवशक्तिमें सिंहको प्रधानता है, यदि उसपर अधिकार प्राप्त करके ही उमा सिंह-वाहना है, तो अपनी ज्ञान-गरिमासे धराकी समस्त पाशवशक्तियोंपर विजयिनी होकर भारतीय मेधामयी शक्ति भी सिंह-वाहना है। यदि उमा ज्ञान-गरिष्ठ गणेशजी और दुष्ट-दलन-क्षम, परम पराक्रमी स्वामिकार्तिक-जैसे पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं, तो भारतकी शक्तिने भी ऐसी अनेक संतानें उत्पन्न की हैं जिन्होंने ज्ञान-गरिमा और दुष्ट-दलन-शक्ति— दोनों बातोंमें अलौकिक कीर्ति प्राप्त की है। प्रमाणमें वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास-जैसे महर्षि और भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णचन्द्र-जैसे लोकोत्तर पुरुष उपस्थित किये जा सकते हैं।

भगवान् शंकर और भारतवर्षमें इतना साम्य पाकर कौन ऐसी भारत-संतान है कि जो गौरवित और परमानन्दित न हो? वास्तवमें बात यह है कि भारतीयोंका उपास्य भारतवर्ष वैसा ही है जैसे भगवान् शिव। क्या यह तत्त्व समझकर हमलोग भारतकी यथार्थ सेवा कर अपना उभय लोक बनानेके लिये सचेष्ट न होंगे? विश्वास है कि अवश्य सचेष्ट होंगे। क्योंकि भारतवर्ष एक पवित्र देश ही नहीं है, वह उन ईश्वरीय सर्वविभूतियोंसे भी विभूषित है जो धरातलके किसी अन्य देशको प्राप्त नहीं।

श्रीश्रीमृत्युञ्जय-शिव-तत्त्व

(पूज्यपाद ब्रह्मीभूत भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द स्वामीजीका उपदेश)

मृत्यु तथा अमृतत्वका स्वरूप

जिज्ञासु—मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप क्या है और उनकी उपासना कैसे की जाती है, इस सम्बन्धमें कुछ उपदेश देकर मुझे कृतार्थ कीजिये।

वक्ता—जिन्होंने मृत्युपर जय प्राप्त की है, जिन्होंने अमृतत्वका लाभ किया है, वे मृत्युञ्जय हैं। अतः मृत्युञ्जयका स्वरूप जाननेके लिये पहले मृत्यु क्या है और अमृतत्व किसे कहते हैं यह जानना होगा। शास्त्रोंमें श्रीमृत्युञ्जय महादेवके ध्यानके जो श्लोक मिलते हैं, उनसे तथा वेदोक्त त्र्यम्बक-मन्त्रसे मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप जाना जा सकता है। उनके स्वरूपको पूर्णतया जाननेके लिये श्रीत्र्यम्बकदेवके व्यापक रूपका पता लगाना होगा, त्र्यम्बकके साथ प्रणवका, व्याहृतिका तथा गायत्रीका क्या सम्बन्ध है, यह जानना होगा और विशिष्ट साधनाके द्वारा उसकी उपलब्धि करनी होगी।

जिज्ञासु—तो पहले मृत्यु तथा अमृतत्वके सम्बन्धमें ही कुछ उपदेश दीजिये।

वक्ता—यदि मैं तुमसे पूछूँ कि मृत्यु क्या चीज है, मृत्युसे तुम क्या समझते हो, तो इसका उत्तर तुम क्या दोगे?

जिज्ञासु—मनुष्यकी आयु समाप्त हो जानेपर इस शरीरसे उसके प्राण निकल जाते हैं, तब यह शरीर निश्चेष्ट हो जाता है, इसके अंदर चेतनाका कोई लक्षण नहीं दिखायी देता। उस समय हम कहते हैं कि उसकी मृत्यु हो गयी। स्थूल देहसे लिङ्ग-शरीरका अलग हो जाना ही मृत्यु है। सुना है, मृत्युके उपरान्त जीव नया शरीर धारण करता है।

वक्ता—तुमने जो कुछ कहा वह बिल्कुल यथार्थ है। किंतु मृत्युके तत्त्वको तुमने अबतक भलीभाँति नहीं समझा। इसके लिये पहले यह जान लेना होगा कि प्राण किसे कहते हैं और शरीरके साथ उसका संयोग और वियोग किस प्रकार

होता है तथा लिङ्ग-शरीरका स्वरूप क्या है? इस सम्बन्धमें अभी कुछ न कहकर मृत्यु क्या है, इस विषयमें संक्षेपसे कुछ कहूँगा। पहले हमें यह देखना चाहिये कि मृत्युके समान कौन-सी वस्तु है जिससे हम भलीभाँति परिचित हैं। क्या निद्रा मृत्युके समान नहीं है? इन दोनोंकी समानतापर विचार करो। जीवात्मा अपने कर्मानुसार ही एक स्थूल शरीरसे संयुक्त होकर फिर उसीसे वियुक्त होता है। मृत्युके बाद जब जीवात्मा दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है, तब साधारणतया उसे अपने पूर्व-जन्मका स्मरण नहीं रहता। हम दिनमें कितने लोगोंसे मिलते हैं, कितने प्रकारके काम करते हैं, किंतु रात्रिमें सो जानेके बाद हम सब कुछ भूल जाते हैं। सवेरा होनेपर जब हम जागते हैं, तब मानो हमारा नया जन्म होता है। तो फिर हमलोग निद्राको मृत्यु क्यों नहीं कहते? बात यह है कि प्रातःकाल शय्यासे उठनेपर हमें याद आती है कि रात्रिमें हम ही इस शय्यापर सोये थे और हमने ही पिछले दिन अमुक-अमुक कार्य किये थे और हमीं अमुक-अमुक लोगोंसे मिले थे। अतः निद्रा और मृत्युमें यह अन्तर है कि निद्राके अन्तमें जागनेपर निद्रासे पहलेकी बातें याद आ जाती हैं, किंतु मृत्युके बाद दूसरा जन्म होनेपर मृत्युसे पहलेके वृत्तान्त साधारणतः याद नहीं रहते।

वर्तमान शरीरको त्यागकर शरीरान्तर ग्रहण करनेपर भी जिन्हें पूर्व-जन्मकी स्मृति बनी रहती है, उनकी मृत्यु मृत्यु नहीं कही जा सकती, क्योंकि उनके ज्ञानकी संतति विच्छिन्न नहीं होती। मुक्त योगियोंकी यह अवस्था होती है। इसीलिये उन्हें 'इच्छामृत्यु', 'अमर' इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं। उन्होंने अमृतत्व लाभ कर लिया है। नये-नये शरीरोंमें प्रवेश करनेपर भी उनका ज्ञान तथा पूर्व-जन्मकी स्मृति लुप्त नहीं होती। वे 'जातिस्मर' कहलाते हैं। ऐसे पुरुष संसारके बन्धनसे मुक्त हो जानेपर भी जीवोंके कल्याणके हेतु एक या अधिक बार शरीर धारण करते हैं, जगत्में आगमन करते हैं। ये लोग मृत्यु तथा प्राणतत्वपर विजय प्राप्त किये रहते हैं, मृत्यु इनकी वशवर्तिनी होकर रहती है*।

एक प्रकारका अमृतत्व और भी है। इसमें योगी सदा एक ही भावमें रहते हैं (इस भावका कभी परिवर्तन नहीं होता) शरीरसे शरीरान्तरमें संचरण नहीं करते। यह नित्य सर्वगत, ज्ञानमय, आनन्दमय भाव है। जिनकी जगत्का कल्याण करनेकी वासना भी नष्ट हो जाती है, वे सदाके लिये इस आनन्दमय अवस्थामें रहते हैं।

मृत्युञ्जय शिवके ध्यान-वाक्यका अर्थ, अमृतत्वका स्वरूप

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

'त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें मृगमुद्रा है, दो हाथोंसे दो कलशोंमें अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तकको आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंसे उन्हीं कलशोंको थामे हुए हैं। शेष दो हाथ उन्होंने अपने अङ्कपर रख छोड़े हैं और उनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान है, मुकुटपर बालचन्द्र सुशोभित है, ललाटपर तीन नेत्र शोभायमान हैं। ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशंकरकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'

अब इस ध्यानके भावको हृदयङ्गम करनेकी चेष्टा करो। शिवजीके अङ्कपर दो हाथ रखे हुए हैं जिनपर दो अमृतपूर्ण कलश हैं। इसका भाव यह है कि ऊपर जो दो प्रकारके अमृतत्वकी बात कही गयी है उन दोनोंके ही श्रीशंकर परम अधिकारी हैं (इस प्रसंगमें पुरुषसूक्तके 'अमृतत्वस्येशानो' इन पदोंकी ओर लक्ष्य करो)। उक्त दोनों प्रकारके अमृतत्व इनके करतलगत है, उपासककी उपासनासे प्रसन्न होकर ये उसे दोनों ही दे सकते हैं। दो हाथोंमें दो अमृतपूर्ण (अमृतसे सदा भरे हुए) कलश धारण किये हुए है, जिसका अर्थ यह है कि उन्हें अमृतका कभी टोटा नहीं रहता और दो कलशोंसे अपने ऊपर अमृत ढाल रहे हैं जिसका अर्थ यह है कि ये सदा अमृतमें सराबोर रहते हैं, स्वयं अमृतरूप ही हैं।

मध्यमें विशुद्ध सत्त्व और दोनों पार्श्वमें रज और तम

---

* इन्हीं लोगोंको लक्ष्य करके वेदने कहा है—

यत्रर्द्धेद यत आयभूव सन्धाश्च यो मन्दधे ब्रह्मणेभ्य। रमते तस्मिन्नुत जीर्णे शयाने नैने जहात्यहम्सु पूर्व्येषु॥ (तैत्तिरीय आरण्यक)

(मध्ये विशुद्धसत्त्वमुभयतो रजस्तमसी) यही ब्रह्म अथवा परमात्माका व्यावहारिक या जागतिक रूप है। जो लोग रज और तमसे निवृत्त होकर मध्यस्थित विशुद्ध सत्त्वको पूर्णरूपसे आश्रय कर सकते हैं, वे ही जगत्के परिवर्तन अथवा मृत्युके राज्यसे त्राण पा सकते हैं। अज्ञानयुक्त (देहादि प्रकृतिके परिवर्तनके साथ मैं भी परिवर्तित हो रहा हूँ, इस प्रकारका ज्ञान ही अज्ञान है) परिवर्तनका नाम ही मृत्यु है और इससे विपरीत ज्ञान (प्रकृतिके परिवर्तनके साथ मेरा परिवर्तन नहीं होता) ही अमृतत्व है। परिवर्तनशील 'मैं' के अंदर एक नित्य स्थिर 'मैं' है जिसका परिवर्तन नहीं होता और जो इन सारे परिवर्तनोंका साक्षी है, उन्हें परिवर्तनरूपसे जानता है (स्थिर पदार्थ ही परिवर्तनको जान सकता है, जो स्वयं परिवर्तनशील है वह परिवर्तनको नहीं जान सकता)।

जिज्ञासु—जलकी धाराके द्वारा इस भावको अभिव्यक्त करनेका क्या प्रयोजन है?

वक्ता—जलके प्रवाहके तत्त्वको अच्छी तरह समझनेकी चेष्टा करो। 'प्रवाह', 'नदी', 'नाडी' आदि शब्द स्पन्दन अथवा गति किंवा क्रियाके वाचक हैं। जिन दो धाराओंके द्वारा शिवजी अपने मस्तकको सदा आप्लावित करते रहते हैं वे गङ्गा और यमुनाके प्रवाहकी इडा और पिङ्गला-नाडियोंकी अथवा तम और रज-शक्तियोंकी वाचक हैं। ये दो शक्तियाँ ही जगत्का जागतिक क्रियामात्रका कारण हैं। ये शक्तियाँ जब साम्यावस्थामें रहती हैं, जब इनके क्रियाफलका पृथक्रूपसे अनुभव नहीं होता, तभी प्रकृति-ज्ञानरूप सरस्वतीका प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, यही सुषुम्णा अथवा विशुद्ध सत्त्व है। त्र्यम्बकदेव इन दो धाराओंको शुद्ध सत्त्वरूप अपने मस्तकपर साम्यावस्थापन्न कर रहे हैं। इस प्रकार वे जागतिक मृत्युके राज्यका अतिक्रमकर एक भावसे अमर होकर विराजमान हैं।*
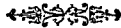
आनन्दवन

(स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज)

शंकराच्छमहं याचे सदाचरणतत्परः।

असत् आचरणमें तत्पर मैं भगवान् शंकरसे कल्याणकी कामना करता हूँ, आशुतोषके बिना मेरा कहीं भी ठिकाना नहीं है, मैं आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त ब्रह्माण्डमें घूम आया, किंतु कहीं भी मेरे खड़े होनेको जगह न मिली। मैंने द्यावाभूमि (जमीन-आसमान) के कोने-कोनेमें स्थित चराचरसे सहायता माँगी, पर किसीने फूटे मुखसे बाततक नहीं की। विष्णुलोकमें मैं घुसने ही नहीं पाया, ब्रह्मलोकमें मुझे पानीतक पीनेको नहीं मिला, 'मातृशक्ति भगवतीने मुझे राक्षसोंसे निपटना है, जा, फुरसत नहीं है'—यह कहकर फटकार दिया। क्षीर-सागरशायीकी शरण गया तो वहाँका समुद्र ही सूख गया, यही नहीं, मेरे ऊपर बार-बार मार भी पड़ी। इसीसे वह स्थान अबतक मारवाड़के (र और डका अभेद माना है) नामसे प्रसिद्ध है।

अनन्तर घूमते-घूमते मैं दैवात् 'आनन्द-कानन' नामक स्थानमें पहुँच गया। वहाँ जाते ही बहुत कालसे दुःखदावानलसे दग्ध शरीरको लोकोत्तर शान्ति प्राप्त हुई। यहाँकी उत्तरवाहिनी देवनदीके पुण्य-पवनसे मेरा रोम-रोम विकसित हो गया। यहाँके वेदघोषने मेरे दोषोंको शोष लिया। यहाँके प्राणिमात्रने कुटुम्बीकी तरह मेरा स्वागत किया। मैं भी उनके बीचमें अपनेको पाकर ऐसा अनुभव करने लगा कि मानो मैं यहींका रहनेवाला इनका आत्मीय जन हूँ।

---

* श्रुति कहती है—सित (शुभ्र अर्थात् गङ्गा) और असित (कृष्ण अर्थात् यमुना) ये दो नदियाँ जहाँपर मिली हैं वहाँपर स्नान करनेवाले लोग स्वर्गलोकमें जाते हैं और जो भाग्यवान् ज्ञानीजन वहाँपर शरीर छोड़ते हैं वे अमृतत्वको प्राप्त होते हैं। यही आध्यात्मिक त्रिवेणी अथवा प्रयागतीर्थ है, इसीका आधिभौतिक रूप बाह्य त्रिवेणी अथवा प्रयाग है—

सितासिते सरिते यत्र संगते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥

उन्हें देखकर मुसकुरा दिया। बस, इतनेहीमें उनका स्वागत हो गया। न अभ्युत्थानकी आवश्यकता, न बोलनेकी जरूरत, न सिर हिलानेहीकी कोशिश। इन्द्रका अहोभाग्य कि उनकी तरफ देखकर थोड़ा मुसकुरा तो दिया। यह क्या कोई सामान्य बात थी! दूसरे देवतालोग आये तो उनकी तरफ सिर्फ नजर फेर दी। बस, इतना ही स्वागतके लिये पर्याप्त हो गया। देवगण कृतार्थ हो गये। अपने घरपर आये हुए देवगणोंका—और सामान्य देवगण नहीं, इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णुके समान आमन्त्रित सज्जनोंका—इस शानके साथ स्वागत करनेवाला भला और भी कोई हो सकता है? इन महामहिम महेश्वरको केवल भोलानाथके नामसे पुकारना कितना भोलापन है?

विचित्र तो यह है कि इन महाराजका एक ओर तो ऐसा ऐश्वर्य व्यक्त होता है और दूसरी ओर एक ऐसा अद्भुत रूप प्रकट होता है कि जिससे हमें बरबस इन्हें 'भोलानाथ' कहना पड़ता है। देखिये—

कैसे महेश्वर हैं तनमें जब छार लपेटिकै बैल सवार हैं।
भक्तनके अघभंकर साथ भयंकर भूत-परेत अपार हैं॥
संकटमें परि जात हैं आप यों औवरदानके हेतु तयार हैं।
भोले सदाशिव क्यों न बनै घर भूलि जिन्है रुचे श्वेत पहार हैं॥

जिन महाशयका ऐसा अद्भुत वेष हो और जिनकी गृह-सामग्री इतनी स्वल्प और तुच्छ हो उनका यह ऐश्वर्य आखिर आया तो कहाँसे आया। इसपर भी कवियोंने अपनी बड़ी-बड़ी कल्पना चलायी है। पद्माकरजीका तो कहना है कि यह केवल गङ्गा महारानीकी कृपा है! देखिये—

लोचन असम अंग भसम चिताको लाय
तीनों लोक-नायक सो कैसेकै ठहरतो।
कहै पदमाकर बिलोकि इमि ढंग जाके
बेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो॥
बाँधे जटा-जूट बैठे परबतकूट माहि
महाकालकूट कहो कैसे कै ठहरतो।
घोंटै नित भंगै रहै प्रेतनके संगै
ऐसे पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो॥

परंतु अधिकांश सज्जनोंकी यह राय है कि यह सब अन्नपूर्णा भवानीकी कृपाका फल है—

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे॥

सरकारके तो स्वयं पाँच मुँह हैं, बच्चे गजानन और षडानन हैं और पास कपड़ेतक नहीं हैं तब फिर यदि भवानी अन्नपूर्णा न होतीं तो गृहस्थी चलती कैसे? शंकराचार्यजीने भी यही कहा है। देखिये—

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशानिवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणनिधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा॥

—सवारीके लिये बुड्ढा बैल। खानेके लिये जहर। रहनेके लिये सूनी दिशाएँ। खेलनेके लिये श्मशान और आभूषणोंके लिये साँप। भला इस सामग्रीवालेका यह प्रबल ऐश्वर्य क्या भगवती जगदम्बिकाके अतिरिक्त और किसी कारणवश हो सकता है। ऐसी स्थितिमें पार्वतीजीका यह कहना उचित ही है कि—

नहि अंबर अंग न संग सखा बहु भूतन के डरसों डरतो।
डरतो पुनि साँपनकी सुसकारन भाँग धतूरत ही मरतो॥
मरतो जिहि जानि न जन्म-कथा नर बाहनसों खर ना चरतो।
हँसि पारबती कहै शंकरसों हम ना बरतीं तुम्हैं को बरतो॥

इतना होते हुए भी बेचारी पार्वतीजी मुश्किलसे ही इस विषम परिवारको सँभालती हैं। क्योंकि यह परिवार कोई सामान्य परिवार नहीं है। परिवारकी, व्यक्तियोंकी तो बात छोड़ ही दीजिये। वहाँ तो यह शिकायत लगी ही रहती है कि कभी गणेशजी स्वामिकार्तिकेयके खिलाफ फरियाद करते हुए कहते हैं कि इन्होंने अपने हाथसे मेरे कान उमेठ दिये, कभी स्वामिकार्तिकेयजी* गणेशजीके खिलाफ यह दावा करते हैं कि इन्होंने अपनी सूँड़से मेरी आँखें गिन डालीं। परंतु उनका अस्तबल भी, जहाँ उन व्यक्तियोंके वाहन पड़े रहा करते हैं, एक अद्भुत खटपटका क्रीडास्थल सदैव बना रहता है।

बार बार बैलको निपट ऊँचो नाद सुनि
हुंकरत बाघ बिरुझानो रसरेलामें।
भूधर भनत ताकी बास पाय सोर करि
कुत्ता कोतवालको बगानो बगमेलामें॥

* हे हेरम्ब किमम्ब रोदिषि कथं कर्णौ लुठत्यग्निभूः। किं ते स्कन्द विचेष्टितं मम पुरा संख्या कृता चक्षुषाम्॥

शिव-परिवार

फुंकरत मूषकको दूषक भुजंग तासों
जंग करिबेको झुक्यो मोर हदहेलामें।
आपसमें पारषद कहत पुकारि कछु
रारि-सी मची है त्रिपुरारिके तबेलामें॥

अर्धनारीश्वर महादेवने आधे अङ्गकी सवारी रखी है बैल और आधे अङ्गकी शेर, बैल और बाघ भी कहीं एक नाथसे नाथे जाते हैं ? इसी तरह गणेशजीको दिया चूहा, खुद रख लिया साँप और स्वामिकार्तिकेयजीको दे दिया मोर। अब ये तीनों एकके ऊपर एक क्यों न सवारी करें ? फिर मजा यह कि जरा-सी खलबलाहटमें भयंकर रूपसे भौंकनेवाला कुत्ता अपने कोतवाल साहब श्रीभैरवजीको इनायत कर दिया है और यह कुत्ता भी उसी तबेलेमें डाल दिया गया है जहाँ बैल, बाघ, चूहा, साँप, मोर आदि रहते हैं। अब पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते होंगे कि उस तबेलेमें शान्तिस्थापनका कार्य कितना दुष्कर रहा करता होगा।

भोलानाथजीको क्या है ? जबतक शान्ति रही तबतक रही, जहाँ अशान्ति होने लगी कि झट उन्होंने समाधि ले ली। ये योगी भी तो अपने घरकी इसी गतिको देखकर हुए हैं—

आपुको बाहन बैल बली बनिताहूको बाहन सिंघहि पेखिकै।
मूसेको वाहन है सुत एकके दूजो मयूरके पच्छ विसेखिकै॥
भूषण है कवि चैन फनिन्दके बैर परे सबते सब लेखिकै।
तीनहुँ लोकके ईस गिरीस सु जोगी भये घरकी गति देखिकै॥

परवाह तो असल पार्वतीजीको है, जिनके भरोसे सारी गृहस्थी चलती है। जिस समय गजानन मोदकोंके लिये मचलते हैं, उस समय साक्षात् अन्नपूर्णाके सामने भी अर्थ-संकट आ उपस्थित होता है—

आपु बिष चाखैं भैया षटमुख राखैं, देखि
आसनमें राखैं बस बास जाको अचलै।
भूतनके छैया आस-पासके रखैया और
कालीके नथैयाहूके ध्यानहूँते न चलै॥
बैल बाघ बाहन बसनको गयन्दखाल
भाँग औ धतूरेको पसार देत अचलै।
घरको हवाल यहै संकरकी बाल कहै
लाज रहै कैसे पूत मोदकको मचलै॥

परंतु रत्नगर्भा वसुन्धराके सर्वोच्च आधारस्तम्भकी एकमात्र कन्या होनेके कारण पार्वतीजी उन साधनोंको जानती हैं जिनके द्वारा वे इस विचित्र परिवारके प्रत्येक व्यक्तिका पूर्ण संतोष कर सकें। साथ ही उन्होंने सुयोग्य गृहस्वामिनीके समान यह चतुरता भी कर रखी है कि ऋद्धि और सिद्धिको अपनी पुत्रवधू बना छोड़ा है। बस, अब उनके सहारे इनकी अर्थसमस्या बहुत कुछ सुलझ गयी है। इतना होते हुए भी उन्होंने सबसे बड़े मार्केका काम यह किया है कि अपनी यह अद्भुत गृहस्थी हिमाच्छादित पर्वतमालाके सुदूरतम शिखर कैलास-पर्वतपर जमायी है, जहाँ आस-पास केवल बर्फ-ही-बर्फ दिखायी पड़ता है। माँग तो वहाँ पैदा होती है कि जहाँ माँगनेयोग्य वस्तुएँ दीख सकती हों अथवा जहाँ तबीयतमें किसी अभावकी गरमी हो। यहाँ तो शीतलतादायक हिमराशिके अतिरिक्त और कहीं कुछ है ही नहीं, इसलिये यह निश्चय है कि इतनी ठंढकमें दबकर इस कुटुम्बके व्यक्ति तथा वाहनोंके झगड़ालू हौसले भी ठंढे पड़ जायँगे और वित्तसे बाहर दान दे देनेवाले इन औढरदानीजीके पासतक पहुँचनेका दुस्साहस करनेवाले भक्तोंका उत्साह भी ठंढा पड़ जायगा। इस चातुर्यका भी कोई ठिकाना है।

क्यों न हो, आखिर महामाया ही तो ठहरीं। इसीलिये तो जगद्गुरु शंकराचार्यजीने कहा है—

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्॥

अनेकगुणविस्तृत सपर्णा (पत्तोंसहित) लताओंका आश्रय भले ही कोई ले, परंतु मेरे विचारसे तो केवल उसी एक अपर्णा (पार्वतीजी) की सेवा करनी चाहिये, जिससे घिरकर पुराना ठूँठ भी (स्थाणु-शिव) मोक्षका फल देने लगता है।

भगवान् शिवका लोकमङ्गल-रूप

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

कालकूट सबसे विध्वंसकारी विष है। ऐसा विष जिसके तनिकसे स्पर्शमात्रसे प्राण नष्ट हो जाते हैं। संसारके समस्त जीव, पशु-पक्षी, कीट-पतंगतक क्षणभरमें मृत्युको प्राप्त हो सकते हैं।

देवों और दानवोंने जब अमृत पानेकी इच्छासे समुद्र-मन्थन किया था तो मन्थनमें सर्वप्रथम सर्वाधिक विषैला कालकूट विष निकला। कालकूटकी भयंकरतासे प्राणिमात्र जीवन धारण करनेके लिये चिन्तित हो उठा।

यदि जीवोंमें कालकूटने अपना विषैला प्रभाव दिखाया तो ब्रह्माजीकी यह सृष्टि कैसे बचेगी? प्राणी तो क्या देवता तथा दानवोंमेंसे कोई भी प्राणी—जलचर, नभचर, पृथिवीपर साँस लेनेवाला कोई भी न बचेगा। यहाँतक कि शस्यश्यामला धराकी उर्वरक शक्ति भी सदाके लिये विनष्ट हो जायगी।

विषको जहाँ रखिये वहीं अपना दूषित प्रभाव दिखाता है। जिस पात्रमें रखा जाय, वही उसकी ज्वालासे जल-भुनकर गल जाता है। विषको सावधानीसे रखना, दूसरोंको हानि न हो, वे बचे रहें, यह अत्यन्त आवश्यक है।

कालकूटकी ज्वालासे विश्वके प्राणी झुलसने लगे। सृष्टिकी रक्षाके लिये देव-दानव सभी चिन्तित हो उठे!

कोई ऐसा उपाय किया जाय कि हलाहल फिरसे कहीं दबा पड़ा रहे। संसारमें प्रकट न हो। कालकूटका किसी गहन गह्वरमें छिपा रहना ही हितकर है। अन्यथा उससे हानि-ही-हानि है।

'कहाँ रखा जाय इस विषको?' देव और दानव दोनोंमें देरतक मन्त्रणा होती रही। ऐसा कौन स्थान है, जहाँ विषका असर न हो?

केवल भगवान् शिव ही रक्षा कर सकते हैं। रक्षाकी भावनासे जो भी शंकरकी शरण जाता है, शम्भुके शान्तिमय, मुक्त, क्षमाशील और कल्याणरूपका स्मरण करके सहायताकी आर्त पुकार करता है, वह सुरक्षा अवश्य पाता है।

शिवका अर्थ ही मङ्गलमय, कुशल-क्षेम और मुक्ति-प्रदाता है। जो प्राणोंपर शासन करते हैं, वे शिवात्मा कहलाते हैं। जो वायुको वशमें रखते हैं वे सदाशिव शुद्धात्मा कहलाते हैं, जो जीवनको वशमें रखते हैं, वे परम शिव कहलाते हैं।

देवताओं और दानवोंने भगवान् शंकरकी विनती की—'शिवस्य तु वशे कालो न कालस्य वशे शिवः।' हे शिव! काल आपके अधीन है, आप कालसे मुक्त चिदानन्द हैं। जिसे मृत्युको जीतना हो, उसे हे भगवन्! आपमें स्थित होना चाहिये। आपका मन्त्र ही मृत्युञ्जय है। हे शंकर! आप त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रोंवाले हैं। 'सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्' आपके तीन नेत्र हैं। आप कर्म, भक्ति और ज्ञानको धारण करते हैं। भगवन्! भूः, भुवः और स्वः—भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक सर्वत्र आप ही परिव्याप्त हैं। जीवन, मृत्यु और मुक्ति—तीनों ही आपके नेत्र हैं। आप बालचन्द्र, गङ्गा और शक्ति—तीनोंको धारण करते हैं। अतः कालकूटकी दाहक ज्वालासे प्राणिमात्रकी रक्षा कीजिये। यदि आपने रक्षा न की तो यह विष तीनों लोकोंको भस्म करनेके लिये बढ़ रहा है।

उस विषम स्थितिमें सबके हाथ विनतीमें शिवके आगे जुड़े हुए थे। सबने एकाग्र होकर बड़ी श्रद्धापूर्वक भगवान् शिवका ध्यान किया। शिवका ध्यान सदा ही कल्याणकारी होता है—

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥

(गीता ६।४०)

'हे तात! कल्याणकारी कर्म करनेवालेकी कभी दुर्गति नहीं होती।'

भक्तोंकी आर्त पुकार सुनकर भगवान् शिव प्रकट हुए। उन्होंने दुष्ट कालकूटकी प्राणिमात्रको जलानेवाली ज्वालाएँ देखीं। वे सृष्टिका अन्त आते देखकर अचानक चिन्तित हो उठे!

सोचने लगे 'यदि सृष्टिमें मानव-समुदायमें कहीं भी यह विष—कलह-क्लेशरूप विष, मतभेद, राग-द्वेष, वाद-विवाद, संघर्ष, दोष-दुर्गुण आदि रहे तो प्राणिमात्र अशान्त होकर जलने लगेगा। इसे सुरक्षित रखनेको ऐसी जगह होनी चाहिये कि यह किसीको नुकसान न पहुँचा सके। सभी जीव सुरक्षित रहें।

ऐसा निरापद सुरक्षित स्थान मेरा, स्वयं मेरा ही कण्ठ-प्रदेश है। यदि हलाहल पेटमें चला गया तो मृत्यु निश्चित है,

बाहर रह गया तो सारी सृष्टि ही भस्म हो जायगी। फिर 'यह कहाँ रहे ?'

उन्होंने एक ही आचमनमें लोक-संहारी विषको अपने गलेमें धारण कर लिया। तभीसे विषके प्रभावसे उनका कण्ठ नीले रंगका हो गया, वे नीलकण्ठ कहलाने लगे और देवोंके भी देव महादेव बन गये।

हमारे जीवनमें नित्य नये-नये विष—विकार, राग-द्वेष, कलह, झगड़े होते रहते हैं, किंतु शिवभक्त उनसे अशान्त नहीं होते। विवेकपूर्ण निर्णय लेते हैं और शिवकी पराभक्तिसे उनके परम धामको प्राप्त करते हैं।

भगवान् शिवका नित्यधाम महाकैलास

कैलास दो हैं—एक महाकैलास और दूसरा भू-कैलास। वर्तमानमें जिसको कैलास माना जाता है, अनुभवी शिवभक्तगण कहते हैं कि वह तो असली भू-कैलास भी नहीं है। भू-कैलासपर शिवगण और शिवभक्तोंके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जा सकता। 'काशी-केदार-माहात्म्य' नामक ग्रन्थके चतुर्थ अध्यायमें महाकैलासका वर्णन इस प्रकार आता है—अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके आधारभूत 'महोदक[१]' में लाख योजन विस्तीर्ण स्वर्णभूमि है, वहाँ लाख योजन ऊँचा परमेश्वरका स्थान है। उसीको वेदवित् पुरुष 'महाकैलास' कहते हैं। उसके चारों ओर पचास हजार योजन विस्तृत और बीस हजार योजन ऊँची राजत (चाँदीकी) भूमिका घेरा है। उसके आठों दिशाओंमें मणियोंके आठ फाटक हैं। पूर्व द्वारके मालिक महात्मा विघ्नेश हैं, अग्निकोणके फाटकके मालिक महागण भृङ्गिरिटि हैं और दक्षिण द्वारके पालक गणोंके सरदार महाकाल हैं, नैर्ऋत्यके द्वारपाल साक्षात् शंकरके अङ्गसे उत्पन्न वीरभद्र हैं और पश्चिम द्वारकी पालिका शिवदुहिता महाशास्ता हैं, वायव्य कोणकी द्वारपालिका संकटमोचिनी दुर्गा हैं, उत्तर दिशाके द्वारपाल सुब्रह्मण्य नामक पर-शिव हैं तथा ईशानकोणके द्वाररक्षक शैलादि गणनायक हैं। इन लोकोंके जो अनुचर हैं उनकी तो गिनती ही नहीं है। पचास हजार योजन विस्तारकी वह नगरी है। उसमें दस हजार योजन ऊँचे सौ अरब (एक खरब) शिखर (गुंबज) हैं, जो मूँगेके बने हुए और चारों तरफसे घिरे हुए हैं। उसके भीतर बीस हजार योजन ऊँचे दस अरब शृङ्ग (शिखर) और हैं जो सब-के-सब पद्मरागमणिके बने हुए हैं और चारों ओरसे घिरे हुए खड़े हैं। उनके भीतर तीस हजार योजन ऊँचे एक करोड़ एक विशाल वैदूर्यमय शिखर हैं जो चारों ओरसे घिरे हुए हैं। फाटकके बाहरकी भूमि दस हजार योजन विस्तीर्ण है तथा फाटकके भीतरकी भूमि चालीस हजार योजन परिमाणकी है। इस भूमिमें तथा शृङ्गोंपर तारतम्य-क्रमसे सालोक्य-मुक्तिवाले रहते हैं। उनके मनोऽनुकूल उसमें घर, बाग, बावड़ी, कुआँ, नद और नदियाँ हैं। वह भोगभूमि

दिव्य अप्सराओं, दिव्य पान और दिव्य भक्ष्यसे पूर्ण है। वहाँ अगणित शिवके गण और सुन्दर प्रभावाली रुद्रकी कन्याएँ रहती हैं। कल्पवृक्षके वहाँ वन हैं और कामधेनुओंके टोल हैं तथा चिन्तामणियोंके ढेर लग रहे हैं। वहाँ पुण्यके तारतम्यसे शिवधर्मपरायण, शिवके आराधक एवं शिवभक्तोंके पूजनेवाले, जो सालोक्य-मुक्तिको प्राप्त कर चुके हैं, बसते हैं। वहाँ

१-सम्भवतः इसीको आधुनिक विज्ञानी Perfect Fluid कहते हैं।

जिसको जो वस्तु चाहिये वही उसके सामने मौजूद रहती है। यही नहीं, लोग काल पाकर सारूप्य, सामीप्य और सार्ष्टि-मुक्तिको भी प्राप्त करते हैं। शिखरोंके भीतर प्रभासे दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले तथा चालीस हजार योजन ऊँचे दस करोड़ पुष्पराग-मणिके शृङ्ग हैं। उनमें शिवपूजक गन्धर्व, यक्ष, किंनर, गरुड, नाग आदि सदा सब भोगोंसे युक्त होकर रहते हैं। उनके भीतर पचास हजार योजन ऊँचे एक करोड़ एक गोमेदक-मणिके शृङ्गोंका घेरा है। यहाँपर अपने पदसे च्युत हुए इन्द्रगण शंकरकी आराधना करते हुए रहते हैं। इसके बाद साठ हजार योजन ऊँचे दस लाख नीलमणिके शिखरोंका घेरा है। यहाँ चार मुखवाले अनेकों ब्रह्मा, जिनका हृदय और मन शिवके ज्ञानसे शान्त हो गया है, भक्तिसे शिवके ध्यानमें रत होकर रहते हैं। उसके बाद गारुत्मत (नीलम) मणिके एक लाख एक चमकते हुए शृङ्ग हैं। इनमें अनेकों विष्णु निरन्तर शिवजीका ध्यान करते हुए रहते हैं। अपना अधिकार समाप्त होनेपर मुक्तिकी इच्छासे शिवजीके ध्यानद्वारा हृदयके समस्त मलको दूरकर इन सत्तर हजार योजन ऊँचे शिखरोंमें ये लोग रहते हैं। इन सब लोगोंको तारतम्यसे सायुज्य-मुक्ति प्राप्त होती है। इसके बाद अस्सी हजार योजन ऊँचे दस हजार एक मुक्तामय शृङ्गोंका घेरा है। इनमें महात्मा रुद्रगण पशुपाशके ज्ञान तथा गुरुसेवाके माहात्म्यद्वारा सारूप्य-मुक्ति प्राप्त कर हृदयकमलमें शिवका ध्यान किया करते हैं। लोगोंपर अनुग्रह करनेवाले ये अगणित महात्मा नित्यमुक्त हैं। शिवकी आज्ञासे नित्य-कैलासमें निवास करते हुए ये अपने तेजसे देदीप्यमान रहते हैं। इसके भीतर नब्बे हजार योजन ऊँचे एक हजार एक दिव्य स्फटिकके शिखरोंका घेरा है। इनमें नन्दी-भृङ्गी, महाकाल, वीरभद्र आदि रहते हैं, जो परमात्मा शिवकी अपर मूर्ति हैं एवं सच्चिदानन्दरूप, सायुज्य तथा सार्ष्टि-मुक्तिको प्राप्त हैं। ये शंकरकी आज्ञासे करोड़ों ब्रह्माण्डोंको बनाने, बिगाड़ने तथा उलट-पलट करनेमें समर्थ हैं। ये लोग अपनी इच्छासे कैलासकी रक्षा करते हुए बसते हैं। इस घेरेके भीतर एक सौ एक योजन ऊँचे, हीरेके एक सौ एक शिखर हैं, जो अपने प्रकाशसे अखिल धामको प्रकाशित किया करते हैं। यही शंकरके निजधामको घेरे खड़े हैं। श्रीपरमेश्वरकी और देवीकी शक्तियाँ तथा स्वामिकार्तिकेय, विघ्नराजादि इनमें रहते हैं। ये अन्तःपुरनिवासी नित्यानन्दमय हैं और सदा महेश्वर तथा जगदम्बाकी सेवा करते हैं। यह स्थान ज्योतिर्मय और लाख योजन ऊँचा है। यह शंकरका धाम साधारण देवताओंके लिये अगम्य है। शिवज्ञानमें परिनिष्ठित पुरुष इस धामको 'अन्तःपुरी' कहते हैं। इसके बाद शंकरका निजधाम है, जिसके ज्योतिर्मय ग्यारह शृङ्ग हैं और ये साम्य शुद्ध सदाशिवको घेरे खड़े हैं। शिवजी अनुग्रहात्मक हैं, शान्त हैं और अपनी ही महिमासे प्रतिष्ठित हैं। अलौकिक विशाल महलके दिव्य सिंहासनपर वे अपनी पराशक्तिके साथ विराजमान हैं। बाहरी दसों घेरोंके निवासी सदा इनका ध्यान किया करते हैं और शिवजीकी आज्ञासे भोगके अन्तमें मुक्ति चाहते हैं। महाकैलासकी भाँति इन्होंने भू-कैलासमें भी अपने योग्य वैसी ही कल्पना संक्षेपमें की है। भू-कैलास भी गणोंके सहित प्रलयकालमें ऊपर बढ़कर अण्डका भेदन करता हुआ परिवारके सहित बाहर निकलकर वहीं चला जाता है और उस नित्य अलौकिक महाकैलासके अन्तर्भूत हो जाता है। निग्रह और अनुग्रहके व्याजसे सदाशिवकी मूर्तियोंमें भेद होता है। जम्बू-द्वीपवाले कैलास और महाकैलासकी भूमिकाएँ उस परमेश्वरके निग्रहानुग्रहके शाश्वत स्थान हैं।

गरल-असन दिगबसन ब्यसनभंजन जनरंजन।
कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर सच्चिदानंदघन॥
विकटवेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव अकाम अभिरामधाम नित रामनाम रुचि॥
कंदर्पदर्प दुर्गम दमन उमारमन गुनभवन हर।
त्रिपुरारि! त्रिलोचन! त्रिगुनपर! त्रिपुरमथन! जय त्रिदसबर॥

महामहेश्वर भगवान् शिवके आचरणोंसे शिक्षा

(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

समस्त इतिहास-पुराण तथा आगम ग्रन्थोंमें भगवान् शंकरका जो स्वरूप निर्दिष्ट है, उससे स्पष्ट होता है कि वे सर्वत्यागी, सर्वाधिक विरक्त यहाँतक कि वस्त्र, आभूषण, गृह आदिसे भी विहीन होकर परमात्मचिन्तनमें रत रहते हैं। विश्वके सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि देवता होते हुए भी योग-क्षेम और सम्पूर्ण वैभव, अन्न-धन आदिकी चिन्तासे शून्य संग्रहरहित कैलास-जैसे वन-पर्वतोंपर निवास करनेवाले, योग-ज्ञान, विद्या, वैराग्यमें सर्वश्रेष्ठ और स्वभावमें सर्वथा निर्द्वन्द्व होकर धर्मरक्षा, विश्वरक्षा, साधु-संतोंकी रक्षा तथा परोपकार आदिमें निरन्तर रत रहते है। अज्ञानियोंको श्मशानके भस्म लपेटे, सारे केशराशिको जटा-जूट बनाये, कण्ठमें विष-पान किये हुए, अङ्गोंमें साँप लपेटे, नंग-धड़ंग, एकान्तमें उन्मत्त-जैसे ताण्डव आदि नृत्य करते, घूमते या सिद्धासन लगाकर बैठे हुए रूपको देखकर सहसा उनका रूप अमङ्गल-जनक प्रतीत हो सकता है। किंतु वे विश्वमें सर्वाधिक मङ्गलमय हैं और उनका स्मरणमात्र या शिव यह नाम लेना भी समस्त अमङ्गलोंको दूरकर परम मङ्गल, विश्व-मङ्गल, सर्वोपरि मङ्गलका संचार कर देता है। स्तोत्रश्रेष्ठ शिवमहिम्नःस्तोत्रमें पुष्पदन्तजीने सर्वथा ठीक ही कहा है—

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि॥

ब्रह्मचारीके वेषमें कूटरूपसे आत्मस्वरूपका परिचय देते हुए उन्होंने पार्वतीसे स्वयं ही कहा था कि भला देखो तो सही शिवका रूप कितना कुरूप है, आँखें बंदर-जैसी हैं, शरीरमें चिताभस्म और साँप लपेटे रहते हैं, उनके कुल, खानदान, माता-पिता, पितामह, जाति, गोत्र आदिका कोई पता ही नहीं है। खेती, व्यापार, अन्न, धन, गृहसे भी वे शून्य हैं। एक दिन भोजनपानके लिये भी उनके पास कुछ नहीं है, तुमने ऐसे व्यक्तिसे जो विवाह करनेके लिये तप आरम्भ किया है तो भला तुमसे बढ़कर संसारमें मूर्ख और कौन हो सकता है—

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता
दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि मृग्यते
तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥

(कुमारसम्भव, सर्ग ५।७२)

इसके उत्तरमें भगवती पार्वतीने यही कहा था कि महादेवजी तो विश्वेश्वर विश्व-विग्रह ही हैं। वे ही सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं। उन्हें खेती, व्यापार, नौकरीकी क्या आवश्यकता है। वे नंगे रहें, गजचर्म धारण करें या दुकूल रेशमी वस्त्रोंसे सुसज्जित हों। वे चाहे शरीरमें साँप लपेटें या दिव्य रत्नजटित आभूषण धारण कर लें। वे त्रिशूल, खप्पर आदि लें या उनके ललाटपर चन्द्रमा चमकते रहें। इससे उनके तात्त्विक स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं आता तथा न इससे उनकी विश्वविग्रहता या विश्वस्वामितामें कोई अन्तर आनेवाला है—

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः॥

(कुमारसम्भव, सर्ग ५।७८)

वास्तवमें सम्पूर्ण ज्ञानियों, योगियों, संतों एवं महात्माओं और ऋषि-मुनियोंके वे ही आदर्श, ध्येय-ज्ञेय भी हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसा अशुभ एवं दरिद्रके समान वेष बनानेवाले भगवान् शंकरको समस्त मङ्गल-कल्याण, सिद्धियोंका मूलस्रोत तथा उन्हें परम कृपालु एवं समस्त श्रेष्ठ सद्गुणोंसे मण्डित माना है—

गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिव धाम कृपाला॥

उन्होंने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया जो समस्त दोषोंकी खानि, साधक, सिद्ध एवं योगियोंका बाधक रहा है। इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजी सबसे पहले अपने हृदयको निष्काम बनानेके लिये उन्हींसे प्रार्थना करते हैं—*'जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन'*। उनका यह भी मानना है कि

सकाम व्यक्ति कोई भी अच्छा काम नहीं कर सकता, न वह उचित बातका निर्णय कर सकता है और न कभी उसे शान्ति या सच्चा सुख ही सुलभ हो सकता है—

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

गोस्वामी तुलसीदासजी यह भी मानते हैं कि उनका रामचरितमानस काव्य तथा संसारके अन्य भी श्रेष्ठ काव्य, नाटक आदि भगवान् शिवकी कृपासे ही सुन्दरतम बन सकते हैं, बने हैं और उनका विश्व-प्रचार हो सकता है तथा उनसे विश्वका कल्याण हो सकता है।

भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥
सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥

वास्तवमें कालिदास, भास, भवभूति आदि सभी महाकवियोंने अपने काव्यों, नाटकोंका आरम्भ मङ्गलमय भगवान् शंकरकी वन्दना, प्रार्थना, स्तुति आदिसे किया है, जिनमेंसे थोड़ेसे पद्योंका संग्रह सुभाषित-रत्नाकर, सुभाषित-रत्नावली, वल्लभदेवकृत सुभाषितावली और सुभाषित-रत्न भाण्डागार आदिमें हुआ है।

देवताओं और असुरोंके द्वारा समुद्रमन्थनके समय सर्वप्रथम उसमेंसे हलाहल विष ही प्रकट हो गया, जिससे सारा विश्व जलने लगा। देवता-असुर भी दग्ध होने लगे। इसपर भगवान् विष्णुने शंकरजीसे कहा कि आप महादेव, देवाधिदेव और हम सभीके अग्रणी महादेव हैं। इसलिये समुद्रमन्थनसे उत्पन्न पहली वस्तु आपकी ही होती है। हमलोग सादर उसे आपको भेंट कर रहे हैं और उसे स्वीकार कीजिये—

उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः।
दैवतैर्मथ्यमाने तु यत्पूर्वं समुपस्थितम्॥
तत् त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत्।
अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो॥
(वा०रा० १।४५।२३-२४)

भगवान् विष्णुकी प्रार्थनापर शंकरजीने उस महाविषका पान कर लिया। देवताओंका कष्ट दूर हो गया, लेकिन उसने उनपर अपना कुछ प्रभाव दिखलाया, जिससे उनका कण्ठ नीला हो गया—जो दूषण न होकर उनके लिये भूषण हो गया—

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्॥
(श्रीमद्भा० ८।७।४३)

बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि कालकूट हलाहल विषका पान कर वे सर्वथा अजर-अमर और अविनाशी बन गये तथा देवता लोग जिन्होंने समुद्रमन्थनसे उत्पन्न अमृतका पान किया, वे सर्वथा अजर-अमर नहीं हुए, अपितु कुछ तो कल्पान्त आयुवाले हुए और प्रायः अधिक लोग पुण्य क्षीण होते हुए जहाँ-तहाँ भारतसे अलग क्षेत्रोंमें उत्पन्न होकर रोते रहे कि यदि किसी प्रकार भारतमें जन्म होता तो क्षणभरकी सत्संगति, भगवच्चरणोंका ध्यानकर पूर्वजन्मोंके कर्मोंको समर्पित कर मुक्त हो जाते। उनका वह अमृत-पान कल्याणकारी नहीं हो सका—

कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भयात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः॥
(श्रीमद्भा० ५।१९।२३)

भगवान् शंकराचार्यने इस विषयपर बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है और कहा है कि जरा-मृत्युका अपहरण करनेवाले अमृतका पान करते-करते इन्द्रादि सभी देवता भी विपन्नता अर्थात् मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं, किंतु विकराल फेनवाले हलाहल विषका पान करनेवाले महाकाल भगवान् शंकरपर कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता[1]—

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः।
करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटंकमहिमा॥

१-इस विषयपर 'कल्याण' वर्ष ४५के ५वें अङ्कमें विशद विचारपूर्ण एक लेख प्रकाशित है।

कुछ लोगोंके अनुसार यह उनकी परोपकारपरायणता अथवा त्यागके कारण, कुछके अनुसार पार्वतीके स्थिर सौभाग्यके कारण और कुछके अनुसार राम-नामके प्रति प्रेमके कारण हुआ था—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

रामपूर्व-उत्तरतापिनी, रामरहस्य आदि उपनिषदोंके अनुसार इसी नामके प्रभावसे काशीमें सबको मोक्ष मिलता है—

महिमा राम नाम कै जान महेस। देत परम पद कासी करि उपदेस॥

(बरवैरामायण)

प्रायः सभी पुराणोंमें इसी बातका समर्थन है। भगवान् शिवमें अनन्त गुण हैं, जिनकी कोई भी गणना सम्भव नहीं है। भले कोई जलकी बूँदों, पृथिवीके रेणुकणोंको भी गिन ले, पर उनकी गुण-गणावलियोंकी कोई गणनाकी कल्पना भी नहीं कर सकता। उनके स्वाभाविक गुण ऐसे हैं जो किसी अन्य प्राणी या देवतामें सम्भव ही नहीं हैं। जैसे सर्वज्ञता त्रिकालज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सदा अकारण-परितृप्ति, जरा-मृत्युसे शून्य होना, बिना साधन-अध्ययनके पूर्ण ज्ञान-विज्ञान-स्वरूप होना, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रता, कभी थकान या शक्तिका ह्रास न होना और अनन्त—सब कुछ करनेकी तथा प्रलयको सृष्टि-रूपमें, सृष्टिको प्रलयरूपमें बदलनेकी शक्ति रखना। इस आशयका एक श्लोक प्रसिद्ध है, जो प्रायः सभी वायु, लिङ्ग, शिव आदि शैव पुराणोंमें प्राप्त होता है जो इस प्रकार है—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

भगवान् शिवके समान ही आचरण करते हुए साधक उनके स्वरूप, तत्त्वका बोध प्राप्तकर सम्यक् साक्षात्कार कर सभी प्रकार कृतार्थ हो सकता है। अन्य कोई परम कल्याणका दूसरा मार्ग नहीं—'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'

(यजुर्वेद अ० ३१)

शिवमहिमा

ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एव हि। द्व्यक्षरं नाम येषां वै जिह्वाग्रे संस्थितं सदा॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै। ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः॥
किंचिद्दलेन संतुष्टः पुष्पेणापि तथैव च। तोयेनापि च संतुष्टो महादेवो निरन्तरम्॥
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि।
तस्माच्च सर्वैः परिपूजनीयः शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह॥
एको महान् ज्योतिरजः परेशः परावराणां परमो महात्मा।
निरन्तरो निर्गुणो निर्विकारो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः॥
निरञ्जनो नित्ययुक्तो निराशो निराधारो नित्यमुक्तः सदैव हि॥

(स्क० मा० के०, अ० २७)

जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर सदा भगवान् शंकरका दो अक्षरोंवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नामका उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूपमें रुद्र हैं, इसमें संशय नहीं है। महादेवजी थोड़ा-सा बिल्वपत्र पाकर भी सदा संतुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करनेसे भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव सदा सबके लिये कल्याणस्वरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जलसे ही संतुष्ट हो जाते हैं। इसलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिये। शिवजी इस जगत्में मनुष्योंको महान् सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं। ये एक हैं, महान् हैं, ज्योतिःस्वरूप हैं तथा अजन्मा परमेश्वर हैं। महात्मा शिव कार्य और कारण सबसे परे हैं। ये व्यवधानशून्य, निर्गुण, निर्विकार, निर्बाध, निर्विकल्प, निरीह, निरञ्जन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधार तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।

शिवोपासनाके विविध प्रकार

(राधेश्याम खेमका)

वेदादि शास्त्रोंमें भगवान् शिवकी पूजा-अर्चा और उपासना विभिन्न रूपोंमें वर्णित है। भगवान् शिव सगुण-साकार-मूर्त-रूपमें तथा निर्गुण-निराकार-अमूर्त-रूपमें भी पूज्य हैं। सगुण-साकार-रूपमें सदाशिवका पूजन विभिन्न स्वरूपोंमें भक्त अपनी भावनाके अनुसार करता है। परम शिव, साम्ब-सदाशिव, उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, महामृत्युञ्जय, पञ्चवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति, योगीश्वर तथा महेश्वर आदि नाम और रूपमें भगवान्‌की आराधना की जाती है। इसके अतिरिक्त ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच मूर्तियाँ हैं, जिन्हें पञ्चमूर्ति कहा जाता है। पञ्चवक्त्र-पूजनमें इन्हीं पाँच नामोंसे पञ्चानन महादेवका पूजन होता है। भगवान् शिवकी अष्ट-मूर्तिके पूजनका विधान भी मिलता है। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित मूर्तियाँ हैं।

रुद्र भगवान् सदाशिवके परब्रह्मतत्त्वको प्रकट करता है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर नामक आत्मत्रयका आलम्बन होनेपर भी भगवान् रुद्र संहारकर्ता माहेश्वर-स्वरूपको ही अपना प्रधान अधिष्ठान मानते हैं। इसीलिये कार्यकालमें उनकी मूर्ति 'घोर' मानी गयी है। यह रूप मायासे मुक्त है तथा परब्रह्मका सच्चा स्वरूप है, इस दृष्टिसे रुद्र ही परब्रह्म हैं और भगवान् सदाशिवके नाम-रूपमें अधिष्ठित हैं।

निर्गुण-निराकार-रूपमें लिङ्गोपासना

शिवलिङ्गके पूजनकी विशेष महिमा बतायी गयी है। पूजनके पूर्व नवनिर्मित शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। वाणलिङ्ग एवं नर्मदेश्वर-लिङ्ग शालग्राम-शिलाकी तरह स्वप्रतिष्ठित माने जाते हैं। इनमें प्रतिष्ठाकी आवश्यकता नहीं रहती। इसके अतिरिक्त मन्दिर आदि स्थानोंमें पूर्वप्रतिष्ठित लिङ्ग, स्वयम्भू-लिङ्ग तथा ज्योतिर्लिङ्ग आदि देवोंकी पूजामें आवाहन-विसर्जनकी आवश्यकता नहीं होती, विशेषरूपसे पार्थिव-लिङ्ग-पूजनमें प्रतिष्ठा तथा आवाहन-विसर्जन आवश्यक होता है। शास्त्रोंमें तो यहाँतक लिखा है कि शिवलिङ्गमें सभी देवताओंका पूजन किया जा सकता है—

शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्।
सर्वलोकमये यस्माच्छिवशक्तिर्विभुः प्रभुः॥

(बृहद्धर्मपुराण अ० ५७)

विविध प्रकारके शिवलिङ्गोंके निर्माणकी विधि बतायी गयी है। गन्धलिङ्ग (कस्तूरी-चन्दन और कुंकुमसे निर्मित), पुष्पलिङ्ग (विविध सौरभमय पुष्पोंसे निर्मित), रजोमय लिङ्ग (रजसे निर्मित), यवगोधूमशालिजलिङ्ग (जौ, गेहूँ, चावलके आटेसे निर्मित), इनके अतिरिक्त लवणमयलिङ्ग, शर्करामय-लिङ्ग, गुडोत्थलिङ्ग, भस्ममयलिङ्ग इत्यादि कई प्रकारके लिङ्गोंका निर्माण विविध फलोंकी दृष्टिसे किया जाता है। मुख्य रूपसे पारदलिङ्ग, स्फटिकलिङ्ग, स्वर्णादि धातुमयलिङ्ग, नीलम आदि रत्नमयलिङ्गका विशेष महत्त्व बताया गया है।

शिवोपासनामें जानने योग्य कुछ आवश्यक बातें

भगवान् सदाशिवके उपासकके लिये कुछ विशेष नियमोंका विधान है, जिसमें त्रिपुण्ड्र-धारण, भस्मावलेपन, रुद्राक्ष-धारण आदि आवश्यक माना जाता है। शास्त्रोंमें लिखा है कि 'देवो भूत्वा यजेद् देवम्'। अपने जिस इष्टदेवकी उपासना करनी हो, अन्तर और बाह्य—दोनों प्रकारसे उस देवताके स्वरूपमें स्थित होना चाहिये। इसीलिये जिसका अन्तर्मन जितना शुद्ध होगा उसे इष्टदेवकी उपासनासे उतनी ही जल्दी लाभ प्राप्त होगा। इसी प्रकार बाह्य-रूपसे भी देवरूप होकर ही उपासना करनेका विधान है। इसीलिये पूजन-आराधनके पूर्व अङ्गन्यास आदि करनेकी आवश्यकता होती है।

शिवार्चनके प्रकार

भगवान् शंकरकी बाह्य उपचारोंकी पूजाके साथ-साथ

अन्य कई प्रकारकी उपासना-विधि बतायी गयी है, जो विभिन्न फलोंकी प्रदात्री है।

मन्त्र-उपासनामें पञ्चाक्षर(नमः शिवाय), षडक्षर (ॐ नमः शिवाय) मन्त्रका जप, लघुमृत्युञ्जय, महामृत्युञ्जय आदि मन्त्रोंका जप विशेषरूपसे प्रशस्त है। इन जप-अनुष्ठान आदिसे मृत्युभय दूर होकर दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है। साथ ही अमरत्व अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति भी होती है। भगवान् सदाशिवकी उपासनामें यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायीका विशेष महत्त्व है। समस्त वेदराशिके मध्य मणिके रूपमें यह रुद्राध्याय विराजमान है। रुद्राष्टाध्यायीका सीधा पाठ षडङ्ग कहलाता है। नमक-चमकसे युक्त ग्यारह अनुवाकोंमें किया गया पाठ एकादशिनी रुद्रीके नामसे प्रसिद्ध है। यह अनुष्ठान तीन प्रकारसे होता है—पाठात्मक, अभिषेकात्मक और हवनात्मक। भगवान् शंकरको अभिषेक अत्यधिक प्रिय है, अतः अभिषेकात्मक अनुष्ठान सदाशिवकी आराधनामें विशेष प्रशस्त माना जाता है। भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये गङ्गाजलके अतिरिक्त रत्नोदक, इक्षुरस, दुग्ध, पञ्चामृत आदि अनेक द्रव्योंसे रुद्राष्टाध्यायीके मन्त्रोंद्वारा अभिषेक किया जाता है। एकादशिनी रुद्रीकी ग्यारह आवृत्ति होनेपर लघुरुद्रकी संज्ञा दी गयी है। लघुरुद्रकी ग्यारह आवृत्ति होनेपर महारुद्र कहा जाता है। महारुद्रकी ग्यारह आवृत्ति होनेपर अतिरुद्र होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर इन तीनों प्रकारके अनुष्ठानोंकी अपने शास्त्रोंमें बड़ी महिमा बतायी गयी है। अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार भक्तजन इनका अनुष्ठान करते-कराते हैं।

इसके अतिरिक्त नाम-जप, स्तोत्र-पाठ, मानस-पूजा, शिवचरित्र-चिन्तन, कीर्तन, शिवपुराण आदि ग्रन्थोंका स्वाध्याय, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और व्रतोपवास आदि उपासनाके विभिन्न साधन बताये गये हैं।

मानस-पूजा

शास्त्रोंमें पूजाको हजारगुना अधिक महत्त्वपूर्ण बनानेके लिये एक उपाय बतलाया गया है। वह उपाय है मानस-पूजा, जिसे पूजासे पहले करके फिर बाह्य वस्तुओंसे पूजा करे[1] अथवा सुविधानुसार बादमें भी की जा सकती है।

मनःकल्पित यदि एक फूल भी चढ़ा दिया जाय तो करोड़ों बाहरी फूल चढ़ानेके बराबर होता है। इसी प्रकार मानस-चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य भी भगवान्‌को करोड़गुना अधिक संतोष दे सकेंगे। अतः मानस-पूजा बहुत अपेक्षित है।

वस्तुतः भगवान्‌को किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो भावके भूखे हैं। संसारमें ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे परमेश्वरकी पूजा की जा सके, इसलिये पुराणोंमें मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामें भक्त अपने इष्ट साम्बसदाशिवको सुधासिन्धुसे आप्लावित कैलास-शिखरपर कल्पवृक्षोंसे आवृत कदम्ब-वृक्षोंसे युक्त मुक्तामणिमण्डित भवनमें चिन्तामणिसे निर्मित सिंहासनपर विराजमान कराता है। स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गङ्गाके जलसे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पञ्चामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं। पृथिवीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमलपुष्पोंका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप, अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी उपचार सच्चिदानन्दघन परमात्मप्रभुके चरणोंमें भावनासे भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। इसकी एक संक्षिप्त विधि भी पुराणोंमें वर्णित है। जो नीचे लिखी जा रही है—

१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित करता हूँ।)

२-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।)

३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं वायुदेवके रूपमें धूप आपको प्रदान करता हूँ।)

४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि।

१-कृत्वादौ मानसीं पूजां ततः पूजां समाचरेत्। (मुद्गलपुराण)

शिवोपासना और उसके विविध रूप

शिवोपासनाके विविध प्रकार

(राधेश्याम खेमका)

वेदादि शास्त्रोंमें भगवान् शिवकी पूजा-अर्चा और उपासना विभिन्न रूपोंमें वर्णित है। भगवान् शिव सगुण-साकार-मूर्त-रूपमें तथा निर्गुण-निराकार-अमूर्त-रूपमें भी पूज्य हैं। सगुण-साकार-रूपमें सदाशिवका पूजन विभिन्न स्वरूपोंमें भक्त अपनी भावनाके अनुसार करता है। परम शिव, साम्ब-सदाशिव, उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, महामृत्युञ्जय, पञ्चवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति, योगीश्वर तथा महेश्वर आदि नाम और रूपमें भगवान्की आराधना की जाती है। इसके अतिरिक्त ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच मूर्तियाँ हैं, जिन्हें पञ्चमूर्ति कहा जाता है। पञ्चवक्त्र-पूजनमें इन्हीं पाँच नामोंसे पञ्चानन महादेवका पूजन होता है। भगवान् शिवकी अष्ट-मूर्तिके पूजनका विधान भी मिलता है। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित मूर्तियाँ हैं।

रुद्र भगवान् सदाशिवके परब्रह्मतत्त्वको प्रकट करता है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर नामक आत्मत्रयका आलम्बन होनेपर भी भगवान् रुद्र संहारकर्ता माहेश्वर-स्वरूपको ही अपना प्रधान अधिष्ठान मानते हैं। इसीलिये कार्यकालमें उनकी मूर्ति 'घोरा' मानी गयी है। यह रूप मायासे मुक्त है तथा परब्रह्मका सच्चा स्वरूप है, इस दृष्टिसे रुद्र ही परब्रह्म हैं और भगवान् सदाशिवके नाम-रूपमें अधिष्ठित हैं।

निर्गुण-निराकार-रूपमें लिङ्गोपासना

शिवलिङ्गके पूजनकी विशेष महिमा बतायी गयी है। पूजनके पूर्व नवनिर्मित शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। बाणलिङ्ग एवं नर्मदेश्वर-लिङ्ग शालग्राम-शिलाकी तरह स्वप्रतिष्ठित माने जाते हैं। इनमें प्रतिष्ठाकी आवश्यकता नहीं रहती। इसके अतिरिक्त मन्दिर आदि स्थानोंमें पूर्वप्रतिष्ठित लिङ्ग, स्वयम्भू-लिङ्ग तथा ज्योतिर्लिङ्ग आदि देवोंकी पूजामें आवाहन-विसर्जनकी आवश्यकता नहीं होती, विशेषरूपसे पार्थिव-लिङ्ग-पूजनमें प्रतिष्ठा तथा आवाहन-विसर्जन आवश्यक होता है। शास्त्रोंमें तो यहाँतक लिखा है कि शिवलिङ्गमें सभी देवताओंका पूजन किया जा सकता है—

> शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्।
> सर्वलोकमये यस्माच्छिवशक्तिर्विभुः प्रभुः॥
>
> (वृहद्धर्मपुराण अ० ५७)

विविध प्रकारके शिवलिङ्गोंके निर्माणकी विधि बतायी गयी है। गन्धलिङ्ग (कस्तूरी-चन्दन और कुंकुमसे निर्मित), पुष्पलिङ्ग (विविध सौरभमय पुष्पोंसे निर्मित), रजोमय लिङ्ग (रजसे निर्मित), यवगोधूमशालिजलिङ्ग (जौ, गेहूँ, चावलके आटेसे निर्मित), इनके अतिरिक्त लवणमयलिङ्ग, शर्करामय-लिङ्ग, गुडोत्थलिङ्ग, भस्ममयलिङ्ग इत्यादि कई प्रकारके लिङ्गोंका निर्माण विविध फलोंकी दृष्टिसे किया जाता है। मुख्य रूपसे पारदलिङ्ग, स्फटिकलिङ्ग, स्वर्णादि धातुमयलिङ्ग, नीलम आदि रत्नमयलिङ्गका विशेष महत्त्व बताया गया है।

शिवोपासनामें जानने योग्य कुछ आवश्यक बातें

भगवान् सदाशिवके उपासकके लिये कुछ विशेष नियमोंका विधान है, जिसमें त्रिपुण्ड्र-धारण, भस्मावलेपन, रुद्राक्ष-धारण आदि आवश्यक माना जाता है। शास्त्रोंमें लिखा है कि 'देवो भूत्वा यजेद् देवम्'। अपने जिस इष्टदेवकी उपासना करनी हो, अन्तर और बाह्य—दोनों प्रकारसे उस देवताके स्वरूपमें स्थित होना चाहिये। इसीलिये जिसका अन्तर्मन जितना शुद्ध होगा उसे इष्टदेवकी उपासनासे उतनी ही जल्दी लाभ प्राप्त होगा। इसी प्रकार बाह्य-रूपसे भी देवरूप होकर ही उपासना करनेका विधान है। इसीलिये पूजन-आराधनके पूर्व अङ्गन्यास आदि करनेकी आवश्यकता होती है।

शिवार्चनके प्रकार

भगवान् शंकरकी बाह्य उपचारोंकी पूजाके साथ-साथ

अन्य कई प्रकारकी उपासना-विधि बतायी गयी है, जो विभिन्न फलोंकी प्रदात्री है।

मन्त्र-उपासनामें पञ्चाक्षर(नमः शिवाय), षडक्षर (ॐ नमः शिवाय) मन्त्रका जप, लघुमृत्युञ्जय, महामृत्युञ्जय आदि मन्त्रोंका जप विशेषरूपसे प्रशस्त है। इन जप-अनुष्ठान आदिसे मृत्युभय दूर होकर दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है। साथ ही अमरत्व अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति भी होती है। भगवान् सदाशिवकी उपासनामें यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायीका विशेष महत्त्व है। समस्त वेदराशिके मध्य मणिके रूपमें यह रुद्राध्याय विराजमान है। रुद्राष्टाध्यायीका सीधा पाठ षडङ्ग कहलाता है। नमक-चमकसे युक्त ग्यारह अनुवाकोंमें किया गया पाठ एकादशिनी रुद्रीके नामसे प्रसिद्ध है। यह अनुष्ठान तीन प्रकारसे होता है—पाठात्मक, अभिषेकात्मक और हवनात्मक। भगवान् शंकरको अभिषेक अत्यधिक प्रिय है, अतः अभिषेकात्मक अनुष्ठान सदाशिवकी आराधनामें विशेष प्रशस्त माना जाता है। भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये गङ्गाजलके अतिरिक्त रत्नोदक, इक्षुरस, दुग्ध, पञ्चामृत आदि अनेक द्रव्योंसे रुद्राष्टाध्यायीके मन्त्रोंद्वारा अभिषेक किया जाता है। एकादशिनी रुद्रीकी ग्यारह आवृत्ति होनेपर लघुरुद्रकी संज्ञा दी गयी है। लघुरुद्रकी ग्यारह आवृत्ति होनेपर महारुद्र कहा जाता है। महारुद्रकी ग्यारह आवृत्ति होनेपर अतिरुद्र होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर इन तीनों प्रकारके अनुष्ठानोंकी अपने शास्त्रोंमें बड़ी महिमा बतायी गयी है। अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार भक्तजन इनका अनुष्ठान करते-कराते हैं।

इसके अतिरिक्त नाम-जप, स्तोत्र-पाठ, मानस-पूजा, शिवचरित्र-चिन्तन, कीर्तन, शिवपुराण आदि ग्रन्थोंका स्वाध्याय, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और व्रतोपवास आदि उपासनाके विभिन्न साधन बताये गये हैं।

मानस-पूजा

शास्त्रोंमें पूजाको हजारगुना अधिक महत्त्वपूर्ण बनानेके लिये एक उपाय बतलाया गया है। वह उपाय है मानस-पूजा, जिसे पूजासे पहले करके फिर बाह्य वस्तुओंसे पूजा करे[1] अथवा सुविधानुसार बादमें भी की जा सकती है।

मनःकल्पित यदि एक फूल भी चढ़ा दिया जाय तो करोड़ों बाहरी फूल चढ़ानेके बराबर होता है। इसी प्रकार मानस-चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य भी भगवान्‌को करोड़गुना अधिक संतोष दे सकेंगे। अतः मानस-पूजा बहुत अपेक्षित है।

वस्तुतः भगवान्‌को किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो भावके भूखे हैं। संसारमें ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे परमेश्वरकी पूजा की जा सके, इसलिये पुराणोंमें मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामें भक्त अपने इष्ट साम्बसदाशिवको सुधासिन्धुसे आप्लावित कैलास-शिखरपर कल्पवृक्षोंसे आवृत कदम्ब-वृक्षोंसे युक्त मुक्तामणिमण्डित भवनमें चिन्तामणिसे निर्मित सिंहासनपर विराजमान कराता है। स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गङ्गाके जलसे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पञ्चामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं। पृथिवीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमलपुष्पोंका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप, अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी उपचार सच्चिदानन्दघन परमात्मप्रभुके चरणोंमें भावनासे भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। इसकी एक संक्षिप्त विधि भी पुराणोंमें वर्णित है। जो नीचे लिखी जा रही है—

१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित करता हूँ।)

२-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।)

३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं वायुदेवके रूपमें धूप आपको प्रदान करता हूँ।)

४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि।

---

[1] १-पूजादौ मानसीं पूजां ततः पूजां समाचरेत्। (मुद्गलपुराण)

(प्रभो ! मैं अग्निदेवके रूपमें दीपक आपको प्रदान करता हूँ।)

५-ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि।

(प्रभो ! मैं अमृतके समान नैवेद्य आपको निवेदन करता हूँ।)

६-ॐ सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।

(प्रभो ! मैं सर्वात्माके रूपमें संसारके सभी उपचारोंको आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ।) इन मन्त्रोंसे भावनापूर्वक मानस-पूजा की जा सकती है।

मानस-पूजासे चित्त एकाग्र और सरस हो जाता है, इससे बाह्य पूजामें भी रस मिलने लगता है। यद्यपि इसका प्रचार कम है, तथापि इसे अवश्य अपनाना चाहिये[1]। यहाँ पाठकोंके लाभार्थ भगवान् शंकराचार्यविरचित 'मानस-पूजास्तोत्र' मूल तथा हिन्दी अनुवादके साथ दिया जा रहा है—

शिवमानसपूजा

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥ १॥

हे दयानिधे ! हे पशुपते ! हे देव ! यह रत्ननिर्मित सिंहासन, शीतल जलसे स्नान, नाना रत्नावलिविभूषित दिव्य वस्त्र, कस्तूरिकागन्धसमन्वित चन्दन, जुही, चम्पा और बिल्वपत्रसे रचित पुष्पाञ्जलि तथा धूप और दीप यह सब मानसिक (पूजोपहार) ग्रहण कीजिये।

सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम्।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु॥ २॥

मैंने नवीन रत्नखण्डोंसे खचित सुवर्णपात्रमें घृतयुक्त खीर, दूध और दधिसहित पाँच प्रकारका व्यञ्जन, कदलीफल, शर्बत, अनेकों शाक, कपूरसे सुवासित और स्वच्छ किया हुआ मीठा जल और ताम्बूल—ये सब मनके द्वारा ही बनाकर प्रस्तुत किये हैं, प्रभो ! कृपया इन्हें स्वीकार कीजिये।

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया
संकल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो॥ ३॥

छत्र, दो चँवर, पंखा, निर्मल दर्पण, वीणा, भेरी, मृदङ्ग,

१-मानस-पूजामें आराधकका जितना समय लगता है, उतना भगवान्‌के सम्पर्कमें बीतता है और तबतक संसार उससे दूर हटा रहता है। अपने आराध्यदेवके लिये बढ़िया-से-बढ़िया रत्नजटित आसन, सुगन्धके बौछार करते दिव्य फूलकी वह कल्पना करता है और उसका मन वहाँसे दौड़कर उन्हें जुटाता है। इस तरह मनको दौड़नेकी और कल्पनाओंकी उड़ान भरनेकी इस पद्धतिमें पूरी छूट मिल जाती है। इसके दौड़नेके लिये क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। इस दायरेमें अनन्त ब्रह्माण्ड ही नहीं, अपितु इसकी पहुँचके परे गोलोक, साकेतलोक, सदाशिवलोक भी आ जाते हैं। अपने आराध्यदेवको इसे आसन देना है, वस्त्र और आभूषण पहनाना है, चन्दन लगाना है, मालाएँ पहनानी हैं, धूप-दीप दिखलाना है और नैवेद्य निवेदित करना है। इन्हें जुटानेके लिये उसे इन्द्रलोकसे ब्रह्मलोकतक दौड़ लगाना है। पहुँचे या न पहुँचे, किंतु अप्राकृतिक लोकोंकि चक्कर लगानेसे भी वह नहीं चूकता, ताकि उत्तम साधन जुट जायँ और भगवान्‌की अद्भुत सेवा हो जाय।

इतनी दौड़-धूपसे लायी गयी वस्तुओंको आराधक जब अपने भगवान्‌के सामने रखता है, तब उसे कितना संतोष मिलता होगा ? उसका मन तो निहाल ही हो जाता होगा।

इस तरह पूजा-सामग्रियोंके जुटानेमें और भगवान्‌के लिये उनका उपयोग करनेमें साधक जितना भी समय लगा पाता है, उतना समय वह अन्तर्जगत्‌में बिताता है। इस तरह मानस-पूजा साधकको समाधिकी ओर अग्रसर करती रहती है और उसके रसास्वादका आभास भी कराती रहती है। जैसे कोई प्रेमी साधक कान्ताभावसे अपने इष्टदेवकी मानसी सेवा कर रहा है। चाह रहा है कि अपने पूज्य प्रियतमको जूही, चमेली, चम्पा-गुलाब और बेलाकी तुरंतकी गुँथी, गमगमाती हुई बढ़िया-से-बढ़िया माला पहनायें। बाहरी पूजामें इसके लिये बहुत ही भाग-दौड़ करनी पड़ेगी। आर्थिक कठिनाई मुँह बाकर अलग खड़ी हो जाती है। तबतक भगवान्‌से बना यह मधुर सम्बन्ध भी टूट जाता है। पर मानस-पूजामें यह अड़चन नहीं आती। इसलिये बना हुआ वह सम्पर्क और गाढ़-से-गाढ़ होता जाता है। मनकी कोमल भावनाओंसे उत्पन्न की गयी ये वनमालाएँ तुरंत तैयार मिलती हैं। पहनाते समय पूज्य प्रियतमकी सुरभित साँसोंसे जब इसकी सुगन्ध टकराती है, तब नस-नसमें मादकता व्याप्त हो जाती है। पूज्य प्रियतमका स्पर्श पाकर वह उद्वेलित हो उठती है और साधकको समरस कर देती है। अब न आराधक है, न आराध्य है और न आराधना ही है। आगेकी पूजा कौन करे ? धन्य हैं वे, जिनकी पूजा इस तरह अधूरी रह जाती है। मानस-पूजासे यह स्थिति शीघ्र आ सकती है।

दुन्दुभीके वाद्य, गान और नृत्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, नानाविध स्तुति—ये सब मैं संकल्पसे ही आपको समर्पण करता हूँ, प्रभो! मेरी यह पूजा ग्रहण कीजिये।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥ ४॥

हे शम्भो! मेरी आत्मा आप हैं, बुद्धि पार्वतीजी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका मन्दिर है, सम्पूर्ण विषय-भोगकी रचना आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, मेरा चलना-फिरना आपकी परिक्रमा है तथा सम्पूर्ण शब्द आपके स्तोत्र हैं, इस प्रकार मैं जो-जो भी कर्म करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥ ५॥

प्रभो! मैंने हाथ, पैर, वाणी, शरीर, कर्म, कर्ण, नेत्र, अथवा मनसे जो भी अपराध किये हों, वे विहित हों अथवा अविहित, उन सबको आप क्षमा कीजिये। हे करुणासागर श्रीमहादेव शंकर! आपकी जय हो।

यहाँ भगवान् शिवके पूजनकी विधि तथा उसके विविध उपचार एवं साधन-सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें प्रस्तुत की जा रही हैं—

पूजाके विविध उपचार

संक्षेप और विस्तारके भेदसे पूजाके अनेकों प्रकारके उपचार हैं—पाँच, दस, सोलह, अठारह, छत्तीस, चौंसठ तथा राजोपचार आदि। यहाँ इन्हें दिया जा रहा है—

पाँच उपचार—१-गन्ध, २-पुष्प, ३-धूप, ४-दीप और ५-नैवेद्य।

दस उपचार—१-पाद्य, २-अर्घ्य, ३-आचमन, ४-स्नान, ५-वस्त्र-निवेदन, ६-गन्ध, ७-पुष्प, ८-धूप, ९-दीप, १०-नैवेद्य।

सोलह उपचार—१-पाद्य, २-अर्घ्य, ३-आचमन, ४-स्नान, ५-वस्त्र, ६-आभूषण, ७-गन्ध, ८-पुष्प, ९-धूप, १०-दीप, ११-नैवेद्य, १२-आचमन, १३-ताम्बूल, १४-स्तव-पाठ, १५-तर्पण और १६-नमस्कार।

अठारह उपचार—१-आसन, २-स्वागत, ३-पाद्य, ४-अर्घ्य, ५-आचमनीय, ६-स्नानीय, ७-वस्त्र, ८-यज्ञोपवीत, ९-भूषण, १०-गन्ध, ११-पुष्प, १२-धूप, १३-दीप, १४-नैवेद्य, १५-दर्पण, १६-माल्य, १७-अनुलेपन और १८-नमस्कार।

छत्तीस उपचार—१-आसन, २-अभ्यञ्जन, ३-उद्वर्तन, ४-निरूक्षण, ५-सम्मार्जन, ६-सर्पि:स्नपन, ७-आवाहन, ८-पाद्य, ९-अर्घ्य, १०-आचमन, ११-स्नान, १२-मधुपर्क, १३-पुनराचमन, १४-यज्ञोपवीत-वस्त्र, १५-अलङ्कार, १६-गन्ध, १७-पुष्प, १८-धूप, १९-दीप, २०-नैवेद्य, २१-ताम्बूल, २२-पुष्पमाला, २३-अनुलेपन, २४-शय्या, २५-चामर, २६-व्यजन, २७-आदर्श, २८-नमस्कार, २९-गायन, ३०-वादन, ३१-नर्तन, ३२-स्तुतिगान, ३३-हवन, ३४-प्रदक्षिणा, ३५-दन्तकाष्ठ और ३६-विसर्जन।

चौंसठ उपचार—(शिवशक्तिपूजामें) १-पाद्य, २-अर्घ्य, ३-आसन, ४-तैलाभ्यङ्ग, ५-मज्जनशालाप्रवेश, ६-पीठोपवेशन, ७-दिव्यस्नानीय, ८-उद्वर्तन, ९-उष्णोदक-स्नान, १०-तीर्थाभिषेक, ११-धौतवस्त्रपरिमार्जन, १२-अरुण-दुकूलधारण, १३-अरुणोत्तरीयधारण, १४-आलेपमण्डपप्रवेश, १५-पीठोपवेशन, १६-चन्दनादि दिव्यगन्धानुलेपन, १७-नानाविधपुष्पार्पण, १८-भूषणमण्डपप्रवेश, १९-भूषण-मणिपीठोपवेशन, २०-नवरत्नमुकुटधारण, २१-चन्द्रशकल, २२-सीमन्तसिन्दूर, २३-तिलकरत्न, २४-कालाञ्जन, २५-कर्णपाली, २६-नासाभरण, २७-अधरयावक, २८-ग्रथनभूषण, २९-कनकचित्रपदक, ३०-महापदक, ३१-मुक्तावली, ३२-एकावली, ३३-देवच्छन्दक, ३४-केयूरचतुष्टय, ३५-वलयावली, ३६-ऊर्मिकावली, ३७-काञ्चीदाम-कटिसूत्र, ३८-शोभाख्याभरण, ३९-पादकटक, ४०-रत्ननूपुर, ४१-पादाङ्गुलीयक, चार हाथोंमें क्रमशः ४२-अङ्कुश, ४३-पाश, ४४-पुण्ड्रेक्षुचाप और ४५-पुष्पबाणका धारण, ४६-माणिक्यपादुका, ४७-सिं[illegible]

रोहण, ४८-पर्यङ्कोपवेशन, ४९-अमृतासवसेवन, ५०-आचमनीय, ५१-कर्पूरवटिका, ५२-आनन्दोल्लास-विलासहास, ५३-मङ्गलार्तिक, ५४-श्वेतच्छत्र, ५५-चामर-द्वय, ५६-दर्पण, ५७-तालवृन्त, ५८-गन्ध, ५९-पुष्प, ६०-धूप, ६१-दीप, ६२-नैवेद्य, ६३-आचमन, ६४-पुनराचमन, (ताम्बूल और वन्दना)।

राजोपचार—षोडशोपचारके सिवा छत्र, चामर, पादुका और दर्पण।

पूजाकी कुछ आवश्यक बातें[1]

आसन-समर्पणमें आसनके ऊपर पाँच पुष्प भी रख लेने चाहिये। छः पुष्पोंसे स्वागत करना चाहिये। पाद्यमें चार पल जल और उसमें श्यामा घास, दूब, कमल और अपराजिता देनी चाहिये। अर्घ्यमें चार पल जल और गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, दूब, तिल, कुशाका अग्रभाग तथा श्वेत सरसों देने चाहिये। आचमनीयमें छः पल जल और उसमें जायफल, लवङ्ग और कङ्कोलका चूर्ण देना चाहिये। मधुपर्कमें कांस्यपात्रस्थित घृत, मधु और दधि देना चाहिये। मधुपर्कके बादवाले आचमनमें केवल एक पल विशुद्ध जल ही आवश्यक होता है। स्नानके लिये पचास पल जलका विधान है। वस्त्र बारह अङ्गुलसे ज्यादा, नवीन और जोड़ा होना चाहिये। आभरण स्वर्णनिर्मित हों और उनमें मोती आदि जड़े हों। गन्ध-द्रव्यमें चन्दन, अगर, कर्पूर आदि एकमें मिला दिये गये हों। एक पलके लगभग उनका परिमाण कहा गया है। पुष्प पचाससे अधिक हों, अनेक रंगके हों। धूप गुग्गुलका हो और कांस्यपात्रमें निवेदन किया जाय। नैवेद्यमें एक पुरुषके भोजन योग्य वस्तु होनी चाहिये। चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय—चारों प्रकारकी सामग्री हो। दीप कपासकी बत्तीसे कर्पूर आदि मिलाकर बनाया जाय। बत्तीकी लंबाई चार अङ्गुलके लगभग हो और दृढ़ हो। दीपकके साथ शिलापिष्टका भी उपयोग करना चाहिये। इसीको श्री अथवा आक कहते हैं, जो आरतीके समय सात बार घुमाया जाता है। दूर्वा और अक्षतकी संख्या सौसे अधिक समझनी चाहिये। एक-एक सामग्री अलग-अलग पात्रमें रखी जाय। वे पात्र सोने, चाँदी, ताँबे, पीतल या मिट्टीके हों। अपनी शक्तिके अनुसार ही करना चाहिये। जो वस्तु अपने पास नहीं हो, उसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं और अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार जो मिल सकती हों, उनके प्रयोगमें आलस्य, प्रमाद और संकीर्णता नहीं करनी चाहिये।

पूजाके पाँच प्रकार

शास्त्रोंमें पूजाके पाँच प्रकार बताये गये हैं—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या। देवताके स्थानको साफ करना, लीपना, निर्माल्य हटाना—ये सब कर्म 'अभिगमन' के अन्तर्गत हैं। गन्ध, पुष्प आदि पूजा-सामग्रीका संग्रह 'उपादान' है। इष्टदेवकी आत्मरूपसे भावना करना 'योग' है। मन्त्रार्थका अनुसंधान करते हुए जप करना, सूक्त, स्तोत्र आदिका पाठ करना, गुण, नाम, लीला आदिका कीर्तन करना, वेदान्तशास्त्र आदिका अभ्यास करना—ये सब 'स्वाध्याय' हैं। उपचारोंके द्वारा अपने आराध्यदेवकी पूजा 'इज्या' है। ये पाँच प्रकारकी पूजाएँ क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य-मुक्ति देनेवाली हैं। भगवान् सदाशिवकी पूजाकी उपासनामें एक रहस्यकी बात यह है कि जहाँ एक ओर रत्नोंसे परिनिर्मित लिङ्गोंकी पूजामें अपार समारोहके साथ राजोपचार आदि विधियोंसे विशाल वैभवका प्रयोग होता है, वहाँ सरलताकी दृष्टिसे केवल जल, अक्षत, बिल्वपत्र और मुखवाद्य (मुखसे बम-बमकी ध्वनि) से भी परिपूर्णता मानी जाती है और सदाशिवकी कृपा सहज उपलब्ध हो जाती है, इसीलिये वे आशुतोष और उदार-शिरोमणि कहे गये हैं।

फूल तोड़नेका मन्त्र

प्रातःकालिक स्नानादि कृत्योंके बाद देव-पूजाका विधान है। एतदर्थ स्नानके बाद तुलसी, बिल्वपत्र और फूल तोड़ने चाहिये। तोड़नेसे पहले हाथ-पैर धोकर आचमन कर ले। पूरबकी ओर मुँह कर हाथ जोड़कर मन्त्र बोले—

मा नु शोकं कुरुष्व त्वं स्थानत्यागं च मा कुरु।
देवतापूजनार्थाय प्रार्थयामि वनस्पते ॥

पहला फूल तोड़ते समय 'ॐ वरुणाय नमः', दूसरा

[1] १-पूजन-सम्बन्धी यह प्रकरण गीताप्रेससे ही शीघ्र प्रकाश्यमान 'नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश' से उद्धृत है।

फूल तोड़ते समय 'ॐ व्योमाय नमः' और तीसरा फूल तोड़ते समय 'ॐ पृथिव्यै नमः' बोले।

बिल्वपत्र तोड़नेका मन्त्र

अमृतोद्भव श्रीवृक्ष महादेवप्रियः सदा।
गृह्णामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात्॥

(आचारेन्दु)

बिल्वपत्र तोड़नेका निषिद्ध काल—चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी और अमावास्या तिथियोंको, संक्रान्तिके समय और सोमवारको बिल्वपत्र न तोड़े[1], किंतु बिल्वपत्र शंकरजीको बहुत प्रिय है, अतः निषिद्ध समयमें पहले दिनका रखा बिल्वपत्र चढ़ाना चाहिये। शास्त्रने तो यहाँतक कहा है कि यदि नूतन बिल्वपत्र न मिल सके तो चढ़ाये हुए बिल्वपत्रको ही धोकर बार-बार चढ़ाता रहे[2]।

बासी जल, फूलका निषेध

जो फूल, पत्ते और जल बासी हो गये हों, उन्हें देवताओंपर न चढ़ाये। किंतु तुलसीदल और गङ्गाजल बासी नहीं होते। तीर्थोंका जल भी बासी नहीं होता[3]। वस्त्र, यज्ञोपवीत और आभूषणमें भी निर्माल्यका दोष नहीं आता।[4] मालीके घरमें रखे हुए फूलोंमें बासी-दोष नहीं आता।[5] मणि, रत्न, सुवर्ण, वस्त्र आदिसे बनाये गये फूल बासी नहीं होते[6]। इन्हें प्रोक्षण कर चढ़ाना चाहिये[7]।

नारदजीने 'मानस' (मनके द्वारा भावित) फूलको सबसे श्रेष्ठ फूल माना है[8]। उन्होंने देवराज इन्द्रको बतलाया है कि हजारों-करोड़ों बाह्य फूलोंको चढ़ाकर जो फल प्राप्त किया जा सकता है, वह केवल एक मानस-फूल चढ़ानेसे प्राप्त हो जाता है[9]। इससे मानस-पुष्प ही उत्तम पुष्प है। बाह्य पुष्प तो निर्माल्य ही होते हैं। मानस-पुष्पमें बासी आदि कोई दोष नहीं होता। इसलिये पूजा करते समय मनसे गढ़कर फूल चढ़ानेका अद्भुत आनन्द अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

सामान्यतया निषिद्ध फूल

यहाँ उन निषेधोंको दिया जा रहा है जो सामान्यतया सब पूजामें सब फूलोंपर लागू होते हैं। भगवान्‌पर चढ़ाया हुआ फूल 'निर्माल्य' कहलाता है, सूँघा हुआ या अङ्गमें लगाया हुआ फूल इसी कोटिमें आता है। इन्हें न चढ़ाये। भौंरेके सूँघनेसे फूल दूषित नहीं होता। जो फूल अपवित्र बर्तनमें रख दिया गया हो, अपवित्र स्थानमें उत्पन्न हो, आगसे झुलस गया हो, कीड़ोंसे विद्ध हो, सुन्दर न हो, जिसकी पंखुड़ियाँ बिखर गयी हों, जो पृथिवीपर गिर पड़ा हो, जो पूर्णतः खिला न हो, जिसमें खट्टी गंध या सड़ाँध आती हो, निर्गन्ध हो या उग्र गन्धवाला हो, ऐसे पुष्पोंको नहीं चढ़ाना चाहिये। जो फूल बायें हाथ, पहननेवाले अधोवस्त्र, आक और रेंड़के पत्तेमें रखकर लाये गये हों, वे फूल त्याज्य है। कलियोंको चढ़ाना मना है, किंतु यह निषेध कमलपर लागू नहीं है। फूलको जलमें डुबाकर धोना मना है। केवल जलसे इसका प्रोक्षण कर देना चाहिये।

शिव-पूजनके लिये विहित पत्र-पुष्प

भगवान् शंकरपर फूल चढ़ानेका बहुत अधिक महत्त्व है। बतलाया जाता है कि तपःशील सर्वगुणसम्पन्न वेदमें

१-अमारिक्तासु संक्रान्त्यामष्टम्यामिन्दुवासरे। बिल्वपत्रं न च छिन्द्याच्छिन्द्याच्चेन्नरकं व्रजेत्॥ (लिङ्गपुराण)

२-अर्पितान्यपि बिल्वानि प्रक्षाल्यापि पुनः पुनः। शंकरायार्पणीयानि न नवानि यदि क्वचित्॥ (स्कन्दपुराण, आचारेन्दु, पृ० १६५)

३-(क) वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्। न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्॥ (बृहन्नारदीय)

(ख) न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि। (स्मृतिसारावली)

४-न निर्माल्यं भवेद् वस्त्रं स्वर्णरत्नादिभूषणम्। (आचाररत्न)

५-न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च। (आचारेन्दु०, पृ० १६३)

६-मणिरत्नसुवर्णादिनिर्मितं कुसुमोत्तमम्। तत्पर कुसुमं प्रोक्तमपरं चित्रवस्त्रजम्।
पराणामपराणां च निर्माल्यत्वं न विद्यते। (तत्त्वसागरसंहिता)

७-वस्त्रमभ्युक्षणाच्छुध्येत्। (तत्त्वसागरसंहिता)

८-तस्मान्मानसमेवातः शस्तं पुष्पं मनीषिणाम्। (तत्त्वसागरसंहिता)

९-बाह्यपुष्पसहस्राणां सहस्रायुतकोटिभिः। पूजिते यत्फलं पुंसां तत्फलं त्रिदशाधिप।
मानसेनैकेन पुष्पेण विद्वानाप्नोत्यसंशयम्॥ (तत्त्वसागर सं०, वीर०,पूजा०, पृ० ५७)

निष्णात किसी ब्राह्मणको सौ सुवर्ण-दान[१] करनेपर जो फल प्राप्त होता है, वह भगवान् शंकरपर सौ फूल चढ़ा देनेसे प्राप्त हो जाता है[२]। कौन-कौन पत्र-पुष्प शिवके लिये विहित हैं और कौन-कौन निषिद्ध हैं, इनकी जानकारी अपेक्षित है। अतः उनका उल्लेख यहाँ किया जाता है—

पहली बात यह है कि भगवान् विष्णुके लिये जो-जो पत्र और पुष्प विहित हैं, वे सब भगवान् शंकरपर भी चढ़ाये जाते हैं। केवल केतकी—केवड़ेका निषेध है[३]।

शास्त्रोंने कुछ फूलोंके चढ़ानेसे मिलनेवाले फलका तारतम्य बतलाया है, जैसे दस सुवर्ण-मापके बराबर सुवर्ण-दानका फल एक आकके फूलको चढ़ानेसे मिल जाता है। हजार आकके फूलोंकी अपेक्षा एक कनेरका फूल, हजार कनेरके फूलोंके चढ़ानेकी अपेक्षा एक बिल्वपत्रसे फल मिल जाता है और हजार बिल्वपत्रोंकी अपेक्षा एक गूमाफूल (द्रोण-पुष्प) होता है। इस तरह हजार गूमासे बढ़कर एक चिचिडा, हजार चिचिडों-(अपामार्गों-)से बढ़कर एक कुशका फूल, हजार कुश-पुष्पोंसे बढ़कर एक शमीका पत्ता, हजार शमीके पत्तोंसे बढ़कर एक नीलकमल, हजार नीलकमलोंसे बढ़कर एक धतूरा, हजार धतूरोंसे बढ़कर एक शमीका फूल होता है। अन्तमें बतलाया है कि समस्त फूलोंकी जातियोंमें सबसे बढ़कर नीलकमल होता है[४]।

भगवान् व्यासने कनेरकी कोटिमें चमेली, मौलसिरी, पाटला, मदार, श्वेतकमल, शमीके फूल और बड़ी भटकटैयाको रखा है। इसी तरह धतूरेकी कोटिमें नागचम्पा और पुंनागको माना है[५]।

शास्त्रोंने भगवान् शंकरकी पूजामें मौलसिरी (बक-बकुल)के फूलको ही अधिक महत्त्व दिया है[६]।

भविष्यपुराणने भगवान् शंकरपर चढ़ाने योग्य और भी फूलोंके नाम गिनाये हैं।

करवीर (कनेर), मौलसिरी (आक), धतूरा, पाढर[७], बड़ी कटेरी, कुरैया, कास, मन्दार, अपराजिता, शमीका फूल, कुब्जक, शंखपुष्पी, चिचिडा, कमल, चमेली, नागचम्पा[८], चम्पा, खस, तगर, नागकेसर, किंकिरात (करंटक अर्थात् पीले फूलवाली कटसरैया) गूमा, शीशम, गूलर, जयन्ती, बेला, पलाश, बेलपत्ता, कुसुम्भ-पुष्प, कुङ्कुम[९] अर्थात् केसर, नीलकमल और लाल कमल। जल एवं स्थलमें उत्पन्न जितने सुगन्धित फूल हैं, सभी भगवान् शंकरको प्रिय हैं[१०]।

शिवार्चामें निषिद्ध पत्र-पुष्प

कदम्ब, सारहीन फूल या कठूमर, केवड़ा, शिरीष, तिन्तिणी, बकुल (मौलसिरी), कोष्ठ, कैथ, गाजर, बहेड़ा, कपास, गंभारी, पत्रकंटक, सेमल, अनार, धव, बसंत ऋतुमें खिलनेवाला कंद-विशेष, कुंद, जूही, मदन्ती, सर्ज और दोपहरियाके फूल भगवान् शंकरपर नहीं चढ़ाने चाहिये। वीरमित्रोदयमें इनका संकलन किया गया है[११]।

१-एक सुवर्ण-सोलह माशा या एक कर्ष।

२-तप:शीलगुणोपेते विप्रे वेदस्य पारगे। दत्त्वा सुवर्णस्य शतं तत्फलं कुसुमस्य च॥ (वीरमित्रोदय, पृ० २०)

३-विष्णोर्यानीह चोक्तानि पुष्पाणि च पत्रिकाः। केतकीपुष्पमेकं तु विना तान्यखिलान्यपि।
शस्तान्येव सुरश्रेष्ठ शंकराराधनाय हि॥ (नारद)

४-सर्वासां पुष्पजातीनां प्रवरं नीलमुत्पलम्॥ (वीरमित्रोदय, पूजाप्रकाश)

५-करवीरसमा ज्ञेया जातीबकुलपाटलाः। श्वेतमन्दारकुसुमं सितपद्मं च तत्समम्॥
शमीपुष्पं बृहत्याश्च कुसुमं तुल्यमुच्यते। नागचम्पकपुन्नागौ धत्तूरकसमौ स्मृतौ॥

६-सत्यं सत्यं पुनः सत्यं शिवं स्पृष्ट्वेदमुच्यते। बकपुष्पेण चैकेन शैवमर्चनमुत्तमम्॥ (वीर० मि०, पू० प्र०)

७-'पाटला' का अर्थ 'पाढर' होता है। कुछ लोग इसका अर्थ 'गुलाब' बतलाते हैं।

८-मूलमें 'काञ्चनम्' पद है। अमरकोषकारने बतलाया है कि स्वर्णके जितने नाम हैं, वे 'नागचम्पा' फूलके वाचक हैं। अतः 'काञ्चनम्'का अर्थ नागचम्पा होता है—'काञ्चनाह्वयः।' (२।४।६५)

९-'''अथ कुङ्कुमम्। काश्मीरजन्माग्निशिखं वरं बाह्लीकपीतनम्।' (अमरकोष २।६।१२३)

१०-वीरमित्रोदय, पू० प्र०

११-कदम्बं फल्गुपुष्पं च केतकं च शिरीषकम्। तिन्तिणी बकुलं कोष्ठं कपित्थं गृञ्जनं तथा॥
बिभीतकं च कार्पासं श्रीपर्णी पत्रकण्टकम्। शाल्मली दाडिमीपुष्पं धातकीं शक्रपर्चने॥
केतकी धातिमुक्तं च कुन्दो यूथी मदन्तिका। शिरीषसर्जबन्धूककुसुमानि विवर्जयेत्॥ (वीरमित्रोदय, पूजाप्रकाश)

कदम्ब, बकुल और कुन्दपर विशेष विचार

इन पुष्पोंका कहीं विधान और कहीं निषेध मिलता है। अतः विशेष विचारद्वारा निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है—

कदम्ब—शास्त्रका एक वचन है—'**कदम्बकुसुमैः शम्भुमुन्मत्तैः सर्वसिद्धिभाक्।**' अर्थात् कदम्ब और धतूरेके फूलोंसे पूजा करनेसे सारी सिद्धियाँ मिलती हैं। शास्त्रका दूसरा वचन मिलता है—

अत्यन्तप्रतिषिद्धानि कुसुमानि शिवार्चने।
कदम्बं फल्गुपुष्पं च केतकं च शिरीषकम्॥

अर्थात् कदम्ब तथा फल्गु (गन्धहीन आदि) के फूल शिवके पूजनमें अत्यन्त निषिद्ध हैं। इस तरह एक वचनसे कदम्बका शिवपूजनमें विधान और दूसरे वचनसे निषेध मिलता है, जो परस्पर विरुद्ध प्रतीत होता है।

इसका परिहार वीरमित्रोदयकारने कालविशेषके द्वारा इस प्रकार किया है। इनके कथनका तात्पर्य यह है कि कदम्बका जो विधान किया गया है, वह केवल भाद्रपदमास—मास-विशेषमें। इस पुष्प-विशेषका महत्त्व बतलाते हुए देवीपुराणमें लिखा है—

'कदम्बैश्चम्पकैरेवं नभस्ये सर्वकामदा।'

अर्थात् 'भाद्रपदमासमें कदम्ब और चम्पासे शिवकी पूजा करनेसे सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं।'

इस प्रकार भाद्रपदमासमें 'विधि' चरितार्थ हो जाती है और भाद्रपदमाससे भिन्न मासोंमें 'निषेध' चरितार्थ हो जाता है। दोनों वचनोंमें कोई विरोध नहीं रह जाता।

'सामान्यतः कदम्बकुसुमार्चनं यत्तद् वर्षर्तुविषयम्। अन्यदा तु निषेधः। तेन न पूर्वोत्तरवाक्यविरोधः।'

(वीरमित्रोदय, पूजाप्रकाश, पृ० २१६)

बकुल (मौलसिरी)—यही बात बकुल-सम्बन्धी विधि-निषेधपर भी लागू होती है। आचारेन्दुमें 'बक'का अर्थ 'बकुल' किया गया है और 'बकुल'का अर्थ है—'मौलसिरी'। शास्त्रका एक वचन है—

'बकपुष्पेण चैकेन शैवमर्चनमुत्तमम्।'

दूसरा वचन है—

'बकुलैर्नार्चयेद् देवम्।'

पहले वचनमें मौलसिरीका शिवपूजनमें विधान है और दूसरे वचनमें निषेध। इस प्रकार आपाततः पूर्वापर-विरोध प्रतीत होता है। इसका भी परिहार कालविशेषद्वारा हो जाता है, क्योंकि मौलसिरी चढ़ानेका विधान सायंकाल किया गया है—'**सायाह्ने बकुलं शुभम्।**' इस तरह सायंकालमें विधि चरितार्थ हो जाती है और भिन्न समयमें निषेध चरितार्थ हो जाता है।

कुन्द—कुन्द-फूलके लिये भी उपर्युक्त पद्धति व्यवहरणीय है। माघ महीनेमें भगवान् शंकरपर कुन्द चढ़ाया जा सकता है, शेष महीनोंमें नहीं। वीरमित्रोदयने लिखा है—

कुन्दपुष्पस्य निषेधेऽपि माघे निषेधाभावः।

पुष्पादि चढ़ानेकी विधि

फूल, फल और पत्ते जैसे उगते हैं, वैसे ही इन्हें चढ़ाना चाहिये[1]। उत्पन्न होते समय इनका मुख ऊपरकी ओर होता है, अतः चढ़ाते समय इनका मुख ऊपरकी ओर ही रखना चाहिये। इनका मुख नीचेकी ओर न करें[2]। दूर्वा एवं तुलसीदलको अपनी ओर और बिल्वपत्र नीचे मुखकर चढ़ाना चाहिये[3]। इनसे भिन्न पत्तोंको ऊपर मुखकर या नीचे मुखकर दोनों ही प्रकारसे चढ़ाया जा सकता है[4]। दाहिने हाथके करतलको उतान कर मध्यमा, अनामिका और अँगूठेकी सहायतासे फूल चढ़ाना चाहिये[5]।

उतारनेकी विधि

चढ़े हुए फूलको अँगूठे और तर्जनीकी सहायतासे उतारे[6]।

१-'यथोत्पन्नं तथार्पणम्।' (तृचभास्कर)

२-पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्।

३-(क) दूर्वाः स्वाभिमुखाग्राः सुर्बिल्वपत्रमधोमुखम्॥

(ख) तुलस्यादिपत्रम् आत्माभिमुखं न्युब्जमेव समर्पणीयम्। (सारदीपिका)

४-इतरपत्राणामप्यूर्ध्वमुखाधोमुखमनयोर्विकल्प। (आचारेन्दु)

५-मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः पुष्पं संगृह्य पूजयेत्। (चिन्तामणि)

६-अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु निर्माल्यमपनोदयेत्। (कालिकापुराण)

पूजाकी तैयारी

पूजनसे पूर्व पूजाकी आवश्यक तैयारी कर ले। ताजे जलको कपड़ेसे छानकर कलशमें भरे। उदकुम्भ (कलश) के जलको भी सुवासित करनेके लिये कपूर और केसरके साथ चन्दन घिसकर मिला दे। अक्षतको केसर या रोलीसे हलका रँग ले।

पूजा-सामग्रीके रखनेका प्रकार

पूजनकी किस वस्तुको किधर रखना चाहिये, इस बातका भी शास्त्रने निर्देश दिया है। इसके अनुसार वस्तुओंको यथास्थान सजा देना चाहिये।

बायीं ओर सुवासित जलसे भरा उदकुम्भ (जलपात्र), घण्टा, धूपदानी तथा तेलका दीप और दायीं ओर घृतका दीप रखे। सामने कुङ्कुम (केसर) और कपूरके साथ घिसा गाढ़ा चन्दन रखे। पुष्प आदि हाथमें तथा चन्दन ताम्रपात्रमें न रखे। भगवान्‌के आगे चौकोर जलका घेरा डालकर नैवेद्यकी वस्तु रखे।

शिव-पूजन

भगवान् शंकरकी पूजाके समय शुद्ध आसनपर बैठकर पहले आचमन, पवित्री-धारण, शरीर-शुद्धि और आसन-शुद्धि कर लेनी चाहिये। तत्पश्चात् पूजन-सामग्रीको यथास्थान रखकर रक्षादीप प्रज्वलित कर ले, तदनन्तर स्वस्तिपाठ करे। इसके बाद पूजनका संकल्प कर तदङ्गभूत भगवान् गणेश एवं भगवती गौरीका स्मरणपूर्वक पूजन करना चाहिये। यदि वेदके मन्त्र अभ्यस्त न हों तो आगमोक्त मन्त्रसे, यदि वे भी अभ्यस्त न हों तो नाममन्त्रसे और वह भी सम्भव न हो तो मानसिक भावना कर बिना मन्त्रके ही पाद्य, अर्घ्य आदि चढ़ाकर पूजा करनी चाहिये[1]। रुद्राभिषेक, लघुरुद्र, महारुद्र तथा सहस्रार्चन आदि विशेष अनुष्ठानोंमें नवग्रह, कलश, षोडशमातृका आदिका भी पूजन करना चाहिये।

पूजनका संकल्प (सकाम)—दाहिने हाथमें कुशात्रय, पुष्प, अक्षत, जल तथा द्रव्य रखकर इस प्रकार संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः, अद्य······ मम सर्वारिष्ट-निरसनपूर्वकसर्वपापक्षयार्थं मनसेप्सितफलप्राप्तिपूर्वक-श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्रीसाम्बसदाशिवप्रीत्यर्थं भगवतः श्रीसाम्बसदाशिवस्य पूजनमहं करिष्ये। तदङ्गत्वेन कार्यस्य निर्विघ्नतया सिद्ध्यर्थं आदौ गणेशाम्बिकयोः पूजनं करिष्ये।

निष्काम—ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः, अद्य···श्रीसाम्ब-सदाशिवप्रीत्यर्थं श्रीभगवत्साम्बसदाशिवपूजनमहं करिष्ये।

गणेश-स्मरण—

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥

गौरी-स्मरण—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥

उपलब्ध विविध उपचारोंसे गणपति-गौरी-पूजनके उपरान्त भगवान् शंकरके विशिष्ट अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये उनके परिकर-परिच्छद एवं पार्षदोंका भी पूजन किया जाता है। संक्षेपमें उनके पूजा-प्रार्थना-मन्त्र भी यहाँ दिये जा रहे हैं।

नन्दीश्वर-पूजन

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करे—

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा।

१-द्विजको वैदिक मन्त्रोंसे पूजा करनेका अधिकार है, अनुपवीत, स्त्री तथा शूद्रको पौराणिक मन्त्रसे ही पूजन करना चाहिये।

भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥

वीरभद्र-पूजन

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा॑ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करे।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥

कार्तिकेय-पूजन

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करे—

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव । तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥

कुबेर-पूजन

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करे—

वय॑ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥

कीर्तिमुख-पूजन

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाऽभिभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा स॑सर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करे—

ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परू॑षि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

सर्प-पूजन

जलहरीमें सर्पका आकार हो तो सर्पका पूजन कर पश्चात् शिव-पूजन करे।

पार्षदोंकी पूजाके बाद हाथमें बिल्वपत्र और अक्षत लेकर भगवान् शिवका ध्यान करे।

ध्यान—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः, ध्यानार्थे बिल्वपत्रं समर्पयामि ।

(ध्यान करके शिवपर बिल्वपत्र चढ़ा दे।)

आवाहन—

आगच्छ भगवन् देव स्थाने चात्र स्थिरो भव ।
यावत् पूजां करिष्येऽहं तावत् त्वं संनिधौ भव ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः । आवाहनार्थे पुष्पं समर्पयामि ।

(पुष्प चढ़ाये)

आसन—

अनेकरत्नसंयुक्तं नानामणिगणान्वितम् ।
इदं हेममयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः । आसनार्थे बिल्वपत्रं समर्पयामि ।

(आसनके लिये बिल्वपत्र चढ़ाये ।)

पाद्य—

गङ्गोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं मे प्रतिगृह्यताम् ॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हि॑सीः पुरुषं जगत् ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः । पादयोः पाद्यं समर्पयामि ।

(जल चढ़ाये ।)

अर्घ्य—

गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया ।
गृहाण भगवन् शम्भो प्रसन्नो वरदो भव ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्म॑ सुमना असत् ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः । हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि ।

(चन्दन, पुष्प, अक्षतयुक्त अर्घ्य समर्पण करे ।)

आचमन—

कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम् ।

उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। वस्त्रं समर्पयामि, वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। (वस्त्र चढ़ाये तथा आचमनके लिये जल चढ़ाये।)

उपवस्त्र—

उपवस्त्रं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।
भक्त्या समर्पितं देव प्रसीद परमेश्वर॥
सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूपᳪ सं व्ययस्व विभावसो॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। उपवस्त्रं समर्पयामि, उपवस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। (उपवस्त्र चढ़ायें तथा आचमनके लिये जल दे।)

यज्ञोपवीत—

नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। यज्ञोपवीतं समर्पयामि, यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। (यज्ञोपवीत समर्पित करे तथा आचमनके लिये जल चढ़ाये।)

चन्दन—

श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्योर्ज्याम्।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। गन्धानुलेपनं समर्पयामि। (चन्दन उपलेपित करे।)

सुगन्धित द्रव्य—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। सुगन्धिद्रव्यं समर्पयामि। (सुगन्धित द्रव्य चढ़ाये।)

अक्षत—

अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। अक्षतान् समर्पयामि। (कुङ्कुमयुक्त अक्षत चढ़ाये।)

पुष्पमाला—

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि भक्तितः।
मयाहृतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ २ उत।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। पुष्पमालां समर्पयामि। (पुष्प एवं पुष्पमाला चढ़ाये।)

बिल्वपत्र—

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रिधायुतम्।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम्॥

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च।
नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। बिल्वपत्राणि समर्पयामि। (बिल्वपत्र समर्पित करे।)

दूर्वा—

दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान्।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण परमेश्वर॥
काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि। (दूर्वाङ्कुर चढ़ाये।)

शमी—

अमङ्गलानां च शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च।
दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यामर्पयेऽहं शमीं शुभाम्॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। शमीपत्राणि समर्पयामि। (शमीपत्र चढ़ाये।)

आभूषण—

वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम्।
पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। रत्नाभूषणं समर्पयामि।

(रत्नाभूषण समर्पित करे।)

परिमलद्रव्य—

दिव्यगन्धसमायुक्तं नानापरिमलान्वितम्।
गन्धद्रव्यमिदं भक्त्या दत्तं स्वीकुरु शोभनम्॥
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं
ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्
पुमान् पुमाँसं परि पातु विश्वतः॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। नाना परिमलद्रव्याणि समर्पयामि। (परिमल द्रव्य चढ़ाये।)

(भगवान्‌के आगे चौकोर जलका घेरा डालकर उसमें नैवेद्यादि वस्तुओंको रखे, इसके बाद धूप-दीप निवेदन करे।)

धूप—

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।
तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। धूपमाघ्रापयामि। (धूप आघ्रापित करे।)

दीप—

साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम्॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। दीपं दर्शयामि। (दीप दिखलाये और हाथ धो ले।)

नैवेद्य—

शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥
अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। नैवेद्यं निवेदयामि। नैवेद्यान्ते ध्यानम्, ध्यानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। (नैवेद्य निवेदित करे, तदनन्तर भगवान्‌का ध्यान करके आचमनके लिये जल चढ़ाये।)

आचमनीय—

आचमनीयम् उत्तरापोऽशनं मुखप्रक्षालनार्थं हस्तप्रक्षालनार्थं च जलं समर्पयामि (जल चढ़ाये)।

ऋतुफल—

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वँहसः॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। ऋतुफलं निवेदयामि। मध्ये आचमनीयं जलम् उत्तरापोऽशनं च समर्पयामि। (ऋतुफल चढ़ाये। इसके बाद आचमन तथा उत्तरापोशनके लिये जल दे।)

करोद्वर्तन—

सिञ्चति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च।
सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। करोद्वर्तनार्थे चन्दनानुलेपनं समर्पयामि। (चन्दनका अनुलेपन करे।)

ताम्बूल—

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलालवङ्गसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥
नमस्ते आयुधायानातताय धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। मुखवासार्थे ताम्बूलं समर्पयामि। (इलायची, लौंग, सुपारीके साथ पान समर्पित करे।)

दक्षिणा—

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥
यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः। कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि। (द्रव्य—दक्षिणा समर्पित करे।)

आरती—

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम्।

आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मां वरदो भव ॥
आ रात्रि पार्थिव१रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदा१सि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः । आरार्तिक्यं समर्पयामि । (कर्पूरसे आरती करे और आरतीके बाद जल गिराये। देवताको फूल चढ़ाये। फिर दोनों हाथोंसे आरती लेकर हाथ धो ले।)

प्रदक्षिणा—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा
नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः । प्रदक्षिणां समर्पयामि । (प्रदक्षिणा करे।)

मन्त्रपुष्पाञ्जलि—

श्रद्धया सिक्तया भक्त्या हार्दप्रेम्णा समर्पितः ।
मन्त्रपुष्पाञ्जलिश्चायं कृपया प्रतिगृह्यताम् ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो
वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय
धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

श्रीसाम्बशिवाय नमः । मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि । (मन्त्र-पुष्पाञ्जलि समर्पण करे, तदनन्तर साष्टाङ्ग प्रणाम और पूजनकर्म शिवार्पण करे।)

नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।
त्राहि मां पार्वतीनाथ सर्वपापहरो भव ॥

श्रीसाम्बशिवाय नमः । प्रार्थनापूर्वकं नमस्कारान् समर्पयामि । अनया पूजया श्रीसाम्ब शिवः प्रीयतां न मम। श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु ।

इसके बाद भगवान् शंकरकी विशेष उपासनाकी दृष्टिसे पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप, रुद्राभिषेक तथा बिल्वपत्र एवं कमलपुष्पोंसे सहस्रार्चन आदि किये जा सकते है। अन्तमें संक्षेपमे उत्तराङ्ग-पूजन कर आरती, पुष्पाञ्जलि एव स्तुति करनी चाहिये। शिवरात्रि आदि पर्वोंमें बिल्वपत्रादिसे शिवार्चन तथा रात्रि-जागरणकी विशेष महिमा है।

पार्थिव-पूजन[१]

पार्थिव-पूजनके लिये स्नान, संध्योपासन आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर शुभासनपर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। पूजाकी सामग्रीको सँभालकर रख दे। अच्छी मिट्टी[२] भी रख ले। भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षकी माला पहन ले[३]। पवित्री धारण कर आचमन और प्राणायाम करे। इसके बाद विनियोगसहित **'ॐ अपवित्रः०'** इस मन्त्रसे अपना और पूजन-सामग्रीका सम्प्रोक्षण करे। रक्षादीप जला ले। विनियोगसहित **'ॐ पृथ्वि त्वया०'** इस मन्त्रसे आसनको पवित्र कर ले। हाथमे अक्षत और पुष्प लेकर स्वस्त्ययन तथा गणपति-स्मरण करे। इसके बाद दाहिने हाथमें अर्घ्यपात्र लेकर उसमें कुशत्रय, पुष्प, अक्षत, जल और द्रव्य रखकर निम्नलिखित संकल्प करे।

(क) सकाम संकल्प—ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः, अद्य""मम सर्वारिष्टनिरसनपूर्वकसर्वपापक्षयार्थं

१- जिनका यज्ञोपवीत न हुआ हो, वे प्रणव (ॐ) रहित मन्त्रोंका उच्चारण करें। पार्थिव-पूजन करनेका अधिकार स्त्री, शूद्र, अन्त्यज आदि सभी वर्णोंको है।

२- शमी या पीपलके पेड़की जड़की मिट्टी या दिमौट (वल्मीक) अच्छी मानी जाती है। या पवित्र जगहसे ऊपरसे चार अंगुल मिट्टी हटाकर भीतरकी मिट्टी अथवा गङ्गादि पवित्र स्थानोंकी मिट्टीका संग्रह करे।

३- विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजितोऽपि महादेवो न स्यात् तस्य फलप्रदः ।
तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् ॥ (लिङ्गपुराण)

दीर्घायुरारोग्यधनधान्यपुत्रपौत्रादिसमस्तसम्पत्प्रवृद्ध्यर्थं श्रुति-स्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्रीसाम्बसदाशिवप्रीत्यर्थं पार्थिवलिङ्गपूजनमहं करिष्ये।

(ख) निष्काम संकल्प—ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः, अद्य श्रीपरमात्मप्रीत्यर्थं पार्थिवलिङ्गपूजनमहं करिष्ये।

भूमि-प्रार्थना—

इस प्रकार संकल्प करनेके बाद निम्नलिखित मन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करे—

ॐ सर्वाधारे धरे देवि त्वद्रूपां मृत्तिकामिमाम्।
ग्रहीष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थं भव सुप्रभे॥

ॐ ह्रां पृथिव्यै नमः।

मिट्टीका ग्रहण—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
मृत्तिके त्वां च गृह्णामि प्रजया च धनेन च॥

'ॐ हराय नमः'—यह मन्त्र पढ़कर मिट्टी ले। मिट्टीको अच्छी तरह देखकर कंकड़ आदि निकाल दे। कम-से-कम १२ ग्राम मिट्टी हो। जल मिलाकर मिट्टीको गूँथ ले।

लिङ्ग-गठन—

'ॐ महेश्वराय नमः' कहकर लिङ्गका गठन करे। यह अँगूठेसे न छोटा हो और न वित्तेसे बड़ा। मिट्टीकी नन्हीं-सी गोली बनाकर लिङ्गके ऊपर रखे। यह 'वज्र' कहलाता है। काँसा आदिके पात्रमें बिल्वपत्र रखकर उसपर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर लिङ्गकी स्थापना करे।

प्रतिष्ठा—

'ॐ शूलपाणये नमः हे शिव इह प्रतिष्ठितो भव।' यह कहकर लिङ्गकी प्रतिष्ठा करे[1]।

विनियोग—

ॐ अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरमन्त्रस्य वामदेव ऋषि-रनुष्टुप्छन्दः श्रीसदाशिवो देवता, ओङ्कारो बीजम्, नमः शक्तिः, शिवाय इति कीलकम्, मम श्रीसाम्बसदाशिव-प्रीत्यर्थं न्यासे पार्थिवलिङ्ग-पूजने जपे च विनियोगः।

इस विनियोगसे अपने और देवताको दूर्वा अथवा कुशासे स्पर्श करते हुए तत्तद् अङ्गोंमें न्यास करे।

ऋष्यादिन्यास—

ॐ वामदेवर्षये नमः, शिरसि।
ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः, मुखे।
ॐ श्रीसदाशिवदेवतायै नमः, हृदि।
ॐ बीजाय नमः, गुह्ये।
ॐ शक्तये नमः, पादयोः।
ॐ शिवाय कीलकाय नमः, सर्वाङ्गे।
ॐ नं तत्पुरुषाय नमः, हृदये।
ॐ मं अघोराय नमः, पादयोः।
ॐ शिं सद्योजाताय नमः, गुह्ये।

१-यद्यपि सामान्यरूपसे पार्थिव-पूजनमें सुगमताकी दृष्टिसे प्रतिष्ठाकी सूक्ष्म विधि दी गयी है, किंतु पूजनके अवसरोंपर निम्नरूपसे भी प्रतिष्ठाकी विधि है, जो यहाँ दी जा रही है—

प्राणप्रतिष्ठा-मन्त्रका विनियोग—प्रतिष्ठासे पूर्व जल ग्रहण कर निम्नरूपमें विनियोग करे—

विनियोग—ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः, ऋग्यजुःसामानिच्छन्दांसि क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकं देव (देवी) - प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः।

इतना कहकर जल भूमिपर छोड़ दे।

प्राणप्रतिष्ठा—हाथमें पुष्प लेकर उसे मूर्तिपर स्पर्श करते हुए नीचे लिखे मन्त्र बोले—

ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। ॐ ऋग्यजुःसामच्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। ॐ प्राणाख्यदेवतायै नमः, हृदि। ॐ आं बीजाय नमः, गुह्ये। ॐ ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। ॐ क्रों कीलकाय नमः, सर्वाङ्गेषु।

इस प्रकार न्यास करके पुनः—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं शिवस्य प्राणा इह प्राणाः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं शिवस्य जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं शिवस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणपाणिपादपायूपस्थानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।—ऐसा कहकर मूर्तिपर पुष्प छोड़े और आवाहन करे—

ॐ भूः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि। ॐ भुवः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि। ॐ स्वः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि।

ॐ स्वामिन् सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्। तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

ॐ वां वामदेवाय नमः, मूर्ध्नि ।

ॐ यं ईशानाय नमः, मुखे ।

करन्यास—

ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः ।

ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः ।

ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः ।

ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

षडङ्गन्यास—

ॐ हृदयाय नमः ।

ॐ नं शिरसे स्वाहा ।

ॐ मं शिखायै वषट् ।

ॐ शिं कवचाय हुम् ।

ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट् ।

ॐ यं अस्त्राय फट् ।

इस प्रकार न्यास करनेके पश्चात् भगवान् साम्बसदाशिवका ध्यानपूर्वक पूजन करे—

ध्यान—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

ध्यानके अनन्तर आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि उपचारोंसे भगवान् पार्थिवेश्वरका पूजन करनेके अनन्तर अष्टमूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये—

अष्टमूर्तियोंकी पूजा

गन्ध, अक्षत, फूलके द्वारा भगवान् शंकरकी आठों मूर्तियोंकी आठों दिशाओंमें पूजा करे—

१-पूर्वदिशामें (पृथिवी-रूपमें)—ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः ।

२-ईशानमें (जलरूपमें)—ॐ भवाय जलमूर्तये नमः ।

३-उत्तरदिशामें (अग्निरूपमें)—ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः ।

४-वायव्यकोणमें (वायुरूपमें)—ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः ।

५-पश्चिमदिशामें (आकाशरूपमें)—ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः ।

६-नैर्ऋत्यकोणमें (यजमानरूपमें)—ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः ।

७-दक्षिणदिशामें (चन्द्ररूपमें)—ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः

८-अग्निकोणमें (सूर्यरूपमें)—ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः ।

इसके बाद 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका कम-से-कम एक माला अथवा दस बार जप करे । उसके बाद—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

यह मन्त्र पढ़कर देवताके दक्षिण हाथमें जपको समर्पित करे ।

प्रदक्षिणा—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥

नमस्कार—

नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः । नमस्कारान् समर्पयामि । (नमस्कार करे ।)

क्षमा-याचना—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः । क्षमायाचनां समर्पयामि । (क्षमा-याचना करे ।)

अन्तमें चरणोदक और प्रसाद ग्रहण कर पूजाकी साङ्गता करे ।

अर्पण—

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु । ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः ।

क्षमा प्रार्थना—

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां नैव हि जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सदाशिव।
यत् पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

(क्षमा-प्रार्थना करे।)

विसर्जन—

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर।
मम पूजां गृहीत्वेमां पुनरागमनाय च॥

ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः। ॐ साम्बसदाशिवाय नमः, ॐ साम्बसदाशिवाय नमः, ॐ साम्बसदाशिवाय नमः। (ऐसा कहकर विसर्जन[1] करे।)

समर्पण—अनेन पार्थिवलिङ्गपूजनकर्मणा श्रीयज्ञ-स्वरूपः शिवः प्रीयताम्, न मम। (पूजनकर्म-समर्पण करे।)

(नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश)

शिव-नामकी महिमा

(श्रीजनकनन्दनसिंहजी)

न यस्य कालो न च बन्धमुक्ती
न यः पुमान्न प्रकृतिर्न विश्वम्।
विचित्ररूपाय शिवाय तस्मै
नमः परस्मै परमेश्वराय॥

सब शास्त्रोंमें भगवान्‌के दो रूप माने गये हैं—एक सगुण और दूसरा निर्गुण। वास्तवमें दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं। निर्गुण ब्रह्ममें निष्क्रियता होनेसे गुणका होना सम्भव नहीं है, तथापि वही मायामें प्रविष्ट होकर भक्तोंके रक्षणार्थ, धर्म-संस्थापनार्थ, जप-पूजा इत्यादिके अर्थ निर्गुणसे सगुण रूप धारण कर लेते हैं।

स्वरूप-भेदसे उपासनामें भी भेद है। एक निर्गुण-उपासना कहलाती है और दूसरी सगुण-उपासना। इनमें निर्गुण-उपासना अत्यन्त क्लिष्ट है। जबतक मनुष्य परमात्माके निर्गुण स्वरूपको अच्छी तरहसे नहीं समझ लेता, तबतक सगुणोपासनाको छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। शिवपुराण-वायुसंहिता (उ०, अ० ११)में सगुणोपासनाके आठ भेद बताये गये हैं। यथा—भक्तोंमें प्रीति, पूजाका अनुमोदन, स्वयं अर्चा करना, प्रभुके निमित्त अङ्गोंकी चेष्टा करना, कथा-श्रवणमें भक्ति, स्वर, नेत्र और अङ्गोंकी विक्रिया, भगवान्‌का नित्य स्मरण और उनका ही आश्रय। इस प्रकारके चिह्न जिसमें हों वही सर्वश्रेष्ठ है, चाहे वह म्लेच्छ ही क्यों न हो—

मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायाञ्चानुमोदनम्।
स्वयमप्यर्चनञ्चैव मदर्थं चाङ्गचेष्टितम्॥
मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रियाः।
ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मामुपजीवति॥
एवमष्टविधं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते॥

यद्यपि श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन इत्यादि सभी समान फलप्रद हैं, तथापि इनमें स्मरण विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। निरन्तर नामस्मरणसे मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध होकर हृदयमें एक प्रकारकी आत्मशक्ति उत्पन्न होती है, जो बहुत शीघ्र ही उसको अपना अभीष्ट फल प्राप्त करा देती है। यों तो भगवान्‌के अनेक नाम हैं, किंतु भगवान् स्वयं कहते हैं—'हे वरानने! मेरा 'शिव' यह नाम उत्तमोत्तम है, वही परब्रह्म है। 'शिव' यह नाम मुझ ब्रह्मकी अभिव्यक्ति है। शिव-नामसे यथार्थमें मुझे ही समझो। जो वेदान्तसे प्रतिपादित अव्यक्त परब्रह्म है, द्व्यक्षर 'शिव' भी वही है। दो अक्षरोंका यह 'शिव' नाम परब्रह्मस्वरूप एवं तारक है, इससे भिन्न कोई तारक नहीं है'—

शिव इत्यस्ति यन्नाम तद्धि नामोत्तमोत्तमम्।
तदेव परमं ब्रह्म तदेव हि वरानने॥
शिवनामस्वरूपेण व्यक्तं ब्रह्माहमेव हि।
शिवनामाहमेवेति विजानीहि यथार्थतः॥
यदव्यक्तं परं ब्रह्म वेदान्तप्रतिपादितम्।

---

[1] तीर्थजलमें अथवा किसी पवित्र स्थानमें विसर्जन करना चाहिये।

तदेवेदं विजानीहि शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥
तारकं ब्रह्म परमं शिव इत्यक्षरद्वयम्।
नैतस्मादपरं किंचित् तारकं ब्रह्म सर्वथा ॥

(शिवरहस्य-सप्तमांश, अ० २३)

भगवान् मायापति हैं, इस हेतु भगवान्‌के नामके साथ उनकी मायाका भी नाम होना आवश्यक है। शक्ति शक्तिमान्‌से भिन्न नहीं है और न वह कभी शक्तिमान्‌को छोड़कर रह ही सकती है। दोनोंका नाम एक साथ मिलाकर उच्चारण करनेकी प्रथा प्रायः सभी सम्प्रदायोंमें देखी जाती है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके कृष्णजन्मखण्डमें नारायणने नारदसे कहा है कि प्रकृति जगत्‌की माता है तथा पुरुष जगत्‌के पिता हैं। तीनों लोकोंकी माताका दर्जा पितासे सौगुना अधिक है, इससे 'हे राधाकृष्ण, हे गौरीशंकर' ऐसे प्रयोग वेदोंमें मिलते हैं। 'हे कृष्णराधे' 'हे ईशगौरी' यह कोई नहीं कहता। जो पहले पुरुषके नामका उच्चारण (करके पश्चात् प्रकृतिके नामका उच्चारण) करता है, वह मनुष्य वेदवाक्यका उल्लङ्घन करनेवाला मातृद्वेषी होता है। जो आदिमें राधाका नाम लेकर पश्चात् परात्पर कृष्णका नाम लेता है, वही पण्डित, योगी अनायास ही गोलोकको प्राप्त करता है।

भगवान्‌का नाम चलते-फिरते, दिन-रात, उठते-बैठते, जैसे हो वैसे ही जपना चाहिये, इसमें कोई बाधा नहीं है। नाम-जपमें किसी नियम-संयमकी आवश्यकता नहीं है और देश-कालका भी विचार नहीं है—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि सर्वकालेषु सर्वदा।
नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात् ॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा।
विद्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तने ॥
न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते ॥
कालोऽस्ति यज्ञे दाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते ॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि पिबन् भुञ्जञ्जपंस्तथा।
कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात् ॥

(वैश्वानरसंहिता, नारदवाक्य)

आसने च तथा निद्राकाले भोजनकर्मणि।
क्रीडने गमने नित्यं राममेव विचिन्तयेत् ॥

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड)

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः।
शिवं स्मर शिवं ध्याय शिवं चिन्तय सर्वदा ॥

(सौरपुराण, अ० ४७)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(गीता)

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जाग्रदुन्मिषन्निमिषन्नपि।
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि शिवं सर्वत्र चिन्तयेत् ॥

(शिवधर्मपुराण, अ० ११)

'जो मनुष्य पवित्रता अथवा अपवित्रताका विचार न कर सदा-सर्वदा नाम-स्मरणमें रत रहता है, वह बहुत शीघ्र संसार (आवागमन) से मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुके नाम-स्मरणमें न देशका नियम है, न कालका—यह निश्चय समझो। न तो देश-कालका नियम है और न पवित्रता अथवा अपवित्रताका विचार है, मनुष्य केवल राम-नामके कीर्तनसे मुक्त हो जाता है। यज्ञमें, दानमें, स्नानमें तथा जपमें भी कालका विचार है, किंतु हे राजन्! विष्णुके कीर्तनमें कालका विधान बिलकुल नहीं है। घूमता हुआ, बैठा हुआ, सोता हुआ, पीता हुआ, खाता हुआ तथा जपता हुआ कृष्णनामके संकीर्तनमात्रसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। बैठे हुए, सोते हुए, खाते हुए, खेलते हुए तथा चलते-फिरते सदा रामका ही चिन्तन करते रहना चाहिये। अरे मूर्ख! यमपुरीकी वृक्षावली निकट ही दिखलायी देती है, इसलिये शिवका स्मरण कर, शिवका ही ध्यान कर और शिवका ही सर्वकालमें स्मरण कर। चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते तथा आँख खोले हुए और मूँदे हुए, पवित्रतामें अथवा अपवित्रतामें सर्वत्र शिवका ही चिन्तन करना चाहिये।'

नाम-जप करनेकी विधि महर्षि पतञ्जलि यह बतलाते हैं कि नाम और रूप दोनोंको मिलाकर जप करना चाहिये, अर्थात् नामके साथ नामीके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये और उसमें अपनेको तन्मय कर देना चाहिये—

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्। ततः

प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। (योगसूत्र)

नाम और नामीका गोस्वामी तुलसीदासजी क्या सुन्दर वर्णन करते हैं—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥

शास्त्रोंमें नाम-जपका जो फल कहा है, वह बार-बार बहुत दिनोंतक नाम-जप करनेसे भी नहीं मिलता, इसका कारण महात्माओंने दस प्रकारके नामापराधोंका अज्ञान बतलाया है। दस अपराधोंसे बचकर नाम-जप करनेसे अति शीघ्र फल होता है।

सत्पुरुषोंकी निन्दा, शिव और विष्णुके गुणों और नामोंमें भेद-बुद्धि, गुरुकी निन्दा करना, श्रुति और शास्त्रोंकी निन्दा करना, भगवान्‌के नाममें अर्थवादकी कल्पना करना, नामके बलपर पाप करना, धर्म, व्रत, दान, होम आदि शुभ कर्मोंके समान ही नाम-स्मरणको भी एक शुभ कर्म मानना, नामविमुख एवं अश्रद्धालु लोगोंके सुनते नामका उपदेश करना, नाम-माहात्म्य सुनकर भी उसमें प्रेम नहीं करना और अहंता, ममताको ही परम पुरुषार्थ मानकर उन्हींमें रत रहना और नामपरायण नहीं होना—ये दस नामापराध हैं। यदि प्रमादवश इन दसोंमेंसे कोई-सा भी अपराध हो जाय तो उससे छूटकर शुद्ध होनेका उपाय भी पुनः नामकीर्तन ही है। भूलके लिये पश्चात्ताप करते हुए प्रभुनाम-कीर्तनसे नामापराध छूट जाता है—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च॥
(पद्मपुराण)

निरन्तर नाम-कीर्तनसे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। नामके यथार्थ माहात्म्यको समझकर प्रेमपूर्वक नाम-जप करनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर भगवद्भक्तिरूप मधुर फलकी प्राप्ति होती है और सकाम मनुष्यको अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंकी सिद्धि अनायास ही हो जाती है। भगवान् शिवके नामका कुछ माहात्म्य यहाँ लिखा जाता है। नाम-माहात्म्यसे सब शास्त्र भरे पड़े हैं, यहाँ केवल कुछ वचनोंका अनुवाद मात्र दिया जाता है (विस्तार-भयसे श्लोक नहीं दिये गये)—

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'महादेव, महादेव' कहनेवालेके पीछे-पीछे मैं नामश्रवणके लोभसे अत्यन्त डरता हुआ जाता हूँ। जो 'शिव' शब्दका उच्चारण करके प्राणोंका त्याग करता है, वह कोटि जंन्मके पापोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त करता है। 'शिव' शब्द कल्याणवाची है और 'कल्याण' शब्द मुक्तिवाचक है, वह मुक्ति भगवान् शंकरसे ही प्राप्त होती है, इसीलिये वे 'शिव' कहलाते हैं। धन तथा बान्धवोंके नाश हो जानेके कारण शोकसागरमें मग्न हुआ मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण करके सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है। 'शि' का अर्थ है पापोंका नाश करनेवाला और 'व' कहते हैं मुक्ति देनेवालेको। भगवान् शंकरमें ये दोनों गुण हैं, इसीलिये वे 'शिव' कहलाते हैं। 'शिव' यह मङ्गलमय नाम जिसकी वाणीमें रहता है, उसके करोड़ जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। 'शि' का अर्थ है मङ्गल और 'व' कहते हैं दाताको, इसलिये जो मङ्गलदाता है वही शिव है। भगवान् शिव विश्वभरके मनुष्योंका सदा 'शं' कल्याण करते है और 'कल्याण' मोक्षको कहते हैं। इसीसे वे 'शंकर' कहलाते हैं। ब्रह्मादि देवता तथा वेदका उपदेश करनेवाले जो कोई भी संसारमें महान् कहलाते हैं, उन सबके देव अर्थात् उपास्य होनेसे वे ऋषि 'महादेव' कहे जाते हैं। अथवा महती अर्थात् विश्वभरमें पूजित जो मूल प्रकृति ईश्वरी है, उस प्रकृतिद्वारा पूजित देव 'महादेव' कहलाते हैं। संसारमें स्थित सारी आत्माओंके ईश्वर (स्वामी) होनेसे वे 'महेश्वर' हैं। 'महादेव', 'महादेव' इस प्रकारकी जो रट लगाता है, उसके पीछे-पीछे मैं नाम-श्रवणके लोभसे संतुष्ट हुआ घूमता हूँ। (ब्रह्मवैवर्तपुराण—ब्रह्मखण्ड)

'शिवजीने मृत्युको देखकर कहा कि इसने मरणकालमें मेरा नाम लिया है। मुझे लक्ष्य करके अथवा और किसी वस्तुके अभिप्रायसे जो मेरा नाम एकाध अक्षर जोड़कर अथवा घटाकर भी कहता है, उसे मैं सत्य ही अपना लोक प्रदान करता हूँ। इसने मरते समय 'प्रहर' शब्दका उच्चारण किया है। केवल 'हर' शब्द ही परम पदका देनेवाला है। फिर इसने तो 'प्र' शब्द अधिक कहा है। यमराजसे मेरा आदेश कह दो कि जो 'शिव' नामके जपनेवाले हैं, उन्हें तुम नमस्कार किया करो। जो लोग शिवको नमस्कार करते हैं, उनकी पूजा करते हैं,

उनके नाम-गुणका कीर्तन करते हैं, उनकी उपासना करते हैं अथवा दास्यभावसे उनकी भक्ति करते हैं, श्रुतिमें वर्णित पञ्चाक्षरमन्त्र—'नमः शिवाय'का जप करते हैं तथा 'शतरुद्रिय' का अनुष्ठान करते हैं, उनपर मेरा ही शासन है—इसमें तनिक भी विचार न करना।

(पद्मपुराण-पातालखण्ड—शिवमृत्युसंवाद)

जो गति योगियों और काशीमें शरीर छोड़नेवालोंकी होती है, वही गति मेरे नामका कीर्तन करनेवालोंको प्राप्त होती है। जो मनुष्य मेरे मुक्तिदायक—महेश, पिनाकपाणि, शम्भु, गिरीश, हर, शंकर, चन्द्रमौलि, विश्वेश्वर, अन्धकरिपु, पुरसूदन इत्यादि नामोंका उच्चारण करते हुए मेरी अर्चा करते हैं, वे धन्य हैं। जो नीललोहित, दिगम्बर, कृत्तिवास, श्रीकण्ठ, शान्त, निरुपाधिक, निर्विकार, मृत्युञ्जय, अव्यय, निधीश, गणेश्वर इत्यादि नामोंका उच्चारण करते हुए मेरी पूजा करते हैं, वे धन्य है। मेरे नामरूपी अमृतका पान करनेवाले और निरन्तर मेरे चरणोंका पूजन करनेवाले तथा मेरे लिङ्गोंका पूजन करनेवाले मेरे प्रिय भक्त पुनः माताका दूध पीनेकी न तो इच्छा करते हैं और न उन्हें फिर वह प्राप्त होता है। वे तो सारे दुःखोंसे छूटकर मेरे लोकमें अनन्त कालतक निवास करते हैं। महेशरूपी नामकी दिव्य अमृतधारासे परिप्लावित मार्गमेंसे होकर भी जो निकल जाते हैं, वे कदापि शोकको प्राप्त नहीं होते। (शिवरहस्य-सप्तमांश, प्रथम अध्याय)

'भगवान् श्रीशिव यमदूतोंको आज्ञा देते हैं कि 'आज कोई महापापी ब्रह्महत्या करनेवाला मरा है, उसके पापोंकी गिनती ही नहीं है। उसने मरते समय जो वाक्य कहे उन्हें मैं कहता हूँ, सुनो। 'आहर अस्त्रम्' (अस्त्र लाओ), 'संहर एतौ' (इनको मारो)' 'प्रहर प्रहर' (प्रहार करो, प्रहार करो) यह कहता हुआ वह पापी ब्रह्महत्यारा मर गया। किंतु उपर्युक्त वाक्योंके उच्चारणसे उसके सारे पाप नष्ट हो गये। 'आहर' आदि वाक्योंके अन्तर्भूत 'हर' नाम पापोंका नाश करनेवाला है। उसीका मरणकालमें उच्चारण होनेसे उसके सारे पापोंका नाश हो गया। बुद्धिपूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक जो लोग मरणके समय मेरे नामका उच्चारण करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं।' 'प्रहर प्रहर' इन वाक्योंमें मेरे नामका जो दो बार उच्चारण हुआ, यही मेरी पूजाके लिये पर्याप्त हो गया। यह मैं भुजा उठाकर डंकेकी चोट कहता हूँ। मृत्युकालमें जो मेरे नामोंका स्मरण करते हैं, मैं उन्हें शीघ्र ही मोक्ष देता हूँ, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है।' 'आहर' आदि वाक्योंमें उपसर्गोंको हटा देनेसे मेरे मुक्तिदायक नाम ही शेष रह जाते हैं। मृत्युकालमें यदि कोई महापातकी भी मेरा नाम लेता है तो उसे मैं उस नामके प्रभावसे मोक्ष दे देता हूँ। मेरे जितने नाम हैं उन सबमें मुक्ति देनेका स्वभाव है। मृत्युकालमें मेरा नाम लेकर अनेक मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर चुके है। नामका माहात्म्य ही ऐसा है, इसमें किसी प्रकारका आश्चर्य नहीं करना चाहिये। 'हर' यह नाम अनेकों पापोंको हरता है। मैं पापोंको हरनेवाला हूँ, इसीलिये मुझे लोग 'हर' कहते हैं। हालहीमें महापाप करके अन्तकालमें शिवस्मरण करनेसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसीलिये हे सौम्य ! तुम उसे यहाँ तुरंत ले आओ।'

श्रीविष्णु ब्रह्माजीसे कहते हैं कि जो 'शम्भु, शम्भु, महेश' इन नामोंका उच्चारण बराबर आनन्दपूर्वक करते हैं, उनको गर्भवासका भय नहीं होता। 'हे शिव ! हे परमेश !'—इस प्रकार आनन्दपूर्वक जो निरन्तर भगवान् शिवका नाम लेते हैं, उन्हें गर्भमें आना नहीं पड़ता। इस प्रकार यहाँ बहुत-से श्लोकोंमें नाममाहात्म्य कहा है, किंतु विस्तारभयसे थोड़ा ही लिखा है। जो प्रतिदिन आनन्दपूर्वक शंकरका नाम लेते हैं, वे धन्यवादके पात्र हैं—यह हम सत्य-सत्य कहते हैं। संसार-रूपी घोर सागरसे तरनेके लिये शंकरनामरूप ही नौका है। इसको छोड़कर संसार-सागरसे पार होनेका कोई और उपाय नहीं है। हे ब्रह्मन् ! यह निर्मल शिव-नाम मधुर-से-भी मधुर है और मुक्तिको देनेवाला तथा संसारभयका नाश करनेवाला है। (शिवरहस्य ७।२०)

पूर्वकालमें एक पापी कुष्ठ रोगसे पीड़ित ब्राह्मण कीकट (मगध) देशमें रहता था। वह सदा ब्रह्महत्यादि पाप किया करता था। उस ब्राह्मणको वृद्धावस्थामें सोमवारके दिन पुत्र पैदा हुआ। उसने हर्षसे उस पुत्रका नाम 'सोमवासर' रख दिया। वह ब्राह्मण अपने पुत्रको बराबर हर काममें 'सोमवासर-सोमवासर' कहकर पुकारा करता था। एक दिन उस ब्राह्मणको साँपने काट लिया। विषकी ज्वालासे पीड़ित होकर बार-बार 'सोमवासर-सोमवासर' पुकारते-पुकारते ब्राह्मणका देहान्त हो गया। उसी समय शिवके गण तुरंत एक सुन्दर

विमान लाये और उसको उसमें चढ़ाकर सब देवताओंसे पूजित कराते हुए कैलास ले गये। (शिवरहस्य ७। २०)

भगवान् शिव स्वयं यमराजसे कहते हैं—

जो पुरुष प्रसंगवश भी मेरा नाम उत्साहपूर्वक रटेगा, वह सर्वथा पापोंसे छूट जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। हे यमराज ! मेरा नाम पापोंके वनको जलानेमें दावानलके समान है। मेरे एक नामका उच्चारण करते ही पापोंका समूह तुरंत नष्ट हो जाता है। मेरे नामका श्रद्धापूर्वक स्मरण करनेपर पाप कहाँ ठहर सकते हैं ? क्योंकि पापोंके झुंडका नाश करनेमें तो उसे वज्रपातकी उपमा दी गयी है। जिस प्रकार कालाग्निकी ज्वालाओंसे करोड़ों पर्वत जल गये थे, उसी प्रकार मेरे नामरूपी अग्निसे करोड़ों महापातक नष्ट हो जाते हैं। मैं उस चाण्डालको भी निःसंदेह घोर संसारसमुद्रसे तार देता हूँ, जिसका चित्त मेरे नाम-स्मरणमें अनुरक्त है। जिसने पापोंके झुंडका नाश करनेवाला मेरा नाम अन्तकालमें स्मरण कर लिया उसने घोर संसार-समुद्रको चुटकियोंमें पार कर लिया समझो। मेरे नामका स्मरण मेरे ही स्मरणके तुल्य है और मेरी स्मृति हो जानेपर पाप कहाँ ठहर सकते हैं ? हे धर्मराज ! किसी पुरुषके अंदर पाप तभीतक ठहरते हैं, जबतक कि वह महापातकोंका नाश करनेवाले मेरे नामका स्मरण नहीं करता। करोड़ों महापातकोंका नाश तभीतक नहीं होता, जबतक मन मेरे नाम-स्मरणमें लीन नहीं हो जाता। इसने महापातकोंका नाश करनेवाले मेरे 'सोम' नामका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ा, इसलिये इसकी मुक्तिमें कोई संदेह ही नहीं हो सकता। हे यम ! मैं तुम्हारे हितकी एक बात और कहता हूँ, वह यह है कि तुम प्रतिदिन मेरे भक्तोंकी यत्नपूर्वक पूजा किया करो, क्योंकि वे मुझे सर्वदा प्यारे हैं। (शिव० सप्त० अ० २०)

ब्रह्माजी महर्षि गौतमसे कहते हैं—

'शिव'नामरूपी मणि जिसके कण्ठमें सदा विराजमान रहती है, वह नीलकण्ठका ही स्वरूप बन जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। हे द्विजवर ! तुम नित्य शंकरका पूजन करो और शिवनामामृतका पान करो, शिवनामसे बढ़कर कोई दूसरा अमृत नहीं है। मृत्युके समय 'शिव' ये दो अक्षर भगवान् शंकरकी कृपाके विना मनुष्यके होठोंपर नहीं आते। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

मुझ-जैसे अस्थिरचित्त पुरुष 'शिव'नामस्मरणके फलका वर्णन नहीं कर सकते, स्वयं शंकर ही इस कार्यको कर सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया—*'राम न सकहिं नाम गुन गाईं।'* 'शिव'नामरूपी कुल्हाड़ीसे संसाररूपी वृक्ष जब एक बार कट जाता है तो फिर वह दुबारा नहीं जमता। पाप ही संसाररूपी वृक्षकी जड़ोंकी जड़ है और 'शिव'नामका एक बार जप करनेसे ही उसका नाश हो जाता है। (शिव० ७। २२)

यमराज भी गौतमजीसे कहते हैं—

'महान्-से-महान् पापी भी अथवा जिसने जीवनमें कोई भी पाप न छोड़ा हो, वह अन्तकालमें यदि 'शिव'नामका उच्चारण कर ले तो वह फिर मेरा द्वार नहीं देख सकता। 'शिव' शब्दका उच्चारण किये बिना ब्राह्मण भी मुक्त नहीं हो सकता और 'शिव' शब्दका उच्चारण कर चाण्डाल भी मुक्त हो सकता है। यों तो शिवजीके सभी नाम मोक्षदायक हैं, किंतु उन सबमें 'शिव' नाम सर्वश्रेष्ठ है, उसका माहात्म्य गायत्रीके समान है।' (शिव० ७। २२)

श्रीमद्भागवतमें भगवतीका वाक्य है—

'शिव' इस द्व्यक्षर नामका एक बार प्रसंगवश उच्चारण करनेसे भी मनुष्यके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। आश्चर्य है कि आप उन पुण्यश्लोक, अलंघ्यशासन भगवान् शिवका विरोध करते हैं। इससे बढ़कर अमङ्गल क्या हो सकता है ?

सौरपुराण (अ० ६४) में लिखा है—

'जो बिल्ववृक्षके नीचे बैठकर तीन रात उपोषित रहकर पवित्रतापूर्वक 'शिव'नामका एक लाख जप करता है, वह भ्रूणहत्याके पापसे छूट जाता है।

जितने भी स्थूल अथवा सूक्ष्म पाप हैं, वे सारे-के-सारे केवल क्षणभर शिवका चिन्तन करनेसे तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

जलके अंदर निमग्न होकर शिवका ध्यान करते हुए प्रसन्न-चित्तसे 'हर' इस नामको केवल आठ बार जपनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है।

महादेवका स्मरण करनेवाले यदि पापी भी हों तो उन्हें महात्मा ही समझना चाहिये, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

जो लोग भगवान् महेश्वरके नामोंका अज्ञानपूर्वक भी

उच्चारण करते हैं, भगवान् भोलेनाथ उन्हें भी मुक्ति दे डालते हैं, इससे अधिक और क्या चाहिये ?' (सौ० पु० अ० ३)

हे महादेव ! आपके अतिरिक्त संसारमें कुछ नहीं है। इस पृथिवीतलपर महान्-से-महान् पाप करके भी मनुष्य आपके नाम-संकीर्तनके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। (पद्मपु०)

'शिव'-नामका उच्चारण करनेवालेको नरक अथवा यमराजका भय नहीं होता।

ब्रह्माजी यमदूतोंसे कहते हैं—

जो बैठे हुए, सोते हुए, चलते-फिरते, दिन-रात 'शिव' नामका कीर्तन करते रहते हैं, उनपर तुम्हारा अधिकार नहीं है। (शि० पु०, ध० सं०, अ० १६)

जिसने 'शिव' अथवा 'रुद्र' अथवा 'हर' इन द्व्यक्षर नामोंमेंसे किसीका एक बार भी उच्चारण कर लिया वह (मरनेके बाद) अवश्य रुद्रलोकको जाता है। (शि० पु०, ध०, सं०, अ० १५)

जो 'नमः शिवाय' इस मन्त्रका उच्चारण करता है, उसका मुख देखनेसे निश्चय ही तीर्थ-दर्शनका फल प्राप्त होता है।

जिसके मुखमें 'शिव'-नाम तथा शरीरपर भस्म और रुद्राक्ष रहता है, उसके दर्शनसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं। (शिवपु०, शा०, सं, अ० ३०)

जो पुरुष अन्त-समयमें शिवका स्मरण करता है, वह चाहे ब्रह्महत्यारा हो, चाहे शराबी हो, चोर हो अथवा गुरुस्त्रीगामी ही क्यों न हो, शिवके साथ सायुज्यको प्राप्त होता है। (सौरपु० अ० ६६)

जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक भगवान् शम्भुके नामोंका कीर्तन करता है, मुक्ति सदा उसके करतलगत रहती है। (सौरपु० अ० ४)

जो मनुष्य प्रसंगवश, कौतूहलसे, लोभसे, भयसे अथवा अज्ञानसे भी 'हर'-नामका उच्चारण करता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है। (सौरपु० अ० ७)

'शिव' नामके स्मरणसे कर्मोंकी न्यूनता पूर्ण हो जाती है—

यत्पादपद्मस्मरणाद्यच्छ्रीनामजपादपि ।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ॥
(शिवपु०, कै०, अ० ९।५६)

कलियुगमें 'शिव'-नाम सब नामोंसे बढ़कर है—

ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः ।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥
(कूर्मपु०, अ० १८)

नाम-कीर्तनका सबको अधिकार है—

नामसंकीर्तने ध्याने सर्व एवाधिकारिणः ।
(शिवगीता)

परमात्माके विशिष्ट नाम ये हैं—

न च नामानि रूपाणि शिवस्य परमात्मनः ।
तथापि मायया तस्य नामरूपे प्रकल्पिते ॥
शिवो रुद्रो महादेवः शंकरो ब्रह्म सत् परम् ।
एवमादीनि नामानि विशिष्टानि परस्य तु ॥
(सूतसं०, यज्ञवै०, खं०, अ० २७)

शिवशंकररुद्रादिशब्दाभ्यासं च सादरम् ।
देवदेवस्य विप्रेन्द्रा महाप्रीतिकरं सदा ॥
कुलं पवित्रं पितरः समुद्धृता
वसुन्धरा तेन च पाविता द्विजाः ।
सनातनोऽनादिरनन्तविग्रहो
हृदि स्थितो यस्य सदैव शंकरः ॥

'शिव'-नामकी महिमा कहाँतक कही जाय ? पुष्पदन्ताचार्यने अपने महिम्नःस्तोत्रमें कहा है कि 'स्याहीके लिये तो काजलका एक पहाड़ हो और समुद्रकी दावातमें उसे भरकर रखा जाय, कल्पवृक्षकी टहनियोंकी कलम बनायी जाय और पृथिवीको कागज बनाकर भगवती सरस्वती अनन्त कालतक लिखती रहें तब भी हे प्रभो ! आपके गुणोंका अन्त नहीं आ सकता'। भला, जब माता सरस्वती ही भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं, तब दूसरा कोई इस कार्यको क्या कर सकता है ? इसी बहाने भगवान्‌का यत्किंचित् स्मरण हो जाय, केवल इस हेतुसे कुछ श्लोकार्थोंका संग्रह प्रेमी पाठकोंके लिये कर दिया गया है। भगवान्‌का नाम-कीर्तन जीवके लिये परम अवलम्बन है, इससे बड़ा सहारा और कोई हो ही नहीं सकता। नामपर विश्वास करनेवाले मनुष्यको इसके प्रमाणकी आवश्यकता ही नहीं होती। जिसने भगवन्नामका आश्रय ले लिया, वह स्नेहमयी जननीकी सुखद गोदकी भाँति भगवान्‌की निरापद गोदमें सदाके लिये जा बैठा। परंतु यह

विश्वास और श्रद्धाके बिना नहीं होता। विश्वास हुए बिना मनुष्य भगवन्नामका आश्रय नहीं लेता। भगवन्नामका आश्रय लिये बिना मनसे जगत्‌के विषयोंका आश्रय नहीं छूटता और जबतक विषयोंका आश्रय है, तबतक किसी प्रकार भी सच्चे सुख और शान्तिका अनुभव नहीं हो सकता। वासनानाशका सर्वोत्तम उपाय मनको प्रभुके नाम-जप-कीर्तनादिमें बराबर लगाये रहना और विश्वास करना ही है।

षडक्षर या पञ्चाक्षर-मन्त्र- ॐ नमः शिवाय, नमः शिवाय

(श्रीगौरीशंकरजी गनेड़ीवाला)

भगवान् श्रीमहादेवजी देवी पार्वतीजीसे कहते हैं कि पञ्चाक्षर-मन्त्रका पूरा माहात्म्य करोड़ों वर्षोंमें भी कोई नहीं कह सकता। परंतु संक्षेपसे हम सुनाते हैं। प्रलयकालमें स्थावर, जंगम, देव, असुर और नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। तुम भी प्रकृतिके रूपमें लीन हो जाती हो। तब हम एकाकी रहते हैं, कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्तिद्वारा पालन किये हुए पञ्चाक्षर-मन्त्रमें निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं, तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारणकर नारायणरूपसे समुद्रमें शयन करती है। उसके नाभि-कमलसे पञ्चमुख ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करनेकी सामर्थ्यके लिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर उनके हितके लिये मैंने पाँच मुखोंसे पाँच अक्षरोंका उच्चारण किया। उन वर्णोंको ब्रह्माजीने पाँच मुखोंसे ग्रहण किया और वाच्य-वाचक-भावके द्वारा परमेश्वरको जाना।

यह पञ्चाक्षर-मन्त्र शिवका वाचक है। उन पाँच अक्षरोंके त्रैलोक्य-पूजित शिवजी वाच्य हैं। ब्रह्माजीने इस पञ्चाक्षर-मन्त्रका विधिपूर्वक दीर्घ कालतक जपकर सिद्धि प्राप्त की और तदनन्तर भगवान् शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये मेरु-पर्वतके मूजवान् शिखरपर दिव्य हजार वर्षोंतक तप किया। उनकी दृढ़ भक्ति देख भगवान्‌ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोक-हितके लिये पञ्चाक्षर-मन्त्रके ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बीज, षडङ्गन्यास, दिग्बन्ध और विनियोगका उपदेश किया।

ऋषिगण भी इस तरह मन्त्रका माहात्म्य सुनकर अनुष्ठान करने लगे, क्योंकि उसीके प्रभावसे देवता, मनुष्य, असुर, चार वर्णोंके धर्मादि, वेद, ऋषि तथा शाश्वत धर्म और यह जगत् स्थित है।

पञ्चाक्षर-मन्त्र अल्पाक्षर है। इसमें अनेक अर्थ भरे हैं। वेदका सार, मुक्तिका देनेवाला, असंदिग्ध, अनेक सिद्धि देनेवाला, सुखसे उच्चारण करने योग्य, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, सब विद्याओंका बीज, सब मन्त्रोंमें आदि, वट-बीजकी भाँति बहुत विस्तारयुक्त और परमेश्वरका वाक्य पञ्चाक्षर ही है। इसके आदिमें प्रणव लगा देनेसे यह षडक्षर हो जाता है।

पञ्चाक्षर तथा षडक्षर-मन्त्रमें वाच्य-वाचक-भावके द्वारा शिव स्थित हैं। शिव वाच्य हैं और मन्त्र वाचक है, यह वाच्य-वाचक-भाव अनादि-सिद्ध है। जिस पुरुषके हृदयमें पञ्चाक्षर-मन्त्र विद्यमान है, उसने मानो सब शास्त्र और वेद पढ़ लिये, क्योंकि शिव ही ज्ञान है, वही परमपद हैं। इसलिये नित्य पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। पञ्चाक्षर भगवान् शिवजीका हृदय, गुह्यसे भी गुह्य और मोक्ष-ज्ञानका सबसे उत्तम साधन है।

न्यास तीन प्रकारका है—उत्पत्ति, स्थिति और संहार। (१) उत्पत्ति-न्यास ब्रह्मचारियोंको करना चाहिये, (२) स्थिति-न्यास गृहस्थके करने योग्य है, (३) संहार-न्यासके एकमात्र अधिकारी संन्यासी हैं।

इस प्रकार गुरुसे प्राप्त पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। क्योंकि सब यज्ञोंमें जपयज्ञ उत्तम है। और सब यज्ञोंमें हिंसा होती है, किंतु जपयज्ञ हिंसारहित है। इसीसे और सब यज्ञ, दान, तप आदि जपयज्ञके षोडशांशकी भी तुलना नहीं कर सकते। जप करनेसे देवता प्रसन्न होते हैं और भोग तथा मोक्ष देते हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच, ग्रहादि भी भयभीत होकर जप करनेवालेसे दूर रहते हैं। जपसे पुरुष मृत्युको भी जीत लेता है।

न्यास करते समय पहले करन्यास, बादमें देहन्यास और पीछे अङ्गन्यास करे।

पुरश्चरणके समय मन्त्रके वर्णोंसे चौगुने लाख जप करे। रातको भोजन करे। सब प्रकार नियमसे रहे। आसन बाँधकर पूर्वमुख या उत्तर-मुख बैठकर एकाग्रचित्त हो मौन-भावसे जप करे और आदि-अन्तमें पञ्चाक्षरजपपूर्वक प्राणायाम करे, अन्तमें १०८ बीज (ॐ) मन्त्रका जप करे।

(ॐ) हृदयाय नमः, (न) शिरसे स्वाहा, (मः) शिखायै वषट् (शि) कवचाय हुं, (वा) नेत्रत्रयाय वौषट्, (य) अस्त्राय फट्।

आचारहीन पुरुषका सब साधन निष्फल होता है। आचार ही परमधर्म और परमतप है। आचारयुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं रहता। सदाचारके पालन करनेसे पुरुष ऋषि और देवतातक बन जाते हैं। मुख्यतः असत्यका त्याग करे, क्योंकि सत्य ब्रह्म है और असत्य ब्रह्मका दूषण है। असत्य तथा कठोर वाक्य, पैशुन्य (चुगली), परस्त्री, पराया धन और हिंसा आदिको मन-वचन-कर्मसे त्याग दे। दीर्घायु चाहनेवाला पवित्र होकर गङ्गादि नदियोंपर पञ्चाक्षर-मन्त्रका एक लक्ष जप करे। दूर्वाके अङ्कुर, तिल और गुडूची (गिलोय) का दस हजार हवन करे। अपमृत्यु-निवारणके लिये शनिवारको अश्वत्थवृक्षका स्पर्श करे और जप करे। व्याधि दूर करनेके लिये एकाग्रचित होकर एक लक्ष जप करे और नित्य आकको समिधासे अष्टोत्तरशत हवन करे। उदररोगके शान्त्यर्थ पाँच लक्ष मन्त्र जप करके दस हजार हवन करे। नित्य सूर्यके सम्मुख पवित्र जलको अष्टोत्तरशत बार अभिमन्त्रित करके पान करे।

मोक्षकी इच्छा करनेवाला निष्कामभावसे निरन्तर प्रेमपूर्वक जप करे। जपके प्रभावको जानकर सदाचारपरायण हो निरन्तर निष्काम जप करनेसे अवश्य कल्याण होगा।

इतिहास

प्राचीन समयमें एक बार बड़े तेजस्वी वत्स नामक मुनि भ्रमण करते हुए सूतजीके आश्रममें पहुँचे। सूतजीने भक्तिसे प्रणाम करके पाद्य, अर्घ्य आदि देकर मुनिकी पूजा की और कुशल-प्रश्नके अनन्तर सूतजीकी प्रार्थनासे चातुर्मासव्रतका अनुष्ठान करनेके लिये वत्समुनि उनके यहाँ ठहर गये। सूतजी विनयपूर्वक उनकी सेवा करने लगे। महर्षि वत्स दैनिक कार्यसे निवृत्त होकर रात्रिके समय अवकाश मिलनेपर सूतजीको विचित्र कथाएँ सुनाया करते थे।

एक समय कथाके अन्तमें सूतजीने विस्मित होकर महर्षि वत्सजीसे पूछा कि 'हे भगवन्! आपका यह शरीर इतना सुकुमार है और आप अनेक विचित्र कथाएँ कहते हैं। हे तात! मुझे यह बतलाइये कि इतनी छोटी अवस्थामें आपने ये घटनाएँ कैसे देखीं? हे मुनीश्वर! यह आपकी तपस्याका प्रभाव है अथवा किसी मन्त्रका फल है?'

वत्समुनि हँसकर बोले—'हे सूतजी! आपने बहुत ठीक पूछा। यह मन्त्रका ही प्रभाव है। मैं प्रतिदिन शिवजीके समीप उनके षडक्षर-मन्त्रका आठ हजार जप किया करता हूँ। इसीके प्रभावसे मेरी युवावस्था तीनों कालमें एक-सी रहती है और मुझे सदैव भूत-भविष्यका ज्ञान बना रहता है। मेरा जन्म हुए एक हजार वर्ष हो गये। हे महामते! सदाशिवजीकी प्रसन्नतासे मैंने जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की है, इसका वृत्तान्त मैं विस्तारसे आपको सुनाता हूँ।

एक बार वनोंमें भ्रमण करते-करते मैं महर्षि देवरात ऋषिके आश्रमपर पहुँचा। ऋषिके मृगावती नामकी एक रूप-गुण-सम्पन्न कन्या थी, उन्होंने शुभ मुहूर्तमें बड़ी प्रसन्नतासे मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। मैं मृगावतीके साथ आनन्दसे रहने लगा। परंतु मेरे भाग्यमें यह आनन्द अधिक कालके लिये नहीं बदा था!

एक दिन मृगावती अपनी सहेलियोंके साथ वनमें विचरण करने गयी। घूमते-घूमते उसका पैर घास-फूससे ढके एक भयंकर नागके सिरपर पड़ गया। सर्पने क्रोधमें आकर मृगावतीको काट लिया और वह तत्काल मर गयी।

सखियोंने आकर यह दारुण वृत्तान्त मुझे सुनाया। मैं यह दुःखद वृत्तान्त सुनते ही हाहाकार करता घटनास्थलपर जा पहुँचा और अपनी प्राणप्रियाको निर्जीव देख छाती पीट-पीटकर विलाप करने और करुणस्वरसे रोने लगा।

इस प्रकार हृदय-विदारक विलाप करते-करते दुःखी होकर मैंने चिता बनायी। मृगावतीके शरीरको उसपर रखकर आग लगा दी और स्वयं भी उस चितापर चढ़ने लगा। इतनेमें ही मेरे कुछ मित्र इस दारुण वृत्तान्तको सुनकर वहाँ पहुँच गये और उन्होंने मुझको समझा-बुझाकर आत्महननरूपी दुष्कर्मसे रोक लिया एवं आश्रममें ले गये। आधी राततक तो मैं किसी

प्रकार विलाप करता हुआ आश्रममें पड़ा रहा, पर ज्यों ही मेरे समीपवर्ती लोग सो गये, त्यों ही मैं कान्ताके वियोगमें विलाप करता हुआ आश्रमको त्यागकर निर्जन वनकी ओर निकल पड़ा। लेकिन वे मुझे फिर पकड़ लाये और आश्रममें लाकर फटकारते हुए उन्होंने कहा—'हे कामिन्! तुमको धिक्कार है, ब्रह्मर्षि होकर तुम स्त्रीके लिये इस तरह रोते हो? हम, तुम और संसारके सब प्राणी जो भूमिमें उत्पन्न हुए हैं, वे सब मरेंगे। इनके लिये विलाप करनेसे क्या लाभ! किसीके साथ बहुत दिनतक एकत्र वास नहीं होता। दूसरोंकी कौन कहे, अपने शरीरका भी अधिक दिनतक साथ नहीं रहता। खोयी हुई वस्तु, बीती हुई बात अथवा मरे हुए प्राणीके लिये जो पुरुष सोच करता है वह इस लोक और परलोकमें दुःखका पात्र होता है।'

आश्रममें आनेपर मेरा दुःख कोपरूपमें परिणत हो गया और मैंने आँखोंके सामने आये हुए सभी सर्पोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की।

एक रात्रिको मैं रोता-पीटता फिर निकलकर बहुत दूर चला गया। इधर जब मेरे मित्रोंकी नींद खुली तो वे मुझे न पाकर बहुत दुखी हुए और खोजने निकले। खोजते-खोजते किसी प्रकार मेरे समीप पहुँचे और मुझे आश्रममें पकड़ लाये। इसके अनन्तर आश्रममें रहकर सर्पजातिका विनाश करना ही मैंने अपने जीवनका एकमात्र कर्तव्य बना लिया।

उसी दिनसे मैं ब्राह्मणवृत्तिका परित्यागकर एक मोटा-सा डंडा ले साँपोंकी खोजमें निकला। मेरे सामने छोटे-बड़े, विषैले, काले, पीले जैसे भी साँप पड़े वे सब मेरे दण्डप्रहारसे कालके गालमें पहुँच गये। इस प्रकार असंख्य सर्पोंको मारता हुआ मैं एक दिन एक सरोवरके समीप जा पहुँचा। वहाँ मुझे एक बूढ़ा, चनैला साँप दिखायी दिया। उसको देखते ही मैंने मारनेके लिये अपना डंडा सम्हाला।

अपने सिरपर कालको सवार देखकर उस वृद्ध सर्पने नम्रतापूर्वक कहा कि 'हे ब्राह्मणसत्तम! मैं यहाँ एकान्तमें पड़ा अपना जीवन व्यतीत करता हूँ। न किसीसे बोलता हूँ और न किसीको कोई कष्ट ही पहुँचाता हूँ। फिर मुझ निरपराधी बूढ़ेको आप क्यों मारते हैं?'

उसने मुझसे बहुत प्रार्थना की, पर मैंने अपना डंडा उसपर चला ही दिया। डंडा लगते ही सर्पका शरीर तो न जाने कहाँ चला गया और मुझे अपने सामने सूर्यके समान तेजस्वी एक महापुरुष दिखायी पड़ा। यह घटना देखकर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं उस पुरुषको प्रणामकर कहने लगा कि 'हे महापुरुष! मैंने कोपवश बहुत अनुचित कार्य किया है, कृपया मेरा अपराध क्षमा कीजिये। अब दया करके मुझे यह बतलाइये कि आप कौन हैं और आपने सर्पका शरीर क्यों धारण किया था? किसीके शापसे ऐसा हुआ या यह आपकी एक लीलामात्र थी?'

उस महापुरुषने प्रसन्न-मनसे गम्भीर वाणीमें उत्तर दिया कि हे मुने! मैं आपको अपना पूरा वृत्तान्त सुनाता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुननेकी कृपा करें।

इससे पूर्वजन्ममें मैं चमत्कारपुरमें निवास करता था। ईश्वरकी दयासे मैं परम तेजस्वी एवं धन-धान्यसे समृद्ध था। उसी नगरमें सिद्धेश्वर महादेवका विशाल मन्दिर था। एक दिन बड़े उत्साहके साथ उस शिवालयमें उत्सव मनाया गया। वहाँपर नाना प्रकारके बाजे बजते थे, जिनकी ध्वनिसे सारा आकाश भर गया था। उस आवाजको सुनकर हजारों शैव तथा अन्य शिवभक्त दूर-दूरसे वहाँ आ पहुँचे। उनमेंसे कुछ केवल एक बार भोजन करते, कुछ सूखे पत्ते चबाकर निर्वाह करते, कुछ केवल जल पीकर रहते, कुछ वायु पीकर ही संतुष्ट रहते और कुछ एकदम निराहार रहकर भगवान् शंकरका ध्यान किया करते थे।

सब भक्त भगवान् सिद्धेश्वरकी वन्दनाकर उनके सामने बैठ जाते और अनेक देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियोंकी दया, धर्म, सत्य आदिके उपदेश देनेवाली विविध प्रकारकी कथाएँ कहते-सुनते थे। भक्तिपूर्ण हृदयवाले कितने ही साधुजन नृत्य, गान, वादन आदिमें मग्न हो जाते। कुछ धनिक लोग दीनों, अन्धों और दरिद्रोंको धन देकर संतुष्ट करते थे।

उस समय जवानीके मदमें चूर मैं भी अपने मित्रोंके साथ तमाशा देखनेकी गरजसे वहाँ जा डटा। मैं अज्ञानसे अन्धा हो रहा था। मेरे हृदयमें शिवकी भक्ति तो थी नहीं, मैं केवल उस उत्सवमें विघ्न डालकर आनन्द लूटना चाहता था। अन्तमें मैंने जीभ लपलपाते हुए एक बड़े लंबे भयंकर जलसर्पको उठाकर उन लोगोंके बीचमें फेंक दिया। साँपको देखते ही सब लोग

डरके मारे इधर-उधर भाग गये। केवल एक सुप्रभ नामक महान् तपस्वी परमात्माके ध्यानमें निमग्न, समाधि लगाये बैठे रहे। वहाँ वे कमलासनपर विराजमान, अनिन्द्य, अभेद्य, जरा-मरणसे रहित, वेदनाथ महेश्वरके ध्यानमें लीन थे। परमानन्दसे उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। इस स्थितिमें उन महामुनिको कहाँ क्या हो रहा है, इसका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं रह गया था।

सर्पको और कोई तो मिला नहीं, यही समाधिस्थ मुनि मिले। उसने इनके शरीरको भलीभाँति जकड़ लिया। इसी बीच सर्वशास्त्रपारंगत, परमतपस्वी श्रीवर्धन नामक उनके शिष्य वहाँ आ पहुँचे। पूज्य गुरुदेवके शरीरको सर्पसे जकड़ा हुआ और मुझे उनके समीप ही खड़ा देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। उनकी आँखें लाल हो गयीं, होंठ फड़कने लगे और क्रोधके मारे आँखोंमें आँसू भर आये। वे अत्यन्त कठोर स्वरमें कहने लगे कि 'यदि मैंने तीव्र तप किया हो, सच्चे हृदयसे गुरुकी शुश्रूषा की हो और निर्विकल्प-चित्तसे भगवान् महेश्वरका ध्यान किया हो तो यह ब्राह्मणाधम इसी समय सर्पयोनिको प्राप्त हो जाय।' उन महातपस्वीका वचन अन्यथा कैसे हो सकता था ? शाप देते ही मैं मनुष्यसे सर्प बन गया।

कुछ देर बाद सुप्रभ मुनिका ध्यान टूटा। उन्होंने अपने शरीरमें लिपटे हुए एक भयंकर सर्पको और पास ही सर्पके आकारमें मुझे तथा अपने आस-पास भयभीत जनसमुदायको देखा। तुरंत सब बातें उनकी समझमें आ गयीं। वे मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए श्रीवर्धनसे बोले—'वत्स ! तुमने इस दीन ब्राह्मणको शाप देकर तपस्वियोंके योग्य कार्य नहीं किया। जो मान और अपमानको समान समझता है, पत्थर और सोनेमें भेद नहीं देखता, शत्रु और मित्रको एक-सा मानता है, वही तपस्वी सिद्धपद पा सकता है। तुमने बिना समझे-बूझे इसको शाप दे दिया, अतएव इसके सब अपराध क्षमा करके इसे शापसे मुक्त कर दो।'

परम सत्यवादी श्रीवर्धनने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा कि 'हे पूज्यपाद गुरुवर ! अज्ञानसे अथवा ज्ञानसे मेरे मुखसे जो कुछ निकल गया, वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। जब हँसीमें भी मेरे मुखसे निकले हुए वचन झूठे नहीं हुए हैं तो शापके निमित्त कहे गये वाक्य कैसे झूठे हो सकते हैं ? सूर्यदेव चाहे पूर्व दिशाको त्यागकर पश्चिम दिशामें उदित हो जायँ, अगाध और अनन्त महासागर सूखकर मरुस्थल बन जाय, सुमेरु पर्वत नष्ट हो जाय, पर मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। आप मेरी इस धृष्टताको क्षमा करके मुझे अनुगृहीत करें।'

महर्षि सुप्रभने कहा कि 'मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। तुम्हें इस प्रकार उपदेश देना इस समयके लिये नहीं बल्कि इसलिये है कि भविष्यमें कभी तुम्हें ऐसा करनेका साहस न हो। गुरुका यह कर्तव्य है कि वह वयस्क शिष्यपर भी सदा शासन करता रहे। तुम तो अभी बालक हो, तुम्हें उपदेश देना तो मेरा परम कर्तव्य है। क्षमासे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तपस्वियोंके लिये तो क्षमासे बढ़कर कोई शस्त्र है ही नहीं। पापीके प्रति भी अपने मनमें पाप-बुद्धि न लानी चाहिये। उपकार करनेवालेके प्रति जो सज्जनता प्रकट करता है, उसमें क्या विशेषता है ? जो मनुष्य अपकार करनेवालेके साथ उपकार करता है, वास्तवमें वही साधु है।'

इस प्रकार अपने शिष्यको अनेक प्रकारके उपदेश देकर वे ऋषि मुझसे कहने लगे—'हे भाई ! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख है। परंतु अब कोई उपाय नहीं है। इस सत्याश्रितका कथन त्रिकालमें भी अन्यथा नहीं हो सकता। अतः तुमको सर्पयोनिसे मुक्त होनेके लिये कुछ समयकी प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।'

तब मैंने बड़ी नम्रताके साथ पूछा कि 'हे महाराज ! मैं बड़ा अज्ञानी और दीन हूँ। मुझपर कृपाकर बतलाइये कि इस शापका अन्त कब होगा ?'

महर्षि सुप्रभने कहा कि 'जो व्यक्ति शिवालयमें एक घड़ीभर नृत्य, गीत आदि करता है, उसके पुण्यका पारावार नहीं रहता और जो उत्सवमें एक घड़ीभर भी विघ्न करता है, उसके पापका ठिकाना नहीं रहता। तुमने इस महोत्सवमें विघ्न डालकर घोर पाप किया है, अब केवल बातोंसे काम नहीं चलेगा। मैं उपाय बताता हूँ, उसके करनेसे ही इस घोर पातकसे छुटकारा मिल सकता है। वह उपाय है शिव-षडक्षर-मन्त्रका जप। शिवजीके 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर-मन्त्रके जप करनेसे ब्रह्महत्या-जनित पापसे भी मुक्ति

मिल जाती है। षडक्षर-मन्त्रका यदि दस बार जप किया जाय तो एक दिनके सब पाप दूर हो जाते हैं, बीस बारके जप करनेसे सालभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यदि तुम जलमें बैठकर इसी मन्त्रका जप करो तो धीरे-धीरे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायँगे। कुछ दिनोंके अनन्तर वत्स नामक एक ब्राह्मण आयेंगे। उनके डंडेकी चोट खाते ही तुम्हें इस योनिसे मुक्ति मिल जायगी।'

महर्षिके उपदेशसे मैं तभीसे इस जलाशयमें बैठा भक्तियुक्त-चित्तसे षडक्षर-मन्त्रका जप किया करता था। आज आपके प्रसादसे मुझे सर्पयोनिसे छुटकारा मिल गया। देखिये, मुझे ले जानेको यह देवप्रेषित दिव्य विमान आ रहा है। अब मैं इसीपर बैठकर परमधामको चला जाऊँगा। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। मुझे बतलाइये कि इस ऋणसे मुक्त होनेके लिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

मैंने कहा कि यदि आप मेरा कुछ उपकार करना चाहते हैं तो मुझे ऐसा कोई उपाय बतलाइये जिससे मेरा यह दुःख दूर हो जाय और शत्रु, व्याधि, दरिद्रता आदिसे भी मुझे कभी दुःख न उठाना पड़े।

उस दिव्य पुरुषने कहा कि 'हे मुने! शिवजीका षडक्षर-मन्त्र प्राणियोंके सब अशुभोंका हरण करता है। आप उस मन्त्रका यथाशक्ति दिन-रात जप कीजिये। इससे आपकी सभी कामनाएँ पूरी होंगी और आप सब पातकोंसे मुक्त होकर स्वर्ग, मोक्ष आदि जो कुछ चाहेंगे, सब अनायास ही आपको मिल जायगा। षडक्षर-मन्त्रके जपसे दान, तीर्थस्नान, व्रत, तप, गयाश्राद्ध और सहस्र गोदानका फल मिल जाता है। अधिक क्या, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाले योगीको जो पद मिलता है, वही पद षडक्षर-मन्त्रका जप करनेवालेको भी मिलता है। इसलिये हे मुने! आप षडक्षर-मन्त्रका जप कीजिये। इससे आपकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी और दुःख भी दूर हो जायगा। मैंने आपको यह परमगोप्य मन्त्र बता दिया है। परंतु हे द्विजवर! यह मन्त्र तभी सिद्ध और फलदायक होगा, जब आप पूर्णरूपसे हिंसाका परित्याग कर देंगे। सब वेदोंमें अहिंसा ही परमधर्म बताया गया है। ब्राह्मणके लिये अहिंसाव्रतका पालन करना परमावश्यक है। अहिंसाको न मानकर जो मनुष्य जीवोंका वध करता है, उसे महाप्रलयपर्यन्त घोर नरकमें निवास करना पड़ता है। चर और अचर प्राणियोंको जो अभय देता है, वही इस लोकमें अनेक तरहके सुख भोगकर स्वर्गको जाता है।'

उस दिव्य पुरुषका वचन सुनकर मैंने कहा कि मैंने वृद्धोंके मुखसे सुना है कि हिंसाजन्य पाप सबको नहीं लगता। राजा लोग वनमें असंख्य जीवोंको मारते हैं, किंतु उनको इसका पाप नहीं लगता। वैद्योंने मांसका भक्षण परम हितकर बताया है, उसके सेवनसे शरीर पुष्ट होता और आयुष्यकी वृद्धि होती है। हे महामते! मुझे इस विषयमें बड़ा संदेह है। आप इसको दूर कर दीजिये। आप जो कहेंगे, उसे मैं अवश्य मान लूँगा।

उस दिव्य पुरुषने उत्तर दिया कि यह 'मांसलोलुप महापापियों और दुर्जनोंकी कपोलकल्पना है। ऐसे निर्दयी पापी लोग शोचनीय हैं। मांसका भक्षण करना तो परमदोषावह है। मांससे न तो आयुकी वृद्धि होती है और न बल ही बढ़ता है। इसके भक्षणसे आरोग्यलाभ भी असम्भव है। मांसके खानेवाले भी अनेक रोगोंसे पीड़ित, दुर्बल तथा अल्पायु दिखायी देते हैं। इसके विपरीत मांसका परित्याग करनेवाले मनुष्य नीरोग और मोटे-ताजे रहकर पृथ्वीपर आनन्द लेते हुए दीखते हैं, उनकी आयु भी बड़ी होती है। अतः मांसके भक्षणसे कुछ लाभ नहीं। हाँ, हानि तो अवश्य ही होती है।

मांसका भक्षण करनेवाला मनुष्य घोर नरकमें जाता है। घास, लकड़ी आदि स्थावर पदार्थसे तो मांस मिलता नहीं, प्राणीका शरीर काटनेसे ही वह मिलता है। जो कष्ट अपने अङ्गके काटनेसे अपनी आत्माको होता है, वही कष्ट दूसरेकी आत्माको उसके अङ्गोंके काटनेसे होता है। ऐसा समझकर जीवोंकी हत्या कभी नहीं करनी चाहिये। केवल उनके सौन्दर्य और उनमें दीखती हुई जगदीश्वरकी कारीगरीको देखना और सराहना उचित है। हिंसा करनेका पाप केवल एक व्यक्तिको नहीं होता, किंतु सात व्यक्तियोंको होता है। जीवको मारनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, उसका मांस काटनेवाला, खरीदनेवाला, पकाकर तैयार करनेवाला, परोसनेवाला और भक्षण करनेवाला—ये सात प्रकारके पातकी होते हैं। ये सातों उस हिंसाजनित पापके भागी होते हैं। जो व्यक्ति मनसा-वाचा-कर्मणा कभी हिंसा नहीं करता, वह जरा और मरणसे रहित

परमपदको प्राप्त होता है। जो केवल शाक, मूल और फलोंका खानेवाला हो और ब्रह्मचर्यका पूर्णरूपसे पालन करता हो, किंतु हिंसासे पृथक् न हो तो उसे किसी प्रकारका फल नहीं मिलता। सैकड़ों वर्ष घोर तप करनेवाले हिंसक मनुष्यसे अहिंसाधर्मका पालन करनेवाला दयालु पुरुष कहीं अधिक अच्छा है। दयावान् पुरुष जिस किसी वस्तुकी इच्छा करता है, वह उसे अवश्य मिल जाती है।'

इस प्रकार अहिंसामय उपदेश देकर वह दिव्य पुरुष उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको चला गया। उसके चले जानेपर मेरे मनमें निष्कारण इतने सर्पोंको मारनेका बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मैं अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। अन्तमें मैंने निश्चय किया कि 'अब मैं हिंसाका सर्वथा परित्याग कर शिवदीक्षा ले महेश्वरकी पूजा करूँगा। संसारके जितने भी सुख हैं वे तपसे बहुत शीघ्र मिल जाते हैं।'

उसी समय मैंने भक्तियुक्त चित्तसे शिवजीकी दीक्षा ले ली और मौन धारणकर मैं अपना अधिकांश समय एक वृक्षके नीचे बिताता हुआ सब शरीरमें भस्म रमाये षडक्षर-मन्त्रका जप करता विचरने लगा। अन्तमें सिद्धेश्वर महादेवकी शरणमें पहुँच अहर्निश उनकी आराधना और षडक्षर-मन्त्रका जप करने लगा।

इस तपके ही प्रभावसे मेरा यौवन सदाके लिये स्थायी हो गया है। मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गयी है कि जिससे मैं एक स्थानपर बैठे हुए ही दूसरे लोकोंका वृत्तान्त जान सकता हूँ। उसी तपके प्रभावसे मुझमें आकाश-मार्गसे आने-जानेकी शक्ति भी आ गयी है।

इस प्रकार सूतजीके प्रश्नोंका उत्तर देकर वत्सजी लोक-लोकान्तरमें भ्रमण करते हुए तथा जीवनका अनुत्तम आनन्द लेते हुए अन्तमें शिवलोकको चले गये।

सर्वव्याधिनाशपूर्वक दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये महामृत्युंजयका विधान

भगवान् श्रीशंकरके 'रुद्राध्याय' तथा 'मृत्युंजय' महामन्त्रसे भारतके कोने-कोनेमें अभिषेक किया जाता है। श्रावणमें तो इसकी बहार देखने ही योग्य होती है। यहाँ उसी 'मृत्युंजय' महामन्त्रकी अर्थ-गम्भीरतापर कुछ विचार किया जा रहा है। यह विचार निश्चय ही परम पुण्यप्रद है।

'ॐ हौं जूं सः। ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः भूः ॐ। सः जूं हौं ॐ' यह सम्पुटयुक्त मन्त्र है।

ॐकारका प्रतीक शिवलिङ्ग है, उसीके ऊपर अविच्छिन्न-अनवरत जलधाराके प्रवाहवत् अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए विश्वासपूर्वक मृत्युंजय-महामन्त्रका जप करता रहे तो ध्यानावस्था प्रत्यक्ष खड़ी हो जाती है और एक विलक्षण आनन्दकी अनुभूति होती है।

सृष्टिके आदि, मध्य और अन्त—तीनों 'हौं' और 'जूं' से अपने समक्ष उपस्थित करते हुए त्रिलोकीमें जप करनेवाला व्यक्ति श्रीत्र्यम्बकेश्वरके प्रति अपने-आपका समर्पण कर रहा है। त्र्यम्बकेश्वरकी कृपारूपी सुगन्ध फैल रही है और उपासकके रोम-रोममें ऐसी स्फूर्ति होने लगती है कि उसका आध्यात्मिक प्रभाव छिप नहीं सकता। जैसे इन्द्रायण (तूँबे) की बेल सूख जानेपर फल बन्धनसे मुक्त होकर आस-पासकी अनन्ततामें छिप जाता है, उसी प्रकार जप करनेवाला उपासक अपनी मोक्षकी अवस्थाको प्रत्यक्ष कर सकता है।

'एकोऽहं बहु स्याम्'—परब्रह्मकी यह इच्छा होती है और महाप्राणकी अलौकिक गति प्रस्तुत होती है। उसका सूचन महाप्राण अक्षर 'ह'से होता है। प्रकृति विकृत होने लगे, पञ्चतन्मात्रा उद्भूत हों, शब्दगुण आकाश सृष्टिको झेलनेके लिये तत्पर हो जाय, उस दृश्यका आभास 'औं' की ध्वनि करा रही है। ज्=जन्म, ऊ=उद्भव-विकास-विस्तार, ॱ=०-शून्य-प्रलय। इस प्रकार 'जूं' सृष्टिकी तीनों अवस्थाओंका दिग्दर्शन करा रहा है। सः=पुरुष-विराट्—यही तो प्रलयके समय अवशिष्ट रहता है। 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्' के साथ 'यथापूर्वमकल्पयत्' इन वाक्योंका स्मरण ऐसे समय क्यों नहीं होगा? ऐसी सृष्टि भूर्भुवः स्वःकी त्रिलोकी है। उस त्रिलोकीका निवासी उपासक त्र्यम्बकेश्वरके सामने जपयज्ञ कर रहा है और फलस्वरूप यह सहज ही अपुनरावृत्तिवाली मुक्ति प्राप्त करता है।

ऊपर कहा गया है कि शिवलिङ्ग ॐकारका प्रतीक है,

वह कैसे है—यह जाननेके लिये उ,ॱ,ँ=ॐ इनके तीन भागोंपर विचार करे। उपासक पूर्वाभिमुख बैठता है। जल झेलनेवाला भाग 'उ' उत्तर दिशाकी ओर जलको बहाकर ले जाता है।'ॱ'यह भाग आधार है, जो जलहरीको ऊँचे उठाये रहता है। 'ँ' यह भाग लिङ्गके रूपमें ऊपरको विराजमान रहता है। किसी भी शिवमन्दिरमें जाकर पूर्वाभिमुख रहकर इस दृश्यका साक्षात्कार किया जा सकता है।

महामृत्युंजय-मन्त्रकी महिमा और जपविधि

भगवान् मृत्युंजयके जप-ध्यानसे मार्कण्डेयजी, राजा श्वेत आदिके कालभयनिवारणकी कथा शिवपुराण, स्कन्द-पुराण-काशीखण्ड, पद्मपुराण-उत्तरखण्ड-माघमाहात्म्य आदिमें आती है। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें भी मृत्युंजय-योग मिलते हैं। मृत्युको जीत लेनेके कारण ही इन मन्त्रयोगोंको 'मृत्युंजय' कहा जाता है—

मृत्युर्विनिर्जितो यस्मात् तस्मान्मृत्युंजयः स्मृतः।

(रसे॰ सारसंग्रह, अ॰२ ज्व॰ वि॰ ९)

मन्त्रशास्त्रमें वेदोक्त 'त्र्यम्बकं यजामहे॰' (ऋक् ७।५९।१२, यजु॰ ३।६०, अथर्व॰ १४।१।१७, तैत्ति॰ सं॰ १।८।६।१२, निरुक्त १४।३५) इत्यादिको ही मृत्युंजय नाम प्राप्त है। यों पुराणोंमें, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, शारदातिलक, विविध निबन्ध-ग्रन्थोंमें तथा मृत्युंजय-तन्त्र, मृत्युंजयकल्प, मृत्युंजयपञ्चाङ्ग आदिमें इस मन्त्रका भाष्य, विधान, पटल, पद्धति, स्तोत्र आदि सब कुछ मिलते हैं। शिवपुराण-सतीखण्ड ३८।२१।४२ मे इसका विस्तृत भाष्य है। वहाँ इसीको शुक्राचार्यकी 'मृतसंजीवनी-विद्या' कहा गया है* तथा स्वयं शुक्राचार्यने ही इसका दधीचिको उपदेश किया है। 'विष्णुधर्मोत्तर' आदिमें इसके हवनादिके भेदसे अनेक अर्थ-कामसाधक आदि दूसरे भी काम्य प्रयोग बतलाये गये हैं। यथा—

त्र्यम्बकं यजामहेति होमः सर्वार्थसाधकः॥
धत्तूरपुष्पं सघृतं तथा हुत्वा चतुष्पथे।
शून्ये शिवालये वापि शिवात् कामानवाप्नुयात्॥
हुत्वा च गुग्गुलं राम स्वयं पश्यति शंकरम्।

(विष्णुधर्म॰ २।१२५।२३—२५)

ऋग्विधान आदिमें भी ऐसा ही बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण-प्रकृतिखण्डके ५९वें अध्यायमें कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्णने अङ्गिराकी पत्नीको मृत्युंजय-ज्ञान दिया था। यहाँ संक्षेपमें उसके जपकी विधि दी जा रही है। यद्यपि तन्त्रसार, शारदातिलक आदि एवं मन्त्रमहार्णव आदिमें एक साथ ही त्र्यक्षर, पञ्चाक्षर आदि कई मृत्युंजय-मन्त्र बतलाये गये, तथापि यहाँ सर्वाधिक प्रचलित 'त्र्यम्बक-मन्त्र' के ही विनियोग, ध्यान आदि लिखे जा रहे हैं। इससे रोग, दुःख-दारिद्र्य आदिका नाश तथा सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है

साधकको चाहिये कि किसी पवित्र स्थानमें स्नान, आचमन, प्राणायाम, गणेशस्मरण, पूजन-वन्दनके बाद तिथि-वारादिका उच्चारण करते हुए इस प्रकार संकल्प करे—

अमुकोऽहं अमुकवासरादौ स्वस्य (यजमानस्य वा) निखिलारिष्टनिवृत्तये महामृत्युंजयमन्त्रजपमहं करिष्ये।

तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर इस प्रकार न्यासादि करना चाहिये—

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युंजयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवसिष्ठा ऋषयः पंक्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, सदाशिव-महामृत्युंजयरुद्रो देवता, ह्रीं शक्तिः, श्रीं बीजम्, महामृत्युंजयप्रीतये ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

—यों कहकर हाथका जल छोड़ दे।

पुनः वामदेवकहोलवसिष्ठऋषिभ्यो नमः, मूर्ध्नि। पङ्क्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, वक्त्रे। सदाशिव-महामृत्युंजयरुद्रदेवतायै नमः, हृदि। ह्रीं शक्तये नमः, लिङ्गे। श्रीं बीजाय नमः, पादयोः।

उपर्युक्त मन्त्रोंसे सिर, मुख, हृदय, लिङ्ग तथा चरणका स्पर्श करे।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे पहले अँगूठे आदिका स्पर्श करते हुए करन्यास करके फिर उन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिको स्पर्श करते हुए हृदयादिन्यास करना चाहिये।

* मृतसंजीवनीमन्त्रो मम सर्वोत्तम. स्मृत.। (शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड ३८।३० का पूर्वार्ध)

परमपदको प्राप्त होता है। जो केवल शाक, मूल और फलोंका खानेवाला हो और ब्रह्मचर्यका पूर्णरूपसे पालन करता हो, किंतु हिंसासे पृथक् न हो तो उसे किसी प्रकारका फल नहीं मिलता। सैकड़ों वर्ष घोर तप करनेवाले हिंसक मनुष्यसे अहिंसाधर्मका पालन करनेवाला दयालु पुरुष कहीं अधिक अच्छा है। दयावान् पुरुष जिस किसी वस्तुकी इच्छा करता है, वह उसे अवश्य मिल जाती है।'

इस प्रकार अहिंसामय उपदेश देकर वह दिव्य पुरुष उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको चला गया। उसके चले जानेपर मेरे मनमें निष्कारण इतने सर्पोंको मारनेका बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मैं अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। अन्तमें मैंने निश्चय किया कि 'अब मैं हिंसाका सर्वथा परित्याग कर शिवदीक्षा ले महेश्वरकी पूजा करूँगा। संसारके जितने भी सुख हैं वे तपसे बहुत शीघ्र मिल जाते हैं।'

उसी समय मैंने भक्तियुक्त चित्तसे शिवजीकी दीक्षा ले ली और मौन धारणकर मैं अपना अधिकांश समय एक वृक्षके नीचे बिताता हुआ सब शरीरमें भस्म रमाये षडक्षर-मन्त्रका जप करता विचरने लगा। अन्तमें सिद्धेश्वर महादेवकी शरणमें पहुँच अहर्निश उनकी आराधना और षडक्षर-मन्त्रका जप करने लगा।

इस तपके ही प्रभावसे मेरा यौवन सदाके लिये स्थायी हो गया है। मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गयी है कि जिससे मैं एक स्थानपर बैठे हुए ही दूसरे लोकोंका वृत्तान्त जान सकता हूँ। उसी तपके प्रभावसे मुझमें आकाश-मार्गसे आने-जानेकी शक्ति भी आ गयी है।

इस प्रकार सूतजीके प्रश्नोंका उत्तर देकर वत्सजी लोक-लोकान्तरमें भ्रमण करते हुए तथा जीवनका अनुत्तम आनन्द लेते हुए अन्तमें शिवलोकको चले गये।

सर्वव्याधिनाशपूर्वक दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये महामृत्युंजयका विधान

भगवान् श्रीशंकरके 'रुद्राध्याय' तथा 'मृत्युंजय' महामन्त्रसे भारतके कोने-कोनेमें अभिषेक किया जाता है। श्रावणमें तो इसकी बहार देखने ही योग्य होती है। यहाँ उसी 'मृत्युंजय' महामन्त्रकी अर्थ-गम्भीरतापर कुछ विचार किया जा रहा है। यह विचार निश्चय ही परम पुण्यप्रद है।

'ॐ ह्रौं जूँ सः। ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः भूः ॐ। सः जूँ ह्रौं ॐ' यह सम्पुटयुक्त मन्त्र है।

ॐकारका प्रतीक शिवलिङ्ग है, उसीके ऊपर अविच्छिन्न-अनवरत जलधाराके प्रवाहवत् अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए विश्वासपूर्वक मृत्युंजय-महामन्त्रका जप करता रहे तो ध्यानावस्था प्रत्यक्ष खड़ी हो जाती है और एक विलक्षण आनन्दकी अनुभूति होती है।

सृष्टिके आदि, मध्य और अन्त—तीनों 'ह्रौं' और 'जूँ' से अपने समक्ष उपस्थित करते हुए त्रिलोकीमें जप करनेवाला व्यक्ति श्रीत्र्यम्बकेश्वरके प्रति अपने-आपका समर्पण कर रहा है। त्र्यम्बकेश्वरकी कृपारूपी सुगन्ध फैल रही है और उपासकके रोम-रोममें ऐसी स्फूर्ति होने लगती है कि उसका आध्यात्मिक प्रभाव छिप नहीं सकता। जैसे इन्द्रायण (तूँबे) की बेल सूख जानेपर फल बन्धनसे मुक्त होकर आस-पासकी अनन्ततामें छिप जाता है, उसी प्रकार जप करनेवाला उपासक अपनी मोक्षकी अवस्थाको प्रत्यक्ष कर सकता है।

'एकोऽहं बहु स्याम्'—परब्रह्मकी यह इच्छा होती है और महाप्राणकी अलौकिक गति प्रस्तुत होती है। उसका सूचन महाप्राण अक्षर 'ह'से होता है। प्रकृति विकृत होने लगे, पञ्चतन्मात्रा उद्भूत हों, शब्दगुण आकाश सृष्टिको झेलनेके लिये तत्पर हो जाय, उस दृश्यका आभास 'औं' की ध्वनि करा रही है। ज्=जन्म, ऊ=उद्भव-विकास-विस्तार, ँ=०-शून्य-प्रलय। इस प्रकार 'जूँ' सृष्टिकी तीनों अवस्थाओंका दिग्दर्शन करा रहा है। सः=पुरुष=विराट्—यही तो प्रलयके समय अवशिष्ट रहता है। **'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्'** के साथ **'यथापूर्वमकल्पयत्'** इन वाक्योंका स्मरण ऐसे समय क्यों नहीं होगा? ऐसी सृष्टि भूर्भुवः स्वःकी त्रिलोकी है। उस त्रिलोकीका निवासी उपासक त्र्यम्बकेश्वरके सामने जपयज्ञ कर रहा है और फलस्वरूप वह सहज ही अपुनरावृत्तिवाली मुक्ति प्राप्त करता है।

ऊपर कहा गया है कि शिवलिङ्ग ॐकारका प्रतीक है,

वह कैसे है—यह जाननेके लिये उ,ں,ं=ॐ इनके तीन भागोंपर विचार करे। उपासक पूर्वाभिमुख बैठता है। जल झेलनेवाला भाग 'उ' उत्तर दिशाकी ओर जलको बहाकर ले जाता है।'ں'यह भाग आधार है, जो जलहरीको ऊँचे उठाये रहता है। '*' यह भाग लिङ्गके रूपमें ऊपरको विराजमान रहता है। किसी भी शिवमन्दिरमें जाकर पूर्वाभिमुख रहकर इस दृश्यका साक्षात्कार किया जा सकता है।

महामृत्युंजय-मन्त्रकी महिमा और जपविधि

भगवान् मृत्युंजयके जप-ध्यानसे मार्कण्डेयजी, राजा श्वेत आदिके कालभयनिवारणकी कथा शिवपुराण, स्कन्द-पुराण-काशीखण्ड, पद्मपुराण-उत्तरखण्ड-माघमाहात्म्य आदिमें आती है। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें भी मृत्युंजय-योग मिलते हैं। मृत्युको जीत लेनेके कारण ही इन मन्त्रयोगोंको 'मृत्युंजय' कहा जाता है—

मृत्युर्विनिर्जितो यस्मात् तस्मान्मृत्युंजयः स्मृतः।

(रसे० सारसग्रह, अ०२ ज्व० वि० ९)

मन्त्रशास्त्रमें वेदोक्त 'त्र्यम्बकं यजामहे०' (ऋक् ७।५९।१२, यजु० ३।६०, अथर्व० १४।१।१७, तैत्ति० सं० १।८।६।१२, निरुक्त १४।३५) इत्यादिको ही मृत्युंजय नाम प्राप्त है। यों पुराणोंमें, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, शारदातिलक, विविध निबन्ध-ग्रन्थोंमें तथा मृत्युंजय-तन्त्र, मृत्युंजयकल्प, मृत्युंजयपञ्चाङ्ग आदिमें इस मन्त्रका भाष्य, विधान, पटल, पद्धति, स्तोत्र आदि सब कुछ मिलते हैं। शिवपुराण-सतीखण्ड ३८।२१।४२ मे इसका विस्तृत भाष्य है। वहाँ इसीको शुक्राचार्यकी 'मृतसंजीवनी-विद्या' कहा गया है* तथा स्वयं शुक्राचार्यने ही इसका दधीचिको उपदेश किया है। 'विष्णुधर्मोत्तर' आदिमें इसके हवनादिके भेदसे अनेक अर्थ-कामसाधक आदि दूसरे भी काम्य प्रयोग बतलाये गये हैं। यथा—

त्र्यम्बकं यजामहेति होमः सर्वार्थसाधकः॥
धत्तूरपुष्पं सघृतं तथा हुत्वा चतुष्पथे।
शून्ये शिवालये वापि शिवात् कामानवाप्नुयात्॥
हुत्वा च गुग्गुलं राम स्वयं पश्यति शंकरम्।

(विष्णुधर्म० २।१२५।२३—२५)

ऋग्विधान आदिमें भी ऐसा ही बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण-प्रकृतिखण्डके ५९वें अध्यायमें कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्णने अङ्गिराकी पत्नीको मृत्युंजय-ज्ञान दिया था। यहाँ संक्षेपमें उसके जपकी विधि दी जा रही है। यद्यपि तन्त्रसार, शारदातिलक आदि एवं मन्त्रमहार्णव आदिमें एक साथ ही त्र्यक्षर, पञ्चाक्षर आदि कई मृत्युंजय-मन्त्र बतलाये गये, तथापि यहाँ सर्वाधिक प्रचलित 'त्र्यम्बक-मन्त्र' के ही विनियोग, ध्यान आदि लिखे जा रहे हैं। इससे रोग, दुःख-दारिद्र्य आदिका नाश तथा सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है

साधकको चाहिये कि किसी पवित्र स्थानमें स्नान, आचमन, प्राणायाम, गणेशस्मरण, पूजन-वन्दनके बाद तिथि-वारादिका उच्चारण करते हुए इस प्रकार संकल्प करे—

अमुकोऽहं अमुकवासरादौ स्वस्य (यजमानस्य वा) निखिलारिष्टनिवृत्तये महामृत्युंजयमन्त्रजपमहं करिष्ये।

तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर इस प्रकार न्यासादि करना चाहिये—

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युंजयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवसिष्ठा ऋषयः पंक्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, सदाशिव-महामृत्युंजयरुद्रो देवता, ह्रीं शक्तिः, श्रीं बीजम्, महामृत्युंजयप्रीतये ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

—यों कहकर हाथका जल छोड़ दे।

पुनः वामदेवकहोलवसिष्ठऋषिभ्यो नमः, मूर्ध्नि। पङ्क्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, वक्त्रे। सदाशिव-महामृत्युंजयरुद्रदेवतायै नमः, हृदि। ह्रीं शक्तये नमः, लिङ्गे। श्रीं बीजाय नमः, पादयोः।

उपर्युक्त मन्त्रोंसे सिर, मुख, हृदय, लिङ्ग तथा चरणका स्पर्श करे।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे पहले अँगूठे आदिका स्पर्श करते हुए करन्यास करके फिर उन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिको स्पर्श करते हुए हृदयादिन्यास करना चाहिये।

---

* मृतसंजीवनीमन्त्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः। (शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड ३८।३० का पूर्वार्ध)

मन्त्र	करन्यास	हृदयादि-न्यास
१-ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा।	अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। (तर्जनीसे अँगूठेको छूए)	हृदयाय नमः। (पाँच अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे।)
२-ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अष्टमूर्तये मां जीवय।	तर्जनीभ्यां नमः। (दोनों तर्जनी अँगुलियोंको अँगूठोंसे मिलाये)	शिरसे स्वाहा। (सिरका स्पर्श करे।)
३-ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा।	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्। (शिखा छूए।)
४-ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः ऊर्व्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय ह्रां ह्रौं।	अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्। (दाहिने हाथसे बायाँ कंधा तथा बायें हाथसे दाहिना कंधा छूए।)
५-ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्राय।	कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
६-ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय उज्ज्वलज्वाल मां रक्ष रक्ष अघोराय।	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्

इस मन्त्रके जपमें ध्यान परमावश्यक है। शिवपुराणमें यह ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रवत्
पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम्॥
(सतीखं॰ ३८। २४)

ध्यानका स्वरूप यह है कि 'भगवान् मृत्युंजयके आठ हाथ हैं। वे अपने ऊपरके दोनों करकमलोंसे दो घड़ोंको उठाकर उसके नीचेके दो हाथोंसे जलको अपने सिरपर उड़ेल रहे हैं। सबसे नीचेके दो हाथोंमें भी दो घड़े लेकर उन्हें अपनी गोदमें रख लिया है। शेष दो हाथोंमें वे रुद्राक्षकी माला तथा मृगी-मुद्रा धारण किये हुए हैं। वे कमलके आसनपर बैठे हैं और उनके शिरःस्थ चन्द्रसे निरन्तर अमृतवृष्टिके कारण उनका शरीर भींगा हुआ है। उनके तीन नेत्र हैं तथा उन्होंने मृत्युको सर्वथा जीत लिया है, उनके वामाङ्गभागमें गिरिराजनन्दिनी भगवती उमा विराजमान हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके रुद्राक्षमालासे मन्त्रका जप करना चाहिये। मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—

मन्त्र

ॐ ह्रौं जूँ सः, ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः भूः ॐ। सः जूँ ह्रौं ॐ। यह सम्पुट-युक्त मन्त्र है। इसका प्रायः सवा लाख जप सर्वार्थसाधक माना गया है। जपके बाद इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर॥
मृत्युंजय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः॥

जपके अन्तमें दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन तथा ब्राह्मण-भोजन आदि करना-कराना चाहिये।

सर्वव्याधिनाशके लिये लघु मृत्युंजय-जप

ॐ जूँ सः (नाम जिसके लिये किया जाय) पालय पालय सः जूँ ॐ। इस मन्त्रका ११ लाख जप तथा एक लाख दस हजार दशांशका जप करनेसे सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है। इतना न हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और साढ़े बारह हजार दशांश जप अवश्य करना चाहिये। इसके साथ ही आगे लिखा यन्त्र भी हाथमें बाँध देना चाहिये।

श्रीमहामृत्युंजय-कवच-यन्त्रम्

भोजपत्रपर अष्टगन्धसे यन्त्र लिखकर गुग्गुलका धूप देकर पुरुषके दाहिने और स्त्रीके बायें हाथमें बाँध देना चाहिये। गोत्र, पिताका नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी) का नाम यथास्थान लिख देना चाहिये। यन्त्र इस प्रकार है—
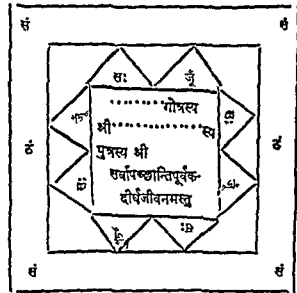
शिवरात्रि-रहस्य

(श्रीसुरेशचन्द्रजी)

इस देशमें जितने प्रकारके पूजा-पार्वण, व्रत-उपवास, पर्वोत्सव प्रचलित हैं, उनमें शिवरात्रि-व्रतके समान प्रचार अन्य किसीका भी नहीं देखा जाता। इस विराट् हिन्दू-भारतके स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, प्रौढ़-युवा—प्रायः सभी किसी-न-किसी रूपमें इसके अनुष्ठानमें रत देखे जाते हैं। बहुतेरे यथाविधि पूजादि न करते हुए भी उपवास करते हैं। जिनकी उपवासमें भी रुचि नहीं होती, वे कम-से-कम रात्रि-जागरण करके ही इस व्रतके पुण्यका कुछ भाग लेना चाहते हैं।

सौर, गाणपत्य, शैव, वैष्णव और शाक्त—प्रधानतः इन्हीं पाँच सम्प्रदायोंमें विराट् हिन्दू-समाज विभक्त है। इनमेंसे जो जिसके उपासक होते हैं, वे अपने उस इष्टदेवको छोड़कर अन्यकी उपासना प्रायः नहीं करते। परंतु इस शिवरात्रि-व्रतकी महिमा है—शास्त्रमें भी ऐसा ही विहित है तथा इसी विधानका आजतक पालन होता आया है कि सम्प्रदायके भेदको त्याग सभी मनुष्य इसका पालन करते हैं और इसके फलस्वरूप भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त करना चाहते हैं—

आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।

शिव-पूजा और शिवरात्रि-व्रतमें थोड़ा-सा अन्तर है। व्रत-शब्दके निर्वचनसे हम समझ सकते हैं कि जीवनमें जो वरणीय है—बार-बार अनुष्ठानके द्वारा मन, वचन, कर्मसे जो प्राप्त करनेयोग्य है, वही व्रत है। इसी कारण प्रत्येक व्रतके साथ कोई-न-कोई कथा या आख्यान जुड़ा रहता है। इन कथाओंमें ऐसे-ऐसे चरित्रोंकी बातें रहती हैं, जिनके साथ उस व्रतकी उत्पत्ति, परिणति और समाप्तिका संक्षिप्त इतिहास ग्रथित रहता है। इसके अतिरिक्त इन कथाओंके द्वारा यह भी प्रमाणित होता है कि व्रत मानव-जीवनकी धर्म-पिपासाकी परितृप्तिके लिये केवल बीच-बीचमें ही अनुष्ठान करनेयोग्य नहीं है, बल्कि यह हमारे व्यावहारिक जीवनका एक प्रधान अङ्ग बन सकता है।

ईशान-संहितामें शिवरात्रि-व्रतके सम्बन्धमें कहा है—

माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः॥

अर्थात् माघ-मासकी कृष्ण चतुर्दशीकी महानिशामें आदिदेव महादेव कोटि सूर्यके समान दीप्तिसम्पन्न हो शिवलिङ्गके रूपमें आविर्भूत हुए थे, अतएव शिवरात्रि-व्रतमें उसी महानिशा-व्यापिनी चतुर्दशीका ग्रहण करना चाहिये।

माघ-मासकी कृष्ण चतुर्दशी बहुधा फाल्गुनमासमें ही पड़ती है। ईशान-संहिताके मतसे शिवकी प्रथम लिङ्गमूर्ति उक्त तिथिकी महानिशामें पृथिवीसे पहले-पहल आविर्भूत हुई थी,

इसीके उपलक्ष्यमें इस व्रतकी उत्पत्ति बतायी जाती है। इस श्लोकका 'महानिशा' शब्द भी एक विशिष्ट अर्थका ज्ञापक है। महर्षि देवल कहते हैं—

महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः।

चतुर्दशी तिथियुक्त चार प्रहर रात्रिके मध्यवर्ती दो प्रहरोंमें पहलेकी अन्तिम और दूसरेकी आदि—इन दो घटिकाओंकी (घड़ी) ही महानिशा संज्ञा है।

व्रत-कथामें कहा गया है कि एक बार कैलास-शिखरपर स्थित पार्वतीने शंकरसे पूछा—

कर्मणा केन भगवन् व्रतेन तपसापि वा।
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुस्त्वं परितुष्यति॥

अर्थात् हे भगवन्! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गके तुम्हीं हेतु हो। साधनासे संतुष्ट हो मनुष्यको तुम्हीं इसे प्रदान करते हो। अतएव यह जाननेकी इच्छा होती है कि किस कर्म, किस व्रत या किस प्रकारकी तपस्यासे तुम प्रसन्न होते हो?

इसके उत्तरमें भगवान् शंकर कहते हैं—

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथिः स्याच्चतुर्दशी।
तस्यां या तामसी रात्रिः सोच्यते शिवरात्रिका॥
तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम्।
न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया॥
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः॥

'फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको आश्रयकर जिस अन्धकारमयी रजनीका उदय होता है, उसीको 'शिवरात्रि' कहते हैं। उस दिन जो उपवास करता है वह निश्चय ही मुझे संतुष्ट करता है। उस दिन उपवास करनेसे मैं जैसा प्रसन्न होता हूँ वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्पके अर्पणसे भी नहीं होता।'

उपर्युक्त श्लोकसे यह जाना जा सकता है कि इस व्रतका उपवास ही प्रधान अङ्ग है। तथापि रात्रिके चार प्रहरोंमें चार बार पृथक्-पृथक् पूजाका विधान भी प्राप्त होता है—

दुग्धेन प्रथमे स्नानं दध्ना चैव द्वितीयके।
तृतीये तु तथाऽऽज्येन चतुर्थे मधुना तथा॥

'प्रथम प्रहरमें दुग्धद्वारा शिवकी ईशान-मूर्तिको, द्वितीय प्रहरमें दधिद्वारा अघोर-मूर्तिको, तृतीयमें घृतद्वारा वामदेव-मूर्तिको एवं चतुर्थमें मधुद्वारा सद्योजात-मूर्तिको स्नान कराकर उनका पूजन करना चाहिये।' प्रभातमें विसर्जनके बाद व्रत-कथा सुनकर अमावास्याको यह कहते हुए पारण करना चाहिये—

संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥

'हे शंकर! मैं नित्य संसारकी यातनासे दग्ध हो रहा हूँ, इस व्रतसे तुम मुझपर प्रसन्न होओ। हे प्रभो! संतुष्ट होकर तुम मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करो।'

शास्त्रीय अनुष्ठानोंके मूलमें सर्वत्र ही एक गूढ़ उद्देश्य निहित रहता है। क्योंकि—

अज्ञातज्ञापकं हि शास्त्रम्।

शास्त्रोंका कार्य ही यह है कि जो ज्ञात नहीं उसे ज्ञात करा दें। शिवरात्रिके व्रतानुष्ठानमें शास्त्रका कौन-सा गूढ़ उद्देश्य निहित है, वह किस अज्ञात तत्त्वको बतलाता है—यह हमें जानना चाहिये, नहीं तो अनुष्ठानकी कोई सार्थकता नहीं रहेगी। परंतु इस अन्तर्निहित तात्पर्यको जाननेके पूर्व इसके साथ जो कथा संयुक्त है, उसे संक्षेपमें जान लेना आवश्यक है।

वाराणसीका एक व्याध शिकारके लिये वनमें गया। वहाँ अनेक मृगोंका शिकार कर लौटते समय मार्गमें वह थका-माँदा किसी वृक्षके नीचे सो रहा। नींद टूटनेपर देखता है कि संध्या हो गयी है। चारों ओर भीषण अन्धकार हो जानेसे मार्ग नहीं सूझता। उस समय घर लौटना असम्भव देख वह हिंस्र जन्तुओंके आक्रमणके भयसे वृक्षके ऊपर चढ़कर उसीपर रात्रि बितानेका विचार करने लगा। उस दिन भाग्यवश शिवरात्रि थी और वह वृक्ष जिसपर वह बैठा था बेलका था तथा उसकी जड़में एक अति प्राचीन शिवलिङ्ग था। व्याध शिकारके लिये बड़े सबेरे घरसे बाहर निकल पड़ा था और तबसे उसने कुछ खाया नहीं था, इस प्रकार उसका उपवास भी स्वाभाविक ही सध गया। इस अद्भुत मणिकाञ्चन-संयोगसे और महादेवके आशुतोष होनेके कारण वसन्तकी रात्रिमें ओसकी बूँदोंसे भीगा हुआ बिल्वपत्र व्याधके देहसे लगकर शिवकी उस लिङ्गमूर्तिपर जा गिरा, इससे आशुतोषके तोषका पार न रहा। फलस्वरूप आजीवन दुष्कर्म करनेपर भी अन्तकालमें उस व्याधको शिवलोककी प्राप्ति हुई।

शिवरात्रिके व्रतका स्वरूप और उसकी कथा संक्षेपमें

यही है। अब इसके तत्त्वके समझनेके लिये हमें कुछ गहराईके साथ विचार करनेकी आवश्यकता है। शिव कौन हैं ? ये केवल पौराणिक देवता हैं अथवा वेदमें भी इनका वर्णन मिलता है ? वेदके अनेक स्थलोंमें इनका रुद्रनामसे उल्लेख हुआ है। साधन-पथमें यही ब्रह्मवादियोंके ब्रह्म, सांख्य-मतावलम्बियोंके पुरुष तथा योगपथमें आरूढ़ होनेवालोंके सहस्रारमें स्थित प्रणवकी अर्धमात्राके रूपमें कीर्तित हुए हैं। पुराणोंमें इनके आधिदैविक स्वरूपका अधिक विस्तार तथा इनकी विविध लीलाओंका वर्णन होनेपर भी उसमें वही गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्व अन्तर्निहित है। शिवरात्रि-व्रतमे भी शिवका यही दार्शनिक परिचय अन्तःसलिला फल्गुकी धाराके समान प्रच्छन्नरूपेण प्रवाहित हो रहा है। उसी स्वादु सुशीतल धारामें अवगाहन करनेके लिये हमें और भी गहरेमें गोता लगाना पड़ेगा। इस व्रतमें उपवासकी प्रधानता क्यो हुई, यह रात्रिमें ही क्यों होता है, चतुर्दशी और अमावास्या—इन दो तिथियोंके साथ इसका योग क्यों हुआ तथा 'पारण' शब्दका यथार्थ अभिप्राय क्या है, इन सब बातोंको हमें एक-एक करके जाननेकी आवश्यकता है।

'उपवास' शब्दका क्या अर्थ है ? ('आहारनिवृत्तिरुपवासः' साधारणतः निराहार रहनेको ही 'उपवास' कहते हैं। किंतु इस निर्वचनके अंदर ही इसके वास्तविक अर्थका भी संकेत वर्तमान है। 'आङ्' पूर्वक 'हृ' धातुसे कर्मवाच्यमें 'घञ्' प्रत्यय लगानेसे 'आहार' शब्द व्युत्पन्न होता है। इस व्युत्पत्तिके अनुसार जो कुछ आहरण किया जाता है, संचय किया जाता है, वही आहार है—

आह्रियते मनसा बुद्ध्या इन्द्रियैर्वा इति आहारः।

मन, बुद्धि अथवा इन्द्रियोंके द्वारा जो बाहरसे भीतर आहृत, संगृहीत होता है, उसीका नाम आहार है। स्थूल और सूक्ष्म-भेदसे यह आहार साधारणतः दो प्रकारका है। मन आदिके द्वारा आहृत संस्कार ही सूक्ष्म आहार है और पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा गृहीत शब्द-स्पर्श-रूपादि स्थूल आहार है। इसके अतिरिक्त हम जिसे 'आहार' कहते हैं वह चावल, दाल, व्यञ्जनादि सर्वथा स्थूलतर आहार है।

'उपवास' शब्दका धातुमूलक अर्थ 'किसीके समीप रहना' है, सो यहाँ उसका अर्थ 'शिवके समीप' होना है। उपनिषदोंमें जिसे 'शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' कहा गया है,उस शिवके समीप जानेसे स्वभावतः ही जीवके मन-प्राणकी समस्त रंगीन बत्तियाँ अपने-आप ही बुझने लगती हैं। इसीसे उपवासका अर्थ होता है आहार-निवृत्ति अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल एवं स्थूलतर आहारका अत्यन्त अभाव। यह उपवास यदि यथोचितरूपेण अनुष्ठित हो तो व्रतके बहिरङ्ग अनुष्ठानोंमें कमी होनेपर भी कोई हानि नहीं होती। इसी कारण शिवरात्रि-व्रतमें 'उपवास' ही प्रधान अङ्ग है।

शिवरात्रि-व्रत रात्रिको ही क्यों होता है, अब हमें इस प्रश्नका उत्तर ढूँढ़ना है। जिस प्रकार नदीमें ज्वार-भाटा होता है, उसी प्रकार इस विराट् ब्रह्माण्डमें सृष्टि और प्रलयके दो विभिन्नमुखी स्रोत नित्य बह रहे हैं। मानचित्रमें जैसे पृथ्वीके विस्तारको छोटे-से आकारमें पाकर उसे पकड़ लेना हमारे लिये सहज हो जाता है, वैसे ही इस विराट् ब्रह्माण्डमें सृष्टि और प्रलयके जो सुदीर्घ स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं, दिवस और रात्रिकी क्षुद्र सीमामें उन्हें बहुत छोटे आकारमें प्राप्तकर उसे अधिगत करना हमारे लिये सम्भव है। शास्त्रमें भी दिवस और रात्रिको नित्य-सृष्टि और नित्य-प्रलय कहा गया है। एकसे अनेक और कारणसे कार्यकी ओर जाना ही सृष्टि है और ठीक इसके विपरीत अर्थात् अनेकसे एक और कार्यसे कारणकी ओर जाना ही प्रलय है। दिनमें हमारा मन, प्राण और इन्द्रियाँ हमारे आत्माके समीपसे भीतरसे बाहर विषय-राज्यकी ओर दौड़ती हैं और विषयानन्दमें ही मग्न रहती हैं। पुनः रात्रिमें विषयोंको छोड़कर आत्माकी ओर, अनेकको छोड़कर एककी ओर, शिवकी ओर प्रवृत्त होती हैं। हमारा मन दिनमें प्रकाशकी ओर, सृष्टिकी ओर, भेद-भावकी ओर, अनेककी ओर, जगत्की ओर, कर्मकाण्डकी ओर जाता है और पुनः रात्रिमें लौटता है अन्धकारकी ओर, लयकी ओर, अभेदकी ओर, एककी ओर, परमात्माकी ओर और प्रेमकी ओर। दिनमें कारणसे कार्यकी ओर जाता है और रात्रिमें कार्यसे कारणकी ओर लौट आता है। इसीसे दिन सृष्टिका और रात्रि प्रलयका द्योतक है। 'नेति नेति' की प्रक्रियाके द्वारा समस्त भूतोंका अस्तित्व मिटाकर समाधियोगमें परमात्मामें आत्मसमाधानकी साधना ही शिवकी साधना है। इसीलिये रात्रि ही इसका मुख्य

काल—अनुकूल समय है। प्रकृतिकी स्वाभाविक प्रेरणासे उस समय प्रेम-साधना, आत्मनिवेदन, एकात्मानुभूति सहज ही सुन्दर हो उठती है।

शिवरात्रिका अनुष्ठान रात्रिमें ही क्यों होता है, यह समझमें आ गया। अब यह समझना है कि चतुर्दशी तिथिके साथ इसका घनिष्ठ संयोग क्यों हुआ। परंतु चतुर्दशीके तत्त्वको समझनेके पूर्व 'अमावास्या' किसे कहते हैं, यह जानना होगा। 'अमा' पूर्वक 'वस्' धातुके साथ 'ण्यत्' प्रत्ययके योगसे 'अमावास्या' शब्द व्युत्पन्न होता है।इसकी व्युत्पत्ति यों करनी चाहिये कि—अमा=सह अर्थात् एक साथ वास करते हैं—अवस्थान करते हैं सूर्य और चन्द्र जिस तिथिमें, वही 'अमावास्या' है। यह व्याकरण और ज्योतिषसम्मत अर्थ है। परंतु साधन-राज्यमें सूर्य और चन्द्र परमात्मा और जीवात्माके बोधक हैं। अतएव समाधियोगमें जब जीव और शिव एकत्र अवस्थित होते हैं तब वह अद्वयानुभूतिका समय ही साधन-राज्यके अध्यात्मशास्त्रकी अमावास्या है। समष्टिभावसे प्रकृतिमें जब इस एकात्मानुभूतिकी लीला होती है, उस समय व्यष्टि-भावसे अपने अंदर यह लीलास्वादन सहज हो जाता है। परंतु एकान्त अभेदमें तो उपासना हो ही नहीं सकती, इसीलिये चतुर्दशीमें जीव बहुत कुछ शिवमें डूब जाता है, परंतु थोड़ी-सी भेदकी रेखा शेष रह जाती है। वह शुभ मुहूर्त ही जीवकी शिवोपासनाका, शिवपूजाका पुण्य लग्न है। तत्पश्चात् अमावास्यामें जीव जब शिवमें एकबारगी डूब जाता है, भेदका लेश भी नहीं रह जाता, 'नेति नेति'के साधनसे पूर्ण समाधिमें अद्वैतानुभूतिका चरमोत्कर्ष साधित होता है, तभी व्रतका पारण—पूर्णता सम्पन्न होती है। उसी समय 'इति इति' की साधनामें 'यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्'इस प्रक्रियाका आरम्भ होनेसे ही शिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान सार्थक होता है।

इस प्रकार व्रत-कथाके तात्पर्यको हृदयंगम कर लेनेपर हमारा शिवरात्रिका तत्त्वानुसंधान एक प्रकारसे पूर्ण हो जाता है। शास्त्रमे अनेक स्थलोंपर मनुष्य-देहकी एक वृक्षके रूपमें कल्पना की गयी है। मनुष्य-शरीरके स्नायुजालका गठन ही इस कल्पनाका मूल है। देहका ऊर्ध्वभाग—मस्तिष्क ही इस वृक्षका मूल है, मेरुदण्ड काण्ड है और हस्त-पादादि अङ्ग-प्रत्यङ्गके रूपमें इसकी अनेकों शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई हैं। इस अपूर्व वृक्षका मूल ऊर्ध्वदिशामें और शाखा-प्रशाखाएँ अधोदिशामें प्रसरित हैं। इसीसे—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

—कहा गया है।

उपासक-भेदसे इस वृक्षको कोई अश्वत्थ, कोई बिल्व, कोई कल्पतरु या कदम्ब कहा करते है। इसी कारण कोई इसके मूलमें सदाशिवको, कोई श्रीकृष्णको, कोई साक्षात् नारायणको देखते हैं। शिवरात्रिके व्रतकी कथामें इसीलिये बिल्ववृक्षके मूलमें शिवका स्थान है। जीवात्मा ही व्याध है, इन्द्रियरूप तीरोंके द्वारा विषयरूप पक्षियोंका शिकार करना इसका कार्य है। इस प्राकृत जीवनका स्रोत जब रुद्ध होता है, जब वह अपने समस्त कर्मफलोंको भगवान्‌के अर्पण करना सीख जाता है, जब देहरूप बिल्ववृक्षके त्रिगुणरूप त्रिपत्रको गुणातीत शिवके मस्तकपर अर्पण करता है, आसक्तिशून्य हो जाता है, तब 'पद्मपत्रमिवाम्भसा'अर्थात् जलमें पद्मपत्रके समान वह फिर कर्मके शुभाशुभ फलोंका भागी नहीं होता, जीवन्मुक्त होकर सामने आये हुए प्रारब्ध कर्मोंको ही भोगता रहता है तथा शरीरान्त होनेपर कैलासके कैवल्य-धाममें परमानन्द-रसके आस्वादनमें निमग्न हो जाता है।

अद्भुत शिव

सतीके गहैया 'प्रेम' सतीके छँड़ैया जोगी,
कामके वचैया पूरे कामके नसैया तुम।
जगके भरैया शिव जगके हरैया काल,
पशुपति-गहैया पाशुपत-चलैया तुम॥

औघड़-दिवैया दानी औघड़-छनैया मस्त,
औघड़ कहैया खासे औघड़ नचैया तुम।
सूलके धरैया रखवारीके करैया प्रभो!
लाजके रखैया आज लाजके रखैया तुम॥

पशुपति और लिङ्ग-शब्दका रहस्य तथा लिङ्गार्चन

भगवान् शंकरके अनेक नामोंमेंसे पशुपति और लिङ्ग—ये दो समझमें कम आते हैं। पशुपति शब्दपर शिवपुराणकी वायवीय संहिताके पूर्वखण्डमें यों लिखा है—

स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति।
तौ पश्यति परः कश्चित् तावुभौ तं न पश्यतः॥
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः।
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥
स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः।
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः॥
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥

(अध्याय ५)

वह जीव शरीरको देखता है, शरीर जीवको नहीं देखता। दोनोंको कोई उनसे भी परे देखता है, परंतु ये दोनों उसे नहीं देखते। ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक सभी पशु कहलाते हैं। सब पशुओंके लिये ही यह निदर्शन कहा है। यह मायापाशोंमें बँधा रहता है और सुख-दुःखरूपी चारा खाता है और भगवान् (मदारी) की लीलाओंका साधन है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। यह प्राणी अज्ञानी है, ईश नहीं है, सुखात्मक और दुःखात्मक है तथा ईशकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकमे जाता है। इसलिये जीव 'पशु' है और उसका 'पति' ईश है, ब्रह्म है, इसलिये 'पशुपति' महेश्वरका एक नाम है।

'लिङ्ग'शब्दका साधारण अर्थ चिह्न या लक्षण है। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिको, प्रकृतिसे विकृतिको भी लिङ्ग कहते हैं। देव-चिह्नके अर्थमें 'लिङ्ग' शब्द शिवजीके ही लिङ्गके लिये आता है और प्रतिमाओंको मूर्ति कहते हैं, कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्तिमान्‌के ध्यानके अनुसार होता है, परंतु लिङ्गमें आकार या रूपका उल्लेख नहीं है। यह चिह्नमात्र है और चिह्न भी पुरुषकी जननेन्द्रियका-सा है, जिसे लिङ्ग कहते हैं, परंतु स्कन्दपुराणमें '**लयनाल्लिङ्गमुच्यते**' कहा है जिसका अर्थ लय या प्रलय होता है। इसीसे उसे लिङ्ग कहते हैं। प्रलयसे लिङ्गका क्या सम्बन्ध है।

प्रलयकी अग्निमें सभी कुछ भस्म होकर शिवलिङ्गमें समा जाता है। वेद-शास्त्रादि भी लिङ्गमे ही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टिके आदिमें लिङ्गसे ही सब-के-सब प्रकट होते हैं। अतः 'लय' से ही लिङ्ग-शब्दका उद्भव ठीक ही है। उससे लय या प्रलय होता है और उसीमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है। यह एक संयोगकी बात है कि 'लिङ्ग' शब्दके अनेक अर्थोंमें लोकप्रसिद्ध अर्थ अश्लील है। वैदिक शब्दोंका यौगिक अर्थ लेना ही समीचीन माना जाता है। यौगिक अर्थमें कोई अश्लीलता नहीं रह जाती। इसके सिवा अश्लीलता तो प्रसंगसे आती है। विषयात्मक वर्णनमें जो अश्लील और अनुचित दीखता है वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनोंमें श्लील और समुचित हो जा सकता है। पशुपति और 'लिङ्ग'-शब्दका भी यही हाल है।

लिङ्गार्चनमें अश्लीलताके भावकी कल्पना परम मूर्खता, परम नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है।

हमारे देशमें प्रायः सर्वत्र पार्थिव-पूजा प्रचलित है। परंतु विशेष-विशेष स्थानोंमें पाषाणमय शिवलिङ्गकी भी स्थापना है। यह स्थावर मूर्तियाँ होती हैं। बाणलिङ्ग या सोने-चाँदीके छोटे लिङ्ग जङ्गम कहलाते हैं। इन्हें प्राचीन पाशुपत-सम्प्रदाय-वाले एवं आजकलके लिङ्गायत सम्प्रदायवाले पूजाके व्यवहारमें लानेके लिये अपने साथ लिये फिरते हैं अथवा बाँह या गलेमे बाँधे रहते हैं।

लिङ्ग विविध द्रव्योंके बनाये जाते हैं। गरुडपुराणमें इसका अच्छा विस्तार है। यहाँ संक्षेपसे वर्णन किया गया है—

(१) 'गन्धलिङ्ग' दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन और तीन भाग कुंकुमसे बनाते हैं। शिवसायुज्यार्थ इसकी अर्चा की जाती है।

(२) 'पुष्पलिङ्ग' विविध सौरभमय फूलोंसे बनाकर पृथिवीके आधिपत्यलाभके लिये पूजते हैं।

(३) 'गोशकृल्लिङ्ग' स्वच्छ कपिलवर्णके गोबरसे बनाकर पूजनेसे ऐश्वर्य मिलता है, परंतु जिसके लिये बनाया जाता है वह मर जाता है। मिट्टीपर गिरे गोबरका व्यवहार वर्जित है।

(४) 'रजोमयलिङ्ग' रजसे बनाकर पूजनेवाला

विद्याधरत्व और फिर शिवसायुज्य पाता है।

(५) **'यवगोधूमशालिजलिङ्ग'** जौ, गेहूँ, चावलके आटेका बनाकर श्रीपुष्टि और पुत्रलाभके लिये पूजते हैं।

(६) **'सिताखण्डमय'** लिङ्गसे आरोग्यलाभ होता है।

(७) **'लवणजलिङ्ग'** हरताल, त्रिकटुको लवणमें मिलाकर बनता है। इससे उत्तम प्रकारका वशीकरण होता है।

(८) **'तिलपिष्टोत्थलिङ्ग'** अभिलाषा सिद्ध करता है। इसी तरह—

(९—१२) **'तुषोत्थलिङ्ग'** मारणशील है, **'भस्ममयलिङ्ग'** सर्वफलप्रद है, **'गुडोत्थलिङ्ग'** प्रीति बढ़ानेवाला है और **'शर्करामयलिङ्ग'** सुखप्रद है।

(१३-१४) **'वंशाङ्कुरमयलिङ्ग'** वंशकर है, **'केशास्थिलिङ्ग'** सर्वशत्रुनाशक है।

(१५—१७) **'द्रुमोद्भूतलिङ्ग'** दारिद्र्यकर, **'पिष्टमयं'** विद्याप्रद और **'दधिदुग्धोद्भवलिङ्ग'** कीर्ति, लक्ष्मी और सुख देता है।

(१८—२१) **'धान्यज'** धान्यप्रद, **'फलोत्थ'** फलप्रद, **'धात्रीफलजात'** मुक्तिप्रद, **'नवनीतज'** कीर्ति और सौभाग्य देता है।

(२२—२७) **'दूर्वाकाण्डज'** अपमृत्युनाशक, **'कर्पूरज'** मुक्तिप्रद, **'अयस्कान्तमणिज'** सिद्धिप्रद **'मौक्तिक'** सौभाग्यकर, **'स्वर्णनिर्मित'** महामुक्तिप्रद, **'राजत'** भूतिवर्धक है।

(२८—३६) **'पित्तलज'** तथा **'कांस्यज'** मुक्तिद, **'त्रपुज'**, **'आयस'** और **'सीसकज'** शत्रुनाशक होते हैं। **'अष्टधातुज'** सर्वसिद्धिप्रद, **'अष्टलौहजात'** कुष्ठनाशक, **'वैदूर्यज'** शत्रुदर्पनाशक और **'स्फटिकलिङ्ग'** सर्वकामप्रद है।

परंतु ताम्र, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, काँसा, लोहा— इन द्रव्योंके लिङ्गोंकी पूजा कलियुगमें वर्जित है। पारेका शिवलिङ्ग विहित है और ऐश्वर्यदायक है।

लिङ्ग बनाकर उसका संस्कार पार्थिवलिङ्गोंको छोड़ और सब लिङ्गोंके लिये करना पड़ता है। स्वर्णपात्रमें दूधके अंदर तीन दिनोंतक रखकर फिर 'त्र्यम्बकं यजामहे०' आदि मन्त्रोंसे स्नान कराकर वेदीपर पार्वतीजीकी षोडशोपचारसे पूजा करनी उचित है। फिर पात्रसे उठाकर लिङ्गको तीन दिन गङ्गाजलमें रखना होता है। फिर प्राण-प्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है।

पार्थिवलिङ्ग एक या दो तोला मिट्टी लेकर बनाते हैं। ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीली और शूद्र काली मिट्टी लेता है। परंतु यह जहाँ अव्यवहार्य हो, वहाँ कोई हर्ज नहीं, मिट्टी चाहे जैसी मिले।

लिङ्ग साधारणतया अङ्गुष्ठ-प्रमाणका बनाते हैं। पाषाणादिके लिङ्ग मोटे और बड़े बनते हैं। लिङ्गसे दूनी वेदी और उसका आधा योनिपीठ करना होता है। लिङ्गकी लंबाई कम होनेसे शत्रुकी वृद्धि होती है। योनिपीठ बिना या मस्तकादि अङ्ग बिना लिङ्ग बनाना अशुभ है। पार्थिवलिङ्ग अपने अँगूठेके एक पोरवेभर बनाना होता है। लिङ्ग सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण अमङ्गलकारी होता है।

लिङ्गमात्रकी पूजामें पार्वती-परमेश्वर दोनोंकी पूजा हो जाती है। लिङ्गके मूलमें ब्रह्मा, मध्यदेशमें त्रिलोकीनाथ विष्णु और ऊपर प्रणवाख्य महादेव स्थित हैं। वेदी महादेवी हैं और लिङ्ग महादेव हैं। अतः एक लिङ्गकी पूजामें सबकी पूजा हो जाती है—(लिङ्गपुराण)। पारदके लिङ्गका सबसे अधिक माहात्म्य है। 'पारद'-शब्दमें प=विष्णु, आ=कालिका, र=शिव, द=ब्रह्मा—इस तरह सभी स्थित हैं। उसके बने लिङ्गकी पूजासे,जो जीवनमें एक बार भी की जाय, तो धन, ज्ञान, सिद्धि और ऐश्वर्य मिलते हैं।

यहाँतक तो लिङ्ग-निर्माणकी बात हुई। परंतु नर्मदादि नदियोंमें भी पाषाणलिङ्ग मिलते हैं। नर्मदाका बाणलिङ्ग भुक्ति-मुक्ति दोनों देता है। बाणलिङ्गकी पूजा इन्द्रादि देवोंने की थी। इसकी वेदिका बनाकर उसपर स्थापना करके पूजा करते हैं। वेदी ताँबा, स्फटिक, सोना, पत्थर, चाँदी या रुपयेकी भी बनाते हैं।

परंतु नदीसे बाणलिङ्ग निकालकर पहले परीक्षा होती है। फिर संस्कार। पहले एक बार लिङ्गके बराबर चावल लेकर तौले। फिर दूसरी बार उसी चावलसे तौलनेपर लिङ्ग हलका ठहरे तो गृहस्थोंके लिये वह लिङ्ग पूजनीय है। तीन, पाँच या सात बार तौलनेपर भी तौल बराबर निकले तो उस लिङ्गको जलमें फेंक दे। यदि तौलमें भारी निकले तो वह लिङ्ग उदासीनोंके लिये पूजनीय है—(सूतसंहिता)। तौलमें

कमी-वेशी ही वाणलिङ्गकी पहचान है। जब वाणलिङ्ग होना निश्चित हो जाय तब संस्कार करना उचित है। संस्कारके बाद पूजा आरम्भ होती है। पहले सामान्य विधिसे गणेशादिकी पूजा होती है। फिर वाणलिङ्गको स्नान कराते हैं। स्नान कराकर यह ध्यान मन्त्र—

ॐ प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं वाणाख्यं च महाप्रभम्।
कामवाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्।
शृङ्गारादिरसोल्लासं वाणाख्यं परमेश्वरम्॥

—पढ़कर मानसोपचारसे तथा फिरसे ध्यानकर पूजा करनी होती है। भरसक षोडशोपचार पूजा होती है। फिर जप करके स्तवपाठ करनेकी पद्धति है। वाणलिङ्गकी पूजामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता।

वाणलिङ्गके प्रकार बहुत हैं। विस्तारभयसे यहाँ हम उनका उल्लेख नहीं करते। हाँ, यह जानना आवश्यक है कि वाणलिङ्ग निन्द्य न हो। कर्कश होनेसे पुत्र-दारादिक्षय, चिपटा होनेसे गृहभंग, एकपार्श्वस्थित होनेसे पुत्र-दारादि-धनक्षय, शिरोदेश स्फुटित होनेसे व्याधि, छिद्र होनेसे प्रवास और लिङ्गमें कर्णिका रहनेसे व्याधि होती है। ये निन्द्य लिङ्ग हैं, इनकी पूजा वर्जित है। तीक्ष्णाग्र, वक्रशीर्ष तथा त्रिकोण लिङ्ग भी वर्जित हैं। अति स्थूल, अति कृश, स्वल्प, भूषणयुक्त मोक्षार्थियोंके लिये हैं, गृहस्थोंके लिये वर्जित हैं।

मेघाभ और कपिल वर्णका लिङ्ग शुभ है, परंतु गृहस्थ लघु या स्थूल कपिल वर्णवालेकी पूजा न करे। भौंरेकी तरह काला लिङ्ग सपीठ हो या अपीठ संस्कृत हो या मन्त्रसंस्कार-रहित भी हो तो गृहस्थ उसकी पूजा कर सकता है। वाणलिङ्ग प्रायः कँवलगट्टेकी शकलका होता है। पकी जामुन या मुरगीके अंडेके अनुरूप भी होता है। श्वेत, नीला और शहदके रंगका भी होता है। ये ही लिङ्ग प्रशस्त हैं। इन्हें वाणलिङ्ग इसलिये कहते हैं कि वाणासुरने तपस्या करके महादेवजीसे वर पाया था कि वे पर्वतपर सर्वदा लिङ्गरूपमें प्रकट रहें। एक वाणलिङ्गकी पूजासे अनेक और लिङ्गोंकी पूजाका फल मिलता है।

पार्थिव-पूजा

'ॐ हराय नमः' मन्त्रसे मिट्टी लेकर 'ॐ महेश्वराय नमः' मन्त्रसे अँगूठेके पोरभरका लिङ्ग बनावे। तीन भागमें बाँटें। ऊपरी भागको लिङ्ग, मध्यको गौरी-पीठ और नीचेके अंशको वेदी कहते हैं। दायें या बायें किसी एक ही हाथसे लिङ्ग बनावे। असमर्थ होनेपर दोनों लगा सकता है। लिङ्ग बन जाय तो उसके सिरपर नन्ही-सी मिट्टीकी गोली बनाकर रखी जाती है। यह वज्र है। पूजनेवाला कोई दूसरा हो तो शिवके गात्रपर हाथ रखकर 'ॐ हराय नमः' और 'ॐ महेश्वराय नमः' कहे। पूजाके समय षोडशोपचारकी सामग्रीमें बिल्वपत्र आवश्यक है। माथेपर भस्म या मिट्टीका त्रिपुण्ड्र और गलेमें रुद्राक्षकी माला अवश्य होनी चाहिये। आसनशुद्धि, जल-शुद्धि, गणेशादि देवताओंकी पूजा करके इस प्रकार भगवान् शंकरका ध्यान करे—

ॐध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

यह ध्यान पढ़कर मानसोपचारसे पूजन करे, फिर वही ध्यान-पाठ करके लिङ्गके मस्तकपर फूल रखे। तब 'ॐ पिनाकधृक्! इहागच्छ, इहागच्छ, इह तिष्ठ, इह तिष्ठ, इह संनिधेहि, इह संनिधेहि, इह संनिरुद्ध्यस्व, इह संनिरुद्ध्यस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण।' इसी प्रकार आवाहनादि करे। पीछे 'ॐ शूलपाणे! इह सुप्रतिष्ठितो भव' मन्त्रसे लिङ्ग-प्रतिष्ठा करे। फिर 'ॐ पशुपतये नमः' मन्त्रसे तीन बार शिवके मस्तकपर जल चढ़ाये। तदनन्तर मस्तकपरका वज्र फेंककर चार अरवा चावल चढ़ाये। तत्पश्चात् पाद्यादि दशोपचार 'ॐ एतत् पाद्यम् समर्पयामि ॐ नमः शिवाय नमः।' 'इदमर्घ्यम् समर्पयामि ॐ नमः शिवाय नमः' इत्यादि क्रमसे मन्त्रके साथ करे। शिवके अर्घ्यमें केला और बेलपत्र देना होता है और स्नानके पहले मधुपर्क। इसके बाद शिवकी अष्टमूर्तिकी पूजा करनी चाहिये। गन्ध-पुष्प लेकर पूर्वमें आरम्भकर उत्तरावर्ती मार्गमें आठवीं दिशा अग्निकोणपर आकर समाप्त करना होगा। जैसे—

'एते गन्धपुष्पे ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः' (पूर्व)।
'एते गन्धपुष्पे ॐ भवाय जलमूर्तये नमः' (ईशान)।
'एते गन्धपुष्पे ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः' (उत्तर)।
'एते गन्धपुष्पे ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः' (वायव्य)।

'एते गन्धपुष्पे ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः' (पश्चिम)।

'एते गन्धपुष्पे ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः' (नैर्ऋत्य)।

'एते गन्धपुष्पे ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः' (दक्षिण)।

'एते गन्धपुष्पे ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः' (अग्निकोण)।

—इस प्रकार अष्टमूर्तिपूजाके अनन्तर यथाशक्ति जप करे, पुनः जप और पूजाका भी विसर्जन 'गुह्यातिगुह्य०' इत्यादि मन्त्रोंसे करे। फिर दाहिने हाथका अँगूठा और तर्जनी मिलाकर उसके द्वारा 'बम बम' शब्द करते हुए दाहिना गाल बजाये। अन्तमें महिम्नःस्तोत्र या और कोई शिव-स्तुति पढ़ना आवश्यक है। तदनन्तर प्रणाम करके दाहिने हाथसे अर्घ्य-जलसे आत्मसमर्पण करके लिङ्गके मस्तकपर थोड़ा जल चढ़ाये और कृताञ्जलि हो क्षमा-प्रार्थना करे।

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर॥

इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करके विसर्जन करना होता है। ईशानकोणमें जलसे एक त्रिकोणमण्डल बनाकर पीछे संहार-मुद्राद्वारा एक निर्माल्यपुष्प सूँघते हुए उस त्रिकोणमण्डलके ऊपर डाल देना होता है। इस समय ऐसा सोचना चाहिये कि भगवान् शंकरने मेरे हृत्कमलमें प्रवेश किया है। इसके बाद 'एते गन्धपुष्पे ॐ चण्डेश्वराय नमः' 'ॐ महादेव क्षमस्व' कहकर शिवको लेकर मण्डलके ऊपर रख देना होता है।

ज्योतिर्लिङ्ग

शैवपुराणोंमें बारह ज्योतिर्लिङ्गोंका उल्लेख है। काशीधामके विश्वेश्वरलिङ्ग इन सबमें प्रधान हैं। इनका नाम सबसे पहले लिया जाता है। औरंगजेबके समयमें मुसलमानोंके उपद्रवसे वह ज्योतिर्लिङ्ग ज्ञानवापीके भीतर सुरक्षित रहा। बदरिकाश्रममें केदारेश्वर दूसरे हैं। कृष्णाके किनारे श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन तीसरे हैं। वहीं भीमशंकर चौथे हैं। कश्मीर-प्रदेशके ॐकारमें अमरेश्वर या अमरनाथ पाँचवे हैं। उज्जयिनीमें महाकालेश्वर छठे हैं। महाकालेश्वरकी मूर्तिको अलतमश बादशाहने शक ११५८ में तोड़ डाला था। सूरत या सौराष्ट्रदेशमें सोमनाथके मन्दिरको संवत् १०८१में महमूद गजनवीने नष्ट किया और लूट ले गया। यह सातवें हैं। चिताभूमि झारखण्डमें वैद्यनाथजी आठवें हैं। औड्रदेशमें नागनाथ नवें हैं। शिवालयमें घुश्मेश (या शैवालमें सुपमेश) दसवें हैं। ब्रह्मगिरिमें त्र्यम्बकनाथ ग्यारहवें हैं। सेतुबन्धमें रामेश्वर बारहवे हैं। शिवपुराण उत्तरखण्डके तीसरे अध्यायमें उपर्युक्त नाम दिये हुए हैं। परंतु द्वादश ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र प्रसिद्ध है। उसमें कावेरी और नर्मदासंगमपर मान्धातापुरमें ओंकारेश्वर नाम लिङ्गको चौथा बताया है। सह्याद्रिकी चोटीपर गोदावरीके किनारे त्र्यम्बकनाथका पता बताया है। भीमशंकरका ठीक पता वहाँ भी नहीं लिखते। इलापुरीमें घुश्मेश्वरकी जगह धृष्णेश्वरको बाहरवाँ ज्योतिर्लिङ्ग बताया है। इन स्थानोंका ठीक पता लगाना स्वतन्त्र विषय है।

शिवोपासनामें शतरुद्रीयकी महत्ता

(साहित्य-विद्याप्रवीण, राष्ट्रभाषाप्रवीण, संस्कृत-भाषा-कोविद, कोल्लूर, अवतारशर्मा, एम्० ए०, बी-एस्० सी०, बी-एड्०)

आशुतोष भगवान् शंकरकी उपासनामें 'शतरुद्रीय' का अन्यतम स्थान है, शैव-सम्प्रदायमें शत-शत सम्भावना तथा स्तोत्र-प्रकारोंकी मान्यता है—

शतधा भावितो रुद्रः शतधा गदितोऽपि वा।
मनोजं देहजं दुःखं सर्वं हरति शंकरः॥

भगवान् रुद्रकी शतधा सम्भावनासे मानसिक दुःख और शतधा प्रवचनसे देहज दुःखोंका नाश होता है। दुःखोंका सर्वथा नाश, जो तार्किक परिभाषामें 'दुःखात्यन्ताभाव' कहा जाता है, वही मोक्ष है।[1] सांसारिक दुःखोंसे बचनेका एकमात्र साधन है 'उपासना'। उपास्य वस्तुको शास्त्रोक्त विधिसे बुद्धिका विषय बनाकर, उसके समीप पहुँचकर तैलधाराके तुल्य समान वृत्तियोंके प्रवाहसे जो दीर्घकालतक उसमें स्थित

१-दुःखध्वंसं गौतमो मोक्षमाह।

रहता है, उसे 'उपासना' कहते हैं।[1] 'उपास्य-उपासक और उपासनापद्धति' यह उपासनाकी त्रिपुटी है।

प्रत्येक उपासकको श्रद्धा और भक्तिके साथ ज्ञान[2]की इच्छाके साथ-साथ अपने उपास्यका चयन बहुत ही सावधानीसे करना चाहिये। यदि अपना उपास्य सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, कृपालु और आशुतोष हो तो उपासकको सिद्धि करबदरवत् (हाथमें बेरकी भाँति) हो जाती है। ऐसे भगवान् शिवजी ही हैं—इसके अनेकानेक प्रमाण हमे वेदों और पुराणोंमे मिलते हैं। महान् शिवभक्त पण्डित अप्पय्यदीक्षित इनकी आशुतोषताका परिचय बहुत ही मार्मिक ढंगसे इस प्रकार देते हैं—

वपुःप्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे न क्वापि क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान्।
नमन्मुक्तः सम्प्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिमान्
इतीश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि॥

अर्थात्—'हे भगवान् शंकर! मेरे इन दो अपराधोंको क्षमा करें। उनमें पहला अपराध यह है कि शतजन्ममें मैं कभी भी, कहींपर भी आपको प्रणाम न कर सका और अगले जन्ममें भी मैं आपको प्रणाम करनेमें असमर्थ हूँ। क्योंकि अब केवल एक बार आपको प्रणाम करनेसे मैं अशरीर हो आपकी सायुज्यमुक्ति पानेवाला हूँ यह मेरा दूसरा अपराध है'—इससे यह सिद्ध होता है कि कृपालु 'आशुतोष' भगवान् शंकर मात्र एक बार प्रणाम करनेसे प्रसन्न हो परमपुरुषार्थ—मोक्षको प्रदान कर देते हैं। आन्ध्र प्रदेशके प्राच्यगोदावरी-मण्डलमें अनेकानेक शैव-क्षेत्र विराजमान हैं, जिनमें एकका नाम है 'क्षणमुक्तेश्वर', जहाँ मुक्ति-कान्ता-सहित शिवजीके दर्शनमात्रसे लोग समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।

वेदों, आगमों, स्मृतियों तथा पुराणेतिहास ग्रन्थोंमें भी शिवजीके परब्रह्मतत्त्वकी विवेचना की गयी है। वेदमे परब्रह्म परमेश्वर रुद्रका उल्लेख मिलता है। परब्रह्मके तीन रूप होते हैं—पहला कार्यरूप है—जो सृष्टिका उपादानकारण बताया जाता है।[3] 'विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् सर्वो ह्येष रुद्रः'—यह श्रुति रुद्रके उपादानकारणत्वका परिचय करती है।

दूसरा सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाला मूर्त-रूप है।[4] अशेष भुवनोंके कारण परब्रह्मने ही विश्वसृष्टि-स्थिति-संहारादि कार्योंको निभानेके लिये प्रथम देवता रुद्रके रूपमें अपनेको प्रकट किया। 'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात् विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः' 'प्रथमो दैव्यो भिषक्' इत्यादि श्रुतियाँ तथा—

मूर्त्यष्टकमधिष्ठाय बिभर्तीदं चराचरम्।
आत्मत्रयमधिष्ठाय सृष्ट्यादि प्रकरोति सः॥
संहारश्च मृडायत्तः उत्पत्तिर्भवनिर्मिता।
रक्षा तु मृडसंलग्ना सृष्टिस्थितिलये शिवः॥

—इत्यादि आगमोंके प्रवचन रुद्रके इस दूसरे परब्रह्म-तत्त्वको प्रकट करते हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर नामक आत्मत्रयका आलम्बन होनेपर भी भगवान् रुद्र संहारकर्ता माहेश्वर-स्वरूपको ही अपना प्रधान अधिष्ठान मानते हैं। इसीलिये कार्यकालमें उनकी मूर्ति 'घोरा' मानी गयी है[5]। इनका कारणरूप 'शिवा' है। ये दो स्वरूप अग्नि-तत्त्वसे सम्बन्धित हैं, इसलिये इन दोनों कार्य-कारण ब्रह्मतत्त्वोंके समाहृत रुद्रका अग्निसे अभेद बताया गया है।[6]

विचारमार्गमें तात्त्विक दृष्टिको ये दोनों स्वरूप अविद्या-मूलक दीख पड़ते हैं। निर्गुण, निरञ्जन, सच्चिदानन्दघन, सत्यज्ञानानन्द-लक्षण जो परस्वरूप है, वही परब्रह्मका सच्चा

१-उपासनं नाम—यथाशास्त्रमुपास्यस्यार्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य तैलधारावत् [illegible] तदुपासनमाचक्षते' (भगवद्गीता शांकरभाष्य)।

२-'मोक्षे धीर्ज्ञानम्'—(नामलिङ्गानुशासन)।

३-ब्रह्मणश्च त्रीणि रूपाणि—एकं कार्यरूपम्—सर्वोपादानतया सर्वात्मकम्।

४-'इतरत् पुरुषाख्यं सृष्टिस्थितिसंहारनिमित्तम्।'

५-तत्र योऽसौ संहारकर्ता तं सर्वदा देवोऽधितिष्ठति। कार्यकाले तस्य सा च देवस्य घोरा तनूः। अन्या शिवा।

६-रुद्रो वा एष यदग्निः—तस्यैते द्वे तनुवौ घोरान्या शिवान्या चेति।

स्वरूप है।[1] यह रूप मायासे मुक्त है। कार्य-कारणरूपमें माया इनकी प्रकृति होनेपर भी 'मायी' होनेके कारण ये रुद्र मायाके जालमें फँसते नहीं।[2] इस विचारणासे यह सिद्ध होता है कि 'रुद्र' ही परब्रह्म हैं।

रुद्राध्यायका स्वरूप—परब्रह्म परमेश्वर रुद्रापरपर्याय शिवकी संस्तुति वेदमन्त्रोंमें भी एकादश अनुवाकोंमें की गयी है, जो रुद्राध्यायके नामसे प्रसिद्ध है। इस रुद्राध्यायके प्रवचनसे यजुर्वेदको वेदत्रयीमें उत्कृष्टतम स्थान प्राप्त हुआ।[3] समस्त वेदराशिके मध्य 'मणि'के रूपमें यह रुद्राध्याय विराजमान है। वेदत्रयीके मध्यमें यजुर्वेद है, जिसके चतुर्थकाण्डके पञ्चम और सप्तम प्रपाठकोंमे 'रुद्रप्रश्न' के नामसे रुद्रमन्त्र पाये जाते हैं। रुद्राध्यायके आरम्भमें भगवान् रुद्रके बहुत-से नाम चतुर्थी-विभक्ति-पुरस्सर हो 'नमो नमः' शब्दोंसे बारंबार दुहराये जानेके कारण इस विभागका नाम 'नमकम्' पड़ा। इसी प्रकार अन्तिम प्रपाठकके मन्त्रोंमें भगवान् रुद्रसेअपनी मनचाही वस्तुओंकी प्रार्थना 'च मे च मे' अर्थात् 'यह भी मुझे, यह भी मुझे' शब्दोंकी पुनरावृत्तिके साथ की गयी है। इसलिये इसका नाम 'चमकम्' पड़ा। इन दोनों नमक-चमकोंका समष्टि रूप ही 'रुद्राध्याय' है। 'शतरुद्रीय' इसी रुद्राध्यायका नामान्तर है। ईशानयज्ञके रहस्य-प्रकरणमें शतरुद्रीय शब्दकी व्युत्पत्ति दिखाकर ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन करनेसे इसको उपनिषद्-प्रपत्ति दी गयी है।[4]

रुद्राध्यायका प्रतिपाद्य—सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वर भगवान् रुद्रके प्रणाम-प्रवचनसे रुद्राध्यायका आरम्भ प्रणवपूर्वक इस प्रकार हुआ—'ॐ नमो भगवते रुद्राय[5]' जिसका अर्थ है 'षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न रुद्रको प्रणाम है।' भगवान् रुद्रकी संहारकर्त्री प्रभृति तनुवोंका समाहृत नाम 'घोरा' है। वे शरीर देखनेमें भयजनक हैं। इसलिये प्रथमानुवाकमें भगवान् रुद्रके मन्यु (क्रोध) और आयुधोंकी स्तुति 'नमस्ते रुद्र मन्यवे०' इत्यादि मन्त्रोंसे करके उस महादेवके क्रोधको शान्त करते हैं। '**यैवास्य घोरा तनूः तां तेन शमयति**' नामक श्रुति इस विनियोगका मूलाधार है। इसके बाद 'नमो हिरण्यबाहवे' इत्यादि मन्त्रोंसे लेकर आठवें अनुवाकतकके भागसे महादेवके विराट्स्वरूपकी स्तुतिकर उन्हें प्रसन्न करते हैं। ये मन्त्र बहुत ही शक्तिशाली और भगवान् रुद्रके अत्यन्त प्रीतिपात्र माने जाते हैं।[6] तत्पश्चात् दशम और एकादश अनुवाकोंसे उनसे अभयप्रदानकी याचना की गयी है। यही महावाक्यार्थ है। समष्टिमें हम इस शतरुद्रीयको 'माला-महामन्त्र' कहें तो कह सकते हैं। चमकानुवाकोंको रुद्राध्यायका शान्तिपाठ भी कहते हैं।

लघुरुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र तथा उनका ज्ञान-हेतुत्व

रुद्रपाठके तीन मुख्य प्रभेदोंका उल्लेख मेरुतन्त्रमें पाया जाता है—

रुद्रीभिरेकादशभिः लघुरुद्रः प्रकीर्तितः।
अनेन सिक्तं यैर्लिङ्गं ते न पश्यन्ति भास्करम्॥

रुद्रैकादशिनीके एक बार पारायणका नाम ही 'लघुरुद्र' है। रुद्रपारायण इसीका नामान्तर है। इस लघुरुद्र-विधिसे लिङ्गाभिषेचन करनेवाला शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

लघुरुद्रके ग्यारह आवृत्तियोंके समाहार-पाठ और जपको 'महारुद्र' कहते हैं, जिससे जप-होमादि करनेसे दरिद्री भी भाग्यवान् बन जाता है। महारुद्रके पाठपूर्वक किया गया होम सोमयागका फल प्रदान करता है।

१-द्वयमप्याविद्यकम्—अन्यत् परं रूपम् निर्गुणं निरञ्जनं सत्यज्ञानानन्दलक्षणम्।

२-मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। (श्वेता० उप० ४।१०)

३-'विद्यासु श्रुतिरुत्कृष्टा श्रुतौ रुद्रैकादशिनी तथा।'

४-अतएव रहस्यप्रकरणे आम्नायते—एकशतमध्वर्युशाखा. तासु सर्वासु चेयं रुद्रोपनिषदाम्नायते—शतं रुद्रा देवता अस्येति शतरुद्रीयमुच्यते। 'शतरुद्राद्धश्च' इति छ प्रत्यय.। अनया रुद्रोपनिषदा ब्रह्मविद्या प्रतिपाद्यते। (भट्टभास्करका उपोद्घात भाष्य)

५-ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रिय.।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

इस प्रवचनके अनुसार 'भगवान्' शब्दका अर्थ षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न होता है।

६-द्वितीयप्रभृतिभिरष्टाभिरनुवाकैर्देवस्य वैश्वरूपेण स्तुतिं नमस्कारं च करोति एवं च देवं [illegible]।

महारुद्रपाठके एकादशावृत्तियोंसे (रुद्राध्यायके ११×११=१२१ एक सौ इक्कीस संख्यामें जप करनेसे) समाहृत-पाठविधिको 'अतिरुद्र' कहते हैं, जिससे ब्रह्महत्यादि निष्कृतिरहित पापोंका भी प्रक्षालन हो जाता है। इस पाठकी कोई तुलना ही नहीं है।

सदैव रुद्रजप करनेवालेको शीघ्र ही ज्ञानोदय हो जायगा। यदि दिनमें किसीको थोड़ा भी अवकाश मिल जाय तो उस समय यदि केवल एक बार भी शुद्ध रीतिसे रुद्रजप करे तो उसे भी ज्ञान-प्राप्ति हो जाती है। 'कैवल्योपनिषद्'में भी रुद्राध्यायके एक बार जप करनेमात्रसे ज्ञानप्राप्ति बतायी गयी है—

'यः शतरुद्रीयमधीते सर्वदा सकृद्वा जपेत् ज्ञानमाप्नोति।'

रुद्रमन्त्रोंका विनियोग एवं विविध उपासनापद्धतियाँ

भट्टभास्कराचार्यकृत 'रुद्रनमक'के भाष्यके अन्तमें रुद्रमन्त्रोंके अनेकानेक विनियोग एवं उपासनापद्धतियोंका विवेचन किया गया है। उनमेंसे कुछ काम्योपासनाओंका परिचय इस प्रकार है—

१-राज्यप्राप्तिके लिये—घृताक्त पायसको रुद्राध्यायसे अभिमन्त्रित करनेके उपरान्त अयुत संख्यामें 'मानस्तोके तनये॰' इस मन्त्रसे उसका विधिपूर्वक होम करनेसे राज्यकी प्राप्ति निर्दिष्ट है।[1]

२-राज्यभोगके लिये—'प्रमुञ्च धन्वनस्त्व॰' इस मन्त्रसे भगवान् रुद्रपर एक लाख संख्यामें सौगन्धिक कमल तथा कुमुदोंसे पूजन करनेसे राजा ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है।[2]

३-श्री-वित्त-द्रव्य-प्राप्तिके लिये—रुद्र, महारुद्र अथवा अतिरुद्रोंमें किसी एकसे अभिमन्त्रित खीरको अयुत संख्यामें हवन करनेसे सम्पत्ति और शोभाकी प्रचुर मात्रामें उपलब्धि बतायी गयी है।[3]

'इमा रुद्राय॰'—इस मन्त्रसे लाख संख्यामें तिलहोम करनेसे अशेष धनप्राप्तिका निर्देश है[4]।

अपने ही रसोई-घरकी अग्निमें **'प्रमुञ्च धन्वनस्त्व॰'** इत्यादि मन्त्रोंसे आठ सहस्र पर्याय चरुहोम (अन्नका हवन) करनेसे अक्षय द्रव्यसिद्धि बतायी गयी है।[5]

४-सुवृष्टि और सुभिक्षके लिये—'असौ यस्ताम्रो॰' इत्यादि मन्त्रसे वेतस-समिधोंसे अयुत संख्यामें होम करनेपर भगवान् आदित्य (रुद्रकी अष्टमूर्तियोंमें एक हैं) संतुष्ट होकर पानी बरसाते हैं।[6]

प्रतिदिन उभय संध्याओंमें सूर्योपस्थान-मन्त्रोंके साथ-साथ **'असौ यस्ताम्रो॰'** इत्याद्युपर्युक्त मन्त्रका जप करनेसे अक्षय अन्नकी सिद्धि होती है।[7]

५-रोगनाश और आयुर्वृद्धिके लिये—रविवारके दिन ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देकर उनसे सहस्र संख्यामें शतरुद्रीयका पाठ करवानेसे व्याधिका नाश होता है और वह यजमान शतायु होता है[8]। महारुद्रपाठके उपरान्त **'आराते गोघ्नं॰'** इत्यादि मन्त्रसे षोडशोपचार पूजन करके तत्पश्चात् उसी मन्त्रका सहस्र जप करनेसे आयुर्वृद्धि होती है[9]। **'मा नो महान्तमुत॰'** इत्यादि मन्त्रसे अयुत संख्यामें तिलोंकी आहुतियोंके चढ़ानेसे बालसे लेकर वृद्धोंतक पूरे परिवारका स्वास्थ्य सक्षेम ठीक होता है[10]।

६-पुत्रप्राप्तिके लिये—'परिणो रुद्रस्य॰' इत्यादि मन्त्रसे

१-रुद्राध्यायेनाभिमन्त्र्य 'मानस्तोके तनये॰' इत्यनेन घृतपायसेनायुतं जुहुयात्। राज्यं प्राप्नोति।

२-पद्मसौगन्धिकोत्पलानां शतसहस्रं प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमिति मन्त्रेण भगवतो महेश्वरस्य शिरस्यारोपयेत्। राजा श्रियं विन्दति।

३-अथ श्रीकामस्य—रुद्रमहारुद्रातिरुद्राणामन्यतमं जुह्वन् पायसेनायुतं जुहुयात्। श्रियं लभते।

४-वित्तकामस्य—इमा रुद्रायेत्यनेन तिलैः शतसहस्रं जुहुयात्।

५-प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमित्यनेन यथासिद्धान्नं महानसाग्नावष्टसहस्रं जुहुयात्। द्रव्यसमृद्धिरन्नमक्षयं भवति।

६-'असौ यस्ताम्र॰' इत्यनेनैव वेतससमिधानामयुतं जुहुयात्। भगवानादित्यो वृष्टिं मुञ्चति।

७-'असौ यस्ताम्र' इत्यनेनाहरहस्सन्ध्यामुपस्थाय आदित्यमुपतिष्ठेत् अक्षय्यमन्नमुपतिष्ठते। इति शौनकः।

८-व्याधितश्चेत्—रविदिने ब्राह्मणाय दक्षिणां दत्त्वा सहस्रं जापयेत्। व्याधिभ्यः प्रमुच्यते। शतायुर्भवति।

९-आयुष्कामः रुद्रैकादशिनीं एकादशशो जुह्वन् 'आराते गोघ्न' इति षोडशोपचारान् कृत्वा तमेव मन्त्रं सहस्रं जपेत्।

१०-'मा नो महान्तमुत' इति मन्त्रेण तिलाहुतीनामयुतं जुहुयात्—बालानां वृद्धानामारोग्यं भवति—इति शौनकः।

पीपलकी समिधाओंसे अयुत संख्यामें होम और जपादि करनेसे आयुष्मान् पुत्रकी प्राप्ति होती है।[१]

७-रक्षा और क्षेमके लिये—'नमो भवाय च', 'नमो ज्येष्ठाय च' इन दोनों मन्त्रोंसे भस्मको अभिमन्त्रित कर कुमारादि ग्रहगणसे पीडित बालकोंके ललाटपर तिलक लगानेसे वे ग्रहपीडाओंसे मुक्त हो सुखी हो जाते हैं।[२]

'**या ते रुद्र शिवा तनूः**' इस ऋक्-मन्त्रसे प्रत्येक सूत्रको हजार संख्यामें अभिमन्त्रित कर रुद्रैकादशिनीका पाठ करते हुए उन सूत्रोंसे एकादश गाँठ लगाकर बालको और गर्भिणी स्त्रियोंके हाथमें बाँध दें तो वे सुखपूर्वक रहेंगे। गर्भिणीका प्रसव सुखपूर्वक होगा।[३]

अग्नि-चोर-प्राणभयादि संकटकी परिस्थितियोंमें '**मीढुष्टम शिवतम॰**' इत्यादि मन्त्रके जप करनेसे भयमुक्त हो सकुशल अपने घर पहुँच जाता है[४]।

८-सर्वकामनाओंकी सिद्धिके लिये—रुद्राध्यायके केवल पाठ अथवा जपसे ही समस्त कामनाओंकी पूर्ति हो जाती है।[५]

नमक-चमकोंके प्रथमानुवाकोंके सम्पुटीकरणसे जप-होमादि करनेके बाद रुद्राध्यायका पाठ करे और यथाशक्ति रुद्रजापी ब्राह्मणोंको भोजन-वस्त्र दक्षिणादि देकर सत्कार करे। इस प्रकार करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होंगी[६]।

अथवा रुद्रमहारुद्रातिरुद्रोंका यथाशक्ति जप करके उक्त संख्यामें पायस चरुका होम करनेसे भी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होगी।[७]

शतरुद्रीयका माहात्म्य

शतरुद्रीयका पाठ अथवा जप समस्त वेदोंके पारायणके तुल्य माना गया है। समग्र वेदका एक बार पारायण करनेसे जिस प्रकार पापोंसे मानवकी शुद्धि होती है, उसी प्रकार रुद्राध्यायके पाठके उपरान्त पापोंका क्षालन हो जाता है। इसलिये रुद्राध्यायका पाठ वेद-पाठके तुल्य फलप्रद माना गया है। वायुपुराणमें बताया गया है कि रुद्राध्यायका जप करनेवाला रोगों और पापोंसे पूर्णतया मुक्त होकर इस लोकमें अनुपम सुखानुभव पाकर अन्तमें शिव-सायुज्यरूपी परा-मुक्तिको प्राप्त करता है। जाबालोपनिषद्में कहा गया है कि शतरुद्रीयके जपमात्रसे अमृतत्वकी सिद्धि हो जाती है।[८] आगे कहा गया है कि रुद्राध्यायमें वर्णित सभी नामोंमें अमृतत्व प्रदान करनेकी सामर्थ्य है जिनके मननसे मनुष्य स्वयं अमर (मृत्युञ्जय) हो जाता है[९]।

कैवल्योपनिषद्में शतरुद्रीयकी अनन्त महिमाका वर्णन करते हुए कहा गया है कि शतरुद्रीयका एक बार भी सम्यक्-रूपसे पाठ करनेवाला समस्त पातकोंसे परिशुद्ध होकर संसारसागरसे मुक्त हो जाता है, ज्ञान प्राप्त कर लेता है अथवा कैवल्यपदको प्राप्त कर लेता है। मूल वचन इस प्रकार है—'**यः शतरुद्रियमधीते सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आत्मपूतो भवति स सुरापानात् पूतो भवति स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति स सुवर्णस्तेयात् पूतो भवति स कृत्याकृत्यात् पूतो भवति तस्मादविमुक्ताश्रितो भवत्यत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेत्।**

१-अथ पुत्रकामस्य शौनक.—'परिणो रुद्रस्य॰' इति वटसमिधानामयुतं जुहुयात्। पुत्र आयुष्मान् उत्पद्यते।

२-'नमो भवाय च॰' 'नमो ज्येष्ठाय च॰'—इत्येताभ्यां कुमारग्रहादिग्रस्तानां भस्माभिमन्त्र्य रक्षां कुर्यात्।

३-'या ते रुद्र शिवा तनूः' इति ऋग्यान्तिमा तया प्रतिसरं सहस्रमभिमन्त्र्य एकादशग्रन्थीन् दत्त्वा बालानां गुर्विणीनां च हस्ते बध्नीयात् बालाः गुर्विण्यश्च सुखेन वर्धन्ते।

४-मीढुष्टम शिवतम॰' इति महाभये चौरभयेऽग्निभये प्राणात्यये वा मनसा जपेत्। सः क्षेमेगागच्छति।

५-अस्य रुद्राध्यायस्य जपमात्रेणैव सर्वसिद्धिः।

६-अथ सर्वकामार्थं. शौनकोक्त. प्रयोगः—रुद्रप्रथमानुवाकैर्मन्त्रैः आज्याहुतीर्हुत्वा रुद्रैकादशिनीं जपेत्। यथाशक्ति ब्राह्मणान् रुद्रवेदिनो भोजयेत्। सर्वे कामाः सम्पद्यन्ते इति।

७-अथवा रुद्रमहारुद्रातिरुद्रेष्वन्यतमं जप्त्वा उक्तसंख्यया पायसं जुहुयात् सर्वान् कामानवाप्नोति।

८-अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः—किं जप्येनामृतत्वमश्नुते ब्रूहीति। स होवाच याज्ञवल्क्यः— 'शतरुद्रियेणेति'—(जाबालोपनिषद् ३)

९-एतानि ह वा अमृतस्य नामानि एतैर्ह वा अमृतो भवतीति। (जाबा॰ ३)

अनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनम्।
तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्यं पदमश्नुते॥

मोह-ममताका परित्यागकर जो रुद्राध्यायका सदैव जप करता रहता है, वह इसी शरीरसे साक्षात् रुद्र बन जाता है। अन्यत्र यों कहा गया है—

नमकं चमकं होतॄन् पुरुषसूक्तं जपेत् सदा।
प्रविशेत् स महादेवं गृहं गृहपतिर्यथा॥

अर्थात् नमक-चमकोंके रुद्रमन्त्रोंका, चितिसृगित्यादि होतृमन्त्रोंका और पुरुषसूक्तका निरन्तरजापी पुरुष महादेवमें स्वयं इतना नि:शङ्क और निश्चिन्त होकर प्रवेश करता है, जैसे कि गृहस्वामी अपने गृहमें प्रवेश करता है। न केवल उपनिषदादि शास्त्रों तथा आगमोंमे अपितु बोधायन-स्मृति, यमस्मृति[1], महाभारत (अनुशासनपर्व, द्रोणपर्व आदि), कूर्मपुराण, लिङ्ग, शिव, हरिवंश आदि पुराणों तथा सूतसंहिता आदिमें पद-पदपर भगवान् शंकरकी महिमा तथा शतरुद्रीयकी महत्ताका प्रतिपादन हुआ है। सूतसंहिताका कहना है कि रुद्रजापी महापातकरूपी पञ्जरसे मुक्त होकर सम्यक्-ज्ञान प्राप्त करता है और अन्तमें विशुद्ध मुक्ति प्राप्त करता है। रुद्राध्यायके समान जपने योग्य, स्वाध्याय करने योग्य वेदों और स्मृति आदिमें अन्य कोई मन्त्र नहीं है—

रुद्रजापी विमुच्येत महापातकपञ्जरात्।
सम्यक् ज्ञानं च लभते तेन मुच्येत बन्धनात्॥
अनेन सदृशं जप्यं नास्ति सत्यं श्रुतौ स्मृतौ।

अस्तु, सकृत् प्रतिपत्तिमात्रसे सायुज्यमुक्तिको प्रदान करनेवाले सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वर आशुतोष श्रीमहादेवजीको रुद्राध्यायके जप-होमार्चन आदि उपासना-प्रकारोंसे प्रसन्न कर आस्तिक भक्त महाजन अपने इस जन्मको चरितार्थ करें।

शिवोपासनाकी आवश्यकता

(श्री 'ज्योतिः')

१-सृष्टिके पूर्व चैतन्यमय पुरुषने जब निष्काम और निष्क्रिय दर्शकभावसे स्थूलभावमें प्रकट होनेकी इच्छा की, तब उनकी इच्छाके उन्मेषमात्रमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ईश्वरसदृश कई महापुरुषोंकी सृष्टि हो गयी। इन सबको विदेह भी कहते हैं।

महेश्वरका दूसरा नाम शिव अथवा मङ्गलमय है। उनका अद्भुत वेश है। मनुष्यके समान आकृति होनेपर भी उन्हें पञ्चानन, त्रिनयन, व्याघ्रचर्मपरिहित, भस्मादिलेपित अद्भुत पूर्णदिवभावापन्न मानकर देवाधिदेव महादेवके नामसे भी पुकारते हैं। प्रचलित कथाओंमें उनके और भी कितने ही नाम हैं, यथा—शंकर, आशुतोष, भोलानाथ, मृत्युञ्जय, विश्वनाथ आदि।

२-परमात्माने जगत्-निवासियोंको अपने ही बनाये हुए माया-मोहका अतिक्रमण कर मृत्युको जीत लेनेके लिये मृत्युञ्जयको आदर्श बनाकर सिरजा है। वे प्राणिजगत्के आदर्श और गुरु हैं। उनके आश्रयके बिना प्राणिजगत्का कोई भी जीव मृत्युको जीतकर पूर्णबोध ग्रहण नहीं हो सकता। वे जीवोंके मङ्गलके लिये ध्यानस्थ एवं पूर्णके साथ योगयुक्त हैं। दूसरी ओर वे श्मशानवासी हैं, श्मशान उनका नित्यस्थान है। अनित्यताकी शिक्षा देनेके लिये वे जीव-शरीरके अन्त्येष्टि-स्थान श्मशानमें वास करते हैं। वे नाम लेनेमात्रसे ही खुश हो जाते हैं, इसीलिये उनका एक नाम आशुतोष है। त्यागकी पूर्णावस्था उनके जीवनमें प्रतिफलित है, इसी कारण किसी प्रकारके ऐश्वर्यके उपकरणके द्वारा उनकी पूजा नहीं होती। भाँग, धतूरा, बिल्वपत्र उनकी पूजाके उपकरण हैं, अर्थात् मनुष्य जिसे पसंद नहीं करता, उसीसे उन्हें प्रेम है।

मृत्युञ्जय नामकी एक सार्थकता यही है कि जिस वस्तुसे जगत्की मृत्यु होती है, उसे भी यह जय कर लेते हैं, तथा उसे भी प्रिय मानकर ग्रहण करते हैं।

भगवत्-शक्तिकी महिमाका कीर्तन करनेके लिये उस पञ्चाननके पाँच मुख हैं। यद्यपि यह उनके योग-शरीरका विकासमात्र है, तथापि वे सर्वदा ही पञ्चमुख नहीं रहते। योगीका शरीर जब आनन्दमें पूर्ण होकर भगवत्कीर्तन करता है, तब उसके अनेकों सिर हो जाते हैं। यह अस्वाभाविक नहीं

[1] वेदमेकगुणं जप्त्वा तदहैव विशुध्यति। रुद्रैकादशिनीं जप्त्वा सद्य एव विशुध्यति॥

है, साधन-सापेक्ष है।

३-शिवलोकको छोड़कर उनका आदिस्थान हिमालयका कैलास है। यह उस समयकी बात है जिस समय भारतवर्ष देवताओंकी लीलाभूमि थी। देवता लोग यहाँ लीला करते थे। अनेक पुराण-इतिहासोंमें यह बात पायी जाती है। यही क्यों, उस समय भारतवर्ष त्रिकोणाकार भूमिके रूपमें वर्णित था। हिमालय भू-भारतमें सर्वोच्च पर्वत है, शिवके समान शुभ्रवर्ण धारण करके वह अचल और अटलभावसे खड़ा है। योगि-श्रेष्ठ शिवजी पार्वतीके साथ वहीं आकर जगत्‌के कल्याणके लिये ध्यानमग्न हुए थे। ये शिव ही अपने योग और विभूतिका प्रकाश कर नाना स्थानमें नानारूपमें हमारे सम्मुख प्रतिभात होते हैं। योगीश्वर महादेवके लिये योग-विभूतिके प्रकाशमें एक ही समय अनेकों स्थानोंमें स्थित रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

४-मेरे अपने व्यक्तिगत जीवनकी दो-एक घटनाओंका उल्लेख करनेसे बहुतोंको शिव-चरित्र सहज ही समझमें आ जायगा। शारदीया पूजाके पश्चात् दीपावलीके समय काशीमें अन्नपूर्णाके मन्दिरमें अन्नकूट-उत्सव होता है। मा अन्नपूर्णाकी स्वर्णमयी मूर्ति उसी समय केवल तीन दिनके लिये सर्वसाधारणको दिखलायी जाती है। कई वर्ष पूर्वकी बात है। ऐसे ही समय, याद नहीं कहाँसे घूमते-घामते मैं काशीधाम आ पहुँचा। अन्नकूट देखनेके लिये मन अत्यन्त व्यग्र था। एक बार देखकर लौटनेके कुछ ही समय बाद पुनः लोगोंकी भीड़को हटाता हुआ मैं अन्नकूट देखने गया। स्वर्णनिर्मित अन्नपूर्णाकी मूर्ति तथा उसके साथ अन्यान्य मूर्तियाँ मुझे इतनी अच्छी लगीं, जिसका वर्णन नहीं कर सकता। मैं एकदम मुग्ध हो गया। परंतु एक विषयमें मेरे मनमें एक आशङ्का उठी। अन्नपूर्णाके समीप रौप्यनिर्मित विश्वनाथकी मूर्तिका साज भिखारीका होनेपर भी वह नितान्त ऐश्वर्यमण्डित था, यह भाव मुझे अच्छा न लगा। मन खराब होनेसे मैं मन्दिरसे बाहर निकल कर नीचे द्वारके निकट खड़ा हो गया। वहाँ मैं लोगोंकी भीड़ देखने लगा, उसी समय एक आठ वर्षका लड़का आकर मेरा हाथ पकड़कर खींचने लगा और मुझसे बोला—'आपने अन्नपूर्णाकी मूर्तिके दर्शन नहीं किये?' मैं उस बालकके आग्रह और ताकीदपर 'हाँ' या 'ना' कुछ भी न बोल सका। वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे ऊपर स्वर्ण-मूर्तिके दर्शन करनेके लिये ले चला। मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला, परंतु लोगोंकी इस भीड़में इतना छोटा बालक मुझ-जैसे सबल और स्वस्थ-शरीर युवकको पकड़कर लिये जा रहा है, यह देखकर लोग क्या कहेंगे—इस बातका विचारकर मैं मन-ही-मन लज्जित हो रहा था। जो हो, मैं उसके पीछे-पीछे मन्दिरमें घुसा। वह मुझे अत्यन्त आग्रह-पूर्वक मूर्तियोंका परिचय देने लगा। उस समय भी मैंने मनोवेदनाके कारण शिवमूर्तिकी ओर नहीं देखा। तत्पश्चात् हम दोनों बाहर दरवाजेके पास आये। बालकने कहा—'नीचे जो महामायाकी मूर्ति है, जान पड़ता है आपने उसके भी दर्शन नहीं किये।' बालक पुनः मेरा हाथ पकड़कर नीचे महामायाके निकट ले गया और बोला—'महामायाके दर्शन कीजिये, यहाँ चरणामृत लेना होता है।'

मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि यह बालक कौन है, इसका घर कहाँ है, मुझे कैसे पहचानता है? जो हो, मैंने चरणामृत लिया। बालकका परिचय जाननेके लिये उससे पूछनेको ज्यों ही मैंने पीछे फिरकर देखा तो उसे नहीं पाया। मानो एक ही सेकंडमें वह गायब हो गया। मैं अवाक् रह गया। तथापि उसे खोजनेके लिये बाहर निकला। कितने ही लोग मन्दिरसे बाहर निकल गये, परंतु मैंने उस बालकको कहीं नहीं पाया। मैं धीरे-धीरे अपने डेरेपर आकर सो रहा। कुछ समयके बाद समझमें आया, स्वयं विश्वनाथने मुझे यह बात समझा दी कि उनके समान योगिश्रेष्ठ होना मेरे लिये कभी सम्भव नहीं। तथापि उन्होंने मानो कहा—'तुम सरल हृदयसे जो कुछ समझते हो, माके बच्चेकी तरह माका आश्रय लेकर चलते रहो।'

५-मुझे इस प्रकार बोध होनेका एक दूसरा भी कारण था। उपर्युक्त घटनाके प्रायः दो वर्ष-पूर्व जब किसी महापुरुषकी कृपासे मैं व्याकुल होकर इधर-उधर घूम रहा था, तब एक दिन रात्रिमें किसी श्मशानमें पहुँचा। उस समय रात्रि अधिक हो गयी थी। अत्यन्त घना अन्धकार था। श्मशानके भीतर मन्दिरमें मानो कोई सो रहा है ऐसा जान पड़ा। पहले विचारमें आया कि हो-न-हो कोई साधु ध्यान-धारणाके लिये गम्भीर रात्रिमें श्मशानमें आया हुआ है। छोटे गाँवका श्मशान कितना भयंकर होता है, शहरमें रहनेवालोंको इसकी धारणा

नहीं हो सकती। मनुष्योंकी बस्तीसे दूर नदीके किनारे, जहाँ मनुष्योंका आना-जाना नहीं होता, एक दीपक भी नहीं जलता तथा प्रेतात्माएँ अदृश्यमें नाना प्रकारके शब्द करती हैं, रातको जाना तो दूर रहा, मनुष्य दिनमें भी भयके मारे वहाँ नहीं जाता। जो हो, मैं उस मन्दिरके भीतर जाकर संन्यासी समझ उसकी ओर आगे बढ़ा। देखा कि वह स्वयं शिव हैं, उनका वर्ण धवलगिरिके समान शुभ्र है। ऊपर भस्मलेप किये हुए हैं, परिधान व्याघ्रचर्म है, जो देखनेमें बहुत ही सुन्दर लगता था। मैं मुग्ध हो गया, तथापि उनसे पूछा—'आपको किस उपायसे प्राप्त किया जा सकता है, कृपा करके बतला दीजिये।' मेरी बात सुनते ही वे बोले—'मेरा हृदय कितना कठिन है, तुम क्या नहीं जानते?' यह कहकर वे कहीं अन्तर्धान हो गये, मैं न देख सका। मैंने समझा कि योगिश्रेष्ठ शिवके पथका अनुसरण करना मेरे-जैसे क्षुद्र व्यक्तिके लिये असाध्य है। भगवान्‌पर एकान्त-निर्भरता ही सरल पथ है। इसीसे मानो यहाँ भी उन्होंने प्रकारान्तरसे माके चरणोंका आश्रय ग्रहण करनेका उपदेश दिया। मा मुझपर दया करेंगी, इसी आशामें बैठा हूँ।

६-कैलास हिमालयका ही एक सर्वोच्च निर्जन स्थान है। सांसारिक ऐश्वर्यके न रहनेपर भी प्राकृत ऐश्वर्य वहाँ प्रचुर परिमाणमें वर्तमान है। पृथ्वीकी सृष्टिके साथ ही कैलासका भी सर्जन हुआ था। पृथ्वीके ऐश्वर्यसे दूर रहनेके लिये देवाधिदेव महादेवने कैलासको चुना। समुद्रके ऊपर होकर घूमने-फिरनेसे ही जिस प्रकार समुद्रके ऐश्वर्यपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती, उसी प्रकार हिमालयके उच्च शिखरपर आरोहण करनेसे ही कैलासपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। इसके लिये योगचक्षुकी आवश्यकता है।

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई प्रभृति धर्मोंके महापुरुषोंने जिस प्रकार अपनी-अपनी साधनासे सिद्धि प्राप्तकर संसारमें अनेकों दर्शनीय वस्तुओंको देखा है, उसी प्रकार शिवभक्तिकी प्राप्ति होनेपर कैलासमें उन कठोर योगी शिवके दर्शन हो सकते हैं। वहाँ वे पार्वतीके साथ निवास करते हैं। इनमें एक निष्क्रिय योगिराज हैं और दूसरी ऐश्वर्यमयी क्रियाशीला चञ्चल प्रकृति। एक सृष्टि करती है, तो दूसरे उसका ध्वंस कर जीवोंको ब्रह्मके साथ मिलाकर ब्रह्म हो जानेका उपदेश देते हुए तारक-ब्रह्मनाम वितरण करते हैं।

७-पृथ्वीमें शिवलिङ्ग-पूजाकी व्यवस्था है। मैंने सुना है, कितने ही हजारों वर्ष पूर्वके शिवलिङ्ग आज भी मिट्टीके नीचेसे पृथ्वीके अनेकों स्थानोंमें खोजकर निकाले गये हैं। मेरा खयाल है कि देवर्षि नारदने इस लिङ्गपूजाका प्रचार किया था। अवश्य ही आजकल कुछ लोग लिङ्गपूजाको असभ्यताका परिचायक बतलाते हैं, परंतु वे नहीं जानते कि इसमें असभ्यता माननेका कोई कारण नहीं है। प्रत्येकके जीवनमें प्रकृति और पुरुषके मिलनकी जो दुर्दमनीय इच्छा वर्तमान रहती है, उसी इच्छासे सृष्टिका आरम्भ होता है। इसीका प्रतिरूप दिखलानेके लिये शिवलिङ्गकी पूजाका प्रवर्तन ऋषिराजने किया है। शिवके बिना इस इच्छाको कोई करानेसे भी नहीं कर सकता। प्रवृत्तिको वशीभूत कर उसे पूर्णब्रह्मके साथ युक्त करके योगिराज बनना और किसीके लिये सम्भव नहीं हुआ। पृथ्वीके लोगोंको सृष्टिकी इच्छासे निवृत्त होनेका उपदेश देनेके लिये देवर्षि नारदने अनुग्रह करके इस सहज पथका प्रचार किया है। इस इच्छासे निवृत्ति पाते ही मुक्तिकी, पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसी कारण शिव मुक्तिदाता, पूर्ण ज्ञानी, विश्वनाथ हैं।

जीव इसीलिये शिव-पूजाकर दुर्दान्त कामपर विजय प्राप्त करे, यही इसका अभिप्राय है। काम-जय तथा मदनको भस्मीभूत करना एक ही बात है। शिवलिङ्ग स्पर्शकर मनुष्यको यह प्रार्थना करनी पड़ती है कि 'हे प्रभो! मनकी विषय-वासनाको दूर कर मुझे मुक्त कर दो। मैं प्रकृतिकी ताड़नासे कामनामें निमग्न हूँ, मेरी रक्षा करो।'

८-पुराणमें एक सुन्दर आख्यान है। एक दिन एक व्याध कोई शिकार न पाकर भूखसे व्याकुल हुआ चतुर्दशीकी रातमें एक बेलके वृक्षपर चढ़ गया। गम्भीर अन्धकारसे घिरे हुए उस तामसी व्याधने अन्य कोई उपाय न देखकर विश्वनाथके चरणोंका आश्रय ले लिया। मङ्गलमय भगवान् शिवने उसे दर्शन देकर मुक्त कर दिया।

मनुष्यकी इसी प्रकारकी अवस्था होती है। जब चारों ओर खोजनेपर कहीं आश्रय नहीं मिलता, जब प्राण कण्ठगत हो जाते हैं, तब अकस्मात् भगवत्सत्ताका आविर्भाव होता है और तामसिक भाव दूर हट जाता है। यद्यपि यह स्वाभाविक नहीं है, तथापि अनेकोंके जीवनमें ईश्वरोपलब्धि इसी प्रकारसे

होती है। इसीलिये भक्तलोग अपने हृदयको शिव—चैतन्यमयके साथ युक्त जानकर अपने-अपने नामसे एक-एक शिवलिङ्ग स्थापित कर गये हैं। प्रकारान्तरसे वे सृष्टि-रहस्यसे दूर रहकर हृदयस्थ मङ्गलमय शिवके निकट ही मुक्ति-प्राप्तिके लिये प्रार्थना कर गये हैं। हमारे खयालसे जो देहके भीतर सूक्ष्मभावसे विराजमान हैं, वही स्थूलरूपसे देहके बाहर विराट् आकारमें प्रकाशमान हैं। यही शिव-भावका प्रतीक-स्वरूप है।

प्रकृति-तत्त्वकी उपलब्धिके लिये ज्ञाताको ज्ञेय-तत्त्वके स्तरमें आना पड़ता है, नहीं तो ज्ञान सम्भव नहीं है। इसी कारण बहुधा आध्यात्मिक रहस्य साधारण दृष्टिकी आड़में रह जाता है। ज्ञानके लिये एक समान वस्तुकी आवश्यकता है।

बीजके भीतर वृक्ष है, यह बात जैसे सहजमें ही एक बालकको समझायी नहीं जा सकती, इसी प्रकार गौरीपीठपर शिवलिङ्ग स्थापित देखकर जो सृष्टि-रहस्यको तनिक भी नहीं समझते अथवा प्राणिजगत्की उत्पत्तिके कारणका अनुसंधान न कर जो मङ्गलमय शिवसे दूर रहते हैं, उन्हें शिवलिङ्ग-पूजाका माहात्म्य समझाना असम्भव है। फलतः शिवलिङ्ग-पूजा सृष्टि-रहस्यका ही एक चित्र है। जिन्होंने इस पूजाको प्रचलित किया है, उनका उद्देश्य जीवको जन्म-मृत्युके पंजेसे छुड़ाना है। यदि कोई जन्म-मृत्युसे बचना चाहते हैं तो उन्हें या तो मङ्गलमय शिवस्वरूप सृष्टिकर्ताके इस कौशलको समझ उससे दूर रहना चाहिये अथवा उसकी इच्छाके साथ युक्त होकर सृष्टि-कौशलकी विचित्रताका अवलोकन करना चाहिये। इसका तात्पर्य यही है कि प्रकृति-पुरुषके मिलनसे जो सृष्टि-व्यापार चला आ रहा है, उसके रहस्यको भेदकर निर्लिप्तभावसे साक्षीस्वरूप होकर रहना ही शिव-तत्त्व है। इसी तत्त्वकी उपलब्धिके लिये शिवपूजाकी आवश्यकता है।

परमेश्वर नित्य, चैतन्यस्वरूप, निराकार है, यह सभी जानते हैं। जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें महापुरुष तथा देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं। इन मनुष्यों और देवताओंमें पुनः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर श्रेष्ठ हैं। ये तीनों परस्पर युक्त होकर प्रत्येकशः श्रेष्ठ हैं। साधकोंने साधनद्वारा इस बातको जाना है।

१-इस स्थूल जगत्के पीछे और भी कितने ही जगत् हैं, यह बात जड-विज्ञान नहीं समझ सकता। आध्यात्मिक विज्ञानके विधाताकी कृपासे स्थूल चक्षुमें आभासित होनेपर ही इनका पता लगता है। उसी कृपाको ऋषियोंने 'साधना' कहा है। जड-विज्ञान जडके द्वारा ही प्रकृतिराज्यमें नाना प्रकारकी आश्चर्यजनक घटनाएँ दिखला सकता है। परंतु आध्यात्मिक जगत्के विषयको जाननेके लिये देवाधिदेव महादेव शिवकी उपासना करनी पड़ती है। प्रकृति-पुरुषके मिलनके पश्चात् जो दर्शकभावसे रहते हैं, उनको प्राप्त करना ही अन्तिम उद्देश्य है। इसीलिये दिव्यचक्षु ऋषिगण प्रकृति-पुरुषके मिलनरूप शिवलिङ्ग-पूजाकी व्यवस्था कर गये हैं। हाय! दुःखकी बात है कि कालधर्मके कारण यह आज अश्लील समझा जा रहा है।

मैं क्षुद्र मनुष्य हूँ, तथापि महापुरुषके अनुग्रहसे मैंने जो कुछ देखा है, उसे कहता हूँ। एक दिन मैंने देखा कि महापुरुष मुझे पृथ्वीके बाहर किसी स्थानमें ले गये। हमारी इस पृथ्वीके बाहर असंख्य पृथ्वियाँ और हैं। यह बात विज्ञानसम्मत भी है, इसी प्रकारकी एक दूसरी पृथ्वीपर महापुरुष मुझे ले गये। मैंने देखा कि जलपूर्ण नदीके तीरपर शिवमन्दिरोंकी पंक्तियाँ लगी हुई हैं। मन्दिरोंके भीतर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। हमारे रेलपथके समान उस पृथ्वीपर भी रेल हैं। उन मन्दिरोंके समीप ही एक रेलवे स्टेशन है। उसकी गाड़ियाँ छोटी-छोटी हमारी मालगाड़ीके समान हैं। ऊपर छत नहीं है, परंतु भीतर बैठनेके लिये बेंचें हैं। उसपर चढ़कर दूर-देशसे लोग मन्दिरमें पूजा करने आ रहे हैं। प्रत्येकके हाथमें पुष्पकी डलिया है। उसमें फूल, बिल्वपत्र आदि पूजाकी सामग्री है। हमारी पृथ्वीके समान वहाँ उज्ज्वल सूर्यका आलोक नहीं है, किंतु वहाँ एक प्रकारका स्निग्ध प्रकाश फैल रहा है। जो धर्मकार्यके लिये मन्दिरमें आते हैं उनको किराया नहीं देना पड़ता। लोगोंको परस्पर बातें करते मैंने नहीं सुना। सभी चुप हैं, सभी परमेश्वरके लिये व्याकुल हैं। पूजार्थिनी एक स्त्री मेरी परिचित जान पड़ी। जान पड़ा, उसने भी मुझे छायाके समान देखा। उसने पूछा—'क्या है रे?' और इतना कहकर वह भी गाड़ीपर सवार होकर चली गयी।

और भी देखा, नाना प्रकारके सम्प्रदायके लोग वहाँ हैं। परस्पर धर्मभावके एक ही उद्देश्यको समझकर मानो ये हिंसा-द्वेष-शून्य हो रहे हैं। जड-विज्ञान यदि कभी इसका पता

लगा सका तो ज्ञात हो जायगा कि हमारी पृथ्वीपर कोई बात नयी नहीं है। जो कुछ है वह एक-एक नमूनेके रूपमें उस पृथ्वीसे उल्काके समान छूटकर आता है और यहाँ कार्यकर हो जाता है।

१०-भाइयो और बहनो! तुमलोग शिवके समान शव हो करके सर्वस्व त्यागकर बैठ रहो। अपनी उत्पत्ति अर्थात् सृष्टि-कौशलका विचारकर इस सृष्टिके पीछे जो चैतन्यस्वरूप 'दर्शक'-रूपमें अवस्थित हैं उनकी उपलब्धि करो। तभी शिवलिङ्ग-पूजाका उद्देश्य समझ सकोगे तथा यह भी जान सकोगे कि इच्छामूर्ति शिव मङ्गलमयरूपमें स्थूल-सूक्ष्मभावसे सर्वत्र विद्यमान हैं। वे गुरुरूप हैं, प्राण-मन उनमें लगा देनेसे वे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले जाते हैं।

वे आशुतोष हैं, थोड़ेमें ही सेवकके ऊपर संतुष्ट हो जाते हैं। उनको किसी वस्तुकी कमी नहीं है, परंतु जीवके कल्याणके लिये मूर्ति-परिग्रह कर अपनेको सीमाबद्ध करते हैं और तदनुसार अपने अभावकी भी सृष्टि कर लेते हैं। जीवको शिक्षा देनेके लिये वे जिस आदर्शमें अनुप्राणित हो सर्वत्यागी हो रहे हैं, सृष्टि-रहस्यको समझनेके लिये जीवको भी उसी त्यागके आदर्शका ग्रहण करना होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है। सृष्टि-रहस्यमें प्रवेश किये बिना वास्तविक धर्मजीवनका आरम्भ नहीं होता।

हे त्यागवीर तेरा यह भोलापन मानव-हृदयका आदर्श बने, यही प्रार्थना है। जय शिव! जय शंकर! जय, जय, जय! तू मुझे क्षमा करे!

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥

भस्मविधि और माहात्म्य

[कालाग्निरुद्रोपनिषद्से]

जिन रुद्रभगवान्की विभूति (भस्म) ब्रह्मज्ञानके उपायरूपमें बखानी गयी है और जो अपना भजन करनेवालोंको निज स्वरूप दे डालते हैं, उन कालाग्निरूप रुद्रकी मैं शरण जाता हूँ, ओम्।

कालाग्निरुद्रोपनिषद्के प्रवर्तक अग्नि ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीकालाग्निरुद्र देवता हैं और श्रीकालाग्निरुद्रकी प्रसन्नताके लिये भस्मका त्रिपुण्ड्र धारण करना 'विनियोग' (उपयोग) है।

सनत्कुमारने भगवान् कालाग्निरुद्रसे पूछा कि—'हे भगवन्! त्रिपुण्ड्रधारणकी विधिको तत्त्वसहित बताइये। उसमें कौन-सा द्रव्य और कितना स्थान अपेक्षित है और त्रिपुण्ड्रका क्या प्रमाण है, उसमें रेखाएँ कितनी होती हैं, उसके मन्त्र क्या हैं, शक्ति क्या है, देवता कौन है, कर्ता कौन है और उसके धारण करनेसे क्या फल मिलता है?'

भगवान् कालाग्निरुद्रने उनको उत्तर दिया—'अग्निहोत्र अथवा आवसथ्य, याग, गृहशान्ति आदिमें कहे हुए (शुष्क गोमय), पीपल, खैर इत्यादिकी समिधासे बना हुआ भस्म ही अपेक्षित द्रव्य है। उसे—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम् ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्॥

—इन पाँच ब्रह्मसंज्ञक मन्त्रोंसे बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथसे ढँके और—

ॐ अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, व्योमेति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म।

—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। तत्पश्चात्—

मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः मानो वीरान्रुद्रभामिनोऽवधीर्हविष्मन्तः सदामित्त्वा हवामहे।

—इस मन्त्रसे समुद्धार कर 'मानो महान्तमुत॰' इस मन्त्रद्वारा जलमें सानकर, फिर भस्मको दोनों हाथोंसे मले और 'त्र्यायुषम्॰' इस मन्त्रसे मस्तक, ललाट, वक्षःस्थल तथा कन्धोंपर, 'त्र्यायुषैः॰', 'त्र्यम्बकैः॰', 'त्रिशक्तिभिः॰' इत्यादि तीन मन्त्रोंसे तीन-तीन रेखाएँ खींचे। वेद जाननेवालोंने सब वेदोंमें इस व्रतको 'शाम्भव' व्रत कहा है। इसलिये मुमुक्षुओंको इस व्रतका आचरण करना चाहिये, जिससे पुनर्जन्म न हो।

इसके पश्चात् सनत्कुमारने इस त्रिपुण्ड्र-धारणका प्रमाण पूछा, तब भगवान् कालाग्निरुद्र बोले—ललाटसे लेकर नेत्रपर्यन्त और मस्तकसे लेकर भृकुटी-पर्यन्त तथा मध्यमें, इस प्रकार तीन रेखाएँ होती हैं। इनमेंसे पहली रेखा गार्हपत्य अग्नि, अकार, रजोगुण, भूलोक, देहात्मा, क्रियाशक्ति, ऋग्वेद, प्रातःकालीन सवन (हवन) एवं महेश्वर देवताका स्वरूप है। दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि, उकार, सत्त्वगुण, अन्तरिक्ष, अन्तरात्मा, इच्छाशक्ति, यजुर्वेद, मध्याह्नके सवन एवं सदाशिव देवताका स्वरूप है। तीसरी रेखा आहवनीय अग्नि, मकार, तमोगुण, स्वर्गलोक, परमात्मा, ज्ञानशक्ति, सामवेद, तीसरे सवन और महादेव देवताका स्वरूप है।

इस प्रकार जो कोई विद्वान् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अथवा संन्यासी उपर्युक्त विधिसे भस्मका त्रिपुण्ड्र करता है, वह महापातकों तथा छोटे पापोंको नष्ट कर पवित्र हो जाता है तथा उसे सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिल जाता है। वह सारे वेदोंका अध्ययन कर चुकता है, सब देवोंके रहस्यको जान जाता है और वह निरन्तर सर्व-रुद्र-मन्त्रोंके जापका भागी बन जाता है। वह सब भोगोंको भोगता है तथा देहत्यागके अनन्तर शिव-सायुज्य-मुक्ति लाभ करता है। उसे पुनर्जन्म धारण नहीं करना पड़ता, यही भगवान् कालाग्निरुद्रने कहा है। जो मनुष्य इस उपनिषद्का अभ्यास अथवा पाठ करता है उसे भी यही फल प्राप्त होता है। ओं सत्यम्।' (अनु॰—इन्दुलाल)

त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र

(स्वामी श्रीहरिनामदासजी उदासीन)

ॐ स्वरूप प्रकृतिकी साम्यावस्थासे ईश्वरकी उत्पत्ति हुई और फिर उसके सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शिवका आविर्भाव हुआ। इसीलिये सत्त्व-प्रधान पदार्थोंके उत्पन्न करनेवाले विष्णु, रजःप्रधानके ब्रह्मा और तमःप्रधानके शिव माने जाते हैं। कहा है—

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधासौ
सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
हरेर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्
वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ॥

अर्थात् एक ही परमेश्वर-मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन भेदोंको प्राप्त हुई। शास्त्रोंमें यह भी कहा गया है कि शिवने ईश्वरकी आज्ञासे सृष्टि-रचना आरम्भ की और भूत, प्रेत, मृत्यु, यम आदि तामसी सृष्टि रच डाली, जिससे विष्णु आदि प्रसन्न नहीं हुए। फिर ईश्वरने विष्णुको सृष्टि रचनेका आदेश दिया। उन्होंने नर-नारायणको उत्पन्न किया। इस मानवी सृष्टिको देखकर ब्रह्मा आदि समस्त देवता बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद ब्रह्माने ईश्वरकी आज्ञासे मनुष्योंके निर्वाहके लिये अन्न, वृक्ष, लता आदिकी उत्पत्ति की। इस प्रकार इस जगत्की सृष्टि हुई।

कहनेका तात्पर्य यह है कि तामसी सृष्टिके कर्ता महादेवजी माने गये हैं। इसीसे भूत, प्रेत, मृत्यु, यम आदि इन्हींके मन्त्र-तन्त्रोंको मानते हैं—इन्हींकी आन (शपथ) को मान्य समझते हैं। इसी कारण मृत्युञ्जय आदि मन्त्र अमोघ फलके दाता हैं। महादेव (भूतनाथ) कहलाते भी हैं—महादेवको प्रसन्न कर लेनेसे भूत-प्रेत तो क्या, मृत्यु एवं यमतकका भय नहीं रहता। 'शिव' शब्दका अर्थ ही है कल्याणकर्ता। एक सत्ययुगकी कथा है कि जब महादेवजी त्रियुगी-नारायणमें पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीके साथ विवाह करने गये तो उन्होंने सिरमें शैलीसे मुकुट बाँधा था और कानोंमें कुण्डल पहने थे। श्रीशिवजीके उस विवाहकालिक वेशको जङ्गम लोग अबतक अपनाये हुए हैं और उसी विवाहकी वाणी पढ़कर लोगोंको भविष्यवाणी सुनाया करते हैं। मस्तकमें शिवजीका त्रिपुण्ड्र लगाकर उसके बीचमें बिन्दु लगाते हैं। गौरीशंकरके अभेदोपासक इसे गौरीशंकरस्वरूप

मानते हैं। यह प्रकृति और पुरुषके अभेदचिन्तनके फलकी पराकाष्ठा समझी जाती है। आगे चलकर उपासकोंके अनेक भेद हो गये और तदनुसार तिलकके भी अनेक प्रकार हो गये। पुरुष, प्रकृति अथवा गौरीशंकरके अभेद-उपासकोंमें भी कोई शंकरका त्रिपुण्ड्र लगाकर गौरीका बिन्दु लगाते हैं। कोई बिन्दु लगाकर पीछे त्रिपुण्ड्र लगाते हैं। कोई केवल पुरुषोपासक होनेके कारण त्रिपुण्ड्र लगाते हैं और इसी प्रकार कोई केवल भगवतीके उपासक होनेके कारण केवल बिन्दु लगाते हैं।

महादेवके तिलकको देखकर विभिन्न मतावलम्बियोंने इसे त्रिशूलाकार मानकर त्रिपुण्ड्र नाम दिया है और इसी प्रकार भुजाओंपर त्रिशूलका तिलक लगाकर द्वादश तिलक निर्धारित किये हैं। कोई-कोई त्रिशूलमेंसे 'त्रि' को उड़ाकर केवल शूलसदृश एक सीधा तिलक लगाते हैं। कोई बीचका शूल उड़ाकर आसपासकी दो रेखाएँ रखते हैं। कोई बीचमें बिन्दु लगाते हैं, कोई नहीं भी लगाते। अपने-अपने इष्टके अनुसार लोग चाहे जिस प्रकारका तिलक धारण करनेके लिये स्वतन्त्र हैं। और वास्तवमें विष्णु और शिवमे भेद ही क्या है? महाभारतमें कहा गया है—

रुद्रो नारायणश्चैवेत्येकं तत्त्वं द्विधाकृतम्।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु॥

अर्थात् 'हे कौन्तेय! उस परमेश्वरने अपनी मायाके एक ही शुद्ध सत्त्वगुणको रुद्र और नारायण—इन दो रूपोंसे बतलाया है।'

इस प्रकार यह सिद्ध है कि इस भेदभावमें तत्त्वतः कोई खास भेद नहीं है। परंतु तिलक लगाना हिन्दू फिलासफीके अनुसार है अत्यन्त आवश्यक।

महादेवजी भगवाँ (काषाय) वस्त्र पहनते हैं और कण्ठमें रुद्राक्ष-माला धारण करते हैं। शरीरमें विभूति रमाते और एक हाथमें त्रिशूल ले, दूसरेसे डमरू बजाते हुए ताण्डवनृत्य करते हैं। आपको संगीत-विद्याका आचार्य माना गया है। आपके डमरूसे ही व्याकरणके चौदह सूत्र निकले। आप जब अपने शिष्योंको ब्रह्मज्ञानका उपदेश देते थे, तब पूर्ण ब्रह्मज्ञानीके रूपमें आपके दर्शन होते थे। यही महादेव साक्षात् परब्रह्म होकर भी मानवी लीला करते हुए महात्मास्वरूपसे अखिल विश्वमें विचरण करते हुए अमरनाथ, कैलासवासी, गोपेश्वर—जहाँ-जहाँ गये वहीं-वहींके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्हीं शिवने लोकमर्यादाके रक्षणार्थ ईश्वरसे 'ॐ नारायणाय' यह गुरुमन्त्र लिया और फिर स्वयं भी गौरी, कार्तिक, गणेश, सूर्य तथा चन्द्र आदिको गुरुमन्त्र दिया। तबसे अबतक यह गुरु-परम्परा चली आ रही है।

—०—

श्रीशिवनिर्माल्यादिनिर्णय

(श्रीहाराणचन्द्रजी भट्टाचार्य)

शिवनैवेद्यके विषयमें शिवपुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें विस्तारसे निरूपण है, इसके पूर्व अनेक विशिष्ट पण्डित भी विचारकर इस विषयमें शास्त्रीय सिद्धान्त प्रकाशित कर चुके हैं तथापि कुछ लोग शास्त्रीय सिद्धान्तकी अनभिज्ञताके कारण इस विषयमें भ्रममें पड़े रहते हैं, इसलिये इस सम्बन्धमें यहाँ कुछ विचार किया जा रहा है।

शिवनैवेद्य-ग्रहणकी प्रशंसा

शिवपुराण—विद्येश्वरसंहिताके २२वें अध्यायमें शिव-नैवेद्यकी प्रशंसा स्पष्टरूपसे लिखी है—

दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः।
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः॥
अलं यागसहस्रेण ह्यलं यागार्बुदैरपि।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥
आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम्॥
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम्॥
शिवदीक्षाऽन्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्॥

इन श्लोकोंमें शिवनैवेद्य-भक्षणकी प्रशंसा तथा उसके त्यागकी निन्दा है। शिवनैवेद्य-भक्षण करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं, पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसकी शिवनैवेद्यके ग्रहणमें इच्छा नहीं होती, वह महापापी नरकको प्राप्त होता है—यह इन वाक्योंका संक्षिप्त तात्पर्य है।

जिन पुरुषोंकी शिव-मन्त्रमें दीक्षा हुई है, उन सबके लिये लिङ्गका नैवेद्य-भक्षण करनेकी विधि है। जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है, उनके लिये निषेध कहा है।

अन्यदीक्षायुतनृणां शिवभक्तिरतात्मनाम्।
शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे॥
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते॥
काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥
ब्रह्मापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥

(विद्येश्वरसंहिता २२। १२—१५)

जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है और श्रीशिवमें भक्ति है—उनके लिये शिवनैवेद्य-भक्षणका यह निर्णय है—

'जिस स्थानमें शालग्रामशिलाकी उत्पत्ति होती है, वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, पारद (पारा) के लिङ्गमें, पाषाण, रजत तथा स्वर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवता तथा सिद्धोंके प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केशरसे निर्मित लिङ्गमें, स्फटिक-लिङ्गमें, रत्ननिर्मित लिङ्गमें, समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें श्रीशिवका नैवेद्य-भक्षण चान्द्रायण-व्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिवनिर्माल्य भक्षण कर उसे धारण करे तो उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है।'

इन वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि जिनकी शैवीदीक्षा नहीं है वे भी उपर्युक्त लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण कर सकते हैं, परंतु पार्थिवलिङ्ग प्रभृतिके, अर्थात् जिनके नाम श्लोकोंमें नहीं आये हैं, नैवेद्यका भक्षण न करे। शैवी-दीक्षावाले तो सभी लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण करें—यह पहले उद्धृत किये हुए—

शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्॥

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता २२। ११)

—इस वचनमें स्पष्ट कहा है।

ज्योतिर्लिङ्गोंके नाम तथा नैवेद्यकी ग्राह्यता

ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोकमें ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य सभीको ग्रहण करना चाहिये यह बताया है। ज्योतिर्लिङ्गोंका निरूपण शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहितामें इस प्रकार किया है और उनके नैवेद्यको ग्राह्य तथा भक्ष्य कहा है—

सौराष्ट्र-देशमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमालयमें केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोमतीतटमें त्र्यम्बक, चिताभूमि (अन्य लिङ्गोंके स्थानकी तरह यह भी देशविशेष है—मृतककी चिता नहीं है) में वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर, शिवालयमें घुश्मेश—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं, इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन करना चाहिये। जो इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन करते हैं, उनके सारे पाप क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं।

श्रीविश्वेश्वर प्रभृति लिङ्गोंके नैवेद्यकी ग्राह्यता

काशीमें श्रीविश्वेश्वर-लिङ्गका नैवेद्य-भक्षण उसके ज्योतिर्लिङ्ग होनेके कारण सभीके लिये पुण्यजनक है, यह शास्त्रप्रमाणसे सिद्ध है। पहले शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताका जो वचन उद्धृत किया गया है, उसमें देवता तथा सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित सभी लिङ्गोंके नैवेद्यको भक्ष्य बताया है। काशीमें शुक्रेश्वर, वृद्धकालेश्वर, सोमेश्वर प्रभृति जितने पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं, वे सभी किसी-न-किसी देवता या सिद्धके द्वारा प्रतिष्ठित किये हुए हैं, इसलिये काशीके पुराण-प्रसिद्ध लिङ्गोंका नैवेद्य शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य—सभीके लिये भक्ष्य है।

श्रीविश्वेश्वर प्रभृति लिङ्गोंके स्नानजलकी महिमा

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्।
त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता २२। १८)

'जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आचमन करते हैं उनके शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।' श्रीविश्वेश्वरके स्नानके जलका विशेष माहात्म्य है—

जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः।
एष जालन्धरो बन्धः समस्तसुरदुर्लभः॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४१। १८०)

'श्रीविश्वेश्वरके स्नान-जलको मस्तकमें धारण करना, यह योगशास्त्रमें प्रतिपादित जालन्धर-बन्धके समान पुण्यजनक है और समस्त देवताओंको दुर्लभ है।'

मीमांसक पद्धतिसे वचनोंकी एकवाक्यता

ऊपर उद्धृत किये हुए शास्त्र-वाक्योंसे शिव-नैवेद्यकी भक्ष्यता तथा शिव-चरणोदककी ग्राह्यता सिद्ध होती है। इस विषयमें कुछ शास्त्रवाक्य अन्य प्रकारके भी मिलते हैं, उन वचनोंकी मीमांसा की जाती है। श्रुति-वाक्योंमें परस्पर विरोध प्रतीत होनेपर पूर्व-मीमांसा तथा उत्तर-मीमांसाकी युक्तियोंसे उसका निर्णय किया जाता है। धर्मशास्त्रके निबन्धकार कमलाकर भट्ट, वाचस्पति मिश्र, शूलपाणि, रघुनन्दन भट्टाचार्य प्रभृति महानुभावोंने मीमांसाकी पद्धतिसे परस्पर विरुद्ध-से प्रतीत होनेवाले शास्त्रवाक्योंका अर्थ निर्णय किया है और उसी निर्णयको सभी शिष्टजन आजतक मानते आये हैं। मीमांसाकी पद्धतिको न जाननेसे विरुद्ध वचन देखकर लोगोंको भ्रम हो जाता है। इसलिये मीमांसाकी पद्धतिसे यहाँ निर्णय दिखाया जाता है—

पूर्व-मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद, चतुर्थ सूत्रमें मीमांसकधुरन्धर श्रीकुमारिल भट्ट लिखते हैं—

सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदश्च नेष्यते।

(श्लोकवार्तिक १।१।४।९)

जिन स्थलोंमें एकवाक्यता सम्भव है वहाँ वाक्यभेद इष्ट नहीं है; (क्योंकि वाक्यभेद करनेसे अर्थात् भिन्न वाक्य माननेसे वहाँ गौरव होता है।) यही युक्ति प्रकृतमें सारी मीमांसाका मूल है। सामान्य वचनका विशेष वाक्यमें उपसंहार किया जाता है। अर्थात् विशेष वाक्यके साथ सामान्य वाक्यकी एकवाक्यतासे विशेष वाक्यके विषयमें सामान्य वचनका संकोच किया जाता है—सामान्य वाक्यको विशेष विषयमें नियमित किया जाता है—यह मीमांसकोंकी युक्तियुक्त सिद्धान्तपद्धति है। कुमारिल भट्टने यही बात तन्त्रवार्तिकमें कही है—

सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः।

विधि तथा निषेधोंका उपसंहार

यह उपसंहार विधिवाक्य तथा निषेधवाक्य दोनोंका माना गया है। 'पुरोडाशं चतुर्धा करोति' इस सामान्य विधिका 'आग्नेयं चतुर्धा करोति' इस विशेष वाक्यमें उपसंहार माना गया है। इसी पद्धतिके अनुसार—

सहानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्।
या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्॥
न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता।
न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी॥

ब्राह्मणीके लिये सहमरणके निषेधक इन सामान्य निषेध-वाक्योंका—

पृथक् चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति॥

अर्थात् पृथक् चितामें आरूढ़ होकर ब्राह्मणीको सती नहीं होना चाहिये, इस विशेष निषेध-वाक्यके साथ उपसंहार होता है। यह सिद्धान्त प्राचीन प्रामाणिक मीमांसक शंकर भट्टने 'मीमांसाबालप्रकाश' में प्रतिपादित किया है। वेद-भाष्यकार माधवाचार्यने 'पराशर-भाष्य'में तथा कमलाकर भट्टने 'निर्णयसिन्धु'में इन निषेध-वाक्योंकी इसी प्रकार एकवाक्यता मानी है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि सामान्य निषेध-वचनोंका विशेष वचनोंमें उपसंहार प्रामाणिक ग्रन्थकारोंको सम्मत है। इसी पद्धतिसे शिवनिर्माल्यके निषेधक सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे इस विषयमें कुछ भी संदेह नहीं रह जाता।

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताकी व्यवस्था

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताके प्रतिपादक वचन ये हैं—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलासङ्गात् (स्पर्शात्) सर्वं याति पवित्रताम्॥

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता २२।१९)

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
मह्यं निवेद्य सकलं कूप एव विनिःक्षिपेत्॥

(पाद्मे शिवोक्तिः)

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम्।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वर्ज्यं वस्त्रविभूषणम्॥
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत्॥

(स्कान्दे सूतोक्तिः)

धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान्।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इन वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि भूमि, वस्त्र, भूषण, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र आदि छोड़कर श्रीशिवके चढ़े हुए पत्र, पुष्प, फल, जल—ये सब निर्माल्य अग्राह्य हैं, इन निर्माल्योंको

चण्डेश्वरको निवेदित करना चाहिये। यद्यपि ये निर्माल्य स्वयं अग्राह्य हैं तथापि शालग्राम-शिला-स्पर्शसे पवित्र—ग्रहणके योग्य हो जाते हैं।

इन वचनोंसे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीशिवके जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग हैं, उनका ग्रहण निषिद्ध है, जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग नहीं हैं, उनके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है—उनको ग्रहण करना चाहिये। इसलिये शिवपुराण-विद्येश्वरसंहितामें स्पष्ट कहा है—जिनमें चण्डका अधिकार है, मनुष्य उन निर्माल्यों या नैवेद्योंका भक्षण न करें—

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः।

(२२।१६)

यह भी उसीमें कहा है कि जिनमें चण्डका अधिकार नहीं है, उनका भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये—

चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः।

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता २२।१६)

शिवनिर्माल्य-निषेधका परिहार

निम्नप्रकारके लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, इसलिये इन लिङ्गोंके निर्माल्य ग्राह्य तथा भक्ष्य हैं—

वाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥

(शि० पु०, वि० सं० २२।१७)

'बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), लौह (स्वर्णादिधातुमय) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है, या जो सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित हैं), स्वयम्भूलिङ्ग (केदारेश्वर प्रभृति)—इन लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओं (मूर्तियों) में चण्डका अधिकार नहीं है।'

लिङ्गे स्वायम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते।
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इस वाक्यमें 'रत्ननिर्मित तथा पारदनिर्मित लिङ्गमें भी चण्डका अधिकार नहीं है'—इतना अधिक कहा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन शिवलिङ्गोंके निर्माल्य या नैवेद्यका ग्रहण करनेमें दोष नहीं है।

नर्मदेश्वरके निर्माल्यकी ग्राह्यता

वर्तमान श्रीविश्वेश्वर-लिङ्ग बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हैं। इसलिये उनके स्नानोदक, निर्माल्य तथा नैवेद्यादिमें अग्रहणकी शङ्का भी ठीक नहीं है। बाणलिङ्गके सम्बन्धमें उपर्युक्त वचनके अतिरिक्त मेरुतन्त्र (चतुर्दश पटल) में भी विशेष वचन है—

बाणलिङ्गे न चाशौचं न च निर्माल्यकल्पना।
सर्वं बाणार्पितं ग्राह्यं भक्त्या भक्तैश्च नान्यथा॥
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते।
तदर्पितं जलं पत्रं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया॥

'बाणलिङ्गके विषयमें ग्राह्य तथा अग्राह्यका विचार नहीं है। बाणलिङ्गपर चढ़ाया हुआ सभी कुछ (जल, पत्र आदि) भक्तिपूर्वक प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये—यह इस वाक्यमें स्पष्ट बताया गया है।'

सिद्धलिङ्ग तथा स्वयम्भूलिङ्ग

शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता तथा काशीखण्ड प्रभृति ग्रन्थोंके अवलोकनसे प्रतीत होता है कि काशी प्रभृति तीर्थोंमें पुराणप्रसिद्ध जितने भी लिङ्ग हैं, उनमें कोई स्वयम्भूलिङ्ग है, कोई सिद्धलिङ्ग हैं। जो लिङ्ग भक्तोंके अनुग्रहके लिये स्वयं प्रकट हुए हैं, वे स्वयम्भूलिङ्ग हैं, जो लिङ्ग सिद्ध महात्माजनोंद्वारा प्रतिष्ठित या उपासित हैं वे सिद्धलिङ्ग हैं—वे सभी पुराणप्रसिद्ध हैं। ऊपर उद्धृत किये हुए शिवपुराणके वचनके अनुसार पुराणप्रसिद्ध इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है और उनके निर्माल्य या नैवेद्यके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है, अपितु पूर्वप्रदर्शित शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताके वाक्योंके अनुसार उन लिङ्गोंके नैवेद्यका ग्रहण पुण्यजनक है।

शिवनिर्माल्य-निषेधकी विशेष व्यवस्था

पूर्वप्रदर्शित जिन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार है उनके विषयमें भी विशेष व्यवस्था है और वह इस प्रकार है—

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः॥

(शि० पु०, वि० सं० २२।२०)

'जो वस्तु लिङ्गके ऊपर रखी जाती है, वह अग्राह्य है। जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर श्रीशिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर नहीं चढ़ाया जाता—वह अत्यन्त पवित्र है।'

लिङ्गार्चनतन्त्रके द्वादश पटलमें भी शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंको अग्राह्य बताया गया है—

यत्किञ्चिदुपचारं हि लिङ्गोपरि निवेदयेत्।
तन्निर्माल्यं महेशानि अग्राह्यं परमेश्वरि॥

—इन वाक्योंके साथ एकवाक्यता करनेसे पता लगता है कि जितने शिवनिर्माल्यके निषेधक वाक्य हैं, सभी लिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंका निषेध करते हैं।

शिवनिर्माल्यकी व्यवस्थाका सारांश

समस्त सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे यह सिद्ध होता है कि—

नर्मदेश्वर-लिङ्ग, धातुमय-लिङ्ग, रत्न-लिङ्ग, पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग—इन लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए निर्माल्यका ग्रहण तथा भक्षण करना शास्त्रविधिसम्मत है। अन्य लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्योंका ग्रहण करना शास्त्रसम्मत नहीं है। शिवनिर्माल्य-ग्रहण तथा शिव-नैवेद्य-भक्षणके निमित्त जो प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहे गये हैं, वे भी इन निषिद्ध नैवेद्य तथा निर्माल्योंके विषयमें ही हैं। जिन शिव-नैवेद्य तथा शिव-निर्माल्यका ग्रहण और भक्षण शास्त्रविधिसम्मत है, उनके ग्रहण तथा भक्षणके निमित्त प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। निषिद्ध कर्मोंके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्त कहे गये हैं, विहित कर्म करनेसे प्रायश्चित्तकी प्राप्ति ही नहीं है। पापोंके हटानेके लिये प्रायश्चित्त किया जाता है। विहित कर्मके अनुष्ठानसे पाप नहीं होता, अपितु विहित कर्मके अननुष्ठान, निषिद्ध कर्मके आचरण और इन्द्रियोंका निग्रह न करनेसे पापोंकी उत्पत्ति होती है, उन्हीं पापोंकी शुद्धिके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्तका उपदेश किया गया है—

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति॥
तस्मान्नेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। २१९-२२०)

निर्णयसिन्धुके तृतीय परिच्छेदके पूर्वभागमें भी श्रीशिव-निर्माल्यके विषयमें इसी प्रकार व्यवस्था है। नर्मदेश्वरलिङ्ग, धातुमयलिङ्ग, रत्नलिङ्ग तथा स्वयम्भू और सिद्धलिङ्ग (जो पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं) इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार न होनेसे इनके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्य सभी भक्ष्य तथा माह्य हैं, यह पहले कहा जा चुका है। जो वस्तुएँ शिवलिङ्गपर चढ़ायी नहीं गयी हों, किंतु किसी भी लिङ्गको निवेदित की गयी हों, वे वस्तुएँ शैवी-दीक्षावाले मनुष्योंके लिये ग्राह्य हैं। जिन्हें शैवी दीक्षा नहीं है उनके लिये पार्थिवलिङ्गके निवेदितको छोड़कर और सभी लिङ्गोंको निवेदित की हुई वस्तुएँ तथा शिवप्रतिमाको निवेदित किये हुए प्रसाद ग्राह्य हैं। जिन शिवनिर्माल्योंके लिये निषेध है, वे भी शालग्राम-शिलाके संसर्गसे ग्राह्य हो जाते हैं, यह शास्त्रमर्यादा है।

शिवनिर्माल्य-धारणके प्रायश्चित्तका निर्णय

'प्रायश्चित्त-विवेक', 'तिथितत्त्व' तथा 'निर्णयसिन्धु' आदि ग्रन्थोंमें यह वचन उद्धृत है—

स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा (वाससा) आप्लुतः शुचिः।

अर्थात् रुद्रके निर्माल्यको स्पर्श करनेवाला पुरुष सचैलस्नानसे शुद्ध होता है।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने तिथितत्त्व-शिवरात्रिप्रकरणमें इस सामान्य वचनकी अन्य विशेष वचनके साथ एकवाक्यता की है—

निर्माल्यं यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति।
अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः॥
नरके पच्यते घोरे तिर्यग्योनौ च जायते॥

(स्कन्दपुराण)

—इस वचनमें जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करते हैं, उनके लिये पाप कहा है। इस वाक्यके अनुरोधसे पूर्वप्रदर्शित सामान्य वाक्य भी अशुचिविषयक समझना चाहिये। इन दोनों वाक्योंको मिलाकर यह अभिप्राय निकलता है—

अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको नहीं धारण करना चाहिये। जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करता है वह पापी होता है, इस पापकी शुद्धिके लिये सचैलस्नान प्रायश्चित्त है।

स्नानादिसे शुद्ध होकर शिवनिर्माल्यको धारण करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पातक नष्ट हो जाते हैं—यह शिवपुराण तथा स्कन्दपुराणके वाक्योंमें कहा है—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥

(विद्येश्वरसंहिता २२। १५)

चण्डेश्वरको निवेदित करना चाहिये। यद्यपि ये निर्माल्य स्वयं अग्राह्य हैं तथापि शालग्राम-शिला-स्पर्शसे पवित्र—ग्रहणके योग्य हो जाते हैं।

इन वचनोंसे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीशिवके जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग हैं, उनका ग्रहण निषिद्ध है, जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग नहीं हैं, उनके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है—उनको ग्रहण करना चाहिये। इसलिये शिवपुराण-विद्येश्वरसंहितामें स्पष्ट कहा है—जिनमें चण्डका अधिकार है, मनुष्य उन निर्माल्यों या नैवेद्योंका भक्षण न करें—

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः।

(२२। १६)

यह भी उसीमें कहा है कि जिनमें चण्डका अधिकार नहीं है, उनका भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये—

चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः।

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता २२। १६)

शिवनिर्माल्य-निषेधका परिहार

निम्नप्रकारके लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, इसलिये इन लिङ्गोंके निर्माल्य ग्राह्य तथा भक्ष्य हैं—

बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥

(शि० पु०, वि० सं० २२। १७)

'बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), लौह (स्वर्णादिधातुमय) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है, या जो सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित हैं), स्वयम्भूलिङ्ग (केदारेश्वर प्रभृति)—इन लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओं (मूर्तियों) में चण्डका अधिकार नहीं है।'

लिङ्गे स्वायम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते।
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इस वाक्यमें 'रत्ननिर्मित तथा पारदनिर्मित लिङ्गमें भी चण्डका अधिकार नहीं है'—इतना अधिक कहा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन शिवलिङ्गोंके निर्माल्य या नैवेद्यका ग्रहण करनेमें दोष नहीं है।

नर्मदेश्वरके निर्माल्यकी ग्राह्यता

वर्तमान श्रीविश्वेश्वर-लिङ्ग बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हैं। इसलिये उनके स्नानोदक, निर्माल्य तथा नैवेद्यादिमें अग्रहणकी शङ्का भी ठीक नहीं है। बाणलिङ्गके सम्बन्धमें उपर्युक्त वचनके अतिरिक्त मेरुतन्त्र (चतुर्दश पटल) में भी विशेष वचन है—

बाणलिङ्गे न चाशौचं न च निर्माल्यकल्पना।
सर्वं बाणार्पितं ग्राह्यं भक्त्या भक्तैश्च नान्यथा॥
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते।
तदर्पितं जलं पत्रं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया॥

'बाणलिङ्गके विषयमें ग्राह्य तथा अग्राह्यका विचार नहीं है। बाणलिङ्गपर चढ़ाया हुआ सभी कुछ (जल, पत्र आदि) भक्तिपूर्वक प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये—यह इस वाक्यमें स्पष्ट बताया गया है।'

सिद्धलिङ्ग तथा स्वयम्भूलिङ्ग

शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता तथा काशीखण्ड प्रभृति ग्रन्थोंके अवलोकनसे प्रतीत होता है कि काशी प्रभृति तीर्थोंमें पुराणप्रसिद्ध जितने भी लिङ्ग हैं, उनमें कोई स्वयम्भूलिङ्ग है, कोई सिद्धलिङ्ग है। जो लिङ्ग भक्तोंके अनुग्रहके लिये स्वयं प्रकट हुए हैं, वे स्वयम्भूलिङ्ग हैं, जो लिङ्ग सिद्ध महात्माजनोंद्वारा प्रतिष्ठित या उपासित हैं वे सिद्धलिङ्ग हैं—वे सभी पुराणप्रसिद्ध हैं। ऊपर उद्धृत किये हुए शिवपुराणके वचनके अनुसार पुराणप्रसिद्ध इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है और उनके निर्माल्य या नैवेद्यके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है, अपितु पूर्वप्रदर्शित शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताके वाक्योंके अनुसार उन लिङ्गोंके नैवेद्यका ग्रहण पुण्यजनक है।

शिवनिर्माल्य-निषेधकी विशेष व्यवस्था

पूर्वप्रदर्शित जिन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार है उनके विषयमें भी विशेष व्यवस्था है और वह इस प्रकार है—

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः॥

(शि० पु०, वि० सं० २२। २०)

'जो वस्तु लिङ्गके ऊपर रखी जाती है, वह अग्राह्य है। जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर श्रीशिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर नहीं चढ़ाया जाता—वह अत्यन्त पवित्र है।'

लिङ्गार्चनतन्त्रके द्वादश पटलमें भी शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंको अग्राह्य बताया गया है—

यत्किञ्चिदुपचारं हि लिङ्गोपरि निवेदयेत्।
तन्निर्माल्यं महेशानि अग्राह्यं परमेश्वरि ॥

—इन वाक्योंके साथ एकवाक्यता करनेसे पता लगता है कि जितने शिवनिर्माल्यके निषेधक वाक्य हैं, सभी लिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंका निषेध करते हैं।

शिवनिर्माल्यकी व्यवस्थाका सारांश

समस्त सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे यह सिद्ध होता है कि—

नर्मदेश्वर-लिङ्ग, धातुमय-लिङ्ग, रत्न-लिङ्ग, पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग—इन लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए निर्माल्यका ग्रहण तथा भक्षण करना शास्त्रविधिसम्मत है। अन्य लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्योंका ग्रहण करना शास्त्रसम्मत नहीं है। शिवनिर्माल्य-ग्रहण तथा शिव-नैवेद्य-भक्षणके निमित्त जो प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहे गये हैं, वे भी इन निषिद्ध नैवेद्य तथा निर्माल्योंके विषयमें ही हैं। जिन शिव-नैवेद्य तथा शिव-निर्माल्यका ग्रहण और भक्षण शास्त्रविधिसम्मत है, उनके ग्रहण तथा भक्षणके निमित्त प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। निषिद्ध कर्मोंके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्त कहे गये हैं, विहित कर्म करनेसे प्रायश्चित्तकी प्राप्ति ही नहीं है। पापोंके हटानेके लिये प्रायश्चित्त किया जाता है। विहित कर्मके अनुष्ठानसे पाप नहीं होता, अपितु विहित कर्मके अननुष्ठान, निषिद्ध कर्मके आचरण और इन्द्रियोंका निग्रह न करनेसे पापोंकी उत्पत्ति होती है, उन्हीं पापोंकी शुद्धिके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्तका उपदेश किया गया है—

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥
तस्मान्नेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। २१९-२२०)

निर्णयसिन्धुके तृतीय परिच्छेदके पूर्वभागमें भी श्रीशिव-निर्माल्यके विषयमें इसी प्रकार व्यवस्था है। नर्मदेश्वरलिङ्ग, धातुमयलिङ्ग, रत्नलिङ्ग तथा स्वयम्भू और सिद्धलिङ्ग (जो पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं) इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार न होनेसे इनके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्य सभी भक्ष्य तथा ग्राह्य हैं, यह पहले कहा जा चुका है। जो वस्तुएँ शिवलिङ्गपर चढ़ायी नहीं गयी हों, किंतु किसी भी लिङ्गको निवेदित की गयी हों, वे वस्तुएँ शैवी-दीक्षावाले मनुष्योंके लिये ग्राह्य हैं। जिन्हें शैवी दीक्षा नहीं है उनके लिये पार्थिवलिङ्गके निवेदितको छोड़कर और सभी लिङ्गोंको निवेदित की हुई वस्तुएँ तथा शिवप्रतिमाको निवेदित किये हुए प्रसाद ग्राह्य हैं। जिन शिवनिर्माल्योंके लिये निषेध है, वे भी शालग्राम-शिलाके संसर्गसे ग्राह्य हो जाते हैं, यह शास्त्रमर्यादा है।

शिवनिर्माल्य-धारणके प्रायश्चित्तका निर्णय

'प्रायश्चित्त-विवेक', 'तिथितत्त्व' तथा 'निर्णयसिन्धु' आदि ग्रन्थोंमें यह वचन उद्धृत है—

स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा (वाससा) आप्लुतः शुचिः।

अर्थात् रुद्रके निर्माल्यको स्पर्श करनेवाला पुरुष सचैलस्नानसे शुद्ध होता है।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने तिथितत्त्व-शिवरात्रिप्रकरणमें इस सामान्य वचनकी अन्य विशेष वचनके साथ एकवाक्यता की है—

निर्माल्यं यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति।
अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः ॥
नरके पच्यते घोरे तिर्यग्योनौ च जायते ॥

(स्कन्दपुराण)

—इस वचनमें जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करते हैं, उनके लिये पाप कहा है। इस वाक्यके अनुरोधसे पूर्वप्रदर्शित सामान्य वाक्य भी अशुचिविषयक समझना चाहिये। इन दोनों वाक्योंको मिलाकर यह अभिप्राय निकलता है—

अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको नहीं धारण करना चाहिये। जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करता है वह पापी होता है, इस पापकी शुद्धिके लिये सचैलस्नान प्रायश्चित्त है।

स्नानादिसे शुद्ध होकर शिवनिर्माल्यको धारण करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पातक नष्ट हो जाते हैं—यह शिवपुराण तथा स्कन्दपुराणके वाक्योंमें कहा है—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति ॥

(विद्येश्वरसंहिता २२। १५)

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते॥
(तिथितत्त्वमें उद्धृत स्कन्दपुराण)

शिवनिर्माल्य-धारणकी इस विधिके साथ अविरोध सम्पादन करनेके लिये इस विधिके अनुरोधसे भी पूर्वोक्त शिवनिर्माल्य-धारणका प्रायश्चित्त अशुचिके विषयमें ही समझना उचित है।

शिवनिर्माल्य-विषयक अन्य वाक्योंकी व्यवस्था

ऊपर शिव-निर्माल्य-ग्रहणके अनुकूल तथा प्रतिकूल शास्त्र-वाक्योंका तात्पर्य मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करके दिखाया गया है। इस विषयमें इस प्रकारके जितने भी अन्य शास्त्र-वाक्य हैं, उन सभीके तात्पर्यका पूर्वप्रदर्शित मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करना शास्त्रमर्मज्ञ पुरुषोंका कर्तव्य है। युक्तियुक्त मीमांसा-पद्धतिका परित्याग कर शास्त्र-वचनोंके अनर्थको अर्थकर जनतामें उपदेश देना अपने पाण्डित्यपर विज्ञजनोंको संशय उत्पन्न कराना ही है।

भस्म-रुद्राक्षधारणकी विधि

इस अवसरपर प्रसङ्गवश और दो बातें कह देना अनुचित न होगा। कुछ महाशय साम्प्रदायिक आग्रहवश भस्म-त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षधारणकी अनर्गल निन्दा करते हैं। उनसे मुझे कुछ कहना नहीं है। जो आग्रही हैं, वे अपना हठ छोड़नेके लिये कभी प्रस्तुत नहीं होंगे—इस बातको मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ। इसलिये उन आग्रही महाशयोंके लिये व्यर्थ परिश्रम न उठाकर मैं जिज्ञासु जनताके लिये इस तत्त्वका उद्घाटन करना उचित समझता हूँ।

बृहज्जाबालोपनिषद्—पञ्चम ब्राह्मण (७-९) में भस्म-धारणकी विशेष प्रशंसा है—

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्॥
त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः।
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्कधारणात् सोऽपि पूज्यते॥
ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥

'जिस ब्राह्मणने मस्तकमें भस्म-त्रिपुण्ड्र धारण किया है, उसने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन तथा श्रवण किया है—समस्त कर्तव्यका अनुष्ठान किया है। जिसने वर्णाश्रमके आचारका परित्याग कर दिया है, जिसकी समस्त क्रिया लुप्त हो गयी है—एक बार त्रिपुण्ड्र धारण कर लेनेपर वह भी पूजित होता है। जो मनुष्य भस्मधारण न कर कर्म करते हैं, कोटि जन्मोंसे भी उनकी संसारसे मुक्ति नहीं होती।'

बृहज्जाबालोपनिषद्में और भी बहुत वाक्य हैं, जिनसे चारों वर्णोंके लिये भस्म-धारण कर्तव्य सिद्ध होता है। कालाग्निरुद्र तथा भस्मजाबाल-उपनिषद्में भी भस्मधारणकी विधि विस्तारपूर्वक लिखी है।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद्में रुद्राक्ष-धारणकी विधि है—एक मुखसे लेकर चतुर्दश-मुखपर्यन्त रुद्राक्षके धारणका फल विस्ताररूपसे वर्णन किया गया है। शिवपुराणविद्येश्वरसंहिता तथा स्कन्दपुराण-काशीखण्डमें भी भस्म-रुद्राक्ष-धारणकी विधि है।

उपनिषदें श्रुति हैं, पूर्वोक्त सब उपनिषद् अथर्ववेदके अन्तर्गत हैं। धर्म तथा अधर्मके निर्णयमें श्रुति सबसे प्रबल प्रमाण है। महर्षि जैमिनि पूर्व-मीमांसामें लिखते हैं—

'विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्।'
(१।३।३)

इस सूत्रका अर्थ 'कुतूहलवृत्ति'में इस प्रकार लिखा है—

प्रत्यक्षश्रुतिविरोधे सति अनपेक्षं मूलप्रमाणानपेक्षं श्रुति-वाक्यमेव प्रमाणं स्यान्न तु स्मृतिवाक्यम्।

जिस स्थलमें प्रत्यक्ष श्रुतिसे विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य ही प्रमाण है, स्मृतिवाक्य (मन्वादि धर्मशास्त्र तथा पुराण) प्रमाण नहीं हैं।

'व्यासस्मृति'में इस बातको स्पष्ट किया है—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात् तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥
(१।४)

'जिस विषयमें श्रुति, स्मृति तथा पुराणका परस्पर विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य प्रमाण है, स्मृति तथा पुराणके विरोधस्थलमें स्मृति प्रमाण है।'

उपर्युल्लिखित प्रमाणोंसे धर्माधर्मके निर्णयमें श्रुतिकी प्रबलता सिद्ध होती है। रुद्राक्ष-भस्म-धारणकी विधि पूर्वोक्त उपनिषदोंमें होनेसे पुराण-वाक्योंसे उसका निषेध नहीं हो

सकता, किंतु उन पुराण-वाक्योंको सर्वथा अप्रमाण न मानकर उनके विषयमें कुछ व्यवस्था करना उचित है। भस्म-धारणकी पौराणिक निन्दा श्रुतिसे विहित यज्ञादिके भस्मके लिये नहीं है, वह निन्दा श्मशानभस्म—चिताभस्मके विषयमें है। शास्त्रमें रुद्राक्षधारणकी पद्धति कही गयी है—उस शास्त्रोक्त पद्धतिका परित्यागकर कोई अपनी मनमानी पद्धतिसे यदि रुद्राक्ष धारण करे तो पुराणवाक्य उसकी निन्दा करता है। शास्त्र-मर्मज्ञ प्राचीन आचार्योंने इसी रीतिसे शास्त्र-वाक्योंके परस्पर विरोधके स्थलोंमें व्यवस्था की है। प्रकृत विषयमें भी प्राचीन आचार्योंकी रीतिका अनुसरण करना युक्तियुक्त तथा आवश्यक है। शास्त्रोंकी मीमांसा-पद्धतिपर ध्यान न देकर सारी बातोंकी उत्तम आलोचना न करते हुए केवल आपात-दृष्टिसे शास्त्रवाक्योंका अर्थ निर्णय करनेका प्रयत्न भ्रमोत्पादनकी ही चेष्टा है।

श्रीशिवजीकी उपास्यता

यजुर्वेदसंहिता-रुद्राध्याय तथा श्वेताश्वतर, अथर्वशिरस्, रुद्रहृदय आदि उपनिषदोंमें उपक्रम तथा उपसंहारकी एकवाक्यतासे श्रीशिवके सर्वोत्तमत्व, परमेश्वरत्व, मोक्षदातृत्व, सर्वमयत्व प्रभृतिका निरूपण किया गया है। शिवकी उपासना श्रुतिप्रतिपादित है—यह श्रीअप्पय्य दीक्षितने 'शिवार्क-मणिदीपिका' (२।२।३८) में सिद्ध किया है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उपमन्यु नामक ब्राह्मणसे शैवी दीक्षा प्राप्तकर श्रीशिवजीके आराधनसे वरदान तथा साम्ब नामक पुत्रको प्राप्त किया था। महाभारत, अनुशासनपर्व १४ तथा १५ वें अध्यायमें इसका वर्णन है। स्वयं श्रीकृष्णभगवान्ने अपने श्रीमुखसे उस स्थलमें शिवके माहात्म्य तथा अपने शिवा-राधनके वृत्तान्तका वर्णन किया है। लिङ्गपुराण—पूर्वभाग—१०८ वें अध्यायमें भी श्रीकृष्णचन्द्रके शिवाराधन तथा शिवकी कृपासे साम्ब नामक पुत्रके लाभका वृत्तान्त लिखा है।

'शिवार्कमणिदीपिका'में—'फलमत उपपत्तेः' (३।२।३४) इस अधिकरणमें श्रीशिवको समस्त पुरुषार्थका दाता प्रतिपादित किया गया है। 'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्' (१।१।७), 'नेतरोऽनुपपत्तेः'—इन दो सूत्रोंकी टीकामें श्रीशिवजीके मोक्षदातृत्वका निरूपण किया गया है। इस प्रकार श्रीशिवजीकी परम श्रेष्ठता तथा उपास्यता श्रुति तथा महाभारतादि सभी शास्त्रोंसे सिद्ध है।

अन्तमें श्रीशिवजीकी श्रेष्ठतासूचक महाभारतका एक वाक्य निवेदितकर लेख समाप्त किया जाता है—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

(अनुशासनपर्व १५।११)

'शिवके समान देव नहीं है, शिवके समान गति नहीं है, शिवके समान दाता नहीं है, शिवके समान योद्धा (वीर) नहीं है।'

श्रीशिवशंकराष्टकम्

(आचार्य श्रीरामकिशोरजी मिश्र)

रुद्राय लोकसुखदाय जटाधिपाय भाले त्रिपुण्ड्रलसिताय महेश्वराय। गङ्गाधराय गिरिशाय दिगम्बराय तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥

भूतेश्वराय गिरिजापतये हराय श्रीशम्भवे वलयते महते मृडाय। लङ्केशरावणनिशाचरवन्दिताय तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥

तुङ्गेश्वराय गिरिभुजनपूजिताय कल्पेश्वराय हिमनिर्झरिणीधराय। पञ्चप्रयागपतये च सतीश्वराय तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥

ईशाय पर्वतधयाय गणेश्वराय शर्वाय मन्मथहराय वृषध्वजाय। मृत्युंजयाय जगतीपरिपालकाय तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥

गुप्तेश्वराय मृगचर्मविभूषिताय रूपेश्वराय वसुमुनिसमाहिताय। योगेश्वराय विधुभूषितमस्तकाय तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥

विद्वत्समाजमुखवर्णितवैभवाय गङ्गापवित्रसलिले कृतमज्जनाय। सिद्धिप्रदाय भजतांममशर्मदाय तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥

पुण्यात्मकाय निधिदाय वरप्रदाय भक्तप्रभावलधनादिविवर्धकाय। ऐश्वर्यभोगरहिताय महासुगाय तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥

हे भूतनाथ नगनाथ भुजङ्गनाथ कैलासनाथ शिव पाहि हिमालयेश। भक्तोऽस्मि यस्य कविरामकिशोरमिश्रः तस्मै नमो भगवते शिवशंकराय॥
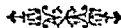
शिवलिङ्गोपासनाका विचित्र रहस्य

(श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

लगभग तीन दशक बीते होंगे, मैंने रेलवेके एक बुक-स्टालपर एक पुस्तकके शीर्षकसे आकृष्ट होकर उसे खरीद लिया था। 'हंटर' नामक एक अँग्रेज लेखककी हिन्दू-धर्मपर अँग्रेजीमें पुस्तक थी। उसमें हिन्दू-धर्मके साथ ही शंकर तथा शिवलिङ्गकी कितनी ही व्याख्या कल्पनासे परे की गयी थी। वीभत्स ढंगसे शिवलिङ्गकी कामुक व्याख्या थी। न केवल पुस्तकको जला डालनेकी प्रेरणा हुई, बल्कि तबसे मैं भारतके हर दलसे, हर राजनीतिक दलसे प्रार्थना करता आ रहा हूँ कि इस पुस्तकको जब्त करा देना चाहिये। हमारे हिन्दू-धर्मके प्रति यह अपमान है। आजतक वह पुस्तक भारतमें वैसे ही निर्द्वन्द्व विचरण कर रही है। उस पुस्तकको पढ़नेकी ही प्रतिक्रियामें मैंने 'प्रतीकशास्त्र' पुस्तक लिखकर अपने धर्मके महान् प्रतीकोंकी व्याख्या की, जिसमें शिवलिङ्ग प्रमुख था। सर मोनियर विलियम्सने १८९१ में संस्कृत-अँग्रेजीका जो अद्भुत कोश लिखा है उसमें भी लिङ्गको प्रजनन-क्रियासे सम्बद्ध किया है।

पुरातत्त्व तथा प्राचीन इतिहासके अध्ययनसे ऐसा सिद्ध होता है कि शिवकी सौम्य तथा नम्र प्रतिमासे भी अधिक प्राचीन लिङ्ग-पूजन तथा लिङ्गका उदय है। इंग्लैंडसे लेकर दक्षिण अमेरिका तथा अरबके कोनेसे जावातक, सुदूर मंगोलिया तथा चीनतक सर्वत्र शिव-लिङ्गोपासना परिव्याप्त थी। मैंने स्वयं लंदनमें वह शिव-लिङ्ग देखा है, जिसपर नवग्रह अङ्कित हैं, सृष्टिका समूचा रूप शिवलिङ्गमें स्थित है। लिङ्गके सामने नन्दी स्थापित करनेकी प्रथा भी गूढ़ अर्थ रखती है। लिङ्ग एक रस, एक गुण, एक परम तत्त्व, परब्रह्म, सृष्टि, पञ्चतत्त्व—सबका प्रतीक है और नन्दी संसारका, धर्मका तथा परब्रह्मकी उपासनाका प्रतीक है। इसीलिये यह शिव-लिङ्गके सामने अवस्थित रहता है। शिवके तेजको सहन करता है, सँभालता है। इसीलिये प्रायः देखा गया है कि जहाँ शिवलिङ्गके सामने नन्दी नहीं होता, वहाँ लिङ्ग बड़ा उग्र हो जाता है और वहाँ शिवका आविर्भाव न होकर लिङ्ग स्वयं निर्जीव हो जाता है। मैंने इस कथनको तभी स्वीकार किया जब मध्य प्रदेशके दतिया नगरमें ऊपरी मंजिलमें विशाल शिवलिङ्ग देखा। पर वहाँ रातको रहने नहीं दिया गया, क्योंकि नन्दी नहीं था और लिङ्ग परम तेजोमय हो रहा था। मिस्रकी राजधानी काहिरामें विशाल वृषभ है, पर शिवलिङ्ग न होनेसे वह निर्जीव-सा लगता है। काफी देरतक हमें इस वृषभके पास खड़ा रहनेके बाद भी यही अनुभव हुआ।

संसारके सबसे पुराने किलोंमें बाँदा जिलेके फोर्ट कालिंजर किलेकी गणना है। इसमें वज्र-जैसी दीवारोंपर स्थान-स्थानपर शिवलिङ्ग हैं तथा खजुराहो-जैसे चित्र भी खुदे हैं। शिवलिङ्ग जिस अर्घ-पात्र अर्घ्य या भागमें प्रतिष्ठित रहता है वह प्रकृति, मातृशक्ति, मायाका प्रतीक है। परमतत्त्वका ज्ञान मायाका बन्धन नीचे कर देनेसे, उसपर अधिकार कर लेनेसे ही होगा।

प्राचीन कालिक अध्यात्म

प्राचीन कालमें शिवकी उपासना यदि लिङ्गके रूपमें शुरू हुई तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन्हें हम असभ्य या अविकसित समझते हैं, वे हमसे कहीं अधिक आत्मज्ञानी तथा आध्यात्मिक थे। वह युग मोहनजोदड़ोकी ५,००० वर्षों पूर्व सभ्यतासे भी कहीं बहुत अधिक पुराना था। जो भी हो इतना ही मान लेना पर्याप्त है कि शिवोपासनाकी परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है। शंकरकी उपासनाका परिचय वेदोंके प्रारम्भिक अंशोंसे ही प्राप्त होता है। महाभारतमें तो भगवान् शिवकी महिमा सर्वत्र व्याप्त है। श्रीकृष्ण, अर्जुन आदि सभी भगवान् शंकरकी उपासनाके फलस्वरूप अस्त्र-शस्त्र, विजय एवं सभी सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। उत्तर तथा दक्षिण भारतके आन्ध्र, द्रविण आदि सभी प्रान्तोंमें पूर्णतया शिवोपासना व्याप्त थी। आन्ध्रका प्राचीन नाम तैलंगाना 'त्रिलिङ्गम्' का ही अपभ्रंश है। शिव त्रिमूर्तिमेंसे एक हैं। ब्रह्मा सृष्टिके, विष्णु स्थिति अर्थात् पालनके तथा शिव संहारके देवता हैं। संहारके बाद पुनः सात्त्विक सृष्टि होती है। मनुष्य जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन उसकी मृत्युका दिन तय हो जाता है। अतः जीवनका अन्त मृत्यु है। संसारमें सब कुछ राजभोगका अन्त चितामें लिपट-लपट जाना है। शिव महाकाल हैं, कालको भी मारनेवाले हैं। उनके पास एक परम

शक्ति है—योग।आवागमनकी बाधासे छुटकारा दिलानेवाला योग। पर योगी भोगी नहीं होता। शंकरके पास योगकी अनन्त शक्ति है। पर अपना संग्रह कुछ भी नहीं है। नंगे हैं, दिगम्बर हैं, चिताभस्म लगाये हैं, भूत-प्रेतके स्वामी हैं तथा श्मशानवासी हैं—केवल ध्यान-मग्न। योगीका भरण-पोषण महामाया करती है। इसीलिये कहते हैं—

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रः षडाननो गजाननः।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे॥

चारों वेद और योगको धारण करनेवाले पञ्चमुखी शंकर, छः मुखवाले कार्तिकेय तथा गजमुखवाले गणेश, स्वयं वस्त्र भी नहीं, ऐसेका पालन माता अन्नपूर्णा अर्धाङ्गिनीके रूपमें कर रही हैं। मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा प्रगतिका प्रतीक है। द्वितीयासे ही पूर्णमासी होगी और फिर अन्धकार-संहार, मस्तकपर अमृतदायिनी गङ्गा है—शिवका अर्थ जल भी होता है। जलका अर्थ प्राण भी होता है। शिवलिङ्गपर जल चढ़ानेका अर्थ ही है योगिराजमें प्राण-विसर्जन करना, परमतत्त्वमें अपना प्राण मिला देना।

त्रिमूर्तिमें हरेकका अपना-अपना महत्त्व है, न कोई छोटा, न कोई बड़ा। ऐसी भ्रान्ति लोगोंमें पैदा न हो, इसीलिये महाभारतके अनुशासनपर्वमें ही श्रीशिवसहस्रनाम (अ० १८) तथा श्रीविष्णुसहस्रनाम (अ० १४९) दिये गये हैं। शिव इसलिये निराले हैं कि वे भारतीय आदर्श तथा चिन्तनके प्रतीक हैं—संसारसे निर्लिप्त, स्वयं अपने पास कुछ भी नहीं, मृत्युरूपी सर्पको गले लिपटाये—पर वैभव तथा संसारका श्रेष्ठ सुख उनकी मुट्ठीमें है। वे जिसपर प्रसन्न हो जायँ उसे सभी कुछ दे सकते हैं। अपना सामान्यतः जीवन रखनेवाले वे अवढरदानी हैं। उनके हाथमें या बगलमें त्रिशूल है। संसारके तीन महान् अवगुण क्रोध, मोह, लोभ—इन तीनोंपर अंकुश है। सत्व-रज-तम—इन तीनोंपर नियन्त्रण है तथा अन्तर्दर्शन ही त्रिनेत्र है। संहारके समय शंकर जो ताण्डव नृत्य करते हैं, उस समय नन्दी ताल देते हैं।

भगवान् शंकर अपने उपासकोंको आनन्द, अमृत तथा निर्वाण देते हैं। वे **'धर्मो धारयते प्रजाः'** के प्रतीक हैं।

शिव-शंकर

ऋग्वेदसे भी अधिक विशद एवं स्पष्ट शिवका वर्णन शुक्ल यजुर्वेदीय संहितामें है। शतरुद्रिय शिव-रूप है, वे गिरीश हैं, पर्वतपर रहनेवाले हैं, पशु-चर्म धारण किये हैं। रुद्र शिवका पर्यायवाची है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में रुद्रके अनेक नामोंमें एक नाम शिव भी है। यजुर्वेदके अनुसार उनका—रुद्रका मङ्गलकारी रूप शम्भु तथा शंकर है। शिवका अर्थ सुख एवं कल्याण भी होता है, वही अर्थ शंकरका भी है।

शिव-पूजनकी परम्परा

शिवकी भारतमें व्यापकताके साथ उनके अनेक सम्प्रदाय भी रुचिभेदसे बनते गये। ऐसा लगता है कि अनादिकालसे ही इनकी उपासना चली आ रही है। आर्यवीर सभी शैव थे, जिन्होंने विश्वपर सर्वत्र विजय प्राप्त की, बादमें कपिल, कणाद, पतञ्जलि तथा बुद्ध आदिने अहिंसाका जो अधिक पक्ष लिया उससे यत्किंचित् शिवोपासना शिथिल हो जानेसे देश पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़ गया, पुनः शंकराचार्यने प्राचीन शैवधर्मको पुनः जीवित करनेके लिये अथक परिश्रम किया। बौद्धधर्मका उच्छेदकर सर्वत्र वैदिक शैवधर्मके प्रचारके लिये मठोंकी स्थापना की। शिवकी उपासना देशके विभिन्न मार्गोंमें लोक-रुचिके अनुसार अपना रूप लेकर प्रचलित हुई। काश्मीरका शिव-सम्प्रदाय पूर्णतः शाक्त आधारपर है, जिसमें शंकर अर्धनारीश्वरके रूपमें पूजित हैं। बंगाल, गुजरात तथा नेपालका पाशुपत-सम्प्रदाय बड़ी विधिसे शिव-पूजन करता है। दक्षिण भारतका वीर शैव एवं शैवागम-सम्प्रदाय भक्ति तथा कर्मकाण्डसे परिपूर्ण है। प्रायः सभी पुराण तथा उपपुराणोंमें भगवान् शिवकी महिमाका अपार वर्णन है। शिवपुराण, वायुपुराण, कूर्मपुराण, लिङ्गपुराण, स्कन्दपुराण (संहितात्मक तथा खण्डात्मक) तथा वामनपुराणमें तो विशेष रूपसे आद्योपान्त इन्हींकी महिमा व्याप्त है। वैष्णव पुराणोंमें भी इन्हें भगवान् विष्णुका हृदय माना गया है। **'शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।'**

इन पुराणों आदि—सभीमें शिव योगिराज हैं। सबमें शिवलिङ्ग **'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति'** का प्रतीक है तथा उसपर जल छोड़नेका अर्थ ब्रह्ममें प्राण लीन करना है। यह भी ध्यानमें रखना होगा कि उपेक्षित निर्जन वन आदिमें स्थित अपूजित शून्य शिव (शिवलिङ्ग) की उपासनाका बड़ा महत्त्व है। उनपर जो मात्र बिल्वपत्र भी चढ़ाते हैं, वह बड़े महत्त्वकी

वस्तु है। किसीको कोई नशा गहरा चढ़ा हो, तीन पत्ती बिल्वपत्रकी चबा ले (उसमें रस नहीं होता) तो कुछ सेकेंडोंमें नशा उतर जायगा। मधुमेहमें सुबह बिल्वपत्र चार-पाँच तथा छः-सात दाना काली मिर्चके साथ चबानेसे बढ़कर कोई औषधि किसी चिकित्सामें नहीं है। शंकरके पूजनमें जो कुछ लगता है उसका विशाल औषधिक महत्त्व है। इस प्रकार भगवान् शिव सभी प्रकारसे सबका कल्याण—मङ्गल ही करते हैं।
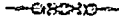
शिवोपासनामें 'शाम्भवी विद्या'का रहस्य

(दण्डीस्वामी श्रीमद् दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

'शिवोपासना' विश्वकी अति प्राचीन उपासना है। इस उपासनामें 'शाम्भवी विद्या'को अत्यन्त गोपनीय रखनेका आदेश है। इस विद्याके मूल उपदेष्टा भगवान् शम्भु हैं, इसलिये यह 'शाम्भवी विद्या' कहलाती है। 'स्वयंबोध अमनस्क योग' नामक ग्रन्थमें कहा गया है कि—

गुह्याद् गुह्यतरा विद्या न देया यस्य कस्यचित्।
एतज्ज्ञानं वसेद् यत्र स देशः पुण्यभाजनम्॥

(उत्तरार्ध १२)

अर्थात् 'यह (शाम्भवी विद्या) गुह्यसे भी गुह्यतर विद्या है। इसे जिस किसी सामान्य व्यक्तिको नहीं देना चाहिये। (परीक्षा करके किसी योग्य अधिकारीको ही देना चाहिये) यह ज्ञान जहाँ रहता है, वह देश (देह) पुण्यदेश है और वह जन पुण्यात्मा है।'

दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य त्रिसप्तकुलसंयुताः।
जना मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणाः॥

अर्थात् 'सिद्धशाम्भवी-विद्यावाले महात्माके दर्शन और स्पर्शसे मनुष्य इक्कीस कुलोंके साथ मुक्तिपदको प्राप्त कर लेते हैं। फिर उस देशके निवासी या उनके सेवकोंकी तो बात ही क्या है?'

'शाम्भवी विद्या' के विषयमें रहस्योद्घाटन करते हुए कहा गया है कि—

अन्तर्लक्ष्यबहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता।
एषा हि शाम्भवी मुद्रा सर्वशास्त्रेषु गोपिता॥

(अमनस्कयोग, उत्तरार्ध १०)

अर्थात् 'यह शाम्भवी विद्या (मुद्रा) अन्तर्लक्ष्यवाली, बहिर्दृष्टिवाली और निमेष-उन्मेषसे शून्य है। अर्थात् शाम्भवी मुद्रामें बहिर्दृष्टि होनेपर भी अन्तर्लक्ष्य होता है और दृष्टिमें निमेष और उन्मेष नहीं होते। यह सर्वशास्त्रोंमें गोपित है।'

'शाम्भवी विद्या' 'आदिशक्ति उमास्वरूपिणी' कही गयी है और 'शम्भुसे आविर्भूता' बतायी गयी है।

आदिशक्तिरूपा चैषा मत्तो जन्मवती पुरा।
अधुना जन्मसंस्कारात् त्वमेको लब्धवानसि॥

आगे कहा गया है कि 'जैसे फूल फलका प्रकाशक है, फल फूलका विनाशक है, वैसे 'देह' तत्त्वका प्रकाशक है, 'तत्त्व' देहका विनाशक है। जैसे मूढ़मति गड़रिया बकरीके बच्चेके बगलमें रहते हुए भी मूढ़तावश उसे कुएँमें झाँकता फिरता है, वैसे ही मूढ पुरुष अपनेमें स्थित 'तत्त्व'को न जानकर अन्य शास्त्रोंमें मोहको प्राप्त होते हैं, व्यर्थ शास्त्रोंमें भटकते हैं।'

इस 'शाम्भवी विद्या'को सिखाने-समझानेवाले 'समर्थ सद्गुरु'के विषयमें कहा है कि—

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः॥

अर्थात् 'दृश्यके बिना ही जिसकी दृष्टि स्थिर हो जाय, बिना किसी प्रयत्नके जिसके प्राण स्थिर हो जायँ, बिना किसी अवलम्बनके जिसका चित्त स्थिर हो जाय, वही (यथार्थमें) 'योगी' है, वह 'गुरु' होने योग्य है, उसीकी सेवा करनी चाहिये।'

ऐसे गुरु 'भगवान् शम्भु' के सिवा अन्य कौन हो सकते हैं? इसीलिये तो ऐसे 'गुरु' को नमस्कार करते हुए कहा गया है कि—

नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं सहजानन्दरूपिणे।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति संसारमोहनामयम्॥

(अमनस्कयोग, उत्तरार्ध २०)

अर्थात् सहजानन्दरूपी आप गुरुके लिये नमस्कार है, जिनका वाक्यरूपी अमृत संसार-मोहरूपी व्याधिका विनाश करता है, ऐसे समर्थ 'सद्गुरु'का अनुग्रह प्राप्त करके—

विविक्ते विजने देशे पवित्रेऽतिमनोहरे ।
समासने सुखासीनः पश्चात् किंचित् समाश्रयेत् ॥
सुखस्थापितसर्वाङ्गः सुस्थिरात्मा सुनिश्चयः ।
बाहुदण्डप्रमाणेन कृतदृष्टिः समभ्यसेत् ॥

(अमनस्कयोग, उत्तरार्ध ५०-५१)

अर्थात् पवित्र निर्जन मनोहर प्रदेशमे सम-आसनपर कुछ पीछेकी ओर तनकर सुखपूर्वक आसीन हो तथा सुखसे सब अङ्गोको यथास्थान स्थापित कर, सुस्थिर-चित्त और निश्चल होकर एक हाथतक आगेकी ओर दृष्टि लगाकर अभ्यास करे। ऐसा ही मार्गदर्शन श्रीमद्भगवद्गीता (६।१३) मे दिया गया है और पातञ्जलयोगसूत्र (२।४६) मे भी कहा गया है कि *'स्थिरसुखमासनम्'*

धीरे-धीरे अभ्यासके स्थिर हो जानेपर फिर न कोई विधि रहती है और न कोई क्रम रहता है। तब चिन्तन-शून्यताकी स्थिति रहती है। कुछ भी चिन्तन न करनेसे तत्त्व स्वयं प्रकाशमें आ जाता है—

न किंचिच्चिन्तनादेव स्वयं तत्त्वं प्रकाशते ॥

ऐसा ही श्रीमद्भगवद्गीता (६।२५) में भी कहा है—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥

अर्थात् 'क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त होवे तथा धैर्ययुक्त बुद्धिद्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवाय कुछ भी चिन्तन न करे।'

'शाम्भवी विद्या' के अभ्यासीको 'चित्त'को बाहरमें एवं भीतरमें शनैः-शनैः स्थिर करनेकी प्रक्रिया सिखायी जाती है। कहा है कि 'चित्ते चलति संसारोऽचले मोक्षः प्रजायते।' अर्थात् 'चित्तके चञ्चल होनेपर संसारका भान होता है और निश्चल होनेपर मोक्षका उदय होता है।' 'मन' के विषयमें कहा है कि 'मन ही मनुष्योंके बन्धन एवं मोक्षका हेतु है। विषयोंमें आसक्त मन 'बन्धन' के और निर्विषय मन 'मुक्ति' के लिये कारण होता है।' भगवद्गीता (६।५) भी ऐसा ही कहती है—

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

वैसे तो शाम्भवी विद्या या मुद्राका वर्णन अमनस्कयोग, घेरण्डसंहिता, शिवसंहिता, गोरक्षसंहिता, हठयोगप्रदीपिका तथा अभिनवगुप्तपादाचार्यके अनेक ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है, किंतु अधिकांश स्थानोंमें उसका वर्णन प्रायः एक ही समान प्राप्त होता है, जिसके कुछ मुख्य श्लोक जिनमे शाम्भवी विद्याका स्पष्ट भाव दिया गया है, यहाँ दिये जा रहे हैं। हठयोगप्रदीपिका (३६) में कहा गया है—

अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ।
एषा सा शाम्भवी मुद्रा वेदशास्त्रेषु गोपिता ॥

अर्थात् 'जिसमें भीतरी लक्ष्य (पर मन स्थिर) हो तथा पलकोंके खुले और बंद हुए बिना नेत्र स्थिर रहें—निमेषोन्मेषसे रहित बाह्य दृष्टि हो, वही शाम्भवी मुद्रा है। यह वेदादिशास्त्रोंमें अच्छी तरह गुप्त—सुरक्षित है।'

यह मुद्रा शिवप्रिया—शिवाविर्भावकारिणी है। इसकी साधनासे साधकको शिवका साक्षात्कार होता है।

अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनो योगी यदा वर्तते
दृष्ट्या निश्चलतारया बहिरधः पश्यन्नपश्यन्नपि ।
मुद्रेयं खलु शाम्भवी भवति सा लब्धा प्रसादाद् गुरोः
शून्याशून्यविलक्षणं स्फुरति तत्तत्त्वपरं शाम्भवम् ॥

(हठयोगप्रदीपिका ४।३७)

इस श्लोकका भाव यह है कि योगीकी बाह्य मनोवृत्तियाँ विलीन होकर अन्तर्हृदयमें स्थित परमात्मामें सर्वथा एकाग्र हो जायँ और नेत्रोंकी तारिकाएँ प्रायः स्थिर-सी होकर बाह्य जगत्को देखती हुई भी उन्हें बाह्य जगत्का भान न हो अथवा बाह्य जगत्में भी एकमात्र उसी परमात्माका भान हो। इस शाम्भवी विद्या या मुद्राकी प्राप्ति गुरु (परम गुरु शिव) के परम प्रसादसे ही सम्भव है। परम शाम्भव तत्त्व जो शून्य-अशून्यसे परे—विलक्षण है। इस मुद्राकी प्राप्ति-सिद्धि होनेपर स्फुरित होता है। इसे ही शिव-साक्षात्कार या परमात्म-प्राप्ति मानना चाहिये। घेरण्डसंहिता (३।६२) में भी कहा गया है कि शाम्भवी विद्या या मुद्राको जाननेवाला ब्रह्म-स्वरूप—शिवस्वरूप ही हो जाता है—

शाम्भवीं यो विजानाति स च ब्रह्म न चान्यथा ॥

—०—

शिव-विष्णुका अलौकिक प्रेम

प्राचीन कालमें सुरमुनिसेवित कैलास-शिखरपर महर्षि गौतमका एक आश्रम था। वहाँ एक बार पाताललोकसे जगद्विजयी बाणासुर अपने कुलगुरु—शुक्राचार्य तथा अपने पूर्वज—भक्तशिरोमणि प्रह्लाद, दानवीर बलि एवं दैत्यराज वृषपर्वाके साथ आया और महर्षि गौतमके सम्मान्य अतिथिके रूपमें रहने लगा। एक दिन प्रातःकाल वृषपर्वा शौच-स्नानादि नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर भगवान् शंकरकी पूजा कर रहा था। इतनेमें ही महर्षि गौतमका एक प्रिय शिष्य, जिसका अन्वर्थ नाम शंकरात्मा था और जो अवधूतके वेशमें उन्मत्तकी भाँति विचरता था, विकराल रूप बनाये वहाँ आ पहुँचा और वृषपर्वा तथा उनके सामने रखी हुई शंकरकी मूर्तिके बीचमें आकर खड़ा हो गया। वृषपर्वाको उसका इस प्रकारका उद्धत-सा व्यवहार देखकर बड़ा क्रोध आया। उसने जब देखा कि वह किसी प्रकार नहीं मानता तो चुपकेसे तलवार निकालकर उसका सिर धड़से अलग कर दिया। जब महर्षि गौतमको यह संवाद मिला तो उनको बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि शंकरात्मा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था। उन्होंने उसके बिना जीवन व्यर्थ समझा और देखते-देखते वृषपर्वाकी आँखोंके सामने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। उन्हें इस प्रकार देहत्याग करते देखकर शुक्राचार्यसे भी नहीं रहा गया, उन्होंने भी उसी प्रकार अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया और उनकी देखादेखी प्रह्लादादि अन्य दैत्योंने भी वैसा ही किया। बात-की-बातमें ऋषिके आश्रममें शिव-भक्तोंकी लाशोंका ढेर लग गया। यह करुणापूर्ण दृश्य देखकर ऋषिपत्नी अहल्या हृदयभेदी स्वरसे आर्तनाद करने लगीं। उनकी क्रन्दनध्वनि भक्तभयहारी भगवान् भूतभावनके कानोंतक पहुँची और उनकी समाधि टूट गयी। वे वायुवेगसे महर्षि गौतमके आश्रमपर पहुँचे। इसी प्रकार गजकी करुण पुकार सुनकर एक बार भगवान् चक्रपाणि भी वैकुण्ठसे पाँव-पियादे आतुर होकर दौड़े आये थे। धन्य भक्तवत्सलता! दैवयोगसे ब्रह्माजी तथा विष्णुभगवान् भी उस समय कैलासमें ही उपस्थित थे। उन्हें भी कौतूहलवश शंकरजी अपने साथ लिवा लाये।

भगवान् त्रिलोचनने आश्रममें पहुँचकर अपने कृपा-कटाक्षसे ही सबको बात-की-बातमें जिला दिया। तब वे सब खड़े होकर भगवान् मृत्युञ्जयकी स्तुति करने लगे। शंकरने महर्षि गौतमसे कहा—हम तुम्हारे इस साहस एवं आदर्श त्यागपर अत्यन्त प्रसन्न हैं, वर [illegible] महर्षि बोले—प्रभो! आपने यहाँ पधारकर मुझे [illegible] कृतार्थ कर दिया। इससे बढ़कर मेरे लिये और कौन-सी प्रार्थनीय हो सकती है? मैंने आज सब कुछ पा लिया [illegible] भाग्यकी आज देवतालोग भी सराहना करते हैं। यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार [illegible] चाहता हूँ आज आप मेरे यहाँ प्रसाद ग्रहण करें।

भगवान् तो भावके भूखे हैं। उनकी प्रतिज्ञा है

> पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
> तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
> (गीता ९

इसी भावके वशीभूत होकर उन्होंने एक दिन [illegible] शबरीके बेर और श्रीकृष्णरूपमें सुदामाके तन्दुलोंका [illegible] लगाया था। उन्होंने महर्षिकी अविचल एवं निश्छल [illegible] देखकर उनका निमन्त्रण तुरंत स्वीकार कर लिया और ब्रह्मा-विष्णुको भी महर्षिका आतिथ्य स्वीकार करनेको [illegible] कर लिया। जबतक इधर भोजनकी तैयारी हो रही थी, शंकर विष्णुको साथ लेकर आश्रमके [illegible] और वहाँ एक सुकोमल शय्यापर लेटकर बहुत [illegible] प्रेमालाप करते रहे। इसके अनन्तर वे आश्रमभूमिमें [illegible] सुरम्य तड़ागपर जाकर वहाँ जलक्रीडा करने लगे। भोलेबाबा भगवान् श्रीहरिके पद्मदलायत [illegible] कमलकिञ्जल्कमिश्रित जल अञ्जलिके द्वारा फेंकने [illegible] भगवान्ने उनके प्रहारको न सह सकनेके कारण अपने नेत्र मूँद लिये। इतनेमें ही भोलेबाबा अवसर पाकर [illegible] उछलकर भगवान्के वृष-सदृश गोल-गोल सुडौल कन्धोंपर आरूढ़ हो गये। वृषभारोहणका तो उन्हें अभ्यास [illegible] ठहरा, ऊपरसे जोरसे दबाकर उन्हें कभी तो पानीके [illegible] जाये और कभी फिर ऊपर ले आवें। इस प्रकार जब बहुत तंग किया तो विष्णुभगवान्ने भी एक चाल [illegible] उन्होंने तत्क्षण शिवजीको पानीमें दे मारा। शिवजीने भी [illegible] ही भगवान्की दोनों टाँगे पकड़कर उन्हें गिरा दिया।

प्रकार कुछ देरतक दोनोंमें पैंतरेबाजी और दाँव-पेंच चलते रहे। विमानस्थित देवगण अन्तरिक्षसे इस अपूर्व आनन्दको लूटने लगे। धन्य हैं वे आँखें जिन्होंने उस अद्भुत छटाका निरीक्षण किया।

दैवयोगसे नारदजी उधर आ निकले। वे इस अलौकिक दृश्यको देखकर मस्त हो गये और लगे वीणाके स्वरके साथ गाने। शंकर उनके सुमधुर संगीतको सुनकर, खेल छोड़कर जलसे बाहर निकल आये और ओदे वस्त्र पहने ही नारदके सुर-में-सुर मिलाकर स्वयं राग अलापने लगे। अब तो भगवान् विष्णुसे भी नहीं रहा गया। वे भी बाहर आकर मृदङ्ग बजाने लगे। उस समय वह समाँ बँधा जो देखते ही बनता था। सहस्रों शेष और शारदा भी उस समयके आनन्दका वर्णन नहीं कर सकते। बूढ़े ब्रह्माजी भी उस अनोखी मस्तीमें शामिल हो गये। उस अपूर्व समाजमें यदि किसी बातकी कमी थी तो वह प्रसिद्ध संगीतकोविद पवनसुत हनुमान्‌जीके आनेसे पूरी हो गयी। उन्होंने जहाँ अपनी हृदयहारिणी तान छेड़ी वहाँ सबको बरबस चुप हो जाना पड़ा। अब तो सब-के-सब निस्तब्ध होकर लगे हनुमान्‌जीके गायनको सुनने। सब-के-सब ऐसे मस्त हुए कि खान-पानतककी सुधि भूल गये। उन्हें यह भी होश नहीं रहा कि हमलोग महर्षि गौतमके यहाँ निमन्त्रित हैं।

उधर जब महर्षिने देखा कि उनका पूज्य अतिथिवर्ग स्नान करके सरोवरसे नहीं लौटा और मध्याह्न बीता जा रहा है तो वे बेचारे दौड़े आये और किसी प्रकार अनुनय-विनय करके बड़ी मुश्किलसे सबको अपने यहाँ लिवा लाये। तुरंत भोजन परोसा गया और लोग लगे आनन्दपूर्वक गौतमजीका आतिथ्य स्वीकार करने। इसके अनन्तर हनुमान्‌जीका गायन प्रारम्भ हुआ। भोलेबाबा उनके मनोहर संगीतको सुनकर ऐसे मस्त हो गये कि उन्हें तन-मनकी सुधि न रही। उन्होंने धीरे-धीरे एक चरण हनुमान्‌की अञ्जलिमें रख दिया और दूसरे चरणको उनके कंधे, मुख, कण्ठ, वक्षःस्थल, हृदयके मध्यभाग, उदरदेश तथा नाभि-मण्डलमें स्पर्श कराते हुए मौजसे लेट गये। यह लीला देखकर विष्णु कहने लगे—आज हनुमान्‌के समान सुकृती विश्वमें कोई नहीं है। जो चरण देवताओंको भी दुर्लभ हैं तथा वेदोंके द्वारा अगम्य हैं, उपनिषद् भी जिन्हें प्रकाश नहीं कर सकते, जिन्हें योगिजन चिरकालतक विविध प्रकारके साधन करके तथा व्रत-उपवासादिसे शरीरको सुखाकर क्षणभरके लिये भी अपने हृदयदेशमें स्थापित नहीं कर सकते, प्रधान-प्रधान मुनीश्वर सहस्रकोटि संवत्सरपर्यन्त तप करके भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर सकते, उन चरणोंको अपने समस्त अङ्गोंपर धारण करनेका अनुपम सौभाग्य आज हनुमान्‌को अनायास ही प्राप्त हो रहा है। मैंने भी हजार वर्षतक प्रतिदिन सहस्र पद्मोंसे आपका भक्तिभावपूर्वक अर्चन किया, परंतु यह सौभाग्य आपने मुझे कभी प्रदान नहीं किया।

> मया वर्षसहस्रं तु सहस्राब्जैस्तथान्वहम्।
> भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया॥
> लोके वादो हि सुमहान् शम्भुर्नारायणप्रियः।
> हरिः प्रियस्तथा शम्भोर्न तादृग् भाग्यमस्ति मे॥

(पद्म॰ पा॰ ११४।१९०-१९१)

लोकमें यह वार्ता प्रसिद्ध है कि नारायण शंकरके परम प्रीतिभाजन हैं, परंतु आज हनुमान्‌को देखकर मुझे इस बातपर संदेह-सा होने लगा है और हनुमान्‌के प्रति ईर्ष्या-सी हो रही है।

भगवान् विष्णुके इन प्रेम-लपेटे अटपटे वचन सुनकर शंकर मन-ही-मन मुसकराने लगे और बोले—नारायण! यह आप क्या कह रहे हैं? आपसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय हो सकता है? औरोंकी तो बात ही क्या, पार्वती भी मुझे आपके समान प्रिय नहीं हैं—

> न त्वया सदृशो मह्यं प्रियोऽस्ति भगवन् हरे।
> पार्वती वा त्वया तुल्या न चान्यो विद्यते मम॥

(पद्म॰ पा॰ ११४।१९२)

इतनेमें ही माता पार्वती भी वहाँ आ पहुँचीं। शंकरको बहुत देरतक लौटते न देखकर उनके मनमें स्त्रीसुलभ शङ्का हुई कि कहीं स्वामी नाराज तो नहीं हो गये। दौड़ी हुई गौतमके आश्रममें पहुँचीं। गौतमकी मेहमानीमें जो कमी थी वह उनके आगमनसे पूरी हो गयी। उन्होंने भी अपने पतिकी अनुमति लेकर महर्षिका आतिथ्य स्वीकार किया और फिर शंकरजीके समीप आकर उनकी और विष्णुभगवान्‌की प्रणयगोष्ठीमें सम्मिलित हो गयीं। बातों-ही-बातोंमें उन्होंने विनोद तथा प्रणयकोपमें शंकरजीके प्रति कुछ अवज्ञात्मक शब्द कहे और

उनकी मुण्डमाला, पन्नगभूषण, दिग्वस्त्रधारण, भस्माङ्गलेपन और वृषभारोहण आदिका परिहास किया। तब तो विष्णु-भगवान्से नहीं रहा गया। आप शंकरकी अवज्ञाको नहीं सह सके और बोल उठे—'देवि ! आप जगत्पति शंकरके प्रति यह क्या कह रही हैं ? मुझसे आपके ये शब्द सहे नहीं जाते। जहाँ शिवनिन्दा होती हो वहाँ हम प्राण धारण नहीं कर सकते, यह हमारा व्रत है।' यह कहकर वे शिव-गिरिजाके सम्मुख ही नखके द्वारा अपना शिरश्छेदन करनेको उद्यत हो गये। शंकरजीने बड़ी कठिनतासे उन्हें इस कार्यसे रोका।

किमर्थं निन्दसे देवि देवदेवं जगत्पतिम्।

× × ×

यत्रेशनिन्दनं भद्रे तत्र नो मरणं व्रतम्।
इत्युक्त्वाऽथ नखाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरो गतः॥
महेशस्तु करं गृह्य प्राह मा साहसं कृथाः।

(पद्म॰ पा॰ ११४। २७२—२७४)

अहा ! कैसी अद्भुत लीला है ! एक बार रामावतारके समय शंकरने अपनी स्वामिनीका वेश धारण करनेके अपराधमें सतीशिरोमणि सतीका परित्याग कर दिया था। शिवकी निन्दा करनेवाले वैष्णवो और विष्णुकी अवज्ञा करनेवाले शैवो ! इन प्रसङ्गोंको ध्यानपूर्वक पढ़ो और व्यर्थका दुराग्रह छोड़ शिव-विष्णुकी एकताके रहस्यको समझनेकी चेष्टा करो। (पद्मपुराण, पातालखण्ड)

शिव-पूजाका फल

[रानी लाजवतीकी कथा]

(स्वामी श्रीपरमहंसजी महाराज)

महाराज निमिके वंशमें मिथि नामके एक प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। उन्हींके नामपर मिथिला यह देशका नाम पड़ा। राजाके दो रानियाँ थीं। बड़ीका नाम लाजवती और छोटीका माल्यवती था। छोटी रानीके प्रभावमें आकर राजाने बड़ी रानीको महलसे दूर जंगलमें एक प्रासादमें कुछ दास-दासियोंके साथ रख दिया। दुःखी हो बड़ी रानी लाजवती किसी प्रकार जीवन-निर्वाह करने लगी। इधर छोटी रानी निर्द्वन्द्व हो महलमें सुखसे रहने लगी। कुछ समय ऐसे ही बीत गया। राजाने भी बड़ी रानीकी सुधि भुला दी। एक दिनकी बात है। तीसरे प्रहरका समय था। लाजवती उदास होकर अपने महलसे बाहर झाँक रही थी। उसी समय दैवयोगसे नगरकी ओर जाते हुए एक शिवयोगीको उसने देखा। लाजवतीने अपनी दासियोंके माध्यमसे शिवयोगीसे आदरपूर्वक महलमें ले आनेका संदेश भेजा।

शिवयोगीने कहा—मैं नगरमें शिवपूजाकी सामग्री लेकर लौटनेपर रानीसे मिलूँगा। इतना कहकर योगी नगरकी ओर चल पड़े, दासियोंने रानीसे सब समाचार कह सुनाया। सब शिवयोगीकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय बाद शिवयोगी वहाँ आये। लाजवतीने बड़े ही आदरसे उन्हें प्रणामकर आसनपर विराजमान करवाया और अपनी करुण-कथा उन्हें सुनायी। इसपर शिवयोगीने कहा—'देवि ! आप घबराएँ नहीं, आपके दुःखका नाशक एक उपाय बतलाता हूँ, उससे शीघ्र ही राजा आपपर प्रसन्न हो जायँगे और आपको शान्तिकी प्राप्ति भी हो जायगी।' रानीने हाथ जोड़कर कहा—योगिराज ! मैं आपके बताये हुए उपायके अनुसार ही सब करूँगी, आप शीघ्र ही मुझे बतलायें, आपकी महती कृपा होगी।

शिवयोगीने कहा—'देवि ! आप भगवान् सदाशिवका प्रतिदिन पूजन करें, 'शिव' नामका जप करें, शिव नाम बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और शान्तिप्रद है। इससे आपका कल्याण होगा। नदीके दूसरे किनारे शिव-मन्दिर है।' ऐसा कहकर योगी चले गये। रानीने बड़ी ही श्रद्धासे दूसरे दिन प्रातः दासियोंको साथ लेकर नदीमें स्नान किया और शिव-मन्दिरमें जाकर प्रेमपूर्वक बिल्वपत्रोंसे शिवकी पूजा की। तदनन्तर प्रतिदिन शिव-पञ्चाक्षर-मन्त्र (नमः शिवाय)से वह पत्र, पुष्प, जल, फल, धूप, दीप चढ़ाकर, आरती कर प्रार्थना किया करती थी। यह उसके नित्यका नियम बन गया था। पूजनके अनन्तर वह महलमें चली आती। शेष एक समय भोजन करती, पृथ्वीपर सोती, 'शिव-शिव' नाम उच्चारण करती और भगवान् शंकरका ध्यान करती रहती थी। यों

शिव-पूजा करते-करते चालीस दिन बीत गये। सच्ची निष्ठा और भगवद्भक्ति क्या नहीं कर सकती ? एक दिन वह नित्य-नियमके अनुसार प्रातः पूजन-थाल लिये शिव-पूजनार्थ महलसे जा रही थी। आज रानी अकेली थी। दैवयोगसे राजा भी आखेटकी दृष्टिसे उसी वनमें आये। राजाकी दृष्टि रानीपर पड़ी तो अचानक उन्हें सभी बातोंकी स्मृति हो उठी और अपने कियेपर पश्चात्ताप भी होने लगा। वे तुरंत ही रानीके समीप आये और पूछने लगे—'प्रिये ! इस घोर वनमें अकेली कहाँ जा रही हो ?'

रानीने राजाको प्रणामकर कहा—'नाथ ! मैं नदी-किनारे महादेवकी पूजा करने जा रही हूँ।' राजाने कहा—'शिवमन्दिर तो दूर है। अकेली कैसे जाओगी ? वनमें शेर-चीते आदि हिंसक प्राणी रहते हैं।' रानीने कहा—'राजन् ! भोलेनाथकी इच्छा, जो भवितव्यता होगी, वैसा तो होगा ही। किंतु इस भयसे मैं शिवपूजासे कैसे विरत रह सकती हूँ। भगवान् भूतनाथ मेरी रक्षा करेंगे।' इसपर राजाने कहा—'देवि ! तुम धन्य हो, जो ऐसी भक्तिनिष्ठा तुममें है, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। अब मुझे भी महादेवके दर्शन कराओ।' यह कहकर राजा भी साथ-साथ चलने लगे। नदी-पार पहुँचकर दोनोंने स्नान किया और फिर वे शिव-मन्दिरमें गये। वहाँ राजाने रानीसहित भगवान् शंकरका पूजन किया। शिव-पूजनके प्रभावसे राजाका हृदय भी निर्मल हो गया और रानीकी श्रद्धा, शिवभक्ति, नम्रता, निर्मलता और सरलता देखकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाने रानीसे क्षमा माँगी। रानीने अपने स्वामीके चरण छूकर कहा—'प्राणनाथ ! आप हमारे स्वामी हैं, मैं आपकी दासी हूँ। मुझमें अनेक दोष हैं, कृपया मुझे क्षमा करें। आपकी ही कृपासे आज मुझे भगवान्‌की कृपा प्राप्त हुई है। यह आपका ही अनुग्रह है। मुझे तो भगवान् भी मिल गये और आप भी मिल गये, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है।' तदनन्तर भगवान्‌को प्रणाम कर रानीको साथ लेकर राजा अपने महलमें आ गये। इस घटनाको जानकर सभी बड़े प्रसन्न हो गये। राजा-रानी सभी शिवके भक्त बन गये। राजा-रानीने शिव-पूजाका बहुत प्रचार किया तथा इस लोकका सुख भोगकर अन्तमें उन्होंने शिवलोक प्राप्त किया।

सिव सेवा कर फल सुत सोई । अबिरल भगति राम पद होई ॥

(पूज्य श्रीमुरारी बापू)[1]

श्रीरामचरितमानसमें श्रीगरुडजी एवं श्रीकाकभुशुण्डिके संवाद-रूपमें वर्णित श्रीरामकथा भगवान् शंकरकी महिमामें ही निरूपित है। मुख्यरूपसे इसमें यह बताया गया है कि किस प्रकार मोहके वशीभूत हो जीव अविवेक एवं अभिमानका आश्रय लेकर अपने साधन-पथसे दूर हो जाता है, पुनः प्रभुकी शरणमें जाने एवं सत्संगतिका आश्रय लेनेसे उसका मोह-अभिमान छूट जाता है और उसे भगवान्‌के श्रीचरणोंकी अखण्ड भक्ति प्राप्त हो जाती है। एक बार विष्णुवाहन गरुडजीको यह अभिमान हो गया था कि जो श्रीराम व्यापक, विकाररहित, वाणीके पति, माया-मोहसे परे ब्रह्म हैं, परमेश्वर हैं वे ही अवतार लेकर श्रीराम-रूपमें प्रकट हुए हैं, किंतु उन्हें युद्धमें एक तुच्छ राक्षसने नागपाशसे बाँध लिया तो फिर प्रभुकी प्रभुता कैसी ? उस नागपाशको तो मैंने ही काटा। मोह-अभिमानग्रस्त वे देवर्षि नारदके पास गये, उन्हें अपने मनका संदेह बताया। यह सुनकर नारदजीको अत्यन्त दया आ गयी। उन्होंने कहा—हे गरुड ! श्रीरामजीकी माया बड़ी ही बलवती है, वही आपको व्याप गयी है, अतः आप ब्रह्माजीके पास जाइये। गरुड ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने उनसे कहा—पक्षिराज ! श्रीरामजीकी महिमाको महादेवजी ही जानते हैं, अतः आप उन्हींके पास जाइये, वहीं आपका संदेह दूर होगा, गरुडजी शंकरजीके पास गये और महादेवजीने गरुडजीसे कहा—पक्षिराज ! बिना दीर्घकालतक सत्संग किये मोह-अज्ञानका दूर होना कठिन है—

तबहि होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

इसलिये हे भाई ! जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, आप वहीं जाइये। वहाँ सत्संगके प्रभावसे आपका सब संदेह दूर हो

१-सिंगापुरमें, उनके द्वारा दिये गये प्रवचनका एक अंश।

जायगा और श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम होगा। क्योंकि सत्संगके बिना हरिकी कथा सुननेको नहीं मिलती, मोह भी नहीं भागता और भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति भी नहीं होती—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

उत्तर दिशामें एक सुन्दर नील पर्वत है, वहाँ परम ज्ञानी, भक्त, गुणोंके धाम काकभुशुण्डिजी रहते हैं, वे निरन्तर हरिगुण-गानमें लीन रहते हैं और आदरसहित सब पक्षी उसे सुनते रहते हैं, अतः आप वहीं जाइये, वहाँ हरिकथा सुननेसे आपका दुःख दूर हो जायगा।

गरुडजी प्रसन्न होकर भगवान् शंकरको प्रणामकर वहाँसे चल पड़े और परम भक्त काकभुशुण्डिजीके पास पहुँच गये। काकभुशुण्डिजी एक वटवृक्षके नीचे बैठे हुए थे, अनेक पक्षीगण हरिकथा सुनने वहाँ आये हुए थे। पक्षिराज गरुडजीको आया देखकर काकभुशुण्डिसहित सारा पक्षिसमूह हर्षित हो गया, सबने उनका स्वागत-सत्कार किया। अनन्तर गरुडजी बोले—तात! आज आपके दर्शनसे ही मेरा मोह-संदेह सब दूर भाग गया, फिर भी आप मुझे सदा सुख देनेवाली तथा अत्यन्त पवित्र करनेवाली श्रीरामकथा सुनानेकी कृपा करें। अनन्तर काकभुशुण्डिजीने रघुनाथजीकी पूरी कथा गरुडजी को सुनायी, जिससे उनका सारा संदेह जाता रहा और उनको भगवान्‌के चरणोंमें विशेष भक्ति हो गयी। पुन, काकभुशुण्डिजीने कहा—पक्षिराज! भगवान्‌का यह सहज स्वभाव है कि वे अपने भक्तमें अभिमान कभी रहने नहीं देते, इसलिये वे उसे दूर कर देते हैं, क्योंकि अपने सेवकपर उनकी बहुत अधिक ममता रहती है। जैसे बच्चेके शरीरमें फोड़ा हो जाता है तो माता अपने हृदयको कठोर करके फोड़ेको चिरा डालती है। यद्यपि बच्चा पहले फोड़ा चिराते समय दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है तो भी रोगके नाशके लिये माता बच्चेकी उस पीड़ाको कुछ भी नहीं गिनती, उसकी परवा नहीं करती। उसी प्रकार भगवान् अपने दासका अभिमान उसके हितके लिये हर लेते हैं। मूढ़ जन भगवान्‌के इस प्रेम, इस अनुरागको समझ नहीं पाते। हे पक्षिराज! यही स्थिति हम सभी जीवोंकी है।

मुझे भी ऐसा ही अभिमान एक बार हो आया था। उसे आप सुनें। भगवान् जब-जब भी मनुष्य-शरीर धारण करते हैं, तब-तब मैं अयोध्यामें जाकर उनकी बालक्रीडाओंका दर्शन करता हूँ। ऐसे ही एक बार शोभाधाम भगवान् अपने मणिमय आँगनमें घुटनोंके बल खेल रहे थे और मुझे पुआ दिखा-दिखाकर अनेक लीला कर रहे थे। हे पक्षिराज! उनकी ऐसी साधारण बच्चों-जैसी चेष्टा देखकर मुझे उनके सच्चिदानन्दघन स्वरूपपर शंका हो आयी। मनमें शंकाके होते ही हरिप्रेरित माया मुझे व्याप गयी। मैं उस खेलका मर्म नहीं जान सका। पुन बालरूप भगवान् घुटनोंके बल मुझे पकड़ने दौड़े, तब मैं भाग चला, श्रीरामजीने मुझे पकड़नेके लिये भुजा फैलायी। मैं जैसे-जैसे आकाशमें दूर उड़ता, वैसे-वैसे हरिकी भुजाको अपने पास देखता था। मैं ब्रह्मलोकतक चला गया, पीछे देखा तो हरिकी भुजा और मुझमें केवल दो अंगुलका ही अन्तर था। सातों आवरणोंको भेदकर जहाँतक मेरी गति थी, गया, पर वहाँ भी प्रभुके हाथको अपने पीछे पाकर मैं बहुत व्याकुल हो गया। मैं अत्यन्त भयभीत हो गया। मैंने आँखें मूँद लीं। फिर आँखें खोलकर देखते ही मैं अवधपुरी पहुँच गया, मुझे देखकर भगवान् श्रीराम मुसकराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरत उनके मुखमें चला गया। मैंने उनके उदरमें अनेकों ब्रह्माण्डों, करोड़ों ब्रह्मा आदि देवताओं और सम्पूर्ण सृष्टिसमूह तथा जड-चेतन जीवको देखा, वहाँ मैं घूमता रहा, भगवान् श्रीराम, अवधपुरी तथा उनकी बाल-लीलाओंको भी देखा। इस प्रकार अनेकों ब्रह्माण्डोंमें सर्वत्र उन्हीं रामकी लीलाओंको देखते हुए मुझे एक सौ कल्प बीत गये। मैंने वहाँ अपना आश्रम आदि सब कुछ देखा। यह देखकर मैं बहुत ही व्याकुल हो गया, मुझे व्याकुल देखकर भगवान् श्रीराम हँस पड़े। भगवान्‌के हँसते ही मैं उनके मुखसे बाहर आ गया और यहाँ देखता हूँ कि भगवान् वही बाल-लीला कर रहे हैं, मेरा मन बड़ा अशान्त हो गया। यह बालचरित तथा उदरके अंदर प्रभुकी प्रभुता देखकर मैं अपने शरीरकी भी सुधि भूल गया। भयभीत होकर 'प्रभो! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' कहते हुए पृथिवीपर गिर पड़ा।

दीनदयालुने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपना करकमल मेरे सिरपर रखा और सम्पूर्ण दुःख हर लिया। मेरा मोह दूर हो गया। मैं पुलकित होकर बहुत प्रकारसे विनती करने लगा

और मैंने प्रभुसे उनकी प्रगाढ़ विशुद्ध भक्तिका वर माँगा। भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर बतलाया कि मुझे निश्छल भावसे भजनेवाला भक्त अत्यन्त प्रिय है। हे पक्षिराज ! इस प्रकार कुछ समयतक वहाँ भगवान्की लीलाओंका दर्शन कर मैं अपने आश्रममें लौट आया और मेरा तो यह निश्चित मत है कि भगवान्की कृपाके बिना जीव स्वप्नमें भी सुख नहीं प्राप्त कर सकता, इसलिये सब कुछ छोड़कर श्रीरघुवीरका भजन ही करना चाहिये।

भगवान्की अमित महिमा एवं भक्तिका प्रभाव जानकर गरुडजी अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। वे बार-बार भुशुण्डिजीके चरणोंमें अपना सिर नवाने लगे और कहने लगे—हे भुशुण्डिजी ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और भगवान्के चरणोंमें मेरी प्रीति हो गयी, किंतु एक बात मेरे मनमें खटक रही है कि आप तो सर्वज्ञ हैं, मायासे परे हैं, ज्ञान-वैराग्यके धाम हैं और श्रीरघुनाथजीके दास हैं, फिर आपने यह काक-शरीर किस कारण प्राप्त किया ? हे तात ! मुझे आप अपना दास समझकर सब बताइये। मैंने भगवान् शिवजीसे सुना है कि आपका महाप्रलयमें भी नाश नहीं होता, जब कि सब कुछ कालके अधीन है, फिर आपके आश्रममें आते ही मेरा मोह-भ्रम भाग गया, इसका क्या रहस्य है ? क्या कारण है ? यह सब आप बतानेकी कृपा करें।

यह सुनकर काकभुशुण्डिजी कहने लगे—'पक्षिराज ! आपके सुन्दर प्रश्नोंको सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मोंकी याद आ गयी। मैं उन्हें सुनाता हूँ, आप सुनें—पक्षिराज ! मेरा प्रथम जन्म पूर्वके एक कल्पके कलियुगमें हुआ। मैं अयोध्यापुरीमें शूद्रका शरीर पाकर उत्पन्न हुआ। मैं मन, वचन, कर्मसे शिवजीका सेवक था, किंतु दूसरे देवताओंकी निन्दा करनेवाला अभिमानी था। मैं धनके मदमें मतवाला बहुत ही बकवादी और उग्र बुद्धिवाला था, मेरे हृदयमें बड़ा भारी दम्भ था। यद्यपि मैं श्रीरघुनाथजीकी राजधानीमें रहता था, किंतु उस समय उनकी महिमाको नहीं समझ पाया।

सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥
धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥

(उत्तरकाण्ड ९६। ३—४)

हे पक्षिराज ! इस प्रकारसे मैं उस कलिकालमें बहुत वर्षोतक अयोध्या रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा तो मैं अपने इष्टदेव महाकालेश्वरके निवासस्थान उज्जैनमें चला आया। मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुःखी था। शिवका उपासक था ही, उन्हींकी कृपा पाकर मैं महाकालवनमें भगवान् शंकरकी उपासना करने लगा। वहीं महाकालेश्वरके मन्दिरमें शम्भुके परम उपासक एक साधु ब्राह्मण नित्य वेदविधिसे शिवजीकी पूजा किया करते थे। हे पक्षिराज ! उन्हें शिव-सेवाके अतिरिक्त और कोई काम ही नहीं था, वे परमार्थ तत्त्वको जाननेवाले थे, वे श्रीहरिके निन्दक नहीं थे। सभी रूपोंमें एक ही सत्ता स्वीकार करते थे—

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥

हम दोनों परस्पर एक दूसरेकी शिवपूजा देखते रहते थे। वे ब्राह्मण बड़े ही दयालु थे। उनकी मुझपर कृपा-दृष्टि हुई। वे परम संत थे। मैं उनकी सेवा तो करता था, किंतु मेरे व्यवहारमें कपट था, तथापि परम संत उन्होंने मुझपर कृपा की। वे पुत्रकी भाँति मुझे पढ़ाने लगे। मुझे संतका आधार मिल गया। मेरे इष्ट शिव थे, वे मेरे सद्गुरु भी इष्टके ध्यानमें निरत रहते थे। सबसे बड़ी बात थी मेरे गुरु हरिके निन्दक नहीं थे। इसलिये अपने इष्टको अङ्गी तथा अन्य देवोंको अङ्ग समझकर उपासना करनी चाहिये। हरि-हरमें भेद-बुद्धि पतन करानेवाली है, यह एक प्रकारका नामापराध ही है। मैं कपटी था, इसलिये मैं श्रीरामके तत्त्वको जान नहीं पाया। भगवान्को कपट प्रिय नहीं है।—

'मोहि कपट छल छिद्र न भावा'

जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥

उन परम साधु विप्रवरने कृपाकर मुझे शिव-मन्त्र प्रदान किया। हे पक्षिराज ! मेरी शिक्षाभूमि, दीक्षाभूमि उज्जैन रही है। गुरुजीने मुझे शाम्भवी दीक्षा दी। शम्भु-शिक्षा दी, सद्गुरु शिक्षा देना है तो अपना शिवस्वरूप शिष्यमें प्रवेश करा देना है। 'ॐ नमः शिवाय' इस शम्भु-मन्त्रका उपदेश दिया। महाकालके मन्दिरमें मन्त्र प्रदान किया और विविध उपदेश दिया—

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा॥

जायगा और श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम होगा। क्योंकि सत्संगके बिना हरिकी कथा सुननेको नहीं मिलती, मोह भी नहीं भागता और भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति भी नहीं होती—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

उत्तर दिशामें एक सुन्दर नील पर्वत है, वहाँ परम ज्ञानी, भक्त, गुणोंके धाम काकभुशुण्डिजी रहते हैं, वे निरन्तर हरिगुण-गानमें लीन रहते हैं और आदरसहित सब पक्षी उसे सुनते रहते हैं, अतः आप वहीं जाइये, वहाँ हरिकथा सुननेसे आपका दुःख दूर हो जायगा।

गरुडजी प्रसन्न होकर भगवान् शंकरको प्रणामकर वहाँसे चल पड़े और परम भक्त काकभुशुण्डिजीके पास पहुँच गये। काकभुशुण्डिजी एक वटवृक्षके नीचे बैठे हुए थे, अनेक पक्षीगण हरिकथा सुनने वहाँ आये हुए थे। पक्षिराज गरुडजीको आया देखकर काकभुशुण्डिसहित सारा पक्षिसमूह हर्षित हो गया, सबने उनका स्वागत-सत्कार किया। अनन्तर गरुडजी बोले—तात! आज आपके दर्शनसे ही मेरा मोह-संदेह सब दूर भाग गया, फिर भी आप मुझे सदा सुख देनेवाली तथा अत्यन्त पवित्र करनेवाली श्रीरामकथा सुनानेकी कृपा करें। अनन्तर काकभुशुण्डिजीने रघुनाथजीकी पूरी कथा गरुडजी को सुनायी, जिससे उनका सारा संदेह जाता रहा और उनकी भगवान्‌के चरणोंमें विशेष भक्ति हो गयी। पुनः काकभुशुण्डिजीने कहा—पक्षिराज! भगवान्‌का यह सहज स्वभाव है कि वे अपने भक्तमें अभिमान कभी रहने नहीं देते, इसलिये वे उसे दूर कर देते हैं, क्योंकि अपने सेवकपर उनकी बहुत अधिक ममता रहती है। जैसे बच्चेके शरीरमें फोड़ा हो जाता है तो माता अपने हृदयको कठोर करके फोड़ेको चिरा डालती है। यद्यपि बच्चा पहले फोड़ा चिराते समय दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है तो भी रोगके नाशके लिये माता बच्चेकी उस पीड़ाको कुछ भी नहीं गिनती, उसकी परवा नहीं करती। उसी प्रकार भगवान् अपने दासका अभिमान उसके हितके लिये हर लेते हैं। मूढ़ जन भगवान्‌के इस प्रेम, इस अनुग्रहको समझ नहीं पाते। हे पक्षिराज! यही स्थिति हम सभी जीवोंकी है।

मुझे भी ऐसा ही अभिमान एक बार हो आया था। उसे आप सुनें। भगवान् जब-जब भी मनुष्य-शरीर धारण करते हैं, तब-तब मैं अयोध्यामें जाकर उनकी बालक्रीडाओंका दर्शन करता हूँ। ऐसे ही एक बार शोभाधाम भगवान् अपने मणिमय आँगनमें घुटनोंके बल खेल रहे थे और मुझे पुआ दिखा-दिखाकर अनेक लीला कर रहे थे। हे पक्षिराज! उनकी वैसी साधारण बच्चों-जैसी चेष्टा देखकर मुझे उनके सच्चिदानन्दघन स्वरूपपर शंका हो आयी। मनमें शंकाके होते ही हरिप्रेरित माया मुझे व्याप गयी। मैं उस खेलका मर्म नहीं जान सका। पुनः बालरूप भगवान् घुटनोंके बल मुझे पकड़ने दौड़े, तब मैं भाग चला, श्रीरामजीने मुझे पकड़नेके लिये भुजा फैलायी। मैं जैसे-जैसे आकाशमें दूर उड़ता, वैसे-वैसे हरिकी भुजाको अपने पास देखता था। मैं ब्रह्मलोकतक चला गया, पीछे देखा तो हरिकी भुजा और मुझमें केवल दो अंगुलका ही अन्तर था। सातों आवरणोंको भेदकर जहाँतक मेरी गति थी, गया; पर वहाँ भी प्रभुके हाथको अपने पीछे पाकर मैं बहुत व्याकुल हो गया। मैं अत्यन्त भयभीत हो गया। मैंने आँखें मूँद लीं। फिर आँखें खोलकर देखते ही मैं अवधपुरी पहुँच गया, मुझे देखकर भगवान् श्रीराम मुसकराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुखमें चला गया। मैंने उनके उदरमें अनेकों ब्रह्माण्डों, करोड़ों ब्रह्मा आदि देवताओं और सम्पूर्ण सृष्टिसमूह तथा जड-चेतन जीवको देखा, वहाँ मैं घूमता रहा, भगवान् श्रीराम, अवधपुरी तथा उनकी बाल-लीलाओंको भी देखा। इस प्रकार अनेकों ब्रह्माण्डोंमें सर्वत्र उन्हीं रामकी लीलाओंको देखते हुए मुझे एक सौ कल्प बीत गये। मैंने वहाँ अपना आश्रम आदि सब कुछ देखा। यह देखकर मैं बहुत ही व्याकुल हो गया, मुझे व्याकुल देखकर भगवान् श्रीराम हँस पड़े। भगवान्‌के हँसते ही मैं उनके मुखसे बाहर आ गया और यहाँ देखता हूँ कि भगवान् वही बाल-लीला कर रहे हैं, मेरा मन बड़ा अशान्त हो गया। यह बालचरित तथा उदरके अंदर प्रभुकी प्रभुता देखकर मैं अपने शरीरकी भी सुधि भूल गया। भयभीत होकर 'प्रभो! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' कहते हुए पृथिवीपर गिर पड़ा।

दीनदयालुने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपना करकमल मेरे सिरपर रखा और सम्पूर्ण दुःख हर लिया। मेरा मोह दूर हो गया। मैं पुलकित होकर बहुत प्रकारसे विनती करने लगा

और मैंने प्रभुसे उनकी प्रगाढ़ विशुद्ध भक्तिका वर माँगा। भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर बतलाया कि मुझे निश्छल भावसे भजनेवाला भक्त अत्यन्त प्रिय है। हे पक्षिराज ! इस प्रकार कुछ समयतक वहाँ भगवान्की लीलाओंका दर्शन कर मैं अपने आश्रममें लौट आया और मेरा तो यह निश्चित मत है कि भगवान्की कृपाके बिना जीव स्वप्नमें भी सुख नहीं प्राप्त कर सकता, इसलिये सब कुछ छोड़कर श्रीरघुवीरका भजन ही करना चाहिये।

भगवान्की अमित महिमा एवं भक्तिका प्रभाव जानकर गरुडजी अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। वे बार-बार भुशुण्डिजीके चरणोंमें अपना सिर नवाने लगे और कहने लगे—हे भुशुण्डिजी ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और भगवान्के चरणोंमें मेरी प्रीति हो गयी, किंतु एक बात मेरे मनमें खटक रही है कि आप तो सर्वज्ञ हैं, मायासे परे हैं, ज्ञान-वैराग्यके धाम हैं और श्रीरघुनाथजीके दास हैं, फिर आपने यह काक-शरीर किस कारण प्राप्त किया ? हे तात ! मुझे आप अपना दास समझकर सब बताइये। मैंने भगवान् शिवजीसे सुना है कि आपका महाप्रलयमें भी नाश नहीं होता, जब कि सब कुछ कालके अधीन है, फिर आपके आश्रममें आते ही मेरा मोह-भ्रम भाग गया, इसका क्या रहस्य है ? क्या कारण है ? यह सब आप बतानेकी कृपा करें।

यह सुनकर काकभुशुण्डिजी कहने लगे—'पक्षिराज ! आपके सुन्दर प्रश्नोंको सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मोंकी याद आ गयी। मैं उन्हें सुनाता हूँ, आप सुनें—पक्षिराज ! मेरा प्रथम जन्म पूर्वके एक कल्पके कलियुगमें हुआ। मैं अयोध्यापुरीमें शूद्रका शरीर पाकर उत्पन्न हुआ। मैं मन, वचन, कर्मसे शिवजीका सेवक था, किंतु दूसरे देवताओंकी निन्दा करनेवाला अभिमानी था। मैं धनके मदसे मतवाला बहुत ही बकवादी और उग्र बुद्धिवाला था, मेरे हृदयमें बड़ा भारी दम्भ था। यद्यपि मैं श्रीरघुनाथजीकी राजधानीमें रहता था, किंतु उस समय उनकी महिमाको नहीं समझ पाया।

सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥
धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥
(उत्तरकाण्ड ९६। ७—८)

हे पक्षिराज ! इस प्रकारसे मैं उस कलिकालमें बहुत वर्षोंतक अयोध्या रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा तो मैं अपने इष्टदेव महाकालेश्वरके निवासस्थान उज्जैनमें चला आया। मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुःखी था। शिवका उपासक था ही, उन्हींकी कृपा पाकर मैं महाकालवनमें भगवान् शंकरकी उपासना करने लगा। वहाँ महाकालेश्वरके मन्दिरमें शम्भुके परम उपासक एक साधु ब्राह्मण नित्य वेदविधिसे शिवजीकी पूजा किया करते थे। हे पक्षिराज ! उन्हें शिव-सेवाके अतिरिक्त और कोई काम ही नहीं था, वे परमार्थ तत्त्वको जाननेवाले थे, वे श्रीहरिके निन्दक नहीं थे। सभी रूपोंमें एक ही सत्ता स्वीकार करते थे—

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥

हम दोनों परस्पर एक दूसरेकी शिवपूजा देखते रहते थे। वे ब्राह्मण बड़े ही दयालु थे। उनकी मुझपर कृपा-दृष्टि हुई। वे परम संत थे। मैं उनकी सेवा तो करता था, किंतु मेरे व्यवहारमें कपट था, तथापि परम संत उन्होंने मुझपर कृपा की। वे पुत्रकी भाँति मुझे पढ़ाने लगे। मुझे संतका आधार मिल गया। मेरे इष्ट शिव थे, वे मेरे सद्गुरु भी इष्टके ध्यानमें निरत रहते थे। सबसे बड़ी बात थी मेरे गुरु हरिके निन्दक नहीं थे। इसलिये अपने इष्टको अङ्गी तथा अन्य देवोंको अङ्ग समझकर उपासना करनी चाहिये। हरि-हरमें भेद-बुद्धि पतन करानेवाली है, यह एक प्रकारका नामापराध ही है। मैं कपटी था, इसलिये मैं श्रीरामके तत्त्वको जान नहीं पाया। भगवान्को कपट प्रिय नहीं है।—

'मोहि कपट छल छिद्र न भावा'

जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥

उन परम साधु विप्रवरने कृपाकर मुझे शिव-मन्त्र प्रदान किया। हे पक्षिराज ! मेरी शिक्षाभूमि, दीक्षाभूमि उज्जैन रही है। गुरुजीने मुझे शाम्भवी दीक्षा दी। शम्भु-दीक्षा दी, सद्गुरु शिक्षा देता है तो अपना शिवस्वरूप शिष्यमें प्रवेश करा देता है। 'ॐ नमः शिवाय' इस शम्भु-मन्त्रका उपदेश दिया। महाकालके मन्दिरमें मन्त्र प्रदान किया और विविध उपदेश दिया—

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा॥

और मन्त्र जपनेकी सारी न्यास-ध्यान आदि विधि भी बतला दी। नाम बुद्धिसे भी जपनेका उपदेश दिया। नाम तो भाय-कुभाय जैसे भी जप लें, किंतु मन्त्र-जपके लिये तो शास्त्र-विधिका ही आश्रय लेना चाहिये। मुझे गुरुजीने यह भी बतला दिया कि जिस मन्त्रका जप कर रहा है, उसके इष्टदेवकी कभी निन्दा न करना। मैंने गुरुके उपदेशसे महाकाल-मन्दिरमें मन्त्र जपना प्रारम्भ किया।

किंतु पक्षिराज ! मैं नीच जातिका था, मलिन बुद्धिवाला था, इससे मेरे हृदयका दम्भ और अधिक बढ़ गया। मोहवश मैं हरिभक्तों तथा ब्राह्मणोंको देखकर जल उठता, विष्णु-रूपसे द्रोह करता। मेरे गुरुजी मेरा आचरण देखकर बड़े दुःखित थे, वे मुझे बार-बार समझाते, किंतु मैं कुछ नहीं समझता, उलटे क्रोध करने लगता। मुझे लगने लगा—मेरे-जैसा शिवसेवक और कोई नहीं। मैं गुरुसे भी बढ़ गया, मेरा अहंकार बढ़ गया। मुझमें मोह भरा था, किंतु मेरे गुरु धर्मनीतिसे भरे थे। मुझे चाहिये था कि मैं अपने आचरणसे गुरुको प्रसन्न करता, किंतु कुशिष्यकी भाँति मैं अपने आचरणसे गुरुकी पीड़ाका कारण बना रहता। गुरुने बड़े प्रेमसे मुझे अपने पास बुलाया, प्यार दिया, बहुत प्रकारकी नीति बतलायी। हरि-हर-तत्त्वको समझाया, बताया कि शिवसेवा साधन है और राम-भक्ति साध्य है। इसलिये वत्स ! हरिसे द्रोह न करो। शिवसेवासे जो मिलता है, उसीसे तुम द्रोह करते हो। शिवसेवाका फल है श्रीरामके चरणोंमें अविरल प्रेम, अविरल निष्ठा—

सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥

× × ×

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।

तुम्हारे इष्ट शिव भगवान् श्रीरामसे अनन्य प्रेम करते हैं, उनसे तुम द्रोह करते हो। तात ! रामको शिव और विधाता भी भजते हैं, सामान्य-जनकी बात छोड़िये। अपने इष्टदेवके स्वामीकी आलोचना करते हो और सुख चाहते हो—

जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥

हे पक्षिराज ! गुरुजीने साम-दाम-दण्ड-भेद आदि सभी नीतियोंसे मुझे समझाया और शिवको हरिका सेवक बताया—यह सुनकर मेरा हृदय जल उठा। मैं नीच जातिका था, विद्या पाकर मैं ऐसा हो गया जैसे दूध पिलानेसे साँप हो जाता है—

अधम जाति मैं बिद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ॥

ऐसा अभिमानी, दुर्भाग्यवाला मैं अब दिन-रात अपने गुरुसे भी द्रोह करने लगा, किंतु गुरुजी अत्यन्त दयालु थे, उनको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं आता। वे मुझे ज्ञानकी शिक्षा देते रहते। नीचका यह स्वभाव ही होता है कि वह जिससे बड़ाई पाता है, उसीपर घात लगाता है। गुरुजी मुझे हितकर बात कहते थे, किंतु मुझे वह बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी।

एक दिन मैं महाकालके मन्दिरमें शिवनाम जप रहा था। उसी समय गुरुजी आये, किंतु मैंने अभिमानवश उन्हें प्रणाम नहीं किया और मैं अपने स्थानपर बैठा ही रहा। गुरुजी दयालु थे, मेरा दोष देखकर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। उनके हृदयमें लेशमात्र भी क्रोध नहीं हुआ, पर गुरुका अपमान बहुत बड़ा पाप है, अतः भगवान् शंकर इसे सह नहीं सके। मन्दिरमें आकाशवाणी हुई—'रे मूर्ख ! अभिमानी ! तुम्हारे गुरु अत्यन्त कृपालु हैं, ज्ञानी हैं, जिस कारण उन्हें क्रोध नहीं हुआ, तो भी मैं तुम्हें शाप दूँगा, क्योंकि तुमने नीतिका विरोध किया है, गुरुका अपमान किया है, यदि तुम्हें दण्डित नहीं करूँगा तो वेदमार्ग भ्रष्ट हो जायगा। इसलिये जाओ तुम सर्प हो जाओ।' शिवजीका शाप सुनकर गुरुजी बड़े दुःखी हुए, उन्होंने मेरे उद्धारके लिये अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। पुनः आकाशवाणी हुई—'वर माँगो।' तब मेरे गुरुजीने कहा—'हे नाथ ! इसे शापसे शीघ्र ही मुक्ति प्रदान करें।' 'ऐसा ही होगा' पुनः आकाशवाणी हुई। साथ ही शिवकृपा एवं गुरुके अनुग्रहसे मुझे रामभक्ति एवं अबाधगतिका वर भी प्राप्त हुआ। हे पक्षिराज ! कालकी प्रेरणा पाकर मैं विन्ध्याचलमें जाकर सर्प हुआ। कुछ समय बाद मैंने वह शरीर त्याग दिया। इसी प्रकार मैंने बहुत शरीर धारण किये और छोड़े, किंतु शिवकृपासे मेरा ज्ञान बना रहा। अन्तमें मैंने ब्राह्मणका जन्म पाया। तब मैं रघुनाथजीकी भक्तिमें रत रहता। मैं भजन करने वनमें चला गया। अनेक मुनीश्वरोंके आश्रममें जाकर उनकी सेवा करता। शिवजीकी कृपासे मेरी अबाधगति थी। मेरी सभी वासनाएँ छूट गयीं। मेरे हृदयमें भगवान्के सगुण-साकार

स्वरूपकी मूर्ति बस गयी, मुझे निर्गुण-तत्त्वकी चर्चा सुहाती नहीं थी। एक दिन घूमते-घूमते मैं सुमेरु पर्वतके शिखरपर जा पहुँचा। वहाँ महामुनि लोमश मुझे निर्गुण तत्त्वज्ञानकी बात बतलाने लगे, किंतु मेरे सगुणविषयक दुराग्रहपर वे कुछ कुपित हो उठे और उन्होंने मुझे पक्षी-योनि (कौआ-रूप) में जन्म लेनेका शाप दे डाला। मैंने मुनिका शाप आनन्दसे ग्रहण किया। मैं कौआ हो गया। मुनि भी मेरी निर्विकारताकी स्थिति देखकर प्रसन्न हो गये, तब उन्होंने मुझे राममन्त्रकी दीक्षा दी। श्रीरामचरितकी पावन कथा सुनायी और राम-भक्तिका आशीर्वाद दिया। हे गरुडजी ! मैं प्रसन्न मनसे उन्हें प्रणामकर इस आश्रममें चला आया। शिवसेवासे मुझे रामभक्ति प्राप्त हो गयी। मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प व्यतीत हो गये हैं, मुझे पक्षी-योनिमें रामभक्ति मिली और मेरे सभी संदेह दूर हो गये। इसीलिये मुझे यह शरीर अत्यन्त प्रिय है—

तातें यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह॥

भुशुण्डिजीके ऐसे प्रिय वचनोंको सुनकर गरुडजी हर्षित हो गये। भगवान्‌की इस पावन कथाको सुनकर उनके हृदयका शोक-मोह-संदेह, भ्रम सब कुछ जाता रहा और उनके हृदयमें पूर्ण शान्ति छा गयी। इस प्रकार हरिभजन सब प्रकारकी मायाओंको दूर कर देता है और शिवस्वरूपकी सेवा करते-करते साधकको भगवान् रघुनाथके चरणोंकी अखण्ड प्रेम-भक्ति प्राप्त हो जाती है और उसका जीवन कृतार्थ हो जाता है।

महामंत्र जोइ जपत महेसू

(मानसमर्मज्ञ पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी)

विश्व-विश्रुत श्रीरामचरितमानस महाग्रन्थमें आचार्यप्रवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने स्पष्ट वर्णन किया है कि महामन्त्र 'श्रीराम'-नाम ही है। स्वयं श्रीवैष्णवाचार्य भगवान् शिवका ही कथन है कि जगत्‌में सात करोड़ महामन्त्रोंकी संख्या है, पर सभी मन्त्रोंमें परतम दो अक्षरोंका 'राम'-नाम ही है। यथा—

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः।
एक एव परो मन्त्रः राम इत्यक्षरद्वयम्॥

(मारसनतन्त्र)

अतः श्रीवैष्णवकुलभूषण शशाङ्कशेखर भगवान् श्रीशंकर महामन्त्र 'श्रीराम'-नामका अहर्निश जप करते रहते हैं। स्वयं भगवती उमाने भी भगवान् शंकरसे श्रीरामतत्त्व-विषयक जिज्ञासा-कालमें कहा है—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

(रा० च० मा० १।१०७।७)

अर्थात् कामदेवको नष्ट करनेवाले महामहेश्वर आप भी अहर्निश श्रद्धा-भक्तिपूर्वक राम-नामका ही जप करते रहते हैं।

अध्यात्मरामायणमें तो भगवान् शिवका ही कथन है कि मैं पार्वतीसहित श्रीराम-नाम जपता हूँ। यथा—

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥

(६।१५।६२)

भगवान् शिव अयोध्यानाथ श्रीरामसे कहते हैं— 'प्रभो ! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मैं पार्वतीसहित अहर्निश काशीमें निवास करता हूँ और वहाँ मरणासन्न प्राणियोंको मुक्ति दिलानेके लिये उनके कानमें आपके तारकमन्त्र—राम-नामका उपदेश करता हूँ।

भगवान् शिवद्वारा काशीमें श्रीरामनाम-गान-हेतु प्रचार-प्रसार करना स्कन्दपुराणमें भी वर्णित है। यथा—

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्।
जल्प्यं जल्प्यं प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलो कोऽपि काशीनिवासी॥

अर्थात् 'नित्य काशीमें निवास करनेवाला जटाधारी व्यक्ति (भगवान् शिव) काशीकी गली-गलीमें टहलनेके समय प्राणियोंके कानोंमें यह कहते हुए देखा जाता है कि तुम सदा तारक-ब्रह्मका ध्यान करो एवं मैं जो कानमें सुन्दर राम-

नामका उपदेश दे रहा हूँ उसका प्रेमसे पान करो।'

इस प्रकार रामनाम-जपद्वारा काशीश्वर भगवान् शिव स्वयं पवित्र होकर नित्य अनन्त जीवोंको भी तारते रहते हैं। यथा—

रामनाम्ना शिवः काश्यां भूत्वा पूतः शिवः स्वयम्।
स निस्तारयते जीवराशीन् काशीश्वरः सदा॥

(शिवसहिता २।१४)

मानसमें भी वर्णन आया है कि भगवान् शिव महामन्त्र-श्रीराम-नामका जप किया करते हैं और काशीमें मरनेवालोंके कानमें श्रीराम-नामका उपदेश करके उन्हें मुक्त कर देते हैं। यथा—

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

(रा० च० मा० १।११८।१-२)

यह यथार्थ सत्य है—श्रीरामभक्तिके विशिष्टतम आचार्य भगवान् शिवके समान श्रीराम-नामकी महिमा कोई नहीं जानता। बरवै रामायण (७।५३) में गोस्वामीजीने लिखा है—

महिमा राम नाम कै जान महेस। देत परम पद कासी करि उपदेस॥

अतः उनके मुखारविन्दमें सुन्दर श्रीराम-नाम सर्वदा सुशोभित रहता है। वे अहर्निश श्रीराम-नामका जप करते रहते हैं—

'श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।'

(कि० श्लोक २)

विनय-पत्रिका (१०८) में तो आचार्यवरने आज्ञा देते हुए कहा है—शीघ्रता कीजिये, देर मत कीजिये, श्रीरामनामका उपदेश ग्रहण कीजिये और जो श्रीशिवजी जपते हैं, वह बीजमन्त्र जपिये—

बेगि, बिलम्ब न कीजिये, लीजै उपदेस।
महामंत्र(बीजमंत्र)जपिये सोई, जो जपत महेस॥

तारकमन्त्र श्रीराम नाम ही है, ऐसा आनन्दरामायणमें भी आया है। स्वयं भगवान् शिवका कथन है—समग्र श्रीराम-चरित्रपर शतकोटि श्लोकोंको तीनों लोकमें वितरणके पश्चात् जो दो अक्षरोंवाला 'राम'-नाम बचा, वह मैंने श्रीभगवान्से अपने लिये माँग लिया। उसी श्रीराम-नाम—तारक मन्त्रका काशीमें मैं जीवोंके शरीर त्यागते समय उपदेश करता हूँ, तात्पर्य है, उनको भवबन्धनसे मुक्त करता हूँ। यथा—

द्व्यक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरिः।
उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ॥
रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति॥

(यात्राका० २।१५-१६)

गोस्वामीजीका भी कथन है—

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि समगति अबिनासी॥

भगवान् महाकालने श्रीराम-नामका आश्रय लेकर कालकूट नामक महाविषका पान कर लिया। उनके लिये वह प्राणहारी विष अमृत हो गया। यथा—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

कथा आती है—जब भगवान् शिव विषपान करने लगे तो शिवगणोंने हाहाकार करना प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण शिवभक्त दुःखी हो गये। तब भगवान् भूतभावनने आश्वासन देते हुए कहा—'भगवान् श्रीरामका नाम सम्पूर्ण मन्त्रोंका बीज-मूल है, वह मेरा जीवन है, मेरे सर्वाङ्गमें पूर्णतः प्रविष्ट हो चुका है, अतः अब हालाहल विष हो, प्रलयानल-ज्वाला हो या मृत्युमुख ही क्यों न हो मुझे इनका किंचित् भय नहीं। यथा—

श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजं
संजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः॥

अथर्ववेदीय श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्में काशीश्वर श्रीविश्वनाथद्वारा परात्पर प्रभु श्रीरामके मन्त्र-जप करने एवं वरदान प्राप्त करनेका उल्लेख प्राप्त होता है—वैष्णव-कुलभूषण भगवान् शिवने काशीपुरीमें एक सहस्र मन्वन्तरतक जप-होम-पूजनादिके द्वारा सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामकी आराधना करते हुए श्रीराममन्त्र-जपका अनुष्ठान किया। अनुष्ठान सम्पन्न होनेपर प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामने भगवान् शिवको दर्शन दिया और कहा—'परमेश्वर! आपको जो अभीष्ट हो वह मुझसे माँग लें।' यह सुनकर विश्वेश्वर श्रीशिवने कहा—'इस मणिकर्णिका तीर्थमें, मेरे काशी-क्षेत्रमें तथा श्रीगङ्गाजीमें या गङ्गातटपर जो कोई भी प्राणी अपना प्राण त्याग करे तो उसे आप तत्काल मुक्ति प्रदान

कर दे।' मुझे यही वर अभीष्ट है। तब परात्पर प्रभु श्रीरामने भगवान् शिवको वर देते हुए कहा—'देवेश्वर! आपके पावन क्षेत्रमें प्राण त्याग करनेवाले कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तु भी तत्काल मुक्त होकर मेरे धाममें जायँगे। अब मैं इस अविमुक्त क्षेत्रमें समस्त लोगोंको मुक्ति दिलाने-हेतु पाषाणकी प्रतिमा आदि (अर्चाविग्रह-स्वरूपों) में सर्वदा निवास करूँगा। मेरे (षडक्षर) तारकमन्त्रद्वारा जो भक्तिसहित मेरी अर्चना-वन्दनादि करेगा, मैं उसे तत्काल समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा।' श्रीभगवान्ने वहाँ यह भी कहा कि मेरे द्वारा प्रदत्त मन्त्रराजको आपके या ब्रह्माजीके मुखसे जो षडक्षर मन्त्रराजकी दीक्षा लेते हैं, वे जीते-जी मन्त्रसिद्ध हो जाते हैं और मरणोपरान्त जन्म-मृत्युके बन्धनसे सर्वथा मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं। आप यहाँ जिस किसी भी मरणासन्न प्राणीके दायें कानमें मेरे मन्त्रका उपदेश करेंगे, वह निश्चय ही मुक्त हो जायगा। यथा—

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥

(अथर्ववेदीय श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् ८)

तभीसे भगवान् शिव अपने प्राणधन भगवान् श्रीरामका निरन्तर नाम-स्मरण करते रहते हैं।

श्रीरामस्तवराज (५) में तो अत्यन्त स्पष्ट वर्णन है कि श्रीरामनाम 'तारक' तथा ब्रह्मसंज्ञक है और ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है यथा—

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥

इसीसे गोस्वामीजीने रामचरितमानसमें लिखा है—

'महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥'

(रा॰ च॰ मा॰ १।१९।३)

जपहु जाइ संकर सत नामा

(श्रीशिवनाथजी दुबे, एम्॰ काम॰, एम्॰ ए॰, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

श्रीरामचरितमानसमें यह कथा आयी है कि देवर्षि नारदजीको कामपर विजय करनेसे गर्व हो गया था और वे शंकरजीको इसलिये हेय समझने लगे कि उन्होंने कामदेवको क्रोधसे जला दिया, इसलिये वे क्रोधी तो हैं ही, किंतु मैं काम और क्रोध दोनोंसे ऊपर उठा हुआ हूँ। पर मूल बात यह थी कि जहाँपर नारदजीने तपस्या की थी, शंकरजीने ही उस तपःस्थलीको कामप्रभावसे शून्य होनेका वर दे दिया था और नारदजीने जब शंकरजीसे यह बात कह डाली, तब भगवान् शंकरने उन्हें इस बातको विष्णुभगवान्से कहनेमें रोका। इसपर नारदजीने सोचा ये मेरे महत्त्वको नष्ट करना चाहते हैं। अतः यह बात उन्होंने भगवान् विष्णुसे भी कह डाली। भगवान् विष्णुने उनके कल्याणके लिये अपनी मायासे श्रीमतीपुरी नामकी एक नगरी खड़ी कर दी, जहाँ विश्वमोहिनीके आकर्षणमें नारदजी भी स्वयंवरमें पधारे। पर साक्षात् भगवान् विष्णुने वहाँ जाकर विश्वमोहिनीसे विवाह कर लिया। यह सब देखकर नारदजीको बड़ा क्रोध हुआ। कामके वशमें तो वे पहले ही हो चुके थे। क्रुद्ध होकर उन्होंने भगवान् विष्णुको अनेक अपशब्द कहे और स्त्री-वियोगमें विक्षिप्त-सा होनेका भी शाप दे दिया। तब भगवान्ने अपनी माया दूर कर दी और विश्वमोहिनीके साथ लक्ष्मी भी लुप्त हो गयीं तथा नारदजीकी बुद्धि भी शुद्ध और शान्त हो गयी। उन्हें सारी बीती बातें ध्यानमें आ गयीं। वे अत्यन्त सभीत होकर भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े और प्रार्थना करने लगे कि भगवन्! मेरा शाप मिथ्या हो जाय और मेरे पापोंकी सीमा नहीं रही, क्योंकि मैंने आपको अनेक दुर्वचन कहे—

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहि किमि मेरे॥

(मानस १।१३७।२-३)

इसपर भगवान् विष्णुने कहा कि शिवजी मेरे सर्वाधिक प्रिय हैं, वे जिसपर कृपा नहीं करते उसे मेरी भक्ति प्राप्त नहीं होती, अतः आप शिवशतनामका जप कीजिये, इससे आपके सब दोष-पाप मिट जायँगे और पूर्ण ज्ञान-वैराग्य तथा भक्तिकी राशि सदाके लिये आपके हृदयमें स्थित हो जायगी—

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

(मानस १।१३७।५—७)

यह प्रसंग मानस तथा शिवपुराणके रुद्रसंहिताके सृष्टि-खण्डमें प्रायः यथावत् आया है। इसपर प्रायः लोग शङ्का करते हैं कि वह शिवशतनाम कौन-सा है, जिसका नारदजीने जप किया, जिससे उन्हें परम कल्याणमयी शान्तिकी प्राप्ति हुई? यहाँ पाठकोंके लाभार्थ वह शिवशतनामस्तोत्र विनियोग आदिके साथ मूलरूपमें दिया जा रहा है, न्यास-ध्यानपूर्वक इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिये। इस स्तोत्रका उपदेश साक्षात् नारायणने पार्वतीजीको भी दिया था, जिससे उन्हें भगवान् शंकर पतिरूपमें प्राप्त हुए और वे उनकी साक्षात् अर्धाङ्गिनी बन गयीं।

पार्वत्युवाच

शरीरार्धमहं शम्भोर्येन प्राप्स्यामि केशव।
तदिदानीं समाचक्ष्व स्तोत्रं शीघ्रफलप्रदम्॥

नारायण उवाच

अस्ति गुह्यतमं गौरि नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
शम्भोरहं प्रवक्ष्यामि पठतां शीघ्रकामदम्॥

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीशिवाष्टोत्तरशतदिव्यनामामृतस्तोत्रमालामन्त्रस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीसदाशिवः परमात्मा देवता श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।'

शिवसंकल्प इति हृदयम्। पुरुषसूक्तमिति शिरः। उत्तरनारायणेति शिखा॥ अप्रतिरथेति कवचम्। ॐ विभ्राडिति नेत्रम्। शतरुद्रियमित्यस्त्रम्। आत्मानं रुद्ररूपं ध्यायेत्। (इन सूक्तोंका पाठ करते हुए न्यास करे।)

ध्यान

धवलवपुषमिन्दोर्मण्डले संनिविष्टं
भुजगवलयहारं भस्मदिग्धाङ्गमीशम्।
हरिणपरशुपाणिं चारुचन्द्रार्धमौलिं
हृदयकमलमध्ये संततं चिन्तयामि॥

'चन्द्रमण्डलमें श्रीशिवजी विराजमान हैं, उनका गौर शरीर है, सर्पका ही कंगन तथा सर्पका ही हार पहने हुए हैं तथा शरीरमें भस्म लगाये हुए हैं, उनके हाथोंमें मृगी-मुद्रा एवं परशु है और अर्धचन्द्र सिरपर विराजमान है। मैं उन भगवान् शंकरका हृदयमें अहर्निश चिन्तन करता हूँ।'

स्तोत्र

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः॥
शंकरः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः॥
भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः।
उग्रः कपालिः कामारिरन्धकासुरसूदनः॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः।
वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः॥
कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः।
मृत्युंजयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः॥
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः।
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः।
शाश्वतः खण्डपरशुरजपाशविमोचकः॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययः प्रभुः।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः॥
एतदष्टोत्तरशतनाम्नामाम्नायेन सम्मितम्।
विष्णुना कथितं पूर्वं पार्वत्या इष्टसिद्धये॥
शंकरस्य प्रिया गौरी जपित्वा त्रैकालमन्वहम्।
नोदिता पद्मनाभेन वर्षमेकं प्रयत्नतः॥
अवाप सा शरीरार्धं प्रसादाच्छूलधारिणः।
यस्त्रिसंध्यं पठेच्छम्भोर्नाम्नामष्टोत्तरं शतम्॥
शतरुद्रित्रिरावृत्त्या यत्फलं प्राप्यते नरैः।
तत्फलं प्राप्नुयादेतदेकवृत्त्या जपन्नरः॥

तपोमूर्ति जगज्जननी भगवती पार्वती

विल्वपत्रैः प्रशस्तैर्वा पुष्पैश्च तुलसीदलैः।
तिलाक्षतैर्यजेद् यस्तु जीवन्मुक्तो न संशयः॥
नाम्नामेषां पशुपतेरेकमेवापवर्गदम्।
अन्येषां चावशिष्टानां फलं वक्तुं न शक्यते॥

इति श्रीशिवरहस्ये गौरीनारायणसंवादे
शिवाष्टोत्तरशतदिव्यनामामृतस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

इस प्रकार १०८ नाम, जो वेदके तुल्य हैं, श्रीविष्णुने हले इष्ट-सिद्धि-हेतु माता पार्वतीजीको बतलाये थे। ांकरप्रिया भगवती गौरीने भगवान् पद्मनाभकी प्रेरणासे एक वर्षतक प्रतिदिन त्रिकाल इसका जप किया। त्रिशूलधारीकी कृपासे उन्होंने उनका शरीरार्ध प्राप्त किया। शतरुद्रीके तीन बार पाठ करनेसे जो फल मनुष्यको होता है, वह फल उसे इसके एक बारके पाठ करनेसे प्राप्त हो जाता है। बेलपत्र अथवा फूल और तुलसीदलसे या तिल तथा अक्षतसे जो महादेवजीका यजन करते हैं, वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। भगवान् शंकरके इन शतनामोंमेंसे केवल एक नाम ही मोक्ष देनेवाला है तो शतनामका महत्त्व (फल) वर्णनातीत है।

पार्वतीके तपकी सफलता
[हरितालिका-व्रत]

हिमाचल-कन्या भगवती पार्वतीने भगवान् शिवको तिरूपमें प्राप्त करनेके लिये घोर तप किया। जिस स्थानमें ार्वती तप करती थीं, वह बड़ा ही भयानक और सिंह, व्याघ्र, र्प आदि हिंसक प्राणियोंसे पूर्ण था। वहाँ दिन-रात वर्षाकी र्षा-सी होती रहती थी। पार्वतीने वहाँ बारह वर्षतक नीचेकी ओर मुख करके केवल धुएँका सेवन किया। चौंसठ वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर रहीं। वैशाखकी गर्मीमें पञ्चाग्निका ताप किया और श्रावणकी अँधेरी रातें वर्षामें भीगते बितायीं। पुत्रीकी इस प्रकारकी कठोर तपस्या देखकर पिता हिमाचलको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने मुनि नारदजीकी सम्मतिसे भगवान् विष्णुके साथ उसका विवाह करना स्थिर किया। यह समाचार जब अनन्य-उपासिका पार्वतीने सुना तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे अपनी विश्वासपात्र सखियोंकी सलाहसे उनके साथ दूसरे घोर वनमें चली गयीं और वहाँ अन्न-जलका सर्वथा त्यागकर उन्होंने शिवजीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर उनका पूजन किया और रात्रिको जप-कीर्तन करती हुई जागती रहीं, उस दिन भाद्र-शुक्लपक्षकी तृतीया तिथि थी और हस्त-नक्षत्र था। भगवान् शिवजी पार्वतीकी सची अनन्यभक्तिसे, पूर्ण दृढ़ 'व्रत' से परमप्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हो गये और उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण करना स्वीकार किया। शिवजीके साथ पार्वतीका विवाह हो गया। पार्वतीका तप आज सफल हुआ।

एक दिन पार्वतीने शंकरजीसे पूछा कि मैंने ऐसा कौन-सा कार्य किया था, जिससे आपको स्वामी-रूपमें प्राप्त करनेका मुझे सौभाग्य मिला। शिवजीने पूर्वोक्त कथा सुनाकर कहा कि मैं इस तृतीया-व्रतसे बहुत ही प्रसन्न होता हूँ। जैसे तारागणमें चन्द्रमा, ग्रहोंमें सूर्य, वर्णोंमें ब्राह्मण, नदियोंमें गङ्गा, पुराणोंमें भारत, वेदोंमें सामवेद और इन्द्रियोंमें मन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतोंमें यह व्रत श्रेष्ठ है। इस दिन तुम्हारा अनुकरण करके प्रत्येक स्त्रीको निर्जल निराहार रहकर तुम्हारे सहित मेरी (शिव-पार्वतीकी) मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये, केलेके स्तम्भ लगाने चाहिये। वंदनवार बाँधना तथा सुन्दर मण्डप बनाना चाहिये और उसपर चँदवा तानकर रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे उसे सजाना चाहिये। चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि नाना उपचारोंसे रातको चार पहरकी चार पूजा तथा भजन, स्तवन, गायन आदि करना चाहिये। गीत-वाद्य-सहित मेरा गुण गाते हुए रातभर जागरण करना चाहिये। व्रत-कथा श्रवण करनी चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल तीन बाँसकी टोकरियोंमें पका हुआ अन्न वस्त्रसहित ब्राह्मणको दान देकर पारण करना चाहिये। व्रतके पहले दिन भी संयमसे रहना चाहिये। इस प्रकार भक्तिपूर्वक व्रत करनेवाली स्त्री यहाँ विविध भोगोंको भोगकर अन्तमें सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होती है। भाद्रशुक्ल तीजको हस्त-नक्षत्र न हो तो भी व्रत करना चाहिये। जो स्त्री उस दिन भोजन करती है वह सात जन्मोंतक वैधव्य और पुत्रशोकको प्राप्त होती है तथा अन्तमें उसे नरकमें जाना पड़ता है। इसलिये प्रत्येक स्त्रीको पार्वतीके दृढ़ व्रतकी स्मृति दिलानेवाले इस व्रतको अवश्य करना चाहिये।

ज्योतिष शास्त्र और शिवोपासना

(डॉ० श्रीगंगाधर व्यंकटेशजी शास्त्री)

ज्योतिष शास्त्रका क्षेत्र बड़ा व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण है और उसकी शाखाएँ भी अनन्त हैं तथा उपासनासे उसका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य अपने प्राक्तन दुष्कर्मोंसे ही कष्ट भोगता है। उसकी निवृत्तिके लिये उपासना आदि सत्कर्म ही उपाय हैं, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको अपकर्म न कर प्रत्येक क्षण देवोपासनामें ही निरत रहना चाहिये। ज्योतिष शास्त्रको कालविधायक शास्त्र या काल (समय) ज्ञान-निर्णायक शास्त्र भी कहा जाता है। यद्यपि काल-ज्ञानके अन्य भी उपाय हैं, किंतु प्रत्यक्ष शास्त्र होनेसे ज्योतिष अन्यतम शास्त्र है। ज्योतिषमें भी स्वप्न, शकुन, प्रश्न, दशा-महादशा आदिके माध्यमसे समयका परिज्ञान किया जाता है। सूर्य-चन्द्रादि ग्रहों तथा नक्षत्रादिकी सम्यक् गणना एवं योगसे भूत-भविष्य तथा वर्तमान—तीनों समयोंकी बातोंकी जानकारी होती है। ज्योतिष शास्त्रमें जातकको जन्मकुण्डलीके अनुसार मिलनेवाले सुख-दुःखोंकी फलप्राप्तिमें काल-निर्णयका बड़ा महत्त्व है, जिन्हें ग्रहोंकी दशा, अन्तर्दशाओं तथा गोचर आदिके माध्यमसे जाना जाता है। अन्तर्दशादि-भेदोंसे युक्त सभी दशाएँ प्राणियोंके शुभाशुभ-मिश्रफलानुभवकी प्राप्तिको दिग्दर्शित करती हैं। इसी कारण ज्योतिष शास्त्रमें महादशा तथा अन्तर्दशाका महत्त्व है।

'बृहत्पाराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थमें प्रायः चालीस प्रकारकी दशाओंकी चर्चा है, किंतु व्यवहारमें विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी तथा योगिनी दशाका विशेष चलन है। ज्योतिर्विद् स्थान अथवा विश्वासके भेदसे इन दशाओंको स्वीकार करते हैं। फिर भी कलियुगमें विंशोत्तरी दशाकी प्रधानता स्वीकार की गयी है। इन महादशाओंमें अन्तर्दशाएँ, प्रत्यन्तर्दशाएँ तथा सूक्ष्म, प्राण आदि अनेक दशाएँ अन्तर्भुक्त होती हैं। जिनका फलित ग्रन्थोंमें बहुत विस्तारसे विचार हुआ है। यहाँ केवल इतना ज्ञात करना है कि कौन-सी दशा-अन्तर्दशामें अनिष्टकारक योग होनेपर भगवान् शिवकी उपासना करनी चाहिये। उदाहरण मात्र कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

(१) सूर्यकी महादशामें सूर्यकी अनिष्टकारक अन्तर्दशा हो तो उस दोषकी निवृत्तिके लिये मृत्युंजय मन्त्रका जप करना चाहिये। इससे समस्त दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है और भगवान् शिव एवं ग्रहराज सूर्यदेवका अनुग्रह प्राप्त होता है—

तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युंजयजपं चरेत्॥
सूर्यप्रीतिकरीं शान्तिं कुर्यादारोग्यमादिशेत्।

—इसी प्रकार सूर्यकी महादशामें शनि एवं केतुकी अन्तर्दशा होनेपर मृत्युंजय मन्त्रका अनुष्ठान करनेसे अपमृत्युका निवारण होता है—'मृत्युंजयजपं चरेत्।'

(२) चन्द्रमाकी महादशामें गुरुकी अन्तर्दशा होनेपर यदि अनिष्टकारक योग हो तो अपमृत्यु होती है, इसलिये इस दोषकी निवृत्तिके लिये 'शिवसहस्रनाम' का जप करना चाहिये—'तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्।' शनिकी अन्तर्दशा होनेपर शरीरमें कष्ट होता है, अतः मृत्युंजय मन्त्रका जप करना चाहिये। चन्द्रमामें केतुकी अन्तर्दशामें भय होता है तथा शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये मृत्युंजय मन्त्रका जप करना चाहिये—'मृत्युंजयं प्रकुर्वीत सर्वसम्पत्प्रदायकम्।' इसी प्रकार चन्द्रमें शुक्रकी अन्तर्दशामें तथा सूर्यकी अन्तर्दशामें क्रमशः रुद्र-जाप तथा शिवपूजन करना चाहिये— 'तद्दोषविनिवृत्त्यर्थं रुद्रजापं च कारयेत्, तद्दोषपरिहारार्थं शिवपूजां च कारयेत्।'

(३) मंगलकी महादशामें, मंगलकी अन्तर्दशामें रुद्र-जप तथा वृषभदान करना चाहिये। राहुकी अन्तर्दशा होनेपर नागका दान, ब्राह्मण-भोजन तथा मृत्युंजय मन्त्रके जप करानेसे आयु एवं आरोग्यकी प्राप्ति होती है—

नागदानं प्रकुर्वीत देवब्राह्मणभोजनम्।
मृत्युंजयजपं कुर्यादायुरारोग्यमादिशेत्॥

मंगलमें बृहस्पतिकी खराब अन्तर्दशा होनेपर शिवसहस्रनामावलीका जप करना चाहिये—'तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्।' इसी प्रकार शनिकी दोषयुक्त अन्तर्दशामें मृत्युंजय मन्त्रके जपका विधान है।

(४) राहुकी महादशामें बृहस्पतिकी अन्तर्दशा दोषकारक होनेपर अपमृत्युकी सम्भावना रहती है, इसलिये स्वर्णप्रतिमाका दान तथा शिवपूजन करना चाहिये—'स्वर्णस्य प्रतिमादानं

शिवपूजां च कारयेत्।'

(५) बृहस्पतिकी महादशामें अनिष्टकारक बृहस्पतिके योग होनेपर शिवसहस्रनामका जप, रुद्र-जप तथा गोदान करनेसे सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है—'तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्। रुद्रजाप्यं च गोदानं कुर्यादिष्टं समाप्नुयात्'॥ इसी प्रकार राहुकी अन्तर्दशा होनेपर मृत्युंजयमन्त्रके जपका विधान है।

(६) शनिकी महादशामें शनि तथा राहुकी खराब अन्तर्दशा होनेपर मृत्युंजय-मन्त्रका जप कराना चाहिये। इसी प्रकार बृहस्पतिकी अनिष्टकारक अन्तर्दशा होनेपर शिवसहस्रनामका जप तथा स्वर्ण-दान करना चाहिये। इससे आरोग्य प्राप्त होता है और सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं—

तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्।
स्वर्णदानं प्रकुर्वीत ह्यारोग्यं भवति ध्रुवम्॥

(७) बुधकी महादशामें मंगल, बृहस्पति एवं शनिकी अन्तर्दशा यदि ठीक न हो तो वृषभ-दान और मृत्युंजय-मन्त्र तथा शिवसहस्रनामके जप करनेसे अपमृत्युका निवारण होता है तथा सर्वसौख्य प्राप्त होता है—

अनड्वाहं प्रकुर्वीत मृत्युंजयजपं चरेत्।
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्॥

(८) केतुकी महादशा सात वर्षतक रहती है। इस सात वर्षमें निश्चित क्रमसे सभी ग्रह अपना समय अन्तर्भुक्त करते हैं। केतुमें केतु तथा बृहस्पति ग्रहकी दोषकर अन्तर्दशा रहनेपर स्वास्थ्य-हानि तथा आत्मबन्धुसे वियोग और अपमृत्यु होती है, ऐसी स्थितिमें मृत्युंजय-जप तथा शिवसहस्रनामका पाठ करनेसे सभी दुर्योग दूर हो जाते हैं।

तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्।
महामृत्युंजयं जाप्यं सर्वोपद्रवनाशनम्॥

(९) शुक्र ग्रहकी महादशामें दोषयुक्त राहु, बृहस्पति तथा केतुकी अन्तर्दशामें मृत्युंजय-मन्त्रके जप करनेसे अपमृत्यु दूर होती है और सौख्य प्राप्त होता है तथा भगवान् शंकरकी प्रसन्नता प्राप्त होती है—

तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युंजयजपं चरेत्।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अनिष्टकारक दुर्योगोंमें भगवान् शंकरकी सहस्रनामावलीके पाठ, श्रीमहामृत्युंजय-मन्त्रके जप, रुद्राष्टाध्यायीका पाठ, शिवलिङ्गार्चन, अभिषेक, स्तोत्र-पाठ अथवा अन्य जिस-किसी भी साधनसे आशुतोषकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेनेपर ग्रहजन्य सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं, अपमृत्यु भाग जाती है और सभी दिव्य सुखभोग प्राप्त हो जाते हैं और सबसे बड़ी बात भगवान्के श्रीचरणोंमें अखण्ड प्रीति भी प्राप्त हो जाती है। मारकेश-ग्रहोंकी दशा-अन्तर्दशामें तो प्रायः महामृत्युंजय-मन्त्रके जपका विधान निर्दिष्ट है, क्योंकि महादेव होनेसे भगवान् सदाशिव कालके भी महाकाल-महानियन्ता हैं। महर्षि मार्कण्डेयजीने भी अत्यल्प आयुका योग जानकर भगवान् शिवकी शरण ग्रहण की थी और उनकी 'चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः'की अटूट निष्ठा थी। भगवान्के शरणापन्न होनेपर तो वे सदा रक्षा-सुरक्षा करते ही हैं। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्रके आश्रयसे कालका सम्यक् ज्ञानकर द्वन्द्वोंसे बिना विचलित हुए निन्द्य कर्मोंका सर्वथा परित्याग कर सदाचरणद्वारा भगवान् श्रीशिवकी उपासना करते हुए अपने लोक-परलोकके सुधारका प्रयत्न करना चाहिये।

'शिवमहिम्नःस्तोत्र' का आगमिक स्वरूप और साधना

(डॉ० श्रीरुद्रदेवजी त्रिपाठी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्, आचार्यद्वय)

स्तोत्र-साहित्य

भारतीय देव-स्तोत्र-साहित्य अपनी विशालता, विविधता और विशिष्टताके कारण अत्यन्त उपादेय है। आगम-ग्रन्थोंमें स्तोत्रको उपासनाका एक प्रमुख अङ्ग बतलाकर साधनोपयोगी पाँच अङ्गोंमें जिह्वारूप कहा है। 'स्तोत्रं देवीरसा प्रोक्ता'— स्तोत्र भगवती वाग्देवताकी जिह्वा है। समस्त यन्त्रमन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती वाणीके रूपमें आविर्भूत होकर इष्टदेवकी स्तुति करती है। रसमयताके कारण स्तोत्र, स्तोता एवं स्तोतव्यकी त्रिवेणी एक अद्भुत रस-स्वरूप बनकर अखिल ब्रह्माण्डको तद्रूप बना देती है। इसीलिये कालिदासने कहा है कि—'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ?'—स्तोत्र किसे अच्छा नहीं लगता, किसे संतुष्ट नहीं करता ? 'स्तोत्र' शब्द स्वयं

प्रशंसाका ही तो पर्याय है। महर्षि पाणिनिने 'ष्टुञ्' धातुको इसी अर्थमें समाविष्ट बताकर उसका अर्थ स्तुति करना किया है। साहित्यकी समस्त विधाएँ अथवा वाग्व्यवहारके जितने भी प्रकार होते हैं, हो सकते हैं, वे सभी स्तोत्रकी परिधिमें आ जाते हैं। अव्यक्त और व्यक्त भावोंकी अक्षरात्मक अभिव्यक्ति स्तोत्ररूप ही तो है। चराचर जगत्‌की अखिल चेष्टाएँ तथा ध्वनियाँ अहर्निश उस परमपिता परमात्माकी स्तुतिमें ही तल्लीन हैं। प्रकृतिका पूरा परिवेष स्तोत्रमें ही व्याप्त है और उसका वाङ्मय रूप स्तोत्र ही है।

शिवोपासनाकी चिरन्तनता

आदिदेव महादेव परम दयालु, आशुतोष हैं। सीधी-सादी भक्तिसे प्रसन्न होनेवाले सर्वमङ्गलकारी भगवान् शिवकी आराधना-उपासना चिरकालसे देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मानव आदि सभी करते आये हैं। वेदोंमें शिवकी महिमाका वर्णन अत्यन्त उत्कृष्टतासे हुआ है और वेदोपदिष्ट मार्गका ही अनुसरण करते हुए विद्वान् साधकोंने शिवकी महिमाको लौकिक संस्कृतभाषाके आश्रयसे स्तोत्रोंद्वारा पल्लवित किया है।

स्तोत्र-रचनाका अविरल प्रवाह अनेकविध तरङ्गों, लहरियों और धाराओंमें बढ़ता हुआ निखिल विश्वको आप्यायित करता आ रहा है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकिके द्वारा दृष्ट क्रौंचवधकी घटनासे सहसा आविर्भूत श्लोककी भाँति स्तोत्र-साहित्यकी सृष्टिकी पृष्ठभूमि भी किसी-न-किसी घटनासे सम्पृक्त है। पीड़ाकी कसकसे उपजी आर्त किंतु प्रार्थनारूप वाणी ही स्तोत्रकी जन्मस्थली है और यही वाणी स्तोतव्य तथा स्तोताकी भावना, भक्ति एवं विद्यावैभवकी भव्यतासे तरतमता दृष्टिगोचर होती है, किंतु आत्मनिवेदनकी शुचिताका दर्शन सर्वत्र समान ही रहता है।

समस्त वेद तथा वेदान्तका सार एवं परमतत्त्व शिव ही हैं। इसीलिये 'आश्वलायन-सूत्र'में तथा 'रुद्राध्याय' आदिमें सभी वस्तुओंको शिवका सद्भाव कहा है। एक महेश्वर ही अखिल मूर्तियोंमें उपास्य है—'**प्रतिपाद्यो महादेवः स्थितः सर्वासु मूर्तिषु**' (स्कन्दपुराण) के अनुसार समस्त मूर्तियोंमें प्रतिपाद्य महादेव ही हैं। शिवकी महिमा अगम्य, अनन्त तथा अवर्णनीय है। 'श्रीमद्भागवत'के चतुर्थ स्कन्धमें स्वयं ब्रह्माजीने दक्षयज्ञमें शिवके क्रोधकी शान्तिकी इच्छा रखनेवाले देवताओंसे कहा है कि—

> **नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये**
> **ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम्।**
> **विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा**
> **तस्यात्मतन्त्रस्य कथं विधित्सेत्॥**

ब्रह्मा, विष्णु, ऋषि और मुनि आदि कोई भी उन भगवान् शिवके बल एवं वीर्यकी महिमाको नहीं जानते। ऐसे अपार महिमामय भगवान् शिवकी महिमाका वर्णन उनके अनन्य सेवक गन्धर्वराज श्रीपुष्पदन्तने स्व-महिमासे भ्रष्ट होनेपर पुनः अपनी उस महिमा-प्राप्तिके लिये किया। वह स्तोत्र गङ्गाधर शिवकी प्रीतिके लिये 'शिखरिणी' छन्दमें गाया गया। शिखरसे भूतलपर अवतरित भगवती भागीरथीकी मङ्गलमय स्वर-लहरीसे गुञ्जित शिखरिणी-छन्द गङ्गाके समान ही शिवजीको परम प्रिय है, इस रहस्यका ज्ञान श्रीपुष्पदन्तने उनकी सेवामें रहते हुए प्राप्त किया था, अतः उसीको आधार बनाकर गुण-कथन-पुण्यसे अपनी वाणीको पावन करते हुए प्रार्थना-स्तोत्रकी रचना की। स्तोत्रका प्रारम्भ '**महिम्नः**' पदसे होनेके कारण सद्यःस्मृतिके लिये उसे 'महिम्नःस्तोत्र' की संज्ञा दी गयी।

महिम्नःस्तोत्रके आविर्भावक 'शिव'

यद्यपि यह सुप्रसिद्ध है कि 'महिम्नःस्तोत्र'की रचना पुष्पदन्त नामक गन्धर्वराजने अपनी महिमाकी पुनः प्राप्तिके लिये की। तथापि ऐसे बहुतसे प्रमाण मिलते हैं कि इसे स्वयं भगवान् शिवने अपने 'भृङ्गी' नामक गणके बत्तीसों दाँतोंपर बत्तीस पद्योंमें अङ्कित दिखलाया था। उसका कारण भी यह था कि पुष्पदन्ताचार्यकी इस स्तुतिसे भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें विलुप्त शक्तिकी पुनरुपलब्धिका वरदान दिया था। उससे उनके मनमें अभिमान जग गया। उसे अन्तःसाक्षी शिवने भृङ्गीको निमित्त बनाकर दूर किया और इसे पुष्पदन्त भी समझ गये कि मेरे और सभी भक्तोंके उद्धार-हेतु भगवान्‌ने मुझे निमित्त बनाकर इस स्तोत्रको प्रकट किया है। अतएव काश्मीरी शैवग्रन्थोंमें इसे 'सिद्धस्तोत्र' की संज्ञा दी गयी है तथा भगवान्‌की मङ्गलमयी भक्ति और उनके सगुण-निर्गुण स्वरूपके साक्षात्कारका साधन भी माना गया है।

भगवान् शिव समस्त आगमोंके प्रवक्ता हैं, उनके द्वारा

प्रकाशित आगमिक साहित्यमें स्तोत्रको भी 'आवश्यक अङ्ग माना गया है तथा निर्वाण-तन्त्रके अनुसार 'कलावागम-सम्मतः'के आदेशानुसार जो साधना-साहित्य वेद-पुराणादिसे प्राप्त हो उसे भी कलियुगमें आगमानुरूप बनाकर साधना करनेसे शीघ्र लाभ होता है। वैदिक गायत्री-मन्त्रको भी इसीलिये आगमिक पद्धतिसे पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग मन्त्रोंके बीच मूल गायत्री-मन्त्रको भी आगमिक रूपमें जपनेका विधान है, जो पूर्ण लाभकारी है।

महिम्नःस्तोत्रकी आगमिकताके लिये तन्त्रोंमें यत्र-तत्र निर्देश प्राप्त हैं, जिनमें विनियोग, ऋष्यादिन्यास, कर-हृदयादिन्यास, ध्यान, मुद्रा और पूजा-विधानके साथ ही काम्य-प्रयोग भी वर्णित हैं। उनमेंसे हमें जो स्वरूप प्राप्त हो सके हैं उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

विनियोग—ॐ अस्य श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रस्य श्रीपुष्पदन्त ऋषिः, शिखरिण्यादिच्छन्दांसि, श्रीमदाशुतोष-शिवो देवता, ह्रौं बीजम्, जूं शक्तिः, सः कीलकं मम श्रीसाम्बसदाशिवप्रीत्यर्थं (अमुकफलप्राप्तये) पाठे, अभिषेके विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—श्रीपुष्पदन्तर्षये नमः (शिरसि), शिखरिण्यादिच्छन्दोभ्यो नमः (मुखे), श्रीमदाशुतोषशिव-देवतायै नमः (हृदये), ह्रौं बीजाय नमः (गुह्ये), जूं शक्तये नमः (पादयोः), सः कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादि-न्यास	पहली बार	दूसरी बार
भवः शर्वो रुद्रः० (पूरा श्लोक)	अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः।
नमो नेदिष्ठाय० ,,।	तर्जनीभ्यां नमः।	शिरसे स्वाहा।
बहलरजसे० ,,।	मध्यमाभ्यां नमः।	शिखायै वषट्।
मनः प्रत्यक्चित्ते० ,,।	अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्।
श्मशानेष्वाक्रीडा० ,,।	कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
हरिस्ते साहस्रं ,,।	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्।

ध्यानम्—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

इसके पश्चात् आगे बताये गये श्लोकोंको पूरा बोले और उनके पहले 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं जूं सः' ये प्रणवयुक्त बीज लगाकर शिवजीकी विशेष पूजा करनी चाहिये। यथा—

त्वमर्कस्त्वं सोमः०	पादयोः पाद्यं समर्पयामि	।
त्रयी साङ्ख्यं योगः०	हस्तयोरर्घ्यं ,,	।
भवः शर्वो रुद्रः०	आचमनीयं ,,	।
नमो नेदिष्ठाय०	जलस्नानं ,,	।
बहलरजसे०	दुग्धस्नानं ,,	।
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं जूं सः (बीजमन्त्र)	शुद्धजलस्नानं ,,	।
मनःप्रत्यक्चित्ते०	दधिस्नानं ,,	।
(बीजमन्त्र)	शुद्धजलस्नानं ,,	।
श्मशानेष्वाक्रीडा०	घृतस्नानं ,,	।
(बीजमन्त्र)	शुद्धजलस्नानं ,,	।
लावण्याशंसा०	मधुस्नानं ,,	।
(बीजमन्त्र)	शुद्धजलस्नानं ,,	।
प्रजानाथं नाथः०	शर्करास्नानं ,,	।
(बीजमन्त्र)	शुद्धजलस्नानं ,,	।
वियद्व्यापी तारा०	पुनःशुद्धोदकस्नानं० ,,	।
क्रतौ सुप्ते जाग्रत्०	वस्त्रं ,,	।
रथः क्षोणी यन्ता०	यज्ञोपवीतं ,,	।
क्रियादक्षो दक्षः०	पुनर्वस्त्रं ,,	।
यदृद्धिं सुत्राम्णो०	गन्धं ,,	।
अकाण्डब्रह्माण्ड०	अक्षतान् ,,	।
असिद्धार्था नैव०	भस्म ,,	।
हरिस्ते साहस्रं०	पुष्पाणि ,,	।
अयत्नादापाद्य०	बिल्वपत्राणि ,,	।
तवैश्वर्यं यत्नाद्०	परिमलद्रव्यं ,,	।
तवैश्वर्यं यत्तत्०	(इत्र) सुगन्धिद्रव्यं ,,	।
तवैश्वर्यं यत्नाद्०	धूपं ,,	।
अमुष्य त्वत्सेवा०	दीपं ,,	।
महीपादाघातात्०	नैवेद्यं ,,	।
नमो नेदिष्ठाय०	नीराजनं ,,	।
कृशपरिणति चेतः०	पुष्पाञ्जलिं ,,	।
असितगिरिसमं०	क्षमाप्रार्थनां ,,	।
त्वमर्कस्त्वं सोमः०	प्रदक्षिणां ,,	।

इसके पश्चात् भक्तिपूर्वक 'महिम्नःस्तोत्र' का पाठ करे और उत्तरपूजा करके पाठ-समर्पण तथा क्षमा-प्रार्थना करके 'श्रीसाम्बसदाशिवार्पणमस्तु'कहकर जल छोड़े।

पूर्वाङ्ग-विस्तार और उत्तराङ्ग-पूर्ति

यदि उपासक 'महिम्नःस्तोत्र'के पाठको और भी विशिष्ट रूप देना चाहता हो तो वह पाठसे पहले इन स्तोत्रोंका पाठ भी करे—.

१-संकटनाशन श्रीगणेश-स्तोत्र।

२-तुलसीदासकृत रामचरित-मानसान्तर्गत शिवस्तोत्र 'नमामीशमीशान॰' आदि।

३-दारिद्र्य-दहन-स्तोत्र 'दारिद्र्यदुःखदहनाय नमःशिवाय' आदि।

४-'वन्दे देवमुमापतिं॰' और 'कर्पूरगौरं करुणावतारं॰' आदि दोनों पद्य।

५-द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग-स्तोत्र 'सौराष्ट्रे सोमनाथं च॰'।

और महिम्नःस्तोत्रके पश्चात् पुनः विलोमक्रमसे उपर्युक्त पाँचों स्तोत्रोंका पाठ करके उत्तर-पूजा-प्रार्थनादि करे।

विशिष्ट पूर्वाङ्ग-विधान

किसी भी मन्त्र अथवा स्तोत्रके द्वारा विशिष्ट कार्यकी सिद्धि अपेक्षित होनेपर उसके पूर्वाङ्गका स्वरूप भी विशिष्ट ही होना चाहिये। ऐसी शास्त्राज्ञा है। 'महिम्नःस्तोत्र' से लक्ष्मी-प्राप्ति, दारिद्र्यनाश, शिवकृपा-प्राप्ति, रोग-निवृत्ति-जैसी कामनाओंकी पूर्तिके लिये 'विशिष्ट पूर्वाङ्ग-विधान' इस प्रकार है—

इसमें पहले १-गुरुस्तोत्र, २-संकटनाशन गणेशस्तोत्र, ३-श्रीतुलसीदासकृत शिवस्तोत्रके साथ अन्य कामनानुसारी स्तोत्रका पाठ करके 'महिम्नःस्तोत्र' का पाठ और बीज-मन्त्रोंका लोम-विलोम सम्पुट-पाठ किया जाता है। यदि भय-असंतोष आदिके निवारणकी अपेक्षा हो तो 'अष्टोत्तर-शत-भैरव-नामावलि' का आद्यन्तमें पाठ करना उत्तम है। विद्या एवं ज्ञानप्राप्तिके लिये 'सरस्वत्यष्टक' 'रविरुद्र-पितामह॰'से प्रारम्भ और 'तव नौमि सरस्वति॰' तकका आद्यन्तमें पाठ करे। 'हनुमान-चालीसा' और बगलामुखी स्तोत्रका पाठ भी आदि-अन्तमें करनेसे वाद-विवाद आदिमें अवश्य विजय प्राप्त होती है। ऋणनाशके लिये ऋणहर-गण-पतिके स्तोत्रका पाठ करना चाहिये।

अन्य कामनापूरक प्रयोग—जिस प्रकार 'दुर्गासप्त-शती'के किसी एक मन्त्रका स्वतन्त्ररूपसे बीजमन्त्र लगाकर जप करनेसे कार्य-सिद्धि होती है, उसी प्रकार महिम्नःस्तोत्रके श्लोकोंके प्रयोग करनेका भी विधान मिलता है। यथा—

१-सर्वकामना-पूर्तिके लिये—'*ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं जूं सः*' इन बीजमन्त्रोंका प्रत्येक श्लोकके साथ लोम-विलोम पाठ करनेसे सिद्धि होती है।

२-दाम्पत्य-सुखके लिये—'*ऐं ह्रीं श्रीं*'का लोम-विलोम करके '**नमो नेदिष्ठाय॰**'इत्यादिका जप।

३-समृद्धिप्राप्तिके लिये—स्वर्णाकर्षणभैरवके मन्त्रका सम्पुट लगाकर '**यदृद्धिं सुत्राम्णो॰**'इत्यादिका जप।

४-संतति-सुखके लिये—'**ऐं ह्रीं श्रीं**'का आदिमें और अन्तमें '**श्रीं ह्रीं ऐं**'का सम्पुट लगाकर '**हरिस्ते साहस्त्रम्॰**'पद्यका जप।

५-मानसिक पीडा-निवारणके लिये—'**ऐं ह्रीं श्रीं**' '**कृशपरिणति चेतः**'इत्यादि पद्य और '**श्रीं ह्रीं ऐं**'का जप।

६-विजयके लिये—'**श्रीं ह्रीं ॐ**' **नमो नेदिष्ठाय॰**'इत्यादि पद्य और अन्तमें '**ॐ ह्रीं श्रीं**'जोड़कर जप।

७-सम्मान-प्राप्तिके लिये—आदिमें'**श्रीं ह्रीं क्लीं**'और अन्तमें '**क्लीं ह्रीं श्रीं**'बीजमन्त्र लगाकर '**भवः शर्वो रुद्रः**'इत्यादि पद्यका जप।

८-विद्याप्राप्तिके लिये—'**विशुद्धज्ञानदेहाय॰**' इत्यादिका सम्पुट लगाकर '**महिम्नः स्तोत्र**'का नित्य पूरा पाठ।

९-पुत्रप्राप्ति-प्रयोग—नारी निराहार (प्रातःकाल कुछ भी नहीं लेकर) स्नानादि करके पतिके साथ प्रतिदिन गेहूँके आटेके ११ पार्थिवेश्वर बनाये और उनकी ऊपर बताये-अनुसार 'महिम्नःस्तोत्र' के श्लोकोंसे पार्थिव-पूजा करके ११ पाठसे अभिषेक करे। अभिषेक-जल ग्रहण करे और पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रार्थना करे। यह प्रयोग २१ अथवा ४१ दिनतक करे।

बिना किसी कामनाके भगवत्प्रीत्यर्थ इन प्रयोगोंके अनुष्ठानकी महिमा अमित है। निष्कामभावसे किये गये अनुष्ठानमें त्रुटि होनेपर प्रत्यवाय भी नहीं लगता तथा उसका फल भी अनन्त है।

श्रीशंकरसपर्याष्टकं भावानुवादसहितम्

[भगवान् शंकरकी पूजामें पढ़ने योग्य आठ पद्य]

(पद्यश्री डॉ॰ श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज)

अनुष्टुप्—

शरच्चन्द्रप्रभां हास्यभासादीनत्वमापयन्।
जगद्बीज महादेव विशदेन्दुद्युते जय ॥ १ ॥

हे महादेव शंकर भगवान्! आपकी जय हो। भक्तोंपर अनुग्रह करते समय जब आपके ओष्ठ और अधरपर हँसी झलकती है, तब उस हँसीके आगे शरदृतुके चन्द्रमाकी कान्ति भी फीकी प्रतीत होती है। आप इस विश्वके मूल कारण हैं। आपके श्रीविग्रहकी कान्ति निर्मल चन्द्रमाके समान गौर-वर्णवाली है।

मालिनी—

धृतसरसिजमालं जाह्नवीशोभिभालं
कृतफणिपतिहारं मोददं भूतिकारम्।
नृसुरमुनिभिरर्च्यं शर्मदं लोकवन्द्यं
हिमगिरितनयेशं नौम्यहं श्रीमहेशम् ॥ २ ॥

मैं पार्वती-वल्लभ-श्रीशंकर भगवान्‌को प्रणाम करता हूँ। वे अपने कण्ठमें कमलोंकी माला पहने हुए हैं। जटाजूटमें विराजमान गङ्गा-तरङ्गोंके कारण उनके मस्तककी बड़ी शोभा हो रही है। एक विशाल नाग उनके वक्षःस्थलपर हारके समान लटक रहा है। वे अपने भक्तोंको आनन्द प्रदान करते रहते हैं और उन्हें उनका अभीष्ट वैभव भी देते रहते हैं। ऋषि-मुनि इस विश्वके वासी मानव एवं स्वर्गके देवगण भी उनकी पूजामें लगे रहते हैं। वे सबके सुखदायी हैं। चौदह लोकोंके निवासियोंद्वारा ये वन्दनीय हैं।

मालिनी—

नगपतिकृतवासं पारिजाते निषण्णं
त्रिनयनमखिलेशं शूलपाणिं महेशम्।
मुनिजनशुभचित्ते वीतदोषे विभात-
मजगवकरमेतं नौम्यहं भक्तियुक्तः ॥ ३ ॥

मैं भक्तिपूर्वक इन भगवान् शंकरको प्रणाम कर रहा हूँ। ये गिरिराज हिमालयपर निवास करते हैं और कल्पवृक्षकी छायामें बैठे हैं। इनके तीन नेत्र हैं, सबके स्वामी हैं, त्रिशूल हाथमें लिये हुए हैं और दूसरे हाथमें शत्रु-विनाशके समय पिनाक-नामक अपने धनुषको भी धारण कर लेते हैं। काम और क्रोध आदि दोषोंसे रहित मुनिजनोंके मनोमन्दिरमें इनका प्रकाश सदा रहता है। ये महेश्वर हैं।

उपजाति—

अघं हृदो मेऽपनयाज शम्भो
नित्यं विधेहीश महेश शं भोः।
भवेम युष्मच्चरणानुरक्ता-
नश्यन्तु नोऽरं विपदः समस्ताः ॥ ४ ॥

हे अज अर्थात् कर्मवश जन्म न लेनेवाले, हे शम्भो अर्थात् कल्याणकारिन् प्रभो! मेरे हृदयसे पापको दूर कर दीजिये। हे ईश्वर! हे महेश्वर! आप प्रतिदिन शं अर्थात् मङ्गल-विधान करते रहिये। आपके अनुग्रहसे हम आपके चरणारविन्दोंमें अनुराग करते रहें, जिससे हमारी सारी विपत्तियाँ शीघ्र ही नष्ट हो जायँ।

उपजाति—

अब्धौ सुरैः सम्मथिते समस्तान्
विलोक्य भीतान् गरदर्शनात् तान्।
पीत्वा विषं यो जनतां ररक्ष
तमादिदेवं प्रणमामि शम्भुम् ॥ ५ ॥

अमर होनेके लिये देवता अमृत प्राप्त करना चाहते थे। सबने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया, तो सर्वप्रथम हलाहल विष प्रकट हुआ। उसे देखकर वे सब भयभीत हो गये। उनके उस भयके निवारणार्थ जिन भगवान् शंकरने उस विषको पीकर उनकी रक्षा की थी, मैं उन आदिदेव शिव शम्भुको प्रणाम कर रहा हूँ।

उपजाति—

सूत्राण्यपूर्वाणि पुरा पुरारि-
र्निर्माय योऽज्ञानतमोविलीनम्।
व्यधाज्जगद् व्याकरणप्रकाशं
तमादिविज्ञं प्रणमामि शम्भुम् ॥ ६ ॥

जिन त्रिपुरसुरान्तक भगवान् शंकरने प्राचीन कालमें माहेश्वर नामसे प्रसिद्ध चौदह सर्वोत्तम सूत्रोंका उपदेश करके

पाणिनि मुनिद्वारा अज्ञानान्धकारमें विलीन जगत्में व्याकरणका प्रकाश फैला दिया था, उन आदिविद्वान् शिवजीको मैं प्रणाम कर रहा हूँ।

शार्दूलविक्रीडित—

गङ्गास्वच्छाम्बुधाराशिशिरकरविभारश्मियुक्तालिकेऽत्र
शम्भौ सर्वेश्वरेऽस्मिन् विदधति करुणां नास्ति मे दुःखहेतुः।
लेखैः सर्वैः स्तुतोऽयं हिमगिरिशिखरे बद्धपद्मासनस्थः
पुष्णीयात् पार्वतीशो हृदयसदनगं कामनाऽनोकहं मे॥

जिनका मस्तक गङ्गाजीके निर्मल जलकी धारासे एवं चन्द्रमाकी कान्तिमती किरणोंसे सदा सुशोभित रहता है, वे सर्वेश्वर भगवान् शंकर जब मुझपर करुणा कर रहे हैं, तब मेरे दुःखका कोई हेतु नहीं हो सकता। सभी देवता जिनकी स्तुति करते रहते हैं, जो कैलासपर्वतपर पद्मासन लगाकर विराजमान रहते हैं, वे पार्वतीपति भगवान् शंकर मेरे हृदय-भवनमें बद्धमूल उनके साक्षात्कारकी कामनाके तरुवरको हरा-भरा रखें।

उपजाति—

राजन्ति पुण्याः सुरनिम्नगापो
यन्मूर्ध्नि चन्द्रस्य गभस्तयश्च।
पापापहारी स्वजनार्तिहारी
जयेत् सदा श्रीशिवशङ्करः सः॥ ८॥

जिनके मस्तकपर गङ्गाजीका पवित्र जल तथा चन्द्रमाकी किरणावली विराजमान रहती है, वे पापोंका विनाश करनेवाले और अपने भक्तोंके संकटोंको दूर करनेवाले भगवान् शिवशंकर सदा विजय प्राप्त करें।

श्रीशिवाष्टक

(१)

जय महेश जगबन्धु नित्य त्रिभुवन-अभयंकर।
जय रामप्रिय शर्व सर्वदा जय शिव शंकर॥
व्योमकेश सर्वेश त्रिपुरदनुजेशविनाशन।
जय मङ्गलमयमूर्ति शम्भु जय भवभयनाशन॥

(२)

जय जय चन्द्रललाम कुण्डलीकुण्डलधारी।
जय प्रमथादिक-भूत-प्रेत-गुह्यकसुखकारी॥
प्रालेयाचलनन्दिनीश मुदमंगलदाता।
जय गणेश-शिखिवाहनपितु जय निजजनत्राता॥

(३)

परमरम्य-कैलासविहारी वृषभध्वज जय।
कृत्तिवास जय नीलकण्ठ जय जय मृत्युंजय॥
शुद्ध सच्चिदानन्द सदाशिव शक्तिनाथ जय।
जय भैरव, दशकण्ठवरद जय जय तेजोमय॥

(४)

सर्वदेव-अधिदेव निरञ्जन जय मदनान्तक।
निराधार निष्पाप निरङ्कुश जय शमनान्तक॥
निर्गुण निर्मद निष्कलङ्क निष्काम त्रिलोचन।
कालकाल कर्पूरगौरवपु भवभयमोचन॥

(५)

पञ्चानन, फणिराजविभूषण जय गङ्गाधर।
जय कमलासन श्रीपतिपूजित, जय गुणसागर॥
डमरुनादप्रिय, भृङ्गीप्रिय, आनन्दराशि हर।
भक्तप्रिय शवभस्मप्रिय रजनीशकलाधर॥

(६)

महाकाल श्रीसोमनाथ नागेश जटाधर।
वैद्यनाथ केदार सनातन ईश दयापर॥
विश्वेश्वर रामेश्वर सर्वेश्वर काशीश्वर।
बाणेश्वर श्रीवामदेव पशुपति नन्दीश्वर॥

(७)

अन्धकरिपु शितिकण्ठ पिनाकी जय गिरीश जय।
शूलपाणि मृड महादेव जय जय करुणामय॥
निष्प्रपञ्च निर्द्वन्द्व कपाली निर्मल निर्मम।
ज्ञानरूप वेदान्तसार कैवल्यद अनुपम॥

(८)

पारिजातवरमालविभूषित धनदमित्रवर।
अष्टसिद्धिनवनिधिपरिसेवित भर्ग महेश्वर॥
खण्डपरशु ईशान चन्द्रशेखर (प्रसन्नमन) (निर्धन-धन)।
उग्र रुद्र श्रीकण्ठ नीललोहित शुभदर्शन॥

—विनायकराव भट्ट

संस्कृत-साहित्यमें शिव

(साहित्याचार्य पं॰ श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

(१)

संस्कृतका साहित्य आध्यात्मिक तत्त्वोंसे पूर्ण और बड़ा विस्तृत है। इसी साहित्यसे अनेक भाषाओंके साहित्योंका विकास और पोषण हुआ है, यह कौन नहीं जानता ? इसमें अन्यान्य विषयोंपर तो गम्भीरतम गवेषणाएँ हुई ही हैं, परंतु अध्यात्म-विषयोंपर तो इतना विचार हुआ है जिसकी हद नहीं। इस अध्यात्ममयताके कारण ही बहुत-से पाश्चात्त्य विद्वान् इस भाषाको 'अध्यात्मभाषा' तक कह गये हैं। आर्यदर्शन प्रत्येक पदार्थको आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक—इन तीन रूपोंमें व्याख्या करके समझाया करते हैं।

भगवान् शिवका संस्कृत-साहित्यमें बड़े व्यापकरूपसे वर्णन है। वेदसे लेकर अर्वाचीन-लेखकतक शिव-वर्णनपर नाना प्रकारसे लिख गये हैं और बहुत कुछ लिख गये हैं। यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायीसे दार्शनिक विद्वान् और भक्त दोनों ही अपना-अपना अभीष्ट अर्थ निकालते हैं। दार्शनिकगण शिवतत्त्वकी व्याख्या बड़े गम्भीररूपमें करते हैं तो भक्त-समाज भगवान् शिवके मनोहर चरित्र वर्णन करके उनकी महिमा सर्व-साधारणतक प्रकट करना चाहता है। उपनिषद् 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कहकर आध्यात्मिक पद्धतिसे हमें शिव-रहस्य समझाना चाहते हैं, तो पुराण शिव-माहात्म्य-वर्णन दूसरे ही प्रकारसे आरम्भ करते हैं। पुराणोंमें भगवान् शिवका स्वरूप, उनकी क्रीडा, उनका निवास-स्थान, उनके गण, उनके सेवक, उनका शृंगार, उनके चरित्र, उनका स्वभाव—यों कहना चाहिये कि उनके सभी परिकर अद्भुत-अद्भुत बतलाये गये हैं। जबतक उनका असली तत्त्व समझमें नहीं आ जाता, तबतक मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार इनका अनेक तरहसे आलोचन-विवेचन किया करता है।

जटाओंमें गङ्गाधारण तथा कण्ठमें हलाहलस्थापना इन्हीं दो विषयोंको ले लीजिये। इनपर लोगोंकी अनेक भावनाएँ हैं। कोई कहते हैं कि भगवान् शिव विष्णुके अनन्य भक्त हैं अतएव अपनेको पवित्र करनेके लिये उनके चरणप्रक्षालनोदक-स्वरूप भगवती गङ्गाको भक्तिभावसे मस्तकपर धारण करते हैं। इसी तरह कोई वादशील कहता है कि भगवान् शंकर तामस-स्वरूप हैं—उन्हें विष, धतूरा, आक आदि पदार्थ ही अच्छे लगते हैं, अतएव अपनी रुचिसे ही भगवान् शिवने विष-पान किया है इत्यादि। इन दोनों ही बातोंपर दूसरे पक्षका दूसरा उत्तर है। अप्पय्य दीक्षित कहते हैं—

> गङ्गा धृता न भवता शिव पावनीति
> नास्वादितो मधुर इत्यपि कालकूटः।
> त्रैलोक्यरक्षणकृता भवता दयालो
> कर्मद्वयं कलितमेतदनन्यसाध्यम्॥

'हे दयालु भगवान् शिव ! 'पवित्र करनेवाली है' इस बुद्धिसे आपने गङ्गाको नहीं धारण किया है तथा 'आपको मधुर लगता है' इसलिये विषका भी पान नहीं किया है। किंतु आप त्रिलोकीका रक्षण करनेवाले हैं, अतएव दयालुतामें लोककी रक्षाके लिये ये दोनों बड़े भारी कार्य जो और बड़े-बड़े देवताओंसे नहीं बन सकते थे, आपने किये हैं।'

(२)

भगवान् शिव संस्कृत-कवियोंके प्रधानरूपसे वर्णनीय हैं। यों तो संस्कृत-कवियोंके समाजमें भला कौन-से देवता सूक्ति-कुसुमोंसे अभ्यर्चित नहीं हुए हैं ? सभी देवताओंके एक-से-एक बढ़कर स्तुति या वर्णन मिलते हैं, परंतु भूतभावन भगवान् शंकरके विषयमें तो कवियोंका भक्तिभाव कुछ बड़ा-चढ़ा-सा प्रतीत होता है। 'विद्याकामस्तु गिरिशम्' पर कवियोंकी अटल आस्था मालूम होती है। दक्षिण भारतके वेदान्ताचार्य वेङ्कटाध्वरि जगन्नाथ प्रभृति तथा पूर्वभारतके कर्णपूरगोस्वामी, जीवगोस्वामी, जयदेव प्रभृति गौराङ्ग-कवियोंको छोड़कर और-और देशोंके प्रायः सभी संस्कृत-कवि अपने-अपने ग्रन्थोंके आदिमें शिव-विषयक मङ्गलाचरण करते हैं, भगवान् शिवके चरित्रोंसे अपनी सूक्ति-सरणिको पावन करते हैं।

काश्मीरकोंका दावा है कि हमारे देशको छोड़कर कविता और केसर कहीं हो ही नहीं सकते। विह्रण कहते हैं—

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां
भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य येषां
मयाऽद्य दृष्टः क्वचन प्ररोहः॥

'मुझे मालूम होता है कि कविता-विलास और केसर—ये दोनों सहोदर भाई-भाई हैं, क्योंकि शारदा-देश अर्थात् सरस्वतीके देश—इस कश्मीरको छोड़कर और कहीं भी मैंने इन दोनोंका उत्पन्न होना नहीं देखा।' सोचिये तो सही, कितनी गर्वभरी उक्ति है? जैसे केसरकी खेती कश्मीरको छोड़कर और कहीं हो ही नहीं सकती, वैसे ही 'कविता' जिसे कहते हैं वह कश्मीरको छोड़कर दूसरी जगह देखी ही नहीं जाती, यह तो कहा ही है, किंतु साथमें कवि एक बड़ी भारी बात कह गया है, वह कहता है कि सरस्वतीका देश ही—अगर कोई है तो—यह है। अस्तु, 'टकसाली कविता कश्मीरकी ही होती है' यह कश्मीरदेशवासी विह्रण कवि चाहे कह गया हो, परंतु इसमें वाद-विवादके लिये बहुत कुछ गुंजाइश है। कवितामें 'वैदर्भी रीति' सर्वप्रधान मानी जाती है। अब आप ही देख लीजिये 'विदर्भ' कश्मीरकी दिशामें है या उसके सामनेकी? खैर, इस वाद-विवादकी मीमांसा इस लेखमें नहीं करनी है। यहाँ तो कहनेका तात्पर्य यही है कि जो काश्मीरके कवि अपनेको कवितामें अद्वितीय समझते हैं, वह भी सब-के-सब भगवान् शिवकी लीला ही गाते हैं। जगद्धरकी 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि'से बढ़कर भला कौन-सा शिव-विषयक काव्य होगा, जिसे कविता-दृष्टिसे परखिये, चाहे भक्तिकी कसौटीपर जाँचिये, वह अद्वितीय उतरेगा। जगद्धरकी *शिवविषयक सूक्तियाँ एक अलग लेखका विषय* है, जिसे यहाँ मैं नहीं छू रहा हूँ; किंतु इसमें संदेह नहीं कि काश्मीरके कवि इसमें पूर्णतया सफल हुए हैं।

काश्मीरकोंको छोड़कर और आगे चलिये। महाकवि कालिदास जो कनिष्ठिका अँगुलीपर प्रथम-प्रथम गिने जाकर आगे अपने बराबरका कवि न मिलनेके कारण दूसरी अँगुलीको यथार्थ ही 'अनामिका' बना देते हैं, वह भी अपने प्रत्येक ग्रन्थमें भगवान् शिवका ही मङ्गलाचरण करते हैं। यही क्यों, भगवान् शिवके चरित्रोंका चित्रण जो उन्होंने 'कुमारसम्भव' में किया है, उसका मुकाबला आप किसी भी अच्छे-से-अच्छे काव्यमें नहीं पायेंगे। पार्वती और वटुवेषधारी श्रीशिवका संवाद संस्कृत-साहित्यकी एक परिगणनीय चीज है। पार्वतीका मनोभाव जाँचनेके लिये श्रीशिवकी निन्दा करता हुआ वटु कहता है—

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता
दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते
तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥

शरीरमें सबसे पहले नेत्रोंपर ही नेत्र पहुँचते हैं। रहिमन कहते हैं—*'बड़ी बड़ी अँखियाँ निरखि अँखियनको सुख होत।'* सो उन्हींकी तरफ देखो कि विकृत रूपवाली तीन उनके आँखें हैं। यह तो सौन्दर्यकी बानगी हुई। अब लीजिये कुल—सो यही किसीको पता नहीं कि किस कुलमें कब जन्म हुआ है? धनकी बात सुनो तो यह हाल है कि पहननेको लँगोटीतक नहीं जुटती, नंगा फिरता है। वरमें रूप, कुल, धनादि जो कुछ देखे जाते हैं, वे सब तो न सही, उस महादेवमें क्या उनमेंसे एक भी है? लोकमें प्रसिद्ध है कि—

कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः॥

'वरके अंदर कन्या रूप, माता धन, पिता विद्या तथा बन्धु-बान्धव अच्छा कुल देखना चाहते हैं, किंतु अन्य आदमी मिठाइयोंपर नजर रखते हैं।' अब तुम ही देखो, उस विरूपाक्षमें इनमेंसे कौन-सी बात है?

श्रीपार्वतीजी उत्तर देती हैं—

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

'वह स्वयं अकिञ्चन हैं' किंतु ब्रह्माण्डकी सब सम्पत्तियाँ उन्हींसे उत्पन्न हुई हैं। वह श्मशानमें रहते हैं किंतु तीनों लोकोंके स्वामी हैं। वह भयंकररूप हैं तो भी शिव अर्थात् कल्याणकारी—सौम्यमूर्ति कहे जाते हैं। शिवके वास्तविक तत्त्वको समझनेवाला कोई है ही नहीं' इत्यादि।

शिव-विवाह पुराणोंमें यद्यपि पूरा मिलता है, परंतु कालिदासकी कलमसे निकला हुआ वह एक अद्भुत वस्तु हो गया है। रत्नपरीक्षक महाकवि तुलसीदासजीने उसे स्थान-स्थानपर लिया है। जहाँ कहीं कालिदासकी सूक्तिका अविकल अनुवाद आ गया है, वहीं कविता चमक उठी है। वास्तवमें कालिदासका शिवचरित्र-चित्रण उनके योग्य ही हुआ है, परंतु कवियोंमें जो एक तरहकी लहर हुआ करती है, उससे वह भी नहीं बच पाया है। कविका जिस समय सूक्तिप्रवाह चलने लगता है, उसके अंदर जिस समय कल्पनाकी तरङ्गें उठने लगती हैं, उस समय वह सब कुछ भूल जाता है। उसे एक अलौकिक भावावेश-सा हो जाता है, जिसका उसे भी पता नहीं रहता। इसीलिये कइयोंने कहा है कि 'प्रतिभा एक तरहका पागलपन है।' बस, यही कारण है कि जो कालिदास—

स हि देवः परं ज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना॥

'वह महादेव तमोगुणातीत परात्पर ज्योतिःस्वरूप हैं, परमात्मा हैं, उनके महिमातिशयको न विष्णु जानते हैं न मैं जानता हूँ' यों जगत्के विधाताके द्वारा भी जिन शिवका—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

—के रूपमें वर्णन करते हैं उन्हींका स्वयं इतना स्फुट शृंगार-वर्णन कर डालते हैं कि जिसके कारण उनपर 'पित्रोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम्'की दफा साहित्य-निबन्ध-कारोंको लगानी पड़ती है।

(३)

अकेले कालिदास ही नहीं, संस्कृत-साहित्यके अनेक अच्छे-अच्छे कवि भगवान् शिवका अनेक प्रकारसे वर्णन करते हुए कल्पना-तरङ्गोंमें इतना बह जाते हैं कि जिस विषयको लेकर वह कविता करने बैठते हैं उस तकको भूल जाते हैं। शिव-विषयक भक्ति-भावको लेकर मङ्गलाचरणकी कविता आरम्भ करते हैं और आशा करते हैं कि श्रीशिव सब अमङ्गल-निवृत्ति करेंगे, किंतु रचनामें औचित्यकी सीमातक आ टकराते हैं। कोई बात नहीं, भगवान्का किसी भी भावसे भजन करो भगवान् उसका कल्याण ही करते हैं, इसमें संदेह नहीं। फिर भगवान् भवानीपति तो भोलेनाथ हैं। भला वह भक्तोंके अनभलकी भावना भी कर सकते हैं? जो 'बम् बम्' कहनेमात्रसे ही खुश हो जाते हैं, भला उनकी दयालुताकी कुछ सीमा है? परंतु कवि अपनी कल्पनासे बाज नहीं आते, उन्हें जो कुछ उपज जाती है, उसे कहकर ही दम लेते हैं। एक कवि मङ्गलाचरण करते हैं—

भस्मान्धोरगफूत्कृतिस्फुटभवद्भालस्थवैश्वानर-
ज्वालास्विन्नसुधांशुमण्डलगलत्पीयूषधारारसैः।
स जीवद्गजचर्मगर्जितभयभ्राम्यद्वृषाकर्षण-
व्यासक्तः सहसाद्रिजोपहसितो नग्नो हरः पातु वः॥

'शिवके शरीरसे झड़ी हुई भस्म आँखोंमें पड़ जानेके कारण गलेमें लिपटा हुआ सर्प, न दिखलायी देनेसे घबड़ाकर बड़े जोरसे फुंकार करता है। उन फुंकारोंसे ललाट-नेत्रका अग्नि प्रज्वलित हो उठता है। उसकी ज्वालासे पसीजकर मस्तकस्थित चन्द्रमण्डलसे अमृत टपकता है। अमृतकी बूँद पड़ते ही शरीरपर ओढ़ा हुआ गजचर्म इधर जीवित हो उठता है, उधर श्रीशिवका शरीर नग्न हो जाता है। जीवित हुए हाथीकी गर्जनासे सवारीका बैल दौड़ने लगता है। भगवान् शिव इस उपद्रवसे घबराकर बैलको बड़ी मुश्किलसे रोकते हैं, किंतु नग्न हुए श्रीशिवका यह कौतुक देखकर श्रीपार्वतीकी हँसी नहीं रुकती। पार्वतीसे उपहास किये गये वही शिव आपकी रक्षा करें।'

भगवान् शिवके सर्प, वृषभ, गज-चर्म आदि उपकरण ही ऐसे विचित्र हैं, जिनके परस्पर सम्बन्धपर कवि अनेक कल्पनाएँ बाँध लेते हैं। एक कवि कहता है—

विष्णोरागमनं निशम्य सहसा कृत्वा फणीन्द्रं गुणं
कौपीनं परिधाय चर्मकरिणस्तस्यागमन् सम्मुखम्।
दृष्ट्वा विष्णुरथं सकम्पहृदयः सर्पोऽपतद्भूतले
कृत्तिर्विस्खलिता ह्रिया नतमुखो नग्नो हरः पातु वः॥

'भगवान् शिवने जैसे ही अपने मित्र विष्णुका आगमन सुना कि शीघ्रतासे सर्पके कटिसूत्र (करधनी) पर गजचर्मकी लँगोटी लगाकर वह प्रेमभावसे उनके सामने आ गये। किंतु जैसे ही विष्णुकी सवारीके गरुड़को देखा, वैसे ही कमरमें लपेटा हुआ सर्प डरके मारे जमीनमें गिरा कि उसके सहारेपर टिकी हुई लँगोटी भी खिसक गयी, शिव नग्न हो पड़े। वही लज्जावनत-मुख भगवान् शिव आपकी रक्षा करें।'

संस्कृत-कवियोंने भक्तिप्रवण होकर भगवान् शिवका गुणस्तवन न किया हो सो बात नहीं। वह जिस समय शिव-विषयक रतिभावसे अनुप्राणित हो जाते हैं, उस समय 'प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः' होनेवाले वही हैं अर्थात् उनको रोमाञ्च हो उठता है। आँखोंसे प्रेमका प्रवाह बह निकलता है, किंतु जिस समय वह कविताकी तरङ्गोंमें बहने लगते हैं, उस समय शिव-विषयक भावना पीछे रह जाती है और कल्पनाकी लहर उन्हें आगे ले जाती है।

(४)

काव्यकी आत्मा 'रस' है। वह रस किसी अर्थगत चमत्कारके बिना नहीं रह सकता। इसीलिये चमत्कारकारक नवीनता लानेके लिये कविलोग अनेक कल्पनाएँ किया करते हैं। यदि वह 'औचित्य' की सीमाको न लाघें तो कल्पनामें कविको पूर्ण स्वातन्त्र्य है। 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः' अपार इस काव्य-सृष्टिमें कवि ही विधाता है। सामाजिकोंके अनुरञ्जनके लिये 'यथा देहे तथा देवे' के अनुसार कवि देव-चरित्रोंका भी मानुषचरित्रकी भाँति चित्रण किया करते हैं। इसी आधारसूत्रको पकड़कर शिववर्णनपर भी कवियोंकी नाना कल्पनाएँ चलती हैं।

जगज्जननी भगवती पार्वतीसे स्वामिकार्तिकेयका जन्म अवश्य हुआ है, परंतु उन्हें सामान्य गर्भिणीकी भाँति प्रसववेदनाका कष्ट नहीं भोगना पड़ा। न भगवान् शिवके घरमें प्रसवके समय सबपर एक संकट-सा ही रहा कि देखिये कैसे क्या होता है? न बाहर बैठे घरके लोग और नौकर-चाकर इस तालाबेलीहीमें रहे कि देखें देवीको पुत्र होता है कि कन्या। सामान्य-सी सिद्धि रखनेवालेतक जब यह बता देते हैं कि पुत्र होगा या कन्या, तब क्या शिव-परिवारको यह बात भी विदित न थी? यहाँ तो तारकासुरपर विजयके लिये देवताओंने भगवान् शिवकी पुत्र-संतति पहलेसे ही निश्चित कर रखी थी, बल्कि उसीके लिये शिव-विवाहका आयोजन ही किया गया था। किंतु चमत्कारके लिये कवि गृहस्थके घरका-सा चित्र यहाँ उपस्थित करना [illegible] ऐसे कवि 'अर्थकवि' कहलाते हैं। इसका [illegible]

श्रीपार्वतीके प्रसवका सम[illegible] 'सोहर' के लिये बाहर ही उपस्थि[illegible] मन नहीं लगता। सबको यह प्रतीक्षा है कि देखें पुत्र होता है या कुमारी। बधाईकी आशा करनेवाले लोग पुत्रोत्सवकी उमंगमें वहीं आ जुटे हैं। जनानेकी ड्योढ़ीपर कड़ा पहरा है, किंतु उसके बाहर ही गणोंकी भीड़ लग रही है। सबकी टकटकी ड्योढ़ीके दरवाजेपर बँध रही है कि देखें कब और क्या खबर आती है? इधर गण और उधर 'मातृगण' बड़ी उत्सुकतासे बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि बधाईका संवाद आते ही दुतरफा मङ्गलोत्सव शुरू कर दिया जाय, नृत्य-गान आरम्भ हो। ऐसे उत्सुक प्रतीक्षाकालमें यकायक दरवाजेका परदा हटता है और हर्ष-सम्भ्रमके कारण घबराये हुए-से भृङ्गिरिटि (गणप्रधान) बाहर आकर हाथ ऊँचा करके कहते हैं कि 'देवीके पुत्र-जन्म हुआ है। गणो! अब बैठे क्या देखते हो? नाच शुरू होना चाहिये।' वह यह कह ही रहे थे कि 'मातृमण्डल' की तरफसे चामुण्डा बाहर आती हैं। 'आहा! देवीके पुत्र-जन्म हुआ है' इसी वाक्यको हर्षसे दुहराती हुई प्रसन्नताके कारण भृङ्गिरिटिका आलिङ्गन करती हैं। वह भी बधाईकी खुशीमें उनका आलिङ्गन करते हैं। यों उन दोनोंके परस्पर बारम्बार आलिङ्गनके समय वक्षःस्थलमें धारण किये हुए पुराने बड़े-बड़े अस्थि (हड्डियाँ) जर्जर होते हुए आपसमें खड़खड़ाकर टकराते हैं, जिसके घोर शब्दमें देवताओंकी तरफसे बजायी हुई दुन्दुभियोंका नाद भी दब जाता है। वही शब्द आपलोगोंकी रक्षा करे—

देवी पुत्रमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्भुजे
हर्षाद्भृङ्गिरिटावुदाहृतगिरा चामुण्डयालिङ्गिते।
पायाद्वो जितदेवदुन्दुभिघनध्वानप्रवृत्तिस्तयो-
रन्योन्याङ्कनिपातजर्जरजरत्स्थूलास्थिजन्मा रवः॥

भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किंतु साथ ही अत्यधिक उदार भी हैं। आपने जैसे ही पुत्रका जन्म सुना, वैसे ही बधाई उपस्थित करनेवाले ब्रह्माजीको समुचित पुरस्कार देना चाहा। चारों तरफ नजर फैलाकर देखा। अपरिग्रही भगवान्के यहाँ हो ही क्या सकता था? किंतु बधाईमें दुशाला, कड़े, मङ्गलके लिये कुङ्कुम-विलेपनादि होना तो आवश्यक ही था। बस, [illegible] अपने नीचे बिछे हुए सिंहचर्मको दुशाला बना डाला, [illegible] के कड़े (सर्प) उनके हाथमें डाल दिये। साथ ही [illegible] हुआ भस्म सर्वाङ्गमें विलेपित

कर दिया। अपने घरकी बधाईकी इस उदारताको सुनकर गिरिराजनन्दिनी एकदम हँस पड़ीं, वही गिरिजाका हास्य हमें पवित्र करे।

श्रुत्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण
पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय।
शार्दूलचर्म भुजगाभरणं सभस्म
दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु॥

जिस 'विधाता'ने आत्माराम भगवान्‌को इस गृहस्थाश्रमके पचड़ेमें डालकर तपश्चर्यासे हटाया, उसके लिये यही उचित भी था कि 'लो, हमें तुम गृहस्थ बनाते हो तो तुम राख रमाकर भजन किया करो।'

यहाँ क्रमसे षडानन, पञ्चानन, चतुराननकी घटना-चतुराई भी कविकी दर्शनीय है।

× × ×

नटराजराज भगवान् शिव देवीको नाट्यकी शिक्षा दे रहे हैं। नाचते समय किस भावके अभिनयके लिये हाथ कहाँ और कैसे रहना चाहिये, अङ्ग किस तरह रहे, चरणको किस तरह टेढ़ा करके रखना चाहिये, यों अभिनय और उसकी स्थिति सिखला रहे हैं। इस निभृत विनोदके समय किसी भी सेवकको पास नहीं रखा गया है। और तो क्या, संगत करनेके लिये मृदङ्गवाला भी पास नहीं रखा गया है। उसका काम भी आप ही कर रहे हैं। आप बताते हैं देखो, इस भावपर हाथको यों ऊँचा उठाओ।' किंतु जिस समय मनके अनुकूल काम होता हुआ नहीं देखते हैं, आपसे नहीं रहा जाता। आप उठकर अपने हाथसे देवीके हाथको ऊँचा उठाकर दिखलाते हैं कि—

'देखो! बाहु-लताको यों उठाये रखो और इस तरह अपने अङ्गको रखो। हूँ, हूँ, देखो बहुत ऊँचो नहीं। 'नम', कुछ नीची हो जाओ। हूँ, हूँ, देखो, पैरके अग्रभागको कुञ्चित कर लो।' नयी सीखनेवाली देवीसे जब यह ठीक-ठीक नहीं बैठता तब आप कहते हैं, 'देखो, मेरी तरफ देखो, मैं कैसे खड़ा हूँ,' यों स्वयं अभिनय करते हुए सिखा-सिखाकर आप श्रीपार्वतीको नचा रहे हैं और 'पकभम् पकभम्' करके अपने मेघगम्भीर-ध्वनियुक्त मुँहसे पखावज भी बजा रहे हैं। 'सम' पर ठीक-ठीक विश्राम होता जाय, इसके लिये अपने हाथोंसे आप 'ताल' भी देते जाते हैं। किंतु नवशिक्षिता होनेके कारण देवी जब 'लय' में धीमी पड़ जाती हैं, तब आप भी 'लय' को तोड़कर विलम्बित लयसे तालिका देने लगते हैं। वही भगवान्‌की तालिकाएँ आपकी रक्षा करें—

एवं धारय देवि बाहुलतिकामेवं कुरुष्वाङ्गकं
मात्युच्चैर्नम कुञ्चयाग्रचरणं मां पश्य तावत्स्थितम्।
देवीं नर्तयतः स्ववक्त्रमुरजेनाम्भोधरध्वानिना
शम्भोर्वः परिपान्तु लम्बिततलयच्छेदाहतास्तालिकाः॥

× × ×

त्रिलोकवन्दनीय भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किंतु लोकातिशायिनी सम्पत्तियाँ उनके पैरोंमें लोटती हैं। जिस समय वह बैलपर सवार होकर बाहर निकलते हैं, उस समय जो इन्द्र 'इदि परमैश्वर्ये' अर्थात् ऐश्वर्यकी पराकाष्ठाका स्वामी है, वही मद झरते हुए ऐरावतपर बैठा हुआ भी बड़े सम्भ्रमके साथ उसे छोड़कर भगवान् शिवके चरणोंपर अपना मस्तक टेकता है और अपने मुकुटके पारिजात-पुष्पोंके परागसे उनकी चरणाङ्गुलियोंको रञ्जित करता है—

असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः
प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना
विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली॥

परंतु कवि शिवकी इस अकिञ्चनतापर भी कई कल्पनाएँ जमाते हैं। कोई कहता है कि पार्वती शिवजीके घरमें आ तो गयीं, परंतु गृहस्थिति देखकर वे घबरा उठीं। वे देखती हैं कि घरमें हजार मुँहवाला एक साँप है, जिसके एक-एक मुखके लिये छटाँक-छटाँकभर भी दूध देना पड़े तो भी डेढ़-पौने दो मन होता है। स्वामी भी ईश्वरकी कृपासे पाँच मुँहवाले हैं। पुत्र भी दो हैं, जो दोनों ही भोजनके समय पैंजनियोंसे बात करते है। एक छः मुँहवाला है, दूसरा हाथीके मुँहवाला। घरमें आमदनीका यह हाल है कि रोज भिक्षा माँगनेसे काम चलता है। अब किस तरहसे काम चलेगा।' यों पार्वती जिस समय चिन्ताके कारण दीर्घ निःश्वास लेती हैं, उस समय भगवान् शिव मन-ही-मन हँसते हैं, यद्यपि वह हास्य उनके मुखपर झलकने नहीं पाता, वही शिव हमारी रक्षा करें—

सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि च नः पञ्चवदनः
षडास्यो हन्तैकस्तव इतरो वारणमुखः।

संस्कृत-कवियोंने भक्तिप्रवण होकर भगवान् शिवका गुणस्तवन न किया हो सो बात नहीं। वह जिस समय शिव-विषयक रतिभावसे अनुप्राणित हो जाते हैं, उस समय 'प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः' होनेवाले वही हैं अर्थात् उनको रोमाञ्च हो उठता है। आँखोंसे प्रेमका प्रवाह बह निकलता है, किंतु जिस समय वह कविताकी तरङ्गोंमें बहने लगते हैं, उस समय शिव-विषयक भावना पीछे रह जाती है और कल्पनाकी लहर उन्हें आगे ले जाती है।

(४)

काव्यकी आत्मा 'रस' है। वह रस किसी अर्थगत चमत्कारके बिना नहीं रह सकता। इसीलिये चमत्कारकारक नवीनता लानेके लिये कविलोग अनेक कल्पनाएँ किया करते हैं। यदि वह 'औचित्य' की सीमाको न लाँघें तो कल्पनामें कविको पूर्ण स्वातन्त्र्य है। 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः' अपार इस काव्य-सृष्टिमें कवि ही विधाता है। सामाजिकके अनुरञ्जनके लिये 'यथा देहे तथा देवे' के अनुसार कवि देव-चरित्रोंका भी मानुषचरित्रकी भाँति चित्रण किया करते हैं। इसी आधारसूत्रको पकड़कर शिववर्णनपर भी कवियोंकी नाना कल्पनाएँ चलती हैं।

जगज्जननी भगवती पार्वतीसे स्वामिकार्तिकेयका जन्म अवश्य हुआ है, परंतु उन्हें सामान्य गर्भिणीकी भाँति प्रसववेदनाका कष्ट नहीं भोगना पड़ा। न भगवान् शिवके घरमें प्रसवके समय सबपर एक संकट-सा ही रहा कि देखिये कैसे क्या होता है? न बाहर बैठे घरके लोग और नौकर-चाकर इस तालावेलीहीमें रहे कि देखें देवीको पुत्र होता है कि कन्या। सामान्य-सी सिद्धि रखनेवालेतक जब यह बता देते हैं कि पुत्र होगा या कन्या, तब क्या शिव-परिवारको यह बात भी विदित न थी? यहाँ तो तारकासुरपर विजयके लिये देवताओंने भगवान् शिवकी पुत्र-संतति पहलेसे ही निश्चित कर रखी थी, बल्कि उसीके लिये शिव-विवाहका आयोजन ही किया गया था। किंतु चमत्कारके लिये कवि गृहस्थके घरका-सा चित्र यहाँ उपस्थित करता है। इसलिये ऐसे कवि 'अर्थकवि' कहलाते हैं। इसका कुछ परिचय नीचे देखिये।

श्रीपार्वतीके प्रसवका समय है। सम्पूर्ण शिव-परिवार 'मोहर' के लिये बाहर ही उपस्थित है। किसीका किसी कार्यमें मन नहीं लगता। सबको यह प्रतीक्षा है कि देखें पुत्र होता है या कुमारी। बधाईकी आशा करनेवाले लोग पुत्रोत्सवकी उमंगमें वहीं आ जुटे हैं। जनानेकी ड्योढ़ीपर कड़ा पहरा है, किंतु उसके बाहर ही गणोंकी भीड़ लग रही है। सबकी टकटकी ड्योढ़ीके दरवाजेपर बँध रही है कि देखें कब और क्या खबर आती है? इधर गण और उधर 'मातृगण' बड़ी उत्सुकतासे बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि बधाईका संवाद आते ही दुतरफा मङ्गलोत्सव शुरू कर दिया जाय, नृत्य-गान आरम्भ हो। ऐसे उत्सुक प्रतीक्षाकालमें यकायक दरवाजेका परदा हटता है और हर्ष-सम्भ्रमके कारण घबराये हुए-से भृङ्गिरिटि (गणप्रधान) बाहर आकर हाथ ऊँचा करके कहते हैं कि 'देवीके पुत्र-जन्म हुआ है। गणो! अब बैठे क्या देखते हो? नाच शुरू होना चाहिये।' वह यह कह ही रहे थे कि 'मातृमण्डल' की तरफसे चामुण्डा बाहर आती हैं। 'आहा! देवीके पुत्र-जन्म हुआ है' इसी वाक्यको हर्षसे दुहराती हुई प्रसन्नताके कारण भृङ्गिरिटिका आलिङ्गन करती हैं। वह भी बधाईकी खुशीमें उनका आलिङ्गन करते हैं। यों उन दोनोंके परस्पर बारम्बार आलिङ्गनके समय वक्षःस्थलमें धारण किये हुए पुराने बड़े-बड़े अस्थि (हड्डियाँ) जर्जर होते हुए आपसमें खड़खड़ाकर टकराते हैं, जिसके घोर शब्दमें देवताओंकी तरफसे बजायी हुई दुन्दुभियोंका नाद भी दब जाता है। वही शब्द आपलोगोंकी रक्षा करे—

देवी पुत्रमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्भुजे
हर्षाद्भृङ्गिरिटावुदाहृतगिरा चामुण्डयालिङ्गिते।
पायाद्वो जितदेवदुन्दुभिघनध्वानप्रवृत्तिस्तयो-
रन्योन्याङ्कनिपातजर्जरजरत्स्थूलास्थिजन्मा रवः॥

भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किंतु साथ ही अत्यधिक उदार भी हैं। आपने जैसे ही पुत्रका जन्म सुना, वैसे ही बधाई उपस्थित करनेवाले ब्रह्माजीको समुचित पुरस्कार देना चाहा। चारों तरफ नजर फैलाकर देखा। अपरिग्रही भगवान्के यहाँ हो ही क्या सकता था? किंतु बधाईमें दुशाला, कड़े, मङ्गलके लिये कुङ्कुम-विलेपनादि होना तो आवश्यक ही था। बस, आपने अपने नीचे बिछे हुए सिंहचर्मको दुशाला बना डाला, अपने हाथके कड़े (सर्प) उनके हाथमें डाल दिये। साथ ही सम्मानके लिये समीपमें रखा हुआ भस्म सर्वाङ्गमें विलेपित

कर दिया। अपने घरकी बधाईकी इस उदारताको सुनकर गिरिराजनन्दिनी एकदम हँस पड़ीं, वही गिरिजाका हास्य हमें पवित्र करे।

> श्रुत्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण
> पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय।
> शार्दूलचर्म भुजगाभरणं सभस्म
> दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु॥

जिस 'विधाता'ने आत्माराम भगवान्‌को इस गृहस्थाश्रमके पचड़ेमें डालकर तपश्चर्यासे हटाया, उसके लिये यही उचित भी था कि 'लो, हमें तुम गृहस्थ बनाते हो तो तुम राख रमाकर भजन किया करो।'

यहाँ क्रमसे षडानन, पञ्चानन, चतुराननकी घटना-चतुराई भी कविकी दर्शनीय है।

× × ×

नटराजराज भगवान् शिव देवीको नाट्यकी शिक्षा दे रहे हैं। नाचते समय किस भावके अभिनयके लिये हाथ कहाँ और कैसे रहना चाहिये, अङ्ग किस तरह रहे, चरणको किस तरह टेढ़ा करके रखना चाहिये, यों अभिनय और उसकी स्थिति सिखला रहे हैं। इस निभृत विनोदके समय किसी भी सेवकको पास नहीं रखा गया है। और तो क्या, संगत करनेके लिये मृदङ्गवाला भी पास नहीं रखा गया है। उसका काम भी आप ही कर रहे हैं। आप बताते हैं देखो, इस भावपर हाथको यों ऊँचा उठाओ।' किंतु जिस समय मनके अनुकूल काम होता हुआ नहीं देखते हैं, आपसे नहीं रहा जाता। आप उठकर अपने हाथसे देवीके हाथको ऊँचा उठाकर दिखलाते हैं कि—

'देखो ! बाहु-लताको यों उठाये रखो और इस तरह अपने अङ्गको रखो। हूँ, हूँ, देखो बहुत ऊँची नहीं। 'बस', कुछ नीची हो जाओ। हैं, हैं, देखो, पैरके अग्रभागको कुञ्चित कर लो।' नयी सीखतर देवीसे जब यह ठीक-ठीक नहीं बैठता तब आप कहते हैं, 'देखो, मेरी तरफ देखो, मैं कैसे खड़ा हूँ।' यों स्वयं अभिनय करते हुए सिखा-सिखाकर आप श्रीपार्वतीको नचा रहे हैं और 'पकभम् पकभम्' करके अपने मेघगम्भीर-ध्वनिपूर्ण मुँहसे पखावज भी बजा रहे हैं। 'सम' पर ठीक-ठीक विश्राम होता जाय, इसके लिये अपने हाथोंसे आप 'ताल' भी देते जाते हैं। किंतु नवदीक्षिता होनेके कारण देवी जब 'लय' में धीमी पड़ जाती हैं, तब आप भी 'लय' को तोड़कर विलम्बित लयसे तालिका देने लगते हैं। वही भगवान्‌की तालिकाएँ आपकी रक्षा करें—

> एवं धारय देवि बाहुलतिकामेवं कुरुष्वाङ्गकं
> मात्युच्चैर्नम कुञ्चयाग्रचरणं मां पश्य तावत्स्थितम्।
> देवीं नर्तयतः स्ववक्त्रमुरजेनाम्भोधरध्वानिना
> शम्भोर्वः परिपान्तु लम्बितलयच्छेदाहतास्तालिकाः॥

× × ×

त्रिलोकवन्दनीय भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किंतु लोकातिशायिनी सम्पत्तियाँ उनके पैरोंमें लोटती हैं। जिस समय वह बैलपर सवार होकर बाहर निकलते हैं, उस समय जो इन्द्र 'इदि परमैश्वर्ये' अर्थात् ऐश्वर्यकी पराकाष्ठाका स्वामी है, वही मद झरते हुए ऐरावतपर बैठा हुआ भी बड़े सम्भ्रमके साथ उसे छोड़कर भगवान् शिवके चरणोंपर अपना मस्तक टेकता है और अपने मुकुटके पारिजात-पुष्पोंके परागसे उनकी चरणाङ्गुलियोंको रञ्जित करता है—

> असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः
> प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
> करोति पादावुपगम्य मौलिना
> विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली॥

परंतु कवि शिवकी इस अकिञ्चनतापर भी कई कल्पनाएँ जमाते हैं। कोई कहता है कि पार्वती शिवजीके घरमें आ तो गयीं, परंतु गृहस्थिति देखकर वे घबरा उठीं। वे देखती हैं कि घरमें हजार मुँहवाला एक साँप है, जिसके एक-एक मुखके लिये छटाँक-छटाँकभर भी दूध देना पड़े तो भी डेढ़-पौने दो मन होता है। स्वामी भी ईश्वरकी कृपासे पाँच मुँहवाले हैं। पुत्र भी दो हैं, जो दोनों ही भोजनके समय पंक्तियोंमें यत्न करते हैं। एक छः मुँहवाला है, दूसरा हाथीके मुँहवाला। घरमें आमदनीका यह हाल है कि रोज भीख माँगनेसे काम चलता है। अब किस तरहसे काम चलेगा।' यों पार्वती जिस समय फिक्रके कारण दीर्घ निःश्वास लेती हैं, उस समय भगवान् शिव मन-ही-मन हँसते हैं, यद्यपि यह हास्य उनके मुखपर झलके बिना नहीं रहता, वही शिव हमारी रक्षा करें—

> सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि च पञ्चवदनः
> षडास्यो हस्त्येकानन इतरो बालकयुगः।

गृहे भैक्ष्यं शश्वत्प्रभवतु कथं वर्तनमिति
श्वसत्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भुः स्मितमुखः ॥

एक कवि कहता है कि शिवने देखा कि अपने घरमें दो पेट पालना मुश्किल पड़ेगा, इसलिये पहलेसे अपने ही आधे अङ्गमें पत्नीको रख लिया, जिससे एक पेट भरनेसे भी काम चल जाय। यदि यह बात नहीं है तो उनका बेटा अबतक क्यों कुंवारा डोलता है—

उदरद्वयभरणभयादर्धाङ्गाहितदारः ।
यदि नैवं तस्य सुतः कथमद्यापि कुमारः ॥

एक कवि कहता है कि पार्वती इस भिक्षा-व्यवसायसे तंग आकर शिवजीको खेतीका धंधा चलानेकी सलाह देती हैं। रातको निष्किञ्चन घरके काम-काजसे निबटकर अपने झोंपड़ेमें बैठी हुई शिवजीके साथ मनसूबा बाँध रही हैं—

'सुना है, परशुराम आजकल जमीन दे रहे हैं, उनसे थोड़ी जमीन माँग लो। यदि तुमसे इसके लिये भी मुँह न खोला जाय तो किसी दूसरेके साथ वहाँ चले जाओ और उसीके द्वारा माँग लो ('याचय' णिजन्त है, इसलिये)। 'धनपति' से बीज उधार ले लो। बलरामसे थोड़े दिनके लिये उनका हल माँग लाओ। अब रहे बैल, सो एक तो तुम्हारे पास है ही और दूसरेके लिये और न हो तो धर्मराजसे एक 'भैंसा' ही ले लो, किसी तरह दोनोंसे काम चल जायगा और उस पुराने हलमें यदि 'फाल' की जरूरत पड़े तो यह तुम्हारा त्रिशूल काम दे देगा। दोपहरको खेतपर तुम्हारी रोटी पहुँचाना मेरे जिम्मे रहा। अब जानवरोंको चरानेकी रही, सो यह इतना बड़ा लड़का (स्कन्द) यों ही मारा-मारा फिरता है, यह ढोरोंकी रखवाली कर लेगा। मैं तो तुम्हारे इस भीख माँगनेसे तंग आ गयी, अब तो खेती कर लो।' यह गौरीका वचन तुम्हारी रक्षा करे—

रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव ।
शक्ताहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
खिन्नाहं हर भिक्षया कुरु कृषिं गौरीवचः पातु वः ॥

पार्वती देखती हैं कि घरमें चारों तरफ खोटी-ही-खोटी संगति है—गङ्गा है तो वह स्वभावसे टेढ़ी और 'संध्यारागवती' है, साँझ होते ही उसपर रंगत ही दूसरी चढ़ जाती है। साँप तो 'द्विजिह्व' प्रसिद्ध ही हैं। चन्द्रमा, वह मलिन (कलङ्की) और बड़ा टेढ़ा है तथा नन्दी वंदरमुँहा है। बैल सो बैल ही ठहरे। दुर्जनोंसे भरे इस घरमें अब निर्वाह कैसे होगा' यों चिन्ता करती हुई, नरकपाल हाथमें लिये वही श्रीगौरी आपकी रक्षा करें।'

संध्यारागवती स्वभावकुटिला गङ्गा द्विजिह्वः फणी
वक्रोऽङ्कैर्मलिनः शशी कपिमुखो नन्दी च मूर्खो वृषः ।
इत्थं दुर्जनसंकटे पतिगृहे वस्तव्यमेतत् कथं
गौरीत्थं नृकपालपाणिकमला चिन्तान्विता पातु वः ॥

शिवके घरमें अहर्निश कलह-ही-कलह होता दीखता है—

'गणपतिके वाहनको क्षुधातुर भुजङ्ग लीलना चाहता है, और जैसे ही वह मूषकपर टूटता है, वैसे ही स्वामिकार्तिकका मोर सर्पपर झपटता है। इधर पार्वतीका सिंह गजाननपर नजर बाँधे रहता है। इनसे निबटते हैं तो इधर गौरी और गङ्गाका सौतियाडाह चला ही करता है। और तो क्या, कपालवाला मस्तक समीपके चन्द्रमापर ही दाँत पीसता है। यों रात-दिनके कुटुम्ब-कलहसे तंग आकर भगवान् शिवने भी जहर पी लिया।'—

अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम् ।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालाननो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम् ॥

'जहर पीकर भी वह क्या बच जाते, परंतु—'पार्वती' पर्वतमें उत्पन्न हुई, 'अपर्णा' जिसमें पत्तेतक नहीं, उसे हम एक अद्भुत ओषधि समझते हैं, जिसके प्रभावसे जन्मसे 'शूली' शूलरोगी, शिव हलाहल पीकर भी मृत्युञ्जय हो गये।'—

पार्वतीमौषधीमेकामपर्णां मृगयामहे ।
शूली हालाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥

'अपर्णा', बिना ही पत्तेकी इस अद्भुत लताका समझदारोंको सदा सेवन करना चाहिये, जिसके 'वरण' करते ही (आवरण करते ही) पुराना 'स्थाणु' (शिव, सूखा ठूँठ) भी अमृत-फल पैदा करता है—

अपर्णैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः ।

यथावृतः पुराणोऽपि स्थाणुः सूतेऽमृतं फलम्॥

× × ×

बालक कार्तिकेय और गजानन दोनों ही भूखके मारे खानेकी तलाशमें इधर-उधर देख रहे हैं। पिताजीके जटाजूटके अंदर गङ्गामें तैरता हुआ चन्द्रमा दिखायी पड़ता है। स्वामिकार्तिक तो मठेके अंदर फड़कती हुई मछली समझकर लालच-भरे चञ्चल नेत्र डाल रहे हैं और गणेश जलमेंसे निकला हुआ सफेद कमलकन्द समझकर सूँड बढ़ाना चाहते हैं। वही शिवका केशबन्ध आपके कल्मषको दूर करे।—

उत्क्लेशं केशबन्धः कुसुमशररिपोः कल्मषं वः स मुष्या-
द्यत्रेन्दुं वीक्ष्य गङ्गाजलभरलुलितं बालभावादमूताम्।
क्रौञ्चारातिश्च फाण्टस्फुरितशफरिकामोहलोलेक्षणश्रीः
सद्यः प्रोद्यन्मृणालीग्रहणरसलसत्पुष्करश्च द्विपास्यः॥

× × ×

अस्तु—

पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता।
पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्गप्रदास्तु नः॥

'पिनाक (धनुष) फणी, बालचन्द्रमा, भस्म और मन्दाकिनी (गङ्गा) इनसे संयुक्त अतएव क्रमसे 'प-फ-ब-भ-म' इस पवर्गसे संघटित श्रीशिवकी मूर्ति हमलोगोंके लिये अपवर्ग (मोक्ष)-प्रद हो।'

मानसमें शिव और सती

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥

—श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाईमें ग्रन्थकार श्रीगोस्वामीजीने महर्षि याज्ञवल्क्यके प्रवचनके द्वारा भगवान् शिव और माता सतीदेवीकी असीम महिमा बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रतिपादित की है। प्रथम चरणमें *'सिव सम को'* और द्वितीय चरणमें *'सती असि नारी'* पदके द्वारा दम्पतीकी महिमाको गम्भीरता पराकाष्ठाको पहुँचा दी गयी है। भगवान् शिवके लिये *'रघुपति ब्रतधारी'* विशेषण ही उनके व्रतकी महत्ताको प्रकट कर रहा है, क्योंकि संसारमें सब धर्मोंका सार, सब तत्त्वोंका निचोड़ भगवत्प्रेम ही निश्चय किया गया है। भगवान् परब्रह्ममें दृढ़ निष्ठाका हो जाना ही परम विशिष्ट धर्म है और भगवान् शिवने तो अपने अनुभवसे इसीको सार समझकर जगत्को निःसार निश्चित कर लिया था। जैसे—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

इसी प्रेम-भावकी महिमासे सती-ऐसी नारीमें भी उनकी आसक्ति न थी। जिस समय त्रेतायुगमें कुम्भज ऋषिके आश्रमसे वे सतीके साथ कैलासको लौट रहे थे, उसी समय दण्डकारण्यमें सीताहरणके कारण पत्नीवियोगमें दुःखित मानव-लीला करते हुए श्रीरघुनाथजीका उन्हें दर्शन हुआ और उन्होंने *'जय सच्चिदानंद परधामा'* कहकर उनको प्रणाम किया। इसपर सतीको यह संदेह हुआ कि नृपसुतको *'सच्चिदानंद परधामा'* कहकर सर्वज्ञ शिवने क्यों प्रणाम किया! भगवान् शिवने सतीको भगवत्-अवतारकी बात अनेक प्रकारसे समझायी, परंतु उन्हें बोध न हुआ—

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥

शिवजीने अपने हृदयमें ध्यान धरकर देखा कि 'इसमें हरिमायाकी प्रेरणा हो रही है, क्योंकि जब *'मोरेहु कहें न संसय जाहीं'* तब प्रभुकी जो इच्छा है, उसीमें सतीको प्रेरित कर देना हमारा भी धर्म है।' इसलिये उन्होंने कहा—

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥

यद्यपि भगवान् शिवके विषयमें यह प्रमाण है कि *'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'* तथापि जिस भावीमें हरिकी इच्छा शामिल है उसे हृदयमें विचारकर भगवान् शिव कदापि उसके मेटनेकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वैसा ही होनेमें आप भी सहायक हो जाते हैं—

हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥

सच है, सुजान भक्तोंकी भक्तिका इसीमें परिचय मिलता है, यही मर्म श्रीगुरु वसिष्ठजीके इस वाक्यमें भरा हुआ है—

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।

क्योंकि जब अगाधहृदय श्रीभरतजीने कहा—

सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

गृहे भैक्ष्यं शश्वत्प्रभवतु कथं वर्तनमिति
श्वसत्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भुः स्मितमुखः ॥

एक कवि कहता है कि शिवने देखा कि अपने घरमें दो पेट पालना मुश्किल पड़ेगा, इसलिये पहलेसे अपने ही आधे अङ्गमें पत्नीको रख लिया, जिससे एक पेट भरनेसे भी काम चल जाय। यदि यह बात नहीं है तो उनका बेटा अबतक क्यों कुँवारा डोलता है—

उदरद्वयभरणभयादर्धाङ्गाहितदारः ।
यदि नैवं तस्य सुतः कथमद्यापि कुमारः ॥

एक कवि कहता है कि पार्वती इस भिक्षा-व्यवसायसे तंग आकर शिवजीको खेतीका धंधा चलानेकी सलाह देती हैं। रातको निष्किञ्चन घरके काम-काजसे निबटकर अपने झोंपड़ेमें बैठी हुई शिवजीके साथ मनसूबा बाँध रही हैं—

'सुना है, परशुराम आजकल जमीन दे रहे हैं, उनसे थोड़ी जमीन माँग लो। यदि तुमसे इसके लिये भी मुँह न खोला जाय तो किसी दूसरेके साथ वहाँ चले जाओ और उसीके द्वारा माँग लो ('याचय' णिजन्त है, इसलिये)। 'धनपति' से बीज उधार ले लो। बलरामसे थोड़े दिनके लिये उनका हल माँग लाओ। अब रहे बैल, सो एक तो तुम्हारे पास है ही और दूसरेके लिये और न हो तो धर्मराजसे एक 'भैंसा' ही ले लो, किसी तरह दोनोंसे काम चल जायगा और उस पुराने हलमें यदि 'फाल' की जरूरत पड़े तो यह तुम्हारा त्रिशूल काम दे देगा। दोपहरको खेतपर तुम्हारी रोटी पहुँचाना मेरे जिम्मे रहा। अब जानवरोंको चरानेकी रही, सो यह इतना बड़ा लड़का (स्कन्द) यों ही मारा-मारा फिरता है, यह ढोरोंकी रखवाली कर लेगा। मैं तो तुम्हारे इस भीख माँगनेसे तंग आ गयी, अब तो खेती कर लो।' यह गौरीका वचन तुम्हारी रक्षा करे—

रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव।
शक्ताऽहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
खिन्नाऽहं हर भिक्षया कुरु कृषिं गौरीवचः पातु वः ॥

पार्वती देखती हैं कि घरमें चारों तरफ खोटी-ही-खोटी संगति है—'गङ्गा है तो वह स्वभावसे टेढ़ी और 'संध्यारागवती' है, साँझ होते ही उसपर रंगत ही दूसरी चढ़ जाती है। साँप तो 'द्विजिह्व' प्रसिद्ध ही हैं। चन्द्रमा, वह मलिन (कलङ्की) और बड़ा टेढ़ा है तथा नन्दी बंदरमुँहा है। बैल सो बैल ही ठहरे। दुर्जनोंसे भरे इस घरमें अब निर्वाह कैसे होगा' यों चिन्ता करती हुई, नरकपाल हाथमें लिये वही श्रीगौरी आपकी रक्षा करे।'

संध्यारागवती स्वभावकुटिला गङ्गा द्विजिह्वः फणी
वक्रोऽङ्गैर्मलिनः शशी कपिमुखो नन्दी च मूर्खो वृषः।
इत्थं दुर्जनसंकटे पतिगृहे वस्तव्यमेतत् कथं
गौरीत्थं नृकपालपाणिकमला चिन्तान्विता पातु वः ॥

शिवके घरमें अहर्निश कलह-ही-कलह होता दीखता है—

'गणपतिके वाहनको क्षुधातुर भुजङ्ग लीलना चाहता है, और जैसे ही वह मूषकपर टूटता है, वैसे ही स्वामिकार्तिकका मोर सर्पपर झपटता है। इधर पार्वतीका सिंह गजाननपर नजर बाँधे रहता है। इनसे निबटते हैं तो इधर गौरी और गङ्गाका सौतियाडाह चला ही करता है। और तो क्या, कपालवाला मस्तक समीपके चन्द्रमापर ही दाँत पीसता है। यों रात-दिनके कुटुम्ब-कलहसे तंग आकर भगवान् शिवने भी जहर पी लिया।'—

अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम्।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालाननो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम् ॥

'जहर पीकर भी वह क्या बच जाते, परंतु—'पार्वती' पर्वतमें उत्पन्न हुई, 'अपर्णा' जिसमें पत्तेतक नहीं, उसे हम एक अद्भुत ओषधि समझते हैं, जिसके प्रभावसे जन्मसे 'शूली' शूलरोगी, शिव हलाहल पीकर भी मृत्युञ्जय हो गये।'—

पार्वतीमौषधीमेकामपर्णां मृगयामहे।
शूली हालाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥

'अपर्णा', बिना ही पत्तेकी इस अद्भुत लताका समझदारोंको सदा सेवन करना चाहिये, जिसके 'वरण' करते ही (आवरण करते ही) पुराना 'स्थाणु' (शिव, सूखा ठूँठ) भी अमृत-फल पैदा करता है—

अपर्णैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः।

यथावृतः पुराणोऽपि स्थाणुः सूतेऽमृतं फलम् ॥

× × ×

बालक कार्तिकेय और गजानन दोनों ही भूखके मारे खानेकी तलाशमें इधर-उधर देख रहे हैं। पिताजीके जटाजूटके अंदर गङ्गामें तैरता हुआ चन्द्रमा दिखायी पड़ता है। स्वामिकार्तिक तो मठेके अंदर फड़कती हुई मछली समझकर लालच-भरे चञ्चल नेत्र डाल रहे हैं और गणेश जलमेंसे निकला हुआ सफेद कमलकन्द समझकर सूँड बढ़ाना चाहते हैं। वही शिवका केशबन्ध आपके कल्मषको दूर करे।—

उत्क्लेशं केशबन्धः कुसुमशररिपोः कल्मषं वः स मुष्या-
द्यत्रेन्दुं वीक्ष्य गङ्गाजलभरलुलितं बालभावादभूताम्।
क्रौञ्चारातिश्च फाण्टस्फुरितशफरिकामोहलोलेक्षणश्रीः
सद्यः प्रोद्यन्मृणालीग्रहणरसलसत्पुष्करश्च द्विपास्यः ॥

× × ×

अस्तु—

पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता ।
पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्गप्रदास्तु नः ॥

'पिनाक (धनुष) फणी, बालचन्द्रमा, भस्म और मन्दाकिनी (गङ्गा) इनसे संयुक्त अतएव क्रमसे 'प-फ-ब-भ-म' इस पवर्गसे संघटित श्रीशिवकी मूर्ति हमलोगोंके लिये अपवर्ग (मोक्ष)-प्रद हो।'

मानसमें शिव और सती

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥

—श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाईमें ग्रन्थकार श्रीगोस्वामीजीने महर्षि याज्ञवल्क्यके प्रवचनके द्वारा भगवान् शिव और माता सतीदेवीकी असीम महिमा बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रतिपादित की है। प्रथम चरणमें *'सिव सम को'* और द्वितीय चरणमें *'सती असि नारी'* पदके द्वारा दम्पतीकी महिमाकी गम्भीरता पराकाष्ठाको पहुँचा दी गयी है। भगवान् शिवके लिये *'रघुपति ब्रतधारी'* विशेषण ही उनके व्रतकी महत्ताको प्रकट कर रहा है, क्योंकि संसारमें सब धर्मोंका सार, सब तत्त्वोंका निचोड़ भगवत्प्रेम ही निश्चय किया गया है। भगवान् परब्रह्ममें दृढ़ निष्ठाका हो जाना ही परम विशिष्ट धर्म है और भगवान् शिवने तो अपने अनुभवसे इसीको सार समझकर जगत्‌को निःसार निश्चित कर लिया था। जैसे—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

इसी प्रेम-भावकी महिमासे सती-ऐसी नारीमें भी उनकी आसक्ति न थी। जिस समय त्रेतायुगमें कुम्भज ऋषिके आश्रमसे वे सतीके साथ कैलासको लौट रहे थे, उसी समय दण्डकारण्यमें सीताहरणके कारण पत्नीवियोगमें दुःखित मानव-लीला करते हुए श्रीरघुनाथजीका उन्हें दर्शन हुआ और उन्होंने *'जय सच्चिदानंद परधामा'* कहकर उनको प्रणाम किया। इसपर सतीको यह संदेह हुआ कि नृपसुतको *'सच्चिदानंद परधामा'* कहकर सर्वज्ञ शिवने क्यों प्रणाम किया! भगवान् शिवने सतीको भगवत्-अवतारकी बात अनेक प्रकारसे समझायी, परंतु उन्हें बोध न हुआ—

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ ॥

शिवजीने अपने हृदयमें ध्यान धरकर देखा कि 'इसमें हरिमायाकी प्रेरणा हो रही है, क्योंकि जब *'मोरेहु कहें न संसय जाहीं'* तब प्रभुकी जो इच्छा है, उसीमें सतीको प्रेरित कर देना हमारा भी धर्म है।' इसलिये उन्होंने कहा—

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥

यद्यपि भगवान् शिवके विषयमें यह प्रमाण है कि *'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'* तथापि जिस भावीमें हरिकी इच्छा शामिल है उसे हृदयमें विचारकर भगवान् शिव कदापि उसके मेटनेकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वैसा ही होनेमें आप भी सहायक हो जाते हैं—

हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना ॥

सच है, सुजान भक्तोंकी भक्तिका इसीसे परिचय मिलता है, यही मर्म श्रीगुरु वसिष्ठजीके इस वाक्यमें भरा हुआ है—

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।

क्योंकि जब अगाधहृदय श्रीभरतजीने कहा—

सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।

—तब वसिष्ठजीने स्पष्ट कह दिया—

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥

वस्तुत. बात भी यही है, भगवान् शिव तथा श्रीवसिष्ठजीको भावीके मेटनेकी सामर्थ्य भी तो रामभक्तिके प्रतापसे ही मिली थी। नहीं तो—

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥

श्रीमहादेव अथवा मुनि वसिष्ठजी अपने देवपन या मुनिपनके बलसे विधि-अङ्कोके मिटानेकी सामर्थ्य तो रखते नहीं थे। यह अघटित-घटनकी सामर्थ्य भगवान्की दयासे और भगवद्भक्तिके प्रतापसे भक्तोंको ही हो सकती है। अतः उन भक्तोका यह सिद्धान्त रहता है कि हम तो तुम्हारी खुशीमे खुश हैं और कुछ नहीं चाहते—

राजी हैं हम उमीमें जिसमें तेरी रजा है!

सतीको परीक्षा लेनेका आदेश करते समय भगवान् शिवने इतना चेता दिया था—*'करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी'* परंतु सतीने परीक्षा लेनेके लिये श्रीसीताजीका ही वेप धारण किया, जिसमें शिवजीने अपनी स्वामिनी और माताकी दृढ़ निष्ठा कर रखी थी। अतः—

सिय बेपु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं॥

क्योंकि उनकी यह निश्चित भावना थी—

जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

बल्कि शिवजी सतीको सदाके लिये त्याग देनेका चिन्तन कर रहे थे, इससे उनके हृदयमें अत्यन्त संताप हो उठा—

परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हदयँ अधिक संतापु॥

परंतु भगवद्भक्तोको भगवान्की शरण ही प्रत्येक सुख-दुःखकी अवस्थामें आधार रहती है और उन्हीं 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' रूप विरदके पानेवाले प्रभुसे प्रदान की हुई बुद्धिके द्वारा सदैव शरणागतोंकी रक्षा हुआ करती है, क्योंकि 'ददामि बुद्धियोगं तम्' भी प्रभुकी ही प्रतिज्ञा है। अतएव जब भगवान् शंकरने ऐसे समयमे प्रतिपत्ति ली, जैसे—

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।

—तब भगवान् भक्तवत्सलने उनकी बुद्धिमें प्रेरणा की कि सदाके लिये त्यागकी जरूरत नहीं है। केवल इसी जन्ममें सतीको त्याग करना ठीक है, जिसमें उन्होंने सीताका वेप धारण किया है। अतएव ऐसा ही संकल्प भगवान् शिवने किया, जिससे दोनो काम हो गये, न तो सदाके लिये सतीका त्याग करना पड़ा और न उस शरीरसे प्रीति ही रखी गयी।

समस्त भक्तजनोंको भक्तशिरोमणि (वैष्णवानां यथा शम्भुः) भगवान् शिवके इस रहस्यसे यह उपदेश मिलता है कि जब कोई धर्मसंकट आ पड़े तो सच्चे हृदयसे हरिस्मरण करनेसे ही उसके निर्वाहकी राह निकल आवेगी।

अतएव जब केवल एक जन्मके लिये सतीका त्याग हो गया, तब सतीको अपनी करनीपर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने भी उन्हीं परमप्रभु श्रीरघुनाथजीकी हृदयसे प्रपत्ति ली और कहा कि 'हे आरतिहरण ! हे दीनदयाल !! मेरा यह शरीर शीघ्र छूट जावे, जिससे मै दुःखसागरको पार कर पुनः भगवान् शिवजीको प्राप्त कर सकूँ—

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥
तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥

भगवत्कृपासे योग लग गया और अपने पिता दक्षके यज्ञमें जाकर योगानलसे शरीरको त्यागकर सतीने हिमाचलके घर पार्वतीके रूपमें पुनर्जन्म धारण कर भगवान् शिवको पुनः पतिरूपमें प्राप्त कर लिया।

पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥

× × ×

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। राम भगत समरथ भगवाना॥

इस प्रकार भगवान् शिवने जो बिना अघके ही केवल सीताका वेप धारण करनेके अपराधपर सतीका त्याग कर दिया था, यह उनकी भक्तिकी पराकाष्ठा थी।

'बिनु अघ तजी सती असि नारी।'—इस पदमें 'अघ' शब्द आया है। अघ और अपराधमें महान् अन्तर है। अघ उस दुष्कर्मको कहते हैं, जो वेदादिद्वारा निषिद्ध होनेपर भी

जान-बूझकर अपने वासनानुसार किये जाते हैं। अत. वे क्षम्य कभी नहीं हो सकते। उनका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है। परंतु 'अपराध' चूकको कहते हैं, जो सदा क्षम्य होती है, क्योंकि वह किसी पापबुद्धि या कुवासनाके कारण न होकर भूलसे की जाती है। सतीजीने जो सीताका वेश धारण किया था, उसमें कदापि कोई कुवासना न थी। उसका उद्देश्य तो केवल यही जाँच करना था कि श्रीरघुनाथजी सचमुच ही सच्चिदानन्द ब्रह्मके अवतार हैं अथवा राजपुत्र हैं। केवल भगवत्स्वरूपके बोधार्थ सीताका वेष धारण करना 'अघ' नहीं कहा जा सकता और नारीका त्याग केवल अघके ही कारण हो सकता है। परंतु केवल अपराध हो जानेपर, जो क्षम्य भी हो सकता है, भगवान् शिवने उसे क्षमा न कर उपासनामें विरोध पड़नेके भयसे त्याग दिया। भगवान् शिवकी इस रघुपतिव्रतनिष्ठाको धन्य है।

उपर्युक्त चौपाईमें कोई-कोई अर्थ करनेवाले 'बिनु अघ' पदको विशेषण मानकर 'अनघ शिवजी' ऐसा अर्थ करते हैं, परंतु सतीको यदि अघयुक्त माना जाय तो उसके त्यागसे श्रीशंकरजीमें रघुपतिव्रतनिष्ठाका महत्त्व ही नहीं रह जाता। फिर जिस मुख्य विषयके उद्घाटनके लिये इस चौपाईकी रचना की गयी है, उसका महत्त्व ही नष्ट हो जायगा। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि सतीने शिवसे मिथ्या भाषण किया था, वह तो अघ था। इसका उत्तर यह है कि उसे तो शिवजीने भगवत्-मायाकी प्रेरणा समझकर उसपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया था—

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥

ग्रन्थमें भी सतीत्यागका कारण झूठ बोलना नहीं बल्कि सीताका वेष धारण करना ही लिखा गया है और उसे अघ न कहकर अपराध ही बतलाया गया है—

'सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।'

इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ और परम पुरुषार्थ जो भगवद्भक्ति है, उसमें श्रीशिवजीके समान कौन व्रतधारी हो सकता है? *'सिव सम को'* इस पदका अभिप्राय तो स्पष्ट हो गया। अब *'सती असि नारी'* पदके अभिप्रायकी आलोचना करनी है। सतीजी कैसी आदर्श नारी थीं, इसका प्रमाण उनके इसी एक व्यवहारसे दिया जा सकता है कि जब शिवजीने अपनी क्षमाशीला, अनन्या सतीको अपराध क्षम्य होनेपर भी इतना कठिन दण्ड दिया कि उसे त्याग ही डाला, तब सतीका जीवन महान् विपत्तिमें पड़ गया—

'पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी।'

यथा—

नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥

× × ×

सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं॥

तथापि उन्होंने अपने पतिव्रतधर्मकी पराकाष्ठाको प्रमाणित कर—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

—को चरितार्थ कर दिया। इसी कारण आपको ऐसा पद प्राप्त हुआ—

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥

सांसारिक स्त्रियाँ स्वार्थपरायणा होती हैं। यदि पतिने किसी उचित बातपर भी उन्हें रोका तो वे तत्काल मैकेकी राह लेती हैं और वहाँकी सहायतासे लड़ाई ठान देती हैं। बेचारे पतिको नाकों चने चबाने पड़ते हैं और अन्तमें अनुनय-विनय करनेपर मैकेसे वे लौटनेके लिये राजी होती है तथा पतिको सदा हुकूमतमें रखती हैं। परंतु पूजनीया माता सतीकी पतिनिष्ठाको तो देखिये कि अकारण त्यागे जानेपर भी—

जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥

—अन्तर्यामी भगवान्‌की प्रपत्तिमें इस प्रकारकी शर्त लगा रही हैं तथा पतिदेवकी आज्ञा प्राप्त कर जब दक्षयज्ञमें जाती हैं तो वहाँ अपने पतिदेवके अपमानको श्रवण कर पैतृक-सम्बन्धको तृणवत् समझ इस प्रकार त्याग कर देती हैं कि माता-पिताकी ममता तो क्या, पतिके प्रतिकूल होनेवाले पिताके शुक्रसे उत्पन्न अपने शरीरसे भी अपनी आत्माको अलग कर देती हैं। अनुकूल पतिमें भी ऐसा प्रेम विरली ही नारियोंमें पाया जाता है और इधर तो पतिदेवने रुष्ट होकर सतीसे सम्बन्ध ही विच्छेद कर डाला था। तथापि—

सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध॥

× × ×

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

धन्य है सतीकी सत्यनिष्ठाको ! इसी कारण *'सती असि नारी'* पद दिया गया है।

इस संसारमें स्त्रियोंके उद्धारका शास्त्रसम्मत सर्वश्रेष्ठ और सुलभ मार्ग केवल पातिव्रत्य धर्म ही है— *'नारिधरमु पति देउ न दूजा।'* इसकी शिक्षा संसारभरकी स्त्रियोंको सतीसे लेनी चाहिये तथा मनुष्योंके उद्धारका सर्वश्रेष्ठ और परम सुलभ मार्ग केवल भगवद्भक्ति ही है, यह बात भी सर्व-शास्त्रसम्मत तथा निर्विवाद है और पुरुषमात्रको ऐसे परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके हेतु भगवान् शिवजीका अनुसरण करना चाहिये। प्रेमपथके अद्वितीय आचार्य भगवान् शंकरका अनुसरण कर अनायास मनुष्य संसार-सागरको पार कर सकता है।

इस प्रकार भगवान् शिव और माता सती अपनी निष्ठा और सदाचारके द्वारा समस्त जीवोंके उद्धारका मार्ग निश्चय करा रहे हैं तथा उसे अपने चरित्रद्वारा स्वयं दिखला रहे हैं। दम्पतिका युगलविग्रह जगन्मात्रके कल्याण और उपकारका हेतु है। भगवान् शिवका चरित्र जीवोंके उपदेशके लिये ही है, आप साक्षात् भगवद्गुणावतार हैं। आपकी गिनती जगत्के जीवोंमें कभी नहीं की जा सकती, आप ईश्वरकोटिमें हैं और जीवोंके कल्याणार्थ आविर्भूत होते हैं। श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीयुगल-विग्रहका ऐश्वर्य—

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।

तथा—

भव भव विभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥

—इत्यादि पदोंमें परिलक्षित है।

मानसग्रन्थकारको लीलाप्रकरणमें माता सती और कैकेयीके सम्बन्धमें श्रीरघुनाथजीके विपरीत आचरण करनेके कारण बहुत कुछ बुरा-भला कह देना पड़ा है। जैसे—

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥

तथा कैकेयीके निमित्त—

बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥

परंतु इन सत्पात्रोंके गोप्य ऐश्वर्यके जाननेवाले श्रीगोसाईंजीने अवसर पाकर महर्षि याज्ञवल्क्यके मुखसे *'बिनु अघ'* सतीके लिये तथा उन्हींके शिष्य महर्षि भरद्वाजके मुखसे—

'तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति।'

—कहलाकर कैकेयीकी निर्दोषताको सूचित कर दिया है।

शिव और सतीकी महिमाको 'इदमित्थम्' कौन कह सकता है ? इनका नाम ही 'कल्याण' और सत्स्वरूपा है। ऐसे परम उपास्य भगवान् शिव और सती माताकी जय हो !

शैवदर्शन एवं शिवसूत्र

(पं० श्रीललिताप्रसादजी शास्त्री)

भारतवर्षमें दर्शनशास्त्रका विस्तार अनेक सम्प्रदायोंके रूपमें हुआ है। ये सभी सम्प्रदाय दो भागोंमें विभक्त हैं— वैदिक और अवैदिक। शैवदर्शन वैदिक दर्शन है।

शिवसूत्रमे शैवदर्शनके आधारभूत सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है। ये सूत्र कश्मीर-सूत्रके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। सूत्रकारके विषयमें प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती तथापि शिवसूत्रके विषयमें एक अद्भुत घटना परम्परा-प्राप्त है। भगवान् शंकरने स्वप्नमें महादेव पर्वतपर खुदे हुए सूत्रोंके विषयमें आचार्य वसुगुप्तको उपदेश और योग्य अधिकारी पुरुषोंमें इनके प्रचारका आदेश दिया। इस प्रकार आचार्य वसुगुप्तको इन सूत्रोंकी प्राप्ति हुई। यह शिलाखण्ड कश्मीरमें आज भी 'शङ्करोपल' नामसे प्रसिद्ध है। आचार्य वसुगुप्तसे कल्लटको और उनसे भास्करको इन सूत्रोंकी प्राप्ति हुई।

शिवसूत्रोंपर प्रसिद्ध तीन संस्कृत टीकाएँ प्राप्त होती हैं—श्रीभास्कराचार्यकृत वार्तिक, श्रीक्षेमरामकृत विमर्शिनी टीका एवं पीताम्बरा-पीठ, दतियाके श्रीस्वामीजी महाराज-

कृत ऋज्वर्थबोधिनी टीका।

सूत्रोंमें तीन प्रकरण है, शाम्भव, शाक्त और आणव। शैवदर्शनके सभी विषय इन तीन प्रकरणोमें आ गये हैं, इसीलिये इसको त्रिकदर्शन भी कहते हैं। इन सूत्रोंमे क्रमशः उत्तम, मध्यम और साधारण प्राणियोंपर अनुग्रहके लिये उपदेश दिया गया है। शिवस्वरूपसे अलौकिक समाधि-सुखका जो अनुभव होता है उस योगकी परावस्थाका निरूपण शाम्भव-प्रकरणमें किया गया है। बहिर्मुख साधक पराशक्तिके अनुग्रहसे बाह्यवृत्तियोको अवरुद्धकर मन्त्रादिके बलसे पराद्वैतका अनुभव करता है, यह उपदेश द्वितीय प्रकरणमें किया गया है। आणव-प्रकरणमे आत्मा, माया आदि विषयोंका निरूपण हुआ है। यहाँपर योगी मोहका निरासकर क्रमसे जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्तावस्थाको त्यागकर पूर्णावस्थाको प्राप्त होता है, इसका वर्णन किया गया है। शाम्भव उपायसे सिद्धि बिना प्रयत्नके प्राप्त होती है और आणव-उपायमे प्रयत्नकी अपेक्षा रहती है। यह इन दोनोंमें भेद है। शिवसूत्रोंमें योगतत्त्वका जैसा गम्भीर और सूक्ष्म निरूपण किया गया है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नही होता।

शाम्भवोपायमें बताया गया है कि शरीर, प्राण, मन और इन्द्रियोका समूह अथवा पृथक्-पृथक् आत्मा नहीं हो सकती, प्रत्युत जिसमें यह सब प्रतिभात होते हैं, वह आत्मा इनसे परे चेतन-स्वरूप है—'चैतन्यमात्मा'।

मनका इन्द्रियोंसे संयोग होनेपर जो ज्ञान प्राप्त होता है वही ज्ञान बन्धस्वरूप है। इन ज्ञानोके निवृत्त होनेपर बन्ध भी समाप्त हो जाता है। यह बन्धन तीन प्रकारका है, माया, आवरणात्मक तथा आणव मल-रूप। इन तीनों ज्ञानोका अधिष्ठान मातृका-रूपसे है, वही शब्द ब्रह्म है। यह जो बहिर्मुख ज्ञान होता है वही बन्धन हैं। अन्तर्मुख ज्ञानसे जब 'भैरवोऽहम्' 'शिवोहम्' का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है तब प्राणीके अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है और वह परब्रह्म-स्वरूप हो जाता है।

मध्यम प्रकारका साधक मन्त्र-साधनसे बाह्यवृत्तियोंका उपसंहार करके शिवतत्त्वमे मन लगाता है और फिर परमाद्वैतका अनुभव करता है। इसमें साधकको प्रयत्न करना पड़ता है।

भगवान् शिवकी इच्छासे वह साधक मन्त्रका अभ्यास करते-करते परमाद्वैतका अनुभव करता है तथा शिवत्वको प्राप्त कर लेता है। मन्त्र-मुद्रा आदिकी प्राप्तिके लिये गुरु उपदेश करता है और फिर शाम्भवी शक्ति उसपर अनुग्रह करती है। गुरुकृपासे ही ज्ञान होता है। उस साधकके लिये यह स्थूल-सूक्ष्म आदि शरीर ही हवि है और ज्ञान ही अन्न है।

साधारण प्रकारके साधकोंके लिये आत्माका विवेचन किया है। आत्मा ही बुद्धि-क्रियाके द्वारा संकुचित होकर चित्तका स्वरूप ग्रहण करती है। आत्माके संकुचित होनेपर जो भेदाभास होता है वही बन्धन है, तत्त्वका सम्यक् ज्ञान न होना ही माया है। प्रयत्न करनेपर यह मोहका आवरण दूर हो जाता है और साधकको सिद्धि प्राप्त हो जाती है। मोहके नष्ट होनेपर सहज विद्याका प्रस्फुरण होता है। हृदय आदिसे भासित आत्मा ही नर्तकके समान है, अन्तरात्मा रंगस्थली है और इन्द्रियाँ प्रेक्षक हैं। तत्त्व-चिन्तन करते-करते साधकको सत्त्वसिद्धि प्राप्त होती है और वह परमानन्दका अनुभव करता है। फिर वह योगी स्वतन्त्र हो जाता है, शिवस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारके योगीके लिये मन्त्र, कथा, जप आदि सहायक होते हैं। ऐसा योगी सुख-दुःखसे रहित हो जाता है।

शिवसूत्रोंमें इस प्रकार उत्कृष्ट, मध्यम एवं साधारण साधकोंके लिये उपदेश किया गया है, शिवसूत्रोंके माध्यमसे भगवान् शंकरने सभी साधकोंपर अनुग्रह किया है। दर्शनशास्त्रमें इन सूत्रोंका अपना अलग ही वैशिष्ट्य है।
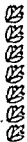
दानि जो चारि पदारथको, त्रिपुरारि, तिहूँ पुरमें सिर टीको।
भोरो भलो, भले भायको भूखो, भलोई कियो सुमिरें तुलसीको॥
ता बिनु आसको दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालचु जीको।
साधो कहा करि साधन तैं, जो पै राधो नहीं पति पारबतीको॥

श्रीकण्ठका शक्तिविशिष्टशिवाद्वैत-दर्शन

(डॉ० श्रीशिवशङ्करजी अवस्थी)

यह प्रसिद्धि है कि आचार्य श्रीकण्ठ भट्ट भास्करके पश्चात् तथा आचार्य रामानुजसे पूर्व विक्रमकी ११वीं शतीमें विद्यमान थे। इन्होंने ब्रह्मसूत्रपर शैवभाष्यकी रचना की थी। सर्वतन्त्रस्वतन्त्र अप्पय्य दीक्षितने १६वीं शतीमें प्रस्तुत शैवभाष्यपर 'शिवार्कमणिदीपिका' नामक प्रमेयबहुल टीका लिखी। आचार्य श्रीकण्ठ समन्वयवादी थे। इनका अनुसरण करते हुए अप्पय्य दीक्षितने इनके भाष्यका सार संक्षेपरूप 'आनन्दलहरी' या 'शिवानन्दलहरी' नामक लघु ग्रन्थ लिखा जो ६० श्लोकों एवं स्वकीय 'चन्द्रिका' नामक व्याख्यासे युक्त है।

इसमे संदेह नहीं कि बादरायणने शुद्ध या निर्गुण ब्रह्मके निर्णयार्थ ब्रह्मसूत्रकी रचना की थी, किंतु भाष्यकारोंने सगुणब्रह्मके निर्णय-रूपमे सूत्रोंको योजित किया। तो क्या सूत्रकारको सगुण ब्रह्म सर्वथा अविवक्षित था? अप्पय्य दीक्षित कहते हैं—

शुद्धं ब्रह्माद्वितीयं कथमपि हृदयं नाधिरोहेत् सुसूक्ष्मं
तत्र स्थैर्याय बुद्धेस्तनुगुणमहितं तच्चिरं ध्येयमादौ।
इत्यार्यैर्भक्तिसिद्ध्यै सगुणमिह परं ब्रह्म नान्यत् ततोऽस्ती-
त्येवं वेदान्तवाक्यैः सह तदनुगुणं योजितं सूत्रजातम्॥

(आनन्दलहरी ५२)

अत्यन्त सूक्ष्म, शुद्ध, अद्वितीय ब्रह्म किसी प्रकार भी हृदयमें आरूढ़ नहीं हो सकता, अतः उसमें बुद्धिकी स्थिरताके लिये प्रारम्भमें चिन्मय शरीर एवं मङ्गलमय गुणगणोंसे प्रशस्त साम्बशिवका चिरकालतक ध्यान करना चाहिये। इस बातको दृष्टिमे रखकर आचार्य श्रीकण्ठने भक्तिकी सिद्धिके लिये इसमें सगुण ब्रह्मका ही प्रतिपादन किया है तथा उससे परे और कुछ नहीं—इस प्रकार औपनिषद वेदान्त-वाक्योंके साथ तदनुरूप ब्रह्मसूत्रोंकी व्याख्या की है।

वस्तुतः सूत्रकार बादरायणको पारमार्थिक चैतन्यमात्र-स्वरूप ब्रह्म स्वीकृत होनेपर भी ऐश्वर्यशाली सगुण-रूप स्वीकार है। यह बात 'एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः' (ब्र०सू० ४।४।७) सूत्रसे स्पष्ट है।

यहाँ प्रसंग है कि मुक्तात्माका क्या स्वरूप होता है? इसपर जैमिनिका मत है कि उपनिषदोंमें कहा गया है—

वह मुक्तात्मा, अपहतपाप्मत्व, सत्यसंकल्पत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वेश्वरत्वसम्पन्न सगुण ब्रह्मको प्राप्त होता है।

'ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः'(ब्र० सू० ४।४।५)

किंतु आचार्य औडुलोमिका पक्ष है कि वह चिन्मात्र निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त होता है।

'चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः'

(ब्र० सू० ४।४।६)

आचार्य बादरायण (ब्रह्मसूत्रकार) उक्त दोनों मतोंको अविरोधी मानकर स्वीकार करते हैं।

इसीके आधारपर अप्पय्य दीक्षित कहते हैं—

सूत्राणामेतदर्थान्तरमधिगमितं[1] सूत्रकाराशयस्थं
केषाञ्चित् तेष्वभीष्टं गुणवति विगुणेऽप्यन्वयं दर्शयद्भिः।
शुद्धब्रह्मैकनिष्ठैरपि शुचिहृदयैः शंकराचार्यपादैः
श्रीकण्ठार्यैस्तु भाष्ये तदिह सुविहितं सर्वसूत्रार्थरूढम्॥

(आनन्दलहरी ५६)

आचार्य श्रीकण्ठकी मान्यता है—आनन्द या आनन्दमय, परमव्योम या चिदाकाश तथा प्राण—इन संज्ञाओंद्वारा बोध्य भगवती चित्-शक्तिसे समन्वित शिवरूप ब्रह्म ही उपनिषदों एवं ब्रह्मसूत्रोंका प्रतिपाद्य है।

शम्भुं शक्त्या विशिष्टं प्रथयति
परमं ब्रह्म वेदान्तराशिः।

(आनन्दलहरी)

यह शैवी चित्-शक्ति ही सम्पूर्ण चेतन-अचेतन प्रपञ्चके आकारमें परिणत होती है। 'जन्माद्यस्य यतः'(ब्र०सू० १।१।२) इस सूत्रके भाष्यमें श्रीकण्ठ लिखते हैं—

'निखिलजगदण्डपण्डबुद्बुदनिकुरम्बजलधिस्थानीया

१-कुछ सूत्रोंमे निर्गुण ब्रह्ममें सगुण ब्रह्मका अभीष्ट अन्वय दिखाते हुए, शुद्ध (निर्गुण) ब्रह्ममें एक निष्ठावाले शुद्ध-हृदय भगवान् शंकराचार्यने सूत्रकारके आशयरूप अर्थान्तर या सगुणरूपका ज्ञान कराया है और श्रीकण्ठने अपने भाष्यमें समस्त सूत्रोंको सगुण ब्रह्मपरक निरूपित किया है।

परमप्रकृतिरूपा परमशक्तिर्हि चिदम्बरमुच्यते ।

समस्त ब्रह्माण्ड-समूह जिसके बुद्बुदोंके समान है ऐसी समुद्ररूप परा प्रकृति परम शक्ति ही चिदाकाशके नामसे जानी जाती है।

'ईक्षतेर्नाशब्दम्' (ब्र०सू०१ । १ । ५) इस ईक्षत्य-धिकरणके भाष्यमें श्रीकण्ठ लिखते हैं—

'स्थूलसूक्ष्मचिदचित्प्रपञ्चरूपशक्तिविशिष्टः परमेश्वर एव कार्यकारणरूपसत्पदविषयः ।'

अर्थात् 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा० उ० ६ । २ । १) आदिमें एक अद्वितीय 'सत्' तत्त्व विद्यमान था, उसने ईक्षण या संकल्प किया 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' (छा० उ० ६ । २ । ३) कि मैं अनेक हो जाऊँ—इस श्रुतिमें जो 'सत्' पद आया है, वह स्थूल एवं सूक्ष्म, चेतन तथा जड-प्रपञ्चरूप शक्तिसे विशिष्ट कार्यकारणरूप परमेश्वर भगवान् शम्भुका वाचक है।

संक्षेपमें यही शक्तिविशिष्टशिवाद्वैत-दर्शन है। शिवोपासना शक्तिसमेत होनी चाहिये, तभी मुमुक्षुजनोंका कल्याण होगा। इसीलिये कहा है—

तस्मात् सह तया शक्त्या हृदि पश्यन्ति ये शिवम् ।
तेषां शाश्वतिकी सिद्धिर्नेतरेषामिति श्रुतिः ॥

(चन्द्रिका)

आचार्य अप्पय्य दीक्षितने शक्तिस्वरूपके सम्बन्धमें श्रीकण्ठका मत प्रस्तुत रूपमें व्यक्त किया है—

शम्भोर्ज्ञानक्रियेच्छाबलकरणमनःशान्तितेजःशरीर-
स्वर्लोकागारदिव्यासनवरमहिषीभोग्यवर्गादिरूपा ।
सर्वैरेतैरुपेता स्वयमपि च परब्रह्मणस्तस्य शक्तिः
सर्वाश्चर्यैकभूमिर्मुनिभिरभिनुता वेदतन्त्राभियुक्तैः ॥

(आनन्दलहरी ७)

परब्रह्म भगवान् शंकरकी शक्ति ही ज्ञान, क्रिया, इच्छा, बल, करण (साधन), मन, शान्ति, तेज, शरीर, स्वर्लोक, गृह, दिव्यासन, श्रेष्ठ महिषी तथा भोग्यवर्गके रूपमें विख्यात है। स्वयं ज्ञानेच्छादिकोंसे युक्त पुरुषरूप होती है। यह सम्पूर्ण आश्चर्योंकी एकमात्र जननी है, मुनिगण, वेद, तन्त्र तथा आचार्य इसकी सदैव स्तुति करते रहते हैं।

वन्दामहे महीयांसमंसलम्बिजटाभरम् ।
यत्कङ्कणझणत्काररवशब्दानुशासनम् ॥

नटराज-उपाधिके रहस्य

किसी समय प्रदोषकालमें जब देवगण रजतगिरि कैलासपर 'नटराज' शिवके ताण्डवमें सम्मिलित हुए और जगज्जननी आद्या श्रीगौरीजी रत्नसिंहासनपर बैठकर अपनी अध्यक्षतामें ताण्डव करानेको तैयार हुईं, ठीक उसी समय वहाँ श्रीनारदजी महाराज भी पहुँच गये और अपनी वीणाके साथ ताण्डवमें सम्मिलित हुए। तदनन्तर श्रीशिवजी ताण्डवनृत्य करने लगे, श्रीसरस्वतीजी वीणा बजाने लगीं, इन्द्र महाराज वंशी बजाने लगे, ब्रह्माजी हाथसे ताल देने लगे और लक्ष्मीजी आगे-आगे गाने लगीं, विष्णुभगवान् मृदङ्ग बजाने लगे और बचे हुए देवगण तथा गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, उरग, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराएँ सभी चारों ओर स्तुतिमें लीन हो गये। बड़े ही आनन्दके साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय श्रीआद्या भगवती (महाकाली) पार्वतीजी परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने श्रीशिवजी (महाकाल) से पूछा कि आप क्या चाहते हैं? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब देवोंसे, विशेषकर नारदजीसे प्रेरित होकर उन्होंने यह वर माँगा कि 'हे देवि ! इस आनन्दको केवल हमीं लोग लेते हैं, किंतु पृथिवीतलमें एक ही नहीं, हजारों भक्त इस आनन्दसे तथा नृत्य-दर्शनसे वञ्चित रहते हैं, अतएव मृत्युलोकमें भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्दको प्राप्त करें ऐसा कीजिये, किंतु मैं अपने ताण्डवको समाप्त करूँगा और 'लास्य' करूँगा।' इस बातको सुनकर श्रीआद्या भुवनेश्वरी महाकालीने 'एवमस्तु' कहा और देवगणोंसे मनुष्य-अवतार लेनेको कहा और स्वयं श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दरका अवतार लेकर श्रीवृन्दावन-धाममें आयीं और श्रीशिवजी (महाकाल) ने राधाजीका अवतार लेकर व्रजमें जन्म लिया और 'देवदुर्लभ रासमण्डलकी आयोजना की और वही 'नटराज' की उपाधि यहाँ श्याम-सुन्दरको दी गयी। बोलो नटराज भगवान्की जय !

सूतसंहितामें भगवान् शिव

(तपोमूर्ति स्वामी श्रीओंकारानन्दगिरिजी)

सूतसंहिताका संक्षिप्त परिचय

अष्टादश महापुराणोंमें कलेवरकी दृष्टिसे स्कन्दमहापुराण सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण पुराण है। भगवान् स्कन्दद्वारा कथित होनेसे इसका नाम स्कन्दपुराण है। यह खण्डात्मक तथा संहितात्मक दो रूपोंमें उपलब्ध होता है। खण्डात्मक स्कन्दपुराणमें क्रमशः माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ती (ताप्ती और रेवाखण्ड), नागर तथा प्रभास—ये सात खण्ड हैं और संहितात्मक स्कन्दपुराणमें सनत्कुमार, सूत, शंकर, वैष्णव, ब्राह्म तथा सौर इस प्रकार छः संहिताएँ हैं। सूतसंहिता संहितात्मक स्कन्दपुराणकी द्वितीय संहिता है। कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यासके शिष्य पौराणिकोत्तम श्रीसूतजी महाराज इस संहिताके वक्ता हैं, इस दृष्टिसे इस संहिताका नाम सूतसंहिता पड़ा है। इसमें अद्वय शिवज्ञानको सरल और सुन्दर कथाओंके द्वारा हृदयंगम कराया गया है और शैव क्षेत्रोंकी विशेष महिमाका वर्णन हुआ है। मूलत· यह सूतसंहिता कृपामय भगवान् शिवकी अपार महिमासे सम्पन्न है। शैव सम्प्रदायमें इसका विशेष आदर है। यह चार उपखण्डोंमें विभक्त है। (१) शिवमाहात्म्यखण्ड, (२) ज्ञानयोगखण्ड, (३) मुक्तिखण्ड और (४) यज्ञवैभवखण्ड। यज्ञवैभवखण्ड पुनः पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भागोंमें बँटा है। उत्तरार्धभागमें ब्रह्मगीता और सूतगीता—ये दो गीताएँ उपनिबद्ध हैं, जिनमें विशुद्ध शिवतत्त्व एवं शिवज्ञानकी विशेष विवेचना की गयी है। सूतसंहिताके मुख्य व्याख्याता माधवाचार्य, जो माधव विद्यारण्यसे भिन्न थे और गोमान्तक राज्यके महामन्त्री थे, ये माधव मन्त्रीके नामसे भी प्रसिद्ध रहे हैं। उनकी इसपर 'तात्पर्य-दीपिका' नामक संस्कृत टीका बड़े महत्त्वकी है। आदिशंकराचार्यने भी इसके अनेक उद्धरण दिये हैं।

सूतसंहिताके परम प्रतिपाद्य—भगवान् सदाशिव

ग्रन्थारम्भके मङ्गलाचरणमें कहा गया है कि ईश्वरके दो रूप हैं—अपर और पर। हिमाचलनन्दिनी पार्वतीके पति आदि नाम-रूपकी उपाधिसे युक्त अपर रूप और निरस्त समस्त उपाधिवाला स्वप्रतिष्ठ अखण्ड सच्चिदानन्द एकरस अद्वितीय तत्त्व परतत्त्व रूपसे लक्षित हुआ है। तात्पर्य यह है कि परमेश्वरके निष्कल और सकल दो रूप प्रसिद्ध हैं। निष्कल है शुद्धतत्त्व और सकल है शम्भु लिङ्गमय मूर्तिरूप। सकल रूप भी दो प्रकारका है—एक तो समस्त जगदात्मक, दूसरा समस्त जगका नियन्ता। समस्त जगदात्मक कहनेसे उपादान कारणका संकेत है तथा जगन्नियन्ताका रूप लीलावतारके रूपमें वर्णित हुआ है। उसीको **'आधारं सर्वलोकानाम्'** कहकर प्रारम्भमें प्रणाम किया गया है। साथ ही उसे अनाधार अविक्रिय भी कहा है; जिसका आशय है—जो सभीका आधार होता हुआ भी जिसका कोई आधार न रहनेसे वह निराधार ही रहा तथा यह सब होते हुए भी क्रिया या विकारहीन होनेसे वह सर्वदा अविक्रिय ही है।

उपनिषदोंमें जिस अभिन्न निमित्तोपादानवाला ईश्वरका निरूपण है वह एक ही सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म परब्रह्म-रूपसे सर्वत्र लक्षित हो रहा है। उसे ही सूतसंहितामें परतत्त्व बतलाया गया है। ईश्वरके अवतारका प्रयोजन भी यतियों, मन्त्र-जापकों तथा ज्ञानियो और योगियोंके लिये ध्यान-पूजाके निमित्त साकार विग्रहके रूपमें अवतरित होना है—

यतीनां मन्त्रिणां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा।
ध्यानपूजानिमित्तं हि तनुं गृह्णाति मायया॥

अतः सूतसंहिताका मूल विषय परमशिवके सकल और निष्कल दोनों स्वरूपोंका दिग्दर्शन कराना ही है।

सूतसंहिताके अनुसार सम्पूर्ण जगत्के कर्ता ब्रह्माने परमात्मा शिवकी कृपासे ही पुराण, स्मृति आदिकी व्याख्या की। वेदके दो भाग हैं—कर्मभाग और ज्ञानभाग। शिवकी आज्ञासे ब्रह्माने कर्मभागका व्याख्यान किया। वहाँ वर्णाश्रमधर्म-कर्मकी प्रधानता रखी और व्यास-रूपसे विष्णुद्वारा ज्ञानभागका निरूपण पुराणोंमें किया गया। चतुर्थ आश्रम-धर्मके प्रसंगसे उपनिषदोंके तत्त्वका निरूपण भी स्मृतियोंमें प्रासंगिक हुआ है। पुराणोंमें जगत्की उत्पत्ति-स्थिति और संहारकी कारणता एकमात्र शिवमें ही बतलायी गयी।

सर्ग-प्रतिसर्गका रूप भी वहाँ प्रकट हुआ। तत्त्वज्ञानके विषयमें पुराणोंकी प्रबलता सुस्पष्ट है। व्यासजी विष्णुके अवतार हैं। कहा गया है—

विष्णुर्विश्वजगन्नाथो विश्वेशस्य शिवस्य तु।
आज्ञया परया युक्तो व्यासो जज्ञे गुरुर्मम॥
(१।४२)

इसके अनुसार पूर्वकालमें विष्णु आदि समस्त देवता मिलकर जगत्के कारण-तत्त्वका विचार करते हुए संशयमे पड़े। तब अतीव सुखदायी भगवान् रुद्रके लोकमें गये। समस्त पाप-तापमय संसारको द्रवित करनेवाले रुद्र संहारकारी हर परम करुणासे स्वयं प्रकट हो गये। उन्होंने उनसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करके महादेवसे पूछा—'आप कौन हैं?' तब भगवान् सदाशिवने कहा—'मैं काल, माया और कर्म-पाशोंमें आबद्ध जीवोंका (पशुओका) पति पशुपति हूँ, सर्वज्ञ ईश्वर हूँ। समस्त प्रलयपर्यन्त रहनेवाले तत्त्वोका सारभूत सनातन तत्त्व मैं हूँ। जगत्के विधाता ब्रह्माके भी पूर्व मैं ही केवल एक ईश्वर रहा हूँ और आगे भी रहूँगा। मुझसे अतिरिक्त कोई कहीं हुआ, न होगा। मेरी मायाशक्तिसे ही समस्त जड-चेतन जगत् कल्पित हुआ भासता है, वह शक्ति भी वस्तुतः मुझसे पृथक् अपनी सत्ता नहीं रखती।'

समग्र सूतसंहितामें इसी शिवतत्त्वका प्रतिपादन हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप—तीन देवोंसे अतिरिक्त आत्मस्वरूप, सदाशिव, परमशिव, परतत्त्व, निष्कल, सकल आदिरूपमे वही एक परमेश्वर परमात्मा ही शिवतत्त्व व्याप्त है।

देवताओंके प्रश्न करनेपर भगवान् शंकरने बताया कि मुझको ही वेदवाक्योसे, आचार्य-गुरुओंसे, वेदान्तवाक्योंसे और ज्ञानदृष्टिसे जो जीव भलीभाँति जान लेता है, वह द्वैत-प्रपञ्चसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है—

मामेवं वेदवाक्येभ्यो ज्ञानात्याचार्यपूर्वकम्।
यः पशुः स विमुच्येत ज्ञानाद्वेदान्तवाक्यजात्॥
(२।१०)

—ऐसा कहकर भगवान् शिव देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् विष्णु आदि देवगणोंने भक्तिभावसे उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया। वे अथर्वशीर्ष, विभिन्न सूक्तों, पञ्चाक्षर मन्त्र तथा प्रणव-जपसे शिवा और शिवका ध्यान-चिन्तन करने लगे। तदनन्तर जब कृपापरवश हुए भगवान् नीलकण्ठ, संसार-भयनाशके सर्वसाक्षी भगवान् शंकर उनके सम्मुख प्रकट हो जाते हैं और वे सभी देवता पुनः स्तुति करने लगते हैं, तब भगवान् शिवने प्रसन्न होकर अपनी परमात्म-स्वरूपताका प्रतिपादन किया।

सूतसंहिताके द्वितीय ज्ञानयोग-खण्डके आरम्भमें इसी शिवतत्त्वकी महिमा बताते हुए कहा गया है कि एक बार देवगुरु बृहस्पतिसे भगवान् महेश्वरने कहा—'देवगुरो! यह शिवतत्त्व अवाच्य विज्ञान है, जिस किसीको नहीं सुनाया जाता। एकमात्र वेद ही जिसका वर्णन करते हैं, वह अत्यन्त गुह्य और सम्पूर्ण क्लेशोंका निवारक है। वाचस्पते! सृष्टिसे पूर्व यह सब अन्धकारमय जगत् इस आत्मासे अभिन्न होकर स्थित रहा। तदनन्तर सत्त्वगुणके आश्रयसे महत्तत्त्व उपजा। उस समय एक ही शिवस्वरूप साक्षीमात्रसे अवस्थित थे। फिर गुणोंका आश्रय लेकर वे तीन मूर्तियों अर्थात् विधि, हरि-हरके रूपमें प्रकट हो गये। शिवकी कृपासे ही तीनो देवोंको अपने पदोंकी प्राप्ति हुई—

प्रसादाद् देवदेवस्य ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः॥
विष्णुर्विष्णुपदं प्राप्तो रुद्रो रुद्रत्वमागतः।
(२।२।१४-१५)

इस रहस्यका उपदेश उन्होंने बृहस्पतिको दिया। तब देवगुरुने भगवान् शिवकी स्तुति करते हुए कहा—

नमः शिवायाद्भुतविग्रहाय ते
नमः शिवायाद्भुतविक्रमाय ते।
नमः शिवायाखिलनायकाय ते
नमः शिवायामृतहेतवे नमः॥

भगवान् शंकरने बृहस्पतिको शिवज्ञानयोगका उपदेश दिया, जो सूतसंहिताके ज्ञानखण्डके प्रायः बीस अध्यायोंमे वर्णित है। ज्ञानयोगके उपक्रममें ज्ञानयोगकी परम्परा, आत्मा (स्वयं) से हुई सृष्टिका निरूपण, ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमोंकी विधि, प्रायश्चित्त-विधि, दानधर्मका फल, पापकर्मका फल, पिण्डोत्पत्ति-कथन, नाडीचक्र तथा नाडीशुद्धि-निरूपण एवं अष्टाङ्गयोगमें यम-नियमादिसे समाधिपर्यन्त अतीव सुन्दर विवेचन हुआ है। सदाशिव-प्रदत्त ज्ञानराशि ही ज्ञानयोग है।

तृतीय मुक्तिखण्डमें सर्वज्ञ, सर्ववित्, सम्पूर्ण जगत्के

साक्षी, सदा परमार्थरूप, परानन्द, परज्ञानघन, अद्वय, शिव, शम्भु, महादेव, रुद्र, महेश्वर, स्थाणु, पशुपति, विष्णु, ईश, ईशान, ईश्वर, परमात्मा, परमेश्वर, पुराण, परम, पूर्णतत्त्व, पराकाष्ठा, परागति, पति, देव, हर, हर्ता, भर्ता, स्रष्टा, पुरातन, अन्तर्यामी, सनातन, अक्षर, दहर, साक्षात्, अपरोक्ष, स्वयं प्रभु, असंग, आत्मा, प्रत्यगात्मा आदि नामोंसे उमासहाय भगवान् त्रिलोचनसे ही उपस्थापित किया गया है। वस्तुत. ये सब नाम विभिन्न श्रुतियोंमें जिस ब्रह्मात्म-तत्त्वके लिये दर्शाये गये हैं, वे ही इस संहिताके आराध्य शिवशंकर भगवान् महादेव हैं।

इसी क्रममें तपस्या करते हुए भगवान् विष्णुसे शिवजीने आगे कहा—आप किसलिये तपस्या कर रहे हैं, तब उन्होंने तीन प्रश्न किये—(१) मुक्ति क्या है, (२) मुक्तिका उपाय क्या है तथा (३) मोचक कौन है? तब भगवान् शिवने सालोक्यादि चार मुक्तियोंको दर्शाकर कैवल्यमुक्तिको सर्वोपरि बतलाया। उसे केवल ब्रह्मस्वरूपा, सर्वदा सुखलक्षणा, हेयोपादेयशून्य, सभी भेदमूलक सम्बन्धोंसे हीन, साक्षात् आत्मस्वरूप और स्वयं प्रकाशरूप बतलाया। शेष मुक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेशके सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्यादि-भेदसे होनेवाली प्रवर मुक्ति हैं।

जिसकी सर्वार्थवेदिनी मुक्ति प्रारब्धकर्म-फल-भोगके अनन्तर प्राप्त होनेवाली अभिव्यक्त हो गयी, वह जीवन्मुक्ति कही जाती है। वहीं शिवजीने मुक्तिका उपाय—'**आत्मनः परमा मुक्तिर्ज्ञानादेव न कर्मणा। ज्ञानं वेदान्तवाक्यानां महातात्पर्यनिर्णयात्॥**' (३।३।२) आत्माकी परममुक्ति ज्ञानसे ही होती है, कर्मसे नहीं। ज्ञान भी महान् तात्पर्यके निर्णयके होनेसे वेदान्तवाक्योंद्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान ही है। 'वेदान्त' शब्दसे वेदान्तदर्शन, उपनिषद् एवं गीतासे अभिप्रेत है। अतः मुक्तिविषयक श्रौत सिद्धान्तका उपदेश ही शिवजीने भगवान् विष्णुको दिया। मायापाशसे मुक्त करानेवालेके विषयमें देवी सरस्वतीको भगवान् शंकरने बतलाया कि हे सुलोचने! ब्रह्मादिसे लेकर जड, कीट, पतंग आदि सभी जीवोंको पशु कहा गया है। विद्वानोंने उनका पति पशुपति मुझे निर्दिष्ट किया है। मैं मायापाशसे इन पशुओंको बाँधता हूँ और उन सब पशुओंका बन्धन छुड़ानेवाला मोचक भी मैं ही हूँ। सभीका मैं आत्मा हूँ, अतः मैं ही संसारका मोचक हूँ। दक्षिणामूर्ति सदाशिव जो उपासकोंके लिये विटपतले युवासंन्यासीके रूपमें सनकादिकोंके मौनमुद्रासे ज्ञानोपदेष्टा आद्य गुरु रहे हैं वह मेरा ही स्वरूप है। संसारके मोचक मुक्तिप्रदाता वह गुरुमूर्ति मैं ही हूँ। इसके साथ ही आचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुको भी शिवजीने मुक्तिप्रद बतलाया। चतुराश्रमी परिव्राट् भी गुरु हैं। अतिवर्णाश्रमीकी भी गुरुरूपसे महिमा बतलायी तथा आत्मज्ञानी गुरुकी अत्यधिक महिमा बतलाते हुए शिव-स्वरूपको जाने बिना कभी कोई कहीं मुक्त नहीं हुआ, ऐसा कहा गया है।

देवताओंको शिवके पारमार्थिक स्वरूपका ज्ञान होनेपर उन्होंने '**नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवे नमः**०' आदि वैदिक मन्त्रोंसे उनकी स्तुति की।

सारांशमें यह कहा जा सकता है कि सूतसंहिताके शिव ही मूल तत्त्व हैं और वही सबके आराध्य हैं। प्रणव तथा पञ्चाक्षर मन्त्र और शतरुद्रीय आदि समस्त वैदिक मन्त्रोंसे एकमात्र सदाशिव ही उपास्य हैं। सकल-निष्कल दोनो शिवस्वरूप ओंकारसे परिलक्षित होते हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक यज्ञोंद्वारा भी एक शिव ही सर्वत्र पूज्य हैं। शिवकी आराधनाकी बुद्धिसे जो श्रद्धा रखकर यजन करते हैं, वे शीघ्र ही मुक्तिके भागी होते हैं।

प्रथम प्रजापति ब्रह्माने तपसे भगवान् शंकरका अनुग्रह प्राप्त कर तीनों वेद, तीनों लोक और अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवताओंको प्रकट किया। सूतसंहिताके अनुसार पुराण, न्याय, मीमांसा आदि भी उन्हींके अवयवोंसे प्रकट हुए हैं। साधक अन्तर्यामी साक्षात् साम्बसदाशिव चन्द्रार्धशेखरका ध्यान करते हुए सावित्री आदिके मन्त्राक्षरोंका न्यास और आराधना करे। यह सब विधान विस्तारसे इस खण्डमें निरूपित है। अजपा-गायत्री (हंसविद्या) से भी शिव-स्वरूप आत्माका ही उल्लेख हुआ है। षडक्षर मन्त्र तो शिवकी अपार महिमासे समन्वित है। किमधिकम्, शिवसे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

सूतसंहितामें बाह्यपूजाकी अपेक्षा मानसपूजाकी महिमा अधिक बतलायी गयी है और समस्त यज्ञोंमें ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ माना गया है। यज्ञवैभव-खण्डका पर्यवसान ज्ञानयज्ञमें ही हुआ है। शिवस्वरूपका साक्षात्कार सही-सही ज्ञानके सिवाय

अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। यहाँ ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञका चमत्कार पूर्ण रहस्यमय वर्णित है जो अन्यत्र दुर्लभ है। योगी, ध्यानी, ज्ञानी निजात्मामें ही शिवका साक्षात्कार कर लेते हैं, इसमें संदेह नहीं।

सूतसंहितामें यह प्रतिपादित किया गया है कि सभी मार्ग शिव-स्वरूपके प्रबोधक हैं। वैदिक, तान्त्रिक या अन्य जो कोई मार्ग हैं, वे सब स्वतन्त्र अम्बिकापति शिवकी मायासे ही कल्पित हुए हैं। जो-जो यहाँ हैं, जो-जो नहीं हैं उन्हें भी महादेवकी मायासे परिकल्पित समझना चाहिये। ब्रह्मके जो चेतन-अचेतन आकार कल्पित हुए वे वास्तविक अर्थ विचारनेपर शिवसे अन्य कुछ नहीं सिद्ध होते। सर्वज्ञता आदिके भेद अल्पक्षुद्रजीवपर्यन्त जो भी कल्पित हुए वे सत्यका निरूपण करनेपर शिवसे अतिरिक्त अन्यत्र नहीं प्राप्त होते—

वैदिकास्तान्त्रिका मार्गा अपभ्रंशास्तथैव च।
स्वतन्त्रस्याम्बिकाभर्तुर्माययैव प्रकल्पिताः॥
यद्यदस्तितया भाति यद्यन्नास्तितया तथा।
तत्तत्सर्वं महादेवमायया परिकल्पितम्॥
चेतनाचेतनाकारौ ब्रह्मणो यौ प्रकल्पितौ।
तौ शिवादन्यतो न स्तः सम्यगर्थनिरूपणे॥
सर्वज्ञत्वादिका भेदाः स्तम्बान्ता ये प्रकल्पिताः।
ते शिवादन्यतो नित्यं न सन्त्येव निरूपणे॥
(४।१२।१५—१८)

अतः संक्षेपमें यही निश्चित होता है कि सम्पूर्ण जगत् चित्-अचित्-भेदयुक्त अपनी शक्तिसे कल्पित शिवमात्र ही है। उस देवाधिदेवसे पृथक् कुछ भी नहीं। वास्तवमें सब कुछ शिव ही है और शिवके प्रसादसे ही भुक्ति अथवा मुक्तिकी प्राप्ति होती है। यही सूतसंहिताके उपदेशोंका परम कथ्य है—

भूतानि शम्भुर्भुवनानि शम्भु-
र्वनानि शम्भुर्गिरयश्च शम्भुः।
स एव सर्वं न ततोऽतिरिक्तं
ततः स एकः परमार्थमेतत्॥
शिवप्रसादेन हि भुक्तिरुत्तमा
शिवप्रसादेन हि मुक्तिरुत्तमा।
शिवप्रसादेन विना न भुक्तयः
शिवप्रसादेन विना न मुक्तयः॥
(यज्ञवैभवखण्ड १५।१८, १४।५९)

प्रार्थना

जय भोले भण्डारीकी! बाबा विश्वनाथकी जय! त्रिपुरारि त्रिलोकीनाथकी जय! सुखके सदन शिवशंकरकी जय! हर हर महादेव!!!

भारतवर्षके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरेतक प्रत्येक तीर्थ-स्थानमें, प्रत्येक देवालयमें, यहाँतक कि प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें आज तुम्हारा ही जय-जयकार हो रहा है। सब लोग तुम्हें ही पुकार रहे हैं, परंतु फिर भी हे मृत्युंजय! न जाने तुम हमपर क्यों नहीं दयालु होते? माना कि हम महान् अवगुणोंके धाम हैं, परंतु हैं तो आखिर तुम्हारे ही। बोलो, बोलो, कृपालु शंकर! अपने ही अंश, अपनी ही संतानके लिये यह मौनावलम्बन कैसा?

यह भी ठीक है कि हम बड़े स्वार्थी, कुटिल और पामर हैं, परंतु तुम तो दयामय हो! तुम संसारके पिता हो, हम तुम्हारी संतान हैं। तुम भगवान् हो तो हम तुम्हारे भक्त हैं, तुम स्वामी हो तो हम सेवक हैं,—इस दशामें तुम्हीं बतलाओ, प्रभो! तुम्हें छोड़कर हम और किसकी शरण लें! और कहाँ हमारा निस्तार हो सकता है? दीनानाथ! कैसा आश्चर्य है कि ऐसे परमदयालु, पिता, भगवान् और स्वामीको पाकर भी हम इस प्रकार दीन-हीन हैं!

तुमसे हमारे कष्ट छिपे नहीं हैं। क्योंकि तुम घट-घटवासी सर्वान्तर्यामी हो। इसलिये प्रार्थना यही है कि अब अधिक न तड़पाओ! बहुत हो चुका, क्लेशोंको सहते-सहते हृदय जर्जर हो रहा है। कहते हैं—'धोबीका कुत्ता घरका न घाटका'। स्वामिन्! ठीक यही दशा आज हमारी हो रही है। अन्न-वस्त्रके लिये संसार त्राहि-त्राहि कर रहा है। धर्मके नामपर अधर्म बढ़ाया जा रहा है। इस प्रकार इहलोक और परलोक—कहीं भी गति नहीं दिखलायी पड़ती। शम्भो! जिन महापुरुषोंने अनेक जन्मोंतक घोर तपस्या करके तुमसे अक्षय भक्तिका वरदान पाया है, खेद है, आज उन्हींकी संतानें इस अधोगतिको प्राप्त हो रही हैं। भोलानाथ! लगाओ

इन भूले-भटकोंको ठिकाने ! ऐसा न हो कि तुम-जैसे कर्णधारको पाकर भी इनकी डगमगाती हुई जीर्ण-शीर्ण जीवननौका डूब ही जाय।

परमपिता ! प्रार्थना स्वीकार करो, दुष्टोंका दलन करो और भक्तोंको हृदयसे लगा लो। निश्चय ही तुम ऐसा करोगे; पर अभी नहीं। जब अपने भक्तोंको खूब रुला लोगे, उन्हें दाने-दानेको तरसाकर उनकी प्रेम-परीक्षा ले लोगे तब ! परंतु भगवन् ! तुम्हारी परीक्षामें यहाँ तो बीचमें ही प्राण निकले जा रहे हैं। हाय ! वह घड़ी कब आयेगी ? आओ, विश्वम्भर ! पधारो, अपने भक्तोंके कष्ट-निवारणार्थ दौड़ पड़ो। पुनः एक बार अधर्मका नाश कर धर्मकी स्थापना करो, भक्तोंका कल्याण करो। बस, एकमात्र यही श्रीचरणोंमें प्रार्थना है !

श्रीमद्भागवतमें शिव-स्वरूप

(श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल)

भगवान् शिवके अपूर्व माहात्म्यको प्रकट करनेवाले दो प्रसंग श्रीमद्भागवतमें विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं—प्रथम प्रसंग दक्षयज्ञका और द्वितीय प्रसंग विषपानका। यहाँ संक्षेपमें ये प्रसंग आलोचित हैं।

श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धके द्वितीय अध्यायके प्रारम्भमें विदुरजीने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि प्रजापति दक्षने अपनी प्रिय कन्या सतीका अनादर क्यों किया और उसने शीलवानोंमें श्रेष्ठ चराचर-गुरु, वैररहित, शान्तमूर्ति, आत्माराम एवं सबके परमाराध्य भगवान् शिवसे वैर क्यों किया ? इसपर मैत्रेयजीने उनसे कहा—विदुरजी ! प्रजापति दक्ष उच्चपद पाकर मोहान्ध हो गया था। वेदके अर्थवादरूप वाक्योंसे मोहित होकर कर्मकाण्डको ही सब कुछ माननेवाला एवं देह-बुद्धि आदिमें ही आत्मबुद्धि रखनेवाला हो गया था। इस प्रकारके कर्मासक्त एवं उच्चपद-प्राप्त व्यक्तिको अपने श्रेष्ठत्वका मिथ्याभिमान हो जाया करता है, वही दक्षको हो गया था। यज्ञसभामें दक्षके उपस्थित होनेपर जब शिवजीने अपने स्थानसे उठकर उसे सम्मान प्रदान नहीं किया, तो शिव-तत्त्वसे अनभिज्ञ दक्षके मिथ्याभिमानको ठेस पहुँची और उसने भरी सभामें शिवजीको अपशब्द कहे। आत्माराम शिव निश्चलभावसे बैठे रहे, उन्होंने कोई प्रतीकार नहीं किया। इससे दक्षके क्रोधका पारा और चढ़ गया एवं मुख्य सभासदोंके मना करनेपर भी उसने भगवान् शिवको यज्ञभागसे वञ्चित कर दिया। भृगु ऋषि आदि कुछ ब्राह्मणोंने भी दक्षका अनुमोदन किया। यह देखकर शिवजीके गण नन्दीश्वरने भी उन सबको भयकर शाप दे दिया। भगवान् शिव बिना कुछ भी बोले कुछ खिन्न-से होकर वहाँसे उठकर चले गये।

इधर ब्रह्माजीने दक्षको सब प्रजापतियोंका अधिपति बना दिया। इससे उसका गर्व और बढ़ गया। पुराने वैरको स्मरण करके दक्षने शिवजीका घोर अपमान करने-हेतु बृहस्पतिसव नामक महायज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें दक्षने शिवजीको छोड़कर सभी सम्बन्धियों, ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों, पितरों और देवताओंको सपत्नीक निमन्त्रित किया। आकाशमार्गसे दक्षयज्ञमें जानेवाले देवताओंसे अपने पिताद्वारा किये जानेवाले यज्ञकी बात जानकर स्त्री-स्वभाव-सुलभ उत्सुकतासे सतीने भी भगवान् शिवसे यज्ञोत्सवमें चलने-हेतु उपयुक्त युक्तियोंसहित बड़े प्रेमसे आग्रह किया। किंतु परिस्थितिके अनुकूल सामाजिक व्यावहारिकतामें सभी मनुष्योंको सदा स्मरण रखने योग्य अनमोल सदुपदेश शिवजी सतीके व्याजसे हँसकर कहने लगे—

(१) देवि ! बन्धुजनोंके यहाँ निमन्त्रणके बिना भी उत्सवोंमें उसी अवस्थामें जाना चाहिये, जबतक उन बन्धुओंकी दृष्टि प्रबल देहाभिमानजन्य मद एवं क्रोधद्वारा द्वेष-दोषसे युक्त न हो गयी हो (४। ३। १६)।

(२) विद्या, तप, धन, सुदृढ शरीर, युवावस्था और उच्च कुल—ये छः सत्पुरुषोंके लिये तो गुण हैं, किंतु नीच पुरुषोंके पास होनेपर ये ही अवगुण हो जाते हैं, क्योंकि इनके प्रभावसे उनका अभिमान वृद्धि-प्राप्त होकर उनकी विवेक-बुद्धि नष्ट कर देता है और इसी कारण वे महापुरुषोंके प्रभावको भी नहीं समझ सकते (४। ३। १७)।

(३) ऐसे व्यक्ति अपने यहाँ आगत सज्जनको भी टेढ़ी कुटिल दृष्टिसे देखते हैं। स्वजनोंके तीखे वचनोंसे मर्मस्थानोंमें जो गहरे घाव हो जाते हैं, वे जन्मभर प्रतिक्षण बेचैन किया करते हैं (४। ३। १८-१९)।

(४) सुन्दरि ! यदि तुम मेरी बातकी अवमानना करके

वहाँ जाओगी तो तुम्हारा अहित ही होगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम कितनी स्वाभिमानिनी हो। प्रतिष्ठित व्यक्तिके लिये स्वजन-कृत अपमान मृत्युका कारण बन जाता है (४।३।२५)।

इतना कहकर भगवान् शंकर मौन हो गये। किंतु बहुत ऊहापोहके पश्चात् सती भगवान् शिवके वाहन वृषभ एवं उनके गण मणिमान् आदिके साथ दक्षयज्ञमें उपस्थित हुईं। वहाँ दक्षके भयसे सतीकी माता, मौसियों और बहिनोंके अतिरिक्त किसीने उनका स्वागत-सत्कार नहीं किया। सर्वलोकेश्वरी देवी सतीका स्वयंका अपमान तो हुआ ही, इसके अतिरिक्त वहाँ भगवान् शिवको यज्ञभागसे वञ्चित किया हुआ देखकर उन्हे भयंकर क्रोध हुआ। शिवद्वेषी एवं अभिमानी अपने पिता दक्षको देखकर उन्हे उसकी पुत्री होनेके कारण स्वयंके इस शरीरसे ही घृणा हो गयी। वे रोषभरी लड़खड़ाती वाणीमें अपने पिता दक्षसे बोलीं—

भगवान् शंकरसे बड़ा तो संसारमे कोई नहीं है। वे सभी देहधारियोंकी प्रिय आत्मा हैं। उनका न तो कोई प्रिय है, न अप्रिय। अतः वे निर्वैर हैं। वे सबके कारण एवं सर्वरूप हैं (४।४।११)। 'शिव'—यह दो अक्षरोंका नाम प्रसंगवश भी एक बार जिसके मुखसे निकल जाय तो उस मनुष्यके समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जाते है—

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्।

(श्रीमद्भा॰ ४।४।१४)

उनकी आज्ञाका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता। अरे! महापुरुषोंके मन-मधुकर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके चरणकमलोंका निरन्तर सेवन किया करते है और जिनके चरणारविन्द सकाम पुरुषोंको उनके अभीष्ट भाग भी प्रदान करते हैं, उन विश्वबन्धु भगवान् शिवसे आप द्वेष करते हैं?

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभि-
र्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः।
लोकस्य यद् वर्षति चाशिषोऽर्थिन-
स्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबन्धवे॥

(४।४।१५)

आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं, इसलिये आपसे उत्पन्न अपने इस शवतुल्य शरीरको त्यागना ही मैं अपना 'धर्म' समझती हूँ। ऐसा कहते हुए भगवती सतीने समाधि लगायी और भगवान् शंकरके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए योगाग्निसे अपना शरीर भस्म कर डाला।

देवर्षि नारदसे सतीके देहत्यागकी घटना सुनकर शिवजीको भीषण क्रोध हुआ। उन्होंने अपनी जटासे वीरभद्रको उत्पन्न करके उसे दक्षयज्ञको विध्वंस करनेकी आज्ञा दी। फलस्वरूप वीरभद्रने यज्ञ विध्वंस कर डाला और दक्षका मस्तक काटकर यज्ञमें आहुति दे दी।

इस भावी उत्पातकी आशङ्कासे ही ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु दक्षयज्ञमें नहीं गये थे। प्रताड़ित एवं भयभीत देवता और ऋषि ब्रह्माजीके पास अधूरे यज्ञकी पूर्णताका उपाय पूछने गये। ब्रह्माजीने स्पष्ट शब्दोंमें उन्हें कहा कि भगवान् शिवको यज्ञभाग नहीं देकर तुमने भारी अपराध किया है, जिसका फल भी तुम्हें मिल गया है, किंतु भगवान् शिव आशुतोष हैं, अतः शुद्ध हृदयसे उनके चरण पकड़कर उनसे क्षमा-याचना करो—**'प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम्'** (४।६।५)। अन्यथा भगवान् शिव परम स्वतन्त्र हैं, उनके तत्त्व और शक्ति-सामर्थ्यको ऋषि-मुनि, देवता, यहाँतक कि मैं स्वयं भी नहीं जानता, फिर अन्योंकी तो बात ही क्या है?

ब्रह्माजीसहित समस्त देवता, ऋषि-मुनि एवं लोकपालोंने परम रम्य कैलास पहुँचकर भगवान् शिवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। शिवजीने भी ब्रह्माजीका प्रत्यभिवादन किया। अधूरे यज्ञको पूर्ण करवाने-हेतु एवं दक्षको पुनर्जीवित करने-हेतु ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर शिवजीने अपने 'आशुतोष' नामको सार्थक करते हुए बड़े ही सुन्दर वचन कहे—

नाहं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया॥

(४।७।२)

'हे प्रजापते! भगवान्की मायासे मोहित हुए दक्ष-सरीखे नासमझोंके अपराधकी न तो मैं चर्चा करता हूँ और न स्मरण ही। मैंने तो केवल सावधान करने-हेतु ही उन्हें थोड़ा-सा दण्ड दे दिया।' तदुपरान्त दक्षको बकरेका मुँह लगाकर पुनर्जीवित

करके एवं दूसरे अङ्ग-भङ्ग हुए ऋत्विजोंकी योग्य व्यवस्था करके भगवान् शिवने दक्षयज्ञ सम्पन्न करवाया। दक्षने क्षमा माँगते हुए अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे भगवान् आशुतोषको प्रसन्न कर लिया।

भगवान् सदाशिवका शिवत्व यानि लोकमङ्गल-रूप सम्पूर्ण भयभीत प्रजाकी प्रार्थनापर हालाहल विषपानके प्रकरणमें प्रस्फुटित हुआ है। दैत्योंसे पराजित श्रीहीन हुए देवगणोंको श्रीहरिने पुनः समृद्धि प्राप्त करनेका सर्वकालीन एवं सर्वश्रेष्ठ उपाय इन शब्दोंमें बताया—

सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः॥
(८।६।२३)

इस श्लोकमें श्रीभगवान्ने समृद्धि प्राप्त करनेकी प्राथमिक शर्त 'बिना आलस्य या प्रमाद किये निरन्तर परिश्रम करना' बतायी है, किंतु इसके साथ मुख्य शर्त यह जुड़ी है कि सर्वदा सर्वकार्यमें परमात्माका आश्रय ग्रहण किया जाय, अन्यथा दैत्योंकी तरह केवल क्लेश ही हाथ लगेगा, फलके भागी तो देवगण ही होंगे। इसके अतिरिक्त श्रीहरिने उन्हें विपत्तियोंसे भयभीत नहीं होनेकी और लोभ-क्रोध-कामके वशीभूत नहीं होनेकी भी सलाह दी (८।६।२६)।

श्रीहरिके आदेशानुसार देवताओंने दैत्योंमें संधि करके एवं श्रीहरिकी सतत सहायतासे समुद्र-मन्थन किया। समुद्र-मन्थनसे सर्वप्रथम उग्र हालाहल विष निकला। उस असह्य उग्र विषने तीव्र गतिसे सर्वत्र फैलकर समस्त प्रजाका जीवन संकटमें डाल दिया। इस घोर विपत्तिमें सम्पूर्ण प्रजा त्राण-हेतु भगवान् सदाशिवकी शरणमें पहुँची। भगवान् शंकर कैलासपर देवी भवानीके साथ तीनों लोकोंके कल्याणार्थ तपस्यामें लीन थे। प्रजापतियोंने भगवान् सदाशिवकी निम्न सुन्दर श्लोकोंसे स्तुति की—

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात्॥
त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा [illegible]

'हे देवताओंके आराध्य महादेव! [illegible] प्राणियोंके आत्मा और उनके जीवनदाता हैं। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। त्रिलोकीको भस्म करनेवाले इस उग्र विषसे आप हमारी रक्षा कीजिये। आप स्वयंप्रकाश हैं। इसका कारण यह है कि आप परम रहस्यमय ब्रह्मतत्त्व हैं। जितने भी देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सत् अथवा असत् चराचर प्राणी हैं, उनको जीवनदान देनेवाले आप ही हैं। आपके अतिरिक्त सृष्टि भी और कुछ नहीं है, क्योंकि आप आत्मा हैं। अनेक शक्तियोंद्वारा आप ही जगत्‌रूपमें प्रतीत हो रहे है, क्योंकि आप ईश्वर है, सर्वसमर्थ हैं।

दीर्घस्तुतिके उपसंहारमें प्रजापतियोंने भगवान् शंकरके व्यक्तरूपका मुख्य उद्देश्य ही 'संसारका कल्याण करना' घोषित किया।

प्रजाके इस घोर संकटको देखकर समस्त प्राणियोंके अकारण बन्धु देवाधिदेव आशुतोष भगवान् शंकरके हृदयमें कृपावश बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने अपनी अर्धाङ्गिनी भगवतीको अपना निश्चित कर्तव्य कह सुनाया—

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे।
एतावान् हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्॥
प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः।
(८।७।३८-३९)

'देवि! जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे दीन-दुखियोंकी रक्षा करें। सज्जन पुरुष अपने क्षणभङ्गुर प्राणोंकी बलि देकर भी संकटग्रस्त प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा किया करते हैं। अतः मेरा कर्तव्य है कि इस संकटग्रस्त सम्पूर्ण प्रजावर्गको मैं अभयदान दूँ और इनका कल्याण करने-हेतु इस उग्र विषका स्वयं भक्षण कर लूँ।'

भगवती भवानी अपने स्वामीके अतुल प्रभावसे भलीभाँति परिचित थीं, अतः उन्होंने सहर्ष उनके प्रस्तावका अनुमोदन कर दिया। भगवान् शंकरने उस तीक्ष्ण हालाहल विषको अपनी हथेलीमें समेटा और उसे भक्षण कर गये। विषने शंकरजीपर अपना प्रभाव दिखाया, उनका कण्ठ नीला पड़ [illegible] ने उसे कण्ठमें ही रोक लिया। प्रजाका [illegible] भगवान् शंकरके लिये यह नीला कण्ठ भी [illegible] नीलक[illegible] से प्रसिद्ध हो गये। [illegible]ल्याण-स्वरूपकी

अद्भुत प्रशंसा की है—

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥
(८।७।४४)

अर्थात् परोपकारी सज्जन प्रायः प्रजाका दुःख दूर करने-हेतु स्वयं दुःख स्वीकार कर लेते हैं। परंतु यह दुःख नहीं है, यह तो सबके हृदयमें विराजमान श्रीभगवान्‌की परम आराधना है।

रामचरितमानसमें शिवचरित

(डॉ श्रीजगेशनारायणजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, 'मानसमराल')

शिवचरित रामचरितमानसकी भूमिकाके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। यह बात सर्वविदित है कि भूमिकाका स्थान किसी भी ग्रन्थमें महत्त्वपूर्ण होता है। भूमिकामें महत्त्वपूर्ण सूत्र मिलते हैं, जो ग्रन्थके गूढार्थ-व्यञ्जक प्रसंगोंके समझनेमें सहायक होते हैं। अतः रामकथाकी गूढता समझानेके लिये गोस्वामीजीने शिव-कथा (शिवचरित) को भूमिकाके रूपमें प्रस्तुत किया है।

रामपदारविन्द-अनुरागी, प्रयाग-निवासी भरद्वाज मुनिके मनमें रामतत्त्वके सम्बन्धमें संदेह है, क्योंकि रामके नाना रूप प्रचलित हैं। भरद्वाज मुनिके मनमे संदेह है कि नाना रूपोंमें व्यक्त राम एक हैं अथवा अनेक ?

अपने मनका संदेह वे युगके सर्वाधिक विद्वान् और तत्त्वदर्शी ऋषि याज्ञवल्क्यके समक्ष रखते हैं। पूज्यपाद गोस्वामीजी इस प्रसंगको अत्यन्त रोचकतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं—

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
(मानस १।४६।६)

× × ×

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥
(मानस १।४६)

याज्ञवल्क्यजीने कहा कि एक बार ठीक यही प्रश्न भगवती पार्वतीजीने किया था। उसके उत्तरमें भगवान् शंकरने जो कुछ कहा था, उसे मैं आपको सुना रहा हूँ। भगवती पार्वती जब पूर्वजन्ममे सतीके शरीरमें थीं, तब भगवान् रामके स्वरूपको ठीकसे समझ न सकीं और वनवासी-वेषमें विचरते उन्हें देख शिवजीके द्वारा प्रणाम किये जानेपर शङ्काग्रस्त हो गयीं और फिर उनकी परीक्षा लेनेके लिये सीताका वेष धारण कर लिया, जिससे भगवान् शिवने उनका परित्याग कर दिया। इसके बाद उन्होंने दक्षके यज्ञमें शिवके भागको न देखकर अपमानित समझकर अपने देहको त्याग दिया। इस घटनाका संकेत महाकविने इस प्रकार दिया है—

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
(मानस १।६३।१—५)

× × ×

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥
(मानस १।६४।७-८)

सतीके आत्मदाहके पश्चात् शिवगणोंने यज्ञ-विध्वंस कर दिया। सतीने मरते समय भगवान् श्रीहरिसे अपने परम आराध्य भगवान् शिवजीके चरण-कमलोंमें सहज अनुराग माँगा।

कालान्तरमें पर्वतराज हिमवान्‌की पुत्रीके रूपमें उनका अवतार हुआ। मेना दिव्य पुत्रीको प्राप्तकर पुलकित हो उठीं। पार्वतीके जन्मके पश्चात् हिमवान्‌के यहाँ ऋद्धि-सिद्धियोंने अपना डेरा डाल दिया। पार्वतीके बड़े होनेपर एक दिन भ्रमण करते हुए वहाँ नारदजी पधारे। हिमवान् और मेनाने उनका यथोचित सत्कार करके अपनी पुत्रीके भविष्यके विषयमें प्रश्न किया। नारदजीने विस्तारसहित पार्वतीके लक्षणोंका वर्णन किया तथा बतलाया कि भगवान् शंकरसे तुम्हारी कन्याका विवाह होगा। रामचरितमानस तथा गोस्वामी तुलसीदासजीके पार्वती-मंगलमें शिव-विवाहका प्रसंग विस्तारसे वर्णित है।

पार्वतीको गोदमें बिठाकर नाना प्रकारका विलाप करने लगीं। इसी बीच नारदजीने वहाँ आकर पार्वतीके पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर और शिवके साथ उनका सनातन सम्बन्ध बताकर सभीका भ्रम दूर किया। उदासीका वातावरण पुनः हर्षमें परिवर्तित हो गया और ब्रह्माजीने शास्त्रोक्त रीतिसे शिव-पार्वतीका विवाह सम्पन्न कराया। हिमवान्‌ने उमासहित शंकरजीकी बिदाई की। भगवान् भोले शंकर कैलासपर आकर पार्वतीके साथ निवास करने लगे। कालान्तरमें पुरुषार्थके प्रतीक षट्वदन कार्तिकेयका जन्म हुआ, जिन्होंने तारकासुरका वध करके संसारको उसके अत्याचारसे मुक्त किया। संक्षेपमें शिवचरितको पूर्ण करते हुए याज्ञवल्क्यमुनिने भरद्वाजको समझाया कि शिवचरित सागरसे भी गहन है। इसका गुणगान मन्दमति मानव तो क्या वेद भी नहीं कर सकते—

चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु॥

(मानस १। १०३)

फिर उन्हींके प्रश्न करनेपर भगवान् शंकरने रामचरितका वर्णन किया, 'राम' नाम ही भगवान् शंकरका मन्त्र बन गया और रामकथा ही उनकी जीवनचर्याका मुख्य आश्रय हो गया।

श्रीशिवगीतामें शिवतत्त्व-निरूपण

(पं॰श्रीजानकीनाथजी शर्मा, डॉ॰ श्रीवसन्तवल्लभजी भट्ट)

त्रिभुवन-गुरु भगवान् शंकर स्वभावसे ही विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय, परमानन्दमय, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र एवं अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न हैं। इनमें बोध, विज्ञान आदि शक्तियाँ प्रतियत्न अथवा अतिशयाधान आदि संस्कारोंसे प्राप्त नहीं है, अपितु अनादिकालसे स्वतः संश्लिष्ट है। प्रायः सभी शैवागमों और पुराणोंका यही स्पष्ट उद्घोष है—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

(वायुपु॰ १२। ३१)

भगवान् (शंकर) में ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश एवं कान्ति अक्षुण्ण-रूपसे स्थिर रहते हैं, इसलिये उनके भगवान् नामकी सार्थकता है और नित्य-विशुद्ध विज्ञानमय होनेसे एवं जीवकोटिसे सर्वथा भिन्न साक्षात् परमशिव होनेके कारण उन्हें त्रिभुवन-गुरुत्व स्वतः प्राप्त है। अतः सच्चे वास्तविक जगद्गुरुपदभाक् भगवान् शिव ही हैं।

प्रायः सभी आगम तथा रहस्य आदि उनके द्वारा उपदिष्ट होनेसे 'आगम' शब्दसे व्यवहृत होते हैं[1]। शैवागमोंके अतिरिक्त यामल, डामर, सौर-आगम यहाँतक कि वैष्णव आगमोंकी अहिर्बुध्न्य, सदाशिव तथा सनत्कुमार आदि संहिताएँ भी इन्हींके द्वारा उपदिष्ट हैं, किंतु इन सबमें भी उपदेशसुधासारसर्वस्व 'श्रीशिवगीता' विशेष महत्त्वकी है, जो भगवान् श्रीरामादि-सदृश विशिष्ट अधिकारियोंको परमशिवद्वारा उपदिष्ट है। यद्यपि शिवगीताएँ अनेक हैं और पद्म, स्कन्द, कूर्म, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों तथा श्रीरामचरित आदि रामायणोंमें भी किञ्चित् नामान्तरसे उपलब्ध हैं, तथापि इन सबमें भी अष्टादशाध्यायात्मिका, शिवराघवसंवादरूपा शिवगीता अत्यधिक महत्त्वकी है और अत्यन्त प्राचीन कालसे सम्प्रदाय-परम्परासे समादृत रही है। इसपर अत्यन्त विशिष्ट विद्वानोंकी अनेक व्याख्याएँ, टीकाएँ तथा भाष्यादि भी उपलब्ध हैं, अतः यह उपनिषदादिकी तरह प्रमाणित मानी जाती है। टीकाओंमें तात्पर्यबोधिनी, तात्पर्यदीपिका, शिवगीताव्याख्या, शिवगीताभाष्य, तात्पर्यप्रकाशिका आदि संस्कृत टीकाएँ विशेषरूपसे उल्लेख्य हैं। इनमेंसे अधिकांश अद्वैत सम्प्रदायके उच्चकोटिके विद्वानोंद्वारा निर्मित हैं। श्रीमत्परमशिवेन्द्रसरस्वतीद्वारा रचित 'तात्पर्यप्रकाशिका' नामकी व्याख्या पर्याप्त विस्तृत एवं मूलग्रन्थको सुस्पष्ट करनेवाली है। कुछ स्थलोंपर इन्होंने श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, आगम, व्याकरण एवं वेदान्तादि दर्शनोंके वचनोंसे

१-आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ। तस्मादागम इत्युक्तो विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ (कुलार्णवतन्त्र १७)

पार्वतीको गोदमें बिठाकर नाना प्रकारका विलाप करने लगीं। इसी बीच नारदजीने वहाँ आकर पार्वतीके पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर और शिवके साथ उनका सनातन सम्बन्ध बताकर सभीका भ्रम दूर किया। उदासीका वातावरण पुनः हर्षमें परिवर्तित हो गया और ब्रह्माजीने शास्त्रोक्त रीतिसे शिव-पार्वतीका विवाह सम्पन्न कराया। हिमवान्‌ने उमासहित शंकरजीकी विदाई की। भगवान् भोले शंकर कैलासपर आकर पार्वतीके साथ निवास करने लगे। कालान्तरमें पुरुषार्थके प्रतीक षड्वदन कार्तिकेयका जन्म हुआ, जिन्होंने तारकासुरका वध करके संसारको उसके अत्याचारसे मुक्त किया। संक्षेपमें शिवचरितको पूर्ण करते हुए याज्ञवल्क्यमुनिने भरद्वाजको समझाया कि शिवचरित सागरसे भी गहन है। इसका गुणगान मन्दमति मानव तो क्या वेद भी नहीं कर सकते—

चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु॥
(मानस १। १०३)

फिर उन्हींके प्रश्न करनेपर भगवान् शंकरने रामचरितका वर्णन किया, 'राम' नाम ही भगवान् शंकरका मन्त्र बन गया और रामकथा ही उनकी जीवनचर्याका मुख्य आश्रय हो गया।

श्रीशिवगीतामें शिवतत्त्व-निरूपण

(पं॰श्रीजानकीनाथजी शर्मा, डॉ॰ श्रीयमनवल्लभजी भट्ट)

त्रिभुवन-गुरु भगवान् शंकर स्वभावसे ही विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय, परमानन्दमय, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र एवं अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न हैं। इनमें बोध, विज्ञान आदि शक्तियाँ प्रतियत्न अथवा अतिशयाधान आदि संस्कारोंसे प्राप्त नहीं हैं, अपितु अनादिकालसे स्वतः संश्लिष्ट हैं। प्रायः सभी शैवागमों और पुराणोंका यही स्पष्ट उद्घोष है—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥
(वायुपु॰ १२। ३१)

भगवान् (शंकर) में ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश एवं कान्ति अक्षुण्ण-रूपसे स्थिर रहते हैं, इसलिये उनके भगवान् नामकी सार्थकता है और नित्य-विशुद्ध विज्ञानमय होनेसे एवं जीवकोटिसे सर्वथा भिन्न साक्षात् परमशिव होनेके कारण उन्हें त्रिभुवन-गुरुत्व स्वतः प्राप्त है। अतः सच्चे वास्तविक जगद्गुरुपदभाक् भगवान् शिव ही हैं।

प्रायः सभी आगम तथा रहस्य आदि उनके द्वारा उपदिष्ट होनेसे 'आगम' शब्दसे व्यवहृत होते हैं[1]। शैवागमोंके अतिरिक्त यामल, डामर, सौर-आगम यहाँतक कि वैष्णव आगमोंकी अहिर्बुध्न्य, सदाशिव तथा सनत्कुमार आदि संहिताएँ भी इन्हींके द्वारा उपदिष्ट हैं, किंतु इन सबमें भी उपदेशसुधासारसर्वस्व 'श्रीशिवगीता' विशेष महत्त्वकी है, जो भगवान् श्रीरामादि-सदृश विशिष्ट अधिकारियोंको परमशिवद्वारा उपदिष्ट है। यद्यपि शिवगीताएँ अनेक हैं और पद्म, स्कन्द, कूर्म, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों तथा श्रीरामचरित आदि रामायणोंमें भी किञ्चित् नामान्तरसे उपलब्ध हैं, तथापि इन सबमें भी अष्टादशाध्यायात्मिका, शिवराघवसंवादरूपा शिवगीता अत्यधिक महत्त्वकी है और अत्यन्त प्राचीन कालसे सम्प्रदाय-परम्परासे समादृत रही है। इसपर अत्यन्त विशिष्ट विद्वानोंकी अनेक व्याख्याएँ, टीकाएँ तथा भाष्यादि भी उपलब्ध हैं, अतः यह उपनिषदादिकी तरह प्रमाणित मानी जाती है। टीकाओंमें तात्पर्यबोधिनी, तात्पर्यदीपिका, शिवगीताव्याख्या, शिवगीताभाष्य, तात्पर्यप्रकाशिका आदि संस्कृत टीकाएँ विशेषरूपमें उल्लेख्य हैं। इनमेंसे अधिकांश अद्वैत सम्प्रदायके उच्चकोटिके विद्वानोंद्वारा निर्मित हैं। श्रीमत्परमशिवेन्द्रसरस्वतीद्वारा रचित 'तात्पर्यप्रकाशिका' नामकी व्याख्या पर्याप्त विस्तृत एवं मूलग्रन्थको सुस्पष्ट करनेवाली है। कुछ स्थलोंपर इन्होंने श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, आगम, व्याकरण एवं वेदान्तादि दर्शनोंके वचनोंसे

१-आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ। तस्मादागम इत्युक्तं विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभि॥ (कुलार्णवतन्त्र १७)

तथा कालाग्नि, रुद्रजाबाल, मुण्डक, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, अथर्वशिरस् तथा बृहज्जाबाल आदि उपनिषदोंके वचनों और लौगाक्षि, भारद्वाज, मनु, बोधायन आदि स्मृतियों, स्मृति-रत्नावली, धर्मसारसुधानिधि, स्मृतिसारसमुच्चय आदि निबन्ध-शास्त्रों एवं शिवरहस्य, सूतसंहिता, शंकरसंहिता, सौरसंहिता, अंशुमद्भेदागम आदि विशिष्ट ग्रन्थोंके अनेक वचनोंसे शैव ज्ञानकी पुष्टि की है।

शिवगीताके हिन्दी तथा क्षेत्रिय भाषाओंमें भी अनुवाद हुए हैं। दक्षिण भारतमें इसका विशेष प्रचार है। लक्ष्मी-वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बईसे १९५२ ई० मे हिन्दी-अनुवादके साथ प्रकाशित शिवगीताके प्रत्येक अध्यायकी पुष्पिकामें **'श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'**......'इस प्रकार कहकर इसे पद्मपुराणके अन्तर्गत बताया गया है। किंतु वर्तमानमे उपलब्ध पद्मपुराणके संस्करणोंमें यह उपलब्ध नहीं होती। इसमें अठारह अध्याय हैं और लगभग ९०० श्लोक हैं।

इसके प्रारम्भमें गीताके पाठका विनियोग, सर्वाङ्गन्यास तथा ध्यान भी दिया हुआ है। इसका ध्यान सर्वथा अद्वैतवेदान्तका परम साररूप है, जो इस प्रकार है—

> दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं
> सर्वात्मकं सात्त्विकमेकमक्षरम्।
> अलेपनं सर्वगतं यदद्वयं
> तदेव चाहं प्रणवं यदुक्तम्॥
> (ध्यानश्लोक ७)

अर्थात् जो आकाशके समान निर्लेप, विशुद्ध, साक्षी—द्रष्टा मात्र है और शुद्ध सात्त्विक, सर्वस्वरूप तथा एकाक्षर ब्रह्मके रूपमें स्थित है, एवं निर्लेप सर्वव्यापक और अद्वयस्वरूप है, वह प्रणवस्वरूप परमात्मा मैं ही हूँ।

शिवगीताके उपोद्घातमें श्रीसूतजीने शौनकादि ऋषियोंसे कहा कि मोक्ष दान तथा तप आदि कर्मोंके अनुष्ठानोंसे प्राप्त नहीं होता, अपितु केवल ज्ञान ही मोक्षका एकमात्र कारण है और इस ज्ञानका गुप्त रहस्य शिवगीतामें प्रकाशित है, जिसे दण्डकारण्यके परमपावन क्षेत्रमें पार्वतीपति भगवान् शंकरने उस समय श्रीरामको उपदिष्ट किया था, जिस समय रावण-द्वारा पराम्बा सीताका अपहरण हो चुका था और सीताके वियोगमें विलाप करते हुए श्रीरामकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी।

इस शिवगीताको पहले भगवान् स्कन्दने सनत्कुमारको और सनत्कुमारने व्यासको उपदिष्ट किया था तथा अन्तमें भगवान् व्यासने कृपाकर अत्यन्त गुप्त रखनेकी चेतावनी देकर मुझे उपदिष्ट किया और कहा कि 'इसके प्रचारसे देवता क्षुब्ध होकर शाप देते हैं।' ऋषियोंद्वारा इसका कारण पूछनेपर सूतजीने बतलाया कि मोक्ष-प्राप्तिमें सचेष्ट ज्ञानी व्यक्ति देवताओंके लिये दुस्सह होता है। अतः वे उसके मार्गमें विघ्न उपस्थित करते हैं। अनेक पुण्योंके अनुष्ठानसे श्रीशिवमें भक्ति होकर विघ्नोंका संहार सम्भव होता है। पुण्योंसे ही शिवचरित्र सुननेकी इच्छा होती है तथा शिव-चरित्र-श्रवणसे ज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे जीवकी मुक्ति होती है, अतः एकमात्र वे ही ध्येय हैं। शिवभक्तिमें किसी देश, काल एवं स्थानका नियम नहीं है। केवल उनमें आत्मभावना करनेसे ही मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है। जो अभिमानरहित होकर अपनेको शिव मानता हुआ **'शिवोऽहं शिवोऽहं शिवः केवलोऽहम्'** का उच्चारण करता रहता है, वह उनका स्वरूप ही बन जाता है—

> शिवः शिवोऽहमस्मीति वादिनं यं च कश्चन।
> आत्मना सह तादात्म्यभागिनं कुरुते भृशम्॥
> (शिवगीता १।३५)

पाशुपतव्रत, विरजादीक्षा, भस्म, रुद्राक्षधारण तथा वेदसारशिवसहस्रनामके जपसे भगवान् शंकर शीघ्र ही दर्शन देकर भक्तको अपने स्वरूपमें सम्मिलित कर लेते हैं। जैसा कि अगस्त्यके उपदेशसे श्रीरामको दण्डकारण्यमें शिवद्वारा आत्मज्ञान प्रदान किया गया था।

शौनकादि ऋषियोंद्वारा यह पूछनेपर कि यह घटना कैसे हुई थी और रामको कौन-सा श्रेष्ठ फल प्राप्त हुआ था, तब सूतजीने बतलाया कि रावणके द्वारा सीताके अपहरण होनेपर दुःखसे उद्विग्न श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ प्राणोंको छोड़ना ही चाहते थे कि त्रिकालज्ञ अगस्त्य मुनि वहाँ पहुँच गये और उनसे कहने लगे—

राम! यह संसार निस्सार है। तुम विषाद-रहित होकर आत्माकी निर्लेपता और सच्चिदानन्दरूपताको समझो। लोकचक्षु सूर्य जिस प्रकार नेत्रदोषोंसे लिप्त नहीं होते, वैसे ही

तथा कालाग्नि, रुद्रजाबाल, मुण्डक, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, अथर्वशिरस् तथा बृहज्जाबाल आदि उपनिषदोंके वचनों और लौगाक्षि, भारद्वाज, मनु, बोधायन आदि स्मृतियों, स्मृति-रत्नावली, धर्मसारसुधानिधि, स्मृतिसारसमुच्चय आदि निबन्ध-शास्त्रों एवं शिवरहस्य, सूतसंहिता, शंकरसंहिता, सौरसंहिता, अंशुमद्भेदागम आदि विशिष्ट ग्रन्थोंके अनेक वचनोंसे शैव ज्ञानकी पुष्टि की है।

शिवगीताके हिन्दी तथा क्षेत्रिय भाषाओंमें भी अनुवाद हुए हैं। दक्षिण भारतमे इसका विशेष प्रचार है। लक्ष्मी-वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बईसे १९५२ ई० में हिन्दी-अनुवादके साथ प्रकाशित शिवगीताके प्रत्येक अध्यायकी पुष्पिकामें **'श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे······'**इस प्रकार कहकर इसे पद्मपुराणके अन्तर्गत बताया गया है। किंतु वर्तमानमें उपलब्ध पद्मपुराणके संस्करणोंमें यह उपलब्ध नहीं होती। इसमें अठारह अध्याय हैं और लगभग ९०० श्लोक हैं।

इसके प्रारम्भमें गीताके पाठका विनियोग, सर्वाङ्गन्यास तथा ध्यान भी दिया हुआ है। इसका ध्यान सर्वथा अद्वैतवेदान्तका परम साररूप है, जो इस प्रकार है—

दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं
सर्वात्मकं सात्त्विकमेकमक्षरम्।
अलेपनं सर्वगतं यदद्वयं
तदेव चाहं प्रणवं यदुक्तम्॥

(ध्यानश्लोक ७)

अर्थात् जो आकाशके समान निर्लेप, विशुद्ध, साक्षी—द्रष्टा मात्र है और शुद्ध सात्त्विक, सर्वस्वरूप तथा एकाक्षर ब्रह्मके रूपमे स्थित है, एवं निर्लेप सर्वव्यापक और अद्वयस्वरूप है, वह प्रणवस्वरूप परमात्मा मैं ही हूँ।

शिवगीताके उपोद्घातमें श्रीसूतजीने शौनकादि ऋषियोंसे कहा कि मोक्ष दान तथा तप आदि कर्मोंके अनुष्ठानोंसे प्राप्त नहीं होता, अपितु केवल ज्ञान ही मोक्षका एकमात्र कारण है और इस ज्ञानका गुप्त रहस्य शिवगीतामें प्रकाशित है, जिसे दण्डकारण्यके परमपावन क्षेत्रमें पार्वतीपति भगवान् शंकरने उस समय श्रीरामको उपदिष्ट किया था, जिस समय रावण-द्वारा पराम्बा सीताका अपहरण हो चुका था और सीताके वियोगमें विलाप करते हुए श्रीरामकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी।

इस शिवगीताको पहले भगवान् स्कन्दने सनत्कुमारको और सनत्कुमारने व्यासको उपदिष्ट किया था तथा अन्तमें भगवान् व्यासने कृपाकर अत्यन्त गुप्त रखनेकी चेतावनी देकर मुझे उपदिष्ट किया और कहा कि 'इसके प्रचारसे देवता क्षुब्ध होकर शाप देते हैं।' ऋषियोंद्वारा इसका कारण पूछनेपर सूतजीने बतलाया कि मोक्ष-प्राप्तिमें सचेष्ट ज्ञानी व्यक्ति देवताओंके लिये दुस्सह होता है। अतः वे उसके मार्गमें विघ्न उपस्थित करते हैं। अनेक पुण्योंके अनुष्ठानसे श्रीशिवमें भक्ति होकर विघ्नोंका संहार सम्भव होता है। पुण्योंसे ही शिवचरित्र सुननेकी इच्छा होती है तथा शिव-चरित्र-श्रवणसे ज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे जीवकी मुक्ति होती है, अतः एकमात्र वे ही ध्येय है। शिवभक्तिमें किसी देश, काल एवं स्थानका नियम नहीं है। केवल उनमें आत्मभावना करनेसे ही मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है। जो अभिमानरहित होकर अपनेको शिव मानता हुआ **'शिवोऽहं शिवोऽहं शिवः केवलोऽहम्'** का उच्चारण करता रहता है, वह उनका स्वरूप ही बन जाता है—

शिवः शिवोऽहमस्मीति वादिनं यं च कञ्चन।
आत्मना सह तादात्म्यभागिनं कुरुते भृशम्॥

(शिवगीता १। ३५)

पाशुपतव्रत, विरजादीक्षा, भस्म, रुद्राक्षधारण तथा वेदसारशिवसहस्रनामके जपसे भगवान् शंकर शीघ्र ही दर्शन देकर भक्तको अपने स्वरूपमें सम्मिलित कर लेते हैं। जैसा कि अगस्त्यके उपदेशसे श्रीरामको दण्डकारण्यमें शिवद्वारा आत्मज्ञान प्रदान किया गया था।

शौनकादि ऋषियोंद्वारा यह पूछनेपर कि यह घटना कैसे हुई थी और रामको कौन-सा श्रेष्ठ फल प्राप्त हुआ था, तब सूतजीने बतलाया कि रावणके द्वारा सीताके अपहरण होनेपर दुःखसे उद्विग्न श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ प्राणोंको छोड़ना ही चाहते थे कि त्रिकालज्ञ अगस्त्य मुनि वहाँ पहुँच गये और उनसे कहने लगे—

राम! यह संसार निस्सार है। तुम विषाद-रहित होकर आत्माकी निर्लेपता और सच्चिदानन्दरूपताको समझो। लोकचक्षु सूर्य जिस प्रकार नेत्रदोषोंसे लिप्त नहीं होते, वैसे ही

सर्वद्रष्टा चिदात्मा भी बाह्य दृश्योंसे लिप्त नहीं होता। सुवर्णगौरी, चन्द्रमुखी, कोकिलालापा कामिनी भी अज्ञानसे ही प्रतिभासित होती है, क्योंकि स्त्री-पुरुषके शरीर मलपिण्डात्मक तथा जड़ हैं और यह जीव स्त्री, पुरुष या नपुंसक नहीं है। आत्मा अमूर्त, साक्षिस्वरूप और द्रष्टामात्र है। अतः स्त्रीका मोह छोड़ दो। आत्मा परिपूर्ण, निष्कल और सनातन है। कौन किसकी कान्ता और कौन किसका कान्त ? सभी सहोदर या एकात्मभूत हैं—

आत्मा यदेकलस्तेषु परिपूर्णः सनातनः।
का कान्ता तत्र कः कान्तः सर्व एव सहोदराः॥
(शिवगीता २। १८)

जैसे गृहसमूहोंके दग्ध होनेपर भी उसके अन्तर्गतका अविच्छिन्न आकाश क्षतिग्रस्त नहीं होता, वैसे ही परिपूर्ण आत्मा भी देहके नष्ट होनेपर नष्ट नहीं होता। जो जीवात्माको हत या हन्ता मानते हैं, वे दोनों ही अज्ञानी हैं। यह न मरता है न मारता है—

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
तावुभौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥
(शिवगीता २। २१)

अतः आत्मस्वरूपको जानकर दुःखसे मुक्त होकर सर्वथा सुखयुक्त हो जाओ। इसपर भगवान् श्रीरामने कहा—'महर्षे ! यदि देह और आत्माको दुःख नहीं होता तो सीताकी वियोगाग्नि मुझे कैसे भस्म कर रही है ? जो तथ्य सदा अनुभवमें ज्ञात हो रहा है, आप कहते हैं कि उसका अस्तित्व नहीं है ? आपकी बातोंमें मेरा विश्वास कैसे हो ? यदि आत्मा सुख-दुःखका भोक्ता नहीं है तो फिर वह कौन है ?

महर्षि अगस्त्यने बतलाया—श्रीराम ! दुर्ज्ञेया महामाया प्रकृति और उसके स्वामी महामायी महेश्वरके संयोगसे उनके अंशभूत जीवोंके समूहसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। जिस प्रकार काष्ठके संयोगसे अग्निमें स्फुलिंग उठते हैं, उसी प्रकार जीव भी परमात्मासे उत्पन्न होता है। अनादिकर्म और अविद्यासे सम्बद्ध अनादि वासनासे संयुक्त ये जीव क्षेत्रज्ञ नामसे निर्दिष्ट होते हैं। इनके अन्तःकरणमें मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त—ये चार प्रतिबिम्बित होते हैं। वे ही जीव वैषयिक सुख और दुःखका भोगायतन शरीरके द्वारा उपभोग करते हैं। इनमें स्थावर-जङ्गम और उनके भी अंदर जरायुज, स्वेदज, अण्डज तथा उद्भिज्ज आदि ये अवान्तर भेद हैं। ये जीवगण ही अपने कर्मानुसार अपनेको सुखी-दुःखी अनुभव करते हैं तथापि शुद्ध आत्मा निर्लेप एवं ज्योतिःस्वरूप है। यह सारा विश्व निर्विकार शिवमें मायाके कारण ही शुक्तिमें रजतकी भाँति प्रतिभासित होता है। अतः राम ! तुम व्यर्थ परितप्त होते हो। दुःख और चिन्तासे अलग हो जाओ।

इसपर श्रीरामने अगस्त्यजीसे कहा—'प्रभो ! आपकी बात सत्य होनेपर भी मेरा प्रारब्ध मुझे दुःखसे अलग नहीं होने देता, अधिक कहनेसे क्या लाभ ! अहंकारसे पीड़ित मेरा शरीर प्राण त्याग करना चाहता है, आप किसी प्रकार जिलानेका उपाय कीजिये।'

अगस्त्यजी बोले—काम और क्रोध आदिसे पीड़ित व्यक्ति तत्त्वज्ञानको उसी प्रकार ग्रहण नहीं कर पाता, जिस प्रकार मुमूर्षु पुरुष ओषधिको ग्रहण नहीं करना चाहता। समुद्रके बीचमें रावणद्वारा लङ्कामें रखी गयी सीता तुम्हारे पास कैसे आ सकती है ? उस रावणने सभी देवताओंको वानरोंके यूथकी तरह बाँध रखा है और देवस्त्रियाँ उसके यहाँ चँवर झलती हैं। शिवके आशीर्वादसे वह तीनों लोकोंका निष्कण्टक राज्य भोग रहा है। इन्द्रजित् नामक उसके पुत्रने इन्द्रसहित सभी देवताओंको पराजित किया है। उसके नामसे देवता भागते हैं। उसका दुर्ग लङ्का देव-दानवोंद्वारा सर्वथा दुर्जेय है और उसका सैन्यबल भी असंख्य है।

श्रीरामने कहा—मुने ! मैं क्षत्रिय हूँ और मेरी पत्नीका उस दुष्ट राक्षसके द्वारा अपहरण हुआ है। यदि मैंने ऐसे शत्रुका संहार नहीं किया तो मेरे जीनेसे क्या लाभ है ? इसलिये आपके तत्त्वबोधसे मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है। अतः समुद्रको पारकर मैं उसका जिस प्रकार वध कर सकूँ, वही उपाय आप बताइये। आपसे बड़ा कोई गुरु नहीं मिल सकता।

अगस्त्यजीने कहा—राम ! यदि ऐसी बात है तो तुम पार्वतीपति भगवान् शंकरकी आराधना करो, उनकी शरणमें जाओ, वे तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं।[1] ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादिके द्वारा अजेय शत्रु रावण बिना शंकरकी कृपाके

१-एवं चेच्छरणं याहि पार्वतीपतिमव्ययम्। स चेत्प्रसन्नो भगवान् वाञ्छितार्थं प्रदास्यति॥ (शिवगीता ३। १३)

कैसे वध्य हो सकेगा ? मैं तुम्हें विरजादीक्षा देता हूँ, उससे तुम मनुष्यभावसे दिव्यत्वको प्राप्त होकर शत्रुओंका संहार करोगे तथा समस्त भूमण्डलके स्वामित्वको प्राप्त कर लोगे और सभी कामनाओंका उपभोग करते हुए शिवसायुज्यको प्राप्त हो जाओगे।

श्रीरामने कहा—महासमुद्रको पान करनेवाले हे मुने! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे क्या दुर्लभ है ? आप मुझे तत्काल विरजादीक्षा दें। उनके ऐसा कहनेपर महर्षि अगस्त्यने उन्हें पाशुपत-व्रतका उपदेशकर, शुक्ल वस्त्र, माल्यादिसे अलङ्कृतकर विरजा-मन्त्रोंसे हवन कराकर भस्म धारण कराया और वेदसारसर्वस्व शिवका प्रत्यक्षकारक शिवसहस्र-नामका उपदेश किया और फिर कहा कि तुम इसीका सदा जप किया करो। इससे भगवान् शंकर प्रसन्न होकर तुम्हे पाशुपतास्त्र देंगे, जिससे तुम समुद्रका शोषणकर, शत्रुओंका संहारकर अपनी प्रिया सीताको प्राप्त कर सकोगे। ऐसा कहकर अगस्त्यजी चले गये।

अगस्त्यजीसे उपदिष्ट होकर भगवान् श्रीरामने गोदावरीके तटपर रामगिरि (रामटेक) पर्वतपर शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठापूर्वक स्थापना की और गोदावरीके जलसे उन्हें स्नान कराते हुए, वन्य पत्र-पुष्पोंसे उनकी पूजा करते हुए व्याघ्रचर्म धारणकर शिवसहस्रनामका जप करते रहे। श्रीराम ध्यानमग्न हो समाधिमें स्थित हो गये। कुछ समय बाद एक भीषण ध्वनि हुई, जिससे पृथिवी हिल उठी और क्षणभरमें चन्द्रमाके समान शीतल तेज सर्वत्र व्याप्त हो गया। जब भगवान् श्रीरामने नेत्र खोले तो उन्हें सच्चिदानन्दविग्रह, सर्वाभरणोंसे अलंकृत वृषभासीन, शुद्धस्फटिकविग्रह, श्वेत चामरयुक्त, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाले भगवान् चन्द्रशेखर दृष्टिगोचर हुए। उनके साथ ही उन्होंने पूर्णचन्द्रमुखी, मरकतवर्णा, दिव्यगन्धानुलेपित, आभरण एवं माल्याम्बरसे समलंकृत, सौन्दर्य-सारसंदोह जगदम्बिका भगवती पार्वतीको भी देखा। भगवान् शंकरके पार्श्वमें लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु, सरस्वतीसहित ब्रह्मा तथा अन्य देवता और मुनियोंका मण्डल दिखायी दिया, जो बृहद्रथन्तरादि सामगानों, श्वेताश्वतर तथा कैवल्योपनिषदादिके मन्त्रोंका पाठ कर रहा था। साथ ही नारदादि मुनि, चित्ररथादि गन्धर्व और रम्भादि अप्सराएँ नृत्य-गीत कर रही थीं। यह सब देखकर भगवान् श्रीराम प्रसन्न होकर गद्गदवाणीसे शिवसहस्रनाम आदि स्तोत्रोंसे उनकी मधुर स्तुति करने लगे।

उसी समय उनके सामने एक सुवर्णमय, रत्नजटित दिव्य रथ उपस्थित हुआ, भगवान् शंकर नन्दीसे उतरकर, पार्वतीसहित उस रथमें बैठ गये और उन्होंने पृथिवीपरसे श्रीरामको उठाकर अपनी गोदमें बैठा लिया तथा दिव्य पाशुपतास्त्र एवं अक्षय तूणीरसहित दिव्य धनुपरत्न प्रदान किया और कहा कि यह अस्त्र सम्पूर्ण विश्वका क्षय कर सकता है अतः इसका साधारण स्थितिमें प्रयोग नहीं किया जा सकता। अन्य सभी देवताओंने भी अपने-अपने दिव्य अस्त्र श्रीरामको प्रदान किये। इसपर भगवान् श्रीरामने कहा—भगवन्! यह लवणार्णव मनुष्यके द्वारा अनुल्लंघ्य है और लंका-दुर्ग भी दुर्जेय है। रावणके सहायक योद्धा राक्षस भी करोड़ोंकी संख्यामें बड़े बलवान्, मायावी और आपके भक्त हैं। फिर मैं एकाकी केवल लक्ष्मणके सहारे उसे कैसे जीत सकता हूँ? इसपर महादेवने कहा—'राम! ये राक्षस अधर्ममें प्रवृत्त हो गये हैं और उनकी आयु क्षीण हो गयी है, अब उनका अन्तिम काल उपस्थित हो गया है। पतिव्रता स्त्रीकी अवमाननासे पापासक्त शत्रु रावणका तुम्हारे द्वारा समराङ्गणमें संहार अत्यन्त सुगम हो गया है। सभी देवता और ऋषिगण उसका विनाश चाहते हैं। यहाँसे थोड़ी दूर आगे किष्किन्धानगरीमें निवास करनेवाले देवांशसम्भूत असंख्य बलवान् वानर तुम्हारी सहायता करेंगे। उनकी सहायतासे समुद्रमें पुल बाँधकर सगण रावणको मारकर अपनी प्रेयसी सीताको शीघ्र प्राप्त करोगे। मैं कालरूप होकर उन सभी राक्षसोंका ग्रास करूँगा, तुम निमित्तमात्र बनोगे। उस युद्धमें तुम्हें महान् कीर्ति प्राप्त होगी।' तदनन्तर भगवान् शंकरने श्रीरामसे विस्तारसे अपनी विभूतियोंका वर्णन किया और अपना औपनिषद निष्कल, अद्वितीय, शुद्ध परमात्मरूपका उन्हें परिचय कराया तथा फिर दिव्य नेत्र प्रदान कर अपने विश्वरूपका दर्शन कराया, जिसमें सभी सूर्य, चन्द्र, मेरु, मन्दरादि पर्वत, सागर, अनन्त ब्रह्माण्ड संलग्न दीख रहे थे। उसे देखकर भगवान् श्रीरामने उनकी दिव्य स्तुति की और भगवान् शंकरने उनकी प्रार्थनापर अपने विराट् रूपका

संवरणकर मङ्गलमय, पञ्चमुख तथा चतुर्भुजरूपका दर्शन कराया और कहा कि जो कुछ भी पूछना चाहो पूछ लो।

इसपर श्रीरामने पूछा—हे देवदेव! पञ्चमहाभूतोंसे देहोत्पत्ति, स्थिति तथा विलय कैसे होता है, इसे बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् शंकर बोले—यह देह पञ्चभूतोंसे बना होनेके कारण पाञ्चभौतिक कहा जाता है। इस शरीरमें पृथिवीकी प्रधानता है। अन्य चारों भूत (जल, तेज, वायु एवं आकाश) सहकारी हैं। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज चार प्रकारके शरीर होते हैं। मानस देह भी होते हैं। पुरुषार्थ-साधनमे जरायुज देह प्रधान है। स्त्रीके ऋतुकाल-समयमें शुक्र तथा रजके सम्मिश्रणसे शरीरकी उत्पत्ति होती है। शुक्रकी अधिकतासे पुरुष, रजकी अधिकतासे नारी और दोनोंमें समानता होनेपर नपुंसक उत्पन्न होता है। ऋतुस्नाता साकाङ्क्षा स्त्री जिस पुरुषका मुख देखती है, उसीके आकारका गर्भ होता है। प्राणियोंके कर्मानुसार तत्, तत्-कुल, वर्ण तथा स्त्री आदिमें उसका जन्म होता है। स्त्रीके रजसे पुरुषका शुक्र संयुक्त होनेपर प्रथम मासमें द्रवरूप होता है। द्रवसे बुद्बुद, बुद्बुदसे मृदुल मांस, अनन्तर पेशी और पेशीसे कठिन होता है। द्वितीय मासमें पिण्डरूप हो जाता है। तृतीय मासमें हाथ-पैर-सिर आदि बनते हैं। चतुर्थ मासमें सुख-दुःखादिकी अभिव्यक्ति हो जाती है। शरीरमे जीव-सम्बन्ध होनेपर माताके गर्भमें वह जीव हिलने-डुलने लगता है। यदि पुत्र हो तो दक्षिण पार्श्वमें, कन्या वामपार्श्वमें तथा नपुंसक मध्यभागमें स्थित रहता है। श्मश्रु-दन्त आदि छोड़कर अन्य सभी अङ्ग चतुर्थ मासमें व्यक्त हो जाते हैं।

पञ्चम मासमें मांस-शोणित पुष्ट हो जाते हैं। छठे मासमें अस्थि, स्नायु, नख, केश तथा लोम स्पष्ट भासित होने लगते हैं। सातवें मासमें बाल, कर्ण तथा अङ्गपूर्णता होती है। जीव जब गर्भके दुःखानुभवसे उद्विग्न होता है और माताके जठरानलसे संतप्त होकर क्रिमियोंसे दुःखी होता तथा कुम्भीपाक-नरकवत् गर्भकी दुर्गन्धसे दुःखित होता रहता है और मोक्षोपायका ध्यान करता हुआ कहता है—'यदि इस गर्भवाससे छुटकारा हो जाय तो मैं संसारमें मोक्ष-प्राप्तिके लिये महेश्वरका ध्यान करूँगा।' आठवें मासमें त्वक् आदि तथा हृदयमें ओज-तेजका निर्माण होता है। ओजके कारण गर्भस्थ शिशु इधर-उधर चलने लगता है। नवम मासके अन्तमें वह गर्भसे बाहर आता है। यहाँ उसे पुनः बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था प्राप्त होती है। कर्मानुसार सुख-दुःखभोग और तदनुसार पुनः मरण होता है। इस प्रकार जन्मका बीज मरण तथा मरणका बीज जन्म, निरन्तर घटीयन्त्रवत् घूमते रहते हैं।

उन्होंने पुनः आगे कहा कि प्राणीके द्वारा संसारमें भुक्त-पीत अन्न-जल तीन-तीन भागोंमें विभक्त होते हैं। अन्नके प्रथम स्थूल भागसे मांस, द्वितीय भागसे वीर्य और तृतीय सूक्ष्मतम भागसे मन बनता है। इसलिये मन भी मूलतः अन्नमय ही है। जलका प्रथम स्थूलभाग प्रस्राव, द्वितीय मध्यभाग रक्त और तृतीय सूक्ष्मभाग प्राण बनता है। इसलिये प्राणको जलात्मक माना गया है। स्वस्थ मनुष्यके शरीरमें १० अञ्जलि जलीय द्रव्य, ९ अञ्जलि रस, ८ अञ्जलि रक्त, ७ अञ्जलि मल, ६ अञ्जलि कफ, ५ अञ्जलि पित्त, ४ अञ्जलि प्रस्रव, ३ अञ्जलि वसा, २ अञ्जलि मेद, १ अञ्जलि मज्जा और आधी अञ्जलि मात्र शुक्र रहता है। यही—शुक्र ही सार, बल या शक्ति कहलाता है। शरीरमें ३६० छोटी-बड़ी अस्थियाँ, साढ़े तीन करोड़ रोमराजि और श्मश्रु तथा केशके बाल लगभग ३ लाख हैं। इस प्रकारके शरीरमें कोई सार नहीं है, अतः शरीरका अहकार व्यर्थ है।

श्रीरामने पुनः जिज्ञासा की—'भगवन्! वह जीव क्या है? शरीरके किस भागमें रहता है, उसका स्वरूप क्या है, शरीरके अन्त होनेपर उसकी क्या गति होती है तथा मर जानेपर उसी शरीरमें वह क्यों नहीं आता?

भगवान् शंकरने समझाया—राम! आत्मा सच्चिदानन्द-स्वरूप, परमानन्दविग्रह, परमज्योति, नित्य-निर्लेप, सर्वव्यापी और मनसे भी ग्रहण करने योग्य नहीं है। यह मेरा ही स्वरूप है, जो सभी प्राणियोंमें व्याप्त है। इस एक आत्माको सर्वत्र देखनेवाला शोक-मोहसे ग्रस्त नहीं होता[१], किंतु यही आत्मा

१-यस्तु सर्वाणि भूतानि मय्येवेति प्रपश्यति। मां च सर्वेषु भूतेषु ततो न विजुगुप्सते॥
यत्र सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः। को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ (शिवगीता १०।१०-११)

अविद्यासे संयुक्त होनेपर जीवत्वभावको प्राप्त होता है। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार एवं प्राण-अपान, वायुके संयोगसे जीव या क्षेत्रज्ञ-संज्ञाको प्राप्त होता है, निर्लेप होनेपर भी यह आत्मा मायासे संयुक्त होकर कर्तृत्व एवं भोक्तृत्वसे युक्त हो जाता है। यह शतधा कल्पित वालाग्रशतभागसे भी सूक्ष्मतर है और ऐसे जीवोंकी संख्या संसारमें असंख्य है[1]। जैसे राहु बिना दृष्टिगोचर हुए भी ग्रहणके समय अनुमित होता है, वैसे ही सर्वशरीरगत आत्मा बिना देखे ही अनुमित होता है। आत्मज्ञानके द्वारा अविद्याके नष्ट हो जानेपर यह जीव शरीर रहनेपर आत्मस्वरूपमें स्थित जीवन्मुक्त माना जाता है। वासना-प्रपञ्च ही आत्माको जीवत्व-रूपमें परिवर्तित करता है। प्राणीके अस्वस्थ हो जानेपर तथा कफ, पित्त और वायुके वैषम्यसे जठराग्नि दूषित होनेपर भुक्तान्नका समुचित रूपसे पाचन नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप धातुएँ शुष्क होकर क्षीण होने लगती हैं और शरीर दुर्बल होता चला जाता है। जैसे पक्व आम्रफल परिणमित होकर वृन्तसे स्वयं च्युत हो जाता है, उसी प्रकार लिङ्गदेह भी गिर जाता है, फिर इन्द्रियोंकी वासना-प्राणादि शक्तियाँ और प्रज्ञान आत्मा, अन्तःकरणसहित देश-देशान्तर जानेकी भाँति कर्मानुसार देहान्तरमें प्रविष्ट होता है और मोक्षपर्यन्त यह जीवका संसरण और संचरण उसी प्रकार चलता रहता है, जैसे मछली नदीके दोनों तटोंतक आती-जाती रहती है। पापात्मा जीव जलजन्तुओंसे पीडित होकर यातना-शरीरका आश्रय लेकर नरकमें जाता है। इष्टा-पूर्त आदि पुण्य कर्मोके अधिष्ठाता धूममार्गका आश्रय लेकर पितृलोक जाते हैं और वहाँ चन्द्रलोकमें स्थित होकर परमसुखका उपभोग करते हैं फिर कर्मशेषसे संसारमें लौट आते हैं। वे आकाशसे वायु, वायुसे मेघ, मेघसे वर्षाका जल, पुनः शस्य और उसके भक्षणके द्वारा शुक्र एवं पुनः गर्भमें प्रविष्ट होकर मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियोंके पुम्, स्त्री तथा नपुंसक-योनिमें प्राप्त होते हैं तथा पुनः सांसारिक कर्मादिमें प्रवृत्त हो जाते हैं। शुद्ध ब्रह्मज्ञानरत साधक देवयान या अर्चिमार्गसे आदित्यलोक होता हुआ ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वहाँ चिरकालतक भोग भोगनेके पश्चात् हिरण्यगर्भके साथ मुक्त हो जाता है।

तदनन्तर भगवान् श्रीरामने गिरिजापति विश्वनाथसे पूछा कि प्रभो! कैवल्यमुक्तिका क्या स्वरूप है? और वह कैसे प्राप्त होती है? भगवान् शंकरने कहा—'शम-दमादि-साधन-सम्पन्न पुरुष जब मुझ परमेश्वरको आत्मरूपसे देखता है, तब स्वप्रकाश, अद्वैत, शुद्ध ब्रह्मको प्राप्त होता है। मुक्तियाँ पाँच प्रकारकी हैं। सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्टि, सायुज्य एवं कैवल्य[2]। शुद्धब्रह्म सजातीय, विजातीय, स्वगत-भेदोंसे शून्य सच्चिदानन्द-स्वरूप है। वह मन, वाणीसे अगोचर है। यह दृश्यमान बाह्य विश्व गन्धर्वनगरकी[3] भाँति केवल अनादि अविद्याके कारण ही प्रतिभासित होता है। मेरे स्वरूप-ज्ञानसे अविद्या नष्ट होकर विशुद्ध विज्ञानकी प्राप्तिके द्वारा अमृतत्व या कैवल्यकी प्राप्ति होती है।'

तब श्रीरामजीने पुनः कहा कि भगवन्! कैवल्यका प्राप्तिकारक शुद्ध ज्ञान मनुष्यको कैसे प्राप्त होगा? यह कृपाकर बतायें। भगवान् शंकरने कहा—श्रीराम! इहलोक तथा ब्रह्मलोकपर्यन्तके सुखभोगोंमें विरक्त होकर ज्ञान-प्राप्तिके लिये ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुका आश्रय लेना चाहिये। सद्गुरुको शिष्य या साधकके लिये सभी वेदान्तवाक्योंका मुझ शिवमें पर्यवसान होनेका निश्चयकारक 'श्रवण' नामक साधनका सर्वप्रथम उपदेश करना चाहिये। पुनः मृत्तिका, लौह तथा मणि आदिके दृष्टान्तोंसे ब्रह्मकी सत्ताद्वारा संसारके उत्पत्ति-संचालनकी बात 'मनन'-साधनके द्वारा समझानी चाहिये और फिर अज्ञान, अहंता, ममता एवं प्रेमयुक्त होकर केवल समतायुक्त स्थितिमें रहकर केवल आत्मतत्त्वके अवलोकनमें ध्याननिरत रहनेका 'निदिध्यासन' नामक

१-वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥ (शिवगीता १०।२६)

२-श्रीमद्भागवत (३।२९।१३)में भगवान् कपिलने अपनी माता देवहूतिको उपदेश देते हुए कहा कि 'मेरे भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य एवं एकत्व—इन पाँच मुक्तिभेदोंको उपेक्षा कर मेरी उपासना ही करना चाहते हैं।' इस प्रकार सामीप्यको लेकर मुक्तिके छः भेद हो जाते हैं।

३-यह ध्वज, पताका और प्रासाद—अट्टालिकायुक्त एक कल्पित नगर आकाशमें चलता हुआ दीखता है, जो दिखायी देनेपर राष्ट्र एवं उसके अध्यक्षोंके लिये विशेष अशुभकारी माना गया है। देखनेवालेका भी श्रेय नहीं होता। गन्धर्वनगरका विशेष वर्णन बृहत्संहिता (३६।४), भागवतपुराण (५।१३।३,७)आदिमें प्राप्त होता है।

साधनका उपदेश करना चाहिये—

सर्ववेदान्तवाक्यानां मयि तात्पर्यनिश्चयम्।
श्रवणं नाम तत् प्राहुः सर्वे ते ब्रह्मवादिनः॥
लौहमण्यादिदृष्टान्तयुक्तिभिर्यद्विचिन्तनम्।
तदेव मननं प्राहुर्वाक्यार्थस्योपबृंहणम्॥
निर्मोहो निरहङ्कारः समः सङ्गविवर्जितः।
सदा चान्त्यादियुक्तः सन्नात्मन्यात्मानमीक्षते।
यत् सदा ध्यानयोगेन तन्निदिध्यासनं स्मृतम्॥

(शिवगीता १३। २२—२४)

ऐसा करनेसे साधकको शीघ्र ज्ञान हो जाता है। इससे सभी कर्मोंका क्षय होकर शीघ्र कैवल्य-प्राप्ति होती है। जो सभी प्राणियोंमें अपनेको और अपनेमें सभी प्राणियोंको देखता है वह जीवन्मुक्त है, जिसके हृदयकी सारी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, वह जीवन्मुक्त है और अमृतत्वको प्राप्त होता है[1]। मोक्ष न स्वर्गमें है न किसी दूसरे नगर या ग्राममें। हृदयमें स्थित अज्ञानग्रन्थिके नाश हो जानेका नाम ही मोक्ष है—

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥

(शि॰ गी॰ १३। ३२)

ज्ञानी पुरुष चाहे तीर्थमें शरीर छोड़े या चाण्डालके घरपर, वह ज्ञानके द्वारा ही मुक्त हो जाता है—

तीर्थे चाण्डालगेहे वा यदि वा नष्टचेतनः।
परित्यजन् देहमिमं ज्ञानादेव विमुच्यते॥

(शि॰ गी॰ १३। ३४)

आगे भगवान् श्रीरामने पूछा कि निर्गुण और सगुण उपासनाका रूप क्या है, जो अतिसूक्ष्म और इन्द्रियोंसे अग्राह्य है, वह ब्रह्म ग्राह्य कैसे हो सकता है, उस सूक्ष्म तत्त्वमें चित्तकी वृत्ति किस प्रकार हो सकती है, इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

शंकरजीने कहा—सगुणोपासनासे चित्तकी एकाग्रता हो जाती है। चिद्रूप आत्मा निर्लेप ब्रह्म ही है, अन्नमयादि पाँच कोश भी मेरे अतिरिक्त कुछ नहीं है। अध्यासका परित्याग कर स्व-स्वरूपमें स्थित होनेपर साक्षीभूत आत्मा प्रत्यक्ष होता है। क्षेत्रज्ञ रथी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और मन प्रग्रह (लगाम) है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, विषयोंमें विचरण ही उसकी यात्रा है। मनका ठीकसे प्रग्रहण कर दृश्य जगत्से हटकर अव्यय परमात्मामें स्थित होना ही परमात्मप्राप्तिका मूल है।

श्रीरामने पुनः प्रश्न किया—भगवन्! विद्वान् व्यक्ति सुनते-जानते हुए भी परमात्माको प्राप्त नहीं कर पाते, यह आपकी कैसी माया है?

भगवान् शंकरने कहा—यह सब मेरी त्रिगुणमयी मायाका चमत्कार है, किंतु जो मेरी शरणमें आते हैं, वे इसका संतरणकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं[2]। उन भक्तोंको ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अन्य कर्मोंमें आसक्त जीवोंकी करोड़ों जन्ममें मुक्ति नहीं होती। अतः सब कुछ छोड़कर तुम्हें मेरी शरण लेनी चाहिये, इससे तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध हो जायँगे। मेरी भक्तिसे बढ़कर कुछ नहीं है।

भक्तिके विषयमें पूछनेपर भगवान् शिवने कहा—'जो यज्ञ, दान, स्वाध्याय, जप-तप आदि कर्मोंको करते हुए इन्हें मुझे अर्पण कर देते हैं, वे मेरे सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरे भक्तको अभिमन्त्रित भस्म धारण करना चाहिये। कण्ठमें रुद्राक्षकी माला, पञ्चाक्षर मन्त्रका जप और भस्मका लेप करते हुए, अनन्यभावसे मेरा स्मरण करना चाहिये, उससे वह शिव-स्वरूप हो जाता है। जो रुद्रसूक्त, अथर्वशिरस्, कैवल्य तथा श्वेताश्वतर-उपनिषद्का जप-पाठ करता है, उससे बढ़कर मेरा कोई भक्त नहीं है।

सम्पूर्ण वेद-शास्त्र तथा उपनिषदादि जिसका प्रवचन करते हैं और जो दधिके सार—नवनीत या घृतकी भाँति समस्त शास्त्रोंका सर्वस्व है तथा जिसकी प्राप्तिके लिये मुनिगण ब्रह्मचर्यादि नियमों-साधनोंका पालन करते हैं, उस ओंकाररूपी अक्षरका अवलम्बन मैं ही हूँ। यह ओंकार अकार, उकार, मकार एवं अर्धमात्रा चतुर्मात्रात्मक रूपमें मेरा

१-निर्मोहो निरहङ्कारो निर्लेपः सङ्गवर्जितः। सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
यः पश्यन् संचरत्येष जीवन्मुक्तोऽभिधीयते॥
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि गताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतद्वेदानुशासनम्॥ (शिवगीता १३। २९,३१)

२-दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (शिवगीता १४। ३४-३५)

ही स्वरूप है। यह सम्पूर्ण पूर्वोत्पन्न और वर्तमान जायमान चित्र-विचित्र संसार इस ओंकारमें ही प्रतिष्ठित है। यह ओंकार शिवका रूप है। अतः इस सम्पूर्ण विश्वको सनातन ब्रह्म-स्वरूप ओंकार शिवमें ही प्रविलीन करते हुए नित्य उसका जप करना चाहिये। जो ऐसा करता है वह मुक्त ही है इसमें संदेह नहीं।

प्रविलीनं तदोङ्कारे परं ब्रह्म सनातनम्।
तस्मादोङ्कारजापी यः स मुक्तो नात्र संशयः॥

(शिवगीता १५। २४)

जो व्यक्ति भस्म धारणकर मात्र बिल्वपत्र, पुष्प आदिसे ओंकार-जपपूर्वक पूजा करता है और जल अर्पण करता है, उसकी पूजा कोटि गुना अधिक हो जाती है। प्रदोषके समय जो मेरे स्थानमें जाकर मेरी पूजा करता है, वह पराश्रीको प्राप्तकर अन्तमें मुझमें ही लीन हो जाता है। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या—इन तिथियोंमें सर्वाङ्गमें भस्म लगाकर रात्रिके समय जो मेरा पूजन करता है, वह मेरा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है। जो पञ्चामृतयुक्त गन्ध-पुष्पोदक, कुशोदक, पञ्चगव्य, इक्षुरस, मधुमिश्रित आम्ररस या नारिकेल-जलसे अभिषेक करते हुए रुद्राष्टाध्यायीका जप करता है, उससे बढ़कर संसारमें मुझे और कोई प्रिय नहीं है, वह मेरे ही शरीरमें प्रविष्ट होता है[१]।

इसपर भगवान् श्रीरामने पूछा—'भगवन्! इस मोक्ष-मार्गमें अधिकारी कौन है? यह आप बतलानेकी कृपा करें। भगवान् शंकर बोले—चारों वर्ण, चारों आश्रम तथा स्त्रियाँ भी पाशुपत-व्रतकी अधिकारिणी हैं। जिसे मेरी पूजामें विशेष भक्ति हो, वे सभी अधिकारी हैं। चाहे वे जड़, मूक, बधिर, अंधे ही क्यों न हों। जो शोक, भय, आश्चर्य तथा छींक आदिके बहाने भी मेरा स्मरण करता है, वह भी भुक्ति-मुक्तिको पा जाता है। जो अन्य शैवकर्मोंको न भी करे, यदि वह केवल श्रद्धा-भक्तिपूर्वक 'शिव' इस नामका जप भी करता है वह भी मुक्त हो जाता है—

अन्यानि शैवकर्माणि करोतु न करोतु वा।
शिवनाम जपेद्यस्तु सर्वदा मुच्यते तु सः॥

जो स्थण्डिल, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गुरुमूर्ति या आत्मरूपमें मेरी उपासना करता है, उसे सम्यक् फल एवं सायुज्यकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं और जो निष्काम-भावसे मेरे स्वरूपका ध्यान करता हुआ षडक्षर-मन्त्र या केवल प्रणवका ही जप करता है तथा अथर्वशीर्ष या कैवल्योपनिषद्‌का निरन्तर पाठ करता है, वह कैवल्यको प्राप्त करता है, देहसे शिव-सायुज्य प्राप्त करता है—

यस्तु रुद्रं जपेन्नित्यं ध्यायमानो ममाकृतिम्।
षडक्षरं वा प्रणवं निष्कामो विजितेन्द्रियः॥
तथाथर्वशिरोमन्त्रं कैवल्यं वा रघूत्तम।
स तेनैव च देहेन शिवः संजायते स्वयम्॥

ऐसा कहकर भगवान् शिव श्रीरामके सामने ही अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् परमशिवके अनुग्रहसे भगवान् श्रीरामने बंदरोंकी सहायतासे सीताका पता लगाकर समुद्रके ऊपर सेतुका निर्माण कर सपरिकर रावणका वध किया और पुनः सीतासहित अयोध्या लौट आये और प्रायः ग्यारह हजार वर्षोंतक शासनकर अपने सांतानिक लोकको पधार गये। इस प्रकार श्रीरामकी शिवोपासना सफल हुई।

'शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः'—आदि अनेक वचनोंके अनुसार भगवान् शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि तत्त्वतः एक ही हैं या परस्पर परम प्रेमी एवं एक-दूसरेके उपासक हैं। सीता-पार्वती, रुक्मिणी आदिमें भी यही बात है। परस्पर उपासनादिकी ऐसी लीलाएँ इनमें होती रहती हैं। इन लीलाओंमें लोकसंग्रह और लोक-शिक्षाका उद्देश्य ही मुख्य-रूपसे रहता है।

१-कुशपुष्पैर्बिल्वदलैः पुष्पैर्वा गिरिसम्भवैः। यो मामर्चयते नित्यं प्रणवेन प्रियो हि मः॥ पुष्पं फलं समूलं वा पत्रं सलिलमेव वा। यो दद्यात् प्रणवे मह्यं तत् कोटिगुणितं भवेत्॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। यस्यास्त्यध्ययनं नित्यं स मे भक्तः स मे प्रियः॥ प्रदोषे यो मम स्थानं गत्वा पूजयते तु माम्। स परां श्रियमाप्नोति पश्चान्मयि विलीयते॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पर्वणोरुभयोरपि। भूतिभूषितसर्वाङ्गो यः पूजयति मां निशि। कृष्णपक्षे विशेषेण स मे भक्तः स मे प्रियः॥ एकादश्यामुपोष्यैव यः पूजयति मां निशि। सोमवारे विशेषेण स मे भक्तो न नश्यति॥ पञ्चामृतैः स्नापयेद्यः पञ्चगव्येन वा पुनः। पुष्पोदकैः कुशजलैस्तस्मान्नान्यः प्रियो मम॥ पयसा सर्पिषा वापि मधुनेक्षुरसेन वा। पक्वाम्रफलजेनापि नारिकेलजलेन वा॥ गन्धोदकेन वा मां यो रुद्रमन्त्रमनुस्मरन्। अभिषिञ्चेत् ततो नान्यः कश्चिन् प्रियतरो मम॥ (शिवगीता १५। २०

हिन्दी कवियोंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

(डॉ॰ श्रीरामस्वरूपजी आर्य, एम्॰ए॰, पी-एच्॰डी॰)

त्रिदेवोंमें देवाधिदेव भगवान् शिवका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक ओर वे कल्याणके प्रदाता हैं तो दूसरी ओर प्रलयंकर भी हैं। वे दिगम्बर होते हुए भी सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, त्रैलोक्याधिपति होकर भी श्मशानमें निवास करनेवाले, अनन्त विभूतियोंके स्वामी होनेपर भी भस्म रमानेवाले, योगिराजाधिराज होकर भी अर्धनारीश्वर तथा कान्तासेवित होते हुए भी कामजित् हैं। भगवान् शिव आशुतोष एवं अवढरदानी है। वे क्षमाशील तथा अशरणोंको शरण देनेवाले, सबके मूलकारण, पालक, रक्षक एवं नियन्ता हैं। अतः ईश्वरके भी ईश्वर महामहेश्वर कहे जाते हैं। संस्कृतमें इस प्रकारके अनेक स्तोत्र हैं, जिनमें भगवान् शिवकी स्तुति की गयी है। हिन्दीके कवियोंने भी मुक्तकण्ठसे उनकी महिमाका गान किया है। यहाँ हिन्दीके प्रमुख कवियोंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति-विषयक कुछ पद प्रस्तुत हैं।

हिन्दीके आदिकवि चंदवरदाई अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' के प्रथम खण्ड 'आदिकथा' के प्रारम्भमें ब्रह्मा, गुरु, देवी सरस्वती तथा शेषनागके साथ भगवान् शिवकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

तं-गु तिष्ठति ईस दुष्ट दवनं सुरनाथ सिद्धाश्रय,
थिर चर जंगम जीव 'चंद' नमयं सर्वेस वरदामयं ।

(पृथ्वीराजरासो, आदिकथा छन्द-सं॰ १)

अर्थात् तमोगुणोंसे युक्त, दुष्टोंका दमन करनेवाले देवाधिदेव, सिद्धोंके आश्रयदाता शिवजीके चरणोंमें आश्रय लेता हूँ, जिन्हें स्थिर (स्थावर-पर्वतादि), चर (क्रियाशील-जल-पवनादि), जंगम (कीट, पतंग, सर्प आदि) नमस्कार करते हैं। ऐसे उपर्युक्त सर्वेश्वरको मैं कवि चंद वन्दना करता हूँ। वे मेरे लिये वरदायक हों।

हिन्दीके आदिकालीन कवियोंमें विद्यापतिके शिव-भक्तिविषयक पद अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। अनेक समीक्षकोंने पुष्ट तर्कोंके आधारपर उन्हें परम शैव माना है। विद्यापतिने अपने पदोंमें भगवान् शिवके विचित्र वेश तथा परिकरके साथ-साथ उनके दानी तथा शरणागतरक्षक-रूपपर विशेष ध्यान केन्द्रित किया है। वे दैन्य-भावसे भगवान् शिवकी शरणमें जाकर उनसे प्रार्थना करते हैं—

हर ! जनि बिसरब मो ममता, हम नर अधम परम पतिता।
तुअ-सन अधम-उधार न दोसर हम-सन नहिं पतिता॥
जम के द्वार जवाब कौन देब, जखन बुझत निज गुन कर बतिया।
जब जम किंकर कोपि पठाएत, तखन के होत धरहरिया॥
भन विद्यापति सुकवि पुनीत मति, संकर बिपरीत बानी।
असरन-सरन-चरन सिर नाओत, दया करु दिअ सुलपानी॥

(विद्यापतिका अमर-काव्य, शिव-स्तुति-पद-सं॰ २)

विद्यापतिने अर्धनारीश्वर भगवान् शिवका मनोहारी एवं सटीक वर्णन किया है। उनकी दृष्टिमें भगवान् शिवको इस स्वरूपमें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाताने एक प्राणको दो रूपोंमें बाँट दिया है। पद इस प्रकार है—

जय जय संकर जय त्रिपुरारि। जय अध पुरुष जयति अध नारि॥
आध धवल तन आधा गोरा। आध सहज कुच आध कटोरा॥
आध हड़माल आध गज मोती। आध चानन सोहे आध विभूती॥
आध चेतन मति आधा भोरा। आध पटोर आध मुंज डोरा॥
आध जोग आध भोग-विलासा। आध पिधान आध नग बासा॥
आध चानन आध सिंदुर सोभा। आध विरूप आध जग लोभा॥
भने कवि रतन विधाता जाने। दुइ कए बाँटल एक पराने॥

(विद्यापतिका अमर-काव्य, शिव-स्तुति-पद-सं॰ १)

उदासीन सम्प्रदायके संतोंमें आचार्य श्रीचन्द्रजी (जन्म-संवत् १५५१ वि॰) का स्थान अन्यतम है। उन्होंने भगवान् शिवकी आकर्षक झाँकी प्रस्तुत की है। वे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि परमहंस भगवान् शिव उनके मानसमें निवास करें—

श्रीचंद गंगाधर गुन गावै, हंसा देह सुदरसन पावै।
पिंगल जटा अमिय सुरधारा, बिधि जेहि बलि मध्य माँझ पधारा॥
भाल बिसाल धरहि बल कुंडलि, त्रिनयन सूर चन्द्र पावक झलि।
ग्यान कलेवर भय उपनीता, संजम ध्यान मदन कहै जीता॥
बामे गोद हिमाल भवानी, सुर तैतिस जोरे थित पानी।
माँगहुँ यहु वर-दुइ कर जोरे, परम हंसु रहु मानस मोरे॥

(श्रीचन्द्र-शब्द-सुधा, पद-सं॰ ३)

हिन्दी-कवियोंमें सूरदासजी कृष्ण-भक्तके रूपमें प्रसिद्ध

हैं। कहा जाता है कि उन्होने भगवान् कृष्णके विभिन्न रूपोका चित्रण करते हुए सवा लाख पदोकी रचना की। वे भगवान् शिव तथा श्रीकृष्णकी अभिन्नता स्थापित करते हुए एक ही पदमें दोनोंकी महिमाका समानान्तर-रूपमें गान करते हैं। उनकी दृष्टिमें भगवान् शिव तथा श्रीकृष्ण नाम-रूप-गुणमें समान हैं। भक्तोंने अपनी भावनाके अनुरूप दोनोंके भिन्न-स्वरूपकी अवतारणा कर ली है—

हरि-हर संकर, नमो नमो।
अहिसायी, अहि-अंग-विभूषन; अमित-दान, बल-विष-हारी।
नीलकंठ, घर नील कलेवर; प्रेम-परस्पर कृतहारी॥
चंद्रचूड़, सिखि-चंद्र-सरोरुह; जमुना-प्रिय गंगाधारी।
सुरभि-रेनुतन, भस्म विभूषित, वृष-वाहन, बन-वृष-चारी॥
अज-अनीह-अविरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी।
सूरदास सम, रूप-नाम-गुन अंतर अनुचर-अनुसारी॥

(सूरसागर, पद-सं० ७८९)

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामभक्त होते हुए भी भगवान् शिवके प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त की है। तुलसीके राम स्वयं कहते हैं ***'सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥'*** गोस्वामी तुलसीदासजी अपनी 'कवितावली'में भगवान् शिवकी स्तुति इन शब्दोंमें करते हैं—

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजगवर॥
मुंडमाल, विधु बाल भाल, डमरू कपालु कर।
बिबुध बृन्द-नवकुमुद-चंद, सुखकंद सूलधर॥
त्रिपुरारि, त्रिलोचन, दिग्बसन, विषभोजन, भवभयहरन।
कह तुलसिदासु सेवत सुलभ, सिव सिव सिव संकर-सरन॥

(कवितावली छन्द-सं० १४९)

'विनयपत्रिका' के आरम्भमें गोस्वामी तुलसीदासजीने विभिन्न देवी-देवताओंकी स्तुति की है, इनमें भगवान् शिव भी हैं। श्रीराम-भक्ति-हेतु तुलसीदासजी भगवान् शिवसे याचना करते हुए कहते हैं—

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि किये विषपान।
दारुन दनुज, जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति सकल पुरान।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥

(विनयपत्रिका, पद-सं० ३)

भक्तिमती मीराबाईने स्वयंको सर्वतोभावेन भगवान् कृष्णके प्रति समर्पित कर दिया था तथापि उनके कुछ पदोंमें भगवान् शिवके प्रति भी भावाकुलताके दर्शन होते हैं। वे भगवान् शिवके दर्शन-हेतु व्यग्र हैं—

म्हारे घर रमतो जोगिया तू आव।
कानाँ बिच कुंडल, गले बिच सेली, अंग भभूत रमाय॥
तुम देख्याँ बिण कल न परत है, ग्रिह अंगणो न सुहाय।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, दरसन द्यौ ण मोकूं आय॥

(मीराँ-पदावली, पद-सं० ९८)

रीतिकालीन कवियोंमें सेनापतिका अपना विशिष्ट स्थान है। प्रकृति-वर्णन तथा आलंकारिक सौन्दर्यके लिये वे प्रसिद्ध हैं। निम्नलिखित कवित्तमें भगवान् शिवके स्वरूपका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि भक्तके द्वारा शिवजीपर चढ़ानेके लिये एक वेलपत्र हाथमें लेते ही वे उसे चार फल (अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष) अग्रिम रूपमें देनेके लिये तैयार हो जाते हैं—

सोहति उतंग, उत्तमंग, ससि संग गंग,
गौरि अरधंग, जो अनंग प्रतिकूल है।
देवन कौ मूल, सेनापति अनुकूल, कटि
चाम सारदूल कौ, सदा कर त्रिसूल है॥
कहा भटकत! अटकत क्यों न तासों मन?
जातें आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तूल है।
लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेल पात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है॥

(कवित्तरत्नाकर, पाँचवीं तरंग, छन्द-सं० ४५)

आधुनिक कालके कवियोंमें श्रीबालकृष्णद्वारा रचित शिवजीकी स्तुति अत्यन्त लोकप्रिय है। उनके द्वारा प्रस्तुत शिवजीकी आरतीका मनोहारी दृश्य द्रष्टव्य है—

हरि कर दीपक बजावें संख सुरपति,
गनपति झाँझ भैरों झालर झरत हैं।

नारद के कर बीन शारदा जपत जस,
चार मुख चार वेद विधि उच्चरत हैं॥
षण्मुख रटत सहस्रमुख 'शिव-शिव',
सनक सनन्दनादि पावन परत हैं।
'बालकृष्ण' तीन लोक तीस और तीन कोटि,
एते शिव शंकर की आरती करत हैं॥

मुसलमान कवि भी भगवान् शिवकी महिमा-गानमें पीछे नहीं रहे हैं। कविवर 'नजीर' अपनी सरल शैलीमें भगवान् शिवके गुणोंका बखान करते हुए कहते हैं—

महिमा श्रीसर्वेश्वर शिव की वेद पुराण बखानी है,
तीन लोक चौदह भुवन में शिव समान को दानी है।
इसीलिये सब सोच-समझ कर हमने मन में ठानी है,
पढ़-पढ़ यही 'नजीर' सुनाये प्रेम-भक्ति की बानी है॥
दु:ख दारिद हों दूर पाया ऋद्धि-सिद्धि से भर झोला,
घंटा हिलाकर गाल बजाया बम बम बम श्री बम भोला।

आधुनिक रसखान अब्दुर्रशीद खाँ 'रशीद' द्वारा प्रस्तुत भगवान् शिवके स्वरूपका सजीव वर्णन दर्शनीय है—

भाल में चंद विराजि रह्यौ, औ जटान में देवि धुनी लहरै।
हाथ सुसोभित त्यौं तिरसूल, गरे बिच नाग परे फहरै॥
भोजन भाँग-धतूरन को करि, नित्य मसानहिं मैं ठहरै।
नंदी-सवार उमापत शंभु 'रशीद' के हिये छटा छहरै॥

(आधुनिक रसखान, छं॰ सं॰ ६२)

सिख-धर्ममें शिवोपासना

(प्रो॰ श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)

सिख-धर्मके अन्तिम गुरु संत श्रीगुरु गोविन्दसिंह महाराजद्वारा लिखित दशमग्रन्थ साहिबमें शिवोपासनाका विशेष रूपसे वर्णन हुआ है। 'दशमग्रन्थ साहिब'में विभिन्न अवतारोंका वर्णन हुआ है, जिसमें प्रमुख रूपसे शिवोपासनाकी चर्चा रुद्रावतार-वर्णनमें हुई है। इस अवतारका वर्णन पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरीके हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ संख्या ७४७, ७४९ और २५६२ में मिलता है। इतना ही नहीं गुरु गोविन्दसिंहने शिवोपासनाकी महिमाका वर्णन ४९८ छन्दोंमें बड़े ही मनोयोगसे किया है।

'दशमग्रन्थ साहिब'में विष्णुके रुद्रके रूपमें अवतार ग्रहण करनेका कारण इस प्रकार दिया हुआ है—

जग जीवन भार भरी धरणी। दुख आकल जात नहीं बरणी॥
धर रूप गउ दध सिंध गई। जग नाइक पै दुख रोत भई॥

अर्थात् गायका रूप धारण कर पृथिवी जगनायकके सम्मुख गयी और उसने अपनी व्यथा उन्हें बतायी। श्रीकाल प्रसन्न हुए और उन्होंने विष्णुको बुलाकर अवतार ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। इस कथाका विस्तारपूर्वक वर्णन रुद्रावतार-प्रसंगमें इस प्रकार हुआ है—

हैम काल प्रसन्नि भए तब ही। दुख सज्जन भूर सुन्यो जब ही॥
बिसन बुलाई लयो अपने। इह भांत कह्यो तिहको सुपने॥
कह्यो तुम रुद्र सरूप धरो। जग जीवन को सभि नास करो॥
तब ही तिह रुद्र सरूप धर्यो। जग जंत संघार के जोग कर्यो॥
जब होत धरन भार करांत। तब परत नहीं तब हिदे शांत॥
धल दध समुंद करई पुकार। तब धरत बिसन रुद्रावतार॥

श्रीगुरु गोविन्दसिंहके अनुसार रुद्रावतार धारण करके विष्णु क्या कर्म करते हैं, इसका सटीक वर्णन इस प्रकार हुआ है—

तब करत सकल दानव संघार। कर दुजन प्रलय संतन उधार॥
इह भाँति सकल करि दुष्ट नास। पुनि करत हिरदै भगतन बास॥

श्रीगुरु गोविन्दसिंहने भगवान् शिव-द्वारा त्रिपुर एवं अन्धक नामक महाबली राक्षसोंके वधका भी वर्णन किया है, जो जनकल्याणकी भावनासे हुआ है। त्रिपुर नामक तीन पंखोंवाला एक दैत्य वरदान प्राप्त करनेके बाद इतना महाबली हो गया कि उसने चौदह भुवनोंको जीत लिया। उस राक्षसको वरदान था कि जो कोई उसे एक ही बाणमें मारनेकी शक्ति रखता हो, वही उस विकराल राक्षसको मार सकता है। जगत्के जीवोंका उद्धार करने तथा उस असुरका वध करनेके लिये भगवान् शिव चल पड़े। क्रुद्ध होकर उन्होंने एक ही बाण छोड़ा और एक ही वारमें त्रिपुर राक्षसका नाश कर दिया। यह लीला देखकर सभी संतजन प्रसन्न हुए और आकाशसे देवताओंद्वारा पुष्प-वर्षा होने लगी। जय-जयकारकी ध्वनि गूँज उठी, हिमालय पर्वतमें हलचल मच गयी और भूमण्डल काँप

उठा। श्रीदशम ग्रन्थ साहिबमें श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने इस त्रिपुर राक्षसको नष्ट करनेवाले भगवान् शिवकी युद्ध-कलाका वर्णन इस प्रकार किया है—

शिव धाई चल्यो तिह मारन को। जग के सब जीव उधारन को॥
कर कोप तज्यो सित सुद्ध सरं। इक बार ही नास कियो त्रिपुरं॥
तब कउ तक साध सभै हरखै। सुमनं बरखा नभ ते बरखे॥
धुनि पूरि रही जय सद् हुऊँ। गिर हेम हलाचल कंप भुऊँ॥

इतना ही नहीं अन्धकासुर नामक महाबली राक्षसका नाश भी शंकर भगवान्ने रौद्ररूप धारण कर किया । जिसका सप्रसंग वर्णन श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी महाराजने रुद्रावतार-वर्णन-खण्डमें इस प्रकार किया है—

दिन केतक बीत गये जब ही। असुर रंधक बीर बियो तब ही॥
तब बैल चढ़ि गहि शूल शिवं। सुर चउक चले हरि कोप किवं॥
गण गंध्रव जच्छ सभै उरगं। बरदान दयो शिव को दुरगं॥
हनि हो निरखंत मुरार सुरं। त्रिपुरारि हन्यो जिमके त्रिपुरं॥

जब रुद्रने युद्धस्थलमें गर्जना की, तब सभी दैत्य भाग खड़े हुए, सभीने शस्त्र त्याग दिये, सबका गर्व चूर हो गया—

रसां रुद्र गज्जे। तबै दैत भज्जे॥
तजे शस्त्र सरबं। मिल्यो देह गरबं॥

शत्रुपर निशाना लगाकर शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने तरकशसे बाण निकालकर दुष्ट राक्षस अन्धकासुरकी ओर मारा। शिवजीका बाण राक्षस अन्धकासुरके सिरमें लगा और वह भूमिपर गिर पड़ा। वह अन्धकासुर राक्षस ऐसे गिरा जैसे किसी बड़े स्तम्भपर बिजली गिरनेसे वह धराशायी हो जाता है। फिर कुछ क्षण बाद वह अन्ध राक्षस चेतनावस्थामें आ गया और उसने विशेष शक्तिवाले बाणोंकी वर्षा शिवजीपर कर दी। तब क्रुद्ध होकर शिवजीने हाथमें त्रिशूल लिया और अन्धकासुर राक्षसका सिर काटकर उसके दो टुकड़े कर दिये। श्रीगुरु गोविन्दसिंहने दशम ग्रन्थ साहिबमें इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

ताड़ शत्रु कह बहुरि पिनाकी कोपु हुए।
हणे दुस्ट कह बाण निखंग ते काढ हुए॥
गिर्‌यो भ्रम भीतरि सिर शत्रु प्रहारियो।
हो जनक गाज करि कोपि बुरज कह मारियो॥

घट एक बितै रिप चेत भयो। धन धाण बली पुनी पाण लियो॥
कर कोप कुअंड करं करख्यो। सर धार बली घन ज्यों बरख्यो॥
कर कोप बली बरख्यो बिसखं। इह ओर लगे निसरे दुसरं॥
तब कोप करं शिव सूल लियो। ऊर को सिर काट दुखंड कियो॥

इतना ही नहीं श्रीगुरु गोविन्दसिंह महाराजने दशम ग्रन्थ साहिबके रुद्रावतार-वर्णन-खण्डमें ५० छन्दोंमें जालंधर-जन्म एवं युद्ध, सतीका यज्ञकुण्डमें प्रवेश, शिवका दक्ष प्रजापतिसे युद्ध आदि प्रसंगोंका वर्णन भी किया है।

इस प्रकार श्रीगुरु गोविन्दसिंहने भगवान् शिवकी महिमाका वर्णन दशम ग्रन्थ साहिबमें पूर्ण मनोयोगपूर्वक किया है, जो हिन्दू-सिख एकताका ज्वलन्त उदाहरण है और हम सबके लिये प्रेरणा-स्रोत भी है।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग

(श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय, 'साँवरा')

सोमनाथ सौराष्ट्रमें वैद्यनाथ, केदार।
मल्लिकार्जुन शैल-श्री, महाकाल ओंकार॥
महाकाल ओंकार त्र्यम्बक प्रभु घुश्मेश्वर।
रामेश्वर नागेश डाकिनी-सँग भीमेश्वर॥
विश्वनाथ दातार दरस काशीमें पायें।
ये द्वादश महादेव, जो ज्योतिर्लिङ्ग कहायें॥

दोहा

इनके दर्शन मात्रसे नासत पाप पहार।
निसि-दिन सुमिरन जो करै हो जाये उद्धार॥

नारद के कर बीन शारदा जपत जस,
चार मुख चार वेद विधि उच्चरत हैं॥
षण्मुख रटत सहस्रमुख 'शिव-शिव',
सनक सनन्दादि पाँयन परत हैं।
'बालकृष्ण' तीन लोक तीस और तीन कोटि,
एते शिव शंकर की आरती करत हैं॥

मुसलमान कवि भी भगवान् शिवकी महिमा-गानमें पीछे नहीं रहे हैं। कविवर 'नजीर' अपनी सरल शैलीमें भगवान् शिवके गुणोंका बखान करते हुए कहते हैं—

महिमा श्रीसर्वेश्वर शिव की वेद पुराण बखानी है,
तीन लोक चौदह भुवन में शिव समान को दानी है।
इसीलिये सब सोच-समझ कर हमने मन में ठानी है,
पढ़-पढ़ यही 'नजीर' सुनाये प्रेम-भक्ति की बानी है॥
दुःख दारिद्र हों दूर बाबा ऋद्धि-सिद्धि से भर झोला,
घंटा हिलाकर गाल बजाया बम बम बम श्री बम भोला।'

आधुनिक रसखान अब्दुर्रशीद खाँ 'रशीद' द्वारा प्रस्तुत भगवान् शिवके स्वरूपका सजीव वर्णन दर्शनीय है—

भाल में चंद विराजि रह्यौ, औ जटान में देवि धुनी लहरैं।
हाथ सुसोभित त्यौं तिरसूल, गरे बिच नाग परे फहरैं॥
भोजन भाँग-धतूरन को करि, नित्य मसानहिं मैं ठहरैं।
नंदी-सवार उमायत शंभु 'रशीद' के हिये छटा छहरैं॥

(आधुनिक रसखान, छं॰ सं॰ ६२)

सिख-धर्ममें शिवोपासना

(प्रो॰ श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)

सिख-धर्मके अन्तिम गुरु संत श्रीगुरु गोविन्दसिंह महाराजद्वारा लिखित दशमग्रन्थ साहिबमें शिवोपासनाका विशेष रूपसे वर्णन हुआ है। 'दशमग्रन्थ साहिब'में विभिन्न अवतारोंका वर्णन हुआ है, जिसमें प्रमुख रूपसे शिवोपासनाकी चर्चा रुद्रावतार-वर्णनमें हुई है। इस अवतारका वर्णन पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरीके हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ संख्या ७४७, ७४९ और २५६२ में मिलता है। इतना ही नहीं गुरु गोविन्दसिंहने शिवोपासनाकी महिमाका वर्णन ४९८ छन्दोंमें बड़े ही मनोयोगसे किया है।

'दशमग्रन्थ साहिब'में विष्णुके रुद्रके रूपमें अवतार ग्रहण करनेका कारण इस प्रकार दिया हुआ है—

जग जीवन भार भरी धरणी। दुख आकल जात नहीं बरणी॥
धर रूप गउ दध सिंध गई। जग नाइक पै दुख रीत भई॥

अर्थात् गायका रूप धारण कर पृथिवी जगनायकके सम्मुख गयी और उसने अपनी व्यथा उन्हें बतायी। श्रीकाल प्रसन्न हुए और उन्होंने विष्णुको बुलाकर अवतार ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। इस कथाका विस्तारपूर्वक वर्णन रुद्रावतार-प्रसंगमें इस प्रकार हुआ है—

हंस काल प्रसन्नि भए तब ही। दुख सज्जन भूप सुन्यो तब ही॥
ढिग बिसन बुलाई लयो अपने। इह भांत कह्यो तिहको सुपने॥
सु कह्यो तुम रुद्र सरूप धरो। जग जीवन को चलि नास करो॥
तब ही तिह रुद्र सरूप धर्यो। जग जंत संघार के जोग कर्यो॥
जब होत धरन भास करांत। तब परत नहीं तब हिदे शांत॥
चल दध समुंद करई पुकार। तब धरत बिसन रुद्रावतार॥

श्रीगुरु गोविन्दसिंहके अनुसार रुद्रावतार धारण करके विष्णु क्या कर्म करते हैं, इसका सटीक वर्णन इस प्रकार हुआ है—

तब करत सकल दानव संघार। कर दनुज प्रलय संतन उधार॥
इह भाँति सकल करि दुष्ट नास। पुनि करत हिरदै भगतन बास॥

श्रीगुरु गोविन्दसिंहने भगवान् शिव-द्वारा त्रिपुर एवं अन्धक नामक महाबली राक्षसोंके वधका भी वर्णन किया है, जो जनकल्याणकी भावनासे हुआ है। त्रिपुर नामक तीन पंखोंवाला एक दैत्य वरदान प्राप्त करनेके बाद इतना महाबली हो गया कि उसने चौदह भुवनोंको जीत लिया। उस राक्षसको वरदान था कि जो कोई उसे एक ही बाणमें मारनेकी शक्ति रखता हो, वही उस विकराल राक्षसको मार सकता है। जगत्के जीवोंका उद्धार करने तथा उस असुरका वध करनेके लिये भगवान् शिव चल पड़े। क्रुद्ध होकर उन्होंने एक ही बाण छोड़ा और एक ही बारमें त्रिपुर राक्षसका नाश कर दिया। यह लीला देखकर सभी संतजन प्रसन्न हुए और आकाशसे देवताओंद्वारा पुष्प-वर्षा होने लगी। जय-जयकारकी ध्वनि गूँज उठी, हिमालय पर्वतमें हलचल मच गयी और भूमण्डल काँप

उठा। श्रीदशम ग्रन्थ साहिबमें श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने इस त्रिपुर राक्षसको नष्ट करनेवाले भगवान् शिवकी युद्ध-कलाका वर्णन इस प्रकार किया है—

शिव धाई चल्यो तिह मारन को। जग के सब जीव उधारन को॥
कर कोप तज्यो सित सुद्ध सरं। इक बार ही नास कियो त्रिपुरं॥
तब कउ तक साध सभै हरखै। सुमनं बरखा नभ ते बरखे॥
धुनि पूरि रही जय सद् हुऊं। गिर हेम हलाचल कंप भुऊं॥

इतना ही नहीं अन्धकासुर नामक महाबली राक्षसका नाश भी शंकर भगवान्ने रौद्ररूप धारण कर किया । जिसका सप्रसंग वर्णन श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी महाराजने रुद्रावतार-वर्णन-खण्डमें इस प्रकार किया है—

दिन केतक बीत गये जब ही। असुर रंधक बीर वियो तब ही॥
तब बैल चढ़ि गहि शूल शिवं। सुर चउक चले हरि कोप किवं॥
गण गंधव जच्छ सभै उरगं। बरदान दयो शिव को दुरगं॥
हनि हो निरखंत मुरार सुरं। त्रिपुरारि हन्यो जिमके त्रिपुरं॥

जब रुद्रने युद्धस्थलमें गर्जना की, तब सभी दैत्य भाग खड़े हुए, सभीने शस्त्र त्याग दिये, सबका गर्व चूर हो गया—

रसां रुद्र गज्जे। तबै दैत भज्जे॥
तजे शस्त्र सरबं। मिट्यो देह गरबं॥

शत्रुपर निशाना लगाकर शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने तरकशसे बाण निकालकर दुष्ट राक्षस अन्धकासुरकी ओर मारा। शिवजीका बाण राक्षस अन्धकासुरके सिरमें लगा और वह भूमिपर गिर पड़ा। वह अन्धकासुर राक्षस ऐसे गिरा जैसे किसी बड़े स्तम्भपर बिजली गिरनेसे वह धराशायी हो जाता है। फिर कुछ क्षण बाद वह अन्ध राक्षस चेतनावस्थामें आ गया और उसने विशेष शक्तिवाले बाणोंकी वर्षा शिवजीपर कर दी। तब क्रुद्ध होकर शिवजीने हाथमें त्रिशूल लिया और अन्धकासुर राक्षसका सिर काटकर उसके दो टुकड़े कर दिये। श्रीगुरु गोविन्दसिंहने दशम ग्रन्थ साहिबमें इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

ताड़ शत्रु कह बहुरि पिनाकी कोपु हुए।
हणे दुष्ट कह बाण निखंग ते काढ हुए॥
गिर्‍यो भ्रम भीतरि सिर शत्रु प्रहारियो।
हो जनक गाज करि कोपि बुरज कह मारियो॥

घट एक बितबै रिप चेत भयो। धन बाण बली पुनी पाण लियो॥
कर कोप कुवंड करं करख्यो। सर धार बली घन ज्यों बरख्यो॥
कर कोप बली बरख्यो विसखं। इह ओर लगे निसरे दुसरं॥
तब कोप करं शिव सूल लियो। ऊर को सिर काट दुखंड कियो॥

इतना ही नहीं श्रीगुरु गोविन्दसिंह महाराजने दशम ग्रन्थ साहिबके रुद्रावतार-वर्णन-खण्डमें ५० छन्दोंमें जालंधर-जन्म एवं युद्ध, सतीका यज्ञकुण्डमें प्रवेश, शिवका दक्ष प्रजापतिसे युद्ध आदि प्रसंगोंका वर्णन भी किया है।

इस प्रकार श्रीगुरु गोविन्दसिंहने भगवान् शिवकी महिमाका वर्णन दशम ग्रन्थ साहिबमें पूर्ण मनोयोगपूर्वक किया है, जो हिन्दू-सिख एकताका ज्वलन्त उदाहरण है और हम सबके लिये प्रेरणा-स्रोत भी है।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग

(श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय, 'साँवरा')

सोमनाथ सौराष्ट्रमें वैद्यनाथ, केदार।
मल्लिकार्जुन शैल-श्री, महाकाल ओंकार॥
महाकाल ओंकार त्र्यम्बक प्रभु घुश्मेश्वर।
रामेश्वर नागेश डाकिनी-सँग भीमेश्वर॥
विश्वनाथ दातार दरस काशीमें पायें।
ये द्वादश महादेव, जो ज्योतिर्लिङ्ग कहायें॥

दोहा

इनके दर्शन मात्रसे नासत पाप पहार।
निसि-दिन सुमिरन जो करै हो जाये उद्धार॥

नारद के कर बीन शारदा जपत जस,
चार मुख चार वेद विधि उच्चरत हैं॥
षण्मुख रटत सहस्रमुख 'शिव-शिव',
सनक सनन्दादि पाँयन परत हैं।
'बालकृष्ण' तीन लोक तीस और तीन कोटि,
एते शिव शंकर की आरती करत हैं॥

मुसलमान कवि भी भगवान् शिवकी महिमा-गानमें पीछे नहीं रहे हैं। कविवर 'नजीर' अपनी सरल शैलीमें भगवान् शिवके गुणोंका बखान करते हुए कहते हैं—

महिमा श्रीसर्वेश्वर शिव की वेद पुराण बखानी है,
तीन लोक चौदह भुवन में शिव समान को दानी है।
इसीलिये सब सोच-समझ कर हमने मन में ठानी है,
पढ़-पढ़ यही 'नजीर' सुनाये प्रेम-भक्ति की बानी है॥
दु:ख दारिद्र हों दूर बाबा ऋद्धि-सिद्धि से भर झोला,
घंटा हिलाकर गाल बजाया बम बम बम श्री बम भोला।

आधुनिक रसखान अब्दुर्रशीद खाँ 'रशीद' द्वारा प्रस्तुत भगवान् शिवके स्वरूपका सजीव वर्णन दर्शनीय है—

भाल में चंद विराजि रह्यौ, औ जटान में देवि धुनी लहरै।
हाथ सुसोभित त्यौं तिरसूल, गरे बिच नाग परे फहरै॥
भोजन भाँग-धतूरन को करि, नित्य मसानहिं मैं ठहरै।
नंदी-सवार उमापत शंभु 'रशीद' के हिये छटा छहरै॥

(आधुनिक रसखान, छं० सं० ६२)

सिख-धर्ममें शिवोपासना

(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)

सिख-धर्मके अन्तिम गुरु संत श्रीगुरु गोविन्दसिंह महाराजद्वारा लिखित दशमग्रन्थ साहिबमें शिवोपासनाका विशेष रूपसे वर्णन हुआ है। 'दशमग्रन्थ साहिब'में विभिन्न अवतारोंका वर्णन हुआ है, जिसमें प्रमुख रूपसे शिवोपासनाकी चर्चा रुद्रावतार-वर्णनमें हुई है। इस अवतारका वर्णन पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरीके हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ संख्या ७४७, ७४९ और २५६२ में मिलता है। इतना ही नहीं गुरु गोविन्दसिंहने शिवोपासनाकी महिमाका वर्णन ४९८ छन्दोंमें बड़े ही मनोयोगसे किया है।

'दशमग्रन्थ साहिब'में विष्णुके रुद्रके रूपमें अवतार ग्रहण करनेका कारण इस प्रकार दिया हुआ है—

जग जीवन भार भरी धरणी। दुख आकल जात नहीं बरणी॥
धर रूप गउ दध सिंध गई। जग नाइक पै दुख रीत भई॥

अर्थात् गायका रूप धारण कर पृथिवी जगनायकके सम्मुख गयी और उसने अपनी व्यथा उन्हें बतायी। श्रीकाल प्रसन्न हुए और उन्होंने विष्णुको बुलाकर अवतार ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। इस कथाका विस्तारपूर्वक वर्णन रुद्रावतार-प्रसंगमें इस प्रकार हुआ है—

हंस काल प्रसन्नि भए तब ही। दुख सउनन भूप सुन्यो तब ही॥
बिग बिसन बुलाई लयो अपने। इह भांत कह्यो तिहको सुपने॥
सु कह्यो तुम रुद्र सरूप धरो। जब जीवन को चलि नास करो॥
तब ही तिह रुद्र सरूप धरयो। जग जंत संधार के जोग करयो॥
जब होत धरन भास करांत। तब धरत नहीं तब हिदे शांत॥
चल दध समुंद कराई पुकार। तव धरत बिसन रुद्रावतार॥

श्रीगुरु गोविन्दसिंहके अनुसार रुद्रावतार धारण करके विष्णु क्या कर्म करते हैं, इसका सटीक वर्णन इस प्रकार हुआ है—

तब करत सकल दानव संघार। कर दनुज प्रलय संतन उधार॥
इह भाँति सकल करि दुष्ट नास। पुनि करत हिरदै भगतन वास॥

श्रीगुरु गोविन्दसिंहने भगवान् शिव-द्वारा त्रिपुर एवं अन्धक नामक महाबली राक्षसोंके वधका भी वर्णन किया है, जो जनकल्याणकी भावनासे हुआ है। त्रिपुर नामक तीन पंखोंवाला एक दैत्य वरदान प्राप्त करनेके बाद इतना महाबली हो गया कि उसने चौदह भुवनोंको जीत लिया। उस राक्षसको वरदान था कि जो कोई उसे एक ही बाणमें मारनेकी शक्ति रखता हो, वही उस विकराल राक्षसको मार सकता है। जगत्के जीवोंका उद्धार करने तथा उस असुरका वध करनेके लिये भगवान् शिव चल पड़े। क्रुद्ध होकर उन्होंने एक ही बाण छोड़ा और एक ही बारमें त्रिपुर राक्षसका नाश कर दिया। यह लीला देखकर सभी संतजन प्रसन्न हुए और आकाशसे देवताओंद्वारा पुष्प-वर्षा होने लगी। जय-जयकारकी ध्वनि गूँज उठी, हिमालय पर्वतमें हलचल मच गयी और भूमण्डल काँप

५-अर्चन—मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्र सामग्रीसे भगवान्‌के चरणोंका पूजन करना।

६-वन्दन—भगवान्‌की मूर्तिको अथवा भगवान्‌के अंशसे व्याप्त भक्तजन, आचार्य, ब्राह्मण, गुरुजन, माता-पिता आदिको परम आदर-सत्कारके साथ पवित्र भावसे नमस्कार करना और सेवा करना।

७-दास्य—ईश्वरको स्वामी और अपनेको दास समझकर परम श्रद्धाके साथ सेवा करना।

८-सख्य—ईश्वरको ही अपना परम सखा समझकर अपना सर्वस्व उसे समर्पण कर देना तथा सच्चे भावसे अपने पाप-पुण्यका निवेदन करना।

९-आत्मनिवेदन—अपने-आपको भगवच्चरणमें सर्वथा सर्वदाके लिये समर्पण कर देना और कुछ भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता न रखना—यह उच्चतम अवस्था है। अथवा यूँ कहना चाहिये कि भक्तिकी अन्तिम सीढ़ी है। इसपर आरूढ होते ही भगवत्प्राप्तिका द्वार निर्बाध खुला मिलता है।

भक्तिके इन नौ प्रकारोंमेंसे पहलेके तीन श्रवण, कीर्तन एवं स्मरणका ईश्वरके नामसे सम्बन्ध है। अर्चन, वन्दन और पादसेवन—ईश्वरके रूपसे समवेत है तथा दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—इनका भगवान्‌के भावसे सम्बन्ध है। ये सब ईश्वरके नाम, रूप और भावसे ही सम्बद्ध हैं। इन मार्गोंपर आरूढ भक्तके लिये भगवान् प्रत्यक्ष हैं। प्रत्येक भक्त इन सभी मार्गोंका पथिक रहता है, पर भिन्न-भिन्न भक्तोंमें भिन्न-भिन्न अङ्गोंकी अधिकता पायी जाती है। कोई किसी अङ्गकी ओर अधिक प्रवृत्त होता है और कोई किसीकी ओर। यह प्रवृत्ति ऐच्छिक नहीं होती, किंतु स्वाभाविक होती है।

इस नवधा भक्तिसे मनुष्यका जीवन सफल हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि मायाके बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये भक्ति ही एक उपाय है। भक्ति परम शान्ति और परमानन्दस्वरूपा है, इसके साधनमें ही शान्ति और आनन्द मिलता है। वास्तवमें सत्य तथा सुखकी प्राप्तिके लिये इससे उत्तम कोई साधन ही नहीं है। ईश्वरका इसमें आश्रय रहता है और ईश्वरको ही इसकी चिन्ता रहती है। अतः किसी प्रकार पतनका भय भी नहीं रहता। अतएव भक्तिको सब साधनोंमें उत्तम स्थान दिया गया है। भक्तलोग थोड़ेमें ही बाजी मार लेते हैं, परंतु इसके लिये सच्चा भक्त होना चाहिये। सच्चा भक्त वह है जो प्रभुमें सच्चे हृदयसे मन लगाकर इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका भोग करता हुआ भी सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को ईश्वरकी माया समझता हुआ किसी भी वस्तुमें राग-द्वेष न रखे और ईश्वर-भजनमें लीन होकर तृष्णा, कामना आदिके वशीभूत न हो।

सच्चा भक्त ईश्वरमें मन लगाकर इन्द्रियोंद्वारा विषयोंका भोग करता हुआ भी सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को उसी सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की माया समझता है और किसीसे राग-द्वेष नहीं रखता। वह काम-क्रोध, लोभ, मोह आदिके वशमें नहीं होता। उसे केवल ईश्वरका भरोसा रहता है। जन्म-कर्म, वर्ण-आश्रम आदिकी उच्चताका उसे लेशमात्र भी अहंकार नहीं होता। सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणियोंको वह समान दृष्टिसे देखता है। त्रैलोक्यका राज्य मिलनेपर भी एक क्षणके लिये वह भगवच्चरणका परित्याग नहीं करता। ऐसे भक्तको बिना प्रयास ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है। कर्म तथा ज्ञानके लिये तो बड़े-बड़े नियम और बन्धन हैं, परंतु भक्तिका द्वार सबके लिये खुला है, उसमें किसीके लिये रुकावट नहीं है। पापात्मा हो चाहे पुण्यात्मा, नर हो चाहे नारी, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, बालक हो अथवा वृद्ध—सभी भक्तिका अवलम्बन कर परमपदको पा सकते हैं। यह सुलभ भक्ति ईश्वरमें अनुरक्ति—अनुराग अर्थात् पूर्ण प्रेम ही पराभक्ति है—

सा परानुरक्तिरीश्वरे। (शाण्डिल्यभक्तिसूत्र)

हृदयके मलको दूर करनेके लिये सबसे सरल उपाय भगवद्भक्तोंकी श्रद्धापूर्वक चर्चा करना है। उनके चरित्र-चिन्तनसे मानसिक दुर्विकार दूर हो जाते हैं और भगवान् आशुतोषमें मनोवृत्तिकी एकाकारिता हो जाती है। पतञ्जलि भगवान्‌ने योगदर्शनमें कहा है—'वीतरागविषयं वा चित्तम्' अर्थात् शुकदेव, दत्तात्रेय, सनक आदि परम भागवत विरक्त योगिराजोंका चिन्तन करनेसे ही चित्तकी एकाग्रता होती है। ऐसे भक्त साक्षात् ईश्वर-रूप हो जाते हैं—'राम ते अधिक राम कर दासा।' अतः भक्तजनोंकी भक्ति करनेसे भी परम कल्याण होता है।

यहाँ भूतभावन आशुतोष भगवान् सदाशिवके भक्तोंकी पुण्यमयी गाथाएँ एवं उनके पावन चरित्र निवेदित हैं, जिन्हें पढ़कर पाठकवृन्द शिव अथवा कल्याणके भागी हो सकेंगे।—सम्पादक]

भगवान् साम्बसदाशिवके परम उपासक

(शिवभक्तोंकी कथाएँ)

[परमात्मा और जीवात्मा—ये दोनों सच्चिदानन्दमय हैं। दोनोंमें सत्-चित् और आनन्द विद्यमान हैं। भेद केवल इतना ही है कि परमात्माके सत् आदि निर्मल अपरिच्छिन्न और अनियन्त्रित हैं और जीवात्माके मलिन, परिच्छिन्न एवं नियन्त्रित हैं। इसी कारण जीवात्माको परमात्माका अंश मानते हैं। अंश जब अंशीमें मिल जाता है तब उसकी पूर्णता समझी जाती है, इसी कारण जब जीवात्मा परमात्मामें मिल जाता है, तब वह पूर्ण हो जाता है अर्थात् वह भी परमात्मा ही हो जाता है। इसीको दूसरे शब्दोंमें मोक्ष कहते हैं, अतः परमात्माकी प्राप्ति ही जीवात्माका प्रधान लक्ष्य है। शास्त्रकारोंने परमात्माकी प्राप्तिके लिये अनेक साधन बताये हैं, पर उनमेंसे तीन साधन सर्वोत्तम हैं—(१) कर्म, (२) ज्ञान और (३) भक्ति। कर्मका तात्पर्य—करना, व्यापार आदि है। किसी भी धर्मको लीजिये सभीमें अभीष्ट-सिद्धिके प्राप्त्यर्थ कुछ-न-कुछ कर्म करनेके लिये शास्त्रोंमें कहा गया है, बिना कर्म किये कुछ नहीं होता। बुरे कर्म करनेसे बुरा फल और अच्छे कर्म करनेसे अच्छा फल मिलता है। यहाँतक कि परमात्माकी प्राप्ति भी कर्मसे ही हो सकती है। ये कर्म श्रौत और स्मार्त आदि भेदसे कई प्रकारके हैं। यज्ञ, याग आदि वैदिक कर्म 'श्रौत कर्म' कहे जाते हैं और मनुस्मृति आदिमें वर्णित वर्णाश्रम-भेदानुसार अन्य आवश्यक कर्म 'स्मार्त कर्म' कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त व्रत, उपवास आदि धार्मिक कर्म भी होते हैं। इन सब कर्मोंसे दुःखका नाश और सुखकी प्राप्ति होती है। निष्काम कर्मोंसे भगवत्प्राप्तिकी योग्यता आती है।

दूसरा साधन ज्ञान है। इसकी उत्पत्ति 'ज्ञा' धातुसे है, जिसका अर्थ है 'जानना'। उस परमात्माके असली रूपको जान लेना ही ज्ञान है। वेदान्तका सिद्धान्त है—'तत्त्वमसि' अर्थात् वह परब्रह्म तुम्हीं हो। तुम्हारे अतिरिक्त कोई दूसरा परमात्मा नहीं। अपने रूपको जान लेना ही परमात्माकी प्राप्ति है। इस ज्ञानसे सब कर्म उसी प्रकार जल जाते हैं जिस प्रकार अग्निसे लकड़ी जल जाती है। उनसे फलोंकी उत्पत्ति कदापि नहीं होती। अतः ज्ञानी पुरुषोंको कर्मोंका लेप नहीं होता। जिस तरह कमलपत्र जलमें रहता हुआ भी जलसे अलिप्त रहता है, उसी तरह ज्ञानी पुरुष कर्म करता हुआ भी कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। इसी कारण वह प्रारब्ध कर्मोंका भोग समाप्तकर परमात्मामें लीन हो जाता है। इसीका नाम मुक्ति है। परंतु यह साधन आसान नहीं, वरन् इसको प्राप्त करना बहुत कठिन है। जिसे शीत-उष्णका भेद प्रतीत न हो, मान-अपमानको जो बराबर समझे, जिसने समस्त इन्द्रियाँ वशमें कर ली हों, जो सुवर्णको पत्थरके बराबर समझता हो और जिसे सांसारिक वासनाएँ न सताती हों, ऐसे परमहंस ही ज्ञानी होते हैं। इस ज्ञानकी प्राप्तिके लिये अनेक जन्मोंके संस्कार एवं सत्संगकी आवश्यकता होती है। इसी कारण विद्वान् लोग इसे दुर्गम कहते हैं।

अतः अनुभवी मनीषियोंने भक्तिको सबसे उत्तम और सरल साधन बताया है। भक्ति शब्द 'भज्' धातुसे 'क्तिन्' (ति) प्रत्यय करनेपर बनता है। 'भज्' का अर्थ है सेवा और 'ति' का अर्थ है भाव। इस प्रकार इस शब्दमें तीन अर्थ भरे हैं—सेवा-सम्बन्धी, आत्मसम्बन्धी और ब्रह्मसम्बन्धी। ज्ञानसहित प्रेम होनेके लिये जो विविध प्रकारकी सेवा या कृति है, उसे भक्ति कहते हैं। यद्यपि भक्तिसे प्रेरित होकर की जानेवाली कृतियाँ क्रिया ही हैं तथापि उसमें प्रेमके फलका उद्देश्य मुख्य रहता है। इसलिये वे क्रियाके नामसे व्यवहृत न होकर भक्तिके नामसे व्यवहृत होती हैं। इस भक्तिके प्रधानतः नौ भेद बतलाये गये हैं—

१-श्रवण—ईश्वरकी लीला, कथा, महत्ता, शक्ति आदिको परम श्रद्धासमेत अतृप्त मनसे निरन्तर सुनना।

२-कीर्तन—ईश्वरके गुण, चरित्र, नाम, पराक्रम आदिका आनन्दपूर्वक बड़े उत्साहके साथ कीर्तन करना।

३-स्मरण—निरन्तर अनन्यभावसे परमेश्वरका स्मरण करना, उनके माहात्म्य और शक्तिका स्मरण कर उसपर मुग्ध होना।

४-पाद-सेवन—ईश्वरके चरणोंका आश्रय लेना और उन्हींको अपना आधार समझना।

तेजोमूर्ति महर्षि च्यवन दिखायी पड़े। शर्याति साष्टाङ्ग प्रणाम कर कहने लगे—'महाराज ! इस बालिकाने अज्ञानसे आपको कष्ट पहुँचाया है। इसके लिये आप क्षमा करें। इस कन्याको मैं आपकी सेवामें अर्पण करता हूँ। इसे आप भार्याके रूपमें स्वीकार करें। यह प्रेमसे आपकी सेवा करेगी।' परम दयालु महर्षि च्यवनने राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपराध क्षमा कर दिया। राजा तो अपनी राजधानीको चले गये और सुकन्या अनन्य मनसे महर्षिकी सेवामें लग गयी।

एक बार अश्विनीकुमार उस आश्रममें आये। सुकन्याके पातिव्रत-धर्मसे प्रसन्न होकर उन्होंने महर्षिको परम मनोहर यौवन-सम्पन्न रूप दे दिया। यौवन और सुन्दर रूप पाकर च्यवन ऋषि परम आनन्दित हुए और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'मैं देवोंके वैद्य अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग दिलाऊँगा।' च्यवनमुनिके इस निश्चयसे इन्द्र बहुत असंतुष्ट हुए और उन्होंने उनसे उनके दुराग्रहको छोड़ देनेके लिये कहा और ऐसा न करनेपर वज्र-प्रहारका भय भी दिखाया। पर च्यवनमुनि अडिग रहे। उन्होंने विचार किया कि जिन महेश्वरकी सेवामें इन्द्र, वरुण आदि देवता निरत रहते हैं, उन्हींकी आज्ञासे सभी देवता अपना-अपना कार्य करते हैं, जो सृष्टि, संरक्षण और संहारमें सर्वथा समर्थ हैं, मुझे उन्हीं देवाधिदेव भगवान् शंकरकी आराधना करनी चाहिये। इसीसे अभीष्ट-सिद्धि होगी। ऐसा निश्चय करके महर्षि च्यवन महाकाल वनमें गये।[1] वहाँ शिवलिङ्गकी स्थापना कर भगवान्‌का पूजन करने लगे। उनका हठ देखकर इन्द्र कुपित हुए और उनको मारनेके लिये वज्र चलाया, पर भगवान् शंकरने पहलेहीसे इन्हें अभय कर दिया था, इसलिये इन्द्रकी बाहुका स्तम्भन हो गया और च्यवन ऋषिके ऊपर वज्र चल न सका।

इसी बीच उस लिङ्गमेंसे एक ज्योति निकली, जिसकी ज्वालासे त्रैलोक्य जलने लगा। उससे सब देवता संतप्त हो गये, वे सभी इन्द्रसे अश्विनीकुमारोंको यज्ञभागी बनानेकी प्रार्थना करने लगे। देवोंके कहनेपर भयभीत इन्द्रने च्यवन ऋषिको प्रणाम करते हुए कहा कि 'महर्षे ! आजसे अश्विनी-कुमारोंको यज्ञका भाग मिलेगा और वे सोमपान भी कर सकेंगे। इस शिवलिङ्गका नाम अबसे 'च्यवनेश्वर' होगा और इसके दर्शनसे क्षणभरमें जन्म-जमान्तरके पाप नष्ट हो जायँगे। मनकी दुर्लभ कामनाएँ भी इनकी आराधनासे पूर्ण हो जायँगी।' इतना कहकर इन्द्र सब देवोंको साथ लेकर स्वर्गको चले गये। तभीसे अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग मिलने लगा।

स्कन्दपुराणके आवन्त्यखण्ड (अ० ३०) में श्रीच्यवनेश्वर महादेवका माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

भक्ता ये पूजयिष्यन्ति देवेशं च्यवनेश्वरम्।
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात्॥
यं यं काममभिध्यायेन्मनसाभिमतं नरः।
तं तं दुर्लभमाप्नोति च्यवनेश्वरदर्शनात्॥

शिवभक्त ऋषि तण्डी

सत्ययुगमें तण्डी नामके एक विख्यात ऋषि थे। उन्होंने दस हजार वर्षतक समाधि लगाकर परम दयासागर भगवान् महादेवजीकी भक्तिपूर्वक आराधना की थी। एक बार अविनाशी परमात्मामें तल्लीन होते हुए परम श्रद्धाके साथ वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि जिन परमात्माका सांख्यवेत्ता लोग पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता तथा ईश्वर कहकर गान करते हैं और योगी लोग सदा जिनका चिन्तन करते हैं, ज्ञानी लोग जिन्हें जगत्‌की उत्पत्ति और विनाशका कारण समझते हैं, देवता, असुर तथा मुनिगण जिनसे श्रेष्ठ और किसीको नहीं मानते, उन अजन्मा, ईशान, आदि-अन्तरहित, आनन्दमय परम पवित्र भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ, क्योंकि वे शरण्योंके भी परम शरण हैं। तण्डी ऋषि इस प्रकार विचार ही कर रहे थे कि इतनेमें शंकर भगवान्‌ने दर्शन दिया।

उन अविकारी, उपमारहित, अचिन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, देश और कालसे अतीत, ब्रह्मरूप, गुणातीत, निर्गुण, परमानन्दस्वरूप, अक्षर, मोक्षस्वरूप, मनु, इन्द्र, अग्नि, पवन, विश्व और ब्रह्माके गतिरूप, अग्राह्य, अचल, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण करने योग्य, असंख्य ज्ञानियोंको भी दुष्प्राप्य, समस्त विश्वके कारणरूप महेश्वरके दर्शन पानेपर ऋषि तण्डी उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

[1] 'महाकालवन' और 'अवन्तिका' उज्जैनको कहते हैं।

एक समयकी वात है। प्रजापति कश्यप पुत्रकी कामनासे एक यज्ञ कर रहे थे। उस यज्ञमें देवताओं, ऋषियों आदिने भी उनका सहयोग किया था। महाराज कश्यपने देवराज इन्द्रको समिधा एकत्र करनेके कार्यमें नियुक्त किया। बालखिल्य मुनियों तथा अन्य देवताओंको भी यही कार्य सौंपा गया था। इन्द्र शक्तिशाली थे, पराक्रमी थे, वे समिधाओंका एक पहाड़-जैसा बोझ बिना कष्टके ही ले आये, किंतु तपोधनी बालखिल्य मुनिगण कदमें बहुत छोटे तथा अल्पबली होनेके कारण सब मिलकर एक पलाशकी टहनी ले आ रहे थे। यह देखकर अभिमानमें आकर देवराज इन्द्रने उनका परिहास किया और उन्हें लाँघकर शीघ्रतासे आगे बढ़ गये। इन्द्रके इस व्यवहारसे बालखिल्य मुनियोंको बड़ा रोष हुआ। उन्होंने अपने अपमानका प्रतीकार करनेके लिये तपोवनमें जाकर तप करनेका विचार किया। प्राणीके प्रारब्ध जब जैसे होते हैं, वैसे ही विचार उसके मनमें आ जाते हैं और वह प्राणी किसी भी निमित्तसे वैसा करनेको तत्पर हो जाता है और तत्पर हो जानेपर उसके उपयुक्त साधन भी स्वयं मिलने लगते हैं। इस नियमके अनुसार बालखिल्यगण अपने प्रारब्धवश जगत्पिता भगवान् श्रीशंकरकी शरणमें जाकर ध्यान-मग्न हो तपस्या करने लगे। भगवान् भूतनाथमें भक्तिभाव होना जीवके भावी विभूतिका हेतु होता है, जो कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; मनुष्योंमें तो कठिनतासे या प्रभुकी प्रेरणासे यह सम्भव हो सकता है।

जो लोग सब प्रकारसे अनन्यगति होकर भगवान् स्वयम्भूकी शरण लेते हैं, वे अभय हो जाते हैं। उनको संसारसे छुटकारा मिल जाता है। उन ऋषियोंने मनसा, वचसा और कर्मणा कुछ समयतक घोर तपस्या की। जिससे भक्तवत्सल भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। ऋषियोंने नेत्र खोलकर देखा तो सामने व्याघ्रचर्मपर स्थित, जटामें गङ्गा और मस्तकमें बालचन्द्रमाको धारण किये, समस्त अङ्गोंमें विभूति रमाये, सर्पके कंकण और कण्ठहार धारण किये, वासुकि-नागका यज्ञोपवीत धारण किये और हाथोंमें त्रिशूल एवं डमरू लिये पञ्चमुख, नीलकण्ठ, भगवान् त्रिलोचन दिखायी दिये। ऐसे दिव्य एवं अलौकिक स्वरूपको देखकर बालखिल्य मुनियोंने उनकी स्तुति की। शिवजी उनपर प्रसन्न होकर बोले—'ऋषिगणो ! मैं आपलोगोंपर प्रसन्न हूँ। मेरी कृपासे आप गरुड़को उत्पन्न करेंगे, जो इन्द्रका अमृत छीन लायेगा।' बालखिल्य ऋषि महादेवकी कृपासे कृतकार्य होकर प्रसन्न मनसे अपने आश्रमको लौट गये और मनोरथकी सद्यःसिद्धि पाकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। (महाभा०, आदिपर्व, अनुशा०)

महर्षि च्यवनकी शिवनिष्ठा

च्यवन ऋषि महर्षि भृगुके पुत्र थे। उन्होंने अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके साथ उग्र तपमें बिताया था। परम पावनी वितस्ता नदीके सुरम्य तटपर आहार-विहार छोड़कर एक आसनसे बैठकर उन्होंने बहुत वर्षोंतक कठिन तपस्या की थी। उनके शरीरपर बामी जम गयी और उसके ऊपर घास उग गयी थी। बहुत समय व्यतीत होनेके कारण वह मिट्टीके टीलेके समान प्रतीत होने लगा। दैववश उनकी चमकती हुई आँखोंके आगे चींटियोंने छेद कर दिया था।

एक बार परम धर्मात्मा राजा शर्याति अपनी रानियों तथा अपनी सुकन्याको अपने साथ लेकर सेनाके साथ उसी वनमें विहार करने लगे। सुकन्या अपनी सखियोंके साथ इधर-उधर घूमती हुई उसी बामीके संनिकट जा पहुँची। वह बड़े कुतूहलके साथ उसे देखने लगी। देखते-देखते उसकी दृष्टि महर्षि च्यवनकी आँखोंपर जा पड़ी जो कि चींटियोंके बनाये छिद्रोंमेंसे चमक रही थीं। सुकन्याने परीक्षाके लिये एक काँटेसे उन नेत्रोंमे छेद कर दिया। छेद करते ही उनमेंसे रक्तकी धारा बह निकली।

इस महान् अपराधके कारण शर्यातिके सैन्य-बल तथा अन्य सभीका मूत्रावरोध हो गया और समस्त सेनामें हलचल मच गयी। राजा इस बातसे बहुत दुःखित हुए। उन्होंने प्रत्येक व्यक्तिसे पूछा कि किसीने कोई अपराध तो नहीं किया है ? तब सुकन्याने अपने पिताको दुःखित देखकर मुनिकी आँखें फोड़नेका सारा वृत्तान्त सत्य-सत्य कह सुनाया।

यह समाचार सुनते ही शर्याति दौड़े हुए उस बामीके समीप गये और बामीकी मिट्टी हटवायी। मिट्टी हटाते ही

तेजोमूर्ति महर्षि च्यवन दिखायी पड़े। शर्याति साष्टाङ्ग प्रणाम कर कहने लगे—'महाराज ! इस बालिकाने अज्ञानसे आपको कष्ट पहुँचाया है। इसके लिये आप क्षमा करें। इस कन्याको मैं आपकी सेवामें अर्पण करता हूँ। इसे आप भार्याके रूपमें स्वीकार करें। यह प्रेमसे आपकी सेवा करेगी।' परम दयालु महर्षि च्यवनने राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपराध क्षमा कर दिया। राजा तो अपनी राजधानीको चले गये और सुकन्या अनन्य मनसे महर्षिकी सेवामें लग गयी।

एक बार अश्विनीकुमार उस आश्रममें आये। सुकन्याके पातिव्रत-धर्मसे प्रसन्न होकर उन्होंने महर्षिको परम मनोहर यौवन-सम्पन्न रूप दे दिया। यौवन और सुन्दर रूप पाकर च्यवन ऋषि परम आनन्दित हुए और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'मैं देवोंके वैद्य अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग दिलाऊँगा।' च्यवनमुनिके इस निश्चयसे इन्द्र बहुत असंतुष्ट हुए और उन्होंने उनसे उनके दुराग्रहको छोड़ देनेके लिये कहा और ऐसा न करनेपर वज्र-प्रहारका भय भी दिखाया। पर च्यवनमुनि अडिग रहे। उन्होंने विचार किया कि जिन महेश्वरकी सेवामें इन्द्र, वरुण आदि देवता निरत रहते हैं, उन्हींकी आज्ञासे सभी देवता अपना-अपना कार्य करते हैं, जो सृष्टि, संरक्षण और संहारमें सर्वथा समर्थ हैं, मुझे उन्हीं देवाधिदेव भगवान् शंकरकी आराधना करनी चाहिये। इसीसे अभीष्ट-सिद्धि होगी। ऐसा निश्चय करके महर्षि च्यवन महाकाल वनमें गये।[1] वहाँ शिवलिङ्गकी स्थापना कर भगवान्‌का पूजन करने लगे। उनका हठ देखकर इन्द्र कुपित हुए और उनको मारनेके लिये वज्र चलाया, पर भगवान् शंकरने पहलेहीसे इन्हें अभय कर दिया था, इसलिये इन्द्रकी बाहुका स्तम्भन हो गया और च्यवन ऋषिके ऊपर वज्र चल न सका।

इसी बीच उस लिङ्गमेंसे एक ज्योति निकली, जिसकी ज्वालासे त्रैलोक्य जलने लगा। उससे सब देवता संतप्त हो गये, वे सभी इन्द्रसे अश्विनीकुमारोंको यज्ञभागी बनानेकी प्रार्थना करने लगे। देवोंके कहनेपर भयभीत इन्द्रने च्यवन ऋषिको प्रणाम करते हुए कहा कि 'महर्षे ! आजसे अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग मिलेगा और वे सोमपान भी कर सकेंगे। इस शिवलिङ्गका नाम अबसे 'च्यवनेश्वर' होगा और इसके दर्शनसे क्षणभरमें जन्म-जमान्तरके पाप नष्ट हो जायँगे। मनकी दुर्लभ कामनाएँ भी इनकी आराधनासे पूर्ण हो जायँगी।' इतना कहकर इन्द्र सब देवोंको साथ लेकर स्वर्गको चले गये। तभीसे अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग मिलने लगा।

स्कन्दपुराणके आवन्त्यखण्ड (अ॰ ३०) में श्रीच्यवनेश्वर महादेवका माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

भक्ता ये पूजयिष्यन्ति देवेशं च्यवनेश्वरम्।
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात्॥
यं यं काममभिध्यायेन्मनसाभिमतं नरः।
तं तं दुर्लभमाप्नोति च्यवनेश्वरदर्शनात्॥

शिवभक्त ऋषि तण्डी

सत्ययुगमें तण्डी नामके एक विख्यात ऋषि थे। उन्होंने दस हजार वर्षतक समाधि लगाकर परम दयासागर भगवान् महादेवजीकी भक्तिपूर्वक आराधना की थी। एक बार अविनाशी परमात्मामें तल्लीन होते हुए परम श्रद्धाके साथ वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि जिन परमात्माका सांख्यवेत्ता लोग पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता तथा ईश्वर कहकर गान करते हैं और योगी लोग सदा जिनका चिन्तन करते हैं, ज्ञानी लोग जिन्हें जगत्‌की उत्पत्ति और विनाशका कारण समझते हैं, देवता, असुर तथा मुनिगण जिनसे श्रेष्ठ और किसीको नहीं मानते, उन अजन्मा, ईशान, आदि-अन्तरहित, आनन्दमय परम पवित्र भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ, क्योंकि वे शरण्योंके भी परम शरण हैं। तण्डी ऋषि इस प्रकार विचार ही कर रहे थे कि इतनेमें शंकर भगवान्‌ने दर्शन दिया।

उन अविकारी, उपमारहित, अचिन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, देश और कालसे अतीत, ब्रह्मरूप, गुणातीत, निर्गुण, परमानन्दस्वरूप, अक्षर, मोक्षस्वरूप, मनु, इन्द्र, अग्नि, पवन, विश्व और ब्रह्माके गतिरूप, अग्राह्य, अचल, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण करने योग्य, असंयत आनियोंको भी दुष्प्राप्य, समस्त विश्वके कारणरूप महेश्वरके दर्शन पानेपर ऋषि तण्डी उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

१-'महाकालवन' और 'अवन्तिका' उज्जैनको कहते हैं।

'हे सर्वश्रेष्ठ देव! आप पवित्रसे भी पवित्र है, गतिवालोंकी भी गति हैं। परम कल्याणकारिन्! परम सत्य! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव और महर्षि भी आपके स्वरूपको यथार्थ रीतिसे नहीं जान सकते। फिर मैं कैसे जान सकता हूँ? आप ही मोक्षके द्वारको खोलते और बंद करते हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्वामिकार्तिकेय, इन्द्र, सविता, यम, वरुण, चन्द्र, धाता, विधाता और धनके अधिपति कुबेर है। हे भगवन्! आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आज मुझे सत्पुरुषोंकी गति मिली है, जिसे पानेके लिये ज्ञानी लोग भी इच्छा करते रहते है। जिन सनातन देवका साक्षात्कार केवल ज्ञानीको ही होता है, जिनको मैं अपने अज्ञानके कारण बहुत समयतक न जान सका था, आज अनेक जन्मोंके अनन्तर मैंने उनकी साक्षात् भक्ति पायी है। आज मेरा जीवन धन्य हो गया। प्रभो! भक्तोंपर शीघ्र ही अनुग्रह करनेवाले हृदयाकाशमें विराजमान परम ब्रह्म आप ही हैं। आप सबके हृदयमें वास करनेवाले परमात्मा-स्वरूप हैं। कृपासागर! जो श्रद्धालु पुरुष भक्तियोगका आश्रय लेकर आपकी शरण जाता है, उसके सामने प्रत्यक्ष होकर आप दर्शन देते हैं और तपस्वियोंको जो स्थान (परमधाम) मिलता है, वह विमल धाम भी आप ही है।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर दयासिन्धु भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा—'हे प्रिय भक्त! तुम अक्षय, अविकारी, दुःखरहित, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानवाले होओगे। तुम्हारा पुत्र कल्पसूत्रकी रचना करनेवाला होगा। हे वत्स! बोलो, तुम्हारी और क्या इच्छा है?'

तण्डी ऋषिने हाथ जोड़कर कहा—'**त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे।**' 'हे भगवन्! आपमें मेरी दृढ़ भक्ति हो—यही एकमात्र मेरी अभिलाषा है।' इसके पश्चात् देवताओं और ऋषियोंसे वन्दित भगवान् शंकर मुनिकी कामना पूरी करके वहीं अन्तर्धान हो गये और महर्षि तण्डी भावविभोर होकर भगवान्‌के पवित्र नामोंका गुणगान करने लगे।

(महाभारत, अनु० अ० १६)

परम शिवोपासक ईश्वरावतार भगवान् परशुराम

त्रेता युगमें पृथिवीका भार हरण करनेके लिये परशुरामके रूपमें भगवान्‌ने अवतार लिया था। वे बड़े ही ओजस्वी एव सर्वगुण-सम्पन्न थे। पिताकी भक्ति उनसे बढ़कर और कहीं पायी ही नहीं जा सकती। पितृ-आज्ञाके पालनके लिये उन्होंने अपनी माता रेणुकातकका सिर काट लिया था। इसी भक्तिसे प्रसन्न होकर उनके पिता महामुनि जमदग्निने उन्हे वर दिया था कि संसारका कोई भी राजा तुम्हें नहीं जीत सकेगा। पिताने उन्हें अग्निकी ज्वालाके समान उद्दीप्त एक परशुनामका अस्त्र भी दिया। इसीसे वे परशुराम नामसे विख्यात हुए।

एक बार हैहय-कुलमें उत्पन्न राजा सहस्रबाहुने कामधेनुकी लालचसे परशुरामके पिता जमदग्निका सिर काट लिया। अपने पिताका वध देखकर उन्होंने सहस्रार्जुनके हजारों हाथोंको काट डालनेकी प्रतिज्ञा की। इसी प्रतिज्ञाके अनुसार वे आँखें लाल कर गरजते हुए सहस्रार्जुनके समीप पहुँचे और उसके हजार बाहुओंको उसी प्रकार काट डाला, जिस प्रकार हाथी कमलवनमें पहुँचकर हजारों कमल-नालोंको एक क्षणमें अनायास ही छिन्न-भिन्न कर डालता है। परशुरामने संग्रामभूमिमें उसे रथसे नीचे गिरा दिया। इतनेपर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ तो उन्होने इक्कीस बार भूमण्डलके समस्त क्षत्रियोंका विनाश किया। यहाँतक कि पृथिवीमें क्षत्रियोंका कहीं नामतक नहीं रह गया। गर्भमें जो बालक रह गये थे, उन्हींसे फिर क्षत्रियोंका वंश चला।

परशुरामजीको इन क्षत्रियोंके वध करनेका पाप लगा। उस पापके प्रायश्चित्तके लिये उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञमें सारी वसुन्धरा उन्होंने कश्यप ऋषिको दानमें दे डाली और असंख्य ब्राह्मणोंको हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, सोना, चाँदी आदि दिये। यह सब करनेपर भी परशुरामजीको अनेक प्राणियोंके वधजनित पापसे मुक्ति नहीं मिली। इससे वे रैवतक पर्वतपर गये और वहाँ बहुत समयतक उग्र तप करते रहे। कठिन तप करनेपर भी हत्यासे छुटकारा न मिलनेपर परशुरामने महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमालय आदि पवित्र पर्वतोंकी यात्रा की। तत्पश्चात् नर्मदा, यमुना, चन्द्रभागा, गङ्गा, इरावती, वितस्ता, चर्मण्वती, गोमती, गोदावरी आदि पुण्यसलिला नदियोंमें श्रद्धापूर्वक स्नान किया।

इसीके साथ-साथ गया, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर, प्रभास आदि सभी तीर्थोंका सेवन किया, पर हत्याजनित पापसे मुक्ति नहीं ही मिली।

अपने इस कठिन परिश्रमको निष्फल देखकर परशुरामजी अपने मनमें सोचने लगे कि मैंने तीर्थोंका सेवन किया, पवित्र नदियोंके जलसे अपने पापोंको धोनेका प्रयत्न किया, घोर तपस्या भी की, परंतु मुझे हत्यासे छुटकारा नहीं मिला। इससे ज्ञात होता है कि आजकल ये सब निःसत्त्व हो गये हैं। अतएव इनका सेवन करना व्यर्थ है। मैंने अपने शरीरको व्यर्थ ही कष्ट दिया। वे इस प्रकार दुःखित हो ही रहे थे कि इतनेमें देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। उन्हें सादर अभिवादन कर परशुरामजी कहने लगे कि 'देवर्षे! पिताकी आज्ञासे मैंने अपनी माताका वध किया और पिताके वध करनेवालोंसे बदला लेनेके लिये भूमण्डलके समस्त क्षत्रियोंका विनाश कर डाला। यह सब करनेपर मुझे हत्याजनित पापका भय हुआ, उसके निवारणके लिये मैंने अनेक तप और तीर्थ किये, पर अबतक किसीसे मेरी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं हुआ।'

नारदजी बोले कि 'महाकालवन[1]में ब्रह्महत्याजनित पापका निवारण करनेवाला सर्व-सिद्धि-दायक 'जटेश्वर' नामक शिवजीका एक महालिङ्ग है। परशुराम! तुम वहाँ शीघ्र जाओ और उनकी आराधना करो। उनके प्रसादसे तुम समस्त पापोंसे मुक्त हो जाओगे।'

नारदजीके उपदेशानुसार परशुरामजी उसी समय उनको प्रणाम कर सर्वकामना-परिपूरक पवित्र महाकालवनको चल दिये। वहाँ पहुँचकर चिरकालतक श्रीजटेश्वर महादेवजीकी आराधना की। उनकी एकनिष्ठ आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने लिङ्गसे प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिये। उनके परमानन्दप्रद दर्शन पाकर परशुरामजी मुग्ध हो गये और स्तुति करने लगे कि 'प्रभो! आप शरणागतवत्सल हैं, दीनजनोंके हित करनेके लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं। हे करुणावरुणालय! मैं इस समय हत्याजनित पापसे दबा जा रहा हूँ। इससे मेरा उद्धार कीजिये। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि आपके चरण-कमलोंमें मेरा अविचल एवं प्रगाढ़ प्रेम बना रहे।'

उनकी स्तुतिसे भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उन्हें हत्याके पापसे मुक्त कर दिया और कहा कि आजसे इस लिङ्गका नाम तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा। इसे लोग अब 'रामेश्वर' कहेंगे। जो लोग भक्तिपूर्वक रामेश्वरकी पूजा करेंगे, उनके जन्म-भरके पाप जल जायँगे। हजारों ब्रह्म-हत्याओंके भी पाप श्रीरामेश्वरजीके दर्शन करनेसे विनष्ट हो जायँगे। स्कन्दपुराणके अवन्तीखण्ड (लिङ्गमाहात्म्य २९। ४७,५०) में इसका बड़ा माहात्म्य लिखा है—

भक्त्या ये पूजयिष्यन्ति देवं रामेश्वरं परम्।
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात्॥
यच्चापि पातकं घोरं ब्रह्महत्यासहस्रकम्।
तत्पापं विलयं याति रामेश्वरसमर्चनात्॥

शिवाराधनासे दैत्यगुरु शुक्राचार्यको संजीवनी विद्याकी प्राप्ति

एक बार दैत्योंके आचार्य शुक्रको अपने शिष्यों (दानवों) का पराभव देखकर बहुत दुःख हुआ और उन्होंने तपस्याके बलसे देवोंको हरानेकी प्रतिज्ञा की तथा वे अर्बुद पर्वतपर तपस्या करने चले गये। वहाँ उन्होंने भूमिके भीतर एक सुरंगमें प्रवेशकर 'शुक्रेश्वर' नामक शिवलिङ्गकी स्थापना की और प्रतिदिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक षोडशोपचारसे भगवान् शंकरकी अर्चना करने लगे। अनाहार और अनन्यमनस्क होकर वे परम दारुण तप करने लगे। इस प्रकार तप करते-करते जब उनके एक सहस्र वर्ष बीत गये, तब श्रीमहादेवजीने उन्हें दर्शन देकर कहा—'हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हारी आराधनासे परम संतुष्ट हूँ, जो वर माँगना चाहो, माँगो।'

शुक्राचार्यने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

यदि तुष्टो महादेव विद्यां देहि महेश्वर।
यया जीवन्ति संप्राप्ता मृत्युं संख्येऽपि जन्तवः॥

(स्कन्दपु०, प्रभासखण्ड, अर्बुदखण्ड १५।८)

[1] महाकालवन, अवन्तिका (उज्जैन) को कहते हैं।

'हे महेश्वर महादेव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह विद्या दीजिये जिससे युद्धमें भी मरे हुए प्राणी

जीवित हो जायँ।' भगवान् शंकरने प्रसन्नतापूर्वक मृत्युपर विजय प्राप्त करानेवाली तथा मृत प्राणीको भी जीवित कर लेनेकी शक्तिवाली संजीवनी-विद्या वरके रूपमें उन्हें प्रदान की और कहा कि तुम्हें और कुछ माँगना हो तो वह भी माँग लो। तब उन्होंने कहा कि 'महाराज ! कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको जो इन शुक्रेश्वरका भक्तिपूर्वक अर्चन करे, उसे अल्पमृत्युका कभी भय न हो।' महादेवजीने 'तथास्तु' कहकर कैलासकी ओर प्रयाण किया। वरके प्रभावसे शुक्राचार्य युद्धमें मरे हुए असंख्य दैत्योंको फिरसे जिला लेते थे, जिससे दैत्योंको पराजित करना देवोंके लिये कठिन हो गया।

इस शुक्रतीर्थमें पितरोंकी श्राद्धादि क्रिया करनेसे पितृगण संतुष्ट होते हैं। यहाँ स्नान करनेसे एवं शुक्रेश्वरके अर्चनसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसे अल्पमृत्युका भय कभी नहीं होता। उसे इस लोकमें अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है, सभी सुख मिलते हैं और वह अन्तमें शिवलोकको प्राप्तकर शिवगणोंके साथ आनन्द भोगता है।

भक्त कण्णप्प

दक्षिणके किसी जंगली प्रदेशमें रहनेवाली एक शिकारी जातिका सरदार नाग था। उसका काम था हत्या करना। उसके बाणोंकी नोकमें जहर लगा रहता था, जो आगके समान जलता था। धनुष-बाण चलानेमें वह अत्यन्त चतुर था। क्रोधोन्मत्त सिंहके समान वह बली था। उसकी पत्नीका नाम तत्ता था। वह भी सिंहनीके ही समान डरावनी थी। वह उजले शङ्खों और सिंहके दाँतोंकी माला पहनती थी। बहुत दिनोंके बाद उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम तिण्ण रखा गया। तिण्णका अर्थ भारी होता है। अपने लड़केको गोदमें उठानेपर नागको वह भारी लगा, इसलिये उसका नाम उसने तिण्ण रख दिया।

तिण्ण सोलह वर्षकी उम्रमें ही धनुष-बाण, भाला, तोमर और वीरोंके योग्य दूसरे अस्त्र-शस्त्र चलानेमें बहुत निपुण हो गया। नागको बुढ़ापा आता हुआ मालूम हुआ। उसने तिण्णको अपनी जातिका सरदार बना दिया। तिण्ण नियमानुसार पहले-पहल आखेटको निकला। बहुत-से जानवर मारनेके बाद उसने घने जंगलमें एक सूअरका शिकार किया। वहीं उसके दो नौकर नाण और काड उनसे आ मिले। उन्होंने सूअरको उठा लिया और बढ़ चले। रास्तेमें उनको जोरोंकी भूख लगी।

तिण्णने पूछा—'यहाँ मीठा पानी कहाँ मिलेगा ? तुम्हें कुछ पता है ?'

नाण बोला—'उस विशाल शालवृक्षके उस पार एक पहाड़ी है और उसीके नीचे 'सुवर्णा' नदी बहती है।'

तिण्णने कहा—'चलो, तब वहीं चलें।' तीनों चल पड़े। वहाँ पहुँचनेपर तिण्णने पहाड़ीपर चढ़नेकी इच्छा जतायी।

नाणने भी जोर दिया, 'हाँ, यह पहाड़ बहुत ही रमणीक है। शिखरपर एक मन्दिर है, जिसमें भगवान् जटाजूटधारीकी मूर्ति है। आप उनकी पूजा कर सकते हैं।'

पहाड़पर चढ़ते-चढ़ते तिण्णकी भूख-प्यास गायब हो गयी। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो सिरपरसे कोई भार उतर जाता हो। उसे एक प्रकारका अनिर्वचनीय आनन्द मिलने लगा। उसके भीतर नयी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी।

वह बोला—'नाण ! तुमने कहा है न कि ऊपर भगवान् जटाजूटधारीका मन्दिर है, चलो उनके दर्शन कर आवें।'

वे शिखरपर चढ़कर मन्दिरके सामने पहुँचे।

देवप्रतिमाको देखते ही भावुक-हृदय तिण्णने लपककर उसे प्रेमालिङ्गनमें बाँध लिया। उसके आनन्दका पार न रहा। उसकी आँखोंसे अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। वह कहने लगा—'प्यारे भगवन्! क्या तुम यहाँ अकेले ही जंगलमें जंगली जन्तुओंके बीच रहते हो! यहाँ तुम्हारा कोई मित्र नहीं है?' भक्तिसे उसका हृदय गद्गद हो गया। उसकी इस समाधिस्थ अवस्थामें धनुष सरककर गिर गया। मूर्तिके सिरपर कुछ हरे पत्ते, जंगली फूल और शीतल जल देखकर वह दुःखित हो गया और कहने लगा—'किस नराधमने मेरे स्वामीके सिरपर ये चीजें रखी हैं?'

नाणने जवाब दिया—'आपके पूज्य पिताके साथ मैं यहाँ बहुत बार आया हूँ। हमने एक ब्राह्मणको यह करते देखा था। उसने देवताके सिरपर ठंडा पानी डाल दिया और फूल-पत्तियाँ रख दीं। फिर वह खूब उसी तरह बड़बड़ाता रहा, जैसा कि हम ढोल पीट-पीटकर देवताके सामने किया करते हैं। उसने आज भी जरूर यही किया होगा!'

तिण्णको भी पूजा करनेकी बड़ी प्रबल इच्छा थी, किंतु ढंग नहीं मालूम होनेसे उसने सोचा कि 'मैं भी क्यों न इसी तरह भूखे भगवान्‌को मांस लाकर खिलाऊँ।' तिण्ण मन्दिरसे रवाना हुआ, परंतु तुरंत ही लौट आया। वह बार-बार जानेकी कोशिश करता था, किंतु इस नयी निधिको छोड़नेकी इच्छा न होनेसे लौट आता था। उसकी हालत उसी गायकी-सी हो गयी, जो अपने पहले बछड़ेको नहीं छोड़ना चाहती।

उसने सरलतासे कहा—'प्यारे मालिक! मैं जाकर तेरे लिये अपने हाथों मांस पकाकर लाऊँगा। तुझे यों अकेला और असहाय छोड़नेको जी नहीं चाहता। किंतु तुझे भूख लग रही है और जाकर तेरे खानेके लिये कुछ लाना ही होगा।' आँखोंमें आँसू भरे आते थे। यों वह जंगली शिकारी मन्दिरसे चला। नाण उसके पीछे-पीछे चला। पहाड़ीके नीचे आनेपर उसने दूसरे नौकरको सारी कथा कह सुनायी। यह भी कहा कि मालिकने मूर्तिका आलिङ्गन किया था, उसे देरतक न छोड़ा और अब देवताके लिये पका हुआ मांस ले जानेको आये हैं।

नौकर रोने लगे—'हमारा तो सर्वनाश हो गया। सरदार पागल हो गये।' तिण्णने उनके रोनेकी जरा भी परवा न की। उसने मांस पकाया। फिर उसे चखकर देखा कि ठीक-ठीक पका तो है, स्वाद ठीक है और संतोष हो जानेपर पहाड़पर ले जानेके लिये उसे शालके पत्तेमें लपेटकर रखा।

नौकरोंने मन-ही-मन कहा—'पगला! कर क्या रहा है? पका हुआ मांस मुँहमें डालकर चखता है और इतना भूखा होनेपर भी उसे बिना खाये ही पत्तेपर रख देता है। अपनी भूख-प्यासकी तो कोई बात ही नहीं करता। हमें भी मांस देनेका नाम नहीं लेता। अपने देवताके लिये थोड़ा-सा चुनकर बाकी फेंक देता है। इसका सिर फिर गया है, अब अच्छा नहीं हो सकता। खैर, चलो, इसके बापसे यह बात कह दें।' दोनों नौकर उसे छोड़कर चले गये। तिण्णने न तो उनकी बात सुनी और न उनका जाना ही उसे मालूम हुआ। वह तो अपने ही काममें मग्न था। अभिषेकके लिये उसने अपने मुँहमें ताजा पानी भर लिया, क्योंकि उसके पास कोई बरतन नहीं था। चढ़ानेके लिये अपने बालोंमें उसने कुछ जंगली सुगन्धित फूल खोंस लिये। एक हाथमें उसने मांस लिया और दूसरेमें आत्मरक्षाके लिये तीर, धनुष लेकर वह दोपहरकी कड़कड़ाती धूपमें पहाड़पर चढ़ने लगा। यह सोचकर कि देवता भूखे होंगे, वह और भी तेजीसे चलने लगा। शिखरपर पहुँचनेके बाद वह मन्दिरमें जूता पहने ही दौड़कर घुस गया। देवताके सिरपरसे पुराने फूल उसने बड़े स्नेहके साथ पैरोंसे हटाये, अभिषेकके लिये ऊपरसे कुल्ला कर दिया और देवताके आगे मांस रखकर अपनी साधारण बोलीमें खानेका आग्रह करने लगा। अँधेरा हो आया। तिण्णने सोचा—'यह समय तो जंगली जानवरोंके घूमनेका है। देवताको यहाँ अकेले छोड़कर मैं नहीं जा सकता।' उसने हाथमें धनुष-बाण लेकर रातभर पहरा दिया। सबेरा होनेपर जब चिड़ियाँ चहचहाने लगीं, तब वह देवताके आगे प्रणिपात और प्रार्थना करके ताजा मांस लाने चला गया।

वह ब्राह्मण पुजारी, जो पूजा किया करता था, नियमानुसार प्रातःकाल आया। मन्दिरमें जूतों और कुत्तोंके पैरोंकी छाप देखकर तथा चारों ओर हाड़-मांस छितराया हुआ देखकर वह बहुत ही घबरा गया, विलाप करने लगा—'हाय, भगवन्! अब मैं क्या करूँ? किसी जंगली शिकारीने मन्दिर भ्रष्ट कर दिया है।' लाचार उसने झाड़-बुहारकर साफ किया। मांसके टुकड़े कहीं पैरोंमें छू न जायँ, इसलिये उसे बड़ी

कठिनतासे इधर-उधर चलना पड़ता था। फिर वह नदीमेंसे स्नान करके आया और मन्दिरकी सम्पूर्ण शुद्धि की। आँखोंमें आँसू भरकर देवताके आगे प्रणिपात करने लगा। फिर उठकर उसने वेद-ऋचाओंसे परम पुरुष परमात्माकी स्तुति की। पूजा समाप्त करके वह अपने तपोवनको लौट गया।

तिण्णने कई जानवर मारे और पिछले दिनके समान चुनकर मांस पकाया और चख-चखकर अच्छे-अच्छे टुकड़े अलग रख लिये। उसने कई अच्छे ताजे मधुके छत्ते इकट्ठे किये, उनका मधु मांसमें निचोड़ा। फिर वह मुँहमें पानी भरकर, बालोंमें फूल खोंसकर, एक हाथमें मांस लिये हुए और दूसरेमें धनुष-बाण लेकर पहाड़पर दौड़ा। ज्यों-ज्यों मन्दिर निकट आता जाता था, उसकी आतुरता भी बढ़ती जाती थी। वह बड़े-बड़े डग भरता चला। उसने देवताके सिरपरसे फूल-पत्ते पैरसे ठेलकर साफ किये, कुल्ला करके अभिषेक कराया और यह कहते हुए मांसका उपहार सामने रखा—'देवता! कलसे आजका मांस मीठा है। कल तो केवल सूअरका मांस था। आज तो बहुत-से स्वादिष्ट जानवरोंके मांस चखकर और खूब स्वादिष्ट चुनकर लाया हूँ। उसमें मधु भी निचोड़ा है।'

इस तरह तिण्णके पाँच दिन, दिनभर शिकार करके देवताके लिये मांस इकट्ठा करने और रातभर पहरा देनेमें बीते। उसे आप खाने-पीनेकी सुध ही न रही। तिण्णके चले जानेके बाद प्रतिदिन ब्राह्मण पण्डित आते और रातके इस भ्रष्टाचारपर विलाप करते, मन्दिर धोकर साफ करते, नदी-स्नान करके शुद्धि करते और पूजा-पाठ करके अपने स्थानपर लौट जाते। जब इतने दिनोंतक तिण्ण नहीं लौटा, तब उसके सभी सम्बन्धी और मा-बाप निराश हो गये।

ब्राह्मण पुजारी रोज ही हार्दिक प्रार्थना करते—'प्रभु! मेरे पाप क्षमा करो। ऐसा भ्रष्टाचार रोको।' एक रात स्वप्नमें परमेश्वर उनके सामने आकर बोले—'मित्र! तुम मेरे इस प्रिय शिकारी भक्तको नहीं जानते। यह मत समझो कि वह निरा शिकारी ही है। वह तो बिलकुल ही प्रेममय है। वह मेरे सिवा और कुछ जानता ही नहीं। वह जो कुछ करता है, मुझको प्रसन्न करनेके लिये ही। जब वह अपने जूतेकी नोकसे मेरे सिरपरसे सूखे फूल हटाता है, तब उसका स्पर्श मुझे प्रिय पुत्र कुमारदेवके आलिङ्गनसे भी अधिक प्रिय लगता है। जब मुझपर वह प्रेम और भक्तिसे कुल्ला करता है, तब वह कुल्लेका ही पानी मुझे गङ्गाजलसे भी अधिक पवित्र जान पड़ता है। वह अनपढ़ मूर्ख सच्चे स्वाभाविक प्रेम और भक्तिसे जो फूल अपने बालोंमेंसे निकालकर मुझपर चढ़ाता है, वे मुझे स्वर्गमें देवताओंके भी चढ़ाये फूलोंसे अधिक प्रिय लगते हैं। और अपनी मातृभाषामें वह आनन्द और भक्तिसे भरकर जो थोड़े-से शब्द कहकर, मेरे सिवा सारी दुनियाका भान भूलकर मुझे प्रसाद पानेको कहता है, वे शब्द मेरे कानोंमें ऋषि-मुनियोंके वेद-पाठसे कहीं अधिक मीठे लगते हैं। यदि उसकी भक्तिका महत्त्व देखना हो तो कल आकर मेरे पीछे खड़े हो जाना।'

इस आदेशके बाद पुजारीको रातभर नींद नहीं आयी। प्रातःकाल वह नियमानुसार मन्दिरमें पहुँचा और पूजा-पाठ समाप्त करके मूर्तिके पीछे जा छिपा। तिण्णकी पूजाका यह छठा दिन था।और दिनोंसे आज उसे कुछ देर हो गयी थी। इसलिये वह पैर बढ़ाता आया। रास्तेमें उसे अपशकुन हुए, वह सोचने लगा—'कहीं खून गिरना चाहिये। कहीं देवताको कुछ हुआ तो नहीं?' इसलिये वह दौड़ा। अपने असगुनको पूरा होते देखकर उसके शोकका पार न रहा। हाय! देवताको कितना कष्ट हो रहा था, क्योंकि उनकी दाहिनी आँखसे खूनकी अविरल धारा बह रही थी। तिण्ण यह दुःखद दृश्य नहीं देख सका। वह रोने—विलाप करने लगा। जमीनपर लोटने लगा। फिर उठा। उठकर भगवान्‌की आँखसे खून पोंछ दिया, परंतु तो भी खूनका बहना रुका नहीं। वह फिर दुःखातुर होकर गिर पड़ा।

तिण्ण बिलकुल ही घबरा गया। उसका चित्त अत्यन्त दुःखी हो गया। वह समझता नहीं था कि क्या करना चाहिये। थोड़ी देर बाद वह उठा और तीर-धनुष लेकर उस आदमी या जानवरको मारने निकला, जिसने देवताकी यह दुर्दशा की हो। परंतु उसे कहीं कोई प्राणी नहीं दिखलायी पड़ा। वह लौट आया और मूर्तिको छातीसे लगा करके विलाप करने लगा, 'हाय! मैं महापापी हूँ। रास्तेके सभी अपशकुन सच्चे हुए हैं। भगवन्! पिता! मेरे प्यारे! तुम्हें क्या हुआ है? मैं तुम्हें क्या सहायता दूँ?' तब उसे कुछ जड़ी-बूटियोंकी याद आयी,

जिन्हें उसकी जातिके लोग घावोंपर लगाते थे। वह दौड़ा और जब लौटा तो जड़ी-बूटियोंका गट्ठर लेकर। उन्हें उसने देवताकी आँखमें एक-एककर निचोड़ दिया, पर इससे कुछ

लाभ नहीं हुआ। उस समय उसे शिकारियोंकी कहावत याद आयी कि 'मांस मांससे ही अच्छा होता है।' यह खयाल आते ही उसके मनमें आनन्दकी नयी ही उमंग खेलने लगी। उसने देर न की। एक तेज बाणकी नोकसे अपनी दाहिनी आँख निकाल डाली और भगवान्‌की आँखपर धीरेसे धरकर उसे दबाया और आश्चर्य कि इससे तुरंत खूनका बहना रुक गया।

वह आनन्दसे नाच उठा। ताल ठोक-ठोककर आनन्दोन्मत्त होकर नाचने लगा। उसकी असीम प्रसन्नतापूर्ण हँसी और आनन्दध्वनिसे मन्दिर गूँज उठा, पर यह क्या हुआ! अरे, इस बीच बाँयीं आँखसे भी खून बहने लगा। इसपर दुःख और घबराहटमें तिण्ण भान भूल गया। परंतु यह विस्मृति क्षणिक ही थी। तुरंत ही वह सँभल उठा और उसने कहा—'मेरे-जैसा कौन मूर्ख होगा, जो मैं इसपर शोक करता हूँ। इसकी दवा तो मुझे मिल ही गयी है। अब भी मेरी एक आँख तो है!' तब देवताकी बाँयीं आँखपर अपना बाँयाँ पैर रखकर, जिससे उसे पता चले कि कहाँ आँख लगानी है—क्योंकि आँख निकालनेके बाद उसे कुछ भी नहीं सूझेगा—उसने पहलेसे भी अधिक तेजीसे बाँयीं आँखके कोनेमें तीरकी नोंक लगायी। देवता उसकी इस भक्तिपर पुष्प बरसाने लगे। स्वयं भगवान्‌ने अपने हाथ बढ़ाकर तिण्णका हाथ पकड़कर रोक लिया और कहा—'ठहरो, मेरे कण्णप्प! मेरे कण्णप्प! ठहर जाओ।' [कण=आँख, अप्प=वत्स, कण्णप्प—कण+अप्प।] फिर परमेश्वरने कण्णप्पका हाथ पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया और कहा—'त्याग और प्रेमकी मूर्ति कण्णप्प! तू इसी भाँति सर्वदा मेरे पास रहा कर!'

ब्राह्मण पुजारीने यह आश्चर्यजनक दृश्य देखा और सच्ची तथा सीधी-सादी भक्तिका रहस्य समझा।

भक्त मानिक्क वाशगर

शैवभक्तोंमें अग्रणी 'मानिक्क वाशगर' परमात्माकी भक्तिकी जाज्वल्यमान मूर्ति थे। आपका मानना था कि प्रभुकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग प्रेममार्ग ही है। यह प्रेम शुद्ध, सात्त्विक और निष्काम होना चाहिये। इस महात्माने मदुराके पास वाथवुर नामक स्थानमें एक ब्राह्मणके घर जन्म लिया था। १६ वर्षकी उम्रमें इन्होंने अपने समयके विद्वान् ब्राह्मणोंसे सारी विद्या सीख ली और शैव धर्मशास्त्रका विशेषरूपसे मनन किया। उनकी विद्या और बुद्धिकी प्रशंसा राजाके कानोंतक पहुँची। राजाने उनको आदरपूर्वक बुलाकर अपना प्रधान मन्त्री बनाया। पाण्ड्य राजाके दरबारमें उन्हें समस्त स्वर्गीय सुख प्राप्त थे। जब वे राजकीय वेषभूषामें अपने दरबारियों, सिपाहियों और हाथी-घोड़ोंसे घिरे हुए राजसभामें आते थे तो ऐसा जान पड़ता था कि पूर्ण चन्द्र तारोंके बीच सुशोभित हो रहे हैं, तथापि वह युवक मन्त्री अपनेको न भूला। उसे सदा याद रहा कि ये बाहरी सुख केवल आत्माको बन्धनमें डालनेवाले हैं और मुक्तिकी चाह रखनेवालोंको इनका त्याग करना ही पड़ेगा। जीवोंको जन्मभर असंख्य दुःख सहते देखकर वह बड़ा ही आर्त होता। उसका हृदय शिवको प्राप्त करनेके लिये सदा व्यग्र रहता था। वह न्यायपूर्वक राज्यको सुन्दरताके साथ चलाता रहा, परंतु उसके हृदयमें सदा किसी

ऐसे सद्गुरुसे मिलनेकी अभिलाषा बनी रहती थी, जो उसे मुक्तिका मार्ग दिखलाता। जिस प्रकार भ्रमर रसके लिये फूलोंके पास दौड़ता रहता है, उसी प्रकार वह ज्ञानरसकी प्राप्तिके लिये विभिन्न शैव गुरुओंकी शरण लेता रहा, परंतु उसके मनको किसी प्रकार संतोष न हुआ। एक दिन उसे किसीने यह सूचना दी कि एक जहाज पड़ोसके राजाके बंदरगाहमें खड़ा है जिसमें किसी दूसरे देशसे घोड़े आये हैं। राजाने इस बातको सुनकर काफी रुपये देकर मन्त्रीको घोड़े खरीदनेके लिये भेजा। मन्त्रीने सिपाहियोंके एक दलको साथ ले प्रस्थान किया। उसके सांसारिक जीवनका यह अन्तिम प्रदर्शन था।

उसी समय कैलासमें उमासे शिवने कहा कि—'हे प्रिये! मैं मनुष्यरूपमें उस महापुरुषका गुरु बनने जा रहा हूँ जो दक्षिणके तामिल-प्रदेशको भक्तिसुधासे परिप्लावित करेगा।' वे तत्काल ही एक सघन वृक्षके नीचे अपनी शिष्यमण्डलीके सहित विराजमान हो गये। उस बंदरगाहके समीप वनमें भगवान् शिवने अपना आसन जमाया, वहाँ चारों ओर बिना ऋतुके ही वृक्षलताएँ मञ्जरित और पुष्पित हो गयीं। चिड़ियाँ पासके वृक्षोंकी डालियों और टहनियोंपर कलरव मचाने लगीं। उसी समय वह युवक मन्त्री अपने साथियोंके साथ उस रास्तेसे होकर निकला और उसे वनमेंसे शिव-स्तोत्रोंकी ध्वनि सुनायी पड़ी। उसने अपने एक अनुचरको उस दिव्य गानका पता लेनेके लिये भेजा। थोड़ी ही देरमें उसे ज्ञात हुआ कि साक्षात् शिवके समान एक महात्मा वनमें एक बड़े वटके नीचे विराजमान हैं। तुरंत वह घोड़ेसे उतर पड़ा और विनीत भावसे उन महात्माकी ओर अग्रसर हुआ। उनके तीसरे नेत्रकी ज्योतिसे जान पड़ता था कि वे साक्षात् शिव हैं। उसने पता लगाया कि वे महात्मा अपने शिष्योंको किस धर्मका उपदेश कर रहे हैं। अन्तमें वह भक्तिधर्ममें दीक्षित हुआ और समस्त सांसारिक ऐश्वर्योंका त्यागकर गद्गदकण्ठसे आँसू बहाते हुए गुरुके चरणोंपर गिर पड़ा। सद्गुरुके द्वारा साधनपथमें अग्रसर होनेके पश्चात् ही वह जीवन्मुक्त हो गया। उसने तनमें भस्म रमा, जटाजूट धारण किया। यही क्यों, उसने जो कुछ द्रव्य राजासे घोड़े खरीदनेके लिये लिया था उसे वहाँ संतोंकी सेवामें लगा दिया।

राजपुरुषोंने आकर उसे रोका और कहा कि राजाके धनको दान करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। परंतु मन्त्रीने उत्तर दिया—'तुम लोग मुझे पुनः सांसारिक झंझटोंमें क्यों घसीटते हो?' इसपर वे लोग मदुरा लौट गये और राजासे जाकर इस युवक मन्त्रीका सारा हाल कह सुनाया। राजा बहुत ही कुपित हुआ और एक कड़ी आज्ञा लिखकर मन्त्रीको शीघ्र ही दरबारमें उपस्थित होनेका हुक्म दिया। इसपर मन्त्रीने जवाब दिया कि—'मैं शिवको छोड़कर किसीको राजा नहीं मानता, उनके पाससे तो यमके दूत भी मुझे नहीं ले जा सकते।'

तथापि शिवने उससे कहा कि डरो मत, मदुरा लौट जाओ और राजासे जाकर कह देना कि घोड़े ठीक समयपर उसके यहाँ चले आयेंगे। अनन्तर शिवने उसे एक सुन्दर सवारी और एक बहुमूल्य लाल देकर विदा किया।

राज्यमें पहुँचनेपर पहले तो राजाको विश्वास हो गया था कि उसके घोड़े आ जायँगे, परंतु दूसरे दरबारियोंके मुँहसे मन्त्रीकी सारी कहानी सुनकर उसको संदेह हुआ और घोड़ोंके आनेकी निश्चित तिथिसे दो दिन पूर्व ही उसने उसको (मन्त्रीको) कैदखानेमें डलवा दिया।

परंतु भगवान् शिव अपने शिष्यको नहीं भूले थे। उन्होंने एक झुंड गीदड़ोंका इकट्ठा कर उन्हें घोड़ोंके रूपमें बदल डाला और देवताओंको साईसके भेषमें बदलकर स्वयं उस सौदागरका रूप धारण किया जो उन घोड़ोंका मालिक था। राजा इनको देखते ही बहुत प्रसन्न हुआ और मन्त्रीसे क्षमा माँगते हुए उसे मुक्त कर दिया। घोड़े खोल-खोलकर राजाके अस्तबलमें भेज दिये गये और वेष बदले हुए देवताओंने भी अपना रास्ता लिया।

सुबह होनेके पहले ही गीदड़ोंकी भयानक आवाजसे सारा नगर जाग उठा। घोड़े अब पुनः गीदड़ हो गये और इसके साथ ही एक और आफत यह हुई कि वे अस्तबलके घोड़ोंको काटने लगे। राजाको मालूम हो गया कि उसके साथ धोखा किया गया है, उसने उस मन्त्रीको पकड़वाकर उसके सिरपर पत्थर रखकर धूपमें खड़ा करा दिया। मन्त्रीने प्रभुकी प्रार्थना की। शिवने इसके बदलेमें अपनी जटासे गङ्गाकी धारा बहाकर नगरको जलमग्न कर दिया। अब राजाको अपनी भूल

सूझी, उसने उस महात्मा (मन्त्री) को एक प्रतिष्ठित पदपर बिठा दिया और नगरकी रक्षाके लिये बाँध बँधवाने लगा। यह काम हो जानेपर राजाने अपना राज्य उस महात्माको भेंट कर दिया। परंतु मानिक्क वाशगरने राज्य भोगनेकी अपेक्षा वहीं जाना अच्छा समझा जहाँ उसने भगवान् शिवका पहले-पहल दर्शन किया था। वहाँ उसने गुरुके चरणोंका आश्रय लिया। शिवका काम अब हो गया था, वे कैलास चले गये और उन्होंने तामिल-प्रान्तमें भक्ति-धर्मके प्रचारका काम अपने इस भक्तके ऊपर छोड़ दिया।

तबसे ये महात्मा शिवजीका गुण गाते नगर-नगर घूमने लगे। इससे उनकी बड़ी ख्याति हुई। अन्तमें वह उस तीर्थभूमि—चिदम्बरम्में पहुँचे जहाँ शिवका दैनिक नृत्य होता था और जहाँ व्याघ्रपाद नामक महात्माका निवासस्थान था। यहाँ वे महात्मा प्रभुके अन्तिम मिलनतक पड़े रहे।

कुछ दिनोंके बाद एक अज्ञात महान् विद्वान्ने अकस्मात् प्रकट होकर सिंहलके विद्वान् भिक्षुओंको पराजित किया और इन महात्माके मुखसे निकले हुए दिव्य ज्ञानको लिपिबद्ध किया और यह काम पूरा होनेके बाद वह अन्तर्धान हो गया। यह शिवके सिवा दूसरा कोई न था। शिव ही देवताओंको आनन्दित करनेके लिये इस संगीतको शिवलोकमें ले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल शिवजीके हस्ताक्षरसहित एक पूरी प्रति देवमन्दिरमें पड़ी मिली। मन्दिरके सब भक्त उस महात्माके पास इस रहस्यको समझनेके लिये पहुँचे। वे उन सबको अपने पीछे-पीछे स्वर्ण-मन्दिरमें शिवमूर्तिके पास लिवा ले गये और 'इसका यही अर्थ है' इतना कहकर वे स्वयं अन्तर्धान हो गये और उनका शरीर मूर्तिके रूपमें रह गया। इसके पश्चात् उनका फिर किसीको दर्शन न मिला।

शिवभक्त राजा चन्द्रसेन और श्रीकर गोप

भगवान् शिव गुरु हैं, शिव देवता हैं, शिव ही प्राणियोंके बन्धु हैं, शिव ही आत्मा और शिव ही जीव हैं। शिवसे भिन्न दूसरा कुछ नहीं है। वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिवकी स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो भगवान् शिवके ध्यानमें संलग्न होता है, वे ही कान सफल हैं, जो उनकी कथा सुननेके लिये उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजीकी पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं, जो भगवान् शिवजीकी पूजाका दर्शन करते हैं। वह मस्तक धन्य है, जो भगवान् शिवके सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं, जो भक्तिपूर्वक शिवके क्षेत्रोंमें सदा भ्रमण करते हैं। जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान् शिवके कार्योंमें लगी रहती हैं, वह संसार-सागरसे पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवकी भक्तिसे युक्त मनुष्य चाण्डाल, पुल्कस, नारी, पुरुष अथवा नपुंसक—कोई भी क्यों न हो, तत्काल संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है[1]। जिसके हृदयमें भगवान् शिवकी लेशमात्र भी भक्ति है, वह समस्त देहधारियोंके लिये वन्दनीय है।

उज्जयिनीके राजा चन्द्रसेन इसी श्रेणीके शिवभक्त थे। ये भगवान् महाकालके अनन्य उपासक थे। शिवपार्षदोंमें अग्रगण्य श्रीमणिभद्रजी, राजाकी अनन्य भक्ति देख, उनके सखा हो गये थे। उन्होंने प्रसन्न होकर महाराज चन्द्रसेनको एक ऐसी दिव्य चिन्तामणि प्रदान की थी, जो सूर्य तथा कौस्तुभमणिके समान देदीप्यमान थी। वह चिन्तन करनेमात्रसे ही मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाली थी। उस चिन्तामणिको कण्ठमें धारण करके राजा जब सिंहासनपर बैठते, तब देवताओंके बीचमें भगवान् सूर्यकी भाँति उनकी शोभा होती थी। महाराज चन्द्रसेनकी इस चिन्तामणिके प्रति बहुतसे राजाओंके मनमें लोभ पैदा हो गया था। एक दिन कई

१-शिवो गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम्। शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न किंचन॥
सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्। तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ॥
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे। तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा॥
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु। स निस्तरति संसारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥
शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोऽपि च। नारी नरो वा षण्ढो वा सद्यो मुच्येत संसृतेः॥ (स्क० पु०, ब्रह्म०, ब्रह्मोत्तर० अध्याय ५)

राजाओंने एक साथ बहुत-सी सेना लेकर मालवपर आक्रमण किया और उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया।

महाराज चन्द्रसेनको जब यह समाचार मिला, तब वे भगवान् महाकालकी ही शरण गये। उनके तो सब कुछ महाकाल ही थे। भगवान् शिवसे सारी परिस्थिति बताकर वे उन्हींकी आराधनामें संलग्न हो गये। भक्तवत्सल भगवान् शिवने भक्तकी रक्षाका निश्चय करके तदनुकूल उपायपर विचार किया। उन दिनों उज्जयिनीमें एक विधवा ग्वालिन रहती थी। उसके पाँच वर्षका एक बालक था। उस बालकको गोदमें लेकर वह महाकालजीके मन्दिरमें गयी। वहाँ उसने राजा चन्द्रसेनद्वारा की हुई गौरीपतिकी महापूजाका दर्शन किया। उस आश्चर्यमय पूजोत्सवको देखकर ग्वालिनने भगवान्‌को प्रणाम किया और वह अपने निवास-स्थानपर लौट आयी। ग्वालिनके उस बालकने भी वह सारी पूजा देखी थी। बालक अनुकरणशील तो होते ही हैं। घर आकर उसने भी शिवजीकी पूजा प्रारम्भ कर दी। एक सुन्दर पत्थर लाकर घरसे थोड़ी दूर एकान्तमें रख दिया। वही उसके लिये मानो भगवान् शिवका प्रतीक था। फिर उसने अपने हाथसे प्राप्त होनेलायक बहुतसे फलोंका संग्रह किया। तत्पश्चात् उस शिवलिङ्गको स्नान कराया और भक्तिभावसे उसकी पूजा की। कृत्रिम अलंकार, चन्दन, धूप, दीप और अक्षत आदि उपचार चढ़ाये। भाँति-भाँतिके सुन्दर पत्रों और पुष्पोंसे भगवान्‌का शृङ्गार किया और मानसिक नैवेद्य निवेदन करके भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाया। इसके बाद भावावेशसे उसने नृत्य भी किया। इसी समय ग्वालिनने भोजन तैयार करके उस बालकको बुलाया। जब वह नहीं आया, तब वह स्वयं उसके पास गयी। उसने देखा उसका लाड़ला भगवान् शिवकी पूजा करके ध्यान लगाये बैठा है। ग्वालिनने हाथ पकड़कर खींचा, तब भी बालक नहीं उठा। इसपर वह खीझ उठी और बालकको पीटने लगी। इतनेपर भी जब वह उठनेको राजी नहीं हुआ, तब उसकी माने वह पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया। उसपर चढ़ी हुई सारी पूजा-सामग्री इधर-उधर बिखर गयी। यह देख बालक 'हाय! हाय!' करके रो उठा। 'देवदेव महादेव!' की रट लगाता हुआ वह सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

थोड़ी देरमें जब उसे चेत हुआ, तब आँखें खोलकर उसने देखा, उसका वही निवास-स्थान एक परम रमणीय शिवालय बन गया था। मणियोंके जगमगाते हुए खंभे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके द्वार, किंवाड़ तथा सदर फाटक सभी सुवर्णमय थे। वहाँकी भूमि बहुमूल्य नीलमणि तथा हीरोंके चबूतरोंसे शोभा पा रही थी। यह सब देखकर बालक उठा और हर्षके पारावारमें निमग्न हो गया। उसे यह समझते देर न लगी कि यह सब कुछ भगवान् शिवकी पूजाका प्रभाव है। उसने भगवान् शिवको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और इस प्रकार प्रार्थना की—'देव उमापते! मेरी माताका अपराध क्षमा करें।' भगवान् शिवको संतुष्ट करके बालक जब संध्याके समय मन्दिरसे बाहर निकला तो अपने घर गया। वह स्थान इन्द्रनगरकी भाँति शोभा पा रहा था। भवनके भीतर प्रवेश करके उसने देखा उसकी माता बहुमूल्य पलँगपर राजोचित वस्त्राभूषणोंको धारण करके सो रही है। उसने माताको जगाया। ग्वालिनने उठनेपर सब कुछ अपूर्ववत् देखा। पुत्रके मुखसे यह जानकर कि सब कुछ भगवान् शिवकी कृपाका प्रसाद है, वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने इस घटनाका समाचार महाराजको दिया। महाराज चन्द्रसेनने पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ आकर यह सारा वैभव देखा और भगवान् शिवकी भक्तवत्सलताका विचार करके प्रेमके आँसू बहाते हुए उन्होंने गोपबालकको हृदयसे लगा लिया।

इस अद्भुत घटनाका समाचार सब ओर बिजलीकी तरह फैल गया। युद्धके लिये आये हुए राजाओंने जब यह बात सुनी, तब उनके हृदयसे वैरभाव जाता रहा। वे भी राजाकी आज्ञासे नगरमें आये और भगवान् शिवकी महिमाको प्रत्यक्ष देखकर उनके चरणोंमें मन लगाया।

इसी समय भगवान् शंकर परम तेजस्वी वानरराज हनुमान्‌के रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उनके दर्शनकर सभीने विनम्र होकर उन्हें प्रणाम किया। वानरराज हनुमान्‌जीने गोपबालकको बड़ी प्रीतिसे हृदयसे लगाया और फिर राजाओंसे कहा—आपलोग मेरी कल्याणकारी बात सुनें। 'भगवान् शिवके अतिरिक्त देहधारियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस गोपबालकने अपनी शिवोपासनासे उन्हें पा लिया है। गोपवंशकी कीर्ति

बढ़ानेवाला यह बालक भगवान् शंकरका श्रेष्ठ भक्त है। इस

लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें यह मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह बालक संसारमें सबसे अधिक पुण्यात्मा है। इसकी वंशपरम्पराकी आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी 'नन्द' उत्पन्न होंगे, जिनके यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण उनके रूपमें प्रकट हो 'श्रीकृष्ण' नामसे प्रसिद्ध होंगे। आज यह गोपकुमार इस जगत्में 'श्रीकर' के नामसे विख्यात होगा।'

ऐसा कहकर तथा शिवोपासनाके आचार-व्यवहारका उपदेश देकर रुद्रावतार हनुमान्‌जी अन्तर्धान हो गये। राजा चन्द्रसेनकी अनुमति लेकर सभी राजा अपने-अपने स्थानोंकी ओर लौट गये। महातेजस्वी श्रीकर तथा महाराज चन्द्रसेन दोनों बड़ी ही प्रसन्नता तथा भक्तिभावके साथ महाकालकी उपासना करने लगे और उन्हींकी आराधनासे उन दोनोंने परम पद प्राप्त किया[१]।

(स्कन्द पुराण, ब्रह्म खण्ड)

शिवभक्त बाणासुर

असुरवंशमें प्रह्लादजी ऐसे कुलदीपक हुए कि उनके प्रभावसे उनका सारा वंश ही भक्त हो गया। प्रह्लादजी स्वयं परम भागवत विष्णुभक्त थे। पुण्यवान् परम भागवतोंकी जहाँ गणना होती है, वहाँ प्रह्लादजीका सर्वप्रथम नाम लिया जाता है। इनके पुत्र विरोचन थे, विरोचनके पुत्र बलि दानिशिरोमणि और इतने सत्यवादी हुए कि साक्षात् विष्णुभगवान्‌को उनके यज्ञमें आना पड़ा और छद्मवेशसे उन्हें बाँधकर अन्तमें स्वयं बलिके प्रेमपाशमें बँध जाना पड़ा और तबसे अबतक उनके दरवाजेपर द्वारपाल बनकर आप विराजमान हैं।

बलिके सौ पुत्र हुए, उनमें बाणासुर सबसे ज्येष्ठ थे। इन्होंने हिमालय-प्रान्तमें केदारनाथजीके पास शोणितपुरको अपनी राजधानी बनाया। ये बड़े मान्य, उदार, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ और परम शिवभक्त थे। इनके हजार हाथ थे। ये हजारों वर्षोंतक शिवजीकी आराधना करते रहे। जब ताण्डव नृत्यके समय शंकरजी लयके साथ नाचते, तब ये हजार हाथोंसे बाजे बजाते। इनकी सेवासे भूतनाथ भवानीपति परम प्रसन्न हुए। उन्होंने इन्हें वरदान माँगनेको कहा। इन्होंने प्रार्थना की—'प्रभो! मुझे तो आपकी कृपा चाहिये। जैसे विष्णुभगवान् मेरे पिताजीके यहाँ सदा विराजमान रहकर उनकी पुरीकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी मेरी राजधानीके निकट सदा निवास करें और मेरी रक्षा करते रहें।' आशुतोष भगवान्‌ने कहा—'अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।' यह कहकर शंकरजी वहाँ रहने लगे।

अधिक बल, विद्या, धन, वैभव आदि पाकर अभिमान-का होना स्वाभाविक है, किंतु जिनके कोई इष्ट हैं, जो भक्त हैं, उनके अभिमानरूपी रोगको कल्याणकारी श्रीइष्टदेव शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार बाणासुरको भी अपने बलका और हजार भुजाओंका अभिमान हो गया था। वह पृथ्वीपर लड़ाईके लिये अपने समान बलवालेको खोजता रहा। दिग्गज उसके बलको देखकर भाग गये, देवता डर गये और इन्द्रने हार मान ली। तीनों लोकोंमें बाणासुरको कोई भी परास्त नहीं कर सका। इससे उसका अभिमान और बढ़ गया। उसने शिवजीके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'भगवन्! ये सहस्र बाहु मेरे लिये भाररूप ही हैं, इनसे युद्ध करनेके लिये कोई बली मुझे मिलता ही नहीं। क्या करूँ? कैसे इनकी खुजली मिटाऊँ?'

सर्वान्तर्यामी शिव उसकी दर्पभरी वाणीका अभिप्राय समझ गये। ये तो दर्पहारी हैं ही, उन्होंने बाणासुरको एक झंडी

१-शिवपुराण कोटिरुद्रसंहिता (अ० १७) में भी यही कथा प्राय यथावत् रूपमें उपलब्ध होती है।

दी और कहा—जिस दिन यह झंडी स्वतः ही गिर पड़ेगी, उसी दिन समझना कि मुझसे अधिक बली तुमसे लड़ने आयेगा और तेरे दर्पको चूर्ण करेगा। झंडी लेकर बाणासुर प्रसन्नताके साथ घर लौट गया। कालान्तरमें भगवान् वासुदेवने आकर उसके मदको चूर्ण किया और उसकी हजार भुजाओंमेंसे केवल चारको छोड़कर सभीको काट डाला। तबसे बाणासुर भगवान् शंकरका प्रधान पार्षद बन गया और उनकी कृपासे अजर-अमर हो गया।

स्कन्दपुराणमें यह कथा आयी है कि बाणासुरने दस हजार वर्षोंतक कठोर तप किया था। एक बार इसके तपसे ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और उन्होंने वरस्वरूप इसे तीन नगर (पुर) दिये। उनमेंसे एक सोनेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा लोहेका था। वे सब नगर एकहीमें मिले-से मालूम होते थे। इसलिये उनका नाम 'त्रिपुर' पड़ गया। वे आकाशमें उड़ा करते और बाणासुरकी इच्छापर चलते थे। उनका भेदन करना असम्भव था। वे कभी दिखायी देते और कभी लुप्त हो जाया करते। जहाँ वे नगर गिरते वहाँका स्थान चौपट हो जाता और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी जीव दबकर मर जाते। बाणासुर जिस किसी सुन्दर स्त्री, उत्तम रत्न आदि वस्तुओंको देखता हठात् हरण कर लेता। उसका विरोध करनेका साहस किसीमें न था। एक बार देवताओंको स्वर्गसे भगाकर उसने वहाँ अपना साम्राज्य स्थापित किया। सारा संसार उसके अत्याचारोंसे पीड़ित था। देवता लोग उसे न तो अस्त्रोंसे मार सकते थे, न शस्त्रोंसे ही। क्योंकि उसकी शक्ति अपरिमित थी।

एक बार सब देवता मिलकर भगवान् शंकरके पास गये और विनयपूर्वक स्तुति करने लगे। भगवान् शंकरने उनके आनेका कारण पूछा, तब उन्होंने बाणासुरद्वारा दिये गये दुःखका समाचार सुनाकर कहा—'हे महाराज! आपके अतिरिक्त हमलोगोंकी रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। भगवन्! कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे सभी देवता और तपोधन ऋषि सुखसे जीवन बिता सकें।'

भगवान् शिवने देवताओंको आश्वासन देकर अपने-अपने स्थानपर भेज दिया और देवर्षि नारदका स्मरण किया। स्मरण करते ही नारदजी वहाँ आ पहुँचे। भगवान् महादेवने उनसे कहा—'मुने! त्रिपुरकी स्त्रियाँ साध्वी और तेजस्विनी हैं। उनके तेजसे त्रिपुरका भेदन करना असम्भव है। जबतक उनके उस शुद्ध भावमें परिवर्तन न होगा, तबतक विजय प्राप्त करना कठिन है। इसलिये आप वहाँ जाइये और उनके पातिव्रत-भावमें परिवर्तन कीजिये।'

देवर्षि नारद भगवान्को प्रणामकर त्रिपुरकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने उन स्त्रियोंको अनेक प्रकारके व्रत तथा पूजनके विधान बताये। जिससे पतिको छोड़कर दूसरे-दूसरे देवताओंकी उपासना करनेसे उनके सतीत्वमें बहुत कुछ कमी हो गयी। जब नारदजी वहाँसे चलने लगे, तब अपने सौन्दर्य तथा तेजसे उनका मन हर ले गये। उनके जाते ही उन स्त्रियोंकी कान्ति नष्ट हो गयी, वे एकदम प्रभावहीन हो गयीं। अब क्या था, त्रिपुरका भी महत्त्व जाता रहा।

देवर्षि नारदके मुखसे सब वृत्तान्त सुनकर भगवान् रुद्रने त्रिपुरके दाहका निश्चय कर अपने धनुषकी टंकार की, जिससे तीनों लोक हिल गये। क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने एक शक्तिशाली बाण छोड़ा। अमोघ बाणके प्रभावसे त्रिपुरमें आग लग गयी और वहाँके बड़े-बड़े पर्वत, वृक्ष, गृह आदि जलकर पृथ्वीपर गिरने लगे। सुन्दर उद्यान जलकर भस्म हो गये। सब जगह हाहाकार मच गया। वहाँकी स्त्रियाँ और पुरुष चिल्लाने लगे।

प्रचण्ड अग्निसे बाणासुरका भवन भी जलने लगा। उस समय उसे अपने किये हुए पातकोंपर पश्चात्ताप हुआ। वह रो-रोकर कहने लगा—'हा! मुझ पापीने तीनों लोकोंका सत्यानाश कर डाला। मैंने असंख्य गायों और ब्राह्मणोंकी हत्या की। मठों और मन्दिरोंको तोड़-फोड़कर मिट्टीमें मिला दिया। ऋषियोंके आश्रम उजाड़ डाले। इन सब महापातकोंका फल मेरे सिवाय और कौन भोगेगा। इस समय माता-पिता, बन्धु-बान्धव, पुत्र-कलत्र कोई भी सहायक नहीं दीखता। भक्तजनोंके कष्ट हरण करनेवाले श्रीशंकरभगवान् ही अब हमारी रक्षा कर सकते हैं, दूसरा नहीं। अतः उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये।' ऐसा विचारकर बाणासुरने अपने सिरपर शिवलिङ्ग धारण कर लिया और अपने घरसे बाहर निकलकर गद्गद वाणीसे भगवान् महेश्वरकी इस प्रकार दिव्य स्तुति करने लगा—

'हे दयानिधे ! यदि आप हमे अपने कोपानलमें जलाना चाहते हैं तो जलाइये, किंतु इस शिवलिङ्गकी अवश्य रक्षा कीजिये। हे भगवन्! इस लिङ्गकी मैंने बड़ी आराधना और पूजा की है। यह मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। हे महेश्वर! यदि आप मेरा वध ही करना चाहते हैं तो इतना वर अवश्य दीजिये कि प्रत्येक जन्ममें मुझे आपकी भक्ति प्राप्त हो। मुझे चाहे पशुकी योनि मिले, चाहे पक्षी होना पड़े, चाहे पतङ्गोंका सहवास करना हो, परंतु आपमें मेरी अचल भक्ति बनी रहे।'

बाणासुरकी स्तुति सुनकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—'हे दानवेन्द्र! तुम डरो मत। अब तुम्हें किसीका भय नहीं है। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मेरे लोकमें रहो अथवा अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तथा बन्धुओंके साथ सांसारिक सुखोंका उपभोग करो।'

ऐसा वर देकर महादेवजीने उस अग्निको रोक लिया और बाणासुर अनन्य-मनसे भगवान् शंकरकी उपासनामे लग गया।

(स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड, अ० २६—२८)

महान् शिवभक्त गुणनिधि (कुबेर)

प्राचीन कालमें काम्पिल्य नगरमें यज्ञदत्त नामक एक परम तपस्वी एवं सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। वे सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता और सर्वदा श्रौत-स्मार्त-कर्मोंमें प्रवृत्त रहते थे। उनके 'गुणनिधि' नामक एक पुत्र हुआ, जो यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर समस्त विद्याओंको पढ़कर पूर्ण विद्वान् हो गया। दैववश कुसंगमें पड़नेसे उसे जुआ खेलनेका दुर्व्यसन लग गया। नित्य वह अपने पितासे छिपाकर घरके आभूषण आदि चुरा ले जाता और जुआमें हार जाता। जब यज्ञदत्तको उसके दुर्व्यसनका पता लगा तो उन्होंने उसे अपने घरसे निकाल दिया। घरसे निकलकर गुणनिधि भोजनकी खोजमें संध्या-समय एक शिवालयमें पहुँचा, उस दिन शिवरात्रि थी। वह वहाँ द्वारपर बैठकर शिवकीर्तन सुनने लगा। रातको जब सब लोग सो गये तो शिवभोग चुरानेके लिये वह मन्दिरमें घुसा। उस समय दीपककी ज्योति क्षीण हो गयी थी। इसलिये उसने अपना कपड़ा फाड़कर बत्ती जलायी और भोग चुराकर भागने लगा। इतनेमें उसके पैरके लग जानेसे एक आदमी जाग पड़ा, गुणनिधि भागा ही जा रहा था कि वह पकड़ा गया और उसे प्राण-दण्ड मिला।

अपने कुकर्मोंके कारण वह यमदूतोंद्वारा बाँधा गया। इतनेमें ही भगवान् शंकरके पार्षद वहाँ आ पहुँचे, उन्होंने बन्धनसे उसे छुड़ा लिया और कैलासपुरीमें ले आये। आशुतोष भगवान् शिव उसके अज्ञानमें ही हो गये व्रतोपवास, रात्रि-जागरण, पूजा-दर्शन तथा प्रकाशके निमित्त जलाये गये वस्त्रवर्तिकाको आर्तिक्य मानकर उसपर पूर्ण प्रसन्न हो गये और अपना शिवपद उसे प्रदान कर दिया। कालान्तरमें वह गुणनिधि भगवान् उमामहेश्वरकी कृपासे कलिंगराज अरिंदमका पुत्र हुआ और उसका नाम था दम। वह इस जन्ममें भी निरन्तर भगवान् उमापतिकी सेवा-आराधनामें लगा रहता था। बादमें वह कलिंग-देशका अधिपति हुआ। राजा दमने बड़ी प्रसन्नतासे श्रद्धापूर्वक शिवधर्मोंका प्रचार किया। समस्त शिवालयोंमें दीपदान करनेकी आज्ञा उन्होंने लोगोंको प्रदान की और ऐसा न करनेपर दण्डकी भी व्यवस्था की। वे स्वयं भी इस नियमका नित्य पालन करते थे। आजीवन इस व्रतका पालन करते हुए उन्होंने बहुत-सी धर्मसम्पत्ति संचित कर ली। फिर वे कालधर्मके अधीन हो गये। शैवी-भक्तिके कारण वे अलकापुरीके अधिपति बने।

पाद्मकल्पमें पुलस्त्यके पुत्र विश्रवाके घरमें उनका जन्म हुआ। विश्रवाके पुत्र होनेसे वैश्रवण कुबेर तथा इडविडाके गर्भसे उत्पन्न होनेसे ऐडविड कहलाये। इस उत्तम कुलमें जन्म पाकर वे फिर शम्भुकी आराधनामें लग गये और शिवलिङ्गका संस्थापनकर कठिन तपस्या करने लगे। तप करते-करते हजारों वर्ष बीत गये और उनके शरीरमें केवल अस्थिचर्ममात्र शेष रह गया। उस तीव्र तपसे प्रसन्न होकर भगवान् महादेव उमासहित प्रकट हुए और कहने लगे—'हे वैश्रवण! तुम्हारी तपस्यासे मैं परम प्रसन्न हूँ और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने आया हूँ। तुम अपना अभीष्ट वर माँगो।'

ऐसा मधुर वचन सुनते ही वैश्रवणने आँखें खोलीं, परंतु शिवजीके उद्दीप्त तीव्र तेजके प्रकाशसे उनकी आँखें फिर बंद

हो गयीं और उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'प्रभो ! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये जिससे मैं आपके चरणारविन्दोंका दर्शन कर सकूँ। आपके दर्शनमात्रसे मेरी अभीष्टसिद्धि हो जायगी।' तब श्रीमहादेवजीने कृपापूर्ण हाथसे उनका स्पर्श किया, स्पर्श करते ही उनकी दिव्य दृष्टि हो गयी। आँख खुलते ही उनकी दृष्टि सबसे पहले परम सुन्दरी गिरिजापर पड़ी। अतएव वे क्रूरदृष्टिसे उन्हींको घूर-घूरकर देखने लगे। इसका फल यह हुआ कि उनकी बायीं आँख दृष्टिविहीन हो गयी। पार्वतीजी उनका यह दुर्व्यवहार देखकर कहने लगीं कि यह तापस तो बड़ा दुष्ट मालूम होता है, मुझे क्रूरदृष्टिसे देख रहा है। शिवजीने हँसकर कहा—'देवि ! यह तो तुम्हारा पुत्र है, तुम्हें किसी बुरी भावनासे नहीं देख सकता, यह तुम्हारी तपस्याके फलपर आश्चर्य करके तुम्हारी ओर निहार रहा है।'

तदनन्तर शंकरजी वैश्रवणसे बोले—'वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ और वर देता हूँ कि तुम्हें निधियोंका स्वामित्व प्राप्त हो और गुह्यक, यक्ष, किन्नर तथा पुण्यजनोंके अधिपति हो जाओ, मेरे साथ तुम्हारी मित्रता रहेगी, तुम्हारी प्रसन्नताकी अभिवृद्धिके लिये मैं तुम्हारी अलकापुरीके समीप ही निवास करूँगा[1]। पार्वतीजीने भी अनेक वर दिये और कहा कि तुमने मेरे रूपको बुरी दृष्टिसे देखा है, इसलिये तुम्हारा नाम 'कुबेर' होगा। तुम्हारे संस्थापित इस शिवलिङ्गका जो लोग विधिपूर्वक अर्चन करेंगे, वे कभी निर्धन नहीं होंगे और किसी प्रकारके पाप उन्हें नहीं लगेंगे। ऐसा वर देकर भगवती पार्वतीके साथ भगवान् शिव अन्तर्हित हो गये और कुबेर अलकापुरीका ऐश्वर्य पाकर परम संतुष्ट हुए। इस प्रकार भगवान् शंकरकी आराधना तथा उनकी कृपासे उन्होंने उत्तर दिशाका आधिपत्य, 'अलका' नामकी दिव्य पुरी, नन्दनवनके समान दिव्य उद्यानयुक्त चैत्ररथ नामक वन तथा एक दिव्य सभा प्राप्त की। साथ ही वे माता पार्वतीके कृपापात्र और भगवान् शंकरके घनिष्ठ मित्र भी बन गये।

महान् शिवभक्त हरिकेश यक्ष (दण्डपाणि)

प्राचीन कालमें रत्नभद्र नामसे प्रसिद्ध एक धर्मात्मा यक्ष गन्धमादन पर्वतपर रहता था। उसके पूर्णभद्र नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अन्तमें अनेक भोगोंको भोगकर उस रत्नभद्रने शिवध्यान-परायण हो परम शान्त शिवलोकको प्राप्त किया। पिताके शिवलोक चले जानेपर पूर्णभद्रने संतानहीन होनेसे अपनी भार्या कनककुण्डला नामकी यक्षिणीसे कहा—'प्रिये ! मुझे पुत्रके बिना यह राज्य और महल आदि सब शून्य ही मालूम होता है।'

कनककुण्डला बोली—प्राणनाथ ! आप ज्ञानवान् होकर पुत्रके लिये क्यों खेद करते हैं। यदि यही इच्छा है तो पुत्र मिलनेका उपाय कीजिये। इस जगत्में उद्यमी लोगोंको क्या दुर्लभ है ? जो प्राणी प्रारब्धके भरोसे रहता है, वह नितान्त कापुरुष है; क्योंकि अपना किया हुआ कर्म ही प्रारब्ध है और कुछ नहीं। इस कारण प्रतिकूल प्रारब्धको शान्त करनेके लिये समस्त कारणोंके भी कारणरूप भगवान् महेश्वरकी शरणमें जाना चाहिये। उनके अनुग्रहसे पुत्र, धन, महल, हाथी, घोड़े, सुख, स्वर्ग, मोक्ष—ये सब अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। सभी मनोरथ, आठों सिद्धियाँ शिवकी कृपा होनेपर सामने खड़ी रहती हैं, इसमें संदेह नहीं है। अन्तर्यामी जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु जिन शिवकी सेवासे चर-अचर सभी प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, जिन्होंने ब्रह्माको सृष्टि रचनेका अधिकार दिया, इन्द्रादि देव जिनकी दयासे लोकपाल हुए, अपुत्र शिलादने जिनकी कृपासे मरणहीन नन्दीश्वर नामक पुत्रको प्राप्त किया, कालके गालमें फँसे हुए श्वेतकेतुने जीवन पाया, उन दया-सिन्धु आशुतोष भगवान् शंकरके प्रसन्न हो जानेपर संसारमें क्या दुर्लभ है। जो मनोरथ संसारमें अलभ्य भी हैं उनको शिवजी प्रदान करते हैं। मोक्षपद भी उनकी सेवासे एक क्षणमें प्राप्त हो सकता है, इसीलिये स्वामिन् ! यदि आप सर्वश्रेष्ठ पुत्र चाहते हैं तो भगवान् शिवकी शरण ग्रहण कीजिये[2]।

स्त्रीका वचन सुनकर यक्षराजने गीत-वाद्य आदिसे

१-मया सख्यं च ते नित्यं वत्स्यामि च तवान्तिके। अलकां निकषा मित्र तव प्रीतिविवृद्धये॥ (शिवपु॰, रु॰ सं॰ १९। २६)

२- शंकरं शरणं व्रज। यदीच्छसि प्रियं पुत्रं प्रियं सर्वजनीनकम्॥

ओंकारेश्वरका[1] पूजनकर पुत्रकी अभिलाषा पूर्ण की। उनका नाम 'हरिकेश' पड़ा। पुत्र उत्पन्न होनेकी प्रसन्नतासे उसने अनेक दान-पुण्य किये।

जब हरिकेश आठ वर्षका हुआ तभीसे वह खेलमें धूलि (बालू) का शिवलिङ्ग बनाकर तृणादि (दूर्वा) से उनका पूजन करता और अपने साथियोंको 'शिव' नामसे ही पुकारता था। वह रात-दिन हे चन्द्रशेखर! हे भूतेश! हे मृत्युञ्जय! हे मृड! हे ईश्वर! हे नीलकण्ठ! हे पिनाकिन्! आदि पवित्र नामोंका उच्चारण करता रहता और मित्रोंको प्रेम करता हुआ बार-बार इन्हीं नामोंसे पुकारता रहता था। उसके कान शिवके नामके अतिरिक्त अन्य किसीको ग्रहण नहीं करते थे। वह शिवमन्दिरको छोड़कर किसी अन्य जगह नहीं जाता, उसके नेत्र शिवके अतिरिक्त और कुछ देखनेकी इच्छा नहीं रखते थे। उसकी रसना सदा शिव नामके अमृतका पान करती रहती थी। उसकी नासिका महादेवजीके चरणारविन्दोंकी सुगन्धके अतिरिक्त दूसरी कोई गन्ध नहीं ग्रहण करना चाहती थी। उसके हाथ शिवसेवा करनेमें लगे रहते थे, उसका मन शिवध्यानपरायण था। उसने अपनी बुद्धि शिवको समर्पण कर दी थी। वह जल आदि भी शिवार्पण किये बिना नहीं ग्रहण करता और स्वप्नमें भी भगवान् शिवको ही देखा करता था।

हरिकेशकी यह दशा देखकर उसके पिताने उसे गृहकार्यमें लगानेकी अनेक चेष्टाएँ कीं; किंतु उसपर कुछ भी असर नहीं हुआ। अन्तमें हरिकेश घरसे निकल गया। कुछ दूर जाकर उसे भ्रम हो गया और वह मन-ही-मन कहने लगा—'हे शंकर! कहाँ जाऊँ, कहाँ रहनेसे मेरा कल्याण होगा?'

उसने अपने मनमें विचारा कि जिनका कहीं ठिकाना नहीं है, उनका आधार काशीपुरी है। जो रात-दिन विपत्तियोंसे दबे हैं, उनका काशीपुरी ही आधार है। इस प्रकार निश्चय कर वह काशीपुरीको गया। जिस अविमुक्त क्षेत्रमें पाञ्चभौतिक देह त्यागकर प्राणोंका शिवकी प्रसन्नतासे फिर देहसे सम्बन्ध नहीं रहता, उस आनन्दवनमें जाकर जप करने लगा।

कुछ कालके अनन्तर भगवान् शंकरने पार्वतीको अपना विहारवन दिखाया। वह अनेक सुगन्धयुक्त पल्लवोंसे शोभित था। शिव बोले—'हे देवि! जैसे तुम मुझको बहुत प्रिय हो, वैसे ही यह आनन्दवन भी मुझे परम प्रिय है। हे देवि! मेरे अनुग्रहसे इस आनन्दवनमें मरे हुए जनोंको जन्म-मरणका बन्धन नहीं होता अर्थात् वह फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। पुण्यात्माके कर्मबीज विश्वनाथजीकी प्रज्वलित अग्निमें जल जाते हैं, उसीसे फिर वे गर्भाशयमें नहीं आते। काशीवासी लोगोंके देहान्त-समयमें मैं ही तारक ब्रह्म-ज्ञानका उपदेश देता हूँ। जिससे वे उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं।

कलियुगमें विश्वनाथदेवका दर्शन-पूजन, काशीपुरी, भागीरथी गङ्गा आदिका सेवन तथा सत्पात्रको दान विशेष फलदायक होता है। हे देवि! काशीवासी सदा मुझमें ही बसते हैं। इससे मैं उनको अन्तमें संसार-सागरसे पार कर देता हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है।' इस तरह वार्तालाप करते-करते भगवान् उस स्थानपर गये जहाँ हरिकेश समाधि लगाये बैठा था। उसको देखकर देवीने पार्वतीने कहा—'ईश! यह आपका तपस्वी भक्त है। इस समाधिस्थ भक्तको वर देकर

उसका मनोरथ पूर्ण कीजिये। इसका चित्त केवल आपमें ही लगा है और इसका जीवन भी आपके ही अधीन है।' दयार्द्र-हृदय महादेवजी उसके पास गये और उन्होंने समाधिमें स्थित उस हरिकेशको हाथसे स्पर्श किया। दयामिश्रित स्पर्श

१-ॐकारेश्वरका मन्दिर पावन पुरी काशीमें मत्स्योदरीसे उत्तर है।

हो गयीं और उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'प्रभो ! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये जिससे मैं आपके चरणारविन्दोंका दर्शन कर सकूँ। आपके दर्शनमात्रसे मेरी अभीष्टसिद्धि हो जायगी।' तब श्रीमहादेवजीने कृपापूर्ण हाथसे उनका स्पर्श किया, स्पर्श करते ही उनकी दिव्य दृष्टि हो गयी। आँख खुलते ही उनकी दृष्टि सबसे पहले परम सुन्दरी गिरिजापर पड़ी। अतएव वे क्रूरदृष्टिसे उन्हींको घूर-घूरकर देखने लगे। इसका फल यह हुआ कि उनकी बायीं आँख दृष्टिविहीन हो गयी। पार्वतीजी उनका यह दुर्व्यवहार देखकर कहने लगीं कि यह तापस तो बड़ा दुष्ट मालूम होता है, मुझे क्रूरदृष्टिसे देख रहा है। शिवजीने हँसकर कहा—'देवि ! यह तो तुम्हारा पुत्र है, तुम्हें किसी बुरी भावनासे नहीं देख सकता, यह तुम्हारी तपस्याके फलपर आश्चर्य करके तुम्हारी ओर निहार रहा है।'

तदनन्तर शंकरजी वैश्रवणसे बोले—'वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ और वर देता हूँ कि तुम्हें निधियोंका स्वामित्व प्राप्त हो और गुह्यक, यक्ष, किन्नर तथा पुण्यजनोंके अधिपति हो जाओ, मेरे साथ तुम्हारी मित्रता रहेगी, तुम्हारी प्रसन्नताकी अभिवृद्धिके लिये मैं तुम्हारी अलकापुरीके समीप ही निवास करूँगा[1]। पार्वतीजीने भी अनेक वर दिये और कहा कि तुमने मेरे रूपको बुरी दृष्टिसे देखा है, इसलिये तुम्हारा नाम 'कुबेर' होगा। तुम्हारे संस्थापित इस शिवलिङ्गका जो लोग विधिपूर्वक अर्चन करेंगे, वे कभी निर्धन नहीं होंगे और किसी प्रकारके पाप उन्हें नहीं लगेंगे। ऐसा वर देकर भगवती पार्वतीके साथ भगवान् शिव अन्तर्हित हो गये और कुबेर अलकापुरीका ऐश्वर्य पाकर परम संतुष्ट हुए। इस प्रकार भगवान् शंकरकी आराधना तथा उनकी कृपासे उन्होंने उत्तर दिशाका आधिपत्य, 'अलका' नामकी दिव्य पुरी, नन्दनवनके समान दिव्य उद्यानयुक्त चैत्ररथ नामक वन तथा एक दिव्य सभा प्राप्त की। साथ ही वे माता पार्वतीके कृपापात्र और भगवान् शंकरके घनिष्ठ मित्र भी बन गये।

महान् शिवभक्त हरिकेश यक्ष (दण्डपाणि)

प्राचीन कालमें रत्नभद्र नामसे प्रसिद्ध एक धर्मात्मा यक्ष गन्धमादन पर्वतपर रहता था। उसके पूर्णभद्र नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अन्तमें अनेक भोगोंको भोगकर उस रत्नभद्रने शिवध्यान-परायण हो परम शान्त शिवलोकको प्राप्त किया। पिताके शिवलोक चले जानेपर पूर्णभद्रने संतानहीन होनेसे अपनी भार्या कनककुण्डला नामकी यक्षिणीसे कहा—'प्रिये ! मुझे पुत्रके बिना यह राज्य और महल आदि सब शून्य ही मालूम होता है।'

कनककुण्डला बोली—प्राणनाथ ! आप ज्ञानवान् होकर पुत्रके लिये क्यों खेद करते हैं। यदि यही इच्छा है तो पुत्र मिलनेका उपाय कीजिये। इस जगत्में उद्यमी लोगोंको क्या दुर्लभ है ? जो प्राणी प्रारब्धके भरोसे रहता है, वह नितान्त कापुरुष है; क्योंकि अपना किया हुआ कर्म ही प्रारब्ध है और कुछ नहीं। इस कारण प्रतिकूल प्रारब्धको शान्त करनेके लिये समस्त कारणोंके भी कारणरूप भगवान् महेश्वरकी शरणमें जाना चाहिये। उनके अनुग्रहसे पुत्र, धन, महल, हाथी, घोड़े, सुख, स्वर्ग, मोक्ष—ये सब अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। सभी मनोरथ, आठों सिद्धियाँ शिवकी कृपा होनेपर सामने खड़ी रहती हैं, इसमें संदेह नहीं है। अन्तर्यामी जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु जिन शिवकी सेवासे चर-अचर सभी प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, जिन्होंने ब्रह्माको सृष्टि रचनेका अधिकार दिया, इन्द्रादि देव जिनकी दयासे लोकपाल हुए, अपुत्र शिलादने जिनकी कृपासे मरणहीन नन्दीश्वर नामक पुत्रको प्राप्त किया, कालके गालमें फँसे हुए श्वेतकेतुने जीवन पाया, उन दया-सिन्धु आशुतोष भगवान् शंकरके प्रसन्न हो जानेपर संसारमें क्या दुर्लभ है। जो मनोरथ संसारमें अलभ्य भी हैं उनको शिवजी प्रदान करते हैं। मोक्षपद भी उनकी सेवामें एक क्षणमें प्राप्त हो सकता है, इसीलिये स्वामिन् ! यदि आप सर्वश्रेष्ठ पुत्र चाहते हैं तो भगवान् शिवकी शरण ग्रहण कीजिये[2]।

स्त्रीका वचन सुनकर यक्षराजने गीत-वाद्य आदिसे

१-मया सख्यं च ते नित्यं वत्स्यामि च तवान्तिके। अलकां निकषा मित्र तव प्रीतिविवृद्धये॥ (शिवपु०, रु० सं० १९। २६)

२- · · · शंकरं शरणं व्रज। यदीच्छसि प्रियं पुत्रं प्रियं सर्वजनीनकम्॥

ओंकारेश्वरका[1] पूजनकर पुत्रकी अभिलाषा पूर्ण की। उनका नाम 'हरिकेश' पड़ा। पुत्र उत्पन्न होनेकी प्रसन्नतासे उसने अनेक दान-पुण्य किये।

जब हरिकेश आठ वर्षका हुआ तभीसे वह खेलमें धूलि (बालू) का शिवलिङ्ग बनाकर तृणादि (दूर्वा) से उनका पूजन करता और अपने साथियोंको 'शिव' नामसे ही पुकारता था। वह रात-दिन हे चन्द्रशेखर ! हे भूतेश ! हे मृत्युञ्जय ! हे मृड ! हे ईश्वर ! हे नीलकण्ठ ! हे पिनाकिन् ! आदि पवित्र नामोंका उच्चारण करता रहता और मित्रोंको प्रेम करता हुआ बार-बार इन्हीं नामोंसे पुकारता रहता था। उसके कान शिवके नामके अतिरिक्त अन्य किसीको ग्रहण नहीं करते थे। वह शिवमन्दिरको छोड़कर किसी अन्य जगह नहीं जाता, उसके नेत्र शिवके अतिरिक्त और कुछ देखनेकी इच्छा नहीं रखते थे। उसकी रसना सदा शिव नामके अमृतका पान करती रहती थी। उसकी नासिका महादेवजीके चरणारविन्दोंकी सुगन्धके अतिरिक्त दूसरी कोई गन्ध नहीं ग्रहण करना चाहती थी। उसके हाथ शिवसेवा करनेमें लगे रहते थे, उसका मन शिवध्यानपरायण था। उसने अपनी बुद्धि शिवको समर्पण कर दी थी। वह जल आदि भी शिवार्पण किये बिना नहीं ग्रहण करता और स्वप्नमें भी भगवान् शिवको ही देखा करता था।

हरिकेशकी यह दशा देखकर उसके पिताने उसे गृहकार्यमें लगानेकी अनेक चेष्टाएँ कीं; किंतु उसपर कुछ भी असर नहीं हुआ। अन्तमें हरिकेश घरसे निकल गया। कुछ दूर जाकर उसे भ्रम हो गया और वह मन-ही-मन कहने लगा—'हे शंकर ! कहाँ जाऊँ, कहाँ रहनेसे मेरा कल्याण होगा ?'

उसने अपने मनमें विचारा कि जिनका कहीं ठिकाना नहीं है, उनका आधार काशीपुरी है। जो रात-दिन विपत्तियोंसे दबे हैं, उनका काशीपुरी ही आधार है। इस प्रकार निश्चय कर वह काशीपुरीको गया। जिस अविमुक्त क्षेत्रमें पाञ्चभौतिक देह त्यागकर प्राणोंका शिवकी प्रसन्नतासे फिर देहसे सम्बन्ध नहीं रहता, उस आनन्दवनमें जाकर जप करने लगा।

कुछ कालके अनन्तर भगवान् शंकरने पार्वतीको अपना विहारवन दिखाया। वह अनेक सुगन्धयुक्त पल्लवोंसे शोभित था। शिव बोले—'हे देवि ! जैसे तुम मुझको बहुत प्रिय हो, वैसे ही यह आनन्दवन भी मुझे परम प्रिय है। हे देवि ! मेरे अनुग्रहसे इस आनन्दवनमें मरे हुए जनोंको जन्म-मरणका बन्धन नहीं होता अर्थात् वह फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। पुण्यात्माके कर्मबीज विश्वनाथजीकी प्रज्वलित अग्निमें जल जाते हैं, उसीसे फिर वे गर्भाशयमें नहीं आते। काशीवासी लोगोंके देहान्त-समयमें मैं ही तारक ब्रह्म-ज्ञानका उपदेश देता हूँ। जिससे वे उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं।

कलियुगमें विश्वनाथदेवका दर्शन-पूजन, काशीपुरी, भागीरथी गङ्गा आदिका सेवन तथा सत्पात्रको दान विशेष फलदायक होता है। हे देवि ! काशीवासी सदा मुझमें ही बसते हैं। इससे मैं उनको अन्तमें संसार-सागरसे पार कर देता हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है।' इस तरह वार्तालाप करते-करते भगवान् उस स्थानपर गये जहाँ हरिकेश समाधि लगाये बैठा था। उसको देखकर देवीने पार्वतीने कहा—'ईश ! यह आपका तपस्वी भक्त है। इस समाधिस्थ भक्तको वर देकर

उसका मनोरथ पूर्ण कीजिये। इसका चित्त केवल आपमें ही लगा है और इसका जीवन भी आपके ही अधीन है।' दयार्द्र-हृदय महादेवजी उसके पास गये और उन्होंने समाधिमें स्थित उस हरिकेशको हाथसे स्पर्श किया। दयासिन्धुका स्पर्श

१-ॐकारेश्वरका मन्दिर पावन पुरी काशीमें मत्स्योदरीसे ऊपर है।

पाकर उस यक्षने आँखें खोलकर अपने सम्मुख प्रत्यक्ष अपने अभीष्ट देवको देखा। गद्गद-स्वरसे यक्षने कहा कि 'हे शम्भो ! हे पार्वतीपते ! हे शंकर ! आपकी जय हो। कृपालो ! आपके कर-कमलोंका स्पर्श पाकर मेरा यह शरीर अमृतस्वरूप हो गया।' इस प्रकार प्रिय वचन सुनकर आशुतोष भगवान् बोले—'हे यक्ष ! तुम इसी क्षण मेरे वरसे मेरे क्षेत्रके दण्डनायक हो जाओ। आजसे तुम दुष्टोंके दण्डदायक और पुण्यवानोंके सहायक बनो[1] और दण्डपाणि नामसे विख्यात होकर सब उद्भट गणोंका नियन्त्रण करो। मनुष्योंमें सत्य अर्थ नामवाले सम्भ्रम और उद्भ्रम—ये दोनों गण सदा तुम्हारे साथ रहेंगे। तुम काशीवासीजनोंके अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता होओ और मेरे मुखसे निकले तारकमन्त्रके उपदेशसे मोक्षदाता होकर नियमितरूपसे काशीमें निवास करो[2]।'

भगवान्‌की कृपासे वही हरिकेश यक्ष काशीमें दण्डपाणिके रूपमें स्थित हो गये और भक्तोंके कल्याणमें लग गये।

भक्त किरात और नन्दी वैश्य

प्राचीन कालमें नन्दी नामक वैश्य अपनी नगरीके एक धनी-मानी और प्रतिष्ठित पुरुष थे। वे बड़े सदाचारी और वर्णाश्रमोचित धर्मका दृढ़तासे पालन करते थे। प्रतिदिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करनेका तो उन्होंने नियम ही ले रखा था। जिस मन्दिरमें नन्दी वैश्य पूजा करते थे, वह बस्तीसे कुछ दूर जंगलमें था। एक दिनकी बात है कि कोई किरात शिकार खेलता हुआ उधरसे निकला। वह प्राणियोंकी हिंसा करता था, उसकी बुद्धि जडप्राय थी, उसमें विवेकका लेश भी नहीं था। दोपहरका समय था, वह भूख-प्याससे व्याकुल हो रहा था। मन्दिरके पास आकर वहाँके सरोवरमें उसने स्नान किया और जलपान करके अपनी प्यास बुझायी। जब वह वहाँसे लौटने लगा, तब उसकी दृष्टि मन्दिरपर पड़ी और उसके मनमें यह इच्छा हुई कि मन्दिरमें चलकर भगवान्‌का दर्शन कर लूँ। उसने मन्दिरमें जाकर भगवान् शंकरका दर्शन किया और अपनी बुद्धिके अनुसार उनकी पूजा की।

उसने कैसी पूजा की होगी, इसका अनुमान सहज ही है। उसने एक हाथसे बिल्वपत्र तोड़ा, दूसरे हाथमें मांस पहलेसे ही था। गण्डूष-जलसे स्नान कराकर उसने बिल्वपत्र और मांस चढ़ा दिया। भील मांसभोजी था। उसको इस बातका पता नहीं था कि देवताको मांस नहीं चढ़ाना चाहिये। यही काम यदि कोई जान-बूझकर करे तो वह दोषका भागी होता है। परंतु उसने तो भावसे, अपनी शक्ति और ज्ञानके अनुसार पूजा की थी। बड़ा आनन्द हुआ उसे, प्रेममुग्ध होकर वह शिवलिङ्गके सम्मुख साष्टाङ्ग दण्डवत् करने लगा। उसने दृढ़तासे यह निश्चय किया कि आजसे मैं प्रतिदिन भगवान् शंकरकी पूजा करूँगा। उसका यह निश्चय अविचल था, क्योंकि यह उसके गम्भीर अन्तस्तलकी प्रेरणा थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल नन्दी वैश्य पूजा करने आये। मन्दिरकी स्थिति देखकर वे अवाक् रह गये। कलकी पूजा इधर-उधर बिखरी पड़ी थी। मांसके टुकड़े भी इधर-उधर पड़े थे। उन्होंने सोचा—'यह क्या हुआ ? मेरी पूजामें ही कोई त्रुटि हुई होगी, जिसका यह फल है। इस प्रकार मन्दिरको भ्रष्ट करनेवाला विघ्न तो कभी नहीं हुआ था। अवश्य ही यह मेरा दुर्भाग्य है।' यही सब सोचते हुए उन्होंने मन्दिर साफ किया और पुनः स्नानादि करके भगवान्‌की पूजा की। घर लौटकर उन्होंने पुरोहितसे सारा समाचार कह सुनाया और बड़ी चिन्ता प्रकट की। पुरोहितको क्या पता था कि इस काममें भी

[2] है। दोनों ओर सम्भ्रम, उद्भ्रम—ये दो गण खड़े हैं और

किसीका भक्ति-भाव हो सकता है। उन्होंने कहा—'अवश्य ही यह किसी मूर्खका काम है, नहीं तो रत्नोंको इधर-उधर बिखेरकर भला कोई मन्दिरको अपवित्र एवं भ्रष्ट क्यों करता। चलो, कल हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे और देखेंगे कि कौन दुष्ट ऐसा काम करता है।' नन्दी वैश्यने बड़े दुःखसे वह रात्रि व्यतीत की।

प्रातःकाल होते-न-होते नन्दी वैश्य अपने पुरोहितको साथ लेकर शिव-मन्दिर पहुँच गये। देखा वही हालत आज भी थी, जो कल थी। वहाँ मार्जन आदि करके नन्दीने शिवजीकी पञ्चोपचार पूजा की और रुद्राभिषेक किया। ब्राह्मण स्तुति-पाठ करने लगे। वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे वह जगल गूँज उठा। सबकी आँख लगी हुई थी कि देखें मन्दिरको भ्रष्ट करनेवाला कब किधरसे आता है।

दोपहरके समय किरात आया। उसकी आकृति बड़ी भयंकर थी। हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए था। शंकर-भगवान्की कुछ ऐसी लीला ही थी कि किरातको देखकर सब-के-सब डर गये और एक कोनेमें जा छिपे। उनके देखते-देखते किरातने उनकी की हुई पूजा नष्ट-भ्रष्ट कर दी एवं गण्डूष-जलसे स्नान कराकर बिल्वपत्र और मांस चढ़ाया। जब वह साष्टाङ्ग प्रणाम करके चला गया, तब नन्दी वैश्य और ब्राह्मणोंके जी-में-जी आया और सब बस्तीमें लौट आये। नन्दीको व्यवस्था मिली कि उस लिङ्गमूर्तिको ही अपने घर ले आना चाहिये। व्यवस्थाके अनुसार शिवलिङ्ग वहाँसे उखाड़ लाया गया और नन्दी वैश्यके घर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की गयी। उनके घर सोने और मणिरत्नोंकी कमी तो थी ही नहीं, संकोच छोड़कर उनका उपयोग किया गया, परंतु भगवान्को धन-सम्पत्तिके अतिरिक्त कुछ और भी चाहिये।

प्रतिदिनके नियमानुसार किरात अपने समयपर भगवान् शंकरकी पूजा करने आया, परंतु मूर्तिको न पाकर सोचने लगा—'यह क्या, भगवान् तो आज हैं ही नहीं! मन्दिरका एक-एक कोना छान डाला, एक-एक छिद्रको उसने ध्यान-पूर्वक देखा, परंतु सब व्यर्थ! उसके भगवान् उसे नहीं मिले। किरातकी दृष्टिमें वह मूर्ति नहीं थी, स्वयं भगवान् थे। अपने प्राणोंके लिये वह भगवान्की पूजा नहीं करता था, किंतु उसने अपने प्राणोंको उनपर निछावर कर रखा था। अपने जीवन-सर्वस्व प्रभुको न पाकर वह विह्वल हो गया और बड़े आर्त-स्वरसे पुकारने लगा—'महादेव! शम्भो! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गये? प्रभो! अब एक क्षणका भी विलम्ब सहन नहीं होता। मेरे प्राण तड़फड़ा रहे हैं, छाती फटी जा रही है, आँखोंमें कुछ सूझता नहीं। मेरी करुण पुकार सुनो, मुझे जीवनदान दो। अपने दर्शनसे मेरी आँखें तृप्त करो। जगन्नाथ! त्रिपुरान्तक! यदि तुम्हारे दर्शन नहीं होंगे तो मैं जीकर क्या करूँगा? मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ और सच कहता हूँ, तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता।' इस प्रकार प्रार्थना करते-करते किरातकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा अविरल-रूपसे बहने लगी। वह विकल हो गया, अपने हाथोंको पटकने तथा शरीरको पीटने लगा। उसने कहा—'अपनी जानमें मैंने कोई अपराध नहीं किया है, फिर क्या कारण है कि तुम चले गये? अच्छा, यही सही, मैं तो तुम्हारी पूजा करूँगा ही।' किरातने अपने हाथसे शरीरका बहुत-सा मांस काटकर उस स्थानपर रखा, जहाँ पहले शिवलिङ्ग था। स्वस्थ हृदयसे, क्योंकि अब उसने प्राणत्यागका निश्चय कर लिया था, सरोवरमें स्नान करके सदाकी भाँति पूजा की और साष्टाङ्ग प्रणाम कर ध्यान करने बैठ गया।

किरातके चित्तमें अब एक भी वासना अवशेष न थी, वह केवल भगवान्का दर्शन चाहता था। ध्यान अथवा मृत्यु यही उसकी साधना थी। यही कारण है कि बिना किसी विक्षेपके उसने लक्ष्य वेध कर लिया और उसका चित्त भगवान्के लीलालोकमें विचरण करने लगा। उसकी अन्तर्दृष्टि भगवान्के कर्पूरोज्ज्वल, भस्मभूषित, गङ्गा-तरङ्ग-रमणीय जटाकलापसे शोभित एवं सर्प-परिवेष्टित अङ्गोंकी सौन्दर्य-सुधाका पान करने लगी और वह उनकी लीलामें सम्मिलित होकर विविध प्रकारसे उनकी सेवा करने लगा। उसे बाह्यजगत्, शरीर अथवा अपने-आपकी सुध नहीं थी, वह केवल अन्तर्जगत्‌की अमृतमयी सुरभिसे छक रहा था। बाहरसे देखनेपर उसका शरीर रोमाञ्चित था, आँखोंसे आँसुकी बूँदें ढुलक रही थीं, रोम-रोमसे आनन्दकी धारा फूटी पड़ती थी। उस क्रूरकर्मा किरातके अन्तरात्मामें इतना माधुर्य कहाँ सो रहा था, उसे कौन जान सकता है।

किरातकी तन्मयता देखकर शिवजीने अपनी

समाधि भङ्ग की। वे उसके चर्मचक्षुओंके सामने प्रकट हो गये। उनके ललाट-देश-स्थित चन्द्रने अपनी सुधामयी रश्मियोंसे किरातकी काया उज्ज्वल कर दी। उसके शरीरका अणु-अणु बदलकर अमृतमय हो गया, परंतु उसकी समाधि ज्यों-की-त्यों थी। भगवान्ने मानो अपनी अनुपस्थितिके दोषका परिमार्जन करते हुए किरातसे कहा—'महाप्राज्ञ ! वीर ! मैं तुम्हारे भक्तिभाव एवं प्रेमका ऋणी हूँ, तुम्हारी जो बड़ी-से-बड़ी अभिलाषा हो, वह मुझसे कहो, मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ।' भगवान्की वाणी और संकल्पने किरातको बाहर देखनेके लिये विवश किया। परंतु जब उसने जाना कि मैं जो भीतर देख रहा था, वही बाहर भी है, तब तो उसकी प्रेमभक्ति पराकाष्ठाको पहुँच गयी और वह सर्वाङ्गसे नमस्कार करता हुआ श्रीभगवान्के चरणोंमें लोट गया। भगवान्के प्रेमपूर्वक उठानेपर और प्रेरणा करनेपर उसने प्रार्थना की—'भगवन्! मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम मेरे स्वामी हो। मेरा यह भाव सर्वदा बना रहे और मुझे चाहे जितनी बार जन्म लेना पड़े मैं तुम्हारी सेवामें संलग्न रहूँ। प्रतिक्षण मेरे हृदयमें तुम्हारा प्रेम बढ़ता ही रहे। प्रभो ! तुम्हीं मेरी दयामयी मा हो और तुम्हीं मेरे न्यायशील पिता हो। मेरे सहायक बन्धु और प्राणप्रिय सखा भी तुम्हीं हो। मेरे गुरुदेव, मेरे इष्टदेव और मेरे मन्त्र भी तुम्हीं हो। तुम्हारे अतिरिक्त तीनो लोकोंमें और कुछ नहीं है और तीनों लोक भी कुछ नहीं हैं, केवल तुम्हीं हो।' किरातकी निष्काम प्रेमपूर्ण प्रार्थना सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सदाके लिये उसे अपना पार्षद बना लिया। उसे पार्षदरूपमें प्राप्त करके भगवान् शंकरको बड़ा आनन्द हुआ और वे अपने उल्लासको प्रकट करनेके लिये डमरू बजाने लगे।

भगवान्के डमरूके साथ ही तीनों लोकोंमें भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग और नगारे बजने लगे। सर्वत्र 'जय-जय' की ध्वनि होने लगी। शिवभक्तोंके चित्तमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। यह आनन्द-कोलाहल तत्क्षण नन्दी वैश्यके घर पहुँच गया। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अविलम्ब वहाँ पहुँचे। किरातके भक्तिभाव और भगवत्प्रसादको देखकर उनका हृदय गद्गद हो गया और जो कुछ अज्ञानरूप मल था उनके चित्तमें कि 'भगवान् धन आदिसे प्राप्त हो सकते हैं' वह सब धुल गया। वे मुग्ध होकर किरातकी स्तुति करने लगे—'हे तपस्वी ! तुम भगवान्के परम भक्त हो, तुम्हारी भक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् यहाँ प्रकट हुए हैं। मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। अब तुम्हीं मुझे भगवान्के चरणोंमें अर्पित करो।' नन्दीकी बातसे किरातको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होने तत्क्षण नन्दीका हाथ पकड़कर भगवान्के चरणोंमें उपस्थित किया। उस समय भोले -बाबा सचमुच भोले बन गये। उन्होंने किरातसे पूछा—'ये कौन सज्जन हैं ? मेरे गणोमे इन्हें लानेकी क्या आवश्यकता थी ?' किरातने कहा—'प्रभो ! ये आपके सेवक हैं, प्रतिदिन रत्न-माणिक्यसे आपकी पूजा करते थे। आप इनको पहचानिये और स्वीकार कीजिये।' शंकरने हँसते हुए कहा—'मुझे तो इनकी बहुत कम याद पड़ती है। तुम तो मेरे प्रेमी हो, सखा हो, परंतु ये कौन हैं ? देखो भाई ! जो निष्काम हैं, निष्कपट हैं और हृदयसे मेरा स्मरण करते हैं, वे ही मुझे प्यारे हैं, मैं उन्हींको पहचानता हूँ।' किरातने प्रार्थना की—'भगवन् ! मैं आपका भक्त हूँ और यह मेरा प्रेमी है। आपने मुझे स्वीकार किया और मैंने इसे, हम दोनों ही आपके पार्षद हैं।' अब तो भगवान् शंकरको बोलनेके लिये कोई स्थान ही नहीं था। भक्तकी स्वीकृति भगवान्की स्वीकृतिसे बढ़कर होती है। किरातके मुखसे यह बात निकलते ही सारे संसारमें फैल गयी। लोग शत-शत मुखसे प्रशंसा करने लगे कि किरातने नन्दी वैश्यका उद्धार कर दिया।

उसी समय बहुत-से ज्योतिर्मय विमान वहाँ आ गये। भगवान् शंकरका सारूप्य प्राप्त करके दोनों भक्त उनके साथ कैलास गये और मा पार्वतीके द्वारा सत्कृत होकर वहीं निवास करने लगे। ये ही दोनों भक्त भगवान् शंकरके गणोंमें 'नन्दी' और 'महाकाल'के नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार नन्दीकी भक्तिके द्वारा किरातकी भक्तिको उत्तेजित करके और किरातकी भक्तिके द्वारा नन्दीकी भक्तिको पूर्ण करके आशुतोष भगवान् शंकरने दोनोंको स्वरूप-दान किया और कृतकृत्य बनाया।
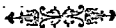
राजा वज्राङ्गदपर भगवान् अरुणाचलेश्वरका अनुग्रह

पाण्ड्यदेशमें वज्राङ्गद नामके एक प्रसिद्ध राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा, न्यायवेत्ता, शिवपूजापरायण, जितेन्द्रिय, उदार, क्षमाशील और पुण्यात्मा थे। एक दिन घोड़ेपर सवार होकर वे शिकार खेलनेके लिये अरुणाचलके दुर्गम वनमें गये। उन्होंने वहाँ किसी कस्तूरीमृगको देखा, जिसके शरीरसे सब ओर बहुत सुगन्ध फैल रही थी। उसे देखते ही राजाने कौतूहलवश उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया। मृग तीव्रगतिसे भागा और अरुणाचल पर्वतके चारों ओर चक्कर लगाने लगा। राजा भी उसके पीछे-पीछे चक्कर लगाने लगे, किंतु थक जानेके कारण कान्तिहीन होकर वे घोड़ेसे गिर पड़े। उस समय मध्याह्नकालीन सूर्यके प्रखर तापसे उन्हें अत्यन्त पीड़ा हुई। वे क्षणभरके लिये स्वयंकी सुध-बुध खो बैठे। कुछ देरमें जब कुछ स्वस्थ हुए तब उन्होंने सोचा—'मेरी शक्ति और धैर्यका अकारण ह्रास कैसे हो गया? वह हृष्ट-पुष्ट मृग मेरी आँखोंसे कहाँ ओझल हो गया?'

राजा जब इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल और अज्ञानसे दुखी हो रहे थे, उसी समय आकाश सहसा विद्युत्पुञ्जसे व्याप्त-सा दिखायी दिया। उनके देखते-देखते उनके घोड़े और उस मृगने पशुयोनिका शरीर त्यागकर क्षणभरमें आकाशचारी दिव्य विद्याधरोंका रूप धारण कर लिया।

यह सब देखकर राजा विस्मित हो उठे। वे दोनों विद्याधर बोले—'राजन्! विषाद करनेकी आवश्यकता नहीं। हम दोनों भगवान् अरुणाचलेश्वरके प्रभावसे इस उत्तम दशाको प्राप्त हुए हैं।' उनकी इस बातसे राजाको कुछ आश्वासन मिला। तब उन्होंने हाथ जोड़कर उन दोनोंसे विनयपूर्वक पूछा—'भगवन्! आप दोनों कौन हैं? मेरा यह पराभव किस कारणसे हुआ है?'

राजाके ऐसा प्रश्न करनेपर उनमेंसे कलाधर नामक विद्याधरने कहा—'राजन्! हम दोनों पहले विद्याधरोंके राजा थे और हम दोनोंमें आपसमें बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। एक दिन हम दोनों मेरुगिरिके पार्श्व-भागमें दुर्वासा मुनिके तपोवनमें जा पहुँचे। वहाँ भाँति-भाँतिके अति सुन्दर पुष्प खिले हुए थे। वे पुष्प शिवाराधनाके कार्यमें प्रयुक्त होते थे। उन्हें देखकर हमारा मन ललचा उठा और हम दोनोंने पुष्प तोड़ना चाहा। महर्षि दुर्वासाकी वह पुष्पवाटिका हमलोगोंके पाद-संचरण एवं इधर-उधर भ्रमण करनेसे कुम्हलाने-सी लगी। उसी समय बिल्ववृक्षके नीचे व्याघ्रचर्मके आसनपर बैठे हुए दुर्वासा मुनि क्रुद्ध हो उठे और हमें शाप देते हुए

बोले—'ओ पापियो! तुम लोगोंने सदाचारका उल्लङ्घन किया है और अत्यन्त अहंकारमें भरकर तुम मेरे इस पवित्र तपोवनमें विचर रहे हो। मेरा यह उद्यान सब प्राणियोंका पोषण करनेवाला है। इसे अपने चरणोंके प्रहारसे दूषित करनेवाला यह पापी संसारमे घोड़ा हो जाय तथा दूसरोंकी सवारी ढोनेके कारण कष्ट उठाता रहे और दूसरा जो यह अत्यन्त उग्र स्वभाववाला है, फूलोंकी सुगन्धके प्रति लोभ रखकर आया है, इसलिये कस्तूरीमृग होकर पर्वतकी कन्दरामें गिरे।'

इस प्रकार दुर्वासा मुनिका शाप प्राप्त होनेपर तत्क्षण हमारा गर्व गल गया और हम मुनिके चरणोंमें गिर पड़े। हमने प्रार्थना की—'भगवन्! आपका यह शाप तो अमोघ है, किंतु यह बतानेकी कृपा करें कि इसका अन्त कब होगा?' हम दोनोंको अत्यन्त दीन और दुखी देखकर मुनिके हृदयमें दयाका संचार हो आया और वे बोले—'अरुणाचलकी परिक्रमा करनेसे तुम्हारे इस शापका निवारण होगा। अरुणाचल साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है। जो पुरुष इस पर्वतको अपने दाहिने रखकर इसके चतुर्दिक् प्रदक्षिणा करता है, वह चक्रवर्ती

नहीं है। महाकवि पुरुषार्थचतुष्टयके प्रतिपादक अवश्य हैं, किंतु 'अर्थ एवं काम' को आवश्यकतासे अधिक महत्त्व प्रदान करनेके वे कभी पक्षधर नहीं हैं।

कविने इस तथ्यको भी उजागर किया है कि बिना तपस्याके प्रेम कभी परिनिष्ठित नहीं होता। कुमारसम्भवके पञ्चम सर्गमें पार्वतीकी कठोर तपस्याका अत्यन्त उदात्त वर्णन है। उसी तपके बलपर ही पार्वतीको भगवान् शिवकी प्राप्ति हुई। बिना अपना शरीर तपाये धर्मकी भावना उत्पन्न नहीं होती। जगज्जननी पार्वतीने भी घोर तपस्या करके ही अपना अभीष्ट प्राप्त किया। समग्र लोकके मङ्गलका भाव इसी तपमें समाहित है।

महाकवि कालिदासकृत 'मेघदूत' का गीतिकाव्यके रूपमें भारतीय साहित्यमे विशिष्ट स्थान है। यह गीतिकाव्य धनपति कुबेरके द्वारा दण्डित अपने भृत्य—एक यक्षके वर्षभरके लिये निर्वासित जीवनका अभिलेख मात्र नहीं है, प्रत्युत यह तो भगवान् चन्द्रशेखरकी महिमासे ओतप्रोत गीतिमय काव्यरचना है। इस गीतिकाव्यमें महाकविने भगवान् शिवकी महिमाका पुष्कल गान किया है और इस प्रकार उनके प्रति अपना प्रणतिभाव व्यक्त किया है।

मेघदूतमें मेघके माध्यमसे कालिदासने भगवान् शिवके चरणोंमें अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा उड़ेल दी है। उज्जयिनीमें भगवान् महाकालकी साध्य-अर्चनाके समय अपनी सेवाञ्जलि अर्पित करनेका वे मेघसे अनुरोध करते हैं। यहाँ मेघके माध्यमसे भगवान् शिवके प्रति कविने अपना ही श्रद्धान्वित भक्तिभाव व्यक्त किया है।

भगवान् त्रिलोचनका वाहन वृष है अर्थात् वे वृषको अपने वशमें करके उसपर आसीन होते हैं। वृष कामका प्रतीक है। इसके द्वारा कविका संकेत है कि 'काम' भगवान् शिवके वशीभूत है। इसीलिये मेघदूतमें काम शिवके प्रदेशमें प्रवेश करनेका साहस नहीं करता। वह वहाँ चाप चढ़ानेमें भी डरता है।

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद् वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।

(उत्तरमेघ १०)

मेघ इच्छाचारी है। आकाशमें वह स्वेच्छासे विचरण करता है। इसीलिये कालिदासने मेघको कामरूप प्रकृति-पुरुष कहा है—

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।

(पूर्वमेघ—६)

अतः यक्ष कामरूप मेघसे उस अलका नगरीको जानेका अनुरोध करता है, जिसके महल उस नगरीके बाहरी उद्यानमें विराजमान भगवान् चन्द्रमौलिके मस्तकपर सुशोभित चन्द्रकी विच्छुरित चन्द्रिकासे धवलित हैं। यहाँ महाकविका संकेत है कि काम-तत्त्वको अपने कल्याणके लिये शिवके सांनिध्यमें निगृहीतभावसे रहना ही श्रेयस्कर है। मेघदूत काव्य शिवात्मक चैतन्यकी प्राप्तिका संकेत देता है। इस प्रकार महाकविने 'मेघदूत'के समग्र परिवेशको भगवान् शिवकी महिमासे सम्पृक्त निरूपित किया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटकमें महाकवि कालिदासने वासनाजन्य प्रेमको नकारा है और केवल उसी प्रेमको स्वीकृति प्रदान की है जो अनुतापकी अग्निमें निरन्तर तपकर अन्तमें कुन्दनकी भाँति खरा, पवित्र और दिव्य प्रमाणित होता है। भगवान् शिवकी महिमाका गान नाटकके प्रारम्भमें ही महाकविने किया है—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

कालिदासने नाटककी नान्दीमें भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका उल्लेख किया है। ये अष्ट मूर्तियाँ हैं—सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। महाकविने इन अष्टमूर्तियोंके लिये 'प्रत्यक्षाभिः' यह पद प्रयुक्त किया है अर्थात् ये आठ मूर्तियाँ संसारमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती हैं। इससे कालिदासका संकेत है कि इन प्रत्यक्ष मूर्तियोंको धारण करनेवाले इस जगत्के नियामककी सत्ता संदेहसे परे है। बल्कि सत्य तो यह है कि विश्वका प्रत्येक कण उनकी सत्ताको व्यक्त करता है।

तत्त्वज्ञ होनेके कारण उन्होंने भगवान् शिवसे कभी अर्थ-कामकी लालसा नहीं की, अपितु शिवसायुज्य या कैवल्यकी ही कामना करते रहे। वे भगवान् नीललोहितसे किसी सांसारिक वस्तुकी याचना न करते हुए उनसे जन्म-मरणके

चक्रसे मुक्ति प्रदान करने-हेतु विनय करते हैं—

ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ।

मालविकाग्निमित्र नाटककी नान्दीमें उन्होंने सामाजिकोंके लिये भगवान्से प्रार्थना की है कि वे उनकी तामसी वृत्तिका शमन करें ताकि उन सबकी सन्मार्गमें प्रवृत्ति हो।

सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय नाटककी नान्दीमें उन्होंने स्थिर-भक्तियोगसे सुलभ भगवान् शंकरसे सभीको निःश्रेयस प्रदान करनेकी प्रार्थना की है।

स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः ॥

महाकविकी यह विशेषता है कि उनकी आराधनामें व्यापक लोकमङ्गलकी कामना निहित रहती है। वे भगवान् शिवसे सदा जनकल्याणकी ही याचना करते रहे और यही उनके शिवके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान तथा उनकी यथार्थ शिवोपासना है। यही भारतीय धर्म और दर्शनका अन्तिम लक्ष्य भी है।

शिवयोगिनी लल्लेश्वरी

(श्रीजानकीनाथजी कौल 'कमल')

रमणीय कश्मीर-क्षेत्र प्राचीन कालसे ही ऋषि-मुनियों, सूफियों एवं विद्वानोंकी निवास-भूमि रहा है। चौदहवीं शताब्दीमें श्रीनगरके समीपवर्ती सिंपुर नामक ग्राममें देवी लल्लेश्वरीका प्रादुर्भाव हुआ था। उन्होंने आत्मतत्त्वके विवेचन-माधुर्यसे कश्मीरको ही नहीं, एशियाके बहुत बड़े भूभाग—अरब, फारस आदि देशोंको भी अलंकृत किया। देवी लल्लेश्वरीने आत्माके स्तरपर शिवकी उपासना की। वे मूलरूपसे सत्यके शिवरूपकी गायिका तथा परम्परागत शैवमतके तन्त्रयोगकी साधिका थीं। उनका जीवन पवित्र और सर्वथा आनन्दमय था, रसमय था। उन्होंने काश्मीरी भाषामें कहे अपने 'वाख' अर्थात् श्लोकोंद्वारा दैवी प्रकाशन करके संसारको चमत्कृत कर दिया।

लल्लेश्वरी एक योगिनी थीं, जो कल्याणमय परमशिवकी दिव्यताके साथ एकाकार रहती थीं। उन्होंने अपने गुरु श्रीकण्ठके विषयमें कहा है—

'मेरे गुरुने एक ही मन्त्र दिया, जिससे मैं बहिर्मुखतासे उपरत हो गयी, और मैंने अन्तर्मुख हो स्वरूपको पहचाना।' (अनुवाद)

उनके बहुमूल्य पद्योंका आरम्भ प्रायः ओम् अक्षरद्वारा उस गुप्ततत्त्वकी स्तुतिसे होता है, जिसको परमशिवके नामसे अभिहित किया गया है। वे कहती हैं—

'ओम् ही आद्य मन्त्र है जिसका मैंने गुरु-मुखसे श्रवण किया, उसीका मनन और निदिध्यासन किया। इस प्रकार अनित्यका त्याग और नित्य-वस्तुका ग्रहण कर, मैं लल्ला उस असीम सौन्दर्यकी एकताको पा गयी।' (अनुवाद)

कश्मीरके संत-साहित्यमें लल-द्यद (लल्लेश्वरी) का नाम अग्रगण्य है। उनका उत्कृष्ट संत-जीवन उनके 'वाख' (पद्यमय वाक्य) में प्रस्फुटित मिलता है। उनका साधना-पथ अत्यन्त उच्च कोटिका था। इस पथपर दृढ़तापूर्वक चलते हुए उनको जो विचित्र अनुभव होते रहे, उनसे उनके हृदयका प्याला भरकर छलकने लगता था, वही छलकन 'वाख' के रूपमें प्रसिद्ध हुई। शिव-भक्त उत्पलदेव और ज्ञानी भक्त कबीरकी भाँति लल-द्यदने अपने 'वाख' लिखे नहीं बल्कि ये पद्य जब उनके मुखसे निकलते तो सजग जन उन्हें गाते। इस प्रकार ये 'वाख' मौखिक रूपसे ही परम्परागत चलते आये।[1]

लल्लेश्वरी (लल-द्यद) ने अपने जीवनकी कठिनाइयोंको पार करके उत्कृष्ट सत्यको पा लिया था। जब वे बारह

१-बीसवीं शताब्दीके द्वितीय दशकमें जम्मू-कश्मीर राजकीय शोध कार्यालयके विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित मुकुन्दराम शास्त्रीने कश्मीरके 'हन्दवोर' प्रान्तके 'घुस' ग्रामके निवासी धर्मदास दर्वेशसे कुछ 'वाख' सुनकर लिपिबद्ध किये। उक्त महोदयके लिखे साठ 'वाख' विदेशी शोधकर्ता सर जॉर्ज ग्रियरसनकी पुस्तक 'लल्लवाक्यानि' का आधार बन गये। तदनन्तर इन साठ वाखोंका अनुवाद राजानक भास्करने संस्कृत श्लोकोंमें किया, जो जे० एण्ड के० शोध-कार्यालयद्वारा छापे गये थे। ये श्लोक विद्वानोंको रसमुग्ध कर देते हैं।

सालकी थीं तब उनका विवाह कर दिया गया। उनका ससुरालका जीवन अत्यन्त कष्टप्रद था। सौतेली सासने उनको सताना प्रारम्भ किया। उनके भोजनके कटोरेमें एक पत्थर टिकाकर ऊपरसे पके चावल रख दिये जाते थे, ताकि भोजनका बड़ा पिण्ड दिखायी दे। परंतु वे अपने असाधारण धैर्य, आत्मसंयम और तपस्याके बलसे उस निर्दय व्यवहारको सहन कर लेती थीं। क्षमाशीला लल्लेश्वरीने विरोधमें कभी एक शब्द भी नहीं कहा। भोग और तृष्णासे दूर रहकर उन्होंने ईश्वर-चिन्तन और पूजनको ही अपना सर्वस्व माना। दैववश जिन लोगोंके साथ लल-द्यदके रहन-सहनका सम्बन्ध हुआ था, वे उसे गलत समझने लगे। अतः उसके प्रति 'जादूगरनी है' आदि अनेक अपवाद फैल गये। परंतु देवी लल्लेश्वरीने बिना किसी प्रतिवादके सभी विघ्नोंको धैर्यके साथ सहन किया। वे सहनशीलताकी मूर्ति थीं। अपने परमार्थ-पथपर निरन्तर चलती रहीं और अन्तमें उन्होंने परमशिवके अक्षय पदको प्राप्त किया।

लल्ल-योगिनीने हमें मायाके जालमें फँसने और संसारके बन्धनोंमें जकड़े जानेके भयसे बार-बार सतर्क किया है। उन्होंने सिर्फ उपदेश ही नहीं दिया, अपितु अपने सिद्धान्तोंको स्वयं अपने ही जीवनमें क्रियान्वित करके भी दिखलाया। वे गलियोंमें घूम-घूमकर शिव-सम्बन्धी गीत गाती रहतीं, लोग पगली समझकर परिहास करते, पत्थर फेंकते, पर वे तो शिव-तत्त्वकी मधुर साधनामें मस्त रहतीं। उनका द्वैतभाव मिट गया था। उनका कहना था—

'जो मनुष्य 'शिव-शिव' यह पवित्र मन्त्र जपते हुए हंसगतिका स्मरण रखे और व्यवहारी होकर भी दिनभर कार्यरत रहे, किंतु राग-रहित मनसे अद्वय-शिवकी शरण ले, उसीपर देवाधिदेव शिव प्रसन्न रहते हैं।' (अनुवाद)

लल्लेश्वरीको तन्त्रशास्त्रका पूर्ण ज्ञान था। उनमें षट्-चक्र-भेदन अर्थात् मानव-शरीरमें विश्व-शक्तिके छः केन्द्रोंका उद्घाटन करनेके अभ्यासकी अपूर्व क्षमता थी। वे लययोगमें निष्णात थीं। किसी भी प्रकारसे परमेश्वरका साक्षात्कार अपनेमें ही करनेके लिये इस जीवनको उपाय बनानेका वे निश्चय कर चुकी थीं और अपनी साधनासे वे उसमें पूर्णतः सफल भी हुईं।

एक बार लल्लेश्वरी अपने गुरु सिद्ध श्रीकण्ठ (स्वद्यमोल) के घर गयीं। वहाँ जब गुरुदेवसे भेंट हुई तो उन्होंने पूछा—'लल्ली! जरा बताओ, तुम किस सीमातक ईश्वरभावमें लीन हो सकती हो?' तब शिष्याने मिट्टीके बने दो पात्र (ढक्कन) लिये। गुरुदेवको एक निर्जन, पवित्र एवं गुप्त स्थानमें साथ लेकर वे एक पात्रपर स्वयं खड़ी हो गयीं और दूसरा पात्र अपने सिरपर उलटा रख लिया। फिर वे परमतत्त्वका ध्यान करने लगीं। धीरे-धीरे उनका शरीर तबतक पिघलता गया जबतक ऊपरका पात्र नीचेके पात्रपर पूरा बैठ नहीं गया। लल्लेश्वरीने अपने पाञ्चभौतिक शरीरको परमशिवके तत्त्वमें लीन कर लिया था। यह रहस्य-प्रदर्शन कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक हुआ था। जब गुरुदेवने अमावास्याके दिन ऊपरके पात्रको धीरेसे उठाया तो आश्चर्यचकित होकर देखा कि निचले पात्रमें पारेके बिन्दुके समान ज्योतिर्मय प्रकाश विद्यमान था। यह अद्भुत प्रभाव देखकर उन्होंने ढक्कनसे उसे फिर आवृत कर दिया। तदनन्तर लल्लेश्वरीके पूर्वकथनके अनुसार वे पुनः पूर्णिमाके दिन उस गुप्त स्थानमें गये और उन्होंने देखा कि लल्लेश्वरी स्थूल शरीरको धारण कर दो मिट्टीके पात्रोंके बीच पहलेकी तरह खड़ी थीं। गुरुदेवकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। ऐसे अनेक रहस्यमय चमत्कार उनके जीवनमें होते रहे, पर लल्लेश्वरीकी इन सबपर उपेक्षापूर्ण दृष्टि थी। वे तो बस, आत्मानन्दकी साधनामें रत रहती थीं। उन्होंने अपने उपदेशमें कहा कि अपने मनसे अज्ञानरूपी अन्धकार हटानेका प्रयत्न करना चाहिये, अपनी आत्माके उद्धारका प्रयास करते रहना चाहिये, क्योंकि अन्तमें अपनी करनीका हिसाब चुकाना ही पड़ता है।

लल-द्यद कश्मीरी हिन्दू ब्राह्मण महिला थीं। वे परम्परागत साधनामें लीन होकर अपने व्यक्तिगत अनुभवमें ईश्वर-प्रेमके गीत गाती रहीं, जिससे उनके आनन्द-उद्यानकी यात्रा सफल हुई। उनकी इस यात्रामें धार्मिक विभेद दीवार बन नहीं पाये थे। मुसलमान लोग उन्हें 'लल्ल आरिफा' के नामसे अभिहित करते रहे हैं। देश-विदेशके हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई विद्वानों तथा विचारशील संतोंने उनके 'वाख' (वाक्-अमृत) का अध्ययन कर उस परम योगिनीके प्रति श्रद्धा और विश्वास प्रकट किया है। किसीने उनका अनुवाद किया तो किसीने इनपर

प्रशंसापूर्ण लेख लिखे हैं। विश्वकी प्रधान भाषाओंमें ये अनुवाद और लेख मिलते भी हैं। कई लोगोंकी धारणा है कि लल्लेश्वरी कश्मीर शैवमतकी ही अनुयायी थीं, परंतु उनके 'वाख' का सावधानीसे अनुशीलन करनेपर ज्ञात होता है कि वे उपनिषद्-विचारोंसे भी पूर्णतः प्रभावित थीं। 'ओम्'का उन्होंने पूर्ण अवगाहन किया था। तत्कालीन सूफी प्रभावकी झलक भी उनमें मिलती है। वे वास्तविक सत्ताका ज्ञान प्राप्तकर उसीमें लीन होना चाहती थीं।

लल्लेश्वरीको परमशिव-तत्त्वसे एकाकार हुए सैकड़ों वर्ष हो गये हैं, फिर भी कश्मीरकी रमणीय सुषमामें प्रकृति-प्रदत्त सौन्दर्यके कण-कणमें उनकी मधुर वाणी बसी हुई है। उन्होंने सत्यके सौन्दर्यका शिवरूपमें दर्शन किया। यही उनकी शिव-उपासना अथवा आत्मानन्द-साधना है।

विद्यापतिपर शिवकृपा

(डॉ॰ श्रीश्रीनिवासजी शर्मा, एम्॰ ए॰ (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच्॰ डी॰)

प्रसिद्ध मैथिल कवि श्रीविद्यापति शिवके परम भक्त थे। इनका जन्म मैथिल ब्राह्मण-कुलमें सं॰ १४०७ के लगभग हुआ था। आप संस्कृतके महान् विद्वान् और कवि थे। आपकी मौलिक भाषामें उपनिबद्ध कविताएँ बड़ी उच्चकोटिकी हैं। प्रायः इनकी कविताएँ 'पदावली' नामसे जानी जाती हैं। परम शिवभक्त होनेपर भी आपकी दृष्टि अभेद-भावापन्न थी। आपने श्रीराधा-कृष्ण तथा श्रीसीता-रामपर भी अनेक कविताएँ लिखी हैं। इनके पूर्वज शैव थे। अतः इनके संस्कार शैवके थे। इन्होंने अपने काव्यमें स्थान-स्थानपर शिव-भक्तिसे भरे उद्गार प्रकट किये हैं।

ऐसी प्रसिद्धि है कि विद्यापतिकी भक्तिसे भगवान् शंकर इतने प्रसन्न हुए कि एक दिन गुप्तरूपसे एक अपरिचित व्यक्तिकी तरह विद्यापतिके पास आये और कहने लगे कि 'मुझे नौकरी चाहिये।' तब विद्यापतिने उन्हें अपने यहाँ नौकर रख लिया। उसका नाम उगना या उदना था। उगनाके रूपमें स्वयं भगवान् शिव विद्यापतिके नौकरके रूपमें रहने लगे। वे विद्यापतिके साथ रहते और उनकी सेवामें तत्पर रहते।

एक बारकी बात है विद्यापति उगनाके साथ कहीं जा रहे थे। मार्गमें उन्हें प्यास लगी। उन्होंने उगनासे जल लानेको कहा। थोड़ी देरमें उगना एक लोटेमें जल लेकर आया। विद्यापतिने जल पिया तो उन्हें मालूम हुआ कि वह साधारण जल नहीं, अपितु गङ्गाजल-जैसा है। विद्यापतिने उगनासे पूछा—'यह जल तुम कहाँसे लाये?' उगनाने कहा—'स्वामिन्! पाससे ही एक कुएँसे लाया हूँ।' इसपर विद्यापतिने कहा—'तुम झूठ बोल रहे हो, कुएँका पानी तो ऐसा नहीं हो सकता। इसका स्वाद ही विलक्षण है।' बहुत पूछ-ताछ करनेपर उगनाने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। वे साक्षात् शंकरके रूपमें सामने खड़े हो गये और कहने लगे 'पानीका कोई स्थान न देखकर मैं अपनी जटाओंसे बहती गङ्गासे यह जल लाया हूँ। तुम मेरे परम प्रिय भक्त हो, तुम्हारी भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न होकर तुमपर कृपा करके तुम्हारे पास रह रहा हूँ। परंतु तुम इस रहस्यको किसीपर प्रकट न करोगे। जिस दिन यह रहस्य प्रकट हो जायगा मैं अन्तर्धान हो जाऊँगा।'

विद्यापतिको यह सुनकर महान् आश्चर्य हुआ कि भगवान् मेरे यहाँ मेरे नौकरके रूपमें रह रहे हैं। अब विद्यापति सदैव सावधान रहते और उगनासे कोई नीचा काम करनेको नहीं कहते थे, किंतु होनहार प्रबल होती है। एक दिन विद्यापतिकी धर्मपत्नीने उगनासे कुछ सामान लानेको कहा। उगनाको उसे लानेमें देर हो गयी। इसपर ब्राह्मणी नाराज हो गयी और जैसे ही उगना आया, वह उसे मारनेके लिये दौड़ पड़ी। यह देखकर विद्यापतिके मुखसे अचानक निकल गया—'अरे! अरे! यह क्या कर रही हो, तुम्हें नहीं मालूम ये उगना नहीं, साक्षात् शिव हैं, हमलोगोंपर अनुग्रह करके ये भक्तिके वशीभूत हो यहाँ इस रूपमें रह रहे हैं। तुम तो साक्षात् शिवपर ही चोट करने जा रही हो।'

बस, विद्यापतिका इतना कहना था कि शिवजी तत्क्षण अन्तर्धान हो गये। विद्यापतिको इस आकस्मिक वियोगसे बड़ा ही कष्ट हुआ। वे 'उदना-उदना' पुकारते-पुकारते पागल-से हो गये। अपनी उसी वियोग-व्यथित अवस्थामें उनके मुखसे

सालकी थीं तब उनका विवाह कर दिया गया। उनका ससुरालका जीवन अत्यन्त कष्टप्रद था। सौतेली सासने उनको सताना प्रारम्भ किया। उनके भोजनके कटोरेमें एक पत्थर टिकाकर ऊपरसे पके चावल रख दिये जाते थे, ताकि भोजनका बड़ा पिण्ड दिखायी दे। परंतु वे अपने असाधारण धैर्य, आत्मसंयम और तपस्याके बलसे उस निर्दय व्यवहारको सहन कर लेती थीं। क्षमाशीला लल्लेश्वरीने विरोधमें कभी एक शब्द भी नहीं कहा। भोग और तृष्णासे दूर रहकर उन्होंने ईश्वर-चिन्तन और पूजनको ही अपना सर्वस्व माना। दैववश जिन लोगोंके साथ लल-द्यदके रहन-सहनका सम्बन्ध हुआ था, वे उसे गलत समझने लगे। अतः उसके प्रति 'जादूगरनी है' आदि अनेक अपवाद फैल गये। परंतु देवी लल्लेश्वरीने बिना किसी प्रतिवादके सभी विघ्नोंको धैर्यके साथ सहन किया। वे सहनशीलताकी मूर्ति थीं। अपने परमार्थ-पथपर निरन्तर चलती रहीं और अन्तमें उन्होंने परमशिवके अक्षय पदको प्राप्त किया।

लल्ल-योगिनीने हमें मायाके जालमें फँसने और संसारके बन्धनोंमें जकड़े जानेके भयसे बार-बार सतर्क किया है। उन्होंने सिर्फ उपदेश ही नहीं दिया, अपितु अपने सिद्धान्तोंको स्वयं अपने ही जीवनमें क्रियान्वित करके भी दिखलाया। वे गलियोंमें घूम-घूमकर शिव-सम्बन्धी गीत गाती रहतीं, लोग पगली समझकर परिहास करते, पत्थर फेंकते, पर वे तो शिव-तत्त्वकी मधुर साधनामें मस्त रहतीं। उनका द्वैतभाव मिट गया था। उनका कहना था—

'जो मनुष्य 'शिव-शिव' यह पवित्र मन्त्र जपते हुए हंसगतिका स्मरण रखे और व्यवहारी होकर भी दिनभर कार्यरत रहे, किंतु राग-रहित मनसे अद्वय-शिवकी शरण ले, उसीपर देवाधिदेव शिव प्रसन्न रहते हैं।' (अनुवाद)

लल्लेश्वरीको तन्त्रशास्त्रका पूर्ण ज्ञान था। उनमें षट्-चक्र-भेदन अर्थात् मानव-शरीरमें विश्व-शक्तिके छः केन्द्रोंका उद्घाटन करनेके अभ्यासकी अपूर्व क्षमता थी। वे लययोगमें निष्णात थीं। किसी भी प्रकारसे परमेश्वरका साक्षात्कार अपनेमें ही करनेके लिये इस जीवनको उपाय बनानेका वे निश्चय कर चुकी थीं और अपनी साधनासे वे इसमें पूर्णतः सफल भी हुईं।

एक बार लल्लेश्वरी अपने गुरु सिद्ध श्रीकण्ठ (स्वद्यमोल) के घर गयीं। वहाँ जब गुरुदेवसे भेंट हुई तो उन्होंने पूछा—'लल्ली! जरा बताओ, तुम किस सीमातक ईश्वरभावमें लीन हो सकती हो?' तब शिष्याने मिट्टीके बने दो पात्र (ढक्कन) लिये। गुरुदेवको एक निर्जन, पवित्र एवं गुप्त स्थानमें साथ लेकर वे एक पात्रपर स्वयं खड़ी हो गयीं और दूसरा पात्र अपने सिरपर उलटा रख लिया। फिर वे परमतत्त्वका ध्यान करने लगीं। धीरे-धीरे उनका शरीर तबतक पिघलता गया जबतक ऊपरका पात्र नीचेके पात्रपर पूरा बैठ नहीं गया। लल्लेश्वरीने अपने पाञ्चभौतिक शरीरको परमशिवके तत्त्वमें लीन कर लिया था। यह रहस्य-प्रदर्शन कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक हुआ था। जब गुरुदेवने अमावास्याके दिन ऊपरके पात्रको धीरेसे उठाया तो आश्चर्यचकित होकर देखा कि निचले पात्रमें पारेके बिन्दुके समान ज्योतिर्मय प्रकाश विद्यमान था। यह अद्भुत प्रभाव देखकर उन्होंने ढक्कनसे उसे फिर आवृत कर दिया। तदनन्तर लल्लेश्वरीके पूर्वकथनके अनुसार वे पुनः पूर्णिमाके दिन उस गुप्त स्थानमें गये और उन्होंने देखा कि लल्लेश्वरी स्थूल शरीरको धारण कर दो मिट्टीके पात्रोंके बीच पहलेकी तरह खड़ी थीं। गुरुदेवकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। ऐसे अनेक रहस्यमय चमत्कार उनके जीवनमें होते रहे, पर लल्लेश्वरीकी इन सबपर उपेक्षापूर्ण दृष्टि थी। वे तो बस, आत्मानन्दकी साधनामें रत रहती थीं। उन्होंने अपने उपदेशमें कहा कि अपने मनसे अज्ञानरूपी अन्धकार हटानेका प्रयत्न करना चाहिये, अपनी आत्माके उद्धारका प्रयास करते रहना चाहिये, क्योंकि अन्तमें अपनी करनीका हिसाब चुकाना ही पड़ता है।

लल-द्यद कश्मीरी हिन्दू ब्राह्मण महिला थीं। वे परम्परागत साधनामें लीन होकर अपने व्यक्तिगत अनुभवमें ईश्वर-प्रेमके गीत गाती रहीं, जिससे उनके आनन्द-उद्यानकी यात्रा सफल हुई। उनकी इस यात्रामें धार्मिक विभेद दीवार बन नहीं पाये थे। मुसलमान लोग उन्हें 'लल्ल आरिफा' के नामसे अभिहित करते रहे हैं। देश-विदेशके हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई विद्वानों तथा विचारशील संतोंने उनके 'वाख' (वाक्-अमृत) का अध्ययन कर उस परम योगिनीके प्रति श्रद्धा और विश्वास प्रकट किया है। किसीने उनका अनुवाद किया तो किसीने इनपर

प्रशंसापूर्ण लेख लिखे हैं। विश्वकी प्रधान भाषाओंमें ये अनुवाद और लेख मिलते भी हैं। कई लोगोंकी धारणा है कि लल्लेश्वरी कश्मीर शैवमतकी ही अनुयायी थी, परंतु उनके 'वाख' का सावधानीसे अनुशीलन करनेपर ज्ञात होता है कि वे उपनिषद्-विचारोंसे भी पूर्णतः प्रभावित थीं। 'ओम्'का उन्होंने पूर्ण अवगाहन किया था। तत्कालीन सूफी प्रभावकी झलक भी उनमें मिलती है। वे वास्तविक सत्ताका ज्ञान प्राप्तकर उसीमें लीन होना चाहती थीं।

लल्लेश्वरीको परमशिव-तत्त्वसे एकाकार हुए सैकड़ों वर्ष हो गये हैं, फिर भी कश्मीरकी रमणीय सुषमामें प्रकृति-प्रदत्त सौन्दर्यके कण-कणमें उनकी मधुर वाणी बसी हुई है। उन्होंने सत्यके सौन्दर्यका शिवरूपमें दर्शन किया। यही उनकी शिव-उपासना अथवा आत्मानन्द-साधना है।

विद्यापतिपर शिवकृपा

(डॉ॰ श्रीश्रीनिवासजी शर्मा, एम्॰ ए॰ (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच्॰ डी॰)

प्रसिद्ध मैथिल कवि श्रीविद्यापति शिवके परम भक्त थे। इनका जन्म मैथिल ब्राह्मण-कुलमें सं॰ १४०७ के लगभग हुआ था। आप संस्कृतके महान् विद्वान् और कवि थे। आपकी मौलिक भाषामें उपनिबद्ध कविताएँ बड़ी उच्चकोटिकी हैं। प्रायः इनकी कविताएँ 'पदावली' नामसे जानी जाती हैं। परम शिवभक्त होनेपर भी आपकी दृष्टि अभेद-भावापन्न थी। आपने श्रीराधा-कृष्ण तथा श्रीसीता-रामपर भी अनेक कविताएँ लिखी हैं। इनके पूर्वज शैव थे। अतः इनके संस्कार शैवके थे। इन्होंने अपने काव्यमें स्थान-स्थानपर शिव-भक्तिसे भरे उद्गार प्रकट किये हैं।

ऐसी प्रसिद्धि है कि विद्यापतिकी भक्तिसे भगवान् शंकर इतने प्रसन्न हुए कि एक दिन गुप्तरूपसे एक अपरिचित व्यक्तिकी तरह विद्यापतिके पास आये और कहने लगे कि 'मुझे नौकरी चाहिये।' तब विद्यापतिने उन्हें अपने यहाँ नौकर रख लिया। उसका नाम उगना या उदना था। उगनाके रूपमें स्वयं भगवान् शिव विद्यापतिके नौकरके रूपमें रहने लगे। वे विद्यापतिके साथ रहते और उनकी सेवामें तत्पर रहते।

एक बारकी बात है विद्यापति उगनाके साथ कहीं जा रहे थे। मार्गमें उन्हें प्यास लगी। उन्होंने उगनासे जल लानेको कहा। थोड़ी देरमें उगना एक लोटेमें जल लेकर आया। विद्यापतिने जल पिया तो उन्हें मालूम हुआ कि वह साधारण जल नहीं, अपितु गङ्गाजल-जैसा है। विद्यापतिने उगनासे पूछा—'यह जल तुम कहाँसे लाये?' उगनाने कहा—'स्वामिन्! पाससे ही एक कुएँसे लाया हूँ।' इसपर विद्यापतिने कहा—'तुम झूठ बोल रहे हो, कुएँका पानी तो ऐसा नहीं हो सकता। इसका स्वाद ही विलक्षण है।' बहुत पूछ-ताछ करनेपर उगनाने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। वे साक्षात् शंकरके रूपमें सामने खड़े हो गये और कहने लगे 'पानीका कोई स्थान न देखकर मैं अपनी जटाओंसे बहती गङ्गासे यह जल लाया हूँ। तुम मेरे परम प्रिय भक्त हो, तुम्हारी भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न होकर तुमपर कृपा करके तुम्हारे पास रह रहा हूँ। परंतु तुम इस रहस्यको किसीपर प्रकट न करोगे। जिस दिन यह रहस्य प्रकट हो जायगा मैं अन्तर्धान हो जाऊँगा।'

विद्यापतिको यह सुनकर महान् आश्चर्य हुआ कि भगवान् मेरे यहाँ मेरे नौकरके रूपमें रह रहे हैं। अब विद्यापति सदैव सावधान रहते और उगनासे कोई नीचा काम करनेको नहीं कहते थे, किंतु होनहार प्रबल होती है। एक दिन विद्यापतिकी धर्मपत्नीने उगनासे कुछ सामान लानेको कहा। उगनाको उसे लानेमें देर हो गयी। इसपर ब्राह्मणी नाराज हो गयी और जैसे ही उगना आया, वह उसे मारनेके लिये दौड़ पड़ी। यह देखकर विद्यापतिके मुखसे अचानक निकल गया—'अरे! अरे! यह क्या कर रही हो, तुम्हें नहीं मालूम ये उगना नहीं, साक्षात् शिव हैं, हमलोगोपर अनुग्रह करके ये भक्तिके वशीभूत हो यहाँ इस रूपमें रह रहे हैं। तुम तो साक्षात् शिवपर ही चोट करने जा रही हो।'

बस, विद्यापतिका इतना कहना था कि शिवजी तत्क्षण अन्तर्धान हो गये। विद्यापतिको इस आकस्मिक वियोगसे बड़ा ही कष्ट हुआ। वे 'उदना-उदना' पुकारते-पुकारते पागल-से हो गये। अपनी उसी वियोग-व्यथित अवस्थामें उनके मुखसे

कविताका स्वर इस प्रकार फूट पड़ा—

उदना रे मोर कतय गेला। कतय गेला शिव ! कि तुहुँ मेला ॥
भाँग नहि बटुआ रुसि बैसलाह। जोहि हेरि आनि देल हँसि उठलाह ॥
जे मोर कहता उदना उदेस। ताहि देवों करकँगना वेस ॥
नन्दन-वनमें भेटल महेस। गौरि मन हरखित मेटल कलेस ॥
विद्यापति भन उदनासों काज। नहि हितकर मोर त्रिभुवनराज ॥

कवितामें विद्यापति 'हाय ! मेरा उदना कहाँ गया ?' कहकर बेहद विलाप करते हैं। उसके दूसरे चरणमें उसके वास्तविक शिवस्वरूपका भी स्मरण करते हैं। उदना जो-जो उनकी सेवा-टहल किया करता था, उन्हें सबकी याद हो आती है। पूजाके आसनपर जाते हैं, पर भाँग-बटुआ (सुपारी, सरौता, खैनी आदि रखनेकी थैली) को न पाकर रूठकर बैठ जाते हैं। धर्मपत्नी सब सामग्री ढूँढ़-ढाँढ़कर इकट्ठी करती है तो कुछ क्षणके लिये प्रसन्नताकी झलक चेहरेपर आ जाती है, परंतु फिर भी उन्हें उदनाकी स्मृति नहीं भूलती। वह फिर उसीका पता चाहते हैं। कहते हैं कि यदि कोई उसका पता बता दे तो मैं उसे पुरस्कारमें हाथका कंगन दूँ। आगे चलकर इस कवितासे यह भी प्रकट होता है कि नन्दन-वनमें इन्हें शिवजीके साथ पुनः साक्षात्कार हो जाता है, जिससे इनका क्लेश दूर होता है। ये उदनाके प्रति इतना प्रगाढ़ भाव रखते थे कि उसके बिना त्रिभुवनका राज्य भी इनके लिये तुच्छ था।

शिवभक्त कवि श्रीविद्यापतिके महाप्रयाणके सम्बन्धमें एक अन्य कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है, तदनुसार यह कहा जाता है कि जब इनके मृत्युका समय समीप आया तो विद्यापति गङ्गा मैयाके निकट प्राण छोड़नेकी अभिलाषासे एक पालकीद्वारा घरसे चल पड़े। लम्बी यात्रा करनेके बाद जब गङ्गाजी चार मील रह गयीं, तब उन्होंने बाजीतपुर ग्राममें पड़ाव डाल दिया और कहने लगे—जब मैं गङ्गा मैयाके लिये इतनी दूर दौड़ आया, तब वे भी क्या यहाँतक नहीं आ सकतीं। भक्तिमें बड़ी शक्ति होती है, विद्यापतिकी भक्ति माता जाह्नवीको खींचकर वहीं ले आयी। दूसरे दिन देखा गया कि पुण्यसलिला गङ्गा उसी स्थानपर प्रवाहित हो रही हैं और प्रेमी भक्तने माताकी पावन गोदमें अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। इनके चितास्थलपर एक शिवलिङ्ग स्थापित किया गया। वह मन्दिर 'विद्यापति महादेव-मन्दिर'के नामसे विख्यात हुआ।

शिव-भक्त अप्पय्य दीक्षित

भगवान् शंकराचार्यद्वारा स्थापित अद्वैत सम्प्रदाय-परम्परामें जो सर्वश्रेष्ठ आचार्य हुए हैं, उन्हींमेंसे एक अप्पय्य दीक्षित भी हैं। विद्वत्ताकी दृष्टिसे इनका वैदुष्य विलक्षण कोटिका था। ये एक साथ ही आलंकारिक, वैयाकरण और दार्शनिक थे। केवल भारतीय साहित्य ही नहीं, इन्हें विश्वसाहित्याकाशका एक देदीप्यमान नक्षत्र कह सकते हैं। शिवभक्त अप्पय्य दीक्षित अकबर और जहाँगीरके शासनकालमें हुए थे। इनका जन्म सन् १५५० ई० में हुआ था और मृत्यु बहत्तर वर्षकी आयुमें सन् १६२२ में हुई थी।

इनके पितामह आचार्य दीक्षित और पिता रङ्गराजाध्वरि थे। ऐसे प्रकाण्ड पण्डितोंके वंशधर होनेके कारण इनमें अद्भुत प्रतिभाका विकास होना स्वाभाविक ही था। ये दो भाई थे, इनके छोटे भाईका नाम अय्यान दीक्षित था। अप्पय्य दीक्षितने अपने पितासे ही विद्या प्राप्त की थी। पिता और पितामहके संस्कारानुसार यद्यपि इन्हें भी अद्वैतमतकी ही शिक्षा मिली थी, तथापि ये परम शिव-भक्त थे। इनका हृदय भगवान् शंकरके प्रेमसे भरा हुआ था। अतः 'शैवसिद्धान्त'की स्थापनाके लिये ये ग्रन्थ-रचना करने लगे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये इन्होंने 'शिव-तत्त्व-विवेक' आदि पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की। इसी समय इनके समीप नर्मदातीर-निवासी श्रीनृसिंहाश्रम स्वामी उपस्थित हुए। उन्होंने इन्हें सचेत करते हुए अपने पिताके सिद्धान्तका अनुसरण करनेके लिये प्रोत्साहित किया। तब उन्हींकी प्रेरणासे इन्होंने परिमल, न्यायरक्षामणि एवं सिद्धान्तलेश नामक ग्रन्थोंकी रचना की। इनका विजयनगर राज्यमें बहुत सम्मान था।

सिद्धान्तकौमुदीमें भट्टोजि दीक्षितने अपने गुरु-रूपसे इनका वर्णन किया है। कुछ कालतक इन दोनों विद्वानोंने काशीमें निवास किया था। अप्पय्य दीक्षित शिव-भक्त थे और भट्टोजि दीक्षित वैष्णव थे, तो भी इन दोनोंका सम्बन्ध अत्यन्त मधुर था। ये दोनों ही शास्त्रज्ञ थे, अतः इनकी दृष्टिमें

वस्तुतः शिव और विष्णुमें कोई भेद नहीं था।

कुछ काल काशीमें रहकर दीक्षित दक्षिणमें लौट आये। वहाँ अपना मृत्युकाल समीप जानकर इन्होंने चिदम्बरम् जानेकी इच्छा की। उस समय इनके हृदयमें जो भाव जाग्रत् हुए, उनको इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

चिदम्बरमिदं पुरं प्रथितमेव पुण्यस्थलं
सुताश्च विनयोज्ज्वलाः सुकृतयश्च काश्चित् कृताः।
वयांसि मम सप्ततेरुपरि नैव भोगे स्पृहा
न किंचिदहमर्थये शिवपदं दिदृक्षे परम्॥
आभाति हाटकसभानटपादपद्मो
ज्योतिर्मयो मनसि मे तरुणारुणोऽयम्।

इस प्रकार दूसरा श्लोक समाप्त नहीं हो पाया था कि इन्होंने श्रीमहादेवजीके दर्शन करते-करते अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी। यह इनकी जीवनव्यापिनी साधनाका ही फल था। मृत्युके समय इनके पुत्र और छोटे भाईके पौत्र नीलकण्ठ दीक्षित पास ही थे। उस समय इन्होंने सबसे अधिक प्रेम नीलकण्ठपर ही प्रकट किया। इनका जो श्लोक अधूरा रह गया था, उसकी पूर्ति इनके पुत्रोंने इस प्रकार की—

'नूनं जरामरणघोरपिशाचकीर्णा
संसारमोहरजनी विरतिं प्रयाता॥'

स्वामी विवेकानन्दकी शिवभक्ति

(स्वामी श्रीविदेहात्मानन्दजी)

स्वामी विवेकानन्द इस युगके परम ज्ञानी आचार्य थे और उनके जीवनचरितका विहंगावलोकन करनेपर यह देखनेमें आता है कि उनके जीवनका प्रारम्भ ही शिवकृपासे हुआ, युवावस्थामें उन्हें शिवसे ही कर्मकी प्रेरणा मिली और अन्तमें शिवानुभूतिके साथ ही उनके जीवनका पटाक्षेप हुआ। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ताके एक सुप्रसिद्ध वकील थे। माता भुवनेश्वरी देवीको कई संतानें हुईं, परंतु उनमेंसे कइयोंका शैशवकालमें ही निधन हो गया, बच रही थीं तो केवल पुत्रियाँ। पुत्र-प्राप्तिके लिये उनकी माता प्रतिदिन अपने आराध्य देवाधिदेव महादेवकी पूजा, ध्यान-प्रार्थना, व्रत आदिमें निरत रहने लगीं। काशीमें निवास करनेवाली अपने परिवारकी एक वृद्धाको भी उन्होंने वहाँके वीरेश्वर शिवके मन्दिरमें इस निमित्त पूजा, दान आदिकी व्यवस्था करनेका अनुरोध किया। तदनुसार वे वृद्ध महिला भी वाराणसीमें शिवकी अर्चना करने लगीं।

भगवान् शिवकी कृपासे एक दिन उन्हें पुत्र-प्राप्तिका पूर्वाभास मिला। उस दिन वे पूजा, प्रार्थना आदिसे निवृत्त होकर रातमें शयन कर रही थीं, सहसा उन्होंने देखा कि जटाजूटमण्डित, ज्योतिर्मय, तुषारधवल महादेव उनके सामने स्थित हैं और क्षणमें ही देवाधिदेव महादेवने एक नन्हेंसे शिशुका रूप धारण कर लिया। उस रजतगिरिके समान सुकुमार शिशुका दर्शन करते ही उनकी नींद खुल गयी। उनका मन एक अपूर्व आनन्दसे भर गया। वे सोचने लगीं कि यह मात्र एक स्वप्न था या फिर भावीका पूर्वाभास।

इस अलौकिक स्वप्नके कुछ महीनों बाद ही १२ जनवरी, १८६३ ई०, मकर-संक्रान्तिके दिन उन्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। वीरेश्वर शिवकी आराधनाके फलस्वरूप ही जन्म होनेके कारण माने उस शिशुको 'वीरेश्वर' नाम दिया और दुलारमें उसे 'बिले' कहकर सम्बोधित करने लगीं। स्कूलमें उनका नाम हुआ नरेन्द्रनाथ दत्त और परवर्ती कालमें स्वामी विवेकानन्दके रूपमें विख्यात हुए। बचपनकी क्रीडाओंमें जब 'बिले' किसी प्रकार न मानते तो मा उन्हें 'शिव'-'शिव' इस प्रकार पुकारतीं तो वे शान्त हो जाते। फिर कुछ बड़े होनेपर माताके ही परामर्शसे 'बिले' शिवजीकी मूर्ति पाकर उनकी पूजा-अर्चना तथा ध्यान करने लगे। बालक बिले गेरुए वस्त्रका एक टुकड़ा कौपीनकी भाँति कमरमें खोंसकर घरमें घूम रहे थे, यह देखकर माने कहा—'यह क्या है रे!' बिलेने जोरकी आवाजमें उल्लासपूर्वक कहा—'मा! मैं शिव बन गया हूँ।'

धीरे-धीरे वे बढ़ते गये। युवावस्थामें उनके मनमें कभी-कभी यह प्रश्न उठने लगा कि क्या वास्तवमें ईश्वरका अस्तित्व है और क्या उनका दर्शन भी किया जा सकता है? इस प्रश्नको लेकर वे दक्षिणेश्वर पहुँचे और इसका समाधान पाकर उन्होंने पूर्णतः शिव-भक्तिकी सत्ताको स्वीकार

कविताका स्वर इस प्रकार फूट पड़ा—

उदना रे मोर कतय गेला। कतय गेला शिव ! कि तुहुँ मेला ॥
भाँग नहि बटुआ रुसि यैसलाह। जोहि हेरि आनि देल हँसि उठलाह ॥
जे मोर कहता उदना उदेस। ताहि देवों करकँगना बेस ॥
नन्दन-बनमें भेटल महेस। गौरि मन हरखित मेटल कलेस ॥
विद्यापति भन उदनासों काज। नहि हितकर मोर त्रिभुवनराज ॥

कवितामें विद्यापति 'हाय ! मेरा उदना कहाँ गया ?' कहकर बेहद विलाप करते हैं। उसके दूसरे चरणमें उसके वास्तविक शिवस्वरूपका भी स्मरण करते हैं। उदना जो-जो उनकी सेवा-टहल किया करता था, उन्हें सबकी याद हो आती है। पूजाके आसनपर जाते हैं, पर भाँग-बटुआ (सुपारी, सरौता, खैनी आदि रखनेकी थैली) को न पाकर रूठकर बैठ जाते हैं। धर्मपत्नी सब सामग्री ढूँढ़-ढाँढ़कर इकट्ठी करती है तो कुछ क्षणके लिये प्रसन्नताकी झलक चेहरेपर आ जाती है, परंतु फिर भी उन्हें उदनाकी स्मृति नहीं भूलती। वह फिर उसीका पता चाहते हैं। कहते हैं कि यदि कोई उसका पता बता दे तो मैं उसे पुरस्कारमें हाथका कंगन दूँ। आगे चलकर इस कवितासे यह भी प्रकट होता है कि नन्दन-वनमें इन्हें शिवजीके साथ पुनः साक्षात्कार हो जाता है, जिससे इनका क्लेश दूर होता है। ये उदनाके प्रति इतना प्रगाढ़ भाव रखते थे कि उसके बिना त्रिभुवनका राज्य भी इनके लिये तुच्छ था।

शिवभक्त कवि श्रीविद्यापतिके महाप्रयाणके सम्बन्धमें एक अन्य कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है, तदनुसार यह कहा जाता है कि जब इनके मृत्युका समय समीप आया तो विद्यापति गङ्गा मैयाके निकट प्राण छोड़नेकी अभिलाषासे एक पालकीद्वारा घरसे चल पड़े। लम्बी यात्रा करनेके बाद जब गङ्गाजी चार मील रह गयीं, तब उन्होंने बाजीतपुर ग्राममें पड़ाव डाल दिया और कहने लगे—जब मैं गङ्गा मैयाके लिये इतनी दूर दौड़ आया, तब वे भी क्या यहाँतक नहीं आ सकतीं। भक्तिमें बड़ी शक्ति होती है, विद्यापतिकी भक्ति माता जाह्नवीको खींचकर वहीं ले आयी। दूसरे दिन देखा गया कि पुण्यसलिला गङ्गा उसी स्थानपर प्रवाहित हो रही हैं और प्रेमी भक्तने माताकी पावन गोदमें अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। इनके चितास्थलपर एक शिवलिङ्ग स्थापित किया गया। वह मन्दिर 'विद्यापति महादेव-मन्दिर'के नामसे विख्यात हुआ।

शिव-भक्त अप्पय्य दीक्षित

भगवान् शंकराचार्यद्वारा स्थापित अद्वैत सम्प्रदाय-परम्परामें जो सर्वश्रेष्ठ आचार्य हुए हैं, उन्हींमेंसे एक अप्पय्य दीक्षित भी हैं। विद्वत्ताकी दृष्टिसे इनका वैदुष्य विलक्षण कोटिका था। ये एक साथ ही आलंकारिक, वैयाकरण और दार्शनिक थे। केवल भारतीय साहित्य ही नहीं, इन्हें विश्वसाहित्याकाशका एक देदीप्यमान नक्षत्र कह सकते हैं। शिवभक्त अप्पय्य दीक्षित अकबर और जहाँगीरके शासनकालमें हुए थे। इनका जन्म सन् १५५० ई० में हुआ था और मृत्यु बहत्तर वर्षकी आयुमें सन् १६२२ में हुई थी।

इनके पितामह आचार्य दीक्षित और पिता रङ्गराजाध्वरि थे। ऐसे प्रकाण्ड पण्डितोंके वंशधर होनेके कारण इनमें अद्भुत प्रतिभाका विकास होना स्वाभाविक ही था। ये दो भाई थे, इनके छोटे भाईका नाम अय्यान दीक्षित था। अप्पय्य दीक्षितने अपने पितासे ही विद्या प्राप्त की थी। पिता और पितामहके संस्कारानुसार यद्यपि इन्हें भी अद्वैतमतकी ही शिक्षा मिली थी, तथापि ये परम शिव-भक्त थे। इनका हृदय भगवान् शंकरके प्रेमसे भरा हुआ था। अतः 'शैवसिद्धान्त'की स्थापनाके लिये ये ग्रन्थ-रचना करने लगे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये इन्होंने 'शिव-तत्त्व-विवेक' आदि पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की। इसी समय इनके समीप नर्मदातीर-निवासी श्रीनृसिंहाश्रम स्वामी उपस्थित हुए। उन्होंने इन्हें सचेत करते हुए अपने पिताके सिद्धान्तका अनुसरण करनेके लिये प्रोत्साहित किया। तब उन्हींकी प्रेरणासे इन्होंने परिमल, न्यायरक्षामणि एवं सिद्धान्तलेश नामक ग्रन्थोंकी रचना की। इनका विजयनगर राज्यमें बहुत सम्मान था।

सिद्धान्तकौमुदीमें भट्टोजि दीक्षितने अपने गुरु-रूपसे इनका वर्णन किया है। कुछ कालतक इन दोनों विद्वानोंने काशीमें निवास किया था। अप्पय्य दीक्षित शिव-भक्त थे और भट्टोजि दीक्षित वैष्णव थे, तो भी इन दोनोंका सम्बन्ध अत्यन्त मधुर था। ये दोनों ही शास्त्रज्ञ थे, अतः इनकी दृष्टिमें

वस्तुतः शिव और विष्णुमें कोई भेद नहीं था।

कुछ काल काशीमें रहकर दीक्षित दक्षिणमें लौट आये। वहाँ अपना मृत्युकाल समीप जानकर इन्होंने चिदम्बरम् जानेकी इच्छा की। उस समय इनके हृदयमें जो भाव जाग्रत् हुए, उनको इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

चिदम्बरमिदं पुरं प्रथितमेव पुण्यस्थलं
सुताश्च विनयोज्ज्वलाः सुकृतयश्च काश्चित् कृताः।
वयांसि मम सप्ततेरुपरि नैव भोगे स्पृहा
न किंचिदहमर्थये शिवपदं दिदृक्षे परम्॥
आभाति हाटकसभानटपादपद्मो
ज्योतिर्मयो मनसि मे तरुणारुणोऽयम्।

इस प्रकार दूसरा श्लोक समाप्त नहीं हो पाया था कि इन्होंने श्रीमहादेवजीके दर्शन करते-करते अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी। यह इनकी जीवनव्यापिनी साधनाका ही फल था। मृत्युके समय इनके पुत्र और छोटे भाईके पौत्र नीलकण्ठ दीक्षित पास ही थे। उस समय इन्होंने सबसे अधिक प्रेम नीलकण्ठपर ही प्रकट किया। इनका जो श्लोक अधूरा रह गया था, उसकी पूर्ति इनके पुत्रोंने इस प्रकार की—

'नूनं जरामरणघोरपिशाचकीर्णा
संसारमोहरजनी विरतिं प्रयाता॥'

स्वामी विवेकानन्दकी शिवभक्ति

(स्वामी श्रीविदेहात्मानन्दजी)

स्वामी विवेकानन्द इस युगके परम ज्ञानी आचार्य थे और उनके जीवनचरितका विहंगावलोकन करनेपर यह देखनेमें आता है कि उनके जीवनका प्रारम्भ ही शिवकृपासे हुआ, युवावस्थामें उन्हें शिवसे ही कर्मकी प्रेरणा मिली और अन्तमें शिवानुभूतिके साथ ही उनके जीवनका पटाक्षेप हुआ। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ताके एक सुप्रसिद्ध वकील थे। माता भुवनेश्वरी देवीको कई संतानें हुईं, परंतु उनमेंसे कइयोंका शैशवकालमें ही निधन हो गया, बच रही थीं तो केवल पुत्रियाँ। पुत्र-प्राप्तिके लिये उनकी माता प्रतिदिन अपने आराध्य देवाधिदेव महादेवकी पूजा, ध्यान-प्रार्थना, व्रत आदिमें निरत रहने लगीं। काशीमें निवास करनेवाली अपने परिवारकी एक वृद्धाको भी उन्होंने वहाँके वीरेश्वर शिवके मन्दिरमें इस निमित्त पूजा, दान आदिकी व्यवस्था करनेका अनुरोध किया। तदनुसार वे वृद्ध महिला भी वाराणसीमें शिवकी अर्चना करने लगीं।

भगवान् शिवकी कृपासे एक दिन उन्हें पुत्र-प्राप्तिका पूर्वाभास मिला। उस दिन वे पूजा, प्रार्थना आदिसे निवृत्त होकर रातमें शयन कर रही थीं, सहसा उन्होंने देखा कि जटाजूटमण्डित, ज्योतिर्मय, तुषारधवल महादेव उनके सामने स्थित हैं और क्षणमें ही देवाधिदेव महादेवने एक नन्हेंसे शिशुका रूप धारण कर लिया। उस रजतगिरिके समान सुकुमार शिशुका दर्शन करते ही उनकी नींद खुल गयी। उनका मन एक अपूर्व आनन्दसे भर गया। वे सोचने लगीं कि यह मात्र एक स्वप्न था या फिर भावीका पूर्वाभास।

इस अलौकिक स्वप्नके कुछ महीनों बाद ही १२ जनवरी, १८६३ ई०, मकर-संक्रान्तिके दिन उन्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। वीरेश्वर शिवकी आराधनाके फलस्वरूप ही जन्म होनेके कारण माने उस शिशुको 'वीरेश्वर' नाम दिया और दुलारमें उसे 'बिले' कहकर सम्बोधित करने लगीं। स्कूलमें उनका नाम हुआ नरेन्द्रनाथ दत्त और परवर्ती कालमें स्वामी विवेकानन्दके रूपमें विख्यात हुए। बचपनकी क्रीडाओंमें जब 'बिले' किसी प्रकार न मानते तो मा उन्हें 'शिव'-'शिव' इस प्रकार पुकारती तो वे शान्त हो जाते। फिर कुछ बड़े होनेपर माताके ही परामर्शसे 'बिले' शिवजीकी मूर्ति पाकर उनकी पूजा-अर्चना तथा ध्यान करने लगे। बालक बिले गेरुए वस्त्रका एक टुकड़ा कौपीनकी भाँति कमरमें खोंसकर घरमें घूम रहे थे, यह देखकर माने कहा—'यह क्या है रे!' बिलेने जोरकी आवाजमें उल्लासपूर्वक कहा—'मा! मैं शिव बन गया हूँ।'

धीरे-धीरे वे बढ़ते गये। युवावस्थामें उनके मनमें कभी-कभी यह प्रश्न उठने लगा कि क्या वास्तवमें ईश्वरका अस्तित्व है और क्या उनका दर्शन भी किया जा सकता है? इस प्रश्नको लेकर वे दक्षिणेश्वर पहुँचे और इसका समाधान पाकर उन्होंने पूर्णतः शिव-भक्तिकी सत्ताको स्वीकार

कर लिया।

अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्णजीकी महासमाधिके पश्चात् वे कलकत्ताके ही वराहनगर अञ्चलमें एक मठ बनाकर अपने गुरुभाइयोंके साथ उसमें निवास करने लगे। वहाँ श्रीरामकृष्णके अस्थि-अवशेष तथा पटकी स्थापना कर उन लोगोंने एक देवालय बनाया था। संध्याको आरतीके समय वे लोग एक साथ मिलकर यह पद गाया करते थे—

जय शिव ओंकारा भज शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव हर हर हर महादेव ॥

स्वामीजीने शिवजीपर एक भजनकी रचना भी की थी, जो इस प्रकार है—

ताथैया ताथैया नाचे भोला, बम बम बाजे गाल।
डिमि डिमि डिमि डमरु बाजे, दुलिछे कपाल माल ॥
गरजे गंगा जटा माझे, उगरे अनल त्रिशूल राजे।
धक धक धक मौलिबन्ध, ज्वले शशांक भाल ॥

इस भजनको गाते समय स्वामीजी अपने गुरुभाइयोंके साथ मिलकर नृत्य भी करते थे।

कुछ वर्षोंके मठ-जीवनके दौरान उन्होंने कई बार वाराणसी तथा वैद्यनाथधाम आदि स्थानोंमें जाकर तपस्या की। ततपश्चात् वे परिव्राजकके रूपमें पश्चिमी भारतकी यात्रापर निकले। रामेश्वरम् पहुँचकर महादेवका दर्शन करना भी उन्होंने अपना लक्ष्य बना रखा था, ऐसा उनके कई पत्रोंसे ज्ञात होता है।

स्वामीजीने विश्ववासियोंको समझाया कि हिन्दू लोग सभी धर्मोंको सत्य तथा ईश्वरतक पहुँचनेका एक-एक पथ मानते हैं। शिकागो धर्ममहासभाके समक्ष हिन्दू-धर्मका परिचय देते हुए उन्होंने 'शिवमहिम्नःस्तोत्र'का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया था—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

अर्थात् 'जैसे विभिन्न नदियाँ एक ही समुद्रमें पहुँच जाती है, उसी प्रकार रुचिवैचित्र्यके अनुसार सीधे अथवा टेढ़े-मेढ़े मार्गोंसे आनेवाले सभी लोग, हे प्रभो! अन्ततः तुम्हींमें आकर मिल जाते हैं।'

विदेश-यात्रासे लौटकर जब वे पुनः रामेश्वरम् शिवका दर्शन करने आये तो अपने एक व्याख्यानमें स्वामीजीने कहा था—'"प्रत्येक प्राणीके हृदयमें शिवका वास है, परंतु उसपर एक आवरण-सा पड़ा हुआ है। अभावग्रस्त लोगोंकी सेवाके द्वारा जब तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जायगा, तो शिवजी स्वयं ही प्रकट होंगे। जो व्यक्ति जितना ही निःस्वार्थ है, वह शिवजीके उतना ही समीप है।' 'शिवभावसे जीवसेवा' यही स्वामीजीके संदेशका केन्द्रबिन्दु है।

उन्होंने उत्तरी भारत, हिमालय और विशेषकर अमरनाथ आदि शैव क्षेत्रोंकी पावन यात्रा भी की। हिमालयके दर्शनकर उनका मन शिवजीके भावमें विभोर रहा करता था। महादेवके प्रति उनमें असीम प्रेम था। उनका कहना था कि 'महादेव शान्त, सुन्दर तथा मौन हैं और मैं उनका भक्त हूँ।' वे श्वेतकाय हिममण्डित हिमालयकी पर्वत-श्रेणियोंको शिव और उनके ऊपर पड़नेवाले आलोकको जगदम्बारूपमें बताते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण हिमालय ही स्वामीजीके लिये मानो महादेवकी एक जीवन्त प्रतिमा थी।

अमरनाथ तीर्थकी यात्राके बाद उन्होंने बताया कि अमरनाथसे उन्हें इच्छा-मृत्युका वर मिला है। इस दर्शनका प्रभाव उनपर इतना गम्भीर हुआ था कि वे उन दिनों सर्वदा शिवजीके भावमें ही विभोर रहते तथा उनके मुखसे उन्हींकी महिमाका गान होता रहता था।

पाश्चात्त्य देशोंसे लौटनेके बाद फरवरी १९०२ ई० में स्वामीजीने अन्तिम बार वाराणसीकी यात्रा की। वहाँ प्रतिदिन स्वामीजी विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णाके दर्शनको जाया करते थे। स्वामीजीने छः श्लोकोंमें एक अत्यन्त मनोरम 'शिवस्तोत्र' की रचना की है। शिवके भजन उन्हें अत्यन्त प्रिय थे। उन्हींके द्वारा रचित एक शिवस्तुतिके साथ इस प्रकरणको पूर्ण किया जा रहा है—

हर हर हर भूतनाथ पशुपति
योगेश्वर महादेव शिव पिनाकपाणि।
ऊर्ध्व ज्वलत जटा-जाल, नाचत व्योमकेश भाल,
सप्तभुवन धरत ताल, टलमल अवनी ॥

विलक्षण शिवभक्त बालक

(श्रीवत्सभदासजी खिन्नानी 'व्रजेश')

तमिलनाडुमें एक स्थान है 'तोणीपुरम्'। वहाँ एक ब्राह्मण-दम्पति रहते थे। पति-पत्नी दोनों ही शिवके उपासक थे। वे छल-कपट और लोभ-लालचसे सदा दूर रहते थे। ईश्वरसे यही माँगते—'हमें कुछ नहीं चाहिये। प्रभो! बस, आपके चरणोंमें हमारा प्रेम बना रहे।'

कुछ समय पश्चात् उनके घरपर एक अनोखे बालकने जन्म लिया। उसके उत्पन्न होते ही घर आनन्दसे उमड़ पड़ा। माता-पिताने प्यारसे बालकका नाम रखा—(ज्ञान) सम्बंधन।

सम्बंधनके पिता प्रतिदिन शिव-मन्दिरमें पूजा करने जाते थे। मन्दिरके पास ही एक तालाब था। तालाबमें स्नान करनेके बाद वह मन्दिरमें जाकर शिव-स्तुति करते। सम्बंधन भी यह देखता। कभी-कभी जिद करता—'पिताजी! मुझे भी अपने साथ ले चलिये न।'

सम्बंधनके पिता हँसकर कहते—'अभी तुम छोटे हो बेटे! जरा और बड़े हो जाओ तो⋯।'

एक दिन (ज्ञान)सम्बंधनके पिता प्रातः मन्दिर जानेके लिये तैयार हो रहे थे। जैसे ही वह घरसे निकले, सम्बंधन भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। वह अभी केवल तीन वर्षका था। पिताने बहुत समझाया, परंतु वह नहीं माना। हारकर उसके पिता उसे भी कंधेपर बैठाकर साथ ले गये।

पहले वह मन्दिरके पासवाले तालाबमें स्नान करने गये। उन्होंने सम्बंधनको किनारेसे दूर बैठा दिया और स्वयं तालाबके पानीमें डुबकी ली। सम्बंधन डर गया। सोचने लगा— कहीं मेरे पिता डूब तो नहीं गये। डरके मारे बालककी चीख निकल गयी—'अम्मा अप्पा'।

पिताने तो बालकके चिल्लानेकी आवाज नहीं सुनी। संयोगसे उसी समय शिव-पार्वती वहाँसे जा रहे थे। बालकके रोनेकी आवाज सुनकर दोनों ठिठक गये। शिवने पार्वतीसे कहा—सुना नहीं, इस बालकने 'अम्मा अप्पा' कहकर हमें बुलाया है, आजसे यह हमारा बेटा है।

शिवकी बात सुन, पार्वतीजी मुसकराती हुई बालकके पास आयीं। रोते हुए बालकको अपनी गोदमें लिया। उसके आँसू पोंछे। बालक चुप होकर उन्हें निहारने लगा।

क्या भूखे हो? दूध पिओगे?—पार्वतीजीने पूछा। अगले ही पल उनके हाथोंमें एक सोनेका कटोरा था, जिसमें मीठा-मीठा दूध भरा हुआ था। पार्वतीजीने सम्बंधनसे कहा—'लो, पियो।' बालक शान्त होकर चुपचाप दूध पीने लगा।

कुछ देरमें शिव-पार्वतीजी दोनों चले गये। सम्बंधनके पिता नहाकर तालाबसे बाहर आये। बालकके पास गये तो उसके हाथमें सोनेका कटोरा देखकर चौंक गये। कटोरेमें दूध बचा हुआ था। बालकके मुखपर भी दूधके छींटे थे। वह आश्चर्यमें पड़ गये। कुछ भी समझमें नहीं आया। डाँटकर सम्बंधनसे पूछा—'किसने दिया यह सोनेका कटोरा?'

सम्बंधनने कुछ न कहकर अँगुली उठाकर सामनेकी ओर संकेत किया, किंतु उसके पिता कुछ न समझ सके।

उन्होंने परेशान होकर बालककी ओर देखा। बोले—'पता नहीं, तुम क्या कहना चाहते हो।'

उनका यह कहना ही था, तभी सम्बंधनके होठोंसे कविताकी पंक्तियाँ फूट पड़ीं। अद्भुत थी वह कविता। सम्बंधनको जिस तरह शिव-पार्वतीने दर्शन दिये और अपने हाथोंसे सोनेके कटोरेमें दूध पिलाया, उसमें सबका वर्णन था।[1]

सम्बंधनके पिताको जैसे अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं हुआ। तीन सालका बालक और इतनी सुन्दर कविता! ऐसा तो कोई अलौकिक व्यक्ति ही कर सकता है। वे एकटक पुत्रको देख रहे थे। जब सम्बंधनकी कविता समाप्त

१-कुछ लोग यहाँतक कहते हैं कि सौन्दर्यलहरी इन्हीं (ज्ञान) सम्बंधनकी ही रचना है और उन्होंने ही अपनेको द्रविड़ शिशु कहा है, जिसका उल्लेख सौन्दर्यलहरीके श्लोक ७५ में हुआ है।

हुई तो वे उसे कंधेपर बैठाकर खुशीके मारे नाचने लगे। सारे जीवनमें शिवकी पूजा-उपासना करके भी जो वह नहीं पा सके थे, वह इस छोटे-से बच्चेने पा लिया।

सम्बंधनके पिता उसे कंधेपर बैठाकर शिव-मन्दिरकी ओर चल पड़े। वहाँ इस अलौकिक घटनाकी चर्चा तेजीसे फैल गयी, सभी अद्भुत बालकको शिवका प्रिय जानकर हाथ जोड़ने लगे।

सम्बंधनका दर्शन करनेके लिये दूर-दूरसे लोग आने लगे, सभी उसे अपने-अपने शहर या गाँवमें बुलाते थे। उसकी मधुर बातें और कविता सुनते थे। एक दिन सम्बंधनको किसी दूरके एक मन्दिरमें बुलाया गया। उसके पिता उसे कंधेपर बैठाकर ले जा रहे थे। परंतु उसने कहा—'पिताजी ! मैं भी पैदल चलूँगा। जैसे आप और सभी भक्त चल रहे हैं।'

सम्बंधन नंगे पैर जमीनपर चलने लगे। अचानक मन्दिरके पुजारीको लगा, शिवकी मूर्ति हिल रही है। डरके मारे पुजारीने हाथ जोड़ लिये। तभी उसे आवाज सुनायी दी—'मेरा प्रिय भक्त मेरे दर्शनके लिये नंगे पैर आ रहा है। उसके पैरमें अभी-अभी काँटा चुभा है। जाओ, उसे मोतियोंके पर्देवाली पालकीमें बैठाकर लाओ।'

'परंतु प्रभो ! कहाँसे आयेगी ऐसी पालकी ?'—पुजारीने पूछा।

'मन्दिरके भीतरी प्रकोष्ठको खोलकर देखो। वहीं है पालकी।'

मन्दिरके पुजारीने दौड़कर भीतरकी कोठरीका ताला खोला। सचमुच वहाँ मोतियोंके पर्देवाली पालकी थी। सैकड़ों लोग इकट्ठे हो गये। सम्बंधनको पालकीमें बैठाकर मन्दिरमें लाया गया। पीछे-पीछे लोग चँवर डुला रहे थे। ढोल, झाँझ, मजीरोंसे कीर्तन हो रहा था।

अबतक (ज्ञान)सम्बंधनकी ख्याति दूर-दूरतक फैल चुकी थी। एक दिन उन्होंने अपने घरके बाहर शोर सुना—'नावकरसर आ रहे हैं।' नावकरसर बहुत बड़े संत थे। सभी उनका सम्मान करते थे। नावकरसरको अपनी ओर आते देख सम्बंधन तेजीसे उनकी ओर दौड़े।

आप महान् संत हैं। मेरे पिताके समान हैं। आपके दर्शन करके मैं धन्य हो गया। ऐसा कहकर वे उनके चरण छूनेके लिये झुके।

परंतु आश्चर्य ! नावकरसर पहले ही प्रणाम करनेके लिये झुक चुके थे। प्रसन्नताभरे स्वरमें बोले—'आप-जैसी सिद्धि किसीको मिलती है ! मैं आपका दर्शन करके धन्य हो गया।' अब वे दोनों मित्र बन चुके थे।

सम्बंधन और नावकरसर दोनों साथ-साथ तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। घूमते-घूमते वे 'वेदारण्यम्' नामक स्थानपर आये। वहाँके प्राचीन मन्दिरके विशाल पट बंद थे। उनपर बड़ा-सा ताला लटक रहा था।

उन्होंने लोगोंसे पूछा—'मन्दिरका दरवाजा क्यों नहीं खुल रहा है ?'

तब एक बूढ़े व्यक्तिने बताया—'मन्दिरका यह पट नहीं खुलेगा। आप चाहे तो पार्श्ववाली खिड़कीसे भीतर जा सकते हैं।'

'लेकिन ऐसा क्यों ?'—पूछनेपर उसी बूढ़ेने बताया—कहा जाता है कि 'एक बार देवता इस मन्दिरमें पूजा करने आये थे। पूजा करनेके बाद वे मन्दिरके पट बंद करके चले गये। तभीसे यह मुख्य दरवाजा नहीं खुला।'

(ज्ञान)सम्बंधनने नावकरसरसे कहा—'मेरी इच्छा है, मुख्य द्वारसे ही भीतर जाकर पूजा करूँ। आप शिवकी स्तुति कीजिये, दरवाजा खुल जायगा।'

नावकरसरने मुसकराकर कहा—'ठीक है, लेकिन दरवाजा फिरसे बंद करनेके लिये आपको भक्तिगीत सुनाना होगा।'

'स्वीकार है।'—सम्बंधनके मुखपर हँसी झलक उठी। और सचमुच नावकरसरने जब शिवकी स्तुति की, मन्दिरके द्वार खुल गये। आसपास खड़े लोगोंने यह चमत्कार देखा तो जय-जयकार कर उठे। इसके बाद सभीने मन्दिरमें जाकर पूजा की।

पूजा करके वे बाहर आ गये। सम्बंधनने अपना भक्तिगीत सुनाया। खड़-खड़-खड़की आवाज हुई। सबके देखते-देखते मन्दिरके कपाट फिर बंद हो गये। सम्बंधन और नावकरसर आगे बढ़ गये। कुछ समय बाद उन्होंने अलग-अलग दिशाओंमें यात्रा करनेका निश्चय किया।

चलते-चलते सम्बंधन गैलापुर पहुँचे। सम्पूर्ण नगर

उनके दर्शनके लिये उमड़ पड़ा। उनमें शिवनेसर भी था। यह उस शहरका सबसे धनी व्यापारी और शिव-भक्त था। उसने सम्बंधनका खूब स्वागत-सत्कार किया। अपनी सारी सम्पत्ति देनी चाही, पर सम्बंधनने कहा—'ठीक है। यह सम्पत्ति अब मेरी हो गयी। अब इसे मेरी ओरसे लोगोंकी भलाईमें लगाओ।'

कुछ दिन भ्रमणके बाद सम्बंधन घर लौट आये। तबतक माता-पिता उनके विवाहके लिये चिन्तित हो उठे। सम्बंधन अब सोलह वर्षके हो चुके थे। माने कहा—अब मैं वृद्धी हो गयी हूँ। सम्बंधन! घरमें बहू आये, मेरी यह इच्छा पूरी नहीं करोगे?

इसपर वे 'न' नहीं कर सके। नल्लूरकी एक सुन्दर कन्याके साथ उनका विवाह सम्पन्न हो गया।

परंतु सम्बंधन तो कुछ और ही तय कर चुके थे। उनके चेहरेपर अनोखा तेज दिखायी दे रहा था। विवाहकी रस्में पूरी हुई, सभी लोग मन्दिरमे दर्शनके लिये गये, आगे-आगे सम्बंधन, उसकी पत्नी और माता-पिता थे। मन्दिरमें जाकर सम्बंधनने प्रार्थना की—'प्रभो! अब मुझे अपने चरणोंमें स्थान दीजिये·····।'

तभी एक विचित्र चमत्कार हुआ। आकाशसे एक प्रकारकी किरणें धरतीपर आयीं फिर वे फैलने लगीं। देखते-देखते सारा मन्दिर उस प्रकाशपुञ्जमें समा गया। फिर उसमें एक द्वार दिखायी दिया। मन्दिरमें पूजा करनेके लिये आये लोग आश्चर्यमें पड़ गये, किंतु सम्बंधनके चेहरेपर मुसकान थी।

इतनेमें आकाशवाणी हुई—'सम्बंधन! तुम्हारे लिये मुक्तिका द्वार खुल गया है। तुम जिन्हें भी चाहो, साथ-साथ शिवलोकमें ला सकते हो।'

सम्बंधनने पहले माता-पिता और सभी भक्तोंको उस प्रकाशपुञ्जमे बने द्वारके भीतर जानेके लिये कहा। फिर वे स्वयं अपनी पत्नीके साथ उस प्रकाशपुञ्जकी ओर बढ़े। जैसे ही उन्होंने जगमगाते प्रकाश-द्वारके भीतर पैर रखा, वह प्रकाश सिमट गया।

रह गया था केवल गाँवका मन्दिर और उसका सोनेकी तरह झिलमिलाता शिखर—जो आज भी इस अनोखी कहानीको सुना रहा है।

विदेशोंमें शिव-मन्दिर

क्या आप जानते हैं कि—

भारतवर्षके बाहर शिवलिङ्ग तथा पार्वतीके मन्दिर निम्नलिखित स्थानोंमें स्थापित हैं—

(१) मक्कामें दो शिवलिङ्ग हैं।

(२) ग्लासगो (स्कॉट लैंड) में सुवर्णाच्छादित शिवलिङ्ग है।

(३) तुर्किस्तानके बाबलिन शहरमें बारह सौ फुट ऊँचा शिवलिङ्ग है।

(४) हेड्रॉपोलिस शहरमें तीन सौ फुट ऊँचा शिवलिङ्ग है।

(५) दक्षिणी अमेरिकाके ब्राजील देशमें अनेक शिवलिङ्ग है।

(६) कॉरिंथ (योरोप) में पार्वतीका मन्दिर है।

(७) मेक्सिकोमें अनेक शिवलिङ्ग हैं।

(८) कम्बोडियामें प्राचीन कालमें राजा राजेन्द्र वर्माद्वारा स्थापित शिवलिङ्ग है।

(९) जावा और सुमात्रा प्रदेशोंमे अनेकों शिवलिङ्ग हैं।

(१०) इंडोचाइनामें अनेक भव्य देवालय एवं प्राचीन शिलालेख हैं। इन शिलालेखोंमें शिव-विषयक लेख ही अधिक हैं। जिनके आरम्भमें लिखा रहता है—'ॐ नमः शिवाय।'

सर विलियम जोन्सने कहा है कि—

'ईजिप्टका सुप्रसिद्ध स्थल और आयरलैंडका धर्मस्थल शंकरका स्मारक लिङ्ग ही है।' (प्रे०—डॉ॰ ता॰ र॰ उपासनी)

प्रसिद्ध शिवमन्दिर, अर्चाविग्रह और शैवतीर्थ

[अपने शास्त्रोंमें भगवान् सदाशिवके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन प्राप्त होता है। संसारके जीव विभिन्न स्वभाव, रुचि एवं प्रवृत्तिके होते हैं, अतः पृथिवीके प्राणियोंपर अनुग्रह कर उनकी सुविधाके लिये भगवान् भी विभिन्न स्वरूपोंमें प्रादुर्भूत होते हैं। यह भारतीय संस्कृतिकी ही विशेषता है कि यहाँ ईश्वरका स्वरूप निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार दोनों रूपोंमें है। वास्तवमें तात्त्विक रूपसे तो सदाशिवका स्वरूप सत्-चित्-आनन्द-घन है, पर उपासनाकी दृष्टिसे विभिन्न रुचि, स्वभाव एवं प्रवृत्तिके अनुसार हमारे देव हमें अनेक रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। यही कारण है कि देशके विभिन्न भागोंमें एक शिवकी अनेक नाम-रूपों—जैसे नीलकण्ठ, पशुपतिनाथ, केदारेश्वर, मृत्युञ्जय, दक्षिणामूर्ति, अर्धनारीश्वर, हरि-हर, पञ्चवक्त्र, धर्मेश्वर, आत्मवीरेश्वर, शान्तेश्वर तथा नटराज आदिसे अर्चना-पूजा होती है।

विशाल भारतके अनेकानेक स्थानोंपर विभिन्न नाम-रूपोंसे भगवान् शिवके विग्रह-मन्दिर विद्यमान हैं, जिनकी अमित महिमाका विभिन्न पुराणोंमें वर्णन भी मिलता है। साधक, संत-महात्माओंने इन्हें अपनी साधना-उपासनासे जाग्रत् बना रखा है और भक्तगण भक्ति करके अपना अभीष्ट प्राप्त करते आ रहे हैं। यहाँ हम ऐसे ही शिवमन्दिर, साथ ही द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग, भगवान्‌की अष्टमूर्ति आदिका संकलन साधकोंके लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। भगवान् शिवकी उपासना एवं शिवके मन्दिर विश्वके अन्य देशोंमें भी प्राचीन कालसे उपलब्ध हैं, अतः उन्हें भी यहाँ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है।—सं०]

अष्टोत्तर शत दिव्य शिव-क्षेत्र

भूमिपर स्थित १०८ शैव क्षेत्र इस प्रकार हैं—कैवल्य शैलपर भगवान् शिव 'श्रीकण्ठ' नामसे विराजमान हैं। वे हिमालय पर्वतपर 'केदार' नामसे तथा काशीपुरीमें 'विश्वनाथ' नामसे विख्यात हैं। श्रीशैलपर 'मल्लिकार्जुन', प्रयागमें 'नीलकण्ठेश', गयामें 'रुद्र', कालञ्जरमें 'नीलकण्ठेश्वर', द्राक्षाराममें 'भीमेश्वर' तथा मायूरम्(मायावरम्-)में वे 'अम्बिकेश्वर' कहे जाते हैं। वे ब्रह्मावर्तमें 'देवलिङ्ग'के रूपमें, प्रभासमें 'शशिभूषण', श्वेतहस्तिपुरमें 'वृषध्वज', गोकर्णमें 'गोकर्णेश्वर', सोमनाथमें 'सोमेश्वर', श्रीरूपमें 'त्यागराज' तथा वेदमें 'वेदपुरीश्वर'के नामसे विख्यात हैं। भगवान् शिव भीमाराममें 'भीमेश्वर', मन्थनमें 'कालिकेश्वर', मधुरामें 'चोक्कनाथ', मानसमें 'माधवेश्वर', श्रीवाञ्छकमें 'चम्पकेश्वर', पञ्चवटीमें 'वटेश्वर', गजारण्यमें 'वैद्यनाथ' तथा तीर्थाचलमें 'तीर्थकेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हैं। वे कुम्भकोणम्‌में 'कुम्भेश', लेपाक्षीमें 'पापनाशन', कण्वपुरीमें 'कण्वेश' तथा मध्यमें 'मध्यार्जुनेश्वर' नामसे प्रतिष्ठित हैं। वे हरिहरपुरमें 'शंकर-नारायणेश्वर', विरिञ्चिपुरीमें 'मार्गेश', पञ्चनदमें 'गिरीश्वर', पम्पापुरमें 'विरूपाक्ष', सोमगिरिपर 'मल्लिकार्जुन', त्रिमकूटमें 'अगस्त्येश्वर' तथा सुब्रह्मण्यमें 'अहिपेश्वर' नामसे समादृत होते हैं। महाबल पर्वतपर वे 'महाबलेश्वर' नामसे, दक्षिणावर्तमें साक्षात् सूर्यके द्वारा पूजित 'अर्केश्वर', वेदारण्यम्‌में 'वेदारण्येश्वर', सोमपुरीमें 'सोमेश्वर', उज्जैनमें 'रामलिङ्गेश्वर', कश्मीरमें 'विजयेश्वर', महानन्दिपुरमें 'महानन्दिपुरेश्वर', कोटितीर्थमें 'कोटीश्वर', वृद्धक्षेत्रमें 'वृद्धाचलेश्वर' तथा अति पवित्र ककुद्‌पर्वतपर वे 'गङ्गाधरेश्वर' नामसे विख्यात हैं। भगवान् शिव चामराज नगरमें 'चामराजेश्वर', नन्दिपर्वतपर 'नन्दीश्वर', वधिराचल-पर 'चण्डेश्वर', गरपुरमें 'नञ्जुण्डेश्वर', शतशृङ्ग-पर्वतपर 'अधिपेश्वर', घनानन्द पर्वतपर 'सोमेश्वर', नल्लूरमें 'विमलेश्वर', नीडानाथपुरमें 'नीडानाथेश्वर', एकान्तमें 'रामलिङ्गेश्वर' तथा श्रीनागमें 'कुण्डलीश्वर'-रूपमें विराजते हैं। वे श्रीकन्यामें 'त्रिभङ्गीश्वर', उत्सङ्गमें 'राघवेश्वर', मत्स्य-तीर्थमें 'तीर्थेश्वर', त्रिकूट पर्वतपर 'ताण्डवेश्वर', प्रसन्नपुरीमें 'मार्गसहायेश्वर', गण्डकीमें 'शिवनाभ', श्रीपतिमें 'श्रीपतीश्वर,' धर्मपुरीमें 'धर्मलिङ्ग', कान्यकुब्जमें 'कलाधर', वाणिग्राममें 'विरिञ्चेश्वर' तथा नेपालमें 'नकुलेश्वर' कहे जाते हैं। जगन्नाथपुरीमें वे 'मार्कण्डेश्वर', नर्मदा-तटपर 'स्वयम्भू', धर्मस्थलमें 'मञ्जुनाथ', त्रिरूपकमें 'व्यासेश्वर', स्वर्णावतीमें 'कलिङ्गेश्वर', निर्मलमें 'पन्नगेश्वर', पुण्डरीकमें 'जैमिनीश्वर', अयोध्यामें 'मधुरेश्वर', सिद्धवटीमें 'सिद्धेश्वर', श्रीकूर्माचलपर 'त्रिपुरान्तक', मणिकुण्डल-तीर्थमें

'मणिमुक्तानन्दीश्वर', वटाटवीमें 'कृत्तिवासेश्वर', त्रिवेणीतटपर 'संगमेश्वर', स्तनिता-तीर्थमें 'मल्लेश्वर' तथा इन्द्रकील पर्वतपर 'अर्जुनेश्वर'-रूपमें विराजमान हैं। वे शेषाचलपर 'कपिलेश्वर', पुष्पगिरिपर 'पुष्पगिरीश्वर', चित्रकूटमें 'भुवनेश्वर', उज्जैनमें 'कालिकेश्वर' (महाकाल), ज्वालामुखीमें 'शूलटङ्क', मङ्गलीमें 'संगमेश्वर', तञ्जापुरी-(तंजौर-)में 'बृहती (दी) श्वर', पुष्करमें 'रामेश्वर', लङ्कामें 'मत्स्येश्वर', गन्धमादनपर 'कूर्मेश्वर', विन्ध्यपर्वतपर 'वराहेश्वर' और अहोबिलमें 'नृसिंह'रूपसे प्रकट हैं। प्रभु विश्वनाथ कुरुक्षेत्रमें 'वामनेश्वर'रूपमें', कपिलातीर्थमें 'परशुरामेश्वर', सेतुबन्धमें 'रामेश्वर', साकेतमें 'बलरामेश्वर', वारणावतमें 'बौद्धेश्वर', तत्त्वक्षेत्रमें 'कल्कीश्वर', महेन्द्राचलपर 'कृष्णेश्वर', कैलासपर्वतपर 'परम शिव', सूर्यबिम्बमें 'सदाशिव', वैकुण्ठमें 'नारायणेश', पातालमें 'हाटकेश्वर', ब्रह्मलोकमें 'ब्रह्मेश्वर', इन्द्रप्रस्थमें 'लोकनाथ', अमरकण्टकमें 'अमरनाथ', लवपुरीमें 'पशुपतिनाथ' तथा रुद्रप्रयागमें 'एकादशरुद्रेश्वर'-रूपमें व्यक्त हैं।

(ललितागम, ज्ञानपाद, शिवलिङ्ग-प्रादुर्भाव-पटल)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके अर्चा-विग्रह

इस विश्वमें जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है तथा जिसका वर्णन एवं स्मरण किया जाता है, वह सब भगवान् शिवका ही रूप है। करुणासिन्धु अपने आराधकों, भक्तों तथा श्रद्धास्पद साधकों और प्राणिमात्रकी कल्याणकी कामनासे उनपर अनुग्रह करते हुए स्थल-स्थलपर अपने विभिन्न स्वरूपोंमें स्थित हैं। जहाँ-जहाँ जब-जब भक्तोंने भक्तिपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया, तहाँ-तहाँ तब-तब वे अवतार लेकर भक्तोंका कार्य सम्पन्न करके स्थित हो गये। लोकोंका उपकार करनेके लिये उन्होंने अपने स्वरूपभूत लिङ्गकी कल्पना की। आराधकोंकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन-उन स्थानोंमें ज्योतीरूपमें आविर्भूत हुए और ज्योतिर्लिङ्ग-रूपमें सदाके लिये विद्यमान हो गये। उनका ज्योतिःस्वरूप सभीके लिये वन्दनीय, पूजनीय एवं नमनीय है। पृथिवीपर वर्तमान शिवलिङ्गोंकी संख्या असंख्य है तथापि इनमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंकी प्रधानता है। इनकी निष्ठापूर्वक उपासनासे पुरुष अवश्य ही परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है, अथवा वह शिवस्वरूप हो जाता है। शिवपुराण तथा स्कन्दादि पुराणोंमें इन ज्योतिर्लिङ्गोंकी महिमाका विशेषरूपसे प्रतिपादन हुआ है। यहाँतक भी कहा गया है कि इनके नाम-स्मरण मात्रसे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं, साधक शुद्ध निर्मल अन्तःकरणवाला हो जाता है और उसे अपने सत्य-स्वरूपका बोध हो जाता है तथा वह विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय होकर सर्वथा कृतार्थ हो जाता है। यहाँ इन्हीं द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥

अर्थात् (१) सौराष्ट्र-प्रदेश- (काठियावाड़-) में सोमनाथ, (२) श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, (३) उज्जैनमें महाकाल, (४) ओंकारमें परमेश्वर, (५) हिमाचलपर केदार, (६) डाकिनीमें भीमशंकर, (७) काशीमें विश्वेश्वर, (८) गौतमीतटपर त्र्यम्बक, (९) चिताभूमिमें वैद्यनाथ, (१०) दारुकावनमें नागेश, (११) सेतुबन्धमें रामेश्वर और (१२) शिवालयमें स्थित घुश्मेश्वर—इन बारह ज्योतिर्लिङ्गोंके नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। आगे इन्हींका संक्षेपमें वर्णन दिया जा रहा है—

(१) श्रीसोमनाथ

श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग प्रभास-क्षेत्र-(काठियावाड़-)के विरावल नामक स्थानमें स्थित है। यहाँके ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भावके विषयमें पुराणोंमें एक रोचक कथा प्राप्त होती है। शिवपुराणके अनुसार दक्ष प्रजापतिकी सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमा (सोम) के साथ हुआ था, इनमेंसे चन्द्रमा

भारतके
प्रधान शिवपीठ
ने
पा
ल
दिल्ली
मथुरा
प्रयाग
हैदराबाद
मद्रास
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग
अन्य प्रसिद्ध शिवमन्दिर
पञ्च तत्त्वलिङ्ग

रोहिणीसे विशेष स्नेह रखते थे। अपनी अन्य कन्याओंके साथ विषमताका व्यवहार देखकर कुपित हो दक्षने चन्द्रमाको क्षय-रोगसे ग्रस्त हो जानेका शाप दे दिया। सुधा-किरणोंके अभावमें सारा संसार निष्प्राण-सा हो गया। तब दुःखी हो चन्द्रमाने ब्रह्माजीके कहनेपर भगवान् आशुतोषकी आराधना की। भगवान्ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और चन्द्रमाको अमरत्व प्रदान करते हुए मास-मासमें पूर्ण एवं क्षीण होनेका वर दिया। तदनन्तर चन्द्रमा तथा अन्य देवताओंके द्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर उन्हींके नामसे ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ स्थित हो गये और सोमनाथके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात हुए। इसी पवित्र प्रभास-क्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपनी लीलाओंका संवरण किया था। भगवान् सोमनाथका ज्योतिर्लिङ्ग गर्भगृहके नीचे एक गुफामें है, जिसमें निरन्तर दीप जलता है।

सबकी प्रार्थनाओंको अस्वीकार कर दिया। माता पार्वती और भगवान् शिव पुत्र-वियोगके कारण दुःखका अनुभव करने लगे और फिर दोनों स्वयं क्रौञ्चपर्वतपर गये। माता-पिताके आगमनको जानकर स्नेहहीन हुए कुमार कार्तिकेय और दूर चले गये। अन्तमें पुत्रके दर्शनकी लालसासे जगदीश्वर भगवान् शिव ज्योतिःरूप धारणकर उसी पर्वतपर अधिष्ठित

हो गये। उस दिनसे ही वहाँ प्रादुर्भूत शिवलिङ्ग मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्गके नामसे विख्यात हुआ। मल्लिकाका अर्थ है पार्वती और अर्जुन शब्द शिवका वाचक है। इस प्रकार इस ज्योतिर्लिङ्गमें शिव एवं पार्वती—दोनोंकी ज्योतियाँ प्रतिष्ठित हैं।

एक अन्य कथाके अनुसार इसी पर्वतके पास चन्द्रगुप्त

(३) श्रीमहाकालेश्वर

सप्तमोक्षदायिनी पुरियोंमें अवन्तिका (उज्जैन) भी एक पुरी है। यह उत्तर भारतका एक प्रमुख शैव-क्षेत्र है। उज्जैनके महाकालवनमें शिप्रा नदीके तटपर भगवान् महादेवका 'महाकालेश्वर' ज्योतिर्लिङ्ग प्रतिष्ठित है। अवन्ती या अवन्तिका भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है। यह परम पुण्यमय और लोकपावनी पुरी है। महाकालेश्वर-लिङ्गकी स्थापनाके सम्बन्धमें पुराणोंमें अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। एक कथाके[१] अनुसार उज्जयिनीके राजा चन्द्रसेनकी शिवार्चनाको देखकर श्रीकर नामक एक पाँच वर्षका गोपबालक बड़ा ही उत्कण्ठित हुआ। वह एक सामान्य पत्थरको घरमें स्थापितकर उसकी शिवरूपमें उपासना करने लगा, परिवारजनोंने बालककी इस क्रियाको साधारण खेल समझकर तथा इस आदतको मिटानेके लिये अनेक प्रकारके कठिन प्रयत्न किये, किंतु शिवभक्त श्रीकरकी शिवभक्ति अनुदिन बढ़ती ही गयी। अन्तमें अपने भक्तको दर्शन देनेके लिये भगवान् ज्योतिर्लिङ्ग-रूपमें महाकालवनमें प्रकट हुए और वहीं स्थित हो गये।

एक दूसरा इतिहास यह भी है कि किसी समय इस अवन्तिकापुरीमें एक अग्निहोत्री वेदपाठी ब्राह्मण रहता था, जो अपने देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत नामक चार पुत्रोंके साथ शिवनिष्ठा तथा धर्मनिष्ठाकी पताका फहरा रहा था। उसकी कीर्ति सुनकर ब्रह्माजीसे वर-प्राप्त एक महामदान्ध दूषण नामक असुर, जो रत्नमाल पर्वतपर रहता था, अपने दल-बलसहित चढ़ आया। लोगोंमें त्राहि-त्राहि मच गयी। अन्ततः उस ब्राह्मण तथा ब्राह्मणपुत्रोंकी शिवभक्तिके प्रतापसे भगवान् भूतभावन एक गर्तसे प्रकट हो गये और उन्होंने एक हुंकारमात्रसे उस असुरको सेनासहित विनष्ट कर डाला और फिर वे संसारके कल्याणके लिये सदा वहीं वास करनेका उस ब्राह्मणको वर देकर अन्तर्धान हो गये। तबसे भगवान् शंकर लिङ्गरूपसे यहाँ स्थित हो गये। चूँकि भगवान् भयंकर हुंकारसहित वहाँ प्रकट हुए थे, इसलिये वे 'महाकाल' नामसे प्रसिद्ध हुए।
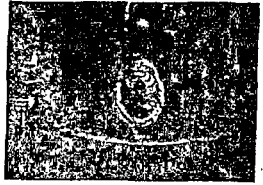
भगवान् महाकालेश्वर-मन्दिरका प्राङ्गण विशाल है। मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं रमणीय है। भगवान्का ज्योतीरूप भूमिकी सतहसे नीचे एक गर्भगृहमें स्थापित है। लिङ्गमूर्ति विशाल है और चाँदीकी जलहरीमे नाग परिवेष्टित है। इसके एक ओर गणेश, दूसरी ओर पार्वती तथा तीसरी ओर स्वामी कार्तिकेयकी मूर्ति विराजमान है। द्वारके सामने विशाल नन्दीकी प्रतिमा है। शिवरात्रिपर यहाँ बहुत भीड़ होती है। उज्जैनका शिप्राके तटपर लगनेवाला कुम्भका मेला तो प्रसिद्ध ही है। श्रद्धालु भक्तगण भगवती शिप्रामें स्नान तथा महाकालेश्वरका दर्शनकर अपनेको धन्य मानते हैं।

(४) श्रीओंकारेश्वर या ममलेश्वर (अमरेश्वर)

भगवान् शिवका यह परम पवित्र विग्रह मालवा-प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर अवस्थित है। यहीं मान्धाता पर्वतके ऊपर देवाधिदेव शिव ओंकारेश्वररूपमें विराजमान हैं। शिवपुराणमें

१-'राजा चन्द्रसेन एवं श्रीकर गोप'की भक्तिमयी रोचक कथा 'भक्तोंके चरित' शीर्षकसे इसी अङ्कमें दी गयी है। अतः विशेष जानकारीके लिये वहाँ देखना चाहिये।

श्रीओंकारेश्वर तथा श्रीअमलेश्वरके[1] दर्शनका अत्यन्त माहात्म्य वर्णित है। प्रसिद्ध सूर्यवंशीय राजा मान्धाताने, जिनके पुत्र अम्बरीष और मुचुकुन्द दोनों प्रसिद्ध भगवद्भक्त हो गये हैं तथा जो स्वयं बड़े तपस्वी और यज्ञोंके कर्ता थे, इस स्थानपर घोर तपस्या करके भगवान् शंकरको प्रसन्न किया था। इसीसे इस पर्वतका नाम मान्धाता-पर्वत पड़ गया।

मन्दिरमें प्रवेश करनेसे पूर्व दो कोठरियोंमेंसे होकर जाना पड़ता है। भीतर अँधेरा रहनेके कारण सदैव दीप जलता रहता है। ओंकारेश्वर-लिङ्ग गढ़ा हुआ नहीं है—प्राकृतिक रूपमें है। इसके चारों ओर सदा जल भरा रहता है। इस लिङ्गकी एक विशेषता यह भी है कि वह मन्दिरके गुम्बजके नीचे नहीं है। शिखरपर ही भगवान् शिवकी प्रतिमा विराजमान है। पर्वतसे आवृत यह मन्दिर साक्षात् ओंकारस्वरूप ही दृष्टिगत होता है। कार्तिक-पूर्णिमाको इस स्थानपर बड़ा भारी मेला लगता है।

(५) श्रीकेदारेश्वर

केदारनाथ पर्वतराज हिमालयके केदार नामक शृंगपर अवस्थित हैं। शिखरके पूर्व अलकनन्दाके सुरम्य तटपर बदरीनारायण अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरिद्वारसे लगभग १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील उत्तर है। भगवान् विष्णुके अवतार नर-नारायणने भरतखण्डके बदरिकाश्रममें तप किया था। वे नित्य पार्थिव शिवलिङ्गकी पूजा किया करते थे और भगवान् शिव नित्य ही उस अर्चालिङ्गमें आते थे। कालान्तरमें आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। उन्होंने नर-नारायणसे कहा—'मैं आपकी आराधनासे प्रसन्न हूँ, आप अपना वाञ्छित वर माँग लें।' नर-नारायणने कहा—'देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो आप अपने स्वरूपसे यहीं प्रतिष्ठित हो जायँ, पूजा-अर्चाको प्राप्त करते रहें एवं भक्तोंके दुःखोंको दूर करते रहें।' उनके इस प्रकार कहनेपर ज्योतिर्लिङ्गरूपसे भगवान् शंकर केदारमें स्वयं प्रतिष्ठित हो गये। तदनन्तर नर-नारायणने उनकी अर्चना की। उसी समयसे वे वहाँ 'केदारेश्वर' नामसे विख्यात हो गये। 'केदारेश्वर' के दर्शन-पूजनसे भक्तोंको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है।

सत्ययुगमें उपमन्युजीने यहीं भगवान् शंकरकी आराधना की थी। द्वापरमें पाण्डवोंने यहाँ तपस्या की। केदारनाथमें भगवान् शंकरका नित्य-सांनिध्य बताया गया है और यहाँके दर्शनोंकी बड़ी महिमा गायी गयी है।

(६) श्रीभीमशंकर

भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग बम्बईसे पूर्व एवं पूनासे उत्तर भीमा नदीके तटपर सह्याद्रिपर स्थित है। यहींसे भीमा नदी निकलती है। कहा जाता है कि भीमक नामक सूर्यवंशीय राजाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर यहाँपर भगवान् शंकर दिव्य ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें उद्भूत हुए थे। तभीसे वे भीमशंकरके नामसे प्रसिद्ध हो गये। किंतु शिवपुराणके अनुसार श्रीभीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग आसाममें कामरूप जिलेमें ब्रह्मपुर पहाड़ीमें अवस्थित है। लोककल्याण, भक्तोंकी रक्षा और राक्षसोंका विनाश करनेके लिये भगवान् शंकरने वहाँ अवतार

१-द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंमें ओंकारेश्वर तो है ही, परंतु उसके साथ अमलेश्वरका भी नाम लिया जाता है। वस्तुतः नाम ही नहीं—इन दोनोंका अस्तित्व भी पृथक्-पृथक् है। अमलेश्वरका मन्दिर नर्मदाके दक्षिण किनारेकी बस्तीमें है। पर इन दोनों ही शिव-रूपोंकी गणना प्रायः एकमें ही की गयी है। कहा जाता है कि एक बार विन्ध्य पर्वतने पार्थिवार्चनसहित ओंकारनाथकी छः मासतक विकट आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवजी प्रकट हुए। उन्होंने विन्ध्य पर्वतको मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। उसी समय वहाँ पधारे हुए देवों एवं ऋषियोंकी प्रार्थनापर उन्होंने 'ॐकार' नामक लिङ्गके दो भाग किये। इनमेंसे एकमें वे प्रणवरूपसे विराजे, जिससे उनका नाम ओंकारेश्वर पड़ा तथा पार्थिवलिङ्गसे सम्भूत भगवान् सदाशिव परमेश्वर, अमेश्वर या अमलेश्वर नामसे प्रख्यात हुए।

लिया था।[1] इस विषयमें शिवपुराणकी कथा है कि कामरूप देशमें कामरूपेश्वर नामक एक महान् शिवभक्त राजा रहते थे। वे सदा भगवान् शिवजीके पार्थिव-पूजनमें तल्लीन रहते थे। उन्हीं दिनों वहाँ भीम नामक एक भयंकर महाराक्षस प्रकट हुआ और देवभक्तोंको पीड़ित करने लगा। राजा कामरूपेश्वरकी शिवभक्तिकी ख्याति सुनकर वह उसके विनाशके लिये वहाँ आ पहुँचा और जैसे ही उसने ध्यानमग्न राजापर प्रहार करना चाहा तो उसकी तलवार भक्तपर न
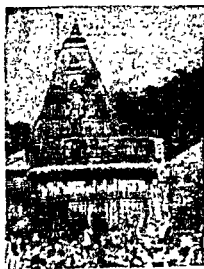
पड़कर पार्थिव लिङ्गपर पड़ी, भला भगवान्के भक्तका कोई अहित कर सकता है? उसी क्षण भक्तवत्सल भगवान् आशुतोष प्रकट हो गये और उन्होंने दुष्ट भीम तथा उसकी सेनाको विनष्ट कर डाला। सर्वत्र आनन्द छा गया। भक्तका उद्धार हो गया। ऋषियों तथा देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान्ने उस स्थानपर भीमशंकर नामसे प्रतिष्ठित होना स्वीकार किया।

(७) श्रीविश्वेश्वर

श्रीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग काशीमें श्रीविश्वनाथ नामसे प्रतिष्ठित है। इस पवित्र नगरीकी बड़ी महिमा है। भगवान् शंकरको यह काशीपुरी अत्यन्त प्रिय है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि इस पुरीका प्रलयकालमें भी लोप नहीं होता। भगवान् विश्वनाथ इसे अपने त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं। यह अविमुक्त-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ जो कोई भी शरीर छोड़ता है, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। काशीमें भगवान् विश्वनाथ मरनेवालोंके कानोंमें तारक मन्त्रका दान देते हैं। काशीमें भगवान् शंकर विश्वेश्वर या विश्वेश्वरके रूपमें अधिष्ठित रहकर प्राणियोंको भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं। विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी पूजा, अर्चा, दर्शन एवं नामस्मरणसे सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है और अन्तमें परमपुरुषार्थ मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है।

काशीमें उत्तरकी ओर ॐकार-खण्ड, दक्षिणमें केदार-खण्ड एवं मध्यमें विश्वेश्वर-खण्ड है, इसी विश्वेश्वर-खण्डके अन्तर्गत बाबा विश्वनाथजीका प्रसिद्ध मन्दिर है। श्रीकाशी विश्वनाथजीका मूल ज्योतिर्लिङ्ग उपलब्ध नहीं है। प्राचीन मन्दिरको मूर्तिभञ्जक मुगल बादशाह औरंगजेबने नष्ट-भ्रष्ट कर उस स्थानमें एक मस्जिदका निर्माण किया था। भगवान् विश्वेश्वरकी प्राचीन मूर्ति ज्ञानवापीमें पड़ी हुई बतलायी जाती है। नये विश्वनाथ-मन्दिरका निर्माण इससे थोड़ा-सा परे हटकर परम शिवभक्ता इन्दौरकी महारानी अहल्याबाईके द्वारा किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वामी श्रीकरपात्रीजीने गङ्गाके समीप नये विश्वनाथ-मन्दिरका निर्माण कराया, जहाँ दूरसे खड़े होकर दर्शन-पूजन करनेकी व्यवस्था है।

(८) श्रीत्र्यम्बकेश्वर

श्रीत्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग बम्बई प्रान्तके नासिक जिलेमें स्थित है। समीपवर्ती ब्रह्मगिरि नामक पर्वतसे पूतसलिला गोदावरी नदी निकलती है। उत्तर भारतमें पापविमोचिनी गङ्गाका जो माहात्म्य है वही दक्षिणमें गोदावरीका है, जैसे

१-कुछ विद्वानोंका कहना है कि नैनीतालके उज्जनक नामक स्थानमें जो लिङ्ग है वही भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग है।

गङ्गावतरणका श्रेय महातपस्वी भगीरथजीको है वैसे ही गोदावरीका प्रवाह ऋषिश्रेष्ठ गौतमजीकी महान् तपस्याका फल है, जो उन्हें भगवान् आशुतोषसे प्राप्त हुआ था। भगीरथके महान् प्रयत्नसे भूतलपर अवतरित हुई माता जाह्नवी जैसे भागीरथी कहलाती हैं, वैसे ही गौतम ऋषिकी तपस्याके फलस्वरूप आयी हुई गोदावरीका नाम गौतमी गङ्गा है।

बृहस्पतिके सिंह राशिमें आनेपर यहाँ बड़ा भारी कुम्भ-मेला लगता है और श्रद्धालुजन गौतमी गङ्गामें स्नान तथा भगवान् श्रीत्र्यम्बकेश्वरका दर्शनकर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। शिवपुराणमें वर्णन आया है कि गौतम ऋषि तथा गोदावरी और सभी देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् शिवने इस स्थानपर वास करनेकी कृपा की और त्र्यम्बकेश्वर नामसे विख्यात हुए। इस ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भावकी कथा सम्पूर्ण पापोंका शमन करनेवाली है जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

प्राचीन कालमें गौतम नामक एक परमर्षि थे और अहल्या उनकी पत्नी थीं। दोनों परम धार्मिक तथा सदाचारी थे, तपस्या और लोकोपकार करना ही उनका सर्वस्व था। वे दक्षिणमें ब्रह्मगिरिमें रहते थे। वहाँ महर्षि गौतमने दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की। एक समय उस क्षेत्रमें सौ वर्षतक बड़ा भयानक अवर्षण हो गया। अन्नादिके अभावमें सर्वत्र अकालकी विभीषिका छा गयी। उस समय सभी प्राणी उस क्षेत्रसे अन्यत्र जाकर बसने लगे। परोपकारी गौतम ऋषिने वरुणदेवको प्रसन्नकर एक गर्तको दिव्य जलसे परिपूर्ण करा लिया और उन्होंने अखण्ड दिव्य जलके प्रभावसे भूमिमें अन्न भी उपजा लिया। यह समाचार जानकर ऋषि-महर्षि तथा सभी प्राणी पुनः उस स्थानमें आकर आनन्दसे रहने लगे।

संयोगसे एक बार ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने जल लेनेके प्रसंगमें ऋषिपत्नी अहल्यासे द्वेष कर लिया और उन्होंने अपने पतिजनोंको इस बातके लिये तैयार भी करा लिया कि जिस-किसी उपायसे भी इन गौतम ऋषि तथा अहल्याको इस क्षेत्रसे बाहर कर दिया जाय। उनके पतियोंने गणेशकी आराधना की। भक्तपराधीन गणेशजी प्रकट हुए और उनके दुर्भावको समझते हुए उन्हें इस दुष्कार्यके लिये रोका भी, किंतु अन्तमें वे 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

इस कार्यकी पूर्तिके निमित्त गणेशजी एक दुर्बल गौका रूप धारण कर गौतम ऋषिके उस क्षेत्रमें पहुँच गये, जहाँ जौ और धान उगे थे। वह गौ काँप रही थी। वह जौ और धान खाने लगी। दैववश गौतम वहाँ पहुँचे और तिनकोंकी मुट्ठीसे उसे हटाने लगे। तृणोंके स्पर्शसे गौ पृथिवीपर गिर पड़ी और ऋषिके सामने ही मर गयी। उस समय छिपे हुए गौतमके विरोधी अन्य ऋषियोंने एवं उनकी पत्नियोंने कहा कि 'गौतमने अशुभ कर्म कर दिया है। इसके द्वारा गौकी हत्या हो गयी है। इसका मुँह देखना पाप है। अतः इसे इस स्थानसे बहिष्कृत कर दिया जाय।' यह कहकर उन्होंने उन्हें वहाँसे बहिष्कृत कर दिया। गौतमको अत्यन्त अपमानित होना पड़ा। गौतम ऋषिने उन्हीं लोगोंसे इसका प्रायश्चित्त पूछा—'आपलोगोंको मुझपर कृपा करनी चाहिये। आप इस पापको दूर करनेका उपाय बतायें। मैं उसे करूँगा।' उन्होंने बताया कि 'आप पूरी पृथिवीकी तीन बार परिक्रमा करें, मासव्रत करें, इस ब्रह्मगिरिपर सौ बार घूमें, तब आपकी शुद्धि होगी अथवा आप गङ्गाजल लाकर स्नान करें, एक करोड़ पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर शंकरकी पूजा करें, पुनः गङ्गा-स्नान करें और सौ घड़ोंसे पार्थिव शिवलिङ्गको स्नान करायें तो उद्धार होगा।'

गौतम ऋषिने इस प्रकार कठोर प्रायश्चित्त किया। *भगवान् शिव प्रकट हो गये। उन्होंने गौतमसे कहा—* 'महामुने! मैं आपकी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। आप वर माँगिये।' गौतमने भगवान् शिवकी स्तुति की और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहा—'देव! आप मुझे निष्पाप कीजिये।' शिवजीने कहा—'मुने! तुम धन्य हो। तुम सदा निष्पाप हो। तुम्हारे साथ तो दुष्टोंने छल किया था। जिन दुरात्माओंने तुम्हारे

साथ उपद्रव किया था, वे स्वयं दुराचारी, पापी एवं हत्यारे हैं।' शिवजीकी बात सुनकर गौतम आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने कहा कि 'वे लोग मेरा बड़ा ही उपकार किये हैं। यदि वे ऐसा न करते तो कदाचित् आपका यह दुर्लभ दर्शन न हुआ होता।' तदनन्तर गौतम ऋषिने शिवजीसे गङ्गा माँगी। शिवजीने गङ्गासे कहा—'गङ्गे ! तुम गौतम ऋषिको पवित्र करो।' गङ्गाने कहा कि 'मैं गौतम एवं उनके परिवारको पवित्र करके अपने स्थानपर चली जाऊँगी, किंतु भगवान् शिवने गङ्गाको लोकोपकारार्थ वैवस्वत मनुके अट्ठाईसवें कलियुगतक रहनेके लिये आदेश दिया। गङ्गाने उनकी आज्ञाको स्वीकार किया और भगवान् शिवको भी अपने सभी परिवारके साथ रहनेके लिये प्रार्थना की। इसके बाद सभी ऋषिगण एवं देवगण गङ्गा, गौतम और शिवकी जय-जयकार करने लगे। देवोंके प्रार्थना करनेपर भगवान् शिव वहीं गौतमी-तटपर 'त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग'के रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। यह त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग सभी कामनाओंको पूर्ण करता है। यह महापातकोंका नाशक और मुक्तिप्रदायक है। जब सिंह-राशिपर बृहस्पति आते हैं, तब इस गौतमी-तटपर सकल तीर्थ, देवगण और नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी पधारती हैं तथा महाकुम्भ पर्व होता है।

(९) श्रीवैद्यनाथ

पटना-कलकत्ता रेलमार्गपर किउल स्टेशनसे दक्षिण-पूर्व १०० किलोमीटरपर देवघर है, इसे ही वैद्यनाथधाम कहते हैं। यहींपर वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है। इसकी कथा इस प्रकार है—रावणने अतुल बल-सामर्थ्यकी प्राप्तिकी इच्छासे भगवान् शिवकी आराधना प्रारम्भ की। वह ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्निसेवन करता था, जाड़ेमें पानीमें रहता था एवं वर्षा-ऋतुमें खुले मैदानमें रहकर तप करता था। बहुत कालतक इस उग्र तपसे भी जब शिवजीने प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दिया, तब उसने पार्थिव लिङ्गकी स्थापना की और उसीके पास गड्ढा खोदकर अग्नि प्रज्वलित की। वैदिक विधानसे उस अग्निके सामने उसने शिवजीकी विधिवत् पूजा की। रावण अपने सिरको काट-काटकर चढ़ाने लगा। शिवजीकी कृपासे उसका कटा हुआ सिर पुनः जुड़ जाता था। इस प्रकार उसने नौ बार सिर काटकर चढ़ाया। जब दसवीं बार वह सिर चढ़ानेको उद्यत हुआ, तब भगवान् शिव प्रकट हो गये। भगवान् शिवने रावणसे कहा—'मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' रावणने उनसे अतुल बल-सामर्थ्यके लिये प्रार्थना की। भगवान् शिवने उसे वह वर दे दिया। रावणने उनसे लङ्का चलनेके लिये निवेदन किया। तब भगवान् शिवने उसके हाथमें एक शिवलिङ्ग देते हुए कहा—'रावण ! यदि तुम इसे मार्गमें कहीं भी पृथिवीपर रख दोगे तो यह वहीं अचल होकर स्थिर हो जायगा। अतः इसे सावधानीसे ले जाना।' रावण शिवलिङ्गको लेकर चलने लगा। शिवजीकी मायासे मार्गमें उसे लघुशङ्काकी इच्छा हुई, जिसे वह रोक न सका। उसने पासमें खड़े हुए एक गोपकुमारको देखा और निवेदन करके वह शिवलिङ्ग उसीके हाथमें दे दिया। वह गोप उस शिवलिङ्गके भारको सहन न कर सका और उसने वहीं पृथिवीपर उसे रख दिया। धरतीपर पड़ते ही वह शिवलिङ्ग अचल हो गया। तत्पश्चात् रावण जब उसे उठाने लगा, तब वह शिवलिङ्ग उठ न सका। हताश होकर रावण घर लौटा। यही शिवलिङ्ग 'वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग'के नामसे जगत्में प्रसिद्ध हो गया। इस घटनाको जानकर ब्रह्मा,

इन्द्रादि समस्त देवगण वहाँ उपस्थित हो गये। देवगणने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया। देवताओंने उनकी प्रतिष्ठा की। अन्तमें देवगण उन 'वैद्यनाथ महादेव' की स्तुति करके अपने-अपने भवनको चले गये। वैद्यनाथ महादेवकी पूजा-अर्चासे समस्त दुःखोंका शमन होता है और सुखोंकी प्राप्ति होती है। यह दिव्य शिवलिङ्ग मुक्तिप्रदायक है।

यहाँ दूर-दूरसे जल लाकर चढ़ानेका अत्यधिक माहात्म्य

वर्णित एवं लोकविश्रुत है। श्रद्धालुजन कंधेपर काँवर लिये यहाँकी यात्रा सम्पन्न करते हैं।[१]

(१०) श्रीनागेश्वर

श्रीनागेश्वर भगवान्‌का स्थान गोमती-द्वारकासे बेट-द्वारकाको जाते समय लगभग १२-१३ मील पूर्वोत्तर मार्गपर है। इस लिङ्गकी स्थापनाके सम्बन्धमें शिवपुराणकी कथा है कि प्राचीन कालमें दारुका नामकी एक राक्षसी थी, जो पार्वतीके वरदानसे सदा घमण्डमें भरी रहती थी। अत्यन्त बलवान् राक्षस दारुक उसका पति था। उसने बहुतसे राक्षसोंको लेकर वहाँ सत्पुरुषोंका संहार मचा रखा था। वह लोगोंके यज्ञ और धर्मका नाश करता फिरता था। पश्चिम समुद्रके तटपर उसका एक वन था, जो सम्पूर्ण समृद्धियोंसे भरा रहता था। उस वनका विस्तार सब ओरसे सोलह योजन था। दारुका अपने विलासके लिये जहाँ जाती थी, वहीं भूमि, वृक्ष तथा अन्य सब उपकरणोंसे युक्त वह वन भी चला जाता था। देवी पार्वतीने उस वनकी देख-रेखका भार दारुकाको सौंप दिया था। राक्षस दारुक अपनी पत्नी दारुकाके साथ वहाँ रहकर सबको भय देता था। उससे पीड़ित हुई प्रजाने महर्षि और्वकी शरणमें जाकर उनको अपना दुःख सुनाया। और्वने शरणागतोंकी रक्षाके लिये राक्षसोंको यह शाप दे दिया कि 'ये राक्षस यदि पृथिवीपर प्राणियोंकी हिंसा या यज्ञोंका विध्वंस करेंगे तो उसी समय अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेंगे।'

इधर देवताओंने जब यह बात सुनी, तब उन्होंने दुराचारी राक्षसोंपर चढ़ाई कर दी। राक्षस बहुत घबराये। यदि वे लड़ाईमें देवताओंको मारते तो मुनिके शापसे स्वयं भी मर जाते और नहीं मारते तो पराजित होकर भूखों मर जाते। इस अवस्थामें दारुकाने कहा—'भवानीके वरदानसे मैं इस सारे वनको जहाँ चाहूँ, ले जा सकती हूँ।' यों कहकर वह समस्त वनको ज्यों-का-त्यों लेकर समुद्रमें जा बसी। अब राक्षस लोग पृथिवीपर न रहकर जलमें रहने लगे और वहाँ प्राणियोंको पीड़ा देने लगे।

एक बार बहुत-सी नावें उधर आ निकलीं, जो मनुष्योंसे भरी थीं। राक्षसोंने उनमें बैठे हुए सभी लोगोंको पकड़ लिया और बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया। वे अनेक प्रकारसे उनको सताने लगे। उस दलका प्रधान सुप्रिय नामका एक वैश्य था। वह बड़ा सदाचारी, भस्म-रुद्राक्षधारी तथा भगवान् शिवका परम भक्त था। सुप्रिय शिवकी पूजा किये बिना भोजन भी नहीं करता था। उसने अपने बहुतसे साथियोंको भी शिवकी पूजा सिखा दी थी। सब लोग 'नमः शिवाय' मन्त्रका जप और शंकरजीका ध्यान करने लगे थे। दारुक राक्षसको जब इस बातका पता चला तो उसने सुप्रियकी बड़ी भर्त्सना की और उसके साथके राक्षस सुप्रियको मारने दौड़े। उन राक्षसोंको आता देख सुप्रिय भगवान् शंकरको पुकारते हुए कहने लगा—'महादेव! मेरी रक्षा कीजिये। दुष्टहन्ता महाकाल! हमें इन दुष्टोंसे बचाइये। भक्तवत्सल शिव! अब मैं आपके ही अधीन हूँ और आप ही मेरे सर्वस्व हैं।'

सुप्रियके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर एक विवरमेंसे निकल पड़े। उनके साथ ही चार दरवाजोंका एक उत्तम मन्दिर भी प्रकट हो गया। उसके मध्यभागमें अद्भुत ज्योतिर्मय शिवलिङ्ग प्रकाशित हो रहा था। उसके साथ शिवपरिवारके सब लोग विद्यमान थे। सुप्रियने अपने साथियोंके साथ उनका दर्शन करके पूजन किया। पूजित होनेपर भगवान् शम्भुने प्रसन्न हो स्वयं पाशुपतास्त्र लेकर प्रधान-प्रधान राक्षसों, उनके सारे उपकरणों तथा सेवकोंको भी तत्काल ही नष्ट कर दिया और उन दुष्टहन्ता शंकरने अपने भक्त सुप्रियकी रक्षा की।

इधर राक्षसी दारुकाने दीनचित्तसे देवी पार्वतीकी स्तुति

१-'परल्यां वैद्यनाथं च' इस वचनके अनुसार कुछ विद्वानोंका यह निश्चित मत है कि हैदराबाद राज्यके अन्तर्गत परलीग्रामका शिवलिङ्ग ही वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग है।

की और अपने वंशकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। इसपर प्रसन्न होकर महादेवीने उसे अभयदान दिया।

इस प्रकार अपने भक्तोंके पालन और उनकी रक्षाके लिये भगवान् शंकर और पार्वती स्वयं वहाँ स्थित हो गये। ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप महादेवजी वहाँ नागेश्वर कहलाये और देवी शिवा नागेश्वरीके नामसे विख्यात हुईं। इनके दर्शनका माहात्म्य अलौकिक है। शिवपुराणमें कहा गया है कि जो आदरपूर्वक इनकी उत्पत्ति और माहात्म्यको सुनेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर समस्त ऐहिक सुखोंको भोगता हुआ अन्तमें परमपदको प्राप्त होगा।

(११) श्रीरामेश्वर

भगवान् शिवका ग्यारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग सेतुबन्ध-रामेश्वर है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके कर-कमलोंसे इसकी स्थापना हुई थी। लंकापर चढ़ाई करनेके लिये जाते हुए जब भगवान् श्रीराम यहाँ पहुँचे तो उन्होंने समुद्रतटपर बालुकासे एक शिवलिङ्गका निर्माण कर उसका पूजन किया। यह भी कहा जाता है कि समुद्र-तटपर भगवान् श्रीराम जल पी ही रहे थे कि एकाएक आकाशवाणी हुई—'मेरी पूजा किये बिना ही जल पीते हो?' इस वाणीको सुनकर भगवान्ने वहाँ समुद्रतटपर बालुकाकी लिङ्गमूर्ति बनाकर शिवजीकी पूजा की और रावणपर विजय प्राप्त करनेका आशीर्वाद माँगा, जो भगवान् शंकरने उन्हें सहर्ष प्रदान किया। उन्होंने लोकोपकारार्थ ज्योतिर्लिङ्गरूपसे सदाके लिये वहाँ वास करनेकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली।

एक दूसरा इतिहास इस लिङ्ग-स्थापनके सम्बन्धमें यह है कि जब रावणका वध करके भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीको लेकर दल-बलसहित वापस आने लगे, तब समुद्रके इस पार गन्धमादन पर्वतपर पहला पड़ाव डाल दिया। उनका आगमन जानकर मुनि-समाज भी वहाँ आया। यथोचित सत्कारके उपरान्त श्रीरामने उनसे पुलस्त्य-कुलका विनाश करनेके कारण ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त होनेका उपाय पूछा। ऋषियोंने कहा—'प्रभो! शिवलिङ्गकी स्थापनासे सारे पाप तत्क्षण कट जाते हैं।'

तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामने हनुमान्जीको कैलाससे शिवलिङ्ग लानेका आदेश दिया। वे क्षणमात्रमें कैलास जा पहुँचे, पर वहाँ शिवजीके दर्शन नहीं हुए। अतएव वे वहाँ शिवजीके दर्शनार्थ तप करने लगे और उनके दर्शन प्राप्त करके उन्होंने शिवलिङ्ग लेकर गन्धमादन पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। इधर जबतक वह आये तबतक ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवारको अत्यन्त शुभ-मुहूर्तमें शिव-स्थापना भी हो चुकी थी। मुनियोंने हनुमान्जीके आनेमें विलम्ब समझकर मुहूर्त निकलता देख श्रीजानकीजीद्वारा निर्मित बालुका-लिङ्गकी स्थापना कर दी थी। इसपर पवनपुत्र अत्यन्त दुःखी हुए। कृपानिधान भगवान् रामने भक्तकी व्यथा समझकर उनके द्वारा

लाये शिवलिङ्गको भी वहीं 'हनुमदीश्वर' नामसे स्थापित करा दिया। श्रीरामेश्वर एवं हनुमदीश्वरका दिव्य माहात्म्य बड़े विस्तारके साथ स्कन्दपुराण, शिवपुराण, मानस आदिमें आया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने 'रामेश्वर' महादेवके दर्शनके विषयमें कहा है—

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥

(रा० च० मा० ६। ३। १)

श्रीरामेश्वरजीका मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं विशाल है। इस मन्दिरमें श्रीशिवजीकी प्रधान लिङ्ग-मूर्तिके अतिरिक्त और भी अनेक शिवमूर्तियाँ तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। नन्दीकी एक बहुत बड़ी मूर्ति है। मन्दिरके अंदर अनेक कुएँ हैं, जो तीर्थ कहलाते हैं। गङ्गोत्तरीके गङ्गाजलको श्रीरामेश्वर ज्योतिर्लिङ्गपर चढ़ानेका बड़ा माहात्म्य है। श्रीरामेश्वरसे लगभग २०

मीलकी दूरीपर धनुष्कोटि नामक तीर्थ है जो श्राद्धादिके लिये प्रशस्त तीर्थ है। श्रीरामेश्वर तीर्थके आस-पास और भी अनेकों तीर्थ हैं।

(१२) श्रीघुश्मेश्वर

घुश्मेश्वर, घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग मध्य रेलवेकी मनमाड-पूर्णा लाइनपर मनमाडसे लगभग

१०० कि॰ मी॰ दूर दौलताबाद स्टेशनसे २० कि॰ मी॰ दूर वेरूल ग्रामके पास स्थित है[1]। शिवपुराणमें इस लिङ्गके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें एक रोचक कथा आयी है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

दक्षिण दिशामें एक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसका नाम है देवगिरि। वह देखनेमें अद्भुत तथा नित्य परम शोभासे सम्पन्न है। उसीके निकट भरद्वाजकुलमें उत्पन्न सुधर्मा नामके एक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण रहते थे। उनकी प्रिय पत्नीका नाम सुदेहा था। दोनों भगवान् शंकरके भक्त थे। सुदेहा घरके कार्योंमें कुशल और पतिकी सेवा करनेवाली थी। सुधर्मा भी वेदवर्णित मार्गपर चलते थे और नित्य अग्निहोत्र किया करते थे। वे वेद-शास्त्रके मर्मज्ञ थे और शिष्योंको पढ़ाया करते थे। धनवान् होनेके साथ ही बड़े दाता और सौजन्य आदि सद्गुणोंके भाजन थे।

इतना होनेपर भी उनके कोई पुत्र नहीं था। ब्राह्मणको तो कोई दुःख नहीं था, परंतु उनकी पत्नी इससे बहुत दुःखी रहती थी। वह पतिसे बार-बार पुत्रके लिये प्रार्थना करती। पति उसको ज्ञानोपदेश देकर समझाते, परंतु उसका मन नहीं मानता था। अन्ततोगत्वा ब्राह्मणने कुछ उपाय भी किया, परंतु वह सफल नहीं हुआ। तब ब्राह्मणीने अत्यन्त दुःखी हो बहुत हठ करके अपनी बहिन घुश्मासे पतिका दूसरा विवाह करा दिया। विवाहसे पहले सुधर्माने समझाया कि इस समय तो तुम बहिनसे प्यार कर रही हो, परंतु जब इसके पुत्र हो जायगा तब इससे स्पर्धा करने लगोगी। उसने वचन दिया कि मैं बहिनसे कभी डाह नहीं करूँगी। विवाह हो जानेपर घुश्मा दासीकी भाँति बड़ी बहिनकी सेवा करने लगी। सुदेहा भी उसे बहुत प्यार करती रही। घुश्मा अपनी शिवभक्ता बहिनकी आज्ञासे नित्य एक सौ एक पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर विधिपूर्वक पूजा करने लगी। पूजा करके वह निकटवर्ती तालाबमें उनका विसर्जन कर देती थी।

शंकरजीकी कृपासे उसके एक सुन्दर सौभाग्यवान् और सद्गुणसम्पन्न पुत्र हुआ। घुश्माका कुछ मान बढ़ा। इससे सुदेहाके मनमें डाह पैदा हो गयी, पुत्र बड़ा हुआ। समयपर उसका विवाह हुआ। पुत्रवधू घरमें आ गयी। अब तो वह और भी जलने लगी। डाहने उसकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया और एक दिन उसने रातमें सोते हुए पुत्रको मार डाला और उसी तालाबमें ले जाकर डाल दिया, जहाँ घुश्मा प्रतिदिन पार्थिव-लिङ्ग विसर्जित करती थी। घर लौटकर वह सुखपूर्वक सो गयी।

सवेरे घुश्मा उठकर नित्यकी भाँति पूजनादि कर्म करने लगी। ब्राह्मण सुधर्मा भी अपने नित्यकर्ममें व्यस्त हो गये। इसी समय उनकी ज्येष्ठ पत्नी सुदेहा भी उठी और बड़े आनन्दसे घरके काम-काज करने लगी, क्योंकि उसके हृदयमें पहले जो ईर्ष्याकी आग जलती थी, वह अब बुझ गयी थी। उधर जब बहूने उठकर पतिकी शय्याको देखा तो वह खूनसे भीगी दिखायी दी और उसपर शरीरके कटे हुए कुछ अङ्ग दिखायी पड़े, वह रोती हुई अपनी सास (घुश्मा) के पास गयी और बोली—'माता! आपके पुत्र कहाँ हैं? उनकी शय्या खूनसे भीगी हुई है और उसपर शरीरके कुछ टुकड़े दिखायी देते हैं। हाय! मैं मारी गयी। किसने यह दुष्ट कर्म किया है? ऐसा कहती हुई वह भाँति-भाँतिसे करुण विलाप करती हुई

१-कुछ लोग इसे राजस्थानके शिवाड़ नामक नगरमें भी बताते हैं।

की और अपने वंशकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। इसपर प्रसन्न होकर महादेवीने उसे अभयदान दिया।

इस प्रकार अपने भक्तोंके पालन और उनकी रक्षाके लिये भगवान् शंकर और पार्वती स्वयं वहाँ स्थित हो गये। ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप महादेवजी वहाँ नागेश्वर कहलाये और देवी शिवा नागेश्वरीके नामसे विख्यात हुईं। इनके दर्शनका माहात्म्य अलौकिक है। शिवपुराणमें कहा गया है कि जो आदरपूर्वक इनकी उत्पत्ति और माहात्म्यको सुनेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर समस्त ऐहिक सुखोंको भोगता हुआ अन्तमें परमपदको प्राप्त होगा।

(११) श्रीरामेश्वर

भगवान् शिवका ग्यारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग सेतुबन्ध-रामेश्वर है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके कर-कमलोंसे इसकी स्थापना हुई थी। लंकापर चढ़ाई करनेके लिये जाते हुए जब भगवान् श्रीराम यहाँ पहुँचे तो उन्होंने समुद्रतटपर बालुकासे एक शिवलिङ्गका निर्माण कर उसका पूजन किया। यह भी कहा जाता है कि समुद्र-तटपर भगवान् श्रीराम जल पी ही रहे थे कि एकाएक आकाशवाणी हुई—'मेरी पूजा किये बिना ही जल पीते हो?' इस वाणीको सुनकर भगवान्ने वहाँ समुद्रतटपर बालुकाकी लिङ्गमूर्ति बनाकर शिवजीकी पूजा की और रावणपर विजय प्राप्त करनेका आशीर्वाद माँगा, जो भगवान् शंकरने उन्हें सहर्ष प्रदान किया। उन्होंने लोकोपकारार्थ ज्योतिर्लिङ्गरूपसे सदाके लिये वहाँ वास करनेकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली।

एक दूसरा इतिहास इस लिङ्ग-स्थापनके सम्बन्धमें यह है कि जब रावणका वध करके भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीको लेकर दल-बलसहित वापस आने लगे, तब समुद्रके इस पार गन्धमादन पर्वतपर पहला पड़ाव डाल दिया। उनका आगमन जानकर मुनि-समाज भी वहाँ आया। यथोचित सत्कारके उपरान्त श्रीरामने उनसे पुलस्त्य-कुलका विनाश करनेके कारण ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त होनेका उपाय पूछा। ऋषियोंने कहा—'प्रभो! शिवलिङ्गकी स्थापनासे सारे पाप तत्क्षण कट जाते हैं।'

तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामने हनुमान्‌जीको कैलाससे शिवलिङ्ग लानेका आदेश दिया। वे क्षणमात्रमें कैलास जा पहुँचे, पर वहाँ शिवजीके दर्शन नहीं हुए। अतएव वे वहाँ शिवजीके दर्शनार्थ तप करने लगे और उनके दर्शन प्राप्त करके उन्होंने शिवलिङ्ग लेकर गन्धमादन पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। इधर जबतक वह आये तबतक ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवारको अत्यन्त शुभ-मुहूर्तमें शिव-स्थापना भी हो चुकी थी। मुनियोंने हनुमान्‌जीके आनेमें विलम्ब समझकर मुहूर्त निकलता देख श्रीजानकीजीद्वारा निर्मित बालुका-लिङ्गकी स्थापना कर दी थी। इसपर पवनपुत्र अत्यन्त दुःखी हुए। कृपानिधान भगवान् रामने भक्तकी व्यथा समझकर उनके द्वारा

लाये शिवलिङ्गको भी वहीं 'हनुमदीश्वर' नामसे स्थापित करा दिया। श्रीरामेश्वर एवं हनुमदीश्वरका दिव्य माहात्म्य बड़े विस्तारके साथ स्कन्दपुराण, शिवपुराण, मानस आदिमें आया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने 'रामेश्वर' महादेवके दर्शनके विषयमें कहा है—

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥

(रा० च० मा० ६। ३। १)

श्रीरामेश्वरजीका मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं विशाल है। इस मन्दिरमें श्रीशिवजीकी प्रधान लिङ्ग-मूर्तिके अतिरिक्त और भी अनेक शिवमूर्तियाँ तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। नन्दीकी एक बहुत बड़ी मूर्ति है। मन्दिरके अंदर अनेक कुएँ हैं, जो तीर्थ कहलाते हैं। गङ्गोत्तरीके गङ्गाजलको श्रीरामेश्वर ज्योतिर्लिङ्गपर चढ़ानेका बड़ा माहात्म्य है। श्रीरामेश्वरसे लगभग २०

तथा ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः ।

परमात्मा शिवकी ये अष्टमूर्तियाँ समस्त संसारको व्याप्त किये हुई हैं, इस कारण विश्वात्मा शिवकी उपासना करनेसे उनका जगद्रूप शरीर पुष्टि लाभ करता है। यही शिवकी वास्तविक आराधना है। इस कारण अपनी अष्टमूर्तियोंके द्वारा जो अखिल विश्वको अधिष्ठित किये हुए हैं, उन परम कारण महादेवकी सर्वतोभावेन आराधना करनी चाहिये। प्रत्यक्षरूपमें भगवान् शिव अपनी अष्टमूर्तियोंके रूपमें अधिष्ठित होकर अपने भक्तोंका कल्याण कर रहे हैं। यहाँ अष्टमूर्ति-स्वरूप भगवान् शिवके अर्चा-विग्रहोंका किंचित् विवरण दिया जा रहा है।

अष्टमूर्तिके उपास्य रूप

(१) क्षिति-लिङ्ग—शिवकाञ्ची—पञ्चभूतोंके नामसे जो पाँच लिङ्ग प्रसिद्ध हैं, वे सभी दक्षिण भारतमें स्थित हैं। इनमेंसे एकाम्रेश्वरका क्षितिलिङ्ग शिवकाञ्चीमें है। अयोध्या आदि मोक्षदायिनी सप्त पुरियोंमें काञ्चीपुरी भी है, इसे हरिहरात्मक पुरी भी कहा जाता है, क्योंकि इसके शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची नामक दो भाग हैं। कांजीवरम् स्टेशनसे लगभग एक मील दूर सर्वतीर्थ नामक एक सरोवर है। इसी सरोवरसे लगभग एक फर्लांग दूर भगवान् एकाम्रेश्वरका भव्य एवं विशाल मन्दिर है। मुख्य मन्दिरोंमें तीन द्वारोंके भीतर श्रीएकाम्रेश्वर शिवलिङ्ग स्थित है, लिङ्गमूर्ति श्याम है। लिङ्गमूर्तिके पीछे श्रीगौरीशंकरकी युगलमूर्ति है। भगवान् एकाम्रेश्वरपर जल नहीं चढ़ाया जाता, चमेलीके सुगन्धित तैलसे अभिषेक होता है। मुख्य मन्दिरकी दो परिक्रमाएँ हैं, जिनमें शिवभक्तगण, गणेशजी, नन्दीश्वर, कालिका देवी आदिके छोटे-छोटे मन्दिर हैं। जगमोहनमें ६४ योगिनियोंकी मूर्तियाँ हैं।

भगवान् एकाम्रेश्वरके प्राकट्यके विषयमें कहा जाता है कि एक बार भगवती पार्वतीने कौतूहलवश भगवान् शंकरके नेत्रोंको बंद कर दिया, फलस्वरूप तीनों लोकोंमें महान् अन्धकार छा गया। असमयमें ही इस प्रलयकारी दृश्यको देखकर भगवान् शंकरने इसके प्रायश्चित्तस्वरूप पार्वतीजीको तपस्या करनेका आदेश दिया, तदनुसार भगवती उमाने वालुकामय लिङ्ग बनाकर कठोर तपस्या की। भगवती पार्वतीद्वारा प्रतिष्ठित स्थावर लिङ्ग ही शिवकाञ्चीका एकाम्रनाथ क्षितिलिङ्ग है।

(२) जलतत्त्व-लिङ्ग—जम्बुकेश्वर—पञ्चतत्त्व-लिङ्गोंमें जम्बुकेश्वर आपोलिङ्गम् (जलतत्त्वलिङ्ग) माना जाता है। त्रिचिनापल्लीमें श्रीरङ्गम्से एक मील दूरीपर एक जल-प्रवाहके ऊपर जम्बुकेश्वरलिङ्ग स्थापित है। लिङ्गमूर्तिके नीचेसे जल ऊपर आता रहता है। स्थापत्य शिल्पकी दृष्टिसे यह मन्दिर बहुत उत्तम बना है। मन्दिरके बाहर पाँच परकोटे हैं। यहाँके जम्बु अर्थात् जामुनके पेड़का भी बड़ा माहात्म्य है। इसी महिमापर इस जलमूर्तिका नाम जम्बुकेश्वर पड़ा है।

(३) तेजोलिङ्ग—अरुणाचल—अरुणाचलम्का ही तमिल नाम तिरुवण्णमलै है। यहाँ भगवान् शंकरका दिव्य अग्निस्वरूप तेजोलिङ्ग अवस्थित है। अरुणाचलेश्वर शिवका मन्दिर बहुत विशाल है और इस मन्दिरका गोपुर दक्षिण भारतका सबसे चौड़ा गोपुर माना जाता है। तीन गोपुर पार करनेके बाद अरुणाचलेश्वरका निज मन्दिर है। कहा जाता है कि भगवती पार्वतीने कुछ कालतक अरुणाचल-तीर्थमें तपस्या की। फलस्वरूप अरुणाचल पर्वतमें अग्नि शिखाके रूपमें एक तेजोलिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ। यही अग्निस्वरूप तेजोलिङ्ग है। यहाँ कार्तिक-पूर्णिमाके समय विशेष महोत्सव होता है। मन्दिरकी परिक्रमामें भी अनेक देवी-देवताओंके भव्य विग्रह प्रतिष्ठित हैं।

(४) वायुलिङ्ग—कालहस्तीश्वर—तिरुपति-बालाजीसे कुछ ही दूर स्वर्णमुखी नदीके पवित्र तटपर भगवान् शिव श्रीकालहस्तीश्वर नामसे वायुलिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर बहुत सुन्दर और ऊँचा है। मन्दिरके गर्भगृहमें प्रकाशका अभाव है, भगवान्के दर्शन दीपकके प्रकाशमें होते हैं। लोगोंका विश्वास है कि यहाँ एक विशेष वायुके झोंकेके रूपमें भगवान् सदाशिव सदा विराजमान रहते हैं। मन्दिरकी परिक्रमामें अनेकों देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँकी शिवमूर्ति गोल नहीं अपितु चौकोर है। इस मूर्तिके सामने महान् शिवभक्त कण्णप्पकी भी एक प्रतिमा है[१]। इस विलक्षण शिवभक्तने अपने दोनों नेत्र निकालकर भगवान्को

१-भक्त कण्णप्पकी कथा 'शिवभक्तोंके चरित' शीर्षकमें इसी अङ्कमें दी गयी है, पूरी जानकारीके लिये उस स्थलको देखना चाहिये।

रोने लगी। सुधर्माकी बड़ी पत्नी सुदेहा भी उस समय 'हाय ! मैं मारी गयी।' ऐसा कहकर ऊपरसे दुःखी होनेका अभिनय करने लगी। किंतु यह सब सुनकर भी घुश्मा अपने नित्य पार्थिव-पूजनके व्रतसे विचलित नहीं हुई। उसका मन बेटेको देखनेके लिये तनिक भी उत्सुक नहीं हुआ। उसके पतिकी भी ऐसी ही अवस्था थी। जबतक नित्य-नियम पूरा नहीं होता, तबतक उन्हें दूसरी किसी बातकी चिन्ता नहीं होती। पूजन समाप्त होनेपर घुश्माने अपने पुत्रकी शय्यापर दृष्टिपात किया तथापि उसने यह सोचकर दुःख न माना कि जिन्होंने यह बेटा दिया था, वे ही इसकी रक्षा करेंगे। एकमात्र वे प्रभु सर्वेश्वर शम्भु ही हमारे रक्षक हैं तो मुझे चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है? यह सोचकर उसने शिवके भरोसे धैर्य धारण किया और उस समय दुःखका अनुभव नहीं किया। वह पूर्ववत् पार्थिव शिवलिङ्गोंको लेकर स्वस्थ-चित्तसे शिवके नामोंका उच्चारण करती हुई उस तालाबके किनारे गयी। उन पार्थिव लिङ्गोंको तालाबमें डालकर जब वह लौटने लगी तो उसे अपना पुत्र उसी तालाबके किनारे खड़ा दिखायी दिया। उस समय अपने पुत्रको सकुशल देखकर घुश्माको न हर्ष हुआ और न विषाद। वह पूर्ववत् स्वस्थ बनी रही। इसी समय उसपर संतुष्ट हुए ज्योतिःस्वरूप महेश्वर शिव उसके सामने प्रकट हो गये और बोले—'सुमुखि ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तेरी दुष्टा सौतने इस बच्चेको मार डाला था। अतः मैं उसे त्रिशूलसे मारूँगा।'

तब घुश्माने शिवको प्रणाम किया और यही वर माँगा कि उसकी बड़ी बहन सुदेहाको भगवान् क्षमा कर दें।

शिव बोले—'उसने तो बड़ा भारी अपकार किया है, तुम उसपर उपकार क्यों करती हो? दुष्ट कर्म करनेवाली सुदेहा तो दण्डके योग्य है।'

घुश्माने कहा—'देव ! मैंने यह शास्त्र-वचन सुन रखा है कि जो अपकार करनेवालोंपर भी उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे पाप बहुत दूर भाग जाता है। प्रभो ! मैं चाहती हूँ कि उसके भी पाप भस्म हो जायँ। फिर उसने कुकर्म किया है तो करे, मैं ऐसा क्यों करूँ।'

घुश्माके ऐसा कहनेपर दयासिन्धु भक्तवत्सल महेश्वर और भी प्रसन्न हुए और बोले—'घुश्मे ! तुम कोई और भी वर माँगो। मैं तुम्हारे लिये हितकर वर अवश्य दूँगा, क्योंकि मैं तुम्हारी इस भक्तिसे तथा विकारशून्य स्वभावसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

भगवान् शिवकी बात सुनकर घुश्मा बोली—'प्रभो ! यदि आप वर देना चाहते हैं तो लोगोंकी रक्षाके लिये सदा यहाँ निवास कीजिये और मेरे नामसे ही आपकी ख्याति हो।'

तब भगवान् शिव बड़ी प्रसन्नतासे घुश्माको अनेक वर देकर वहाँ ज्योतिर्लिङ्ग-रूपमें स्थित हो गये और घुश्माके नामपर ही घुश्मेश्वर कहलाये। उस सरोवरका नाम शिवजीके कथनानुसार ही शिवालय हो गया।

उधर सुदेहा भी पुत्रको जीवित देखकर बहुत लज्जित हुई। उसने बहुत पश्चात्ताप किया और पति तथा बहिनके साथ उस शिवलिङ्गकी एक सौ एक दक्षिणावर्त परिक्रमा की। पूजा करके परस्पर मनका मैल दूर हो गया और वे वहाँ सुखसे रहने लगे।

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंकी उपासना

'शिव' परमात्मा या ब्रह्मका ही नामान्तर है। वे शान्त, शिव, अद्वैत और चतुर्थ हैं, वे विश्वाद्य, विश्वबीज, विश्वदेव, विश्वरूप, विश्वाधिक और विश्वान्तर्यामी हैं। अर्थात् सब कुछ शिवमय ही है, शिवके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह समस्त जगत् पृथिवी आदि पञ्चभूतोंमें संगठित है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और जीवात्मा—इन्हीं अष्टमूर्तियोंद्वारा समस्त चराचरका बोध होता है, इसीलिये देवाधिदेव भगवान् शंकरका एक नाम 'अष्टमूर्ति' भी है। भगवान् शंकरकी इन अष्टमूर्तियोंके नाम इस प्रकार हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुई हैं—ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, ॐ भवाय जलमूर्तये नमः, ॐ रुद्रायाग्निमूर्तये नमः, ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः, ॐ भीमायाकाशमूर्तये नमः, ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः

तथा ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः।

परमात्मा शिवकी ये अष्टमूर्तियाँ समस्त संसारको व्याप्त किये हुई हैं, इस कारण विश्वात्मा शिवकी उपासना करनेसे उनका जगद्रूप शरीर पुष्टि लाभ करता है। यही शिवकी वास्तविक आराधना है। इस कारण अपनी अष्टमूर्तियोंके द्वारा जो अखिल विश्वको अधिष्ठित किये हुए हैं, उन परम कारण महादेवकी सर्वतोभावेन आराधना करनी चाहिये। प्रत्यक्षरूपमें भगवान् शिव अपनी अष्टमूर्तियोंके रूपमें अधिष्ठित होकर अपने भक्तोंका कल्याण कर रहे हैं। यहाँ अष्टमूर्ति-स्वरूप भगवान् शिवके अर्चा-विग्रहोंका किंचित् विवरण दिया जा रहा है।

अष्टमूर्तिके उपास्य रूप

(१) क्षिति-लिङ्ग—शिवकाञ्ची—पञ्चभूतोंके नामसे जो पाँच लिङ्ग प्रसिद्ध हैं, वे सभी दक्षिण भारतमें स्थित हैं। इनमेंसे एकाम्रेश्वरका क्षितिलिङ्ग शिवकाञ्चीमें है। अयोध्या आदि मोक्षदायिनी सप्त पुरियोंमें काञ्चीपुरी भी है, इसे हरिहरात्मक पुरी भी कहा जाता है, क्योंकि इसके शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची नामक दो भाग हैं। कांजीवरम् स्टेशनसे लगभग एक मील दूर सर्वतीर्थ नामक एक सरोवर है। इसी सरोवरसे लगभग एक फर्लांग दूर भगवान् एकाम्रेश्वरका भव्य एवं विशाल मन्दिर है। मुख्य मन्दिरोंमें तीन द्वारोंके भीतर श्रीएकाम्रेश्वर शिवलिङ्ग स्थित है, लिङ्गमूर्ति श्याम है। लिङ्गमूर्तिके पीछे श्रीगौरीशंकरकी युगलमूर्ति है। भगवान् एकाम्रेश्वरपर जल नहीं चढ़ाया जाता, चमेलीके सुगन्धित तैलसे अभिषेक होता है। मुख्य मन्दिरकी दो परिक्रमाएँ हैं, जिनमें शिवभक्तगण, गणेशजी, नन्दीश्वर, कालिका देवी आदिके छोटे-छोटे मन्दिर हैं। जगमोहनमें ६४ योगिनियोंकी मूर्तियाँ हैं।

भगवान् एकाम्रेश्वरके प्राकट्यके विषयमें कहा जाता है कि एक बार भगवती पार्वतीने कौतूहलवश भगवान् शंकरके नेत्रोंको बंद कर दिया, फलस्वरूप तीनों लोकोंमें महान् अन्धकार छा गया। असमयमें ही इस प्रलयकारी दृश्यको देखकर भगवान् शंकरने इसके प्रायश्चित्तस्वरूप पार्वतीजीको तपस्या करनेका आदेश दिया, तदनुसार भगवती उमाने वालुकामय लिङ्ग बनाकर कठोर तपस्या की। भगवती पार्वतीद्वारा प्रतिष्ठित स्थावर लिङ्ग ही शिवकाञ्चीका एकाम्रनाथ क्षितिलिङ्ग है।

(२) जलतत्त्व-लिङ्ग—जम्बुकेश्वर—पञ्चतत्त्व-लिङ्गोंमें जम्बुकेश्वर आपोलिङ्गम् (जलतत्त्वलिङ्ग) माना जाता है। त्रिचिनापल्लीमें श्रीरङ्गम्से एक मील दूरीपर एक जल-प्रवाहके ऊपर जम्बुकेश्वरलिङ्ग स्थापित है। लिङ्गमूर्तिके नीचेसे जल ऊपर आता रहता है। स्थापत्य शिल्पकी दृष्टिसे यह मन्दिर बहुत उत्तम बना है। मन्दिरके बाहर पाँच परकोटे हैं। यहाँके जम्बु अर्थात् जामुनके पेड़का भी बड़ा माहात्म्य है। इसी महिमापर इस जलमूर्तिका नाम जम्बुकेश्वर पड़ा है।

(३) तेजोलिङ्ग—अरुणाचल—अरुणाचलम्का ही तमिल नाम तिरुवण्णमलै है। यहाँ भगवान् शंकरका दिव्य अग्निस्वरूप तेजोलिङ्ग अवस्थित है। अरुणाचलेश्वर शिवका मन्दिर बहुत विशाल है और इस मन्दिरका गोपुर दक्षिण भारतका सबसे चौड़ा गोपुर माना जाता है। तीन गोपुर पार करनेके बाद अरुणाचलेश्वरका निज मन्दिर है। कहा जाता है कि भगवती पार्वतीने कुछ कालतक अरुणाचल-तीर्थमें तपस्या की। फलस्वरूप अरुणाचल पर्वतमें अग्नि शिखाके रूपमें एक तेजोलिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ। यही अग्निस्वरूप तेजोलिङ्ग है। यहाँ कार्तिक-पूर्णिमाके समय विशेष महोत्सव होता है। मन्दिरकी परिक्रमामें भी अनेक देवी-देवताओंके भव्य विग्रह प्रतिष्ठित हैं।

(४) वायुलिङ्ग—कालहस्तीश्वर—तिरुपति-बालाजीसे कुछ ही दूर स्वर्णमुखी नदीके पवित्र तटपर भगवान् शिव श्रीकालहस्तीश्वर नामसे वायुलिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर बहुत सुन्दर और ऊँचा है। मन्दिरके गर्भगृहमें प्रकाशका अभाव है, भगवान्के दर्शन दीपकके प्रकाशमें होते हैं। लोगोंका विश्वास है कि यहाँ एक विशेष वायुके झोंकेके रूपमें भगवान् सदाशिव सदा विराजमान रहते हैं। मन्दिरकी परिक्रमामें अनेकों देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँकी शिवमूर्ति गोल नहीं अपितु चौकोर है। इस मूर्तिके सामने महान् शिवभक्त कण्णप्पकी भी एक प्रतिमा है[1]। इस विलक्षण शिवभक्तने अपने दोनों नेत्र निकालकर भगवान्को

१-भक्त कण्णप्पकी कथा 'शिवभक्तोंके चरित' शीर्षकमें इसी अङ्कमें दी गयी है, पूरी जानकारीके लिये उस स्थलको देखना चाहिये।

अर्पण कर उनकी अखण्ड भक्ति प्राप्त की थी । ऐसी भी कथा है कि सर्वप्रथम मकड़ी, सर्प तथा हाथीने यहाँ आराधना की थी और उनके नामपर ही भगवान् शंकरके इस लिङ्गका (श्री—मकड़ी, काल—सर्प तथा हस्ती—हाथी) 'श्रीकालहस्तीश्वर' यह नाम पड़ा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि काशीकी भाँति यहाँ भी भगवान् शंकर मरनेवालोंके कानमें तारकमन्त्र सुनाकर उन्हें मुक्त कर देते हैं। पास ही एक पहाड़ीपर भगवती दुर्गाका भी मन्दिर है। महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बहुत बड़ा उत्सव होता है।

(५) आकाशलिङ्ग—चिदम्बरम्—चिदम्बरम् दक्षिण भारतका प्रमुख तीर्थ है। पञ्चतत्त्वलिङ्गोंमें भगवान्‌का आकाश-तत्त्वमय लिङ्ग चिदम्बरम्‌में ही प्रतिष्ठित है। यहाँका मन्दिर कावेरी नदीके तटपर बड़े सुरम्य स्थानमें बना हुआ है। यहाँ मूलमन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है। एक दूसरे ही मन्दिरमें ताण्डवनृत्यकारी चिदम्बरेश्वरकी नटराजमयी मनोरम मूर्ति विद्यमान है। चिदम्बरम्‌का अर्थ है—चित्—ज्ञान, अम्बर—आकाश, अर्थात् चिदाकाश। भगवान् नटराजका निज मन्दिर पाँचवें घेरेमें है। मन्दिरमें नृत्य-मुद्रामें भगवान् नटराजकी बहुत ही सुन्दर स्वर्णमयी प्रतिमा है। श्रीनटराजके दाहिनी ओर काली भित्तिमें एक यन्त्र उत्कीर्ण है। वहाँ सोनेकी मालाएँ लटकती रहती हैं यह नीला शून्याकाश ही आकाशतत्त्व लिङ्ग है। इस स्थानपर प्रायः परदा पड़ा रहता है, अभिषेकके समय दर्शन होता है। मन्दिरमें सोनेसे मढ़ा हुआ एक बड़ा-सा दक्षिणावर्त शङ्ख स्थापित है, जिसकी विशेष महिमा है।

(६) सूर्य-मूर्ति—भगवान् सूर्य सर्वसाक्षी प्रत्यक्ष देवता हैं। शिव और सूर्यमें कोई भेद नहीं है। शास्त्रका वचन है—

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

अर्थात् शिव और सूर्य तत्त्वत. एक ही हैं, दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, अतः प्रत्येक सूर्यमन्दिर भगवान् शिवकी सूर्यमूर्तिका अवबोधक है।

(७) चन्द्र-मूर्ति—काठियावाड़के सोमनाथ और बंगालमें चटगाँवके समीपस्थ स्थित चन्द्रनाथ ज्योतिर्मय भगवान् शिवकी चन्द्रमूर्तिके प्रतीक हैं। सोमनाथका मन्दिर प्रभास क्षेत्रमें है। इन दोनों क्षेत्रोंमें भगवान् शिव चन्द्र-रूपमें पूजित होते हैं।

(८) यजमानमूर्ति—पशुपतिनाथ

(डॉ॰ श्रीरामचन्द्रजी आचार्य, 'फुर्सती')

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंमें नेपालके पशुपतिनाथ महादेव यजमानमूर्तिके प्रतीक हैं। श्रीपशुपतिनाथ लिङ्गरूपमें नहीं, अपितु मानुषी-विग्रहके रूपमें विराजमान हैं। नेपाल-क्षेत्रको पाशुपत-क्षेत्रोंमें परिगणित किया गया है। नेपाल-माहात्म्य, स्कन्दपुराण, शिवपुराण तथा वराहपुराण आदिमें इस क्षेत्रकी महिमा वर्णित है। यहाँ वागमती नामक एक पवित्र नदी है, उसी नदीके दक्षिणी तटपर काठमाण्डू नगरमें देवपत्तन नामक स्थानपर भगवान् पशुपतिनाथ महादेवका प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर पैगोडा-शैलीमें निर्मित है। यहाँके लिङ्गके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें यह प्रसिद्धि है कि श्लेष्मान्तक नामक वनमें सिद्धाचलके निकट देवनदी वागमतीके तटपर एक स्थलपर कामधेनु नित्य स्वेच्छया दुग्धक्षरण कर जाती थी, इस स्थानपर भगवान् शिव गुप्तरूपसे निवास करते थे। ब्रह्माजी भगवान् विष्णुको साथ लेकर इस स्थानपर आये और स्वयम्भू ज्योतिःस्वरूपका दर्शनकर उनकी प्रार्थना करने लगे। इसी तेज.पुञ्जके ऊपर ब्रह्मा और विष्णुने भगवान्‌की रत्नमयी पञ्चमुखी लिङ्गमूर्तिकी प्रतिमा स्थापित की और भगवान्‌से वहाँ उसी रूपमें प्रतिष्ठित होनेकी प्रार्थना की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उसी रूपमें वहाँ रहना स्वीकार किया। वर्तमानमें उस मणिमय स्वर्णलिङ्गका दर्शन प्राप्त होता है। यहाँका मन्दिर बड़ा ही भव्य है। महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ विशाल मेला लगता है। मन्दिर-परिसरमें—गणेश, सूर्य, भैरव, विष्णु, वासुकी, जयमङ्गला, नीलसरस्वती, शीतलादेवी, अष्टमातृका, नवग्रह, नीलकण्ठ, वीरभद्र, महाकाली, विरूपाक्ष, नन्दी, भृङ्गी आदि देव-देवियोंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। नेपाल-क्षेत्रके कोशी-त्रिशूलीके मध्य अवस्थित कुशेश्वर, भीमेश्वर, कार्पेश्वर, काश्यपेश्वर, स्फटिकेश्वर, चण्डेश्वर, धनेश्वर, इन्द्रेश्वर, कालेश्वर, अस्तितेश्वर आदि चतुःषष्टि शिवलिङ्गोंकी यात्रा तथा गुह्येश्वरीदेवीके दर्शनोंका भी यहाँ विशेष महत्त्व है।

व्रजकी प्राचीन संस्कृति और शिवोपासना

(डॉ॰ श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰लिट्॰, विद्यासागर)

अलख निरंजन !

गोकुलमें बाबा नन्दके यहाँ नित्यप्रति बधावे बज रहे थे। कल 'ढाँड़ा-ढाँड़ी' आये थे, परसों बरसानेका 'जगा' आया था तथा 'पंडित-पुरोहित-बंदीजन' तो प्रतिदिन ही आ रहे हैं और आज कृष्णका जन्म सुना तो एक 'योगी' नन्दके द्वारपर आकर अलख जगाने लगा।

नन्दके गाँवमें योगी आया तो डरकर सभी बालक अपने-अपने घरोंमें घुस गये। बड़ी-बड़ी जटा, माथेपर चन्द्रमा, गलेमें काला नाग, कमरमें मृगछाला और सारे शरीरमें भभूत-भस्म।

किसीने जाकर नन्दरानीसे कहा कि 'देखो री, एक वाला जोगी द्वार तिहारे आया है री।'

मा यशोदाने सुना, तो कञ्चन-थाल सजा लायीं—'ले बाबा! भिक्षा ले और विदा हो, तुझे देखेगा मेरा लाल तो डर जायगा।'

योगी कञ्चन-थाल लेने आया हो तब तो विदा हो! वह योगी ऐसा-वैसा तो था नहीं, वह तो स्वयं भगवान् शंकर थे। योगी बोला—

ना चइयें तेरी दौलत दुनियाँ ना चइयें धन-माया है री।
अपने गुपाल जी कौ दरस कराय दै या कारन जोगी आया है री॥

योगीकी बात सुनीं तो मा यशोदा तुनक गयीं—'बड़ा आया कहींका बाबाजी, तुझे कुछ और चाहिये तो ले जा, लालाको देखकर क्या करेगा?'

योगीने बहुत आग्रह किया, पर जब उसकी दाल न गली तो उसने टेर लगायी—अलख निरंजन, तथा लौट गया। योगीके लौटते ही लाला कन्हैयाने रोना-मचलना शुरू कर दिया। थाली बजायी, लोटा बजाया, दूधसे लगाया, नजर उतारी और न जाने क्या-क्या किया, पर लाला चुप न हुआ। यशोदा घबरा गयीं। तभी किसी गोपीने कहा—'अरी मैया! यह तो उस योगीका चेटक मालूम पड़ता है।' यशोदाने कहा—'अरी बहन, कोई उस योगीको तो ढूँढ़ कर लाओ।'

गोपी गाँवसे दो कदम आगे बढ़ी तो देखा कि कुण्डपर योगी धुनी रमा रहा है। गोपी बोली—

'चल रे जोगी नंद भवन में जसुमति तोहि बुलावै।'

अब तो भोला बाबा बड़े प्रसन्न। दौड़े-दौड़े नन्द-भवन आये, लालाके सिरपर उसने जैसे ही हाथ रखा, वैसे ही लाला किलकने लगा—

'बिथा भई सब दूर बदन की किलक उठे नँदलाला।'

कहाँ तो मा यशोदा योगीको उसी समय विदा कर रही थीं, कहाँ बोलीं—

'रहु रे जोगी नंद-भवन में ब्रज कौ बासौ कीजै।
जब-जब मेरौ लाला रोवै तब-तब दरसन दीजै॥'

मैयाका ऐसा लाड़-भरा आग्रह और अपने ठाकुरजीका सांनिध्य। योगीने मैयाका आग्रह स्वीकार किया।

ध्यान रहे कि जब कभी आप व्रजमें नंदगाँव पधारेंगे तो देखेंगे कि नन्द-भवनसे निकलते ही 'पौरी' में दाहिने किवाड़के पीछे 'बूढ़े बाबा महादेव' का दर्शन होता है और नंदगाँवके बाहर जिस कुण्डपर योगीने धुनी रमायी थी, वह कुण्ड 'योगधुनी-कुंड' नामसे प्रसिद्ध है। उसीके पास बहक वन है, कहते हैं कि कृष्णका दर्शन न होनेपर महादेवजी वहाँ बहके-बहके डोले थे। इसमें वृक्षोंके बीच छोटा-सा चबूतरा है, जिसे 'महादेवजीकी बैठक' कहा जाता है। यहीं आसकुण्डपर 'आसेश्वर महादेव' का दर्शन होता है। बड़े-बूढ़े कहते हैं कि श्रीकृष्णके दर्शनकी आशा लगाकर जब महादेवजी कैलास पर्वतसे व्रजमें पधारे तो पहले-पहल इसी स्थानपर विराजे थे।

व्रजकी प्राचीन संस्कृति और शैव धर्मके प्रभावको समझनेके लिये हमारे पास तीन तरहकी सामग्री है। एक तो आगम और पुराण-साहित्य, दूसरे व्रजके शैव-स्थल, मन्दिर और पुरातत्त्व तथा तीसरे प्रकारकी सामग्री है व्रजकी लोकवार्ता एवं जनश्रुतियाँ।

आगम और पुराण-साहित्यमें व्रजके शैव-स्थलोंका विस्तारसे वर्णन है। शिवताल-कुण्ड, जहाँ कि आजकल व्रजनगर बस गया है, वहाँ 'सिद्धेश्वर'का प्राचीन मन्दिर है। वाराहपुराणके अनुसार यहाँ शिवने तपस्या की थी। दुर्वासा ऋषि शिवशक्तिके उपासक थे, उनका स्थान विश्रामघाटके

सामने 'परलीपार' पर है। मधुवनमें मधुनामक दैत्य था, उसे शिवसे 'त्रिशूल' प्राप्त हुआ था। महाभारतके एक प्रसंगके अनुसार श्रीकृष्णको सुदर्शन-चक्र शिवसे मिला था। इन्द्रके प्रिय सखा आलम्बगोत्रीय चारुशीर्षने जो पुराणोंमें आलम्बायन नामसे विख्यात है, मथुराके गोकर्णतीर्थपर भगवान् शिवकी आराधना की थी—

'मया गोकर्णमासाद्य तपस्तप्त्वा शतं समाः।'

'जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गत-ब्रह्मावर्तैकदेशे मध्यदेशे मथुरामण्डले आदिवाराहभूतेश्वरक्षेत्रे।'

—यह उस संकल्पका एक अंश है, जो धार्मिक क्रिया करते समय कर्मकाण्डी विद्वान् बोलते हैं। इस संकल्पमें मथुरामण्डलको भूतेश्वरका क्षेत्र कहा गया है। मथुराके चारों कोणोंपर चार महादेव हैं—गोकर्णेश्वर, पिप्पलेश्वर, रंगेश्वर और भूतेश्वर। लिङ्गपुराण, शिवपुराण, वाराहपुराण और लकुलीशसंहितामें इनका विस्तारसे उल्लेख है। इनके अतिरिक्त मथुरामें महिषेश्वर, जागेश्वर, गलतेश्वर, सोमेश्वर, कालिंजेश्वर, राजराजेश्वर, रामेश्वर, मंजुकेश्वर, चन्द्रभाल, कपर्दी शिवलिङ्ग तथा पाशुपत मीलभूतिद्वारा उपासित वीरभद्रेश्वरके प्राचीन स्थान हैं।

वृन्दावनमें गोपेश्वर, कामवनमें कामेश्वर और जतीपुरामें रुद्रकुण्डके पास बूढ़े बाबाके स्थानका शिवोपासनाकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व है। कामवन तो किसी समयमें कामेश्वरकी उपासनाका केन्द्र ही था। कामवन-क्षेत्रमें गोपियोंने देहकुण्डपर वेणीशंकर महादेवकी स्थापना की थी। सुनेहरामें राधाजीने शिवको सोनेका हार पहनाया था। दतिहामें महादेवका चतुर्भुजी विग्रह है।

जिस प्रकार देवीतत्त्वका पर्यवसान सखीके रूपमें है, उसी प्रकार शिवतत्त्व भी व्रज-वृन्दावनमें सखी-रूपमें पर्यवसित होता है। वृन्दावनमें गोपीश्वर महादेव हैं, जो रासलीलाके आस्वादनके लिये गोपीवेश धारण करते हैं—*'मनमोहिनि ग्वालिन बन आया भोला भाला रे।'* नंदगाँवका पर्वत व्रजमें शिवरूप ही माना जाता है।

व्रज चौरासी कोसकी सीमासे निकलें तो हाथरसमें चिन्ताहरण तथा अलीगढ़में अचल और धरणीश्वर एवं सासनीमें वीरेश्वर प्रसिद्ध हैं। इधर बटेश्वर अपने रमणीय यमुनातट और एक सौ एक शिवमन्दिरोंके लिये प्रसिद्ध है। आगरामें राजराजेश्वर, बल्केश्वर, पृथ्वीनाथ और कैलास—इन चार शिवमन्दिरोंकी अठारह-कोसी परिक्रमा करके शिवभक्त श्रावण महीनेके सोमवारोंको मनकामेश्वरपर जल चढ़ाते हैं। कैलासके सम्बन्धमें कहावत है कि इसकी स्थापना जमदग्नि ऋषिने की थी। आगरा जनपदके गहलाना गाँवमें वनखंडी महादेव हैं, माईथानमें गौरीशंकर और वटुकनाथके मन्दिर हैं।

भारतका इतिहास साक्षी है कि कुषाणकालमें बौद्ध राजा यहाँ शैवधर्ममें दीक्षित हुए थे और यहाँकी टकसालमें 'शिववाहन नन्दी' और 'शिव-आयुध त्रिशूल' से अङ्कित सिक्के ढाले जाते थे। डेम्पीयर नगरमें सप्त-समुद्री कूपमेंसे पञ्चमुखी महादेव (ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात) की मूर्ति निकली थी। 'तथागत' की तरह शिवमूर्तिका भी प्रथम निर्माण मथुरामें ही हुआ था। शिवलिङ्गोंपर मुखाकृतिका निर्माण गुप्तकालमें व्रजमें प्रारम्भ हुआ था। व्रजके अञ्चलमें लुकी-छिपी और भी अनेक मूर्तियाँ निकली हैं। किसीमें शिव-पार्वती नन्दीके सहारे खड़े हैं, किसीमें दोनों कैलास पर्वतपर बैठे हैं। एक अर्धनारीश्वरकी प्रतिमा है। एक शिलापट्टपर शिव-पार्वतीकी परिणय-कथाका अङ्कन है। इन शिव-प्रतिमाओंके दर्शन मथुराके राजकीय संग्रहालयमें किये जा सकते हैं।

भारतके कोने-कोनेमें और भारतके बाहर चंपा, कंबोज, जावा, तिब्बत, बर्मा, सिंहलद्वीप, मालद्वीप और नेपालतक फैले हुए शिवमन्दिरोंकी शृंखलामें व्रजमण्डलके शिव-मन्दिरोंका भी अपना महत्त्व है।

शैव-धर्मकी सामाजिक पृष्ठभूमि और व्रजके जनजीवनमें शैव-धर्मका प्रभाव जाननेके लिये व्रजकी लोकवार्ताका अध्ययन आवश्यक है। शैव-धर्मके अनेक सम्प्रदाय थे—कापालिक, माहेश्वर, लिंगायत, पाशुपत, नाथ, भारशिव और सरभंग। इन सम्प्रदायोंके अनेक उपासकोंका मथुरामें आवागमन रहा है। व्रजमें अघोरी और सरभंगके प्रति कुछ इस प्रकारका भाव है कि जब कोई बालक 'जूठ-बिटार' अथवा अपने मल-मूत्रमें हाथ फैलाने-जैसे

ग्लानि-भरे कौतुक कर देता है तो माँ-दादी कहती हैं—'बड़ौ अघोरी है' या 'यै तौ सरभंगी है।'

ब्रजमण्डलमें कई स्थानोंपर योगी नामक बिरादरी है। नाथ-सम्प्रदायकी भैरव-उपासना ब्रजमें प्रचलित रही है। मथुराके कालभैरवसे लगाकर आगरा और सोरोंके 'भैरोंनाथ' की 'जात' दी जाती है और बालकोंके मुण्डन-संस्कार होते हैं। गोरखनाथ और गोपीचन्द्र, भरथरीके कथानक अनेक बिरादरियोंमें प्रचलित हैं। लोकवार्ताशास्त्रियोंने ब्रजमें प्रचलित लांगुरिया-लांगुर या लांगुड़ाकी व्युत्पत्तिको 'लाकुलगुरु' से सिद्ध किया है, जिसका सम्बन्ध शैवोंके लकुलीश-सम्प्रदायसे जुड़ता है। शिवरात्रिके दूसरे दिन ब्रजमें 'बमभोला' जिमाया जाता है—मूँग, भात, झोर, पूड़ी और गुलगुला तथा बमभोलाकी वेशभूषा होती है—डमरू, शृंगी, त्रिशूल और जोगिया कपड़ा।

श्रावणके सोमवारोंको ही 'क्वारी-ब्याही' व्रत किया जाता है। इन सोमवारों और शिवरात्रिपर्वपर गाँव-गाँवसे कावड़ी चलते हैं और राजघाटसे गङ्गाजल लेकर आगराके मनकामेश्वरतकका रास्ता रात-रातभर इन गीतोंसे गूँज जाता है—*'शिवशंकर भोले भाले तुझे लाखों प्रणाम। हे भक्तोंके रखवाले तुझे लाखों प्रणाम'॥* शिवरात्रिके दिन सवेरे ही मुहल्ले, पास-पड़ोसकी सारी स्त्रियाँ जुड़ जाती हैं और पीले कपड़े और मौलीसे बँधी तीन-चार मटकी, बेर, बेलपत्र, कमलगट्टे, पान, सुपाड़ी और रोली-चावल लेकर गीत गाती जाती हैं—

'भोलाजी भंडारी तेरे दरसन आई रे।'

विदेशोंमें शिवलिङ्ग-पूजा

(पण्डितवर्य श्रीकाशीनाथजी शास्त्री)

भारतीयोंमें अनादिकालसे अबतक शिवलिङ्ग-पूजा चली आती है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। विदेशोंकी लिङ्ग-पूजाके सम्बन्धमें कुछ विवाद दीख पड़ता है, इस कारण उसीके विषयमें कुछ विचार करना इस लेखका उद्देश्य है। हाँ, तद्विषयक चर्चाके पूर्व पूर्व-पीठिकाके रूपमें अपने देशकी लिङ्ग-पूजाके सम्बन्धमें भी दो-चार शब्द लिख देना आवश्यक है।

ऐसा जान पड़ता है कि भगवान् शिवकी पूजा और भक्ति अखिल जगत्‌में व्याप्त रही है। इस अत्युज्ज्वल शिव-भक्तिका भूमण्डलमें सर्वप्रथम प्रचार करनेवाले श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य ही हैं। ये महानुभाव पूज्यचरण श्रीशिवजीकी आज्ञासे ही दिव्य देह धारणकर शिवभक्ति-स्थापनके लिये इस भूतलपर अवतरित हुए और समस्त दिशाओंमें विचरण करते हुए नास्तिक-मतोंका खण्डन कर 'शिव ही सर्वोत्तम हैं, शिवसे बढ़कर कोई नहीं है, यह अपार संसार शिवजीसे ही उत्पन्न हुआ है, अतः प्रत्येक व्यक्तिको उस परमशिवकी ध्यान-धारणामें आसक्त होकर कैवल्यसुखका अनुभव करना चाहिये'—इस उपदेशके द्वारा लोगोंके हृदयक्षेत्रमें शिव-भक्तिका बीज बो गये। इन्हीं महान् पुरुषोंकी कृपासे अबतक शिव-भक्ति चली आयी है। शिव-भक्तिके प्रचारक आचार्योंमें प्रमुख ये ही आचार्य हुए हैं। इनके समयमें जहाँ देखो वहीं शिव-लिङ्गोंका स्थापन, शिव-पूजाका वैभव, शिव-मन्त्रका प्रभाव और शिव-भक्तिका जय-जयकार होता नजर आता था। भारतके किसी भी गाँव और खेड़ेमें जितनी संख्या शिवालयोंकी मिलेगी उतनी और किसी देवालयकी नहीं। गिरि-शिखरों, कन्दराओं, नदियों तथा वन्य प्रदेशोंमें जहाँ देखो वहाँ शिव-स्थान भरे पड़े हैं। काशी, रामेश्वर, श्रीशैल, केदार आदि महाक्षेत्रोंमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका वैभव अबतक बहुत कुछ देखनेमें आता है। क्यों न हो, जब कि हमारे ये आचार्यचरण प्राणिमात्रके हृदयमें—

धिग्भस्मरहितं फालं धिग्ग्राममशिवालयम्।

—इस दिव्यवाणीको अमर बना गये हैं। पाश्चात्य देशोंमें कई प्राचीन शिवालयोंके होनेका पता लगा है, जिससे अनुमान होता है कि ईसाई-मतके प्रचारके पूर्व उन देशोंमें भी शिव-स्थान निर्माण किये जाते रहे होंगे। किसी-किसीको इस बातसे आश्चर्य हो सकता है, परंतु आश्चर्यका कारण नहीं है। कारण, जिन शिवने नव खण्डोंको जन्म दिया है, उनका सम्बन्ध उन समस्त खण्डोंके साथ होना बिलकुल स्वाभाविक है।

काशीके परम शिव-भक्त कैलासवासी बाबू श्रीबेचूसिंहजी शाम्भवने अपने 'शिवनिर्माल्यरत्नाकर' नामक ग्रन्थकी प्रस्तावनामें फ्रेंचदेशीय लुइस् साहबके ग्रन्थके

आधारपर विदेशोंमें शिवलिङ्गोंके होनेका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि उत्तर-अफ्रिका खण्डके 'इजिप्ट' प्रान्तमें, 'मेफिस' नामक और 'अशीरिस' नामक क्षेत्रोंमें नन्दीपर विराजमान, त्रिशूलहस्त एवं व्याघ्रचर्माम्बरधारी शिवकी अनेक मूर्तियाँ हैं, जिनका वहाँके लोग बेलपत्रसे पूजन और दूधसे अभिषेक करते हैं। तुर्किस्तानके 'बाबीलन' नगरमें एक हजार दो सौ फुटका एक महालिङ्ग है। पृथिवीभरमें इतना बड़ा शिवलिङ्ग और कहीं नहीं देखनेमें आया। इसी प्रकार 'हेड्रॉपोलिस' नगरमें एक विशाल शिवालय है, जिसमें तीन सौ फुटका शिवलिङ्ग है। मुसलमानोंके तीर्थ मक्काशरीफमें भी 'मक्केश्वर' नामक शिवलिङ्गका होना शिवलीला ही कहनी पड़ेगी। वहाँके 'जमजम' नामक कुएँमें भी एक शिवलिङ्ग है जिसकी पूजा खजूरकी पत्तियोंसे होती है। अमेरिका खण्डके ब्रेजिल-देशमें बहुत-से शिवलिङ्ग मिलेंगे जो अत्यन्त प्राचीन हैं। यूरोपके 'कारिन्थ' नगरमें तो पार्वती-मन्दिर भी पाया जाता है। इटलीके कितने ही ईसाईलोग अबतक शिवलिङ्गोंकी पूजा करते आये हैं। स्कॉटलैंड (ग्लासगो) में एक सुवर्णाच्छादित शिवलिङ्ग है, जिसकी पूजा वहाँके लोग बड़ी भक्तिसे करते हैं। 'फीजियन्' के 'एटिस' या 'निनिवा' नगरमें 'एषीर' नामक शिवलिङ्ग है। यहूदियोंके देशमें भी शिवलिङ्ग बहुत हैं, इसी प्रकार अफरीदिस्तान, चित्राल, काबुल, बलख-बुखारा आदि स्थलोंमें बहुत-से शिवलिङ्ग हैं, जिन्हें वहाँके लोग 'पञ्चशेर' और 'पञ्चवीर' नामोंसे पुकारते हैं। अस्तु !

अब हम 'अनाम' देशके शिवालयोंके विषयमें कुछ विस्तृत विवेचन करेंगे। फ्रेंच-राज्याधीन अनाम-देशमें अनेक शिव-मन्दिर मिलते हैं। यह अनाम इण्डोचाइनामें है। इसे प्राचीन कालमें 'चम्पा' कहते थे। सुप्रसिद्ध फ्रेंच-शोधकर्ता मि॰ ए॰ बर्गेनद्वारा शिवालयोंके शिलालेखके सम्बन्धमें लिखित एक वृहदाकार पुस्तक तथा श्री आर॰ सी॰ मजूमदारके 'Anceint Indian Colonies in the Far East' (सुदूर पूर्वके प्राचीन भारतीय उपनिवेश) आदि ग्रन्थोंसे यह पता चलता है कि वहाँके संस्कृत-शिलालेखोंमेंसे बानवे लेख शिव-विषयक, तीन विष्णुविषयक, पाँच ब्रह्म-विषयक, दो शिव और विष्णुविषयक और सात लेख बुद्धविषयक हैं। इन सब लेखोंके चित्र उक्त ग्रन्थकर्ताओंकी बदौलत हमारी दृष्टिके सामने आये हैं। इनकी संस्कृतशैली बड़ी सुन्दर है। शिवविषयक अनेक लेखोंके आरम्भमें 'ॐ नमः शिवाय' महामन्त्र खुदा हुआ है और तत्पश्चात् वहाँके राजा और शिवलिङ्गोंकी गद्य-पद्योंमें प्रशंसा है। उस देशके सभी प्राचीन राजा शिवभक्त ही थे और यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि भारतके वीरशैवोंमें भी वैसे 'शिवभक्तशिखामणि' आजकल देखनेमें नहीं आते। किसी कालमें उस देशका 'मीसोन खेड़ा' इस सम्बन्धमें काशीकी समानता कर सकता था। वहाँके सुन्दर शिव-मन्दिर तथा उनके विशाल शिलालेख इस बातकी साक्षी देते हैं कि शिवभक्तिकी इतनी उन्नति भारतवर्षमें शायद ही कभी हुई हो[१]।

'मीसोन' ग्रामके चौथे शिलालेखमें लिखा है कि भद्रवर्मा नामक महाराजाने 'भद्रेश्वर' शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके भोग-रागके लिये महापर्वत और महानदियोंके बीचके 'सुलह' और 'कुचक' नामक स्थल भेंटमें चढ़ाये। यह लेख ई॰ स॰ की पाँचवीं शताब्दीका है। सातवें शिलालेखसे पता चलता है कि कालान्तरमें 'भद्रेश्वर' का मन्दिर नष्ट हो जानेपर किसी रुद्रवर्माके पुत्र शम्भुभद्रवर्मा नामक राजाने 'शम्भु-भद्रेश्वर' महादेवकी स्थापना की। उक्त शिवलिङ्गका कुछ वर्णन नीचे दिया जाता है—

सृष्टं येन त्रितयमखिलं भुर्भुवः स्वः स्वशक्त्या
येनोत्खातं भुवनदुरितं वह्निनेवान्धकारम्।
यस्याचिन्त्यो जगति महिमा यस्य नादिर्न चान्त-
श्चम्पादेशे जनयतु सुखं शम्भुभद्रेश्वरोऽयम्॥

कितना भक्तिभावपूर्ण श्लोक है ! इसीसे यह भी ज्ञात होता है कि उक्त 'मीसोन' ग्रामके प्रदेशका प्राचीन नाम 'चम्पा' है। इस राजाके बाद पट्टाभिषिक्त क्रमशः महाराजा प्रकाशधर्म और इन्द्रवर्मा तथा कुछ अन्य राजाओंने इस 'शम्भुभद्रेश्वर' महादेवके प्रति असाधारण भक्तिके प्रमाणस्वरूप उनपर केवल

१-काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके वार्षिक अधिवेशन (१ मई ३३) में डॉ॰ प्राणनाथ विद्यालङ्कारने अपने सिन्धुके सुप्रसिद्ध 'मोहन-जो-दड़ो'की ऐतिहासिक लिपिविषयक एक व्याख्यानमें यह सप्रमाण सिद्ध किया था कि 'पंद्रह हजार वर्ष-पूर्व भारतमें शिवलिङ्ग और शिव-भक्तिका खूब प्रचार था।

अनेक बहुमूल्य रत्न ही नहीं चढ़ाये, बल्कि अपना 'भक्त' नाम अमर रखनेके लिये अनेक शिलालेख भी खुदवाये। उन शिलालेखोंमें अङ्कित शिवस्तुतियोंका कुछ अंश नमूनेके तौरपर नीचे दिया जाता है—

१६ वें लेखमें—

यं सर्वदेवाः ससुरेशमुख्या
ध्यायन्ति तत्तत्त्वविदश्च सन्तः।
स्वस्थः सुशुद्धः परमो वरेण्यो
ईशाननाथः स जयत्यजस्रम्॥

स्मृतिरपि यस्य सकृदपि प्रणिपतितान् तारयत्यपायेभ्यः।
स श्रीभद्रेश्वरोऽस्तु प्रजाहितार्थं तथा प्रभासेशः॥

१७ वें लेखमें—

ऐश्वर्यातिशयप्रदो मखभुजां यस्तप्यमानस्तपः
कन्दर्पोत्तमविग्रहप्रदहनो हैमाद्रिजायाः पतिः।
लोकानां परमेश्वरत्वमसमं यातोऽनडुद्वाहनो
याथातथ्यविशारदास्तु जगतामीशस्य नो सन्ति हि॥
इच्छातीतवरप्रदानवशिनं भक्त्या समाराध्य यं
त्रैलोक्यप्रभवप्रभावमहता वृत्रस्य हन्त्रा विना।
भुङ्क्तेऽद्याप्युपमन्युरिन्दुधवलं क्षीरार्णवं यान्यवैः
श्रीशानेश्वरनाथ एष भगवान् पायादपायात् स वः॥

इसी प्रकार वहाँके महाराजाओंने 'श्रीशानभद्रेश्वर' का अनेक लेखोंमें बखान कर अपनी परमशिवभक्तिका परिचय दिया है। उस शिवलिङ्गमूर्तिकी सेवाका खर्च चलानेके लिये एक कोशकी स्थापना की थी, जिसका पता १६ वें लेखसे लगता है—

श्रीशानेश्वरकोशं संस्थाप्य यथाविधि स्वभक्तिवशात्।
श्रीमान् प्रकाशधर्मो मुकुटं भद्रेश्वरायादात्॥

यह लेख ई० स० ६८७ का है। इतने प्राचीन कालमें भी 'बैंक' (कोश) की स्थापना करके महादेवके भोग-रागका प्रबन्ध राजाने किया, नहीं तो महादेवके 'मुकुट' आदि आभरण नित्य-नये कैसे बनते? यहाँ 'कोश' शब्दका अर्थ कुछ लोगोंने 'कवच' किया है। एक और परमभक्त नरवाहनवर्माने शिवलिङ्गकी वेदीको सोनेसे बनवाया था। यह बात २१ वें लेखसे,जो ई० स० ७३० का है, प्रकट होती है—

नरवाहनवर्मश्रीरकरोत् तां शिलामयीम्।
रूप्यरौप्यबहिर्यद्धां ब्रह्मा मेरुशिखामिव॥
स्वर्णरौप्यमयी लक्ष्मीं बिभ्रती वेदिका पुनः।
विद्युत्‌.......भाति शिखा हिमगिरेरिव॥

ई० स० ८३५ के ३१ वें लेखमें शम्भुभद्रेश्वर-लिङ्गके विषयमें यह इतिहास भी लिखा है कि इस लिङ्गमूर्तिको शिवजीने आदिकालमें भृगुको दिया था, जिसे आगे चलकर भृगुने 'उरोज' नामक महाराजाको दिया। इस राजाने इस लिङ्गकी चम्पा नगरीमें स्थापना की। इन महादेवका नाम उरोज महाराजने 'श्रीशानभद्रेश्वर' रखा था। आजकल यह लिङ्ग 'वुवन्' नामक पर्वतपर स्थापित है। तत्सम्बन्धी लेखके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

श्रीशानभद्रेश्वरमन्दिरार्कं
परैः पुरोरोजकृतं विशीर्णम्।
पुनर्भवोऽहं स विनाशकांस्तान्
हत्वा रणे तस्य पुनः प्रचक्रे॥

श्रीमाञ्छ्रीशानभद्रेश्वरममितमुदं स्थापयित्वा ह्युरोजो
नाकौकःस्थापनस्याक्षयमुत स वुवन्भूधरस्याङ्गमूर्धम्।
कृत्वा चास्तं गतोऽभूत् पुनरहमपरो भावयित्वा विनष्टं
स्थानं देवस्य तस्याभिमतरुचि वुवन्स्थापितेशः पुरेष्ट्या॥

'उरोज' महाराजके बाद उनके वंशधरोंने भी इन महादेवके वैभवको अक्षुण्ण रखा। इस मन्दिरकी अतुल सम्पत्तिको कम्बोडिया देशके लोगोंने अपहरण कर लेनेका बारम्बार प्रयत्न किया, परंतु सफल नहीं हुए। प्रत्युत चम्पाधिपति उन्हें हराकर कम्बोडियासे बहुत-सा धन भी लूट लाये और उससे उन्होंने अपने इस प्रसिद्ध मन्दिरका जीर्णोद्धार किया। जयेन्द्रवर्मा महाराजने ई० स० १०८८ में इन महादेवके लिये अमूल्य रत्नजटित एक स्वर्णकवच समर्पित किया था, जिसमें षण्मुखसहित एक सर्पाकृति बनी हुई थी। कुछ प्रामाणिक कागज-पत्रोंसे यह भी पता लगा है कि यह कवच तौलमें १७२० तोले था। अस्सी वर्षके बाद इसी 'जयेन्द्रवर्मा' नामक राजाने अत्यन्त भक्तिके साथ अनेक स्वर्णनिर्मित आभरण और पूजाका सामान पुनः समर्पित किया। इस मन्दिरका शिखर बनवानेमें तीन हजार तोले (७५ पौण्ड) सोना लगा था। इतना ही नहीं, मन्दिरकी सब दीवारें आदि भी चौदह लाख तोले चाँदी (३५०० पौण्ड) से बनवायी थीं।

त्रिभुवनहितहेतुः सर्वसङ्कल्पकारी
परपुरुष इह श्रीशानदेवोऽयमाद्यः ॥

४२वें लेखमें—

यो भस्मराश्यां बहुमञ्जयार्यां
दिव्यः सुखासीन उरुप्रभावः।
देदीप्यते सूर्य इवांशुमाला-
प्रद्योतितः खे विगताम्बुदेशे ॥

उन्तालीसवें लेखमें तो ब्रह्मा, विष्णुके महालिङ्गस्वरूपी शिवजीके आद्यन्तको न देख सकनेपर उनका गर्व भङ्ग होनेकी बात विस्तारसे प्रतिपादित है, जो महिम्नःस्तोत्रके 'तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि' वाले श्लोकमें है।

पैंतीसवें लेखमें शा॰ सं॰ ८२० की ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमीमें स्थापित की गयी 'शिवलिङ्गेश्वर' मूर्तिके विषयमें विवरण करते हुए लिङ्गके संस्थापकके लिये 'शिवाचार्य' पदका प्रयोग किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय वीरशैवोंके गुरु 'शिवाचार्य' लोग सभी देशोंमें भ्रमण करते हुए शिवभक्तिका डंका बजवाते थे। वह श्लोक इस प्रकार है—

शैवक्रियावित्सुकृतप्रसक्तो
देवार्चनाज्ञानसमर्थबुद्धिः।
पित्रोर्गुणान् भारतरान् स चित्ते
सञ्चिन्त्य पुण्यं स करोतु कीर्त्यै ॥
शाके खद्वयष्टभिर्युक्ते पञ्चाहे शुच्यपाण्डरे।
स्थापितः शिवलिङ्गेशः शिवाचार्येण धीमता ॥

पैंतालीसवें लेखके—

मीमांसषट्तर्कजिनेन्द्रसूर्मिः
सकाशिकाव्याकरणोदकौघः।
आख्यानशैवोत्तरकल्पमीनः
पटिष्ठ एतेष्विति सत्कवीनाम् ॥

—इस श्लोकसे इन्द्रवर्माकी अद्भुत विद्वत्ताकी बात जानकर यह आश्चर्य होता है कि भारतसे इतनी दूर वे संस्कृतके महापण्डित कैसे होते थे। कुछ भी हो, अनाम-देशकी अच्छी तरह समालोचना करनेवाले इस लिङ्ग-पूजाकी व्यापकताको जानकर गर्व या आनन्दसे अवश्य मस्तक ऊँचा करेंगे।

फ्रेंचोंके अधीनस्थ 'कम्बोडिया' में भी शिवलिङ्ग विराजमान है। इस देशका प्राचीन नाम 'कम्बोज' मालूम पड़ता है। पहले इस देशके राजा राजेन्द्रवर्मनि शा॰ सं॰ ८६६में 'अंकोरतोम' नामक यशोधरपुरीके तालावके बीच शिवलिङ्गको स्थापित किया था, जो वहाँके 'सियांरप' जिलेके 'बातचोम' स्थानके खंभोंके ऊपर खुदे हुए लेखसे मालूम होता है।

इतिहासप्रसिद्ध 'जावा' और 'सुमात्रा' द्वीपोंमें, जिनका प्राचीन नाम क्रमशः 'यव' और 'सुवर्णद्वीप' था, अनेक शिवलिङ्ग हैं। हॉलैंडके लैडन् युनिवर्सिटीके प्रोफेसर डॉ॰ एन॰ जे॰ क्रोम् नामक महोदयने डच भाषाकी एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की है, जिसका नाम है 'यवद्वीपकी प्राचीन शिल्पकला'। इस पुस्तकके शिव-मन्दिरके चित्रोंको देखकर हृदय आनन्दसे खिल उठता है। इस विषयके कितने ही विशेषज्ञोंका कहना है कि सुप्रसिद्ध अगस्त्य महर्षिके द्वारा ही इन द्वीपोंमें शिवभक्तिका खूब प्रचार हुआ, क्योंकि इन्होंने श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यसे शिवदीक्षा ली थी। वहाँ अगस्त्यकी कई मूर्तियाँ मिली हैं, जो रुद्राक्ष आदि शिवचिह्नोंसे विभूषित हैं। अगस्त्यकी मूर्तिको वहाँके लोग 'शिवगुरु'के नामसे पुकारते हैं। वहाँ मुसलमानोंके आक्रमण होनेपर भी शिवभक्तिकी कमी नहीं हुई है। सभी लोग असाधारण भक्तिमें लिङ्गपूजा करते हैं। जावाद्वीपके बीच 'प्रांबानान' नगरके समीप 'लाराजोंग्रांग' नामक शिवमन्दिर है। यहाँ इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। इस मन्दिरमें मनुष्याकार महादेवजी खड़े हैं। इनकी लंबाई दस फुट है। मूर्तिके सामने नन्दी, दाहिनी ओर ब्रह्मा और बायीं ओर विष्णुकी मूर्ति स्थापित है। शिवमूर्ति छिन्न-भिन्न कर दी गयी थी, परंतु डच सरकारने उसके अवयवोंको ठीक-ठीक मिलाकर रखा है। इसी मन्दिरमें 'शिवगुरु', 'गणपति', 'दुर्गा' आदिकी मूर्तियाँ भी हैं। यह मन्दिर दुमंजिला है। ऊपरके भागमें ही मूर्तियाँ स्थापित हैं। इतिहासज्ञोंका मत है कि यह मन्दिर ई॰ स॰ ९०५ से पूर्वका नहीं है। 'पनतरन्' नामक ग्राममें भी एक भारी शिवालय है। इसी प्रकार उस देशके अनेक भागोंमें बहुत-से शिवालय हैं, जो आजकल जीर्णावस्थामें पड़े हैं। भूमण्डलके सभी प्रान्तोंमें शिवालयोंको देखकर यह कहनेमें किसीको संकोच न होगा कि शिवलिङ्ग-पूजा सार्वव्यापक और अत्यन्त प्राचीन है।

उत्तरप्रदेशके कुछ शिव-मन्दिर

व्रजमें गोपी बने त्रिपुरारि

[गोपीश्वर महादेव]

(आचार्य गोस्वामी श्रीरामगोपालजी, एम्०ए०, एल्०टी०)

श्रीमद्गोपीश्वरं वन्दे शंकरं करुणामयम्।
सर्वक्लेशहरं देवं वृन्दारण्ये रतिप्रदम्॥

जब-जब भगवान्ने अवतार लिया तब-तब भगवान् शंकर उनके बालरूपके दर्शन करनेके लिये पृथिवीपर पधारे। श्रीरामावतारके समय भगवान् शंकर श्रीकाकभुशुण्डिके साथ वृद्ध ज्योतिषीके रूपमें काकभुशुण्डिजीको बालक बनाकर अयोध्यामें पधारे और उन्होंने रनिवासमें प्रवेशकर भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नके दर्शन किये—

औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥

श्रीकृष्णावतारके समय बाबा भोलेनाथ साधु-वेषमें गोकुल पधारे। श्रीयशोदाजीने वेष देखकर दर्शन नहीं कराया। धूनी द्वारपर लगा दी। लाला रोने लगे। नजर लग गयी। बाबा भोलेनाथने नजर उतारी। गोदमें लेकर नन्दके आँगनमें नाच उठे। आज भी नन्दगाँवमें 'नन्देश्वर' नामसे विराजमान हैं।

ऐसे ही भगवान् शंकरने समय-समयपर विभिन्न रूप धारणकर अपने प्रिय आराध्यकी लीलाओंका दिग्दर्शन किया। वृन्दावनमें भगवान् शंकरका विचित्र रूपमें दर्शन होता है। वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णने वंशीवटपर महारास किया था, उसको देखनेके लिये भगवान् शंकरको 'गोपी' बनना पड़ा। वृन्दावन नित्य है, रास नित्य है, आज भी रास होता है, श्रीगोपीश्वर महादेव नित्य हैं, रास देख रहे हैं।

एक बार शरत्पूर्णिमाकी शरद्-उज्ज्वल चाँदनीमें वंशीवटपर यमुनाके किनारे मनमोहन श्यामसुन्दर साक्षात् मन्मथनाथकी वंशी बज उठी। श्रीकृष्णने छः मासकी एक रात्रि करके मन्मथका मानमर्दन करनेके लिये महारास किया था। मनमोहनकी मीठी मुरलीने कैलासपर विराजमान भगवान् श्रीशंकरको मोह लिया, समाधि भंग हो गयी। बाबा बावरे-से चल पड़े व्रज-वृन्दावनकी ओर। पार्वतीजी भी मनाकर हार गयीं, किंतु त्रिपुरारि माने नहीं। भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त श्रीआसुरि मुनि, श्रीपार्वतीजी, नन्दी, श्रीगणेश, श्रीकार्तिकेयके साथ भगवान् शंकर वृन्दावनके वंशीवटपर आ गये।

वंशीवटपर जहाँ महारास हो रहा था, वहाँ गोलोक-वासिनी गोपियाँ द्वारपर खड़ी हुई थीं। पार्वतीजी तो महारासमें अंदर प्रवेश कर गयीं, किंतु द्वारपालिकाओंने श्रीमहादेवजी और श्रीआसुरि मुनिको अंदर जानेसे रोक दिया, बोलीं—श्रेष्ठ जनो! यहाँ एक ही पुरुष श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष इस एकान्त महारासमें प्रवेश नहीं कर सकता।

श्रीशिवजी बोले—देवियो! हमें भी महारास तथा श्रीराधा-कृष्णके दर्शनोंकी लालसा है, अतः आप ही लोग कोई उपाय बतलाइये जिससे कि हम महारासके दर्शन करें? ललिता नामक सखी बोली—यदि आप महारास देखना चाहते हैं तो गोपी बन जाइये। मानसरोवरमें स्नानकर गोपीरूप धारण करके महारासमें प्रवेश हो सकता है। फिर क्या था भगवान् श्रीशिव अर्धनारीश्वरसे पूरे नारी-रूप बन गये। श्रीयमुनाजीने षोडश शृंगार कर दिया तो बाबा भोलेनाथ गोपीरूप हो गये, प्रसन्न मनसे वे गोपी-वेषमें महारासमें प्रवेश कर गये। श्रीमहादेवजी मोहिनी-वेषमें मोहनकी रासस्थलीमें गोपियोंके मण्डलमें मिलकर अतृप्त नेत्रोंसे विश्वमोहनकी रूप-माधुरीका पान करने लगे। नटवर-वेषधारी श्रीरासविहारी, रासेश्वरी, रसमयी श्रीराधिकाजी एवं गोपियोंको नृत्य एवं रास करते हुए देखकर नटराज भोलेनाथ भी स्वयं ता-ता थैया कर नाच उठे। मोहनने ऐसी मोहिनी वंशी बजायी कि सुधि-बुधि भूल गये भोलानाथ। बनवारीसे क्या कुछ छिपा है? मुसकरा उठे, पहचान लिया भोलेनाथको। उन्होंने रासेश्वरी श्रीराधा तथा गोपियोंको छोड़कर व्रज-वनिताओं और लताओंके बीचमें गोपीरूपधारी गौरीनाथका हाथ पकड़ लिया और मन्द-मन्द मुसकराते हुए बड़े ही आदर-सत्कारसे बोले—आइये स्वागत है महाराज गोपीश्वर! श्रीराधा आदि श्रीगोपीश्वर महादेवके मोहिनी गोपीवेषरूपको देखकर आश्चर्यमें पड़ गयीं। तब श्रीकृष्णने कहा—राधे! यह कोई गोपी नहीं है, ये तो साक्षात् भगवान् शंकर हैं। हमारे

महारासके दर्शनके लिये इन्होंने गोपीरूप धारण किया है। अनन्तर श्रीराधा-कृष्णने हँसते हुए श्रीशिवजीसे पूछा—'भगवन्! आपने यह गोपी-वेष क्यों बनाया?' भगवान् शंकर बोले—'प्रभो! आपकी इस दिव्य रसमयी प्रेम-लीला—महारासको देखनेके लिये गोपी-रूप धारण किया है। इसपर प्रसन्न होकर श्रीराधाजीने श्रीमहादेवजीसे वर माँगनेको कहा—तब श्रीशिवजीने यह वर माँगा—

'हम यह चाहते हैं कि हमारा आप दोनोंके चरणकमलोंमें सदा ही वृन्दावनमें वास हो। आप दोनोंके चरणकमलोंके बिना हम कहीं अन्यत्र वास नहीं करना चाहते।' भगवान् श्रीकृष्णने 'तथास्तु' कहकर कालिन्दीके निकट निकुञ्जके पास, वंशीवटके सम्मुख भगवान् महादेवजीको 'श्रीगोपीश्वर महादेव'के नामसे स्थापित कर विराजमान कर दिया। श्रीराधा-कृष्ण, गोपी-गोपोंने उनकी पूजा की और कहा कि व्रज-वृन्दावनकी यात्रा तभी पूर्ण होगी, जब वह आपके दर्शन कर लेगा। आपके दर्शन किये बिना यात्रा अधूरी रहेगी।

भगवान् शंकर वृन्दावनमें आज भी 'गोपीश्वर महादेव'के रूपमें विराजमान हैं और भक्तोंको अपने दिव्य गोपी-वेषमें दर्शन दे रहे हैं। गर्भगृहके बाहर पार्वतीजी, श्रीगणेश, श्रीनन्दी विराजमान हैं। आज भी संध्याके समय भगवान्का गोपीवेशमें दिव्य शृंगार होता है।

चाचा हित वृन्दावनदासने तो इनको वृन्दावनका 'कोतवाल' कहा है—

नमो नमो जै भक्ति-रिझवार।
नाम विदित गोपेश्वर जिनको, वृन्दा कानन कुलवार॥
यात्रा सफल होत जब तब ही, जब रज बन्दै इन दरबार।
वृन्दावन हित रूप सखि वपु, सेवत दम्पति नित्य विहार॥
नाम रूप गुण परिहरौ गोपेश्वर रस सोप।
अग्रगण्य वैष्णवनमें हिये प्रेम की गोभ॥

हरदोई जनपदके प्राचीन शिव-मन्दिर

(पं० श्रीशिवकण्ठलालजी शुक्ल 'सरस')

हरदोई उत्तरप्रदेशका एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं पौराणिक जनपद है। इसके कई स्थान ऐसे हैं, जिनका इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। भारतके अन्य भागोंकी भाँति इस जनपदकी धरतीपर शैव, शाक्त एवं वैष्णव-सम्प्रदायोंको फूलने एवं फलनेका अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। बड़ी संख्यामें निर्मित ठाकुरद्वारा, शिवालय एवं दुर्गा-मन्दिर इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पूजा-अर्चना एवं मेलों आदिकी दृष्टिसे यहाँ शिव-मन्दिरोंकी प्रधानता है। प्रतिवर्ष श्रावण मासके सोमवारों एवं फाल्गुन मासकी शिवरात्रिपर अपार जनसमूह पूजाके लिये उमड़ पड़ता है। जनपदके कोने-कोनेसे नर-नारी एवं बाल-वृद्ध गङ्गाजल लाकर शिव-मन्दिरोंमें अर्पण करते हैं।

हरदोई जनपदके प्रायः सभी भागोंमें बड़ी संख्यामें शिवालय बने हुए हैं, पर कुछ शिव-मन्दिर अति प्राचीन हैं और उनकी महत्ता भी अधिक है। इन शिव-मन्दिरोंमें आकर महिलाएँ अपने बच्चोंके संस्कार भी सम्पन्न करती हैं। इनमें मढ़ियाके सिद्धेश्वर महादेव, बिलग्रामके मल्लानाथ महादेव, हरदोईके बाबा महादेव, सकाहाके संकटहरण महादेव तथा भगवन्तनगर-मल्लावाँके स्वनाकीनाथ महादेवके मन्दिर अधिक लोकप्रिय हैं। यहाँ संक्षेपमें इनका विवरण दिया जा रहा है—

(१) सिद्धेश्वर महादेव—सिद्धेश्वर महादेवका मन्दिर मढ़िया (बावटमऊ) ग्राम बिलग्राम तहसीलमें बिलग्राम-कन्नौज-मार्गपर स्थित है। इस क्षेत्रमें इतना विशाल एवं प्राचीन मन्दिर कोई नहीं है। इस क्षेत्रमें जब कोई विवाह, यज्ञोपवीत या अन्य कोई माङ्गलिक कार्य होता है तो सर्वप्रथम इसी शिवालयमें पूजा की जाती है। इस मन्दिरमें शिवभगवान्के अतिरिक्त दुर्गादेवीकी कई मूर्तियाँ भी हैं। भगवान् विष्णुकी मूर्ति भी सुशोभित है। इस मन्दिरमें शैव, शाक्त एवं वैष्णव-सम्प्रदायोंका सुन्दर समन्वय दीखता है।

(२) स्वनाकीनाथ महादेव—मल्लावाँ भगवन्तनगरका शिव-मन्दिर नगरसे दक्षिण दिशामें लगभग ५ कि० मी० की दूरीपर है। यह स्वनाकीनाथ-मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। बताया जाता है कि यह मन्दिर मुगल-शासन-कालमें निर्मित करवाया गया था। औरंगजेबके शासन-कालमें यवनोंने इस

मूर्तिको तोड़नेका प्रयास किया, परंतु विषैले जन्तुओंके प्रकोपके कारण वे लोग वैसा न कर सके। बिलग्राम तहसीलमें यह शिवालय सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। यहाँका मेला भी बहुत पुराना है।

(३) मन्शानाथ महादेव—बिलग्राम नगर हरदोई-कन्नौज-मार्ग तथा हरदोई-कानपुर-मार्गके संधि-स्थानपर हरदोईसे २७ कि० मी०की दूरीपर बसा है। यह एक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक नगर है। महाभारत-कालसे जुड़े इस नगरका इतिहास बड़ा गौरवशाली रहा है। इसी नगरके उत्तरमें महादेव मन्शानाथका प्राचीन मन्दिर है। इसका जीर्णोद्धार करवाया गया है। इसमें मन्शानाथ महादेवका शिवलिङ्ग स्थापित है।

(४) संकटहरण महादेव—शाहाबाद तहसीलमें हरदोई-शाहजहाँपुर-मार्गपर सकाहा ग्राममें भव्य एवं प्राचीन संकटहरण महादेवका मन्दिर है। यहाँपर एक संस्कृत-महाविद्यालय भी है जो कि संस्कृत-शिक्षाका महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। यहाँ श्रावण एवं फाल्गुनमें विशेष पूजा होती है। जनपदके सभी मन्दिरोंकी अपेक्षा यहाँ भीड़ अधिक होती है। भक्तोंका ऐसा विश्वास है कि इस मन्दिरमें आराधना करनेसे संकटोंका सर्वथा निवारण हो जाता है। यह स्थान भव्य एवं दर्शनीय है।

इसी प्रकार हरदोई नगरमें चौहान चौकका शिव-मन्दिर तथा उसके पास ही ऊँचे चौकका बूढ़े बाबा शिव-मन्दिर भी प्रसिद्ध है।

श्रीप्रकटेश्वर महादेव

श्रीप्रकटेश्वर महादेवका मन्दिर लखनऊ-सुल्तानपुर-मार्गपर लखनऊसे २८ कि० मी० दूर अमेठीके धौरहरा ग्राममें स्थापित है। पहले यहाँ मन्दिर नहीं था, परंतु भगवान् शंकरकी पूजा और शिवपुराणका मास-पारायण आदि नियमितरूपसे हुआ करता था। महादेवके ही आशीर्वादसे उक्त मन्दिरका निर्माण पूर्ण हुआ। कहते हैं कि स्वयं महादेवने मन्दिरके पुजारीको स्वप्न देकर उक्त मन्दिरका नाम 'श्रीप्रकटेश्वर महादेव-मन्दिर' रखनेका आदेश दिया।

तबसे आजतक निरन्तर यहाँ नियमितरूपसे प्रातःकालीन एवं सायंकालीन आरती, अभिषेक, शिवपुराणका पारायण आदि धार्मिक क्रिया-कलाप होते रहते हैं। महाशिवरात्रिके दिन यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें बड़ी संख्यामें आस-पासके क्षेत्रके लोग सम्मिलित होते हैं और श्रद्धापूर्वक पूजन-अर्चनादि करते हैं। —श्रीलल्लूराम कश्यप

श्रीतामेश्वरनाथ

उत्तरप्रदेशके बस्ती जनपदके आस-पासके क्षेत्रोंमें श्रीतामेश्वरनाथ-धामकी शिवनगरी काशीके समान ही विशेष महिमा-प्रतिष्ठित रही है। इस स्थानके सम्बन्धमें यह कर्णपरम्परासे प्रसिद्धि है कि गुप्त वनवासके समय माता कुन्तीदेवीने पुनः राज्यप्राप्तिकी कामनासे यहाँ एक दिव्य शिवलिङ्ग-मूर्तिकी स्थापना की थी और तभीसे यह स्थान तामेश्वरनाथ शिव-क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। यह भी प्रसिद्धि है कि भगवान् बुद्ध भी इस स्थानपर आये थे और आद्यशंकराचार्यजीने यहाँ आकर सनातन-धर्मकी ध्वजा फहरायी थी। ऐतिहासिकोंका कहना है कि १७ वीं शतीके आस-पास खलीलुलर्रहमानने इस मन्दिरको भग्नप्राय कर दिया था, किंतु फिर बादमें बाँसीनरेशद्वारा इस मन्दिरका सर्वप्रथम जीर्णोद्धार हुआ। इस सिद्धस्थलीमें कितने ही संत-महात्मा, भक्त, श्रद्धालु जन भगवान् श्रीतामेश्वरनाथजीके दर्शनके लिये आते रहे हैं। महाशिवरात्रि, पुरुषोत्तममास तथा प्रत्येक सोमवारको दर्शनार्थी यहाँ आकर तामेश्वरनाथजीका दर्शन कर अपनेको कृतार्थ करते हैं।

—महन्त आचार्य रामरक्षा भारती

लोधेश्वर महादेव

उत्तरप्रदेशके बाराबंकी जनपदमें लोधेश्वर महादेवका प्राचीन मन्दिर स्थित है। कहते हैं कि महाभारतकालमें लाक्षागृहसे बच निकलनेके पश्चात् माता कुन्ती-सहित पाँचों पाण्डव इस क्षेत्रमें आये थे। माता कुन्ती तथा महाराज युधिष्ठिरने इस शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। बादमें यह मन्दिर एवं शिवलिङ्ग घाघरा (गण्डकी) नदीकी बाढ़में बह गया। कालान्तरमें स्वयं भगवान् शिवने लोधौरा ग्राम-निवासी एक भक्तको स्वप्न देकर उस स्थानका निर्देश किया, जहाँ बालू और मिट्टीमें यह शिवलिङ्ग दबा हुआ था। उस

शिवभक्तने उक्त स्थानको खोदकर शिवलिङ्ग निकाला और उसकी पुनः स्थापना की। यहाँका पारिजात वृक्ष अत्यन्त प्रसिद्ध है।

महाशिवरात्रिके अवसरपर मध्यप्रदेश, रुहेलखण्ड, बुंदेलखण्डके जनपदोंसे अनेक लोग कंधेपर जलभरे काँवर लटकाये पैदल इस मन्दिरतक आते हैं और शिवरात्रिके दिन शिवलिङ्गपर जल चढ़ाते हैं। महाशिवरात्रि, मकरसंक्रान्ति, श्रावणी पूर्णिमा आदि अवसरोंपर यहाँ बड़ा मेला लगता है, जिसमें भारी संख्यामें लोग एकत्रित होते हैं।

—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री

भीमेश्वर

नैनीतालसे लगभग ११ मील दूर एक विस्तृत ताल है। इसे भीमताल कहते हैं। इसी भीमतालके तटपर भीमेश्वर नामक यह शिव-मन्दिर है। मन्दिरसे थोड़ी ही दूर उत्तरमें 'कर्कोटक' शिखर है, जहाँ कर्कोटक नामक पुराण-प्रसिद्ध नागकी बाँबी है। भीमेश्वरके पास सप्तर्षियोंके नामपर सात पर्वत-शिखर हैं। यहाँसे पूर्वोत्तर करीब १२ मीलपर 'छोटा कैलास' नामका शिखर है। कहा जाता है कि इसी शिखरपर भगवान् शंकरने पार्वतीजीको योग-प्रणालियाँ सुनायी थीं। शिवरात्रिको यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है।

भीमशंकर

'भीमशंकर शिव'का विशाल मन्दिर नैनीताल जिलेके प्रसिद्ध नगर काशीपुरसे लगभग १ मील पूर्व 'उज्जनक' नामक स्थानपर है। इस शिव-मन्दिरका शिवलिङ्ग अत्यन्त विशाल है। शिवलिङ्गकी ऊँचाईका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि यह मन्दिरकी दूसरी मंजिलतक चला गया है। इसकी मोटाई भी उसी अनुपातमें दोनों बाँहोंके व्याससे भी अधिक है।

मन्दिरके पूर्व-भागमें भैरव-मन्दिर है। मन्दिरके बाहर शिवगङ्गाकुण्ड है। मन्दिरके चारों ओर १०८ रुद्र हैं। ये लिङ्ग-मूर्तियाँ आस-पासकी खुदाईमें ही प्राप्त हुई हैं। 'भीमशंकर-लिङ्ग' बहुत मोटा होनेसे उसे 'मोटेश्वरनाथ' के नामसे भी पुकारा जाता है। मन्दिरके पश्चिममें भगवती बालसुन्दरीका मन्दिर है। यहाँ शिवरात्रि तथा चैत्र शुक्ला अष्टमीको मेला लगता है।

कुछ विद्वानोंके मतसे यहीं ज्योतिर्लिङ्ग भीमशंकरका स्थान है। वे विद्वान् इसी प्रदेशको प्राचीन कामरूप तथा डाकिनी देश बतलाते हैं। देवी-मन्दिरके पश्चिममें एक प्राचीन दुर्गका स्थान है। उसे 'किला' कहते हैं। कुछ लोगोंके अनुसार यहीं द्रोणाचार्यने कौरव-पाण्डवोंको धनुर्विद्या सिखलायी थी। उनके अनुसार द्रोणाचार्यजीने भीमसेनद्वारा इस लिङ्गकी स्थापना करवायी थी।

महामृत्युंजय

उत्तराखण्डके गढ़वाल तथा टेहरी जिलेका क्षेत्र केदारखण्डके नामसे प्रसिद्ध है। इस सम्पूर्ण खण्डमें अनेक प्रसिद्ध शिवलिङ्ग स्थापित हैं, परंतु इनमें केदारनाथ तथा महामृत्युंजय बहुत प्रसिद्ध हैं। महामृत्युंजय पर्वत कर्णप्रयागसे लगभग १८ मील पूर्व है। कर्णगङ्गा नदीसे लगभग २ मीलकी दण्डाकार चढ़ाई पार करनेपर भगवान्‌के दर्शन होते हैं। आद्यशंकराचार्यके समयका निर्मित प्राचीन मन्दिर पूर्वके एक भूकम्पमें नष्ट हो गया, तब शिवलिङ्गको नये मन्दिरमें स्थानान्तरित कर दिया गया। यहाँ शिवरात्रिको मेला लगता है।

बिल्वकेश्वर

हरिद्वारके समीप बिल्वनामक पर्वत है, उसी पर्वतपर बिल्वकेश्वर महादेवका मन्दिर है। बिल्वकेश्वर महादेवका स्कन्दपुराण केदारखण्डके अध्याय १०७ में इस प्रकार वर्णन है—उस पर्वतके ऊपर कल्याणकारी शिवधारा नामकी एक धारा बहती है, जिसमें एक [illegible]
शिव-तुल्य ही ज[illegible]
उसके नीचे एक [illegible]
मनुष्य [illegible]
मूर्तियाँ हैं—
दोनों मन्दिरों [illegible]

[illegible]
शहरमें [illegible]
है। कहा [illegible]
[illegible]

मन्दिर यहाँका मुख्य तथा प्राचीन मन्दिर है। यह विशाल मन्दिर गङ्गातटसे लगभग दो कि० मी० दूर है। इस मन्दिरके भीतर ही नृग-कूप है, जिसके जलसे स्नान करनेका बड़ा माहात्म्य माना जाता है। मन्दिरके पास ही झारखण्डेश्वर नामक प्राचीन शिवलिङ्ग भी है।

गोकर्णनाथ महादेव

उत्तरप्रदेशके लखीमपुर-खीरी जनपदसे लगभग २२मीलकी दूरीपर गोला-गोकर्णनाथका प्रसिद्ध शिव-क्षेत्र है। यह उत्तर गोकर्णक्षेत्र कहलाता है। गोकर्णक्षेत्रमें 'भगवान् शंकरका आत्मतत्त्वलिङ्ग है। यहाँ एक विशाल सरोवर है, इसीके समीप गोकर्णनाथका एक विशाल प्राचीन मन्दिर है।

वाराहपुराणमें कथा है कि भगवान् शंकर एक बार मृगरूप धारण करके यहाँ विचरण कर रहे थे। देवता उन्हें ढूँढ़ते हुए आये और उसमेंसे ब्रह्मा, भगवान् विष्णु तथा देवराज इन्द्रने मृगरूपमें शंकरजीको पहचानकर उन्हें पकड़नेके लिये उनके सींग पकड़े। मृगरूपधारी शिव तो अन्तर्धान हो गये, किंतु उनके तीन सींग तीनों देवताओंके हाथमें रह गये। उनमेंसे एक शृङ्ग यहाँ गोकर्णनाथमें देवताओंने स्थापित किया, दूसरा भागलपुर जिले (बिहार)के शृङ्गेश्वरनामक स्थानमें और तीसरा देवराज इन्द्रने स्वर्गमें। रावणने जब इन्द्रपर विजय प्राप्त की, तब वह स्वर्गसे गोकर्णलिङ्ग ले आया, किंतु मार्गमें उसे एक स्थानपर रखकर नित्यकर्ममें लग गया। नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर जब वह उस मूर्तिको उठाने लगा, तब वह उठी नहीं। रावणद्वारा स्वर्गसे लायी गयी वह लिङ्गमूर्ति दक्षिण भारतके गोकर्ण-तीर्थमें है और देवताओंद्वारा स्थापित मूर्ति गोला-गोकर्णनाथमें है।

मार्कण्डेयेश्वर

मार्कण्डेयेश्वर महादेवका मन्दिर बनारस छावनी स्टेशनसे लगभग ११ मील पूर्वोत्तर स्टेशन रजवाड़ीसे लगभग ३ मील दूर स्थित है। पासमें ही गोमती नदीका गङ्गाजीसे मिलन होता है। यह संगम-स्थान अत्यन्त पवित्र माना जाता है और यहाँ स्नान करनेका बड़ा माहात्म्य है। संगमके पासका क्षेत्र मार्कण्डेयक्षेत्र कहलाता है। कहा जाता है कि मार्कण्डेयजीने इस क्षेत्रमें घोर तप किया था और शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। उन्हींके नामपर यह क्षेत्र 'मार्कण्डेय-क्षेत्र' तथा महादेवका मन्दिर 'मार्कण्डेयेश्वर-मन्दिर' कहलाता है।

दुग्धेश्वरनाथ

गोरखपुर मण्डलके अन्तर्गत देवरिया जनपदमें गौरीबाजारसे लगभग १० मील दक्षिण रुद्रपुर नामक ग्रामके समीप श्रीदुग्धेश्वरनाथ महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है। शिवपुराणके अनुसार यह महाकालेश्वरका उपज्योतिर्लिङ्ग है। मन्दिरमें श्रीदुग्धेश्वरनाथका जो लिङ्ग प्रतिष्ठित है, वह जमीनसे लगभग ८ फुट नीचे स्थित है। इस स्थानकी बड़ी महिमा है।

मध्यप्रदेशके शिव-मन्दिर

धनवंतरी (धन्वन्तरि) महादेव

पुण्यतोया शिप्रासे मण्डित उज्जैनके महाकालवनमें जहाँ साक्षात् महाकालेश्वर निवास करते हैं, वहीं समीपवर्ती क्षेत्रोंमें भी उनके नाम-रूपोंसे भगवान् शिव प्रतिष्ठित हैं। उज्जैन एक मुख्य शिवक्षेत्र है। उज्जैन जिलेमें महिदपुर नगरसे सात कि० मी० दूर झार्डा-रोडपर 'श्रीधनवंतरी महादेव'का एक प्राचीन मन्दिर है। परमारकालीन इस शिवमन्दिरके पास एक नाला बहता है। प्राचीन मन्दिरके धराशायी होनेके पश्चात् जमीनसे खोदकर इसे निकाला गया और प्राप्त अवशेषोंसे मन्दिरका पुनर्निर्माण किया गया।

कहते हैं कि शीतकालमें भगवान् धन्वन्तरि इस स्थानपर आते हैं एवं जनसेवा करते हैं। यहाँ हाथमें कलश लिये हुए शिव-पार्वतीकी विशाल मूर्ति है। बाहर शिवलिङ्ग भी प्रतिष्ठित है। पास ही एक कुण्ड है। सुना जाता है कि कुण्डके जलसे स्नान एवं सेवन करनेसे उदर-सम्बन्धी विकार तथा चर्मरोग दूर हो जाते हैं।

इस स्थलपर पुरातत्त्व-महत्त्वकी अनेक मूर्तियाँ हैं। यहाँ पौष मासकी अमावास्यापर बड़ा मेला लगता है, जिसमें महिदपुरके अलावा आस-पासके ग्रामीण क्षेत्रोंसे भी बड़ी मात्रामें श्रद्धालुगण आते हैं। ऐसी जनश्रुति है कि इस

धन्वन्तरिकी पहाड़ीपर अनेक जड़ी-बूटियाँ उत्पन्न होती हैं और जानकार लोग उनका प्रयोग करते हैं।

मङ्गलकेदारेश्वर महादेव

केदारेश्वर महादेवका मन्दिर उपजेल महिदपुरमें स्थित है। यहाँ कुछ वर्षोंपूर्व नवीन मन्दिरका निर्माण किया गया है। जिसमें श्रीकेदारेश्वरकी प्राचीन लिङ्गमूर्ति स्थापित है। प्रतिवर्ष महाशिवरात्रिके अवसरपर श्रीकेदारेश्वर महादेवका चल-समारोह नगरमें निकाला जाता है। श्रावण एवं भाद्रपद मासमें प्रति-सोमवारको शिवजीका भोग-शृंगार किया जाता है, जिसे देखनेके लिये दर्शनार्थियोंकी भारी भीड़ होती है। अनेक श्रद्धालुओंकी मनःकामनाएँ श्रीकेदारेश्वर महादेवके दर्शन-पूजनसे पूर्ण हुई हैं।

—श्रीरामदास पाण्डेय

धूर्जटेश्वर महादेव

मध्यप्रदेशके उज्जैन जिलेमें महिदपुर नगरकी पश्चिम दिशामें शिप्रा पूर्ववाहिनी होकर बह रही है। इसी स्थलपर महाशिव धूर्जटेश्वरका ऐतिहासिक किलेनुमा विशाल मन्दिर सैकड़ों वर्षोंसे अपनी भव्यताके कारण भक्तोंको आकृष्ट करता आ रहा है।

इस मन्दिरमें महाशिवरात्रिपर विशेष कार्यक्रम—अभिषेक आदि होते हैं। श्रावणमें पूरे मासभर पूजन-अभिषेक आदिके कार्यक्रम चलते रहते हैं। अन्तिम सोमवारको बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिके साथ अखाड़ों आदिसे सज्जित होकर भगवान् धूर्जटेश्वरकी सवारी उज्जैनके महाकालेश्वरकी सवारीके समान ही नगरके प्रमुख मार्गोंसे होती हुई शिप्राके अन्तिम घाट गवलाघाटके शिव-मन्दिरतक जाती है और पूजन-आरतीके उपरान्त पुनः अपने स्थानपर लौट आती है।

कहा जाता है कि यहाँ पूर्वकालमें राजा विक्रमादित्य और महाकवि कालिदास भी दर्शनार्थ आते रहे हैं। शिव-उपासक और तान्त्रिकोंके लिये यह क्षेत्र विशेष महत्त्वका रहा है।

यहाँ शिप्रा नदीके विशाल घाटोंपर शिव एवं अन्य देवी-देवताओंके मन्दिर बने हुए हैं जो अपने प्राचीन इतिहासकी गाथाको अपनेमें संजोये हैं। महिदपुरमें और भी अनेकों प्रसिद्ध शिवमन्दिर हैं, जिनमें नागनाथेश्वर, पशुपतिनाथ, काशीविश्वनाथ, मङ्गलकेदारेश्वर, गवला-घाटका शिवमन्दिर, पर्पैयाका शिव-मन्दिर तथा बिल्वकेश्वर आदि प्रमुख हैं।

यहाँपर एक पुरातन महालक्ष्मी-मन्दिर है। इस मन्दिरमें महालक्ष्मीकी एक विशिष्ट प्रतिमा स्थापित है। इस मूर्तिकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि काले कसौटीके चमकदार पत्थरकी इस मूर्तिके सिरपर पूर्ण आकृतिमें जलहरीमें शिवलिङ्ग स्थित है। इस प्रकारकी मूर्ति अन्यत्र देखने-सुननेमें नहीं आयी है। यहाँ इसे बहुत मान्यता मिली हुई है। उज्जैनके समान ही महिदपुर-क्षेत्रमें भी पञ्चक्रोशी-परिक्रमा होती है।

—श्रीकमलाशंकर परमार

श्रीधाय महादेव—खोड़

मध्यप्रदेशमें शिवपुरी मण्डलान्तर्गत विन्ध्यपर्वत-श्रेणीके निकटस्थ ग्राम खोड़में 'श्रीधाय महादेव'का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर १६वीं शताब्दीका है, जबकि मन्दिरमें स्थापित लिङ्ग-मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है। कहते हैं कि पहले यह मूर्ति यहीं एक धाय (धय) वृक्षके नीचे भूमिमें दबी हुई थी। स्वयं भगवान् शंकरने एक संतको स्वप्नमें उक्त लिङ्ग-मूर्तिको निकालकर स्थापित करनेका आदेश दिया। उन्होंने ही भूमिमेंसे उक्त मूर्तिको निकालकर विधि-विधानसे पूजा-अर्चना कर स्थापित किया। बादमें वहीं मन्दिर बनवाया गया। मुख्य मन्दिरके सामने भगवान् नन्दी तथा पार्वतीजी प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

मुख्य मन्दिरके अलावा यहाँ विघ्ननाशक गणेश, श्रीकृष्ण एवं राधा तथा सती महारानीके मन्दिर हैं। शंकरजीके मन्दिरसे ही लगा हुआ श्रीराम-दरबार-मन्दिर है। मुख्य मन्दिरमें प्रारम्भसे ही अखण्ड-ज्योति तथा अखण्ड धूनी प्रज्वलित है।

यहाँ महाशिवरात्रिके अवसरपर बड़ा भारी मेला लगता है। सोमवती अमावास्या, बसन्तोत्सव तथा मकर-संक्रान्ति आदि पर्वोंपर भी श्रद्धालुओंकी भारी भीड़ एकत्रित होती है।

मन्दिरके पास ही दगंग नामक एक छोटी नदी प्रवाहित होती है। नदीके घाट पक्के बने हुए हैं।

श्रीधाय महादेवकी इस क्षेत्रमें बहुत महिमा है। माना जाता है कि जो भी व्यक्ति श्रद्धा, भक्ति और विश्वासपूर्वक

श्रीधाय महादेवकी पूजा एवं अभिषेक करता है, उसकी मनःकामना अवश्य पूर्ण होती है। इसी क्षेत्रसे एक छोटी-सी सिन्ध नामक नदी निकलती है, जिसके किनारे अनेकों छोटे-छोटे शिव-मन्दिर तथा शिवलिङ्ग स्थापित हैं। खोड़ ग्रामके निकट ही श्रीपनरियानाथका एक पवित्र सुन्दर स्थान है, जहाँपर बारहों महीने पहाड़से झरना बहता रहता है। यह स्थान साधना करनेके लिये उत्तम माना जाता है। —श्रीहरिकृष्ण नीखरा

तिलस्मा महादेव

मध्यप्रदेशके मंदसौर जिलेके अन्तिम छोर सिंगोली गाँवसे १३ कि० मी०की दूरीपर अरावलीकी पहाड़ियोंमें तिलस्मा नदीके निकट श्रीमन्तिलस्मा महादेवका एक सुन्दर एवं भव्य मन्दिर स्थित है। यह मन्दिर राजस्थानके भीलवाड़ा जिलेके दक्षिणी छोरपर स्थित है। यहाँ चित्तौड़गढ़-कोटामार्ग (राजस्थान) तथा नीमच (म० प्र०) की ओरसे जाया जा सकता है।

मन्दिर लगभग पाँच सौ वर्ष प्राचीन है। मन्दिर करीब सौ फुटकी लंबाईमें है। मन्दिरके मुख्य द्वारके दोनों ओर संगमरमरके दो विशाल हाथी बने हुए हैं। मुख्य मन्दिरमें महादेवजीका चमत्कारी लिङ्ग (तिलस्मा महादेव) तिलके आकारमें स्थापित हैं। इस शिवलिङ्गको भक्तगण एक ही फूलसे ढक देते हैं।

मन्दिरके सम्मुख यज्ञ-मण्डप हैं। उससे कुछ आगे नन्दी-मन्दिर है। उससे आगे प्राचीन शिल्पकारीसे बना गोलाकार एक सभा-मण्डप है। मन्दिरके ठीक सम्मुख पानीका एक बहुत बड़ा, गहरा तथा पक्का कुण्ड है। कुण्डके चारों ओर विल्व, पलास तथा वट-वृक्ष लगे हुए हैं। इससे यह स्थान अत्यन्त रमणीय एवं सुखद प्रतीत होता है। मुख्य मन्दिरके आस-पास माता अम्बिका तथा भगवान् शंकरके और भी कई छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए हैं।

महाशिवरात्रि, वैशाख-पूर्णिमा, श्रावणी अमावास्याको यहाँ विशाल मेला लगता है। मध्यप्रदेश और राजस्थानकी सीमापर स्थित होनेके कारण दोनों ही राज्योंके शहरोंसे यहाँ भारी भीड़ आकर एकत्रित होती है।

यहाँ कुण्डसे सफेद रंगकी भस्म मिली हुई मिट्टी निकलती है। कुण्डमें नहाकर उस मिट्टीको शरीरमें लगानेसे अनेक प्रकारके चर्मरोग ठीक हो जाते हैं। यह अनेक लोगोंद्वारा प्रत्यक्ष अनुभव किया हुआ है। रोगी यहाँपर आकर कुण्डमें स्नान करते हैं, तिलस्मा महादेवका दर्शन करते हैं और माँगकर खाते हैं, इससे उनके रोग दूर हो जाते हैं। रोगियों तथा दर्शनार्थियोंके लिये मन्दिरद्वारा भी भोजनकी व्यवस्था है।

—श्रीभवानीलाल पाटीदार

सिद्धपीठ श्रीजागेश्वरनाथ महादेव

'श्रीजागेश्वरनाथ महादेव'का मन्दिर मध्यप्रदेशके दमोह जिलान्तर्गत बांदकपुरमें स्थित है। जिला-मुख्यालय दमोहसे पूर्व दिशामें १६ कि० मी० दूर बांदकपुर स्थित है। कटनी-बीना मध्य रेलवे-लाइनपर बांदकपुर स्टेशन है। स्टेशनसे २ कि० मी० दक्षिणमें श्रीजागेश्वरनाथजीका सिद्धपीठ क्षेत्र है।

भगवान् जागेश्वर और पार्वतीजीके मन्दिरका विस्तार पूर्वसे पश्चिम ६३ मी० और उत्तरसे दक्षिण ६५ मी० है। मन्दिर-परिधिमें प्रवेश-हेतु दक्षिणमें हाथीदरवाजा (प्राचीन मुख्यद्वार), पश्चिममें नवीन गेट और उत्तरमें छोटा द्वार है। मुख्यद्वारसे प्रवेश करनेपर महादेवजीके मन्दिरकी बाह्य परिक्रमा है। मन्दिरके गर्भगृहमें भगवान् जागेश्वरनाथकी विशालकाय लिङ्गमूर्ति है। जागेश्वरनाथजीके मुख्यद्वारके सामने पूर्वकी ओर पार्वतीजीकी स्फटिक-पाषाणसे निर्मित एक मीटर ऊँची प्रतिमा है।

कहते हैं कि आजसे लगभग ३०० वर्ष पूर्व मराठा राज्यके दीवान श्रीबालाजी राव चांदोरकर एक दिन यात्राके दौरान बांदकपुर आये। यहाँपर इमारतीकुण्डमें स्नान करनेके पश्चात् वे अपनी नित्य-पूजामें ध्यान-मग्न थे, तब स्वयं भगवान् शिवने उन्हें इस स्थानका निर्देश किया, जहाँ एक वटवृक्षके नीचे उनका घोड़ा बँधा था। ध्यान समाप्त होनेपर जब बालाजीने देखा तो उन्हे उस स्थानपर काले-भूरे प्रस्तरकी मूर्ति दिखायी दी। कहा जाता है कि ३० फुटतक खुदाई करानेपर भी मूर्तिका अन्त न पाकर खुदाई बंद कर दी गयी और वहींपर मन्दिरका निर्माण कराया गया।

भगवान् जागेश्वरनाथजीके मुख्य द्वारके सामने कुछ दूरीपर पूर्वकी ओर पश्चिमाभिमुखी जगज्जननी जागेश्वरीकी लगभग एक मीटर ऊँची प्रतिमा इस अद्भुत ढंगसे प्रस्थापित की गयी है कि दर्शनार्थी श्रीजागेश्वर-शिवलिङ्गका पूजन करने

हुए माता पार्वतीके और माता पार्वतीका पूजन करते हुए भगवान् जागेश्वरनाथके एक साथ दर्शन कर सकें। इन दोनों प्रतिमाओंके मध्य भगवान् नन्दीश्वरकी विशाल प्रतिमा स्थापित है।

जागेश्वरजीके मन्दिरके आस-पास ही कालभैरव, श्रीराम, लक्ष्मण, जानकी और हनुमान्, सत्यनारायणभगवान् तथा राधा-कृष्णके मन्दिर भी हैं।

—श्रीशंकरलाल नामदेव

श्रीपटनेश्वर महादेव

श्रीपटनेश्वर महादेवका यह सिद्ध-पीठ-स्थल दाना, जिला सागर, मध्यप्रदेशमें स्थित है। लगभग चार सौ वर्ष पूर्व मराठा राजवंशने इस मन्दिरका निर्माण करवाया था।

इस मन्दिरमें शिवके साथ गणेश, अन्नपूर्णा, विष्णु तथा सूर्यकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। मन्दिरके बाहर बायीं ओर पञ्चमुखी हनुमान्‌जीकी मूर्ति है। पराम्बा पार्वतीजीके मन्दिरके पीछे पीपलका एक वृक्ष है।

महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बड़ा मेला लगता है, जिसमें आस-पासके क्षेत्रोंसे असंख्य श्रद्धालु सम्मिलित होते हैं। —श्रीदेवेन्द्रकुमार पाठक 'अचल'

कुण्डेश्वर

बुंदेलखण्डमें टीकमगढ़से लगभग ४ मील दक्षिण जमडार नदीके उत्तर तटपर एक ऊँचे कगारपर एक भव्य शिव-मन्दिर है। यहाँ नीचे नदीमें एक कुण्ड है, जिसकी गहराईका किसीको पता नहीं है। इस जगह यह शिवलिङ्ग श्रीवल्लभाचार्यजीद्वारा स्थापित है। १५वीं शताब्दीमें धंती नामकी एक खटकिनको इसका पता लगा था। श्रीवल्लभाचार्यजी उन दिनों यहीं तुङ्गारण्यमें श्रीमद्भागवतकी कथा कह रहे थे। समाचार पाकर उन्होंने तैलङ्ग ब्राह्मणोंद्वारा इनका वैदिक संस्कार कराया और कुण्डसे आविर्भूत होनेके कारण इनका नाम 'कुण्डेश्वर' रखा। कालान्तरमें यहाँ एक भव्य मन्दिर बनवाया गया। यहाँ शिवरात्रि, मकरसंक्रान्ति तथा वसन्तपञ्चमीके अवसरपर मेला लगता है।

निष्कलङ्केश्वर

उज्जैनसे लगभग १० मीलपर निष्कलङ्क नामक ग्राममें यह शिव-मन्दिर है। ताजपुर स्टेशनसे यहाँ आनेका मार्ग है। मन्दिरमें दो सीढ़ी नीचे भगवान् शंकरकी पञ्चमुख-मूर्ति है। समीप ही पार्वतीजीकी मूर्ति है। मन्दिरके द्वारपर गणेशजी तथा सम्मुख नन्दीकी प्रतिमा है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। पूरे मन्दिरकी दीवारोंपर बहिर्भागमें देवमूर्तियाँ बनी हैं। मन्दिरके समीप ही एक सरोवर है। श्रावणमें सोमवारको यहाँ विशेष भीड़ रहती है।

केवड़ेश्वर

मध्यप्रदेशमें इन्दौरसे लगभग ५ मील दूर एक स्थान है केवड़ेश्वर। केवड़ेश्वरसे ही शिप्रा नदीका उद्गम-स्थल है। शिप्रा नदीके तटपर ही उज्जैनमें कुम्भ-मेला लगता है। केवड़ेश्वरमें एक कुण्ड है। एक गुफामें केवड़ेश्वर-मूर्ति है। मूर्तिपर सदा बूँद-बूँद जल गिरता है। पासमें एक केवड़ेके वृक्षकी जड़से शिप्रा नदी निकलती है। उद्गमके पास स्थित कुण्डमें लोग स्नान करते हैं। सोमवती अमावास्याको यहाँ मेला लगता है। इस दिन यहाँ स्नान करनेका बहुत महत्त्व माना जाता है।

अनादिकल्पेश्वर

अनादिकल्पेश्वरका मन्दिर बम्बई-दिल्ली रेलवे-लाइनपर नागदासे लगभग २५ मील दूर विक्रमगढ़-अलोट स्टेशनसे कुछ दूर स्थित है। अनादि-कल्पेश्वरका शिवलिङ्ग स्वयम्भूलिङ्ग है। इन्हें धौलेश्वर भी कहा जाता है। मन्दिरके पास एक बड़ा कुण्ड है। इस कुण्डमें १० फुटकी ऊँचाईसे जल गिरता रहता है। कुण्डमेंसे एक जलधारा निकलकर बराबर बाहर बहती रहती है। इस कुण्डका जल अनेक प्रकारके चर्मरोगोंका नाशक कहा जाता है।

भगवान् शिवका नाम परम मङ्गलमय, कल्याणमय, सर्वदुःखनाशक, सर्वसुखविधायक, सर्वसिद्धिदाता और भोग-मोक्ष देनेवाला है।

सच्चे शिवभक्तके लिये सदाचारी होना परमावश्यक है। जान-बूझकर अपवित्र आचरणको जीवनमें धारे रखनेवाला कोई भी शिवभक्त नहीं हो सकता।

राजस्थानके शिव-मन्दिर

कायावर्णेश्वर महादेव

राजस्थानके झालावाड़ जिलेके डग कस्बेसे ५ कि० मी० दूर उत्तरकी ओर छत्रसाल तथा बैरीसाल नामक दो पहाड़ोंकी गोदमें बसे कपासरा नामक गाँवमें श्रीकायावर्णेश्वर महादेवका एक सुन्दर मन्दिर स्थित है। कहते हैं कि इस लिङ्गके आकारमें प्रति बारह वर्षोंमें एक सुपारीके बराबर वृद्धि होती है।

मन्दिरके चौकोर गर्भगृहमें 'कायावर्णेश्वर महादेव'की विशाल लिङ्गमूर्ति विराजमान है। लिङ्गके आस-पास मा पार्वती एवं गणेशकी संगमरमरकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित है। पास ही एक कुण्ड है, जिसका नाम 'मंदाकिनी' है।

कहा जाता है कि ब्राह्मणोंके शापसे रोग-ग्रस्त राजा जनमेजयको इसी कुण्डमें स्नान करनेसे ही रोगसे मुक्ति मिली थी। उन्होंने ही कुण्डमेंसे उक्त लिङ्ग-मूर्ति खोजकर प्रतिष्ठित की थी। तब यह लिङ्गमूर्ति सुपारीके आकारकी थी। आज भी राजा जनमेजयकी मूर्ति मन्दिरके गर्भगृहमें स्थित है।

आज भी श्रद्धालु बड़ी संख्यामें इस कुण्डके जलसे स्नानकर अनेक प्रकारके चर्मरोगोंसे मुक्ति पाते हैं। महाशिवरात्रि एवं मकर-संक्रान्ति-पर्वपर यहाँ भक्तों एवं दर्शनार्थियोंकी विशेष भीड़ होती है। —श्रीललित शर्मा

अजय-गंध महादेव

राजस्थानके प्रख्यात अजमेर नगरके पश्चिममें अरावली-पर्वत-श्रेणियोंके मध्य मनोहारी दृश्यावलियोंके बीच 'अजय-गंध महादेव' का एक सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिरका शिव-लिङ्ग अपनी विशेष गंधके कारण भारतभरमें प्रसिद्ध है। यह क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्यसे भरपूर है।

इस मन्दिरका निर्माण प्रसिद्ध हिन्दू राजा अजयपालने छठी-सातवीं शताब्दीके मध्यमें करवाया, ऐसी मान्यता है। जबकि कई इतिहासवेत्ता इसका निर्माण इससे भी पूर्वका मानते हैं।

इस मन्दिरकी आध्यात्मिकताके विषयमें यहाँ एक आख्यायिका प्रसिद्ध है, तदनुसार जिस समय लोकपितामह ब्रह्माजीका पुष्करमें यज्ञ हो रहा था, उस समय भगवान् शंकरकी अवज्ञासे कुण्डमें अग्निदेव प्रकट नहीं हुए। पुनः कपालेश्वर भगवान् शिवकी कृपासे अग्नि प्रज्वलित हो उठी। सभी देवगण तथा ऋषि-महर्षि भगवान् शंकरसे यज्ञकी निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धिके लिये प्रार्थना करने लगे। आशुतोष भोलेबाबाने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। कहा जाता है कि तभीसे पुष्कर क्षेत्रकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरके पावन धाम यहाँ चारों ओर प्रतिष्ठित हैं। आज भी पुष्करके उत्तरमें भगवान् शिव 'वैद्यनाथ' नामसे पूर्व दिशामें नन्दा-सरस्वतीके किनारे पर्वत-शृङ्खलाओंके मध्य 'अश्मदेश्वर महादेव' नामसे, ब्रह्माजीके मन्दिरके पीछे पश्चिम दिशामें 'कपालेश्वर महादेव' नामसे और अजयपाल बाबाकी तपःस्थलीके पर्वतोंके मध्य दक्षिणमें 'अजय-गंध महादेव' नामसे स्थित हैं।

इस शिवलिङ्गपर 'ॐ नमः शिवाय:' कहते हुए हाथ मलकर सूँघा जाय तो हाथोंमेंसे गुलाबकी-सी सुगन्ध आती है।

अजयपाल नामक इस स्थानपर जानेके लिये अजमेर स्टेशनके सामने घटाघरसे बस आदि उपलब्ध रहती हैं। यह स्थान अजयसर नामक ग्रामसे कुछ ही दूरपर स्थित है। यहाँ अजयपाल योगीकी समाधि, रूठी, राणी, ब्रह्मकुण्ड, चक्कर-कुण्ड तथा अनेक गुफाएँ आदि दर्शनीय स्थल हैं।

—श्रीब्रजगोपाल ओझा

नीलकण्ठ महादेव

राजस्थानके चित्तौड़गढ़ जिलेकी अरनोद तहसीलमें झाँकर नामका एक बहुत प्राचीन गाँव है। यहाँ झाँकर गाँवके समीप घने जंगलों तथा पहाड़ोंके मध्य एक ऊँचे पहाड़की तलहटीमें 'नीलकण्ठ महादेव'का एक प्राचीन मन्दिर है। नीलकण्ठ महादेवतक पहुँचनेके लिये इस पहाड़से होकर जाना पड़ता है। नीलकण्ठ महादेव नामक शिवलिङ्गपर पहाड़से निकलनेवाली जलधारा बारहों महीने गिरती रहती है। मन्दिरके पीछे एक कुण्ड है। शिवलिङ्गपर जो जलधारा गिरती रहती है, उसका पानी दूसरे कुण्डमें एकत्र होता है, जिसका पवित्र जल पिया जाता है। स्थानीय विश्वास है कि इन कुण्डोंके जलके सेवनसे भगवान् नीलकण्ठमें भक्ति होती है। घने जंगलों और पहाड़ोंसे घिरे रहनेके कारण यद्यपि दूर-दूरसे यात्री यहाँ नहीं आ पाते, किंतु आस-पासके क्षेत्रोंमें इसकी बहुत महिमा है।

इस क्षेत्रमें कुछ आदिवासी लोग निवास करते हैं। यहाँ केवल ग्रीष्ममें ही यात्रा की जा सकती है। कहा जाता है कि बहुत पहले यहाँ एक अत्यन्त सिद्ध महात्मा रहा करते थे, जिनकी कुटियाके अवशेष आज भी दिखलायी देते हैं।

गौतमेश्वर महादेव

राजस्थानके चित्तौड़गढ़ जिलेमें अरनोदसे २ कि०मी० दूर स्थित गौतमेश्वर महादेवका मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। यह मान्यता है कि महर्षि गौतमने इस स्थानपर शिवलिङ्गकी स्थापनाकर तपस्या की थी और फिर उन्हींके नामसे इस लिङ्गकी प्रसिद्धि हो गयी। यहाँ वैशाख मासमें महादेवजीका बहुत बड़ा मेला लगता है। यह स्थान बहुत ही जाग्रत् है।

कहा जाता है कि औरंगजेबने एक बार इस मन्दिरको भी ध्वस्त करनेका प्रयास किया था, परंतु उस समय उसपर और उसकी सेनापर दैवी प्रकोप हुआ। जब औरंगजेबने शिवलिङ्गको ध्वस्त करनेके लिये चोट की तो उसमें दरार पड़ गयी और उसमेंसे असंख्य मधुमक्खियाँ निकलकर उसपर टूट पड़ीं। पहाड़ोंपरसे बहुत-से पत्थर टूट-टूटकर उसकी सेनापर गिरने लगे। तब घबराकर औरंगजेब अपने कुविचारको त्याग-कर दिल्ली भाग चला।

श्रीगौतमेश्वर शिव-लिङ्गके पास एक लिङ्ग और है जिसे मंगलेश्वर कहते हैं। यहाँ छोटे-बड़े और भी बहुतसे लिङ्ग हैं। पहाड़के नीचे दो कुण्ड हैं जो बारहों महीने जलसे भरे रहते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्यकी दृष्टिसे यह स्थान अत्यन्त रमणीय एवं शान्तिप्रद है। —कु॰ रेखा कुमावत

हरि-हरेश्वर

राजस्थानमें झालावाड़से कुछ मील दूर बदरना गाँव है। यहाँ दो नदियोंके संगमपर श्रीहरि-हरेश्वरका मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन और भव्य है। इस मन्दिरके विग्रहका आधा भाग शिवस्वरूप तथा आधा विष्णुस्वरूप है। दाहिनी ओर दो भुजा हैं, जिनमेंसे ऊपरके हाथमें भस्मका गोला और नीचेके हाथमें त्रिशूल है। इस भागमें कटिमें एक सर्प लिपटा है और मस्तकपर जटामें गङ्गाजी हैं, ललाटपर चन्द्रमा शोभित है। वाम-भागमें ऊपरके हाथमें चक्र तथा नीचेके हाथमें शङ्ख है। मन्दिरमें ही नन्दीश्वर तथा गरुड़की भी मूर्तियाँ हैं। पास ही दक्षिणमें एक नीलकण्ठ महादेवका भी मन्दिर है।

गोपेश्वर

बदरानासे दक्षिण लगभग ४ मीलपर मगवास नामक ग्राम है। यहाँसे कुछ दूर पर्वतपर गोपेश्वर महादेवका मन्दिर है। इस मन्दिरका निर्माण पर्वतको काटकर किया गया है। पर्वतकी शिलाको काटकर न सिर्फ पूरा मन्दिर और खम्भे, अपितु शिव-पार्वती तथा नन्दिकेश्वरकी मूर्तियाँ भी उसी शिलासे बनायी गयी हैं। यहाँ महाशिवरात्रि तथा श्रावण मासमें बहुत भीड़ रहती है।

एकलिङ्गजी

उदयपुर-नाथद्वारा-मार्गपर उदयपुरसे लगभग १२ मील दूर एकलिङ्गजीका मन्दिर है। श्रीएकलिङ्गजीका मन्दिर विशाल है। एकलिङ्गजीकी लिङ्गमूर्तिमें चारों ओर मुख हैं। मन्दिरके पश्चिम द्वारके पास पीतलकी नन्दीमूर्ति है। वर्तमान मन्दिरका जीर्णोद्धार पंद्रहवीं शताब्दीमें महाराणा कुम्भने करवाया था। एकलिङ्गजी मेवाड़के राणाओंके आराध्य देव हैं। एकलिङ्गजीका शृङ्गार प्रतिदिन विभिन्न रत्नोंसे किया जाता है। मन्दिरसे थोड़ी दूरपर 'इन्द्रसागर' नामक सरोवर है। सरोवरके आस-पास गणेश, लक्ष्मी, कुंटेश्वर तथा धारेश्वर आदि अनेक मन्दिर हैं।

परशुराम महादेव

राजस्थानमें राजपुर गाँवसे लगभग ढाई मील दूर परशुराम-कुण्ड है। वहाँसे ऊपर पर्वत-शिखरपर परशुराम महादेवका प्रसिद्ध मन्दिर है। मान्यता है कि पहले परशुराम-कुण्डमें स्नान करके फिर महादेवके दर्शनोंके लिये ऊपर चढ़ना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि परशुराम महादेवकी स्थापना परशुरामजीद्वारा की गयी है। परशुराम महादेव एक गुफामें स्थापित हैं। गुफाके ऊपर गायके थनका आकार बना है। उसमेंसे शिवलिङ्गपर बूँद-बूँद जल टपकता रहता है। शिवरात्रि तथा कार्तिक पूर्णिमाको यहाँ मेला लगता है।

—○—

हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश तथा जम्मू-कश्मीरके शिव-क्षेत्र

शिमला और उसके आस-पासके शिवमन्दिर

देशके अन्य भागोंकी तरह ही हिमाचल-प्रदेशके ऊपरी भाग शिमला, सोलन, सिरमौर और इनके आस-पासके क्षेत्रोंमें भगवान् शिवके मन्दिर स्थान-स्थानपर हैं। इन क्षेत्रोंमें प्रायः एक भी गाँव ऐसा नहीं है, जहाँ भगवान् शिवका मन्दिर न हो। इस क्षेत्रमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा भगवान् शिवकी उपासना अधिक प्रचलित है।

इस क्षेत्रमें प्रायः दो प्रकारके शिव-मन्दिर हैं। कुछ शिव-मन्दिरोंमे शिवलिङ्ग एवं शिव-परिवारकी अचल मूर्तियाँ स्थापित होती हैं, जिनकी पूजा-आराधना मन्दिरमें ही की जाती है, वे मूर्तियाँ बाहर नहीं ले जायी जा सकतीं, किंतु दूसरे प्रकारके शिव-मन्दिरोंमें भगवान् शिवकी चल-मूर्तियाँ पालकीपर स्थापित रहती हैं। 'डोम' अर्थात् 'देव' कहलानेवाली भगवान् शंकरकी मूर्तियाँ पालकीपर स्थापित रहती हैं, जिनके आगे-पीछे दो-दो बाँस लगे होते हैं। दो व्यक्ति मिलकर इस पालकीको उठाते हैं। यहाँ भगवान् शिवको दूधसे भरा लोटा चढ़ाते हैं।

यहाँके लोग अपनी इच्छित कामनाकी पूर्तिके लिये भगवान् शिवकी चल-मूर्तिको बड़ी ही श्रद्धापूर्वक मन्दिरसे अपने घर ले जाते हैं और यज्ञ कराते हैं। ऐसा माना जाता है कि इससे उनकी मनःकामना अवश्य पूर्ण होती है। उक्त यज्ञको एक विशेष व्यक्ति कराता है जो 'गुरु' कहलाता है। कहते हैं कि उस व्यक्तिमें देवकी शक्ति उतर आती है। किसी भी कार्यको आरम्भ करनेके लिये पहले इस देवसे आज्ञा लेनी यहाँके लोग अति आवश्यक मानते हैं और कल्याण-कामनासे माघमासमें अथवा वर्षमें कभी भी एक बार रुद्राष्टाध्यायी या महामृत्युंजयका पाठ अवश्य करवाते हैं। यहाँ महाशिवरात्रिपर्व *विशेष उल्लाससे मनाया जाता है।*

इस क्षेत्रमें यह प्रसिद्ध मान्यता है कि यदि किसीके विवाहमें जन्म-कुण्डली, ग्रह-योग आदि न मिलते हों या अन्य किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित हो जाय तो उनका विवाह बिना किसी मुहूर्तके अक्षय तृतीयाके दिन अपने इष्टदेव भगवान् शिवके मन्दिरमें करवाया जाता है। यहाँके लोगोंका विश्वास है कि इसी दिन यहाँके पहाड़ोंमें शिव और पार्वतीका विवाह हुआ था। इस दिनको यहाँ 'लायण' कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है—'बिना मुहूर्तके लाना।' इस क्षेत्रके लोग भगवान् शिवको ही सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता मानते हैं और उनकी ही सच्चे भाव एवं पूर्ण श्रद्धासे पूजा करते हैं।

शरुके देवता शिव—श्रीगुल

हिमाचल-प्रदेशमें सिरमौर जिलेके राजगढ़ तहसीलमें १०,३८० फुटकी ऊँचाईमे चूड़धारकी चोटीपर भगवान् शिवकी श्रीगुलके नामसे पूजा की जाती है। चूड़धारमें आठ मासतक बर्फ जमी रहती है। केवल चार मासमे ही मौसम साफ रहता है। भगवान् शिवके इस मन्दिरमें शिवलिङ्गके नीचेसे जलधारा बहती है। मन्दिरसे एक कि० मी० ऊपर एक सुनसान चोटीपर पद्मासन लगाये भगवान् शिवकी १० फुट ऊँची एक प्रतिमा बनी हुई है। इस स्थानको 'लिङ्ग-पर' के नामसे पुकारा जाता है। यह चोटी इस क्षेत्रकी सबसे ऊँची चोटी है। इस स्थानसे हरिद्वार, गढ़वाल, चण्डीगढ़ आदि स्थान दिखायी देते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन कालमें इन्द्रदेवने एक बार इतनी *अधिक वर्षा और ओलावृष्टि* की कि जिससे पृथिवीपर कुछ भी अन्न उत्पन्न नहीं हो सका, तब भोलेनाथ शंकरभगवान्ने इस पर्वतपर बैठकर उस ओलावृष्टि जिसे यहाँ 'शराटली' कहते हैं—को रोका। तभी यहाँपर स्थित इन शंकरका नाम श्रीगुल एवं शरुसे बचानेवाला अर्थात् शरुका विनाशक पड़ा। श्रीगुलको शिमला, सोलन और सिरमौरमें सबसे अधिक पूजा जाता है। इन जिलोंके प्रत्येक गाँवमे एक बड़ी शिला अर्थात् बड़े सफेद पत्थरको श्रीगुलका ढोक मानकर अर्थात् उस पत्थरपर श्रीगुलका वास मानकर इनकी पूजा की जाती है। यहाँके लोगोंद्वारा इन्हें वर्षके प्रारम्भिक नवरात्रोंमे चौमुखी दीपक जलाकर, नारियल चढ़ाकर तथा इनकी प्राचीन गाथाएँ गाकर पूजा जाता है। जिससे श्रीगुल महाराज प्रसन्न हो जाते है और पूरे वर्षमें समय-समयपर अच्छी वर्षा होती है तथा फसल भी अच्छी उत्पन्न होती है और कभी भी विनाशक वर्षा या ओलावृष्टि नहीं होती। आज

भी यदि कभी अधिक वर्षा हो जाय या अधिक सूखा पड़ जाय तो यहाँके लोग श्रीगुलके नामपर चौमुखी दीपक जलाकर अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि अथवा प्राकृतिक प्रकोपोंसे रक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं। श्रद्धा-भक्ति एवं विश्वासपूर्वक की गयी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर अपने आराधकोंके लिये सुख-शान्तिकी अमित वर्षा करते हैं।

—सत्यनारायण स्नेही

मध्योत्तराखण्डस्थ शिव-क्षेत्र

यह मध्योत्तराखण्ड शब्द विपाशा एवं शतद्रु आदि नदियोंके समीपवर्ती भूभागका बोध कराता है। इस स्थलमें थोड़ी-थोड़ी दूरीपर देवी-देवताओंके अनेक स्थल विद्यमान हैं, जिनमें शैव-स्थलोंकी बहुतायत है। इधरके कंकड़ भी शंकरके ही समान पवित्र एवं फलदायक माने जाते हैं। यहाँके कुछ प्रमुख शिव-क्षेत्र इस प्रकार हैं—

मणिकर्णेश्वर महादेव

कुल्लूके उत्तरी तटपर मणिकर्ण नामक गाँवमें भगवान् मणिकर्णेश्वरका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यह प्रसिद्धि है कि पुरातन-कालमें शिव-पार्वती इस स्थानमें रहते थे। शंकरजीने जब समाधि लगायी, तब सरोवरमें नहाते समय पार्वतीजीके कानका आभूषण सरोवरमें गिर गया और खोजनेपर भी न मिला। समाधिसे जागनेपर शंकरजीके क्रोधसे भयभीत होकर शेषनागने पानीके अद्भुत उफानके साथ उस कर्णमणिको ऊपर फेंका। इससे उस क्षेत्रका पानी बहुत गर्म हो गया। तबसे तीर्थका नाम मणिकर्ण पड़ा और शिवजी 'मणिकर्णेश्वर' नामसे विख्यात हुए। यहाँ इस स्थानकी बड़ी महिमा है।

भूतनाथ महादेव

यह शिव-मन्दिर मण्डी-राजधानीके चौकमें स्थित है। कहा जाता है कि यहाँ श्रीमाण्डव्य ऋषि भगवान् शंकरकी तपस्या करते थे। एक बार शंकरजीने ऋषिको अपने परिकरों तथा भूत-प्रेतगणोंके साथ दर्शन दिया। इसलिये ऋषिने उन्हें भूतनाथकी संज्ञासे विभूषित किया। तबसे इसी नामसे प्रसिद्ध हो गये। यहाँपर स्वयम्भू लिङ्ग है। यह प्रसिद्धि है कि माण्डव्य ऋषिके अन्यत्र चले जानेपर आश्रममें वन झाड़ियाँ उग आयीं जो इस लिङ्गपर सदा नित्य दूध छोड़ती रहती थीं।

वसाहरूदेव

यह शिव-मन्दिर सतलजसे पूर्व रामपुर विषहर रियासत वसाहर गाँवमें स्थित है। कहा जाता है कि समुद्र-मन्थनसे निकले विषको अपने कण्ठमें धारण करनेके पश्चात् भगवान् शंकर इसी गाँवमें आये थे। विषके हरण करनेसे शिवका नाम 'विषहर' पड़ा। इसी नामसे उनकी यहाँ स्थापना हुई। उस गाँवका भी यही नाम पड़ा। समय बीतनेपर यही विषहर शब्द बुशैहर, वसाहर आदि रूपोंमें बदल गया और भगवान् शंकर 'वसाहरूदेव'के नामसे पूजित होने लगे।

दुग्धाहारी महादेव

दुग्धाहारी महादेवका मन्दिर सतलजसे पूर्व और शिमलासे पश्चिम जुब्बड़ गाँवमें पड़ता है। इसे भी स्वयम्भू लिङ्ग माना जाता है। यहाँ भगवान् शिवपर दूध चढ़ानेकी विशेष महिमा है और ऐसी प्रसिद्धि है कि दुग्धाभिषेक करनेसे भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। दूधका आहार करनेसे शिवका नाम दुग्धाहारी महादेव पड़ गया।

पडेशर महादेव

इनका स्थान सतलजकी पूर्वी उपत्यकामें रामपुर विषहरसे ऊपर शनेरी गाँवमें है। स्थानीय मान्यता है कि क्षत्रियोंके ऊपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें श्रीपरशुरामजीने यहाँ नौ गाँवोंको बसाया था। साथ ही उनमें भिन्न-भिन्न देवताओंको भी प्रतिष्ठित किया था। जिनमें यह 'पडेशर महादेव' शनेरी नामके गाँवमें स्थित हैं।

शमशिर महादेव

शमशिर महादेवका स्थान सतलजसे पश्चिम जलोड़ी-जोत (पास) से नीचे आनी गाँवके पास शमशेर गाँवमें है। एक दैत्यद्वारा तपस्या करनेपर भगवान् शंकर यहाँ प्रकट हुए थे। बादमें दैत्यके मारे जानेपर देवताओंने शंकरको यहाँ स्थापित किया। यह भी स्वयम्भू लिङ्ग ही है। उस दैत्यके नामसे ही यहाँ शिवजी विराजमान हुए हैं।

ममलेश्वर महादेव

ममलेश्वर महादेव सतलजके पश्चिम करसोगके पास अवस्थित है। इसे भी परशुरामजीने ही क्षत्रियोंके ऊपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें स्थापित किया था। यहाँपर भी [illegible]

अपने परिवारसहित विराजते हैं। इस ममलेश्वर-मन्दिरमें प्राचीन कालसे शंकरजीकी अखण्ड धूनी जल रही है।

दिव्य देशीय शिव-क्षेत्र

इस मध्योत्तराखण्ड-क्षेत्रमें हिमालय तथा कैलासवर्ती कुछ ऐसे दिव्य देश हैं, जो भगवान् शंकरके नित्य निवास-स्थलके रूपमें प्रसिद्ध हैं। किन्नर कैलास नामक क्षेत्र हिमालयके मध्य सतलजके निकास-स्थानके पास पड़ता है। इसका दूसरा नाम बाणासुर-कैलास भी प्रसिद्ध है। यह एक स्फटिक मणिमय शिखर-जैसा प्रतीत होता है। कहा जाता है कि यहाँपर किन्नर तथा गन्धर्वगण प्रातः-सायं भगवान् शंकरकी पूजा करते रहते हैं। सूर्योदय-सूर्यास्तके समय इस शिखर-विग्रहसे सात रंगकी किरणें दिखलायी देती हैं और गन्धर्वगणोंके वाद्योंकी ध्वनि-जैसी आवाज भी सुनायी देती है। यहाँ एक प्रसिद्धि है कि बाणासुर भी यहीं आकर भगवान् शंकरकी प्रतिदिन पूजा करता था। इसीलिये इसे बाणासुर-कैलासके नामसे अभिहित किया जाने लगा।

पाप-पुण्य-शिखर

यह हिमालयका सबसे ऊँचा शिखर है। इसे भगवान् शंकरका विशेष विग्रह माना गया है। यहाँपर दो शिखर साथ-साथ जुड़े हैं। एक छोटा है तो दूसरा बड़ा। कुछ लोग गौरी-शंकर-शिखर नामसे इन्हे अभिहित करते हैं। परंतु इस मध्योत्तराखण्डके हिमालय-निवासीजन इन शिखरोंको 'पाप-पुण्य-शिखर' नामसे पुकारते हैं। इनका विश्वास है कि इस सारी पृथिवीपर जितना पाप या पुण्य होता है, उनकी तुलना इन शिखरोंसे होती है। इनमें छोटा शिखर पुण्यका है और बड़ा पापका। चूँकि आजकल संसारमें पाप अधिक हो रहा है, इसलिये पापवाला शिखर बहुत बड़ा है एवं पुण्य बहुत कम होता है, तभी यह पुण्यवाला शिखर छोटा है।

आस्तिकजनोंकी इन शिखरोंके प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति है, इसे वे भगवान् शंकरका साक्षात् आवास अथवा विग्रह समझकर प्रतिदिन श्रद्धासे दर्शनकर नमन करते रहते हैं।

—श्रीलोकनाथजी मिश्र, शास्त्री, प्रभाकर

धौम्येश्वर ध्यूँसर-मन्दिर

यह शिवलिङ्ग हिमाचल-प्रदेशके ऊना जिलेके ग्राम 'यहीं'में स्थित है। यह स्थान ऊनासे ३७ किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। मन्दिरका इतिहास पाण्डवोंके समयका बताया जाता है। प्रसिद्धि है कि जब पाण्डव वनवासको गये तो उनके कुलपुरोहित धौम्य ऋषि पाण्डवोंके साथ चले, परंतु धर्मराज युधिष्ठिरके अनुरोधपर नाना तीर्थोंकी यात्रा करते-करते वे इस स्थानपर आये और उन्होंने यहाँ भगवान् शंकरकी आराधना की। भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। महर्षिने अपने लिये कुछ न माँग कर सबके कल्याणार्थ यह वर माँगा कि 'भगवन्! इस स्थानपर मैंने आपकी आराधना की है, अतः यहाँ जो भक्त श्रद्धापूर्वक आपका नाम-स्मरण करते हुए आपकी आराधना करे, उसकी मनःकामना पूर्ण हो।' भगवान् शंकर 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। तबसे यह स्थान 'धौम्येश्वर सदाशिव'-मन्दिर कहलाने लगा। काल-प्रवाहमें यह 'ध्यूँसर सदाशिव-मन्दिर'के नामसे विख्यात हुआ।

यह स्थान भव्य भवनोंसे आवृत उच्च पर्वत-शिखरपर स्थित है। यहाँपर विशाल वट-वृक्षके नीचे ही यह सिद्ध शिवलिङ्ग है। बादमें मन्दिरका जीर्णोद्धार भी हुआ। यहाँ बारहो महीने श्रद्धालु आते हैं। वर्षमें दो बार शिवरात्रि तथा भाद्रपद-संक्रान्तिको यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है।

—किशोरकुमार शर्मा

हिमाचल मानसरोवर—मणिमहेश

हिमाचल-प्रदेशके चम्बा जनपदकी मणिमहेश-यात्रा शताब्दियों-पूर्वसे ही दूर-दूरतक प्रसिद्ध है। यहाँकी पारम्परिक सामूहिक यात्रा वर्षमें दो बार सम्पन्न होती है। पहली श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीपर और दूसरी बड़ी महत्त्वपूर्ण यात्रा छड़ी-यात्राके नामसे विख्यात है; वह राधाष्टमीके पावन अवसरपर, जन्माष्टमीके ठीक पंद्रह दिन बाद निकलती है। जन्माष्टमीवाली यात्रामें अधिकतर जम्मू राज्यके 'भद्रवाह' क्षेत्रसे भक्तगण और कुछ साधु-संत भाग लेते हैं। जबकि दूसरी यात्रामें हिमाचल-प्रदेश, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, हरियाणा तथा बंगालतकसे भी कई तीर्थयात्री सम्मिलित होते हैं। विशाल पारम्परिक छड़ी-यात्राका शुभारम्भ चम्बा नगरके ऐतिहासिक 'लक्ष्मीनारायण-मन्दिर'से होता है। यात्रामें महान् सिद्ध चर्पटनाथकी प्रतिमा सम्मिलित करना अनिवार्य शर्त है। कहा जाता है कि तत्कालीन चम्बा-नरेश साहिल-वर्मन ९२०-९४० ई० को सिद्ध चर्पटनाथका आशीर्वाद प्राप्त था।

भी यदि कभी अधिक वर्षा हो जाय या अधिक सूखा पड़ जाय तो यहाँके लोग श्रीगुलके नामपर चौमुखी दीपक जलाकर अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि अथवा प्राकृतिक प्रकोपोंसे रक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं। श्रद्धा-भक्ति एवं विश्वासपूर्वक की गयी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर अपने आराधकोंके लिये सुख-शान्तिकी अमित वर्षा करते हैं।

—सत्यनारायण स्नेही

मध्योत्तराखण्डस्थ शिव-क्षेत्र

यह मध्योत्तराखण्ड शब्द विपाशा एवं शतद्रु आदि नदियोंके समीपवर्ती भूभागका बोध कराता है। इस स्थलमें थोड़ी-थोड़ी दूरीपर देवी-देवताओंके अनेक स्थल विद्यमान हैं, जिनमें शैव-स्थलोंकी बहुतायत है। इधरके कंकड़ भी शंकरके ही समान पवित्र एवं फलदायक माने जाते हैं। यहाँके कुछ प्रमुख शिव-क्षेत्र इस प्रकार हैं—

मणिकर्णेश्वर महादेव

कुल्लूके उत्तरी तटपर मणिकर्ण नामक गाँवमें भगवान् मणिकर्णेश्वरका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यह प्रसिद्धि है कि पुरातन-कालमें शिव-पार्वती इस स्थानमें रहते थे। शंकरजीने जब समाधि लगायी, तब सरोवरमें नहाते समय पार्वतीजीके कानका आभूषण सरोवरमें गिर गया और खोजनेपर भी न मिला। समाधिसे जागनेपर शंकरजीके क्रोधसे भयभीत होकर शेषनागने पानीके अत्युष्ण उफानके साथ उस कर्णमणिको ऊपर फेंका। इससे उस क्षेत्रका पानी बहुत गर्म हो गया। तबसे तीर्थका नाम मणिकर्ण पड़ा और शिवजी 'मणिकर्णेश्वर' नामसे विख्यात हुए। यहाँ इस स्थानकी बड़ी महिमा है।

भूतनाथ महादेव

यह शिव-मन्दिर मण्डी-राजधानीके बीचमें स्थित है। कहा जाता है कि यहाँ श्रीमाण्डव्य ऋषि भगवान् शंकरकी तपस्या करते थे। एक बार शंकरजीने ऋषिको अपने परिकरों तथा भूत-प्रेतगणोंके साथ दर्शन दिया। इसलिये ऋषिने उन्हें भूतनाथकी संज्ञासे विभूषित किया। तबसे इसी नामसे प्रसिद्ध हो गये। यहाँपर स्वयम्भू लिङ्ग है। यह प्रसिद्धि है कि माण्डव्य ऋषिके अन्यत्र चले जानेपर आश्रममें जब झाड़ियाँ उग आयीं तो इस लिङ्गपर गाय नित्य दूध देती रहती थी।

बसाहरुदेव

यह शिव-मन्दिर सतलजसे पूर्व रामपुर विषहर रियासत बसाहर गाँवमें स्थित है। कहा जाता है कि समुद्र-मन्थनसे निकले विषको अपने कण्ठमें धारण करनेके पश्चात् भगवान् शंकर इसी गाँवमें आये थे। विषके हरण करनेसे शिवका नाम 'विषहर' पड़ा। इसी नामसे उनकी यहाँ स्थापना हुई। उस गाँवका भी यही नाम पड़ा। समय बीतनेपर यही विषहर शब्द बुशैहर, बसाहर आदि रूपोंमें बदल गया और भगवान् शंकर 'बसाहरुदेव'के नामसे पूजित होने लगे।

दुग्धाहारी महादेव

दुग्धाहारी महादेवका मन्दिर सतलजसे पूर्व और शिमलासे पश्चिम जुब्बड़ गाँवमें पड़ता है। इसे भी स्वयम्भू लिङ्ग माना जाता है। यहाँ भगवान् शिवपर दूध चढ़ानेकी विशेष महिमा है और ऐसी प्रसिद्धि है कि दुग्धाभिषेक करनेसे भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। दूधका आहार करनेसे शिवका नाम दुग्धाहारी महादेव पड़ गया।

पडेशर महादेव

इनका स्थान सतलजकी पूर्वी उपत्यकामें रामपुर विषहरसे ऊपर शनेरी गाँवमें है। स्थानीय मान्यता है कि क्षत्रियोंके ऊपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें श्रीपरशुरामजीने यहाँ नौ गाँवोंको बसाया था। साथ ही उनमें भिन्न-भिन्न देवताओंको भी प्रतिष्ठित किया था। जिनमें यह 'पडेशर महादेव' शनेरी नामके गाँवमें स्थित हैं।

शमशिर महादेव

शमशिर महादेवका स्थान सतलजसे पश्चिम जलोड़ी-जोत (पास) से नीचे आनी गाँवके पास शमशेर गाँवमें है। एक दैत्यद्वारा तपस्या करनेपर भगवान् शंकर यहाँ प्रकट हुए थे। बादमें दैत्यके मारे जानेपर देवताओंने शंकरको यहाँ स्थापित किया। यह भी स्वयम्भू लिङ्ग ही है। उस दैत्यके नामसे ही यहाँ शिवजी विराजमान हुए हैं।

ममलेश्वर महादेव

ममलेश्वर महादेव शतद्रुके पश्चिम करसोगके पास अवस्थित हैं। इन्हें भी परशुरामजीने ही क्षत्रियोंके ऊपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें स्थापित किया था। यहाँपर भी महेश्वरजी

अपने परिवारसहित विराजते हैं। इस ममलेश्वर-मन्दिरमें प्राचीन कालसे शंकरजीकी अखण्ड धूनी जल रही है।

दिव्य देशीय शिव-क्षेत्र

इस मध्योत्तराखण्ड-क्षेत्रमें हिमालय तथा कैलासवर्ती कुछ ऐसे दिव्य देश हैं, जो भगवान् शंकरके नित्य निवास-स्थलके रूपमें प्रसिद्ध हैं। किन्नर कैलास नामक क्षेत्र हिमालयके मध्य सतलजके निकास-स्थानके पास पड़ता है। इसका दूसरा नाम बाणासुर-कैलास भी प्रसिद्ध है। यह एक स्फटिक मणिमय शिखर-जैसा प्रतीत होता है। कहा जाता है कि यहाँपर किन्नर तथा गन्धर्वगण प्रातः-सायं भगवान् शंकरकी पूजा करते रहते हैं। सूर्योदय-सूर्यास्तके समय इस शिखर-विग्रहसे सात रंगकी किरणें दिखलायी देती हैं और गन्धर्वगणोंके वाद्योंकी ध्वनि-जैसी आवाज भी सुनायी देती है। यहाँ एक प्रसिद्धि है कि बाणासुर भी यहीं आकर भगवान् शंकरकी प्रतिदिन पूजा करता था। इसीलिये इसे बाणासुर-कैलासके नामसे अभिहित किया जाने लगा।

पाप-पुण्य-शिखर

यह हिमालयका सबसे ऊँचा शिखर है। इसे भगवान् शंकरका विशेष विग्रह माना गया है। यहाँपर दो शिखर साथ-साथ जुड़े हैं। एक छोटा है तो दूसरा बड़ा। कुछ लोग गौरी-शंकर-शिखर नामसे इन्हें अभिहित करते हैं। परंतु इस मध्योत्तराखण्डके हिमालय-निवासीजन इन शिखरोंको 'पाप-पुण्य-शिखर' नामसे पुकारते हैं। इनका विश्वास है कि इस सारी पृथिवीपर जितना पाप या पुण्य होता है, उनकी तुलना इन शिखरोंसे होती है। इनमें छोटा शिखर पुण्यका है और बड़ा पापका। चूँकि आजकल संसारमें पाप अधिक हो रहा है, इसलिये पापवाला शिखर बहुत बड़ा है एवं पुण्य बहुत कम होता है, तभी यह पुण्यवाला शिखर छोटा है।

आस्तिकजनोंकी इन शिखरोंके प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति है, इसे वे भगवान् शंकरका साक्षात् आवास अथवा विग्रह समझकर प्रतिदिन श्रद्धासे दर्शनकर नमन करते रहते हैं।

—श्रीलोकनाथजी मिश्र, शास्त्री, प्रभाकर

धौम्येश्वर ध्यूँसर-मन्दिर

यह शिवलिङ्ग हिमाचल-प्रदेशके ऊना जिलेके ग्राम 'वही'में स्थित है। यह स्थान ऊनासे ३७ किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। मन्दिरका इतिहास पाण्डवोंके समयका बताया जाता है। प्रसिद्धि है कि जब पाण्डव वनवासको गये तो उनके कुलपुरोहित धौम्य ऋषि पाण्डवोंके साथ चले, परंतु धर्मराज युधिष्ठिरके अनुरोधपर नाना तीर्थोंकी यात्रा करते-करते वे इस स्थानपर आये और उन्होंने यहाँ भगवान् शंकरकी आराधना की। भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। महर्षिने अपने लिये कुछ न माँग कर सबके कल्याणार्थ यह वर माँगा कि 'भगवन्! इस स्थानपर मैंने आपकी आराधना की है, अतः यहाँ जो भक्त श्रद्धापूर्वक आपका नाम-स्मरण करते हुए आपकी आराधना करे, उसकी मनःकामना पूर्ण हो।' भगवान् शंकर 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। तबसे यह स्थान 'धौम्येश्वर सदाशिव'-मन्दिर कहलाने लगा। काल-प्रवाहमें यह 'ध्यूँसर सदाशिव-मन्दिर'के नामसे विख्यात हुआ।

यह स्थान भव्य भवनोंसे आवृत उच्च पर्वत-शिखरपर स्थित है। यहाँपर विशाल वट-वृक्षके नीचे ही यह सिद्ध शिवलिङ्ग है। बादमें मन्दिरका जीर्णोद्धार भी हुआ। यहाँ बारहों महीने श्रद्धालु आते हैं। वर्षमें दो बार शिवरात्रि तथा भाद्रपद-संक्रान्तिको यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है।

—किशोरकुमार शर्मा

हिमाचल मानसरोवर—मणिमहेश

हिमाचल-प्रदेशके चम्बा जनपदकी मणिमहेश-यात्रा शताब्दियों-पूर्वसे ही दूर-दूरतक प्रसिद्ध है। यहाँकी पारम्परिक सामूहिक यात्रा वर्षमें दो बार सम्पन्न होती है। पहली श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीपर और दूसरी बड़ी महत्त्वपूर्ण यात्रा छड़ी-यात्राके नामसे विख्यात है; वह राधाष्टमीके पावन अवसरपर, जन्माष्टमीके ठीक पंद्रह दिन बाद निकलती है। जन्माष्टमीवाली यात्रामें अधिकतर जम्मू राज्यके 'भद्रवाह' क्षेत्रसे भक्तगण और कुछ साधु-संत भाग लेते हैं। जबकि दूसरी यात्रामें हिमाचल-प्रदेश, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, हरियाणा तथा बंगालतकसे भी कई तीर्थयात्री सम्मिलित होते हैं। विशाल पारम्परिक छड़ी-यात्राका शुभारम्भ चम्बा नगरके ऐतिहासिक 'लक्ष्मीनारायण-मन्दिर'से होता है। यात्रामें महान् सिद्ध चर्पटनाथकी प्रतिमा सम्मिलित करना अनिवार्य शर्त है। कहा जाता है कि तत्कालीन चम्बा-नरेश साहिल वर्मन ९२०-९४० ई० को सिद्ध चर्पटनाथका आशीर्वाद प्राप्त था।

चर्पटनाथके परामर्श और पुत्री राजकुमारी चम्पाके आग्रहपर वह चम्बा-राज्यकी अपनी राजधानी भरमौरसे यहाँ ले आया था। राजकुमारी चम्पाके नामपर ही उसने इस नये नगरका नाम चम्बा रखा। कल्हणकी 'राजतरंगिणी' में चम्पा या चम्बाके राजा 'साल' को तत्कालीन कश्मीर-नरेश 'अनन्तदेव' द्वारा उखाड़नेका उल्लेख है, जिसे कई इतिहासकार राजा 'साहिल' मानते हैं। यह भी अनुश्रुति है कि 'मणिमहेश झील'की सर्वप्रथम खोज 'चर्पटनाथ'ने ही की थी।

मणिमहेश झील चम्बा नगरसे लगभग ९१ किलोमीटर दूर है। हिममण्डित पर्वतमालाओंकी गोदमें पर्वत-चोटीपर अवस्थित यह पावन विशाल अगाध सरोवर दूसरे मानसरोवर-सा ही दुर्गम और मनोरम है। चम्बा, भरमौर, हडसर, छनछो तथा धंदरघाटी आदि मार्गके मुख्य स्थान हैं। हडसरसे आगे मणिमहेशतक लगभग १३ कि० मी० की पैदल यात्रा बड़ी कठिन है। बहुमूल्य छोटी-छोटी वनस्पति और सुन्दर विकसित पुष्पों तथा मनोरम प्राकृतिक दृश्योंसे मणिमहेशका सारा पथ भरा पड़ा है। दूर पहाड़ियोंपर भोज-वृक्ष हैं, जो उस ऋषि-संस्कृतिका स्मरण करवाते हैं, जब इन भूर्जपत्रोंपर पाण्डुलिपियाँ लिखी जाती थीं। मणिमहेशके बर्फानी प्रदेशमें पहुँचते ही सुन्दर झीलके दर्शन होते हैं और झीलके पास एक खुला शिव-मन्दिर है, जहाँ सैकड़ोंकी संख्यामें त्रिशूल लगे हैं। यहीं एक विशिष्ट पत्थरका शिवलिङ्ग स्थित है, जिसे छठी शताब्दीका बताते हैं। कहा जाता है कि चम्बा-राज्यका संस्थापक नरेश मरुवर्मा पहले यहीं 'मणिमहेश झील' पर शिव-दर्शनोंके लिये आया था, फिर उसने भरमौरमें राजधानी स्थापित की। चम्बा और भरमौर मुख्यतः गद्दी जनजातीय क्षेत्र हैं। भरमौरमें चौरासी मन्दिरोंके मध्यमें मणिमहेश-शिवमन्दिरका निर्माण भी यात्राकी प्राचीनताका द्योतक है। उस मन्दिरके प्राङ्गणमें स्थापित धातुकी सिंहाकृतिपर खुदा एक लंबा लेख भी इसी मरुवर्मा(५८० ई०)की प्रशस्तिमें है। वैसे मणिमहेश-यात्राको व्यवस्थित रूप तत्कालीन चम्बानरेश साहिल वर्मनद्वारा प्रदत्त प्रतीत होता है।

मणिमहेश झील समुद्र-तलसे १३,५०० फुटकी ऊँचाईपर है और इसका घेरा लगभग चार सौ फुट है। झीलके ठीक सामने कैलास-चोटीके दर्शन होते हैं। चोटीपर प्रायः बर्फ और वर्षाके कारण धुंध-सी छायी रहती है। यहाँ भगवान् शिव सपरिवार वास करते है। कैलास-पर्वतपर रातमें कई बार कई प्रकारकी अद्भुत ज्योतियाँ दिखायी देती हैं।

कैलासपर शिव, पार्वती, कार्तिकेय, गणेश और नन्दीके लिङ्ग 'ॐ'कारके वलयमें बताये जाते हैं। पासमें धर्मराजका सिंहासन है। कटकटाती ठंडमें भी श्रद्धालु झीलमें स्नान करना परम पुरुषार्थ मानते हैं। कहते हैं कि पर्ववाली रातको कैलास-चोटीपर बारह बजेके बाद बहुत बड़ा प्रकाश होता है। इसे देखनेके लिये श्रद्धालु उठ खड़े होते हैं। यात्राके दौरान गद्दीलोग अपने लोकनृत्यों और लोकगीतों आदिसे यात्रियोंका खूब मनोरञ्जन करते हैं और श्रद्धालु यात्रीगण दुर्गम यात्राको भी सहज ही पारकर भगवान् मणिमहेशके तथा कैलासके दर्शन कर अपनेको धन्य मानते हैं।

—श्रीगिरिधरजी योगेश्वर

मान तलाईका सुद्ध महादेव

जम्मूसे लगभग एक सौ कि० मी० दूर पर्वतराज हिमालयकी शिवालिक पर्वत-शृंखलापर एक प्रसिद्ध स्थान है—'मान तलाई'। स्थानीय मान्यता है कि मान तलाई माता पार्वतीके पिता पर्वतराज हिमवान्की राजधानी थी। यहाँ एक छोटा-सा तालाब और उसके किनारे एक छोटा-सा मन्दिर है। कहा जाता है, यह वही स्थान है जहाँ भगवान् शंकरके साथ मा पार्वतीके विवाहकी वेदी बनायी गयी थी तथा दोनोंने सात फेरे लिये थे। मा पार्वती भगवान् शंकरको प्राप्त करनेके लिये मान तलाईसे कुछ ही दूरीपर 'सुद्ध महादेव' नामके पहाड़ीपर एक स्वयम्भू शिवलिङ्गकी पूजा करती थीं। पूजासे पूर्व वे 'गौरी-कुण्ड' नामक स्थानपर स्नान करती थीं।

सुद्ध नामक एक दानव भी इसी स्थानके समीप भगवान् शंकरकी तपस्यामें रत रहता था और उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने प्रकट हो उससे वर माँगनेको कहा। इसपर सुद्धने भगवान्से कहा—'प्रभो! आपके दर्शनोंसे तो मैं धन्य हो गया तथा मुझे दानव-योनिसे मुक्ति मिल गयी, परंतु मेरी इच्छा है कि लोग इस स्थानको मेरे नामसे जानें। शिवजीने 'तथास्तु' कहकर उसे मुक्ति दे दी। तबसे इस स्थानका नाम 'सुद्ध महादेव' पड़ गया।

इसी स्थानपर एक अति प्राचीन मन्दिर है, जिसका अब

जीर्णोद्धार किया गया है। इस मन्दिरमें लगभग छः इंच व्यासका कई मीटर ऊँचा त्रिशूल जो टुकड़ोंमें बँटा है जमीनमें गड़ा है। स्थानीय विश्वास है कि यह भगवान् शंकरका त्रिशूल है।

त्रिशूलके निकट ही एक चबूतरेपर पत्थरकी कई मूर्तियाँ विराजमान हैं, जो यहाँकी खुदाईसे प्राप्त हुई हैं। इन्हें तीन हजार वर्षसे भी पूर्वका बताया जाता है। चीड़ तथा देवदारुके जंगलोंसे घिरे तथा प्राकृतिक सौन्दर्यसे भरे इस वर्फीले क्षेत्रका यह पावन प्रदेश आज भी अपनी प्राचीनताकी कहानी कह रहा है।

'सुद्ध महादेव'के मन्दिरमें एक धूनी जलती है, जो हजारों वर्षोंसे कभी नहीं बुझी तथा उसकी राख कभी धूनीसे बाहर नहीं आती। कहते हैं, जब कभी कोई विपत्ति आनी होती है, उससे पूर्व राख इस धूनीसे बाहर आती है।

शिवरात्रि, वैशाखी तथा बुद्ध-पूर्णिमाको यहाँ भव्य मेले लगते हैं। इन मेलोंका मुख्य आकर्षण रात्रिको मशालें जलाकर किया जानेवाला नृत्य है। —शिवचन्द्र शर्मा

श्रीबुड्ढा अमरनाथ

पुंछसे २२ कि० मी० दूर राजपुरा मंडीमें श्रीबुड्ढा अमरनाथजीका एक प्राचीन मन्दिर है। यह क्षेत्र पहाड़ोंसे घिरा है। श्रीबुड्ढा अमरनाथकी यात्रा श्रीअमरनाथजीकी यात्राके समान ही होती है। श्रावण-पूर्णिमाको यहाँ भारी भीड़ होती है।

श्रीबुड्ढा अमरनाथजीका मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। इन्हें आदि अमरनाथ भी कहा जाता है। यह प्रसिद्धि है कि रावणके पितामह महर्षि पुलस्त्यने इस पावन भूमिपर तपस्या की थी और उन्हींके नामपर इस धरतीका नाम पुलस्त नगर पड़ा, जो कालान्तरमें परिवर्तित होते-होते क्रमशः प्रोंस, पुंतस, पुंज हुआ और वर्तमानमें पुंछ बन गया। श्रीबुड्ढा अमरनाथजीका स्थान बहुत कालतक गुप्त रहा।

कहा जाता है कि लोहकार (लोरन) की महारानी चन्द्रिका बड़ी शिवभक्ता थीं। वे प्रतिवर्ष श्रीअमरनाथजीके दर्शनार्थ कश्मीर जाती थीं। एक बार खराब मौसमके कारण वे श्रीअमरनाथ नहीं जा सकीं। इसपर व्याकुल हो रानीने अन्न-जल त्याग दिया। भगवान् अमरनाथजीके दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा पूर्ण नहीं हो पायी थी, रानी बहुत बेचैन हो गयीं। तब स्वयं भगवान् शंकर एक वृद्ध ऋषिके रूपमें रानीके सम्मुख उपस्थित हुए और उसे एक स्थानपर ले जाकर वहाँ खुदाई करवानेको कहा। खुदाई करनेपर वहाँ एक शिव-मन्दिर निकला, जिसमें श्वेत पत्थरका एक भव्य शिवलिङ्ग था। ऋषिने रानीसे कहा कि इस शिवलिङ्गके दर्शनका फल भी श्रीअमरनाथजीके दर्शनके समान ही होगा। ऐसा कहकर ऋषि अन्तर्धान हो गये। भगवान् शंकर ही स्वयं यहाँ वृद्धके वेषमें आये थे, इसलिये यह शिवलिङ्ग बुड्ढा (वृद्ध) अमरनाथके नामसे प्रसिद्ध हुआ। रानी बड़ी प्रसन्न हो गयीं, उनकी अभिलाषा पूर्ण हो चुकी थी।

महमूद गजनवीने इस रास्तेसे ही गुजरकर लोरनपर आक्रमण किया था। उस समय उसने शिवलिङ्गको भग्न किया और मन्दिरको जला दिया। उसके अत्याचारके कारण शिवलिङ्गका थोड़ा-सा ही भाग बचा है। अब मन्दिरका जीर्णोद्धार हो गया है। इसी मन्दिरके सामने माता दुर्गाका नया मन्दिर भी बनाया गया है। —श्रीप्रीतमसिंह जमवाल

ज्वलन्त आश्वासन

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

क्या तुम शान्ति चाहते हो ? क्या तुम शोक, अभाव, ज्वाला, यन्त्रणाके हाथों परित्राण पाना चाहते हो ? क्या परमानन्दमय भगवान्‌को देखनेकी वासना जाग्रत् हुई है ? तो तुम नाम करो, नाम करो। भगवान् हैं, वे नाम-कीर्तन करनेवालेको दर्शन देते हैं, इस सम्बन्धमें किसी प्रकारका संशय नहीं है, नहीं है, नहीं है। आओ, दौड़कर आओ—नाम लो, मानव-जन्म धन्य होगा, परमानन्द-सागरमें डूब जाओगे। नाम करो, नाम करो और विलम्ब मत करो। दिन-प्रतिदिन आयु क्षीण हो रही है। उठते-बैठते, खाते, सोते केवल बोलो—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

— महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ

बिहारके शिव-मन्दिर

मिथिलाकी शिवोपासना

(आचार्य डॉ॰ श्रीजयमन्तजी मिश्र, राष्ट्रपति-पुरस्कार-सम्मानित)

मिथिला आदिकालसे अपनी पञ्चदेवोपासनाके लिये प्रसिद्ध रही है। यहाँके शैव, शाक्त और वैष्णवोंमें जो पारस्परिक समभाव और सद्भाव पाया जाता है, वह औरोंके लिये अनुकरणीय है। यहाँके मन्दिरोंमें गणपति, दुर्गा, सूर्य, शिव और विष्णुकी मूर्तियोंकी एक साथ प्रतिष्ठा की जाती है और देवालयको साधारणतः पञ्चमन्दिरके नामसे कहा जाता है।

मैथिल कवि-कोकिल विद्यापतिकी *'भल हरि, भल हर, भल तुअ कला'* यह परम्पराश्रित मान्यता आज भी यहाँ सर्वथा मान्य है और कहीं कोई विरोध नहीं है। इसीलिये श्रीरामनवमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमीका व्रत-महोत्सव हो या जानकी-नवमी, राधाष्टमी, नवरात्रकी शक्ति-पूजा हो अथवा नरक-निवारण शिवरात्रिका शिवार्चन-महोत्सव हो, समान श्रद्धाभावसे सभी लोग व्रत-पूजन करते हैं।

फिर भी मिथिलाके देवस्थानोंमें शिव-स्थलोंकी संख्या अधिक है। इनमें कल्याणेश्वर, कूपेश्वर, जलेश्वर, क्षीरेश्वर, मिथिलेश्वर, भैरवेश्वर, चण्डेश्वर, हलेश्वर, मणीश्वर, भुवनेश्वर, कपिलेश्वर, राजेश्वर, विदेश्वर, सिंहेश्वर, कुशेश्वर, सोमेश्वर, मदनेश्वर, सिद्धेश्वर, गाण्डीवेश्वर, शिलानाथ, जलाधिनाथ, गरीबनाथ, बूढ़ानाथ, अजगवीनाथ, ईशाननाथ, कामदानाथ, सोमनाथ, उग्रनाथ[1] आदि शतशः प्रसिद्ध शिवतीर्थोंमें वर्षभर शिवभक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। रविवार, सोमवार तथा माघ, श्रावण आदि महीनोंमें तो जन-समूह उमड़ पड़ता है।

मिथिलामें विशिष्ट व्यक्तियोंकी चिताभूमिपर शिव-मन्दिर बनाकर शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनेका आज भी प्रचलन है। फलतः प्रत्येक गाँवमें दो-चार शिवमन्दिर मिल ही जाते हैं। जहाँ भगवान् शंकरकी नियमतः पूजा-अर्चना होती है।

'आशुतोष भगवान् शंकरकी आराधनासे मनोवाञ्छित फल शीघ्र मिलता है', यह बद्धमूल धारणा आज भी मिथिलामें विद्यमान है। इसलिये अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी आदि दैवी आपदाएँ हों या कोई वैयक्तिक विपत्ति हो, इनसे मुक्ति पानेके लिये लोग आज भी पार्थिव शिवलिङ्गोंकी पूजा करते हैं। शालग्राम-पूजक भी प्रदोष-कालमें पार्थिव-लिङ्गकी अर्चना करते हैं। शिव-मन्दिरोंमें जब भक्तजन भावविभोर होकर— *'कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ। कखन हरब दुख मोर'*—यह नचारी गाते हैं तो सुननेवाले सहृदय भाव-विह्वल होकर स्वर-में-स्वर मिलाकर तन्मय हो जाते हैं। मैथिलके नचारी गीतोंमें जो भक्ति-भाव, तन्मयता, आत्म-समर्पण और एकान्त-भावनाकी अभिव्यक्ति होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। वृषभध्वज दिगम्बर भगवान् भूतनाथ गरीबनाथ भोलेनाथके साथ अनन्यशरण भक्तजनका तादात्म्य-स्थापन अधिक सरल होता है। वे उस अवस्थामें आत्म-विभोर हो जाते हैं। मिथिलामें आज भी वैवाहिक माङ्गलिक अवसरपर महिलाएँ जो गीत गाती हैं, उनमें गौरी, शंकर, मेना, हिमालय ही प्रतीक-रूपमें रहते हैं। वर-वधूके अखण्ड सौभाग्यके लिये शिव-पार्वतीकी ही आराधना इन गीतोंके माध्यमसे की जाती है। मिथिलाके लोगोंमें यह दृढ़ विश्वास है कि भक्त कवि विद्यापतिकी एकान्त-भक्तिके वशीभूत होकर आशुतोष शंकर 'उगना' नामसे उनके सेवक बनकर उनके साथ रहते थे। विद्यापति जब 'नचारी' गाते थे तो 'उगना' तन्मय होकर सुनते थे।

मिथिलामें शिवशंकर 'अढरनढरन' माने जाते हैं। ये निश्छल होनेके कारण 'भोलेनाथ' हैं। दीनोंके सहायक होनेमें गरीबनाथ हैं। इनकी आराधनामें विधि-विधान और असाधारण उपादानकी आवश्यकता नहीं। ये जल, पुष्प, मुखवाद्यसे ही संतुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि आशुतोष जो हैं और गरीबसे अमीरतक सभीके आराध्य हैं।

---

१. मिथिलामाहात्म्य, कूर्मपुराण, लिङ्गपुराण, तन्त्रचूडामणि, यामलसारोद्धार, मिथिलाखण्ड आदिमें इन शिवलिङ्गोंका उल्लेख है।

मिथिलाञ्चलके शिव-मन्दिर

(डॉ० श्रीनरेशजी झा)

आदिशक्ति जगज्जननी जानकीजीकी पावन आविर्भाव-स्थली होनेके कारण मिथिला प्राचीन कालसे शाक्तधर्ममें प्रतिष्ठित रही है। साथ ही पञ्चदेवोपासक होनेके कारण शिवोपासना भी यहाँ उतनी ही प्राचीन है। इस दृष्टिसे मिथिलामें शिव-मन्दिरोंकी ही प्रधानता है। इस क्षेत्रके कुछ प्रमुख शिव-मन्दिर तथा अर्चाविग्रह इस प्रकार हैं—बाबा गंगेश्वरनाथ, बाबा सितेश्वरनाथ, कपिलेश्वर महादेव (वछनगरी-ककरौड़), सोमनाथ-मन्दिर (सौराठ-मधुबनी), विदेश्वर स्थान, कुशेश्वर स्थान, कल्याणेश्वर (कलना), गाण्डीवेश्वर (शिवनगर), बाणेश्वर (बालुगंगा), चटेश्वरनाथ (सिंघवाड़), गरीबनाथ (मुजफ्फरपुर), हरिहरनाथ (सोनपुर) और नागेश्वरनाथ (दुबरी) आदि। इनमेंसे यहाँपर कुछेकका संक्षेपमें वर्णन किया जाता है—

बाबा गंगेश्वरनाथ

बाबा गंगेश्वरनाथका कामनालिङ्ग रतनपुर मौजेके निर्जन वनमें जमीनके अंदर एक कूपमें स्थित है। इन्हें वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्गका ही अपर रूप माना जाता है। आस-पासके क्षेत्रोंमें इस कामनालिङ्गकी बड़ी ही महिमा है। कहा जाता है कि बाबा वैद्यनाथ सवा प्रहर भक्तोंके हितके लिये यहाँ विश्राम करते हैं, काशीमें जिस प्रकार काशीकरवटमें महादेव स्थित हैं, उसी प्रकार यहाँ समतल भूमिसे आठ-दस हाथकी गहराईके एक कूपमें बाबा गंगेश्वरनाथजीका कामनालिङ्ग स्थित है। लिङ्गका आकार-प्रकार घिसा-पिटा-चपटा बाबा वैद्यनाथके समान ही है। इसी स्थलसे कुछ दूरीपर रजरवानी नामक एक तालाब है। ऐसी प्रसिद्धि है कि यहाँ स्नान करनेसे कुष्ठादि रोग दूर हो जाते हैं। बाबा गंगेश्वरनाथ (गंगेश्वर)में प्रत्येक रविवारको तथा शिवरात्रि आदि पर्वोंपर भक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। इस मन्दिरके निर्माण तथा कामनालिङ्गके आविर्भावके सम्बन्धमें अनेक वृत्तान्त यहाँ प्रसिद्ध हैं। जिनमें प्राय: मूलतः यही बात निर्दिष्ट है कि किन्हीं पुत्रार्थी शिवभक्तको स्वप्नमें बाबा वैद्यनाथने कहा कि वत्स! मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, किंतु तुम इतनी दूर मेरे पास क्यों आये, मैं तो तुम्हारे घरके पास ही रतनपुरके एक सुनसान जंगलमें एक कूपमें स्थित हूँ, वहीं जाकर आराधना करो, तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। फिर क्या था, बाबाके आदेशके अनुसार निर्दिष्ट स्थानपर खुदाई प्रारम्भ कर दी गयी और कुछ समयके परिश्रमके बाद उसी कूपके मध्य भगवान् वैद्यनाथजीके अपर रूप गंगेश्वरनाथ महादेवके दर्शन हुए। भक्तोंकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। फिर वहींपर गंगेश्वरनाथका मन्दिर बनवाया गया और दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगने लगी।

बाबा सितेश्वरनाथ

बिहारमें सीतामढ़ी मण्डलके दक्षिणी छोरपर अवस्थित चकौती ग्राममें श्रीसितेश्वरनाथ महादेवका मन्दिर है। सदियों पूर्व श्रीसीता मिश्रने ग्राम-देवी चक्रेश्वरी भगवतीके पश्चिम एक बृहत् सरोवरका निर्माण कराकर उसके दक्षिणी भागमें श्मशान-भूमिके निकट एक शिव-मन्दिरकी भी स्थापना की थी। इसी मन्दिरके मध्यमें बाबा सितेश्वरनाथकी लिङ्ग-मूर्ति स्थापित है। यह शिवलिङ्ग काले-चमकीले पाषाणसे निर्मित है।

मन्दिर प्राचीन है, किंतु इस लिङ्गमूर्तिकी यह विशेषता है कि अनेक बार जीर्णोद्धार करानेके बाद भी बार-बार इस मन्दिरके ऊपरका भाग भग्न-सा हो जाता है। मानो श्रीसितेश्वरनाथजी खुले आकाशके तले ही स्थित रहना चाहते हैं। मन्दिरके प्राङ्गणमें ही उत्तर-पूर्व-कोणमें श्रीभैरवजीके मन्दिरके ध्वंसावशेष हैं।

बाबा सितेश्वरनाथकी इस क्षेत्रमें बहुत मान्यता है। इनके चमत्कारोंकी अनेक कथाएँ यहाँ प्रचलित हैं। जब कभी गाँवमें अनावृष्टिकी स्थिति होती है तो लोग बाबा सितेश्वरनाथजीका पूर्ण जलाभिषेक करवाते हैं, तब कहींसे बादल आकर बरस जाते हैं। बाबा सितेश्वरनाथ श्रद्धालु भक्तोंकी मनःकामनाएँ पूर्ण करते रहते हैं।

ठीकरनाथ महादेव

विहार-प्रदेशके पूर्व चम्पारण जनपदान्तर्गत पुण्यतोया वागमतीके पावन तटपर नारायणपुर (जिहुली) में भगवान् ठीकरनाथ महादेवका बड़ा ही जाग्रत् स्थान है। विशाल मन्दिरमें विराजमान भगवान् शिवकी भास्वर प्रतिमा बड़ी ही विलक्षण है। त्रिपुरसुन्दरी जगन्माता पार्वतीके कंधेपर हाथ रखे प्रसन्न-मुद्रामें खड़े शिवकी प्राचीन श्याम पाषाण-प्रतिमा दर्शनार्थी भक्तोंको भावविभोर कर देती है। भक्तोंकी दृढ़ धारणा एवं सहजनिष्ठा है कि भूतभावन बाबा ठीकरनाथ कभी अपने आराधक भक्तोंकी पुकार अनसुनी नहीं करते। यही कारण है कि सुदूर क्षेत्रोंसे प्रतिदिन सहस्रों दर्शनार्थी भक्त नारायणपुर पधारकर ठीकरनाथ महादेवकी कृपा प्राप्त करते हैं। प्रतिवर्ष वसन्तपञ्चमीके अवसरपर यहाँ विशाल मेला लगता है। काँवरिया भक्तोंकी भीड़ तो देखते ही बनती है।

किंवदन्ती है, अठारहवीं सदीके प्रारम्भमें ठीकर नामक एक गरीब किसान यहाँ गौएँ चरानेका काम करता था। शिवके युगल-दम्पति-स्वरूपका अनन्य उपासक ठीकर गायोंको मैदानमें छोड़कर अनन्य निष्ठासे शिवार्चन प्रारम्भ कर देता। पूजासे प्राप्त आह्लादमें वह अपनी सुध-बुध भूल बैठता, इसी बीच गौएँ खेतोंमें लपककर फसल बर्बाद कर देतीं। पुनः जब ठीकर पूजा एवं ध्यान-समाधिसे निवृत्त होकर ज्यों ही खेतोंकी ओर दृष्टि करता तो फसलें पूर्ववत् हरी-भरी दीख पड़तीं। ग्रामीण इस रहस्यसे एवं ठीकरकी शिव-साधनासे भलीभाँति अवगत थे, अतः उसे कोई कुछ नहीं कहते। एक दिन आधी रातको ठीकर गाँवके कोलाहलसे दूर जाकर निर्जन स्थानमें (अभी जहाँ मन्दिर है) अपने आराध्य शिव-पार्वतीके ध्यानमें निमग्न भावविह्वल हो दर्शनार्थ आर्त प्रार्थना कर रहा था। एकाएक आकाशमें बादलोंकी-सी गड़गड़ाहट सुनायी पड़ी। बिजलियाँ बारंबार चमकने लगीं। अपूर्व चकाचौंधसे लोग घबड़ा उठे। तभी जोरोंका धमाका हुआ और जहाँ ठीकर शिवार्चन कर रहा था, वहाँसे थोड़ी दूरपर जमीन फटी तथा शिव-पार्वतीकी अतीव कल्याणकारिणी यह पाषाण-प्रतिमा प्रकट हो गयी। ठीकर 'हर हर महादेव'का घोष उच्च-स्वरसे करता हुआ कहाँ अन्तर्धान हो गया, किसीने नहीं देखा। इस किंवदन्तीका जो कुछ भी रहस्य हो, किंतु भगवान् ठीकरनाथकी महिमामें तो कोई संदेह नहीं। आज भी इस प्रतिमाको लोग ठीकरनाथके नामसे बड़ी ही श्रद्धापूर्वक भजते हैं। —मदनशर्मा शास्त्री

श्रीसोमेश्वरनाथ महादेव

श्रीसोमेश्वरनाथ महादेवका मन्दिर बिहारके मधुबनी मण्डलान्तर्गत झंझारपुरके निकट लखनौर प्रखण्डके अँकुशी ग्रामके पास अवस्थित है। यह स्थान घने जंगलमें स्थित है, जिसके चारों ओर दूर-दूरतक कोई बस्ती नहीं है।

श्रीसोमेश्वरनाथ महादेव-मन्दिरके साथ एक विचित्रता यह जुड़ी हुई है कि इसका शिवलिङ्ग कई हाथ नीचे एक कूपमें स्थित है। इन महादेवका दर्शन वर्षमें केवल चार माह—वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावणमें ही होता है। इसके अतिरिक्त श्रावणी पूर्णिमासे वैशाखकी संक्रान्तिपर्यन्त शेष समय श्रीसोमेश्वरनाथजी जलमग्न ही रहते हैं।

कहते हैं कि अठारहवीं शताब्दीमें महान् योगी श्रीलक्ष्मीनाथ गुसाईंजीने अपनी अटूट शिव-भक्तिके कारण इस चमत्कारिक शिवलिङ्गके दर्शन किये थे। उस समय यह लिङ्ग भूमिमें गड़ा हुआ था। गुसाईंजीने भूमि खोदकर इसे बाहर निकालना चाहा, परंतु यह शिवलिङ्ग गहराईमें चला गया। तब भगवान् शिवके आदेशानुसार गुसाईंजीने उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न छोड़कर वहींपर मन्दिर-निर्माण करा दिया।

यहाँ वर्षमें माघ मासमें मकर-संक्रान्तिके उपरान्त प्रति रविवारको मकर-मेला नामसे मेला लगा करता है। महाशिव-रात्रिपर यह मेला वृहद् रूप ले लेता है। उस दिन यहाँ बड़ी भारी संख्यामें दर्शनार्थी एकत्रित होते हैं। इसके अलावा यहाँ दीपावलीका पर्व भी बड़ी श्रद्धा और उत्साहके साथ मनाया जाता है। —श्री 'पतित' इन्दुशेखर

वैकठपुरका ऐतिहासिक श्रीगौरीशंकर महादेव

बिहारकी राजधानी पटनासे २६ कि॰मी॰ पूर्व फतुहा प्रखण्डके खुसरूपुर कस्बेके निकट वैकठपुरमें श्रीगौरीशंकर महादेवका प्रख्यात ऐतिहासिक मन्दिर स्थित है।

इस अति प्राचीन शिव-मन्दिरका शिवलिङ्ग जिसके अग्रभागमें भगवती पार्वतीजीकी प्रतिमा भी संलग्न है और जो ग्यारह सौ छोटे-छोटे शिवलिङ्गोंसे भी युक्त है, भारतमें पाये जानेवाले शिव-लिङ्गोंमें अत्यन्त विलक्षण है।

परिलक्षित होता है।

भवानी पटनाके भण्डेश्वर, जूनागढ़के रामेश्वर सम-कालीन निर्मित मन्दिर हैं। सम्भवतः इनका निर्माण 'जुगसायदेव'ने करवाया था। उदितप्रतापने छुरियामें 'महाकालेश्वर'-मन्दिर, रामभन्द्रदेवने 'घुआमूल'में 'नीलकण्ठेश्वर'-मन्दिरका निर्माण करवाया था।

सुन्दरगढ़ जिलेके 'बणाई' तथा 'गांगपुर' राज्यके शासकोंने अनेक मन्दिरोंका निर्माण करवाया था। बणाईके 'बाणेश्वर'-मन्दिरका निर्माण बाणेश्वर इन्द्रदेवने सातवीं शताब्दीमें करवाया था। रघुनाथ इन्द्रदेवने रघुनाथपुर पटनाके 'कुपेश्वर'-मन्दिरका निर्माण अठारहवीं शताब्दीके प्रथमार्धमें करवाया था। पानपोसका चन्द्रशेखर-मन्दिर तथा जाआड़ीका झाड़ेश्वर-मन्दिर भी शिव-मन्दिरोंमें उल्लेखनीय है।

सम्बलपुर नगरीके अन्तर्गत पुरातन मठ-मन्दिरोंमें झाड़ुआपाराका लोकनाथ-मन्दिर, नन्दपाड़ाका बालुंकेश्वर-मन्दिर, बालीबंधाका सोमेश्वर (बाबा शिवनाथ)-मन्दिर प्रसिद्ध है। यहाँ पश्चिम उड़ीसाका सुप्रसिद्ध शीतलषष्ठीका मेला लगता है। सिद्धेश्वर, पहाड़ेश्वर, कोसलेश्वर आदि मन्दिर भी उल्लेखनीय हैं। सम्बलपुर राज्यका चौहान राजवंश शक्ति एवं शिवका परम भक्त था। फलतः सम्बलपुर जिलेके गाँव-गाँवमें सुविख्यात शिव-मन्दिर आज भी देखे जा सकते हैं। जिनमेंसे 'अष्टशम्भु'के मन्दिर आठ गाँवोंमें अवस्थित हैं।

सम्बलपुरसे प्रायः ३७ कि० मी० दूरवर्ती पूर्व-दक्षिण दिशामें महानदी-तटपर बंका (टेढ़ा) 'हूमा' महादेव-मन्दिर अवस्थित है। यह अपने ढंगका विश्वप्रसिद्ध शिव-मन्दिर है। इसका प्रत्येक अङ्ग टेढ़ा और निर्माण-शैली आश्चर्यजनक है। शिवलिङ्गसे नदी-गर्भतक एक सुरंग है।

सम्बलपुर नगरीसे १३ कि० मी० पूर्वकी ओर सुविख्यात मानेश्वर (मान्धाता महादेव-मन्दिर) प्रतिष्ठित है। यह प्रसिद्धि है कि महाराजा बलियारसिंह घोड़ेपर सवार होकर प्रतिदिन शिवजीके दर्शन करने आते थे। दर्शनके पश्चात् ही जलस्पर्श करते थे। एक दिन भीषण वर्षाके कारण निकट बहती नदीमें बाढ़ आ गयी। फलतः वे शिवजीका दर्शन न कर सके। रात्रिमें उन्हें स्वप्न हुआ और उन्होंने गढ़के नहरके निकट ही सोमेश्वर-मन्दिरका निर्माण कराया। यहाँ भक्त आकर अपनी मनोवाञ्छा-पूर्तिके लिये प्रार्थना करते हैं। मन्दिरसे लगा हुआ एक तालाब है, जिसमे अनेक कछुए रहते हैं। निलजी, देवगाँव आदि स्थानोंमें भी शिवमन्दिर संस्थापित है।

सम्बलपुर नगरीके पश्चिम दिशामें प्रायः ६५ कि० मी०की दूरीपर दुर्गम 'बारापहाड़'के पश्चिम-पार्श्वमें अम्बाभोनाका वृहद् सुविख्यात 'केदारनाथ' शिवमन्दिर है। इसके सामने एक जलपूर्ण जलाशय है, जो प्रखर आतप और तपती लूके दिनोंमें भी सूखता नहीं। इसके पश्चिमकी ओर रास्तेसे सटा एक जलस्रोत है, जिसकी गम्भीरता नापी नहीं जा सकी है। शिवलिङ्गके चारों ओर अनेकों बिच्छू चलते-फिरते हैं। समय-समयपर लिङ्गसे लिपटे अनेक प्रकारके सर्प, नाग आदि घूमते रहते हैं, किंतु अभीतक किसीको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँची। जंगलके घाटीपर अवस्थित होनेके कारण इसकी प्राकृतिक छटा अति आकर्षक और लोकप्रिय है। वास्तवमें यह मन्दिर 'स्वयम्भू' है। शिवमन्दिरका जीर्णोद्धार सम्बलपुरके राजा बलियारसिंहने करवाया था। इस मन्दिरका नाम 'केदार'-फूलोंसे आवेष्टित होनेके कारण 'केदारनाथ' रखा गया। कहा जाता है कि एक गाय नदीको पारकर लावा नामक गाँवसे नित्य आकर इस लिङ्गके ऊपर अपना दूध छोड़ जाती थी और एक श्वेत नाग उसे पान करता था।

इस प्रकार इस क्षेत्रके ऐश्वर्यशाली मन्दिरोंको देखनेसे स्पष्ट रूपसे पता चलता है कि यह क्षेत्र भी सनातन शैव-संस्कृतिकी पीठस्थली रहा है।

—श्रीलक्ष्मण प्रसाद नायक

तारकेश्वर

हावड़ासे लगभग ३४ मील दूर पूर्वी रेलवेके मार्गपर तारकेश्वर स्टेशन है। स्टेशनसे लगभग एक कि० मी० दूर तारकेश्वर महादेवका मन्दिर है। मन्दिरके समीप 'दुग्धगङ्गा' नामका सरोवर है। उसमें स्नान करके यात्री तारकेश्वर महादेवके दर्शन करते हैं। श्रीतारकेश्वर मन्दिरके पास ही काली-मन्दिर है। तारकेश्वरमें महाशिवरात्रि तथा मेषकी संक्रान्तिपर मेला लगता है।

उड़ीसा एवं बंगालके कुछ शिव-मन्दिर

पश्चिम उड़ीसाके शिव-मन्दिर

पश्चिम उड़ीसा जो कभी दक्षिण कोसलका पूर्वी भाग था, शिवोपासनाका प्रसिद्ध क्षेत्र रहा है। यहाँ विष्णु एवं शाक्त-मन्दिरोंकी अपेक्षा शिवमन्दिरोंकी संख्या अधिक है। प्रायः देखा जाता है कि किसी-न-किसी प्रकारका लिङ्ग एवं मन्दिर प्रत्येक ग्राममें अवस्थित है। कालाहाँडी जिलेके मदनपुर-रामपुरसे २७ कि० मी० दूर स्थित 'मोहनगिरि' गाँवमें एक छोटी पुष्करिणीके किनारे एक प्राचीन मन्दिरका अवशेष विद्यमान है। पुराना मन्दिर तो लुप्तप्राय है, किंतु उसके भित्ति-प्रस्तर और उनमें उत्कीर्ण कलाकृतियाँ देखी जा सकती हैं। इस मन्दिरकी प्राचीनता अथवा निर्माण-काल स्थिर करनेके लिये कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं है, फिर भी जो शिलालेख प्राप्त हैं, उनमें दोका नाम उल्लिखित है—पहला 'मुद्गल स्फीतचन्द्र' और दूसरा 'व्यूह-भैरव'। लिपि तात्त्विक दृष्टिकोणसे यदि विचार किया जाय तो यह मन्दिर आठवीं-नवीं शताब्दीका हो सकता है।

इसी कालके और दो मन्दिर अपेक्षाकृत अच्छी स्थितिमें देखनेको मिलते है—पहला गंधराड़ीका 'सिद्धेश्वर' शिव-मन्दिर और दूसरा खड़ियालके निकट 'बूढ़ीकोमना'का 'पातालेश्वर'-मन्दिर। गंधराड़ीके सिद्धेश्वर-मन्दिरका शिवलिङ्ग नीचे अष्टकोणी और ऊपर गोलाकृत है। इस प्रकारका लिङ्ग उड़ीसामें अन्यत्र नहीं है। सम्भवतः यह भंजवंशके शासनकालमें निर्मित किया गया है।

'पातालेश्वर'-मन्दिर 'पञ्चरथ' शैलीमें निर्मित है। निर्माणकी दृष्टिसे विचार करनेपर यह 'गंधराड़ी'-मन्दिरसे परवर्ती-कालका ठहरता है। सम्भवतः सोमवंशीय नरेश नागार्जुनने इसका निर्माण करवाया था।

सोमवंशीय शासनकालमें निर्मित और अनेक शिव-मन्दिर इस क्षेत्रमें जीर्ण-शीर्ण-अवस्थामें देखनेको मिलते हैं। खड़ियालके निकट रजनार शिव-मन्दिर, बलांगीर जिलेका कुसुमी, सिंहनी, घोदर, उदयपुर एवं टीटलागढ़के कोमना पहाड़के निकट पत्थरसे निर्मित दो मन्दिर सोमवंशीय कालमें निर्मित हुए होंगे, ऐसा जान पड़ता है। चउदमें चार मन्दिर अवस्थित हैं—पश्चिमनाथ, सोमनाथ, केदारनाथ और रामनाथ। रामनाथ-मन्दिर पूर्णतः टूट चुका है। अन्य तीनों मन्दिरोंकी निर्माण-शैली प्रायः समान है। कुछ विद्वान् इन्हें तान्त्रिक शैलीके मन्दिर बतलाते हैं। इसी आधारपर आजका तुलसीचौरा कभी तान्त्रिकोंका पञ्चमुख-आसन था, ऐसा कहा जाता है।

कालाहाँडी जिलेके तेल और उदई नदीके संगमस्थलपर स्थित राजपदर आधुनिक बेलखंडीमें एक बहुत प्राचीन शिव-मन्दिरके अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। पुराना मन्दिर ईंटोंसे बना था। इसे दसवीं शताब्दीका बताया जाता है। इसके समकालीन मन्दिर रानीपुर-झरियालमें भी अवस्थित हैं। यहाँ १२० मन्दिर स्थित थे, ऐसी जनश्रुति है। यहाँ आज ४८ मन्दिर देखे जा सकते हैं। सभी मन्दिरोंके ढाँचे पत्थरसे निर्मित हैं। आकृतिमें सोमेश्वर मन्दिर बड़ा है। शैवाचार्य, गगनशिवने इस मन्दिरका निर्माण करवाया था। कुचिण्डा (सम्बलपुर)के भोजपुरगढ़में भी दसवीं शताब्दीके मन्दिर जीर्ण-शीर्ण-अवस्थामें देखे जा सकते हैं। वहाँके गङ्गा-यमुना-मूर्ति-शक्ति, आमलक-शिला, नवग्रह-शिला आदि सम्बलपुर विश्वविद्यालयके म्यूजियममें संरक्षित हैं।

ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दीमें निर्मित कुछ मन्दिर बलांगीर जिलेमें निर्मित हैं, जिनमें वैद्यनाथका 'कोसलेश्वर'-मन्दिर, चरदाका 'कपिलेश्वर-मन्दिर' तथा साउतपुरका 'कोसलेश्वर'-मन्दिर आदि प्रसिद्ध हैं।

चौहानकालीन शिवमन्दिरोंमेंसे बैजमलदेवकी रानी दुर्लभादेवीद्वारा निर्मित 'हरिशंकर'-मन्दिर बहुत ही प्राचीन है। इसे पंद्रहवीं शताब्दीमें निर्माण कराया गया था। हरिशंकर-मन्दिरमें शैव तथा वैष्णव-धर्मके एकत्वके अद्भुत दर्शन होते हैं।

सोनपुर अञ्चलके शिव-मन्दिरोंमें सोनपुरका स्वर्णमेरु, रामेश्वर, शोककर्णेश्वर, बीसुर्णाका शिवमन्दिर, चम्पामालका चम्पेश्वर (शिव), मुलभाका गोधनेश्वर और जोगीमुर्डाका शिव-मन्दिर मुख्य है। प्रथम दो मन्दिरोंका निर्माण सोनपुरके राजा मदनगोपालने करवाया था। इन शिव-मन्दिरोंकी आकृतिमें कलिंग और खजुराहो-मन्दिरोंकी शैलीका प्रभाव

परिलक्षित होता है।

भवानी पटनाके भण्डेश्वर, जूनागढ़के रामेश्वर सम-कालीन निर्मित मन्दिर हैं। सम्भवतः इनका निर्माण 'जुगसायदेव'ने करवाया था। उदितप्रतापने छुरियामें 'महाकालेश्वर'-मन्दिर, रामभन्द्रदेवने 'धुआमूल'में 'नीलकण्ठेश्वर'-मन्दिरका निर्माण करवाया था।

सुन्दरगढ़ जिलेके 'वणाई' तथा 'गांगपुर' राज्यके शासकोंने अनेक मन्दिरोंका निर्माण करवाया था। वणाईके 'वाणेश्वर'-मन्दिरका निर्माण वाणेश्वर इन्द्रदेवने सातवीं शताब्दीमें करवाया था। रघुनाथ इन्द्रदेवने रघुनाथपुर पटनाके 'कुपेश्वर'-मन्दिरका निर्माण अठारहवीं शताब्दीके प्रथमार्धमें करवाया था। पानपोसका चन्द्रशेखर-मन्दिर तथा जाआड़ीका झाड़ेश्वर-मन्दिर भी शिव-मन्दिरोंमें उल्लेखनीय है।

सम्बलपुर नगरीके अन्तर्गत पुरातन मठ-मन्दिरोंमें झाडुआपाराका लोकनाथ-मन्दिर, नन्दपाड़ाका बालुंकेश्वर-मन्दिर, बालीवंधाका सोमेश्वर (बाबा शिवनाथ)-मन्दिर प्रसिद्ध है। यहाँ पश्चिम उड़ीसाका सुप्रसिद्ध शीतलषष्ठीका मेला लगता है। सिद्धेश्वर, पहाड़ेश्वर, कोसलेश्वर आदि मन्दिर भी उल्लेखनीय हैं। सम्बलपुर राज्यका चौहान राजवंश शक्ति एवं शिवका परम भक्त था। फलतः सम्बलपुर जिलेके गाँव-गाँवमें सुविख्यात शिव-मन्दिर आज भी देखे जा सकते हैं। जिनमेंसे 'अष्टशम्भु'के मन्दिर आठ गाँवोंमें अवस्थित हैं।

सम्बलपुरसे प्रायः ३७ कि० मी० दूरवर्ती पूर्व-दक्षिण दिशामें महानदी-तटपर बंका (टेढ़ा) 'हूमा' महादेव-मन्दिर अवस्थित है। यह अपने ढंगका विश्वप्रसिद्ध शिव-मन्दिर है। इसका प्रत्येक अङ्ग टेढ़ा और निर्माण-शैली आश्चर्यजनक है। शिवलिङ्गसे नदी-गर्भतक एक सुरंग है।

सम्बलपुर नगरीसे १३ कि० मी० पूर्वकी ओर सुविख्यात मानेश्वर (मान्धाता महादेव-मन्दिर) प्रतिष्ठित है। यह प्रसिद्धि है कि महाराजा बलियारसिंह घोड़ेपर सवार होकर प्रतिदिन शिवजीके दर्शन करने आते थे। दर्शनके पश्चात् ही जलस्पर्श करते थे। एक दिन भीषण वर्षाके कारण निकट बहती नदीमें बाढ़ आ गयी। फलतः वे शिवजीका दर्शन न कर सके। रात्रिमें उन्हें स्वप्न हुआ और उन्होंने गढ़के नहरके निकट ही सोमेश्वर-मन्दिरका निर्माण कराया। यहाँ भक्त आकर अपनी मनोवाञ्छा-पूर्तिके लिये प्रार्थना करते हैं। मन्दिरसे लगा हुआ एक तालाव है, जिसमें अनेक कछुए रहते हैं। निलजी, देवगाँव आदि स्थानोंमें भी शिवमन्दिर संस्थापित हैं।

सम्बलपुर नगरीके पश्चिम दिशामें प्रायः ६५ कि० मी०की दूरीपर दुर्गम 'बारापहाड़'के पश्चिम-पार्श्वमें अम्बाभोनाका बृहद् सुविख्यात 'केदारनाथ' शिवमन्दिर है। इसके सामने एक जलपूर्ण जलाशय है, जो प्रखर आतप और तपती लूके दिनोंमें भी सूखता नहीं। इसके पश्चिमकी ओर रास्तेसे सटा एक जलस्रोत है, जिसकी गम्भीरता नापी नहीं जा सकी है। शिवलिङ्गके चारों ओर अनेकों बिच्छू चलते-फिरते हैं। समय-समयपर लिङ्गसे लिपटे अनेक प्रकारके सर्प, नाग आदि घूमते रहते हैं, किंतु अभीतक किसीको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँची। जंगलके घाटीपर अवस्थित होनेके कारण इसकी प्राकृतिक छटा अति आकर्षक और लोकप्रिय है। वास्तवमें यह मन्दिर 'स्वयम्भू' है। शिवमन्दिरका जीर्णोद्धार सम्बलपुरके राजा बलियारसिंहने करवाया था। इस मन्दिरका नाम 'केदार'-फूलोंसे आवेष्टित होनेके कारण 'केदारनाथ' रखा गया। कहा जाता है कि एक गाय नदीको पारकर लावा नामक गाँवसे नित्य आकर इस लिङ्गके ऊपर अपना दूध छोड़ जाती थी और एक श्वेत नाग उसे पान करता था।

इस प्रकार इस क्षेत्रके ऐश्वर्यशाली मन्दिरोंको देखनेसे स्पष्ट रूपसे पता चलता है कि यह क्षेत्र भी सनातन शैव-संस्कृतिकी पीठस्थली रहा है।

—श्रीलक्ष्मण प्रसाद नायक

तारकेश्वर

हावड़ासे लगभग ३४ मील दूर पूर्वी रेलवेके मार्गपर तारकेश्वर स्टेशन है। स्टेशनसे लगभग एक कि० मी० दूर तारकेश्वर महादेवका मन्दिर है। मन्दिरके समीप 'दुग्धगङ्गा' नामका सरोवर है। उसमें स्नान करके यात्री तारकेश्वर महादेवके दर्शन करते हैं। श्रीतारकेश्वर मन्दिरके पास ही काली-मन्दिर है। तारकेश्वरमें महाशिवरात्रि तथा मेषकी संक्रान्तिपर मेला लगता है।

श्रीलिङ्गराज-मन्दिर

उड़ीसाका भुवनेश्वर नगर काशीके समान ही शिव-मन्दिरोंका नगर है। इसे उत्कल-वाराणसी और गुप्तकाशी भी कहते हैं, पुराणोंमें इसे 'एकाम्रक्षेत्र' कहा गया है। भगवान् शंकरने इस क्षेत्रको प्रकट किया, इसलिये यह शाम्भव-क्षेत्र भी कहलाता है। श्रीलिङ्गराज-मन्दिर यहाँका मुख्य मन्दिर है। श्रीलिङ्गराजका ही नाम भुवनेश्वर है। यह मन्दिर उच्च प्राकारके भीतर है।

गर्भगृहके ऊपर विशाल शिखर बना हुआ है। यह शिखर सम्पूर्ण मन्दिरकी स्थापत्य-कलाका सुन्दर नमूना है। भगवान् भुवनेश्वरका लिङ्ग-विग्रह भी बड़ा विशाल है। उसके तीन भाग हैं जो सम्भवतः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके द्योतक हैं। लिङ्गके नीचे बराबर जल भरा रहता है और दूध, दही तथा जलसे उसे स्नान कराया जाता है। भुवनेश्वरका मन्दिर बहुत प्राचीन है। यह मन्दिर केशरीवंशके राजाओंद्वारा बनवाया गया है।

मन्दिरके चार भाग हैं जो क्रमशः भोगमन्दिर, नटमन्दिर, जगमोहन एवं गर्भगृह कहलाते हैं। जगमोहनसे ही श्रद्धालु भगवान्‌के दर्शन करते हैं। मन्दिरके प्राकारके प्रधान द्वार—सिंहद्वारके ठीक सामने अरुण-स्तम्भ नामक एक बड़ा सुन्दर स्तम्भ बना हुआ है।

दक्षिण भारतके कुछ शिव-मन्दिर एवं अर्चाविग्रह

गुजरातका इतिहास-प्रसिद्ध रुद्रमहालय

भारतके भव्यतम शिव-मन्दिरोंमें गुजरातके दो मन्दिरों—पुराण-प्रसिद्ध सोमनाथ और इतिहास-प्रसिद्ध रुद्रमहालयको विशेष सम्मान प्राप्त है। विधर्मी शासकोंद्वारा अनेक बार ध्वस्त होनेपर भी ज्योतिर्लिङ्ग सोमनाथ अब पुनर्निर्मित होकर गुजरातका पवित्र तीर्थ बन गया है, जबकि रुद्रमहालय भग्नावशेष मात्र रहकर विस्मृतिकी गर्तमें डूब रहा है।

गुजरातके इतिहासके 'स्वर्णयुग' सोलंकी-युगमें सोलंकी-वंशके संस्थापक मूलराज सोलंकीने सन् ९८३ में 'रुद्रमहालय'-मन्दिरका निर्माण प्रारम्भ किया था, किंतु मन्दिरके निर्माणके प्रारम्भिक कालमें ही उनकी मृत्यु हो गयी। मूलराज सोलंकी भगवान् शिवके परम भक्त थे। उनकी मृत्युके बाद पाँच सोलंकी राजा हुए, परंतु किसीने इस निर्माण-कार्यमें विशेष रुचि नहीं दिखायी। अन्तमें गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंहने इस मन्दिरको पूर्ण कराया।

चौदह वर्षमें निर्मित तीन सौ फुट ऊँचा और दो सौ फुट चौड़ा वह रुद्रमहालय भारतीय शिल्प-कलाका उत्कृष्ट उदाहरण था। मन्दिरकी दीवारोंपर रामायण, महाभारत तथा अन्य पौराणिक कथाओंके दृश्य उत्कीर्ण थे। मुख्य मन्दिरके आस-पास सिद्धराजके मन्त्रियोंद्वारा निर्मित अनेक छोटे-छोटे शिवालयोंसे रुद्रमहालयकी रमणीयतामें चार चाँद लग गये थे। अपने समयमें अपनी अद्भुत शिल्प और विशालताके कारण यह मन्दिर देशके प्रमुख शिव-मन्दिरोंमेंसे एक माना जाता था।

गुजरातका यह गौरवशाली शिव-मन्दिर विधर्मी शासकोंकी आँखोंमें सदैव काँटेकी तरह चुभता रहा। सन् १२७८ ई० में अलाउद्दीन खिलजीने गुजरातपर आक्रमण किया। उसके उगल्लुखान नामक सरदारने रुद्रमहालयकी रम्यता एवं पवित्रताको मटियामेट कर दिया। तत्पश्चात् अहमदशाह और अन्य मुसलमान शासकोंने उसे तहस-नहस करके वहाँ विशाल मस्जिदका निर्माण करा दिया।

आज भी उस मस्जिदके पीछे प्राचीन गुजरातके इस महिमामण्डित शिव-मन्दिरके कीर्तिस्तम्भ तथा चार रुद्र-मन्दिरके भग्नावशेष विद्यमान हैं और अपने पुनरुद्धारकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

—डॉ० कमल पुंजाणी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०

बोधनका श्रीचक्रेश्वर-मन्दिर

दक्षिण भारतमें जिला निजामाबादके बोधन नामक स्थानमें कुछ वर्षों पूर्व भूमिको समतल करते समय एक शिवलिङ्गके दर्शन हुए। इस स्थानपर पहले निर्जन श्मशान था और चारों ओर मिट्टीका परकोटा-जैसा बना हुआ था। बादमें इस परकोटेको समतल करते समय एक महान् शिवलिङ्ग दिखलायी दिया। यह समाचार कानोंकान आस-पासके क्षेत्रोंमें फैल गया और फिर भक्तोंने बड़ी ही

श्रद्धापूर्वक यहाँपर मन्दिरका निर्माण करवाया। कहा जाता है कि बोधन नगरीका ऐतिहासिक नाम एकचक्र नगरी था, जहाँ पाण्डवोंने निवास किया था। शिवलीलामृत ग्रन्थसे यह पुष्ट होता है कि एकचक्र नगरीमें एक विशाल शिवालय था। जहाँ शाण्डिल्यमुनि अपने शिष्योंके साथ भगवान् शिवकी उपासना करते थे। इससे इस स्थानकी प्राचीनताका बोध होता है। इसी मन्दिरके पश्चिममें परशुरामकी माता रेणुकादेवीका पवित्र मन्दिर भी है। एकचक्रेश्वर-मन्दिरकी स्थापनाके बाद यहाँ एक कुआँ खुदवाया गया, जिसका पानी अत्यन्त मीठा है, जबकि आस-पासके अन्य कुओंका पानी खारा है, यह भगवान् चक्रेश्वरका ही प्रभाव माना जाता है। भगवान् चक्रेश्वरकी उपासनासे अनेकों भक्तोंकी अभिलाषाओंकी पूर्ति हुई है, यहाँ भक्त नारियल चढ़ाते हैं, अभिषेक तथा अर्चना करते हैं।

—श्रीलक्ष्मणरावजी जोशी

आन्ध्रप्रदेशका श्रीकेतकीसंगमेश्वर महादेव

श्रीकेतकीसंगमेश्वर महादेवका मन्दिर आन्ध्रप्रदेशके संगारेडी जिलेकी जहिराबाद तहसीलके दक्षिणमें १२ कि० मी० और कर्नाटकके बीदर शहरसे २० कि० मी० दूर है। आस-पासके क्षेत्रोंमें इस मन्दिरकी बहुत मान्यता है तथा लोगोंकी इनके प्रति अतीव श्रद्धा-भक्ति है।श्रीसंगमेश्वर महादेव बहुतसे परिवारोंके कुल-देवता भी हैं।

श्रीकेतकी-संगमेश्वर महादेवके भव्य मन्दिरके पास ही लगभग ९ फुट गहराईवाला एक कुण्ड है, जिसे अमृत-कुण्ड कहा जाता है। चारकोणी इस कुण्डके एक कोनेमें मेहराब है, जिसमेंसे सदा जल प्रवाहित होता है। माना जाता है कि स्वयं भागीरथीका जल ही इस कुण्डमें प्रवाहित होता है। इस कुण्डमें इन्द्र, नारायण, धर्म, श्रीदत्त, वरुण, ऋषि, सोम और रुद्र—इन आठ देवताओंके निवासकी बात यहाँ जन-जनमें प्रसिद्ध है।

कहा जाता है कि इसी केतकीके वनमें एक स्थानपर ब्रह्माजीने अनुष्ठान करके भगवान् शंकरको प्रसन्न किया था। ब्रह्माजीके अनुरोधपर ही भगवान् शिव यहाँ लिङ्ग-रूपमें जन-कल्याणार्थ संगमेश्वरके नामसे स्थित हुए।

श्रीसंगमेश्वरके नामके साथ 'केतकी' शब्द जुड़नेकी एक कथा यहाँ प्रचलित है—'एक बार झूठी गवाही देनेके कारण शिवजीने केतकीके पुष्पको शाप दिया था कि तुम्हारे द्वारा कभी भी शिव-पूजा नहीं की जा सकेगी। कालान्तरमें केतकीने तप करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया, तब शिवजीने वरदान दिया कि वे केतकीके इस वनमें उसके नामसे ही प्रसिद्ध होंगे और उनकी पूजा बिना केतकी (केवड़े) के पुष्पके नहीं होगी।' यद्यपि केतकीसे शिव-पूजा करना निषिद्ध है तथापि देशमें केवल यही एक शिवलिङ्ग है, जिसपर केतकीके पुष्प अर्पित किये बिना पूजा नहीं की जाती। तबसे ही यह शिवलिङ्ग 'श्रीकेतकीसंगमेश्वर' के नामसे जाना जाता है।

प्रत्येक सोमवारको प्रदोष-पूजाके उपरान्त शिवजीकी उत्सव-मूर्तिको जुलूसके रूपमें कुण्डकी पाँच परिक्रमा करायी जाती है। महाशिवरात्रिपर यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें हजारों भक्त सम्मिलित होते हैं।

इस अमृत-कुण्डमें स्नान करनेसे कुष्ठ, अपस्मार, बहरेपन और मूकपने आदिके रोग नष्ट हो जाते हैं और इस कुण्डमें स्नानकर 'केतकीसंगमेश्वरमहादेव'का पूजन करनेपर पुनर्जन्म नहीं होता। माना जाता है कि इस केतकी-संगमेश्वर-क्षेत्रमें निवास करनेसे काशीवास-जितना पुण्य प्राप्त होता है। इसीलिये इस क्षेत्रको दक्षिण-काशी भी कहते हैं

—श्रीमाणिकराव कोहिरकर

महाबलेश्वर (गोकर्ण)

बंगलोर-पूना-लाइनपर हुबलीसे १०० मीलकी दूरीपर समुद्र-तटपर छोटी पहाड़ियोंके बीचमें गोकर्ण नगर बसा हुआ है। गोकर्णमें भगवान् शंकरका आत्मतत्त्व-लिङ्ग है। मन्दिरके भीतर पीठ-स्थानपर केवल अरघा दीखता है। अरघेके भीतर आत्मतत्त्वलिङ्गके मस्तकका अग्रभाग दिखायी देता है। उसीकी पूजा होती है। अष्टबन्ध-महोत्सवके समय ही आत्मलिङ्गका स्पष्ट दर्शन होता है। यह मूर्ति मृग-शृङ्गके समान है, किंतु अष्टबन्धोंसे वह आच्छादित है। इस आत्मतत्त्व-लिङ्गका नाम महाबलेश्वर है।

कहा जाता है कि पातालमें तपस्या करते हुए रुद्र भगवान् गोरूपधारिणी पृथिवीके कर्णरन्ध्रसे यहाँ प्रकट हुए। इसीसे इस क्षेत्रका नाम गोकर्ण पड़ा।

अयोध्या-घटनापर पुरीके वरिष्ठ शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवजी तीर्थके विचार

गोवर्धनपीठ-पुरीके वरिष्ठ शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवजी तीर्थने दिनाङ्क १५ दिसम्बरको वाराणसीमें केन्द्रीय कृषि-राज्यमन्त्रीकी उपस्थितिमें अयोध्याकी घटनाओंपर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि 'अयोध्यामें ६ दिसम्बरको जो विवादित ढाँचा गिराया गया है, उसके मलबेमें मिले अवशेष—चाँदीके सिंहासन, अष्टधातुकी मूर्तियाँ, घंटा, घड़ियाल आदिसे स्पष्ट है कि वह मस्जिद कदापि नहीं, मन्दिर था। पूरे विवादित ढाँचेमें मस्जिदके कोई चिह्न मौजूद नहीं थे, गोल तथा लंबे गुंबद मन्दिरोंमें भी होते हैं। वैसे भी सुन्नी मुसलमानोंकी मस्जिदोंमें मीनार होती है और वुजू करनेके लिये कुआँ (पानीका साधन) होता है। लेकिन वहाँ ऐसा कुछ भी नहीं था। चार सौ वर्षोंमें इसमें कोई नमाज नहीं पढ़ी गयी। इस विवादित ढाँचेको मस्जिद कहना कतई उचित नहीं।' शंकराचार्यजीने ऐसे प्रचारोंका सरकारी स्तरसे खण्डन करनेकी माँग की और कहा कि 'वास्तवमें हिन्दुओंने ६ दिसम्बरको अयोध्यामें अपने ही मन्दिरका ढाँचा ढाया है, अतः किसीको कतई गिला-शिकवा नहीं होना चाहिये। सरकारद्वारा विवादित स्थलपर दुबारा मस्जिदका निर्माण करानेकी घोषणा किये जानेकी कड़ी आलोचना करते हुए शंकराचार्यजीने कहा कि जब मस्जिद थी ही नहीं तो उसके पुनर्निर्माणका प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है?'

विवादित ढाँचा तोड़े जानेके बाद देशभरमें फैली हिंसापर गम्भीर चिन्ता प्रकट करते हुए शंकराचार्यजीने कहा कि 'हिंसा जिधरसे भी हो रही हो, उसे तुरंत बंद किया जाना चाहिये। हिन्दूधर्ममें दातौन तोड़ना, पत्ता तोड़ना और चींटी तककी हत्याको पाप माना जाता है। अतः द्वेष, घृणा और क्रोधकी अग्निमें जलते हुए देशको बचानेके लिये जनता-जनार्दनको अयोध्याकी घटनाओंके वास्तविक तथ्योंसे अवगत कराना चाहिये, जिससे लोग भ्रमित न हों और हिंसा-जैसे दोषोंसे विरत रहें।'

शंकराचार्यजीने भावुक होते हुए कहा कि 'इतिहास साक्षी है कि आजतक हिन्दुओंके द्वारा कोई मस्जिद तोड़कर मन्दिर नहीं बनाया गया। मेरे लिये हिन्दू-मुसलमान समान हैं। आज भी मैं आपसे यह कहता हूँ कि यदि कोई प्रामाणिक मस्जिद तोड़ी जायगी तो मैं उसका खुला विरोध करूँगा और भिक्षाटन करके भी उसके निर्माण करानेका प्रयत्न करूँगा। कारण, हिन्दू-धर्ममें कभी भी किसी भी धर्मके उपासना-स्थलको क्षति पहुँचानेकी अनुमति नहीं है। इसके साथ मैं यह भी चाहूँगा कि अबतक जितने मन्दिर तोड़कर मस्जिदें बनायी गयी हैं, मुसलमान भाई भाईचारेके नाते उन सबको हिन्दुओंको लौटा दें, जिससे वे हिन्दुओंका हृदय जीत सकेंगे।'

शंकराचार्यजीने सरकारसे भी अनुरोध किया कि वह अयोध्या-घटनाके कारण साधु-संतोंको प्रताड़ित करनेका प्रयत्न न करे। इसके लिये धर्माचार्य कहींसे भी दोषी नहीं। उन्होंने कहा कि 'अयोध्याकी घटनाके बाद विदेशोंमें प्रतिक्रिया-स्वरूप मन्दिर तोड़े जा रहे हैं और वहाँके हिन्दुओंको प्रताड़ित किया जा रहा है, भारत सरकारको चाहिये कि वह विदेशोंमें वहाँकी सरकारोंपर दबाव डालकर इसे रुकवाये।'

अन्तमें शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवजी तीर्थने देशवासियोंसे यह अपील की कि 'वे स्नेह, शान्ति और सद्भावका आश्रय ग्रहण करें और अपने कर्तव्यपालनमें तत्पर रहें तथा विवादित ढाँचा मस्जिद नहीं था, मन्दिर ही था—इसका अधिकाधिक प्रचार करें।'

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

'प्रभो ! आप ही मेरी आत्मा हैं, भगवती गिरिजा मेरी मति (बुद्धि) हैं। मेरे प्राण आपके सहचर हैं और यह शरीर आपका गृह—मन्दिर है। आपद्वारा प्रदत्त विषय और उनका उपभोग आपकी पूजा है। मेरी निद्रावस्था ही आपकी समाधि (ध्यान) है। मेरा पाद-संचरण (भ्रमण) ही आपकी परिक्रमा है। मेरे शब्द (वातचीत और लेखन) आपके स्तोत्र-पाठ (स्तुति-प्रार्थना) हैं। शम्भो ! मेरे द्वारा जो कुछ भी सम्पादित हो रहा है, वह सब आपकी ही आराधना है।'

भूतभावन भगवान् विश्वेश्वरकी असीम अनुकम्पासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'शिवोपासनाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है।

श्रुति कहती है—सृष्टिके पूर्व न सत् ही था न असत्, केवल शिव था।'न सन्नासच्छिव एव केवलः।' सृष्टिके आदिकालमें जब केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था, न दिन था न रात्रि थी, न सत् (कारण) था, न असत् (कार्य) था, केवल एक निर्विकार शिव ही विद्यमान थे। अतः जो वस्तु सृष्टिके पूर्व हो वही जगत्का कारण है, और जो जगत्का कारण है वही ब्रह्म है। अतः यह बात सिद्ध होती है कि ब्रह्महीका नाम शिव है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥
(श्वे॰ उप॰ ३।४)

जगत्की उत्पत्ति-स्थिति और लयके कारण, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे भी उत्कृष्ट इन्द्रादि देवताओंके भी देवता, जगत्के पति, हिरण्यगर्भ आदिके भी अधिपति, पर अक्षरसे भी पर, भुवनोंके परमेश्वर, भूतभावन भगवान् सदाशिव ही हैं, वे नित्य,अनादि और अजन्मा हैं, उनका आदि और अन्त न होनेसे वे अनन्त हैं। वे सभी पवित्रकारी पदार्थोंको भी पवित्र करनेवाले हैं, इसलिये भी वे समस्त कल्याण-मङ्गल, विशुद्ध ज्ञानपुञ्जोंके भी मूल कारण कहे गये है। इस प्रकार भगवान् शिव सर्वोपरि परात्पर तत्त्व हैं। अर्थात् जिससे परे और कुछ भी नहीं है—

'यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्।'

शिवका स्वरूप और उदात्त चरित्र—प्रायः वेदों और पुराणोंमें भगवान् सदाशिवके दिव्य एवं अनुग्रहपूर्ण अलौकिक रमणीय चरित्रोंका चित्रण हुआ है। भगवान् शंकरके चरित्र बड़े ही उदात्त एवं अनुकम्पापूर्ण हैं, वे ज्ञान-वैराग्य तथा साधुताके परम आदर्श हैं। चन्द्र-सूर्य उनके नेत्र हैं, स्वर्ग सिर है, आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं, उनके मुखसे ब्राह्मण और ब्रह्मा पैदा हुए, इन्द्र-विष्णु, क्षत्रिय जिनके हाथोंसे उत्पन्न हुए, जिनके ऊरुदेशसे वैश्य और पाँवोंसे शूद्र पैदा हुए, अनेक देव, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, राक्षस आदि जिनकी कृपासे अनन्त ऐश्वर्यके अधिपति हुए हैं, जो ज्ञान, तप, ऐश्वर्य, लीलादिसे जगत्के कल्याणमें रत हैं, जिनके समान न कोई दाता है, न तपस्वी है, न ज्ञानी है, न त्यागी है, न वक्ता है, न उपदेष्टा है, न ऐश्वर्यशाली है, जो सदा सब वस्तुओंसे परिपूर्ण हैं, जिनके आवास—कैलासका विशाल वर्णन करते-करते शेष-शारदा आदि भी थकित रह जाते हैं। श्रुतियोंमें महादेव, देव-देव, महेश्वर, महेशान, आशुतोष आदि अनेक नामोंसे पुकारे गये हैं, वही परात्पर हैं, परम कारण हैं, जो सर्वत्र अनुस्यूत हैं, जिनके भयसे सूर्य प्रतिदिन यथासमय उदित होता है और यथासमय अस्त। वायु अविरल बहता है। चन्द्र प्रतिपक्ष घटता-बढ़ता है, ऋतुएँ यथावसर आविर्भूत होती हैं।

स्कन्दपुराणके अनुसार यह प्रसिद्ध है कि एक बार भगवान् धर्मकी यह इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव भगवान् शंकरका वाहन बनूँ और तब दीर्घकालतक उन्होंने इसके लिये तपस्या की। अन्तमें भगवान्‌ने उनपर अनुग्रह किया। और उन्हें अपने वाहनके रूपमें स्वीकार किया तथा वे भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभके रूपमें उनके सदाके लिये वाहन बन गये—'वृषो हि भगवान् धर्मः।'

विविध नाम—भगवान् शिवके विविध नाम हैं, समुद्रमन्थनके समय वासुकि नागके मुखसे भयंकर विषकी ज्वालाएँ उठीं और समुद्रके जलमें मिश्रित होकर वे कालकूट विषके रूपमें प्रकट हो गयीं। वे ज्वालाएँ आकाशमें व्याप्त होने लगीं जिससे समस्त देवता, ऋषि, मुनि, चराचर जगत् जलने लगा। सभी देवगणों और ऋषि-मुनियोंको दुखी देखकर भगवान् विष्णुके अनुरोधपर उन्होंने तत्काल उस विषको अपनी योगशक्तिसे आकृष्ट कर कण्ठमें धारण कर लिया। इसीसे वे 'नीलकण्ठ' कहलाये। उसी समय समुद्रसे अमृतकिरणोंसे युक्त चन्द्रमा भी प्रकट हुए, जिन्हें देवताओंके अनुरोधपर भगवान् शंकरने उस उद्दीप्त गरलकी शान्तिके लिये अपने ललाटपर धारण कर लिया और 'चन्द्रशेखर', 'शशिशेखर' नाम पड़ गया। अपनी जटाओंमें गङ्गाको धारण करनेसे वे 'गङ्गाधर' कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके नाम और रूप अनन्त हैं।

शिवोपासना—शास्त्रोंमें सदाशिवकी उपासना भी निर्गुण-सगुण, लिङ्गविग्रह तथा प्रतिमाविग्रहमें परिकरसहित अनेक प्रकारसे निर्दिष्ट है। उनके अनेक रूपोंमें उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, हरिहर, मृत्युंजय, पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति, योगीश्वर तथा नटराज आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। भगवान् शिवके एक विशिष्ट रूप लिङ्ग-रूपमें भी जिसमें ज्योतिर्लिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग, नर्मदेश्वर, अन्य रत्नादि तथा धात्वादि-लिङ्ग एवं पार्थिवादि लिङ्ग हैं। इन सभी तथा अन्य रूपोंकी उपासना भक्तजन बड़ी श्रद्धाके साथ करते हैं।

भगवान् शिवकी एक विशेषता है कि वे सुर और असुर दोनोंके उपास्य हैं। देवताओंके उपास्य तो हैं ही, साथ ही उन्होंने अनेक असुरों—अन्धक, दुन्दुभि, महिष, त्रिपुर, रावण आदिको भी अतुल ऐश्वर्य प्रदान किया। इसके साथ ही ऐश्वर्य-मदसे दुराचारको प्राप्त अन्धकासुर, गजासुर, भस्मासुर, त्रिपुरासुर आदिका संहार कर उनका उद्धार भी कर दिया। कुबेर आदि लोकपालोंको आपकी ही कृपासे उत्तर दिशाका स्वामित्व, निधिपतित्व, यक्षोंका स्वामित्व, राजाधिराज तथा राजराजका महनीय पद प्राप्त हुआ। भगवान् शिवकी महिमा अनन्त है, वे सबके परम उपास्य देव हैं।

भगवान् शिवकी उपासनाके विभिन्न रूप वेदादि शास्त्रोंमें बताये गये हैं। सगुण-साकार-रूपमें इनके विग्रहोंकी अर्चा-पूजाके अतिरिक्त मूर्त तथा अमूर्त एवं लिङ्ग-विग्रहोंकी उपासनाका विशेष महत्त्व है।

मन्त्र-उपासनामें पञ्चाक्षरी 'नमः शिवाय' और महामृत्युंजय आदि मन्त्रोंके जपोंकी विशेष महिमा है। मृत्युंजय-मन्त्रके जप-अनुष्ठानसे सभी प्रकारके मृत्युभय दूर होकर दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है, साथ ही अमरत्वकी भी प्राप्ति होती है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, राष्ट्रभीति, महामारी-शान्ति, अन्य उपद्रवोंकी शान्ति तथा अभीष्ट-प्राप्तिके लिये रुद्राभिषेक आदि अनुष्ठान किये जाते हैं। शिवोपासनामें पार्थिवपूजाका भी विशेष महत्त्व है। इसके अतिरिक्त भगवान् शिवकी मानसपूजाका महत्त्व तो सर्वोपरि है ही।

प्रायः अधिकांश शिवोपासनामें रुद्राष्टाध्यायीका पाठ, शैवमन्त्रका जप, पञ्चोपचार या षोडशोपचार-पूजन और जलधारा या कभी-कभी विशेष कामनाओंकी पूर्तिके लिये इक्षुरस, पञ्चामृत एवं रत्नोदक आदिसे भी शिवाभिषेकका विधान है। महारुद्र, कोटिरुद्र तथा अतिरुद्रादि यज्ञ-यागादि भी विशेष अवसरोंपर सम्पन्न किये जाते हैं।

शिवोपासनामें जहाँ रत्नोंसे परिनिर्मित रत्नेश्वर आदि शिवलिङ्गोंकी पूजामें अपार समारोहके साथ विशाल वैभवका प्रयोग होता है, वहाँ सरलताकी दृष्टिसे केवल बिल्वपत्र, जल, अक्षत और मुखवाद्य (मुखसे बम-बमकी ध्वनि निकालना) से भी परिपूर्णता मानी जाती है और भगवान् शिवकी कृपा सहज उपलब्ध हो जाती है, इसीलिये वे आशुतोष, उदारशिरोमणि कहे जाते हैं।

भगवान् सदाशिवकी उपासना यदि निष्कामभावसे उनकी प्रसन्नताके लिये ही की जाय तो फिर प्राणीके उद्धारमें कोई संशय नहीं रहता। ये इतने दयालु, कृपालु और औढरदानी हैं कि दीन-हीन, शरणागत जीवोंके कल्याणके लिये इस मर्त्यलोकमें भी भगवान् शंकरने 'काशी'-जैसा मुक्तिक्षेत्र खोल रखा है, जहाँ केवल मृत्यु मात्रसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है—'मरणं मङ्गलं यत्र'—जहाँ मरना भी मङ्गलकारी है। संसारमें प्रायः मृत्युको अशुभ मानते हैं, परंतु काशीमें पशु-पक्षी, जीव-जन्तु कोई भी मृत्युको प्राप्त होते ही जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेका अधिकारी हो जाता है।

कितनी उदारता है! कितनी कृपा है! इन निरीह प्राणियोंपर आशुतोषकी।

इनकी महिमाका गान कौन कर सकता है, किसी मनुष्यकी ताकत नहीं जो भगवान् सदाशिवके गुणोंका वर्णन कर सके। परम तत्त्वज्ञ भीष्मपितामहसे नीति, धर्म और मोक्षके सूक्ष्म रहस्योंका विवेचन सुनते हुए महाराज युधिष्ठिरने जब शिवमहिमाके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो वृद्ध पितामहने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए[1] स्पष्ट शब्दोंमें कहा—साक्षात् विष्णुके अवतार भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त मनुष्यमें यह सामर्थ्य नहीं कि वह भगवान् सदाशिवकी महिमाका वर्णन कर सके[2]। भीष्मपितामहके प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने भी यही कहा—'हिरण्यगर्भ, इन्द्र और महर्षि आदि भी शिवतत्त्व जाननेमें असमर्थ हैं, मैं उनके कुछ गुणोंका ही व्याख्यान करता हूँ।'—ऐसी स्थितिमें हम-जैसे तुच्छ जीवोंके लिये तो भगवान् शिवकी महिमाका वर्णन करना एक अनधिकार चेष्टा ही कही जायगी, किंतु इसका समाधान श्रीपुष्पदन्ताचार्यने अपने सुप्रसिद्ध शिवमहिम्नःके आरम्भमें ही कर दिया है—

> महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
> स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
> अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
> ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥

'यदि आपकी महिमाको पूर्ण रूपसे बिना जाने स्तुति करना अनुचित हो, तो ब्रह्मादिकी वाणी रुक जायगी कोई भी स्तुति नहीं कर सकेगा। क्योंकि आपकी महिमाका अन्त कोई जान ही नहीं सकता। अनन्तका अन्त कैसे जाना जाय? तब, अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार जो जितना समझ पाया है, उतना कह देनेका अधिकार दूषित नहीं ठहराया जाय तो मुझ-जैसा तुच्छ जीव भी स्तुतिके लिये कमर क्यों न कसे? कुछ तो हम भी जानते ही हैं, जितना जानते हैं उतना क्यों न कहें?' आकाश अनन्त है। सृष्टिमें कोई भी पक्षी ऐसा नहीं जो आकाशका अन्त पा ले, किंतु इसके लिये वे उड़ना नहीं छोड़ते, प्रत्युत जिसके पक्षोंमें जितनी शक्ति है, उतनी उड़ान वह आकाशमें भरता है। हंस अपनी शक्तिके अनुसार उड़ता है और कौआ अपनी शक्तिके अनुसार। यदि वे नहीं उड़ें तो उनका पक्षी-जीवन ही निरर्थक हो जाय! इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अनन्त शिव-तत्त्वको जितना समझ सके, उतना समझना, जितना समझा है उसके मननके लिये परस्पर कहना और सुनना, मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सबका आवश्यक कर्तव्य है। इस कर्तव्य-निर्वाहकी दृष्टिसे यह अङ्क पाठकोंकी सेवामें समर्पित है।

आजसे लगभग ५८ वर्ष पूर्व सन् १९३४ में 'कल्याण'-के विशेषाङ्कके रूपमें 'शिवाङ्क' का प्रकाशन हुआ था। उन दिनों 'कल्याण'की ग्राहक-संख्या सीमित होनेके कारण थोड़े लोग इससे लाभान्वित हो सके, अतः बहुत दिनोंसे अनेक प्रेमी पाठको एवं ग्राहक-अनुग्राहकोंका शिव-उपासनासे सम्बन्धित विशेषाङ्क प्रकाशित करनेका अत्यधिक आग्रह चलता रहा। भूतभावन भगवान् विश्वेश्वरकी प्रेरणासे मनमें यह विचार आया कि शिव-साधनाके परम उपासक संत-महात्मा और गम्भीर विद्वान् जो उन दिनों उपलब्ध थे, वे आज नहीं रहे और जो आज उपलब्ध हैं, कदाचित् आगेके दिनोंमें उनका भी अभाव हो जाय, अतः यह निर्णय लिया गया कि तात्त्विक विवेचनोंसे युक्त यथासम्भव शिवोपासनाकी समस्त विधाओंपर प्रकाश डालनेवाला शिवसम्बन्धी समग्र सामग्रियोंका एक संकलन 'कल्याण'-विशेषाङ्कके रूपमें लोककल्याणार्थ यथाशीघ्र प्रकाशित किया जाय। फलस्वरूप सर्वन्तर्यामी प्रभुके अनुग्रहसे इस वर्ष भगवान् साम्बसदाशिवके स्तवन-अर्चनके रूपमें 'शिवोपासनाङ्क' जनता-जनार्दनकी सेवामें प्रस्तुत है।

इस अङ्कमें भगवान् शिवसे सम्बन्धित तात्त्विक निबन्धोंके साथ शास्त्रोंमें वर्णित शिवके विविध स्वरूप, शिव-उपासनाकी मुख्य विधाएँ, पञ्चमूर्ति, अष्टमूर्ति, दक्षिणामूर्ति, पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र, ज्योतिर्लिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग, पार्थिव आदि लिङ्ग, नर्मदेश्वर, उमामहेश्वर, अर्धनारीश्वर, हरिहर, मृत्युंजय, नटराज आदि विभिन्न स्वरूपोंका विवेचन, भारतीय संस्कृतिके आधार प्राचीन आर्षग्रन्थोंमें वर्णित शिवोपासनाका दिग्दर्शन, शिवसाधनाकी पद्धति, साथ ही भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अवस्थित प्रमुख शिवमन्दिर तथा शैव तीर्थोंका परिचय और विवरण देनेका प्रयास किया गया है। सदाशिवके उपासक,

---

१-अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः। यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते॥ (महा०, अनु० १४।३)

२-को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः। गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः॥ (महा०, अनु० १४।७)

सिद्ध, साधक, संत और भक्तोंकी गाथाओं, शिवसे सम्बन्धित पौराणिक कथाओंका यथासाध्य संकलन इस विशेषाङ्कमें प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गयी है।

'शिवोपासनाङ्क'के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, उसे हम कभी नहीं भूल सकते। हमें यह आशा नहीं थी कि वर्तमान समयमें शिवोपासनासे सम्बन्धित उच्चकोटिके लेख सुलभ हो सकेंगे, किंतु भगवत्कृपासे इतने लेख और इतनी सामग्रियाँ प्राप्त हो गयीं कि उन सबको एक अङ्कमें समायोजित करना सम्भव नहीं था। फिर भी विषयकी सर्वाङ्गीणतापर ध्यान रखते हुए अधिकतम सामग्रियोंका संयोजन करनेका नम्र प्रयत्न अवश्य किया गया। भगवान् सदाशिवके विशिष्ट उपासक, संत और विद्वान् जो आज हमारे बीच नहीं हैं, उन महानुभावोंमेंसे कतिपयके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख भी पूर्वप्रकाशित 'शिवाङ्क'-से संगृहीत कर लिये गये हैं, जिससे हमारे पाठकोंको उन विशिष्ट संत-महात्माओंके विचारों और अनुभवोंका भी लाभ प्राप्त हो सके।

शिवोपासनाकी अधिकतम सामग्री समायोजित करनेकी दृष्टिसे हम यह चाहते थे कि इस वर्ष 'विशेषाङ्क'के पृष्ठ तथा चित्रोंकी संख्या बढ़ायी जाय, किंतु कुछ कारणोंसे यह सम्भव नहीं हो सका। हमारे कुछ पाठक महानुभावोंकी शिकायत है कि विशेषाङ्कके साथ अधिक 'परिशिष्टाङ्क' देनेसे साधारण अङ्कोंकी सामग्री कम हो जाती है। इसलिये इस वर्ष विषय और सामग्रीकी अधिकता होते हुए भी केवल दूसरे मासका एक अङ्क 'परिशिष्टाङ्क'के रूपमें 'विशेषाङ्क'के साथ दिया जा रहा है। भगवान् सदाशिवकी कृपासे 'विशेषाङ्क'में यथासाध्य शिवोपासनासे सम्बन्धित सम्पूर्ण सभी विषयोंके समायोजन करनेका प्रयास किया गया।

अब हम सर्वप्रथम 'गीताप्रेस' एवं 'कल्याण'के संस्थापक एवं प्रवर्तक परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा 'कल्याण'को अपनी गौरवमयी परम्परामें विकसित और प्रतिष्ठापित करनेवाले आदि सम्पादक नित्यलीलालीन परम पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तथा उनके समकालीन विद्वान् लेखकों (जो आज हमारे बीच नहीं हैं) के पाद-पद्मोंपर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। जिनकी शक्तिसे समन्वित होकर ही आज हम 'शिवोपासना'-जैसे महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्कको आप सब महानुभावोंके समक्ष प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो सके।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्माननीय पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-भक्तिसहित प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषाङ्ककी पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। सद्विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही मुख्य निमित्त भी हैं, क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण, उच्च विचार-पूर्ण लेखोंसे 'कल्याण'को सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी साथी-सहयोगियोंको प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य अबतक सम्पन्न हो सका है। हम अपनी त्रुटियों तथा व्यवहारदोषके लिये इन सबसे क्षमाप्रार्थी हैं।

'शिवोपासना'के सम्पादनमें जिन शिव-उपासकों, भक्तों, संतों और विद्वान् लेखकोंसे हमें सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। अपने सम्पादकीय विभागके वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा तथा कुछ अन्य सहयोगियोंके अथक परिश्रमसे ही यह विशेषाङ्क इस रूपमें प्रस्तुत हो सका है। इसके सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, चित्र-निर्माण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उनको धन्यवाद देकर उनके महत्त्वको हम घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार शिवोपासनाके सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत आशुतोष भगवान् सदाशिवके चिन्तन, मनन एवं स्मरणका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात थी। हमें आशा है, इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी इस पवित्र संयोगका लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल, अकारण-करुणावरुणालय श्रीचरणोंमें यह निवेदन करते हैं—'हाथ, पैर, कान, आँख आदि शारीरिक अवयवोंसे, रूपसे भी विहित या अविहित कुछ भी कोई गया हो, तो हे करुणाके सागर प्रभो! उन स क्षमा कर देवें। महादेव सदाशिव!

करचरणकृतं वाक्कायजं
श्रवणनयनजं वा
विहितमविहितं वा

गीताप्रेस, गोरखपुरका सम्पूर्ण सूचीपत्र

[पुस्तकें मँगानेसे पूर्व निम्नलिखितको कृपया ध्यानपूर्वक अवश्य पढ़ें]

(१) पुस्तकोंके आर्डरमें पूरा पता, डाकघर, जिला, पिनकोड आदि देवनागरी या अँग्रेजीमें सुस्पष्ट लिखें। पुस्तकें यदि रेलसे मँगवानी हो तो निकटतम रेलवे-स्टेशनका नाम अवश्य लिखना चाहिये। गीता, रामायण आदि पुस्तकोंके नाम तथा दामका स्पष्ट उल्लेख, उनके विभिन्न आकार-प्रकार सहित किया जाना चाहिये।

(२) १००० रुपये मूल्यकी पुस्तकें एक साथ मँगानेपर निर्धारित डिस्काउण्ट (३०% अथवा १५%) तथा रेलभाड़ा, पैकिंग खर्च बाद दिया जाता है; कम-से-कम ५००.०० रुपये मूल्यकी पुस्तकोंपर ही डिस्काउण्टकी सुविधा है। अन्य खर्चे (पैकिंग, रेलभाड़ा आदि) देय होंगे।

(३) सूचीमें पुस्तकोंके मूल्यके सामने वर्तमानमें लगनेवाला साधारण डाक-खर्च ही अङ्कित है। पुस्तकोंको रजिस्टर्ड/वी॰पी॰पी॰ से ही मँगाना उचित है, जिससे वे सुरक्षित मिल सकें। वर्तमानमें रजिस्ट्री-खर्च ६.०० प्रति पैकेट (५ किलो वजनतक) की दरसे लगता है। **साधारण डाकसे मँगानेपर उसके पहुँचनेकी जिम्मेदारी स्वयं मँगानेवालोंकी होगी।**

(४) डाकसे भेजी जानेवाली पुस्तकोंपर लगभग ५% (कम-से-कम पचास पैसे) पैकिंग-खर्च लगता है। भेजा हुआ माल वापस लेनेका नियम नहीं है।

(५) 'कल्याण' मासिक या उसके विशेषाङ्कके साथ पुस्तकें नहीं भेजी जा सकतीं। अतएव पुस्तकोंके लिये **गीताप्रेस पुस्तक-विक्रय-विभागके** पतेपर एवं 'कल्याण'के लिये **'कल्याण'-कार्यालय, पो॰ गीताप्रेसके** पतेपर अलग-अलग आर्डर भेजना चाहिये। सम्बन्धित राशि भी अलग-अलग भेजना ही उचित है।

(६) आजकल डाकखर्च बहुत अधिक लगता है। अतः पुस्तकोंका आर्डर देनेके पहले स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे सम्पर्क करें। इसमें समय तथा धनकी बचत हो सकती है। गीताप्रेसकी निजी दुकानोंके पते सुविधार्थ परिशिष्टाङ्क-संख्या—२ के आवरण-पृष्ठ ४ पर दिये हुये हैं।

(७) विदेशोंमें निर्यातके मूल्य तथा नियमादिकी जानकारीके लिये अलग सूचीपत्र उपलब्ध है, उसे मँगाना चाहिये।

विशेष—जो पुस्तकें इस समय तैयार नहीं है, उनके मूल्य एवं डाकखर्च सूचीपत्रमें अङ्कित नहीं है, अतएव उन्हें कृपया बादमें मँगायें। पुस्तकोंके मूल्य, डाक-खर्च आदिमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित राशि देय होगी।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर पिन-२७३००५**
फोन नं ३३३०३०, ३३४७२१, ३३६९९७

पुस्तक-सूची—

१५% छूटवाली पुस्तकें (नियम सं॰ २)

	मूल्य रु॰ पै॰	साधारण डाकखर्च
श्रीमद्भ॰ तत्त्वविवेचनी—टीकाकार—(श्रीजयदयालजी गोयन्दका) गीता-विषयक २५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें विवेचनात्मक ढंगकी हिंदी-टीका),		
चित्र १९, बृहदाकार ...	६०.००	२०.००
राजसंस्करण ...	३०.००	९.५०
सामान्य संस्करण ..	२०.००	९.००
गुटका (बाईबिल पेपरपर) ...	१५.००	३.००
श्रीमद्भ॰ साधकसंजीवनी टीका, बृहदाकार—(स्वामी श्रीरामसुखदासजी), सचित्र, पृष्ठ ११८६, सजिल्द	८०.००	२१.५०
श्रीमद्भ॰ साधकसंजीवनी टीका—(स्वामी श्रीरामसुखदासजी), सचित्र, पृष्ठ ११७२ सजिल्द	५०.००	११.५०
,, (साधारण) ..	३५.००	११.००
श्रीमद्भ॰ साधकसंजीवनी (स्वामी श्रीरामसुखदासजी) मराठी अनुवाद—पृष्ठ १०२४ ...	६०.००	१०.००
गीता-दर्पण—(स्वामी श्रीरामसुखदासजी), सचित्र, पृष्ठ ३८६, सजिल्द ...	२५.००	६.५०
,, पॉकेटसाइज पृष्ठ ६६० ...		
,, (मराठी अनुवाद)—पृष्ठ ३७२	२०.००	४.५०
गीताशांकरभाष्य— ...	२५.००	५.५०
गीता-चिन्तन—(लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार,) सचित्र, पृष्ठ ६६८, सजिल्द ...	१५.००	३.००
श्रीमद्भ॰ पदच्छेद गुजराती—भाषाटीका सहित, सचित्र, पृष्ठ ५६०, सजिल्द ...	११.००	३.००
श्रीमद्भ॰ बंगला भाषामें—मूल, पदच्छेद, अन्वय साधारण भाषाटीका टिप्पणी-प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' निबंध सहित सचित्र, पृष्ठ ५३८, सजिल्द	१०.००	

	मूल्य रु॰ पै॰	साधारण डाकखर्च
प्रश्नोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, ...		
तैत्तिरीयोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २५२ ...		
ऐतरेयोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र,		
श्वेताश्वतरोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ३२० ..	६.००	१.५०
अध्यात्मरामायण—सटीक, सचित्र, पृष्ठ ४००, सजिल्द		
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सम्पूर्ण—		
सटीक, सजिल्द प्रथम खण्ड ...	४५.००	८.००
,, ,, द्वितीय खण्ड ...	४५.००	८.००
,, ,, (केवल भाषा) .	५५.००	१०.००
श्रीमद्वाल्मी॰ सुन्दरकाण्डम्—मूलमात्रम्, गुटका ...		
श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, बृहदाकार, भाषाटीकासहित, सचित्र, पृष्ठ ९८४, सजिल्द .	१००.०	१८.५०
श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार, मोटा टाइप, सजिल्द सुन्दर आकर्षक आवरण, राजसंस्करण ...	१३०.०	१८.५०
श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, भाषाटीकासहित, सचित्र, पृष्ठ १०४८, सजिल्द ...	६०.००	९.५०
श्रीरामचरितमानस—सटीक, मझला साइज, पृष्ठ ९३४,	२५.००	५.००
श्रीरामचरितमानस—बड़े अक्षरोंमें, केवल मूल पाठ, सचित्र, पृष्ठ ५५४, सजिल्द ...	३०.००	५.५०
श्रीरामचरितमानस—मूल, मझला साइज, सचित्र	१६.००	३.५०
श्रीरामचरितमानस—मूल, गुटका, सचित्र, पृष्ठ ६७२	१०.००	२.००
मानस-पीयूष (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक)		
सात भागोंमें—सम्पूर्णका मूल्य रु॰ ४६०.००		
,, बालकाण्ड खण्ड १ पृष्ठ ७१२ ..	५५.००	१०.००
,, ,, खण्ड २ पृष्ठ ८३२ ..	६५.००	११.००
,, ,, खण्ड ३ पृष्ठ ९१६ ..	७०.००	११.००
,, अयोध्याकाण्ड, खण्ड ४ पृष्ठ ११३२ .	८५.००	१४.००
,, अरण्य॰ किष्कि॰ खण्ड ५ पृष्ठ ६४४ ..	५०.००	१०.००
,, सुन्दर तथा लंकाकाण्ड खण्ड ६ पृष्ठ १०४८	७५.००	१२.००
,, उत्तरकाण्ड, खण्ड ७ पृष्ठ ७८४ ..	६०.००	११.००
श्रीरामचरितमानस-बालकाण्ड—सटीक, पृष्ठ २९४	१०.००	१.५०
श्रीरामचरितमानस-अयोध्याकाण्ड—सटीक,	८.००	१.००
श्रीरामचरितमानस-अरण्यकाण्ड—सटीक,	१.५०	०.५०
श्रीरामचरितमानस-किष्किन्धाकाण्ड—सटीक,	१.५०	०.५०
सुन्दरकाण्ड—सटीक ...	२.२५	१.००
,, सुन्दरकाण्ड, मूल—गुटका	१.२५	०.५०
सुन्दरकाण्ड, मूल—मोटा टाइप, लाल रंगमें ...	२.००	१.००
श्रीरामचरितमानस-लंकाकाण्ड—सटीक, पृष्ठ १३२	३.५०	१.००
श्रीरामचरितमानस-उत्तरकाण्ड—सटीक, पृष्ठ १४०	४.५०	१.००
मानस-रहस्य—सचित्र, पृष्ठ ५१२ ...	८.००	२.००
मानस-शंका-समाधान—पृष्ठ १६८ ...	६.००	१.००
विनय-पत्रिका—सरल हिंदी-भावार्थसहित, सचित्र		

	मूल्य रु॰ पै॰	साधारण डाकखर्च
(अनुवादक-श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार), पृष्ठ ४९०,	१३.००	२.००
गीतावली—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ ४४४ ...	१२.००	२.००
दोहावली—सानुवाद, (अनुवादक-श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार), पृष्ठ १९२ ...	५.००	१.००
कवितावली—गोस्वामी श्रीतुलसीदासकृत, सटीक, पृष्ठ २२४ ...	६.५०	१.००
रामाज्ञा-प्रश्न—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ १०४	२.००	१.००
श्रीकृष्ण-गीतावली—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ ८४	१.५०	०.५०
जानकी-मङ्गल—पृष्ठ ५२ ...	२.००	०.५०
हनुमानबाहुक—पृष्ठ ४० ...	१.५०	०.५०
पार्वती-मङ्गल—पृष्ठ ३२ ...	१.५०	०.५०
वैराग्य-संदीपनी—पृष्ठ १६ ...	०.५०	०.५०
बरवैरामायण—पृष्ठ १६ ...	०.५०	०.५०
लघुसिद्धान्तकौमुदी—पृष्ठ ३६० ..	८.००	१.५०
श्रीदुर्गासप्तशती—मूल, मोटा टाइप, आड़ी खुलनेवाली, पाठविधि तथा अनेक उपयोगी स्तोत्र, पृष्ठ २६४	८.००	१.५०
श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, पाठविधि तथा अनेक उपयोगी स्तोत्र, सचित्र, पृष्ठ २४० ..	७.५०	७.५०
अमृतके घूँट—(डॉ॰ रामचरण महेन्द्र), पृष्ठ २८४ ..		
आनन्दमय जीवन—(डॉ॰ रामचरण महेन्द्र), पृष्ठ २१६		
एकनाथ-चरित्र—पृष्ठ २४० ...	४.००	१.५०
एक लोटा पानी—पृष्ठ १७६ ...	५.००	१.००
श्रीश्रीचैतन्यचरितावली सम्पूर्ण, पाँच खण्डोंमें		
,, खण्ड १, पृष्ठ २८८	४.००	७.५०
,, खण्ड २, पृष्ठ ३६८	६.००	७.५०
,, खण्ड ३, पृष्ठ ३८४	६.००	७.५०
,, खण्ड ४ पृष्ठ २२४ ...		
,, खण्ड ५ पृष्ठ २८० ...		
एक महात्माका प्रसाद—पृष्ठ २९६ ...		
तत्त्वविचार—पृष्ठ २०८ ...		
सुखीजीवन—पृष्ठ २०८ ...	३.५०	१.००
स्वर्णपथ—पृष्ठ २०० ...	६.५०	१.००
विवेक-चूडामणि—सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ १८४ ...	३.००	१.००
सती-द्रौपदी—पृष्ठ १६० ...	३.००	१.००
पातञ्जलयोगदर्शन—हिंदी व्याख्यासहित, पृष्ठ १८४		
विदुरनीति—(सानुवाद) पृष्ठ १६८ ...	५.००	१.००
उपयोगी कहानियाँ—३५ बालकोपयोगी कहानियाँ, पृष्ठ १०० ...	४.००	१.००
श्रीभीष्मपितामह—पृष्ठ १६० ...	४.५०	१.००
नित्यकर्मप्रयोग—पृष्ठ १३६ ...		
श्रीकृष्णलीला भजनावली—पृष्ठ ९५ ...	४.५०	१.००
श्रीरामलीला भजनावली—पृष्ठ ८० ...	४.००	१.००
चेतावनी पद संग्रह—(भाग १) पृष्ठ ८८ ...	४.५०	१.००
,, (भाग २) पृष्ठ ७८ ...	४.००	१.००

	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
श्रीमद्भ० मूल, पदच्छेद, मराठी—सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ ५७४, सजिल्द ...	१५.००	३.५०
श्रीमद्भ० मराठी—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें, पृष्ठ ५२७ ...	१५.००	३.००
श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं 'त्यागसे भगवत-प्राप्ति' लेख-सहित, सजिल्द, पृष्ठ ४२०, सचित्र .	१०.००	३.००
श्रीमद्भगवद्गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सटीक, मोटे अक्षरोंमें लाहौरी ढंगकी, सचित्र, पृष्ठ ४२४	१०.००	२.५०
श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप, पृष्ठ ३२०, अजिल्द ..	७.५०	१.५०
श्रीमद्भगवद्गीता—केवल भाषा, सचित्र ..	४.००	१.००
श्रीमद्भगवद्गीता—साधारण भाषाटीका, पाकेट साइज, सचित्र, पृष्ठ ३२४ ...	२.५०	१.००
श्रीपञ्चरत्नगीता—सचित्र, (श्रीमद्भगवद्गीता, विष्णु-सहस्रनाम, श्रीभीष्मस्तवराज, श्रीअनुस्मृति, श्रीगजेन्द्र-मोक्षके मूल-पाठ) पृष्ठ २०० ...	८.००	२.००
श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटे अक्षरवाली	५.००	१.५०
श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, पृष्ठ १२८ सचित्र ...	१.००	०.५०
गीता साबीजी—मूल, पृष्ठ २५४ ...	१.००	०.५०
श्रीशुकसुधासागर—आकार बहुत बड़ा, टाइप बहुत बड़े, पृष्ठ १३६१, सचित्र, सजिल्द ...	१३५.००	२५.००
श्रीमद्भागवत-महापुराण, दो खण्डोंमें—		
प्रथम खण्ड—पृष्ठ १०१६, सटीक, सचित्र, सजिल्द	६०.००	९.५०
द्वितीय खण्ड—पृष्ठ १०१६ " " ...	६०.००	९.००
श्रीभागवत-सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, पृष्ठ १०१६, सचित्र, सजिल्द ...	५५.००	८.५०
श्रीमद्भागवत-महापुराण—मूल, मोटा टाइप	४०.००	६.००
श्रीप्रेमसुधासागर—श्रीमद्भागवत, केवल दशम स्कन्धका भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द ...	२०.००	३.५०
भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द ...	५.००	२.००
महाभारत, सम्पूर्ण हिंदी-टीका—		
प्रथम खण्ड—आदि और सभापर्व, पृष्ठ ९५८, सचित्र		
द्वितीय खण्ड—वन और विराटपर्व, सचित्र पृष्ठ-संख्या ११९० ...		
तृतीय खण्ड—उद्योग और भीष्मपर्व, सचित्र, पृष्ठ-संख्या १०७६ ...	६५.००	१०.००
चतुर्थ खण्ड—द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व, पृष्ठ-संख्या १३४६ ...	७०.००	१२.००
पञ्चम खण्ड—शान्तिपर्व, पृष्ठ-संख्या १०१८	६०.००	१६.००
महाभारत षष्ठ खण्ड—अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक मौसल महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहण-पर्व, पृष्ठ-संख्या १११७ ..	६५.००	११.००
,, **खिल भाग हरिवंश**—(श्रीहरिवंशपुराण) हिन्दी-टीकासहित, पृष्ठ ११५७, सचित्र, सजिल्द	७०.००	१०.५०
संक्षिप्त महाभारत (दो खण्डोंमें)—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द .	९०.००	१६.००
भक्त-चरिताङ्क—सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ ८२४ .	६०.००	८.००
शक्ति-अङ्क—सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ ७१६ ..	५०.००	८.००
श्रीहनुमान्-अङ्क—सचित्र, सजिल्द पृष्ठ ५२० ..	४०.००	६.००
नारी-अङ्क—सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ ८१८ ..	५०.००	८.००
संक्षिप्त पद्मपुराण—पृष्ठ ९०४, सचित्र, सजिल्द ...	४५.००	८.००
संक्षिप्त शिवपुराण—पृष्ठ ६४०, सजिल्द ..	४०.००	६.००
संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत—हिन्दी भाषामात्र, सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ ६७२ ...	४५.००	६.५०
पातञ्जलयोगप्रदीप—(ग्रन्थकार—श्रीस्वामी ओमानन्द तीर्थ) पृष्ठ ६६२, सजिल्द .	४५.००	६.५०
श्रीविष्णुपुराण—सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ ६२४, सजिल्द,		
श्रीराधामाधवचिन्तन—(ग्रन्थकार—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)		
पद-रत्नाकर—पृष्ठ ९७६ ...	३५.००	७.००
श्रीतुकाराम-चरित—जीवनी और उपदेश, पृष्ठ ६०८ .		
स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद, सचित्र पृष्ठ ३१६ ...	९.००	२.००
भागवतरत्न प्रह्लाद—पृष्ठ २९२	७.५०	१.५०
भजन-संग्रह (पाँचों भाग एक साथ)—पृष्ठ ४३२		
महकते जीवनलफूल—(सुखी जीवनयापनकी विद्या)		
मानव-जीवनका लक्ष्य— ..		
मानसिक दक्षता—(श्रीगजेन्द्रबिहारीलाल) पृष्ठ ३३६		
अमृत-कण—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) पृष्ठ ४४८		
जीवनमें नया प्रकाश—डॉ० श्रीरामचरण महेन्द्र) .		
आशाकी नयी किरणें—डॉ० श्रीरामचरण महेन्द्र)		
सूरविनय-पत्रिका— ..		
श्रीकृष्णबालमाधुरी— ...	६.००	१.५०
पद-पद्माकर— पृष्ठ २३६ ...		
प्रेमयोग—(श्रीवियोगी हरिजी), पृष्ठ ३८४ .	४.००	१.५०
वेदान्त-दर्शन—हिंदी व्याख्यासहित पृष्ठ ६१६, सचित्र,	१३.००	२.५०
ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय, हिंदी व्याख्या सहित,		
ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्यसहित	१.००	०.५०
केनोपनिषद्— पृष्ठ २१० ..		
माण्डूक्योपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र ..		
मुण्डकोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र,		

		मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
गीताभवन-दोहा-संग्रह—पृष्ठ ४८	...	१.००	०.५०
विष्णुसहस्रनाम—सटीक, पृष्ठ ८८	...		
रामस्तवराज और रामरक्षास्तोत्र	...		
सीतारामभजन—पृष्ठ ६४	...	०.७५	०.५०
रामायण-मध्यमा-परीक्षा-पाठ्यपुस्तक—पृष्ठ ३२		०.७५	०.५०
सन्ध्योपासनविधि—मंत्रानुवादसहित	..	१.२५	०.५०
आदित्य-हृदय-स्तोत्रम्—पृष्ठ २८	..	०.७५	०.५०
हिंदी बाल-पोथी—(भाग १)—शिशुपाठ, अक्षर १०×७।।, पृष्ठ ४०	.	१.२५	०.५०
हिंदी बाल-पोथी—(भाग २)—शिशुपाठ, अक्षर १०×७।।, पृष्ठ ३२	..	२.५०	१.००
बालकोंकी बोलचाल—पृष्ठ ४८	.	१.००	०.५०
बालकके गुण—पृष्ठ ४८	.		
आओ बच्चो तुम्हें बतायें—	...	२.००	०.५०
बालककी दिनचर्या—पृष्ठ ४०		२.००	०.५०
बालकोंको सीख—पृष्ठ ४०	...	२.००	०.५०
बालकके आचरण—पृष्ठ ४०	...	२.००	०.५०
बाल-अमृत-वचन—पृष्ठ ३२	...	१.००	०.५०
तर्पण एवं बलिवैश्वदेवविधि—मंत्रानुवादसहित, पृष्ठ ३२	...	०.५०	०.५०
हरेरामभजन दो माला—	...		
,, (गुटका)	...	०.६०	०.५०
,, १४ माला—	...		
मूलरामायण—पृष्ठ २४	...		
श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र—	...		
गजेन्द्रमोक्ष—पदच्छेद, अन्वय और भावार्थसहित		०.५०	०.५०
विष्णुसहस्रनाम, मूल—पृष्ठ ४८	...		
हनुमानचालीसा—पृष्ठ ३२	...	०.७५	०.५०
शिवचालीसा—पृष्ठ २४	...	०.७५	०.५०
नारायणकवच (सानुवाद)—पृष्ठ १६	...	०.७५	०.५०
अमोघशिवकवच (सानुवाद)—पृष्ठ १६	...	१.००	०.५०
रामरक्षास्तोत्रम्—पृष्ठ १६	...	०.७५	०.५०
श्रीरामगीता—	...		
दोहावलीके चालीस दोहे—पृष्ठ १२	..	०.२५	०.५०
बलिवैश्वदेव-विधि—	...	०.१०	०.५०
सीतायाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र—	...		
साधक-दैनन्दिनी—पृष्ठ ५६	...	१.५०	०.५०
गजलगीता—	...		

३० प्रतिशत छूटवाली पुस्तकें (नियम सं० २)

गीताप्रेस-चित्रकथा धारावाहिक—

		मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
'कन्हैया'—पृष्ठ ३२	...	५.००	१.५०
'गोपाल'— ,, ३२	...	५.००	१.५०
'मोहन'— ,, ३२	...	५.००	१.५०
'श्रीकृष्ण'— ,, ३२	...	५.००	१.५०

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी पुस्तकें

		मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
महत्त्वपूर्ण शिक्षा—पृष्ठ ४७२	...	६.००	२.००
परम साधन—(भाग १) पृष्ठ १९२	...	३.५०	१.५०
,, (भाग २)	...		
आत्मोद्धारके साधन—पृष्ठ ४६४, सचित्र	...	३.५०	२.००
मनुष्यका परमकर्तव्य—भाग-१ पृष्ठ १९२	...	४.००	१.५०
मनुष्यका परमकर्तव्य—भाग-२ पृष्ठ १९२	...	४.००	१.५०
कल्याणप्राप्तिके उपाय—पृष्ठ २७२	...	५.००	१.५०
शीघ्र कल्याणके सोपान—पृष्ठ २२०	...	४.००	१.५०
ईश्वर और संसार—पृष्ठ २५२	...		
अमूल्य वचन—(खण्ड १) पृष्ठ २२४	...	४.००	१.५०
भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा—पृष्ठ २२४	...	४.००	१.५०
धर्मसे लाभ और अधर्मसे हानि—पृष्ठ २५६	...	३.५०	१.५०
व्यवहारमें परमार्थकी कला—पृष्ठ २२४	...	४.००	१.५०
श्रद्धा-विश्वास और प्रेम—पृष्ठ २२४	...	४.००	१.५०
आत्मोद्धारके सरल उपाय—सचित्र, पृष्ठ २६६	...	३.५०	१.५०
परमानन्दकी खेती—पृष्ठ २२०	...	४.००	१.५०
तत्त्व-चिन्तामणि—(भाग ६) खण्ड १, पृष्ठ २५६	...		
भक्ति-भक्त-भगवान्—पृष्ठ २२४	...	४.००	१.५०
समता अमृत और विषमता विष—पृष्ठ २२४	...	४.००	१.५०
भगवान्के रहनेके पाँच स्थान—पृष्ठ ५६	...	२.००	१.००
रामायणके कुछ आदर्श पात्र—पृष्ठ १६८, सचित्र		२.५०	१.००
महाभारतके कुछ आदर्श पात्र—सचित्र, पृष्ठ १२८		२.५०	१.००
मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१, पृष्ठ १९२	..		
मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२, पृष्ठ १४०	..	३.५०	१.००
३.५०		१.५०	
कर्मयोगका तत्त्व—भाग-१ पृष्ठ १९२	...	४.००	१.५०
,, भाग-२ पृष्ठ १९२	..	४.००	१.५०
परमशान्तिका मार्ग—भाग-१ पृष्ठ १७२	...	४.००	१.५०
,, ,, भाग-२ पृष्ठ १८८	...	४.००	१.५०
हेतुरहित भगवान्का सौहार्द—पृष्ठ ३२	...	०.५०	०.५०
भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो? पृष्ठ ३२	...	०.५०	०.५०
स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा—सचित्र, पृष्ठ १७६		३.००	१.००
नल-दमयन्ती—पृष्ठ ६८	...	२.००	१.००
महत्त्वपूर्ण चेतावनी—पृष्ठ ११२	...		
कल्याण-प्राप्तिके उपाय—[तत्त्व-चिन्तामणि भाग-१ बड़ा]—बँगला, पृ०२८८		६.००	१.५०
परमार्थपत्रावली, बंगला—(प्रथम भाग)	...		
उद्धार कैसे हो? ५१ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ ११२	...		
सच्ची सलाह—८० पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १७२.	...	१.००	१.००
हमारा कर्तव्य—	...	०.५०	०.५०

	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
भजनामृत–(संकलनकर्ता–ईश्वरीप्रसाद गोयनका) पृष्ठ १०४ ...	३ ५०	१ ००
बालकोंकी बातें—पृष्ठ १५२ ..	२ ५०	१ ००
बड़ोंके जीवनसे शिक्षा—पृष्ठ ११२ ...	३ ५०	१ ००
चोखी कहानियाँ—बालकोंके लिये ३२ कहानियाँ	३ ००	१ ००
वीर बालक—२० वीर बालकोंके जीवन-चरित्र, .	३ ००	१ ००
गुरु और माता-पिताके भक्त बालक—११ बालकोंके आदर्श चरित्र, पृष्ठ ८० ...	३ ००	१ ००
पिताकी सीख—(स्वास्थ्य और खान-पान) पृष्ठ १३६	४ ००	१ ००
सत्संगमाला—(श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) .	३ ००	१ ००
सच्चे, ईमानदार बालक—पृष्ठ ७२ ...	२ ५०	० ५०
आरती-संग्रह—१०२ आरतियोंका अनूठा संग्रह ...	३ ००	१ ००
ज्ञानमणि-माला— ...		
दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ—२३ छोटी-छोटी कहानियाँ, पृष्ठ ६८	२ ५०	० ५०
वीर बालिकाएँ—१७ वीर बालिकाओंके आदर्श चरित्र,	१ ५०	१ ००
सती सुकला— ...		
महासती सावित्री—पृष्ठ ६८ ..		
आदर्श उपकार (पढ़ो, समझो और करो)—पृष्ठ १४४	४ ५०	१ ००
कलेजेके अक्षर—पृष्ठ १२८ ..	४ ५०	१.००
हृदयकी आदर्श विशालता—पृष्ठ १२८ ..	४ ५०	१ ००
उपकारका बदला—पृष्ठ १२८ ...	४ ५०	१ ००
आदर्श मानव हृदय—पृष्ठ १२८ ...	४ ५०	१ ००
भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा—पृष्ठ १२८ ..	४ ५०	१.००
मानवताका पुजारी—पृष्ठ १२८ ...	४.५०	१ ००
परोपकार और सच्चाईका फल—पृष्ठ १२८ .	४ ५०	१ ००
भक्त भारती— ..		
भक्त नरसिंह मेहता—सचित्र, पृष्ठ १६० ...		
भक्त बालक—गोविन्द, मोहन आदि ५ भक्त बालकोंकी कथाएँ ...		
भक्त नारी—स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेवाली मीरा, शबरी आदिकी उपयोगी कथाएँ, पृष्ठ ६४ ...	१.२५	०.५०
भक्त-पञ्चरत्न—रघुनाथ, दामोदर आदि पाँच भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ८८ ...	२ ००	१ ००
आदर्श भक्त—शिबि, रन्तिदेव आदि भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ९६ ...	२.००	१.००
भक्त-सप्तरत्न—दामा, रघु आदि भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ८८ ...		
भक्त-चन्द्रिका—सखु, विट्ठल आदि ६ भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ८८ ...	१.५०	१.००
भक्त कुसुम—जगन्नाथ, हिम्मतदास आदि ६ भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ८४ ...	१.५०	१.५०

	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
प्रेमी भक्त—बिल्वमङ्गल, जयदेव आदि ५ प्रेमी भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ८८ ...		
प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि १५ भक्तोंकी कथाएँ ...		
भक्त सरोज—गङ्गाधरदास, श्रीधर आदि १० भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ १०४ ..		
भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदि अनेक भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ११२ ...	२.००	१.००
भक्त-सौरभ—व्यासदास प्रयागदास आदि भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ १५० ..	२.५०	१.००
भक्त सुधाकर—भक्त रामचन्द्र, लाखाजी आदिकी कथाएँ, पृष्ठ १००	१.७५	१.००
भक्त महिलारत्न—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि ९ महिला-भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ९६ ...	२.००	१ ००
भक्त दिवाकर—सुव्रत वैश्वानर आदि ८ भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ १०० ...	१.७५	१ ००
भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि १४ भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ १०० ...		
भक्तराज हनुमान्—पृष्ठ ७२, सचित्र ...	२.००	१.००
सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र—पृष्ठ ५२ ...	१ ५०	० ५०
प्रेमी भक्त उद्धव—पृष्ठ ६४, सचित्र ...		
महात्मा विदुर—पृष्ठ ५८ ...	१.५०	०.५०
भक्तराज ध्रुव—पृष्ठ ५२, सचित्र ..	१ ००	० ५०
बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला—[दोनों भाग] सचित्र, पृष्ठ ६८ ..	४ ००	१.५०
भगवान् श्रीकृष्ण—[दोनों भाग] सचित्र, पृष्ठ १२०	२.००	१ ००
बाल-चित्र-रामायण—[दोनों भाग] रंगीन पृष्ठ ३४ ...	२ ५०	१ ००
भगवान् राम—[दोनों भाग] सचित्र, पृष्ठ ९६ ..	१.७५	१.००
बाल-चित्रमय बुद्धलीला—चित्रोंमें, पृष्ठ ३६ ...		
बाल-चित्रमय चैतन्यलीला—चित्रोंमें, पृष्ठ ३६ ...		
भगवान्पर विश्वास—पृष्ठ ६८ ..		
मनन माला—पृष्ठ ५२ ...	१.२५	०.५०
संस्कृतिमाला—(भाग १) पृष्ठ ४८ ..	१ ५०	०.५०
,, (भाग २) पृष्ठ ५६ ..	१.५०	०.५०
,, (भाग ३) पृष्ठ ५६ ...		
,, (भाग ४) पृष्ठ १०४ ...		
मनुस्मृति—दूसरा अध्याय, भाषा-टीकासहित, पृष्ठ ५२		
गङ्गासहस्रनाम—सटीक ...	१.००	०.५०
अपरोक्षानुभूति—श्रीआद्यशंकराचार्यविरचित, सानुवाद, पृष्ठ ४० ..	१.००	०.५०
गीताप्रेस-लीला-चित्रमन्दिर-दोहावली—पृष्ठ ६४	१.००	० ५०

पुस्तक	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
शान्ति कैसे मिले ?—पृष्ठ २८०	३ ००	१.५०
दुःख क्यों होते हैं ?—पृष्ठ २८०	३ ००	१ ५०
कल्याण-कुञ्ज—(भाग १) सचित्र, पृष्ठ १३६	४.५०	१ ००
,, (भाग २) पृष्ठ १३२		
,, (भाग ३) सचित्र, पृष्ठ १८४		
मानव-कल्याणके साधन—(कल्याण-कुञ्ज भाग ४) सचित्र, पृष्ठ २६०		
दिव्य सुखकी सरिता—(कल्याण-कुञ्ज भाग ५) पृष्ठ ९६	३ ५०	१ ००
सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ—(कल्याण-कुञ्ज भाग ६) सचित्र, पृष्ठ १०४,	४ ००	१ ००
परमार्थकी मन्दाकिनी—(कल्याण-कुञ्ज भाग ७)		
गोसेवाके चमत्कार, तमिल—पृष्ठ ९६	३ ५०	१ ००
मानव-धर्म—पृष्ठ ९६		
दैनिक कल्याण-सूत्र—पृष्ठ ९२		
प्रार्थना—इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह, पृष्ठ ५६	१ ००	० ५०
गोपीप्रेम—पृष्ठ ५२		
श्रीभगवन्नाम—पृष्ठ ७२		
राधा-माधव-रस-सुधा—(षोडस गीत) सटीक, पृष्ठ ३६ (व्रजभाषामें)		
,, ,, (गुटका)		
कल्याणकारी आचरण—[जीवनमें पालन करने योग्य बातें] पृष्ठ ३२	१ ५०	० ५०
साधन-पथ—सचित्र, पृष्ठ ६८	० ७५	० ५०
वर्तमान शिक्षा—पृष्ठ ४८		
स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी—पृष्ठ ४८		
मनको वश करनेके कुछ उपाय—पृष्ठ २४		
आनन्दकी लहरें—पृष्ठ २४		
गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य—	१ ००	० ५०
ब्रह्मचर्य		
दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य—	० ४०	०.५०
सिनेमा मनोरञ्जन या विनाशका साधन—		
भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी प्राप्तिके लिये—पृष्ठ १६		
विवाहमें दहेज—पृष्ठ १६		
नारदभक्तिसूत्र—पृष्ठ २४	०.२५	०.५०
सत्संग-सुधा—पृष्ठ २२४		
प्रेम-सत्संग-सुधा-माला—पृष्ठ २०८	३.००	१.००

स्वामी श्रीरामसुखदासजीकी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
गीतामाधुर्य हिन्दी—पृष्ठ १८०	६.००	१.००
गीतामाधुर्य तमिल—	८.००	१.५०
गीतामाधुर्य कन्नड़—	४.५०	१.००
गीतामाधुर्य मराठी—	६.००	१.००
गीतामाधुर्य गुजराती—पृष्ठ १४०	५.००	१ ००
गीतामाधुर्य उर्दू—पृष्ठ १९६	६ ००	१.५०
गीतामाधुर्य नेपाली—पृष्ठ ७२	५ ००	१.५०
गीतामाधुर्य बँगला—	५ ००	१ ००
गीताका आरम्भ—पृष्ठ ३६८	३ ५०	१ ५०
गीताका ज्ञानयोग—पृष्ठ ४४८	४ ००	२.००
गीताका भक्तियोग—पृष्ठ ४६४	४.००	२ ००
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा—पृष्ठ २५६	३ ००	१ ५०
कल्याणकारी उपदेश—पृष्ठ १५४	५.५०	१.००
मानसमें नाम-वन्दना—पृष्ठ २७२	५ ००	१.००
सुन्दर समाजका निर्माण—पृष्ठ १६२	५.००	१ ५०
जीवनका कर्तव्य—पृष्ठ २०४	५.००	१ ००
कल्याणकारी प्रवचन गुजराती—सचित्र, पृष्ठ २१२	४ ००	१ ५०
नित्ययोगकी प्राप्ति—पृष्ठ १२८	४ ५०	१.००
भगवत्प्राप्ति सहज है—पृष्ठ १३४	४ ००	१ ००
भगवत्प्राप्तिकी सुगमता—पृष्ठ १८८	३ ५०	१.००
भगवान्‌से अपनापन—पृष्ठ ९०	३ ५०	१ ००
वास्तविक सुख—पृष्ठ १४८	४ ००	१.००
जीवनोपयोगी प्रवचन—पृष्ठ १५४	४.५०	१.००
साधन और साध्य—पृष्ठ ९०	३.५०	१ ००
तात्त्विक प्रवचन—पृष्ठ १३२	३.५०	१.००
,, ,, गुजराती—पृष्ठ १२०	४.००	१.००
तत्त्वज्ञान कैसे हो?—पृष्ठ १०८	४.००	१.००
किसानोंके लिये शिक्षा—पृष्ठ २०	१.२५	०.५०
जीवनका सत्य—पृष्ठ ९२	३ ५०	१.००
भगवन्नाम—पृष्ठ ९९	२.५०	१.००
साधकोंके प्रति—पृष्ठ ९५	३.५०	१ ००
सत्संगकी विलक्षणता—पृष्ठ ११५	२ ५०	१.००
मातृशक्तिका घोर अपमान—पृष्ठ ४०	२.००	०.५०
जिन खोजा तिन पाइया—पृष्ठ १००	३.५०	१.००
कर्मरहस्य—पृष्ठ ७२	२.५०	१ ००
,, तमिल—पृष्ठ ७२	३ ००	१.००
वासुदेवः सर्वम्—पृष्ठ ६८	२.५०	१.००
अच्छे बनो—पृष्ठ ८४	३ ००	१ ००
सत्संगका प्रसाद—पृष्ठ ८८	३.००	१.००
गृहस्थमें कैसे रहें ?—पृष्ठ १३२	४ ००	१.००
,, बँगला—	३.००	१ ००
,, मराठी—पृष्ठ १६८	५.००	१ ००
,, उड़िया—पृष्ठ—९६	३ ५०	१ ००
स्वाधीन कैसे बनें?—	२.००	०.५०
एकै साधे सब सधै—	३ ००	१.००

	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
साधनोपयोगी पत्र—७२ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ २००	६ ००	१ ००
पारमार्थिक पत्र—९१ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ २१४ ...	१ २५	१ ००
शिक्षाप्रद पत्र—गोयन्दकाजीके ७० पत्रोंका संग्रह ..	४ ००	१ ००
शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ—श्रीजयदयालजी गोयन्दका की ११ कहानियोंका संग्रह	२ ५०	१ ००
अध्यात्मविषयक पत्र—श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ५४ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १६४ ..		
आदर्श भ्रातृ-प्रेम—पृष्ठ ९६ ..		
बाल-शिक्षा—पृष्ठ ६४, सचित्र ...	१ ५०	० ५०
बालकोंके कर्तव्य—पृष्ठ-संख्या ८८ ...		
श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन—	० ७५	० ५०
गीता-निबन्धावली—गीताकी अनेक बातें समझनेके लिये उपयोगी निबन्ध-संग्रह, पृष्ठ ८० ...	० ७५	१ ००
आदर्श नारी सुशीला—पृष्ठ ६४ ..	१.२५	० ५०
आदर्श देवियाँ—पृष्ठ १२८ ...		
नवधाभक्ति—सचित्र, पृष्ठ ६४	२ ५०	१ ००
सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय—पृष्ठ ३२	०.७५	० ५०
संत-महिमा—पृष्ठ ४० ...	० ७५	० ५०
सत्संगकी सार बातें—पृष्ठ ३२ ..		
,, बँगला—पृष्ठ ३२ ...	०.५०	० ५०
गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप—पृष्ठ ६४	०.७५	० ५०
ध्यान और मानसिक पूजा—सचित्र, पृष्ठ ३२ ...		
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप—पृष्ठ ३६ ...		
नारी-धर्म—पृष्ठ ४८ ...	१.५०	० ५०
भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म—पृष्ठ ६४	१.००	० ५०
श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश—पृष्ठ १६ ...	१.००	० ५०
श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा—पृष्ठ ४० ...		
गीता पढ़नेके लाभ—पृष्ठ २४ ...		
श्रीमद्भगवद्गीताका तात्त्विक विवेचन—पृष्ठ ६४	१.२५	० ५०
भगवान् क्या हैं ?—पृष्ठ ३२ ...		
भगवान्‌की दया—पृष्ठ ४८ ...	०.५०	० ५०
सामयिक चेतावनी—पृष्ठ २४		
भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—पृष्ठ ४० ...		
कल्याण-प्राप्तिकी कई युक्तियाँ—पृष्ठ ३६ ...		
परलोक और पुनर्जन्म— ...	१.००	० ५०
वैराग्य—पृष्ठ ३६		
सत्यकी शरणसे मुक्ति—पृष्ठ ३२ ...	०.५०	०.५०
व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और व्यापारसे मुक्ति— ...	० ५०	०.५०
चेतावनी— ...		
ईश्वर-साक्षात्कार-नामजप-सर्वोपरि साधन है ...		
अवतारका सिद्धान्त—पृष्ठ ३२ ...	०.७५	०.५०

	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
ईश्वर दयालु और न्यायकारी है— ...		
हमारा कर्तव्य— ...		
वास्तविक त्याग— ...	२.५०	१.५०
त्यागसे भगवत्प्राप्ति— ...		
महात्मा किसे कहते हैं?— ...		
ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन—पृष्ठ ३२ ...		
श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव—		
धर्म क्या है?— ...		
प्रेमका सच्चा स्वरूप—पृष्ठ २४ ...	०.५०	०.५०
स्त्रियोंके कल्याणके कुछ घरेलु प्रयोग— ...		
चतुःश्लोकी भागवत—पृष्ठ २४ ...	.५०	.५०
शोक-नाशके उपाय—पृष्ठ २४ ...	.५०	.५०
तीर्थोंमें पालन करने योग्य कुछ उपयोगी बातें—		
गजलगीता— ...		

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पुस्तकें

	मूल्य रु० पै०	साधारण डाकखर्च
ईश्वरकी सत्ता और महत्ता— ...		
सुखशान्तिका मार्ग—पृष्ठ ३२० ...		
व्यवहार और परमार्थ—पृष्ठ २९६ ...		
सुखी बननेके उपाय—पृष्ठ ३६६ ...		
नारीशिक्षा—पृष्ठ १६० ..	४.५०	१.००
दाम्पत्य जीवनका आदर्श—पृष्ठ १३४ ...	५.००	१.००
श्रीभगवन्नाम-चिन्तन—पृष्ठ १५८	४.००	१.५०
सत्संगके बिखरे मोती—पृष्ठ २४० ...	६.५०	१ ५०
श्रीरामचिन्तन—पृष्ठ १८० ...	५ ५०	१.५०
प्रेम-दर्शन—(नारदरचित भक्तिसूत्रोंकी विस्तृत टीका)		
संतवाणी [ढाई हजार अनमोलबोल] ..	७ ००	१ ५०
मधुर—[श्रीराधा-माधव-दिव्यप्रेमकी झाँकी] सचित्र, पृष्ठ ३३०		
उपनिषदोंके चौदह रत्न—पृष्ठ ८८ ...		
भवरोगकी रामबाण दवा—पृष्ठ १७२ ...	४.५०	१.००
सुखी बनो—पृष्ठ १२८ .	२ ००	१ ००
तुलसीदल—सचित्र, पृष्ठ २९४ ..	३.५०	१.५०
नैवेद्य—सचित्र, पृष्ठ २६४ ...	२ ५०	१.५०
भगवत्प्राप्ति एवं हिंदू संस्कृति— ...	४ ००	२ ००
साधकोंका सहारा—सचित्र, पृष्ठ ४४०	४ ००	२.००
भगवच्चर्चा भाग ५—पृष्ठ ४०० ...	५.००	१.५०
पूर्णसमर्पण—सचित्र, पृष्ठ ३९६ ...	५.००	१.५०
लोक-परलोकका सुधार—(कामके पत्र) [प्रथम भाग] ...	२.००	१.५०
आनन्दका स्वरूप—पृष्ठ २६० ...	२.५०	१.५०
महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—पृष्ठ २९२ ...	३ ००	१.५०